॥ ॐ सिद्धाय नमः ॥

श्रीसमंतभद्राचार्यविरचित

रत्नकरंडश्रावकाचार

: अनुवादक : पंडित सदासुखजी

: प्रकाशक :

परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागर दिगंबर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था प्रमाणित

श्री श्रुतभांडार व ग्रंथप्रकाशनसमिति फलटण (जिल्हा उत्तर सातारा)

श्री. माणिकचंद मलुकचंद दोशी, मंत्री व श्री. तलकचंद वेणीचंद शहा, अध्यक्ष

वीर संवत् २४८१

: मुद्रक : श्री. वालचंद जिवराज शहा, नेमि मुद्रण मंदिर, फलटण, (उ. सातारा)

हि १२१

वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
४६०
नरिया, (का. हि. वि.) वाराणसी

शास्त्रस्वाध्यायका प्रारंभिक मंगलाचरण ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ जय जय जय, नमोस्तु! नमोस्तु!! नमोस्तु!!!
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः। कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥ १ ॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का। मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥
नमस्तस्यै सरस्वत्यै विमलज्ञानमूर्तये। विचित्रा लोकयात्रेयं यत्प्रसादात्प्रवर्तते ॥
नमो वृषभसेनादिगौतमांतगणेशिने। मूलोत्तरगुणाढ्याय सर्वस्मै गुरवे नमः ॥
गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितियवर्तिनाम्। वंदामहे त्रिसंख्योननवकोटिमुनीश्वरान् ॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥

श्रीपरमगुरवे नमः, परंपराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसंबंधकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री (ग्रंथका नाम) नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवः, तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसारमासाद्य श्री (आचार्यका नाम) आचार्येण विरचितं ग्रन्थमिदं मंगलं भूयात्। मंगलं भगवान्वीरो, मंगलं गौतमो गणी। मंगलं कुंदकुंदाद्यो जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ॥ चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने। परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥ श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु ॥

श्रीजिनवाणी स्तुति।

वीर–हिमाचल तें निकसी गुरु गौतमके मुखकुण्ड ढरी है। मोह–महाचल भेद चली, जगकी जडता–तप दूर करी है ॥ ज्ञान पयोनिधिमांहि रली बहु भंग–तरं–गनि सों उछरी है। ता शुचि शारद–गंगनदी प्रति मैं अंजुरी करि शीश धरी है ॥ या जग मान्दिरमें अनिवार अज्ञान -अन्धेर छयो अति भारी। श्रीजिनकी ध्वनि–दीप–शिखा सम जो नहिं होत प्रकाशन हारी ॥ तो किस भांति पदारथ–पाति कहां लहते, रहते अविचारी ॥ या विधि संत कहैं धनि हैं धनि हैं जिन बैन बडे उपकारी ॥

जा वाणीके ज्ञान तैं सूझे लोक अलोक। सो वाणी मस्तक चढा, सदा देत हूं धोक ॥

बधाय लेना, सो क्षेत्रवृद्धि अतीचार है। त्याग किया तिसका विस्मरण हो जाना सो विस्मरण नाम अतीचार है। ये दिग्व्रतके पंच अतीचार हैं।

अब अनर्थदण्डत्यागव्रत कहनेकूं अष्ट सूत्र कहैं हैं—

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थकेभ्यः सपापयोगेभ्यः। विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः॥ ७४॥

अर्थ—आप जो दिशानिकी मर्यादा करी ताके मांहि वृथा जे मनवचनकायके योगनिकी प्रवृत्ति तिनतैं विरक्त होना ताहि व्रतधरनिमें अग्रणी जे भगवान ते अनर्थदण्डव्रत कहैं हैं।

भावार्थ—मर्यादा करि लीनी तहां हू ऐसा कर्म करै, जातैं अपना प्रयोजन हू नाहीं सधै अर वृथा पापका बन्ध होय, दण्ड भुगतना पडै, सो अनर्थदण्ड है। सो अनर्थदण्ड त्यागने योग्य है, जातैं जिसके करनेतैं अपना विषयभोग हू नाहीं सधै, कुछ लाभ हू नाहीं हो, यश हू नाहीं होय, धर्म हू नाहीं होय; अर पापका बन्ध निरन्तर होय, जाका फल, कडवा दुर्गतिनिमें भोगना पडै। सो अनर्थदण्ड त्यागने ही योग्य है।

अब अनर्थदण्ड पांच प्रकार हैं तिनकूं कहैं हैं—

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पंच। प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः॥ ७५॥

अर्थ—पापका उपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति, प्रमादचार्या ए पंच अनर्थदण्ड हैं तिननै अदण्डधर जे गणधर देव हैं ते कहै हैं।

भावार्थ—अशुभ मन, वचन, कायके योग तिनकूं दण्ड कहिये हैं। जातैं समस्त जीवनिकूं अपने अपने अशुभ मनवचनकायके योग ही दुर्गतिनिमें नानाप्रकार दंड दे हैं, तातैं अशुभ मनवचकायकूं दंड कहिये। ताकूं अदंडधर जे अशुभ योगनिकूं नाहीं धारैं ऐसे गणधरदेव हैं ते पांच प्रकार अनर्थदण्ड कह्या है। पापका उपदेश देना, सो पापोपदेश ॥१॥ हिंसाके उपकरणनिका दान, सो हिंसादान ॥२॥ खोटा ध्यान, सो अपध्यान ॥३॥ खोटा श्रवण करना, सो दुःश्रुति ॥४॥ प्रमादरूप चर्या करना, सो प्रमादचर्या ॥५॥ ऐसें पांच प्रकार अनर्थदंड हैं।

अब पापोपदेश नाम अनर्थदंड कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

तिर्य्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् । प्रसवः कथाप्रसंगः स्मर्तव्यः पाप उपदेशः ॥ ७६ ॥

अर्थ —जे तिर्यंचनिके क्लेश उपजनेकी तथा बनज कहिये बेचनेकी, खरीदनेकी अर हिंसा की अर आरम्भकी अर प्रलंभ कहिये कपट ठगपनाकी इत्यादिक पाप उपजनेकी कथामें बारम्बार प्रवृत्तिरूप उपदेश करनेतैं पापोपदेश नामा अनर्थदण्ड है ।

भावार्थ—तिर्यंचनिकूं मारनेका, डाहनेका, दृढ बांधनेका, मर्मस्थानमें पीडा करनेका, बहुत बोझ लादनेका, बाधी करनेका, नाशिका फोडनेका, तिर्यंचनिको पकडनेका, पिंजरेनिमें रोकनेका जो उपदेश, सो तिर्यक्क्लेश नामा पापोपदेश है । तथा अनेक वस्तुनिमें पाप उपजावनेवाला बनजका उपदेश तथा जिनतैं छहकायके जीवनिकी हिंसा होय ऐसा उपदेश सो हिंसोपदेश है । अर बाग बनावना, जायगा बनावना, विवाह करना इत्यादि पापके आरम्भका उपदेश सो आरम्भोपदेश, अर कपट-छल करनेका उपदेश, सो प्रलंभनोपदेश है । अनेक प्रकार पापरूप उपदेशकी कथा करना, पापमें प्रेरणा करना, सो पापोपदेश नाम अनर्थदण्ड है ।

अब हिंसादान नामा दूजा अनर्थदण्ड कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गिशृङ्खलादीनाम् । वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥७७॥

अर्थ—हिंसाका कारण जे फरसी, खड्ग, कुदाल, अग्नि; आयुध, विष, बेडी, साँकल इत्यादिकनिका दान ताहि ज्ञानी हैं ते हिंसादान नाम अनर्थदण्ड कहैं हैं । जिनतैं हिंसा ही उपजै ऐसी वस्तुका अन्यकूं देना, फावडा, कुदाल, खुरपा, कुशि, हथोडा, तरवार, छुरी, कटारी, तमचा, भाला, बाण, धनुष, बन्दूक, तोप, दारू, गोला, गोली, चाबुक, दांतला, दतीला, बेडी, सांकल, जहर, अग्नि इत्यादिक वस्तुकूं दान करना, मांगी देना बेचना, भाडै देना सो समस्त हिंसादान नाम अनर्थदण्ड है ।

अब अपध्यान नामा अनर्थदण्डकूं सूत्र कहैं हैं—

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः । आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥७८॥

अर्थ—जो वैरतैं वा अपने विषय साधनेके रागतैं परकी स्त्री-पुत्रादिकनिका बन्धन, मारण वा छेदनादिका चिंतवन ताहि जिनशासनविषैं प्रवीण हैं, ते अपध्याननामा अनर्थदण्ड कहैं हैं ।

भावार्थ—जाकै रागद्वेषतैं ऐसा परिणाममें चिंतवन रहै, जो याका पुत्र मर जाय, याकी स्त्री मर जाय, याकैं दण्ड हो जाय, याका हस्त, नाक, कर्ण, छेद्या जाय, याका धन लुट जाय, याकी आजीविका नष्ट हो जाय, याकी इन्द्रियां नष्ट हो जाय, याका लोकमें अपवाद होजाय, यो स्थान-भ्रष्ट हो जाय, बुद्धि भ्रष्ट हो जाय, ऐसा चिंतवन वारंवार करै । ऐसैं अन्यके दुःख-आपदा

चाहना, अपने कुछ लाभादिक होय नाहीं, आपका चिंतवनतैं कुछ होय नाहीं, अपने वृथा महापाप का बंध होय। अन्य का बुरा भला आपका पाप-पुण्यके अनुकूल होय हैं। वृथा दुर्ध्यान करै ताकैं अपध्यान नामा अनर्थदण्ड कहिये है।

अब दुःश्रुति नामा अनर्थदण्ड कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

आरम्भसंगसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः। चेतः कलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥ ७९ ॥

अर्थ—आरम्भ कहिये असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, शिल्प अर संग कहिये धन धान्यादिक परिग्रह, अर साहस कहिये आश्चर्यकारी वीरकर्मादिक, अर मिथ्यात्व कहिये ब्रह्माद्वैत, ज्ञानाद्वैत, क्षणिक, याज्ञिकादिक विरुद्ध अर्थका प्रतिपादक शास्त्र, अर राग कहिये आसक्तता, द्वेष कहिये वैर, अष्ट मद अर कामवेदना-कृत विकार इनकरि चित्तकूं कलुषित करनेवाले ऐसे अवधि जे शास्त्र तिनको जो श्रवण सो दुःश्रति नामा अनर्थदण्ड है।

भावार्थ—जो मिथ्यात्व राग-द्वेषका उपजानेवाला, पदार्थनिका विपर्यय स्वरूप ग्रहण करानेवाला शास्त्रका, विकथाका, श्रृंगार-वीर-हास्यका प्ररूपक तथा मारण, उच्चाटन, वशीकरण, कामका उत्पादक शास्त्रनिका श्रवण करना तथा जांगलिक सर्पनिका, भूतनिका रसकर्म, इन्द्रजाल, रसायण, मायाचारादिकके प्ररूपक, यज्ञादिक हिंसाके प्ररूपक, दुष्टशास्त्र, दुष्टकथा, दुष्टराग, दुष्टचेष्टा, दुष्टक्रिया, दुष्टकर्मनिका श्रवण करना सो दुःश्रुतिनामा अनर्थदण्ड है।

अब प्रमादचर्या नाम अनर्थदण्डकूं कहैं हैं—

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम्। सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥८०॥

अर्थ—पृथ्वी खोदनेका, पाषाणादिक फोडने का आरम्भ, जल पटकनेका, सींचनेका, छिडकनेका, जल विलोवनेका, अवगाह करनेका आरम्भ, विना प्रयोजन अग्नि बधावने का, बालनेका, बुझावनेका, दावनेका आरम्भ, पवन घालनेका, पवनके यंत्र रोकनेका, अग्निमें धमनेका, वृथा आरम्भ, तथा प्रयोजन विना वनस्पतिका छेदना तथा विना प्रयोजन गमन करना, विना प्रयोजन गमन करावना ते समस्त प्रमादचर्या नामा अनर्थदण्ड कह्या हैं। यहां ऐसा विशेष जानना, गृहस्थके गृहाचारमें अनेक पापहीके आचरण हैं जो गृहाचारीके पापतैं निराला नाहीं हुआ जाय तो जिनसूं कुछ प्रयोजन तुम्हारा सिद्ध नाहीं होय ऐसैं विना प्रयोजन पापबन्ध का कारण, जिनका फल दुर्गतिनिमें असंख्यात काल अनंतकाल दुःख भोगो ऐसे निंद्यकर्म तो छोडो। जो उत्तम कुलमें जिनेन्द्रको उपदेश उत्तमधर्म अतिदुर्लभ पायो है, तो विना प्रयोजनके पाप-बंधतैं भयभीत होना योग्य है। पशुकी ज्यों जन्म वृथा मत व्यतीत करो। आपका घरका पापतैं नाहीं छूट्या जाय तो अन्यकूं ऐसा पापका उपदेश मत करो, गृह-जायगा बणावनेमें महाहिंसा होय है।

यातैं गृह वनवानेका, जायगा धवल करावनेका, जायगाकी मरम्मत करावनेका बाग-बगीचा बनावनेका, रोडी खुदावनेका, गली खुदावनेका, कुआ बावडी बनवानेका, तालाब खुदवानेका, जल निकासनेका, तालावकी पाल बंधावनेका, तालावकी पाल फुडावनेका, नदीकी पाल बंधावनेका, वना हुआ मकान-गृह डहावनेका, बाग–बगीचा डहावनेका, वृक्ष कटावनेका, बनकटी करावनेका, कोयला बनावनेका, घास खुदावनेका, दाह लगावनेका, मिथ्या देवनिका मकान बनवानेका, मिथ्या देवतानिका मन्दिर तथा मूर्तिका बिगाडनेका, खेती करनेका, सुन्दर मकानकूं मलीन करनेका कदाचित् उपदेश मत करो । तथा तिर्यंचनिकै दुःख होनेका, मारनेका, दृढ बांधनेका, बाधी करनेका, डाह देनेका, नाशिका फोडनेका उपदेश मत करो । मनुष्य तिर्यंचनिके भोजन-पान रोकनेका, बंदीगृहमें धरनेका, संताननितैं वियोग करनेका, पक्षीनिकूं पिंजरामें धरनेका, सर्प, बीछू, सिंह, व्याघ्र, मूसा, न्योला, कूकरा इत्यादि हिंसक जीवनिके मारनेका, जूवा लीखां मारनेका, उटकण खटमल, मारनेका, खाट तावडै देनेका, छिडकाव करावनेका, जीवनिके पकडने मारनेके यंत्र-जाल बनवानेका उपदेश मत करो । खोटे पापरूप शास्त्र पढनेका जिन शास्त्रनिमें श्रृंगार मायाचारादिककी अधिकता मिथ्या श्रद्धान करानेवाले जिन ग्रंथनिमें मारणक्रिया, विष बनावनेकी क्रिया, मारण, उच्चाटन, वशीकरण, मंत्र-तंत्रादिक तथा इन्द्रजालादिक अनेक कपटनिका उपदेश तथा रसनिका दग्ध करना, रसायण करना इत्यादि पापके शास्त्र, वीररसके शास्त्र, हिंसाप्रधान क्रियाके शास्त्र मत पढो, अन्यकूं उपदेश मत करो, तथा अभक्ष्य भक्षण करनेका, रात्रि-भोजन करनेका, झूठ बोलनेका, चुगली करनेका, चोरी करनेका, खोटी साख भरनेका, व्यभिचार करावनेका, व्यवहारादिक महाआरम्भ करनेका, रोशनी प्रज्वलित करनेका, दारूके (वारूदके) छुडवानेका, तथा बाग–बगीचा देखनेकूं प्रेरणा करनेका उपदेश मत करो ।

तथा इस देशतैं दूसरे देशमें व्यौपार बहुत है, वहां जावो ऐसा उपदेश मत करो । तथा परिणामनिमें दुर्ध्यानके कारण ऐसा मेला, ख्याल, कौतुक, व्यभिचारादिक कर्म मनुष्य तिर्यंचनिकी राडिकलहादिक देखनेका उपदेश मत करो । तथा युद्धादिक करनेका, गाली देनेका, परकी आजीवका बिगाड देनेका, उपदेश मत करो। तथा खोटे गीत,गान, नृत्य, वादित्र, कलह, विसंवाद श्रवण करनेका उपदेश मत करो । तथा इस देशमें दासी दास सुलभ हैं, इनकूं अमुक देशमें लेजाय बेचै तो बहुत लाभ होय, ऐसा उपदेश क्लेशवणिज्या है । तथा गाय, भैंस, अश्वादिक अमुक देशतैं ग्रहण करि अन्य देशमे बेचै तो बहुत धनका लाभ होय सो तिर्यक्वणिज्या है । तथा चिडीमार शिकारीनिकूं ऐसैं कहै जो अमुक देशमें मृग, सूंकर, पक्षी इत्यादिक जीव बहुत हैं ऐसा कहना सो वधकोपदेश है । तथा खेती करनेवालेनिकूं पृथ्वीके आरम्भका, जल, अग्नि, पवन, वनस्पति छेदनादिकका उपदेश देना सो आरंभोपदेश है । ये समस्त पापोपदेश त्यागने योग्य हैं तथा हुक्का, जरदा, तमाखू, भांग, अमल, छोंतरादिक पीवनेका, सूंघनका, खावनेका उपदेश महापापका कारण है; सो मत करो । जातैं हुक्का, जर्दो तो उतम कुलके योग्य ही नाहीं, जिसतैं जाति, कुल भ्रष्ट हो जाय । धुवां का अर जलका संयोगतैं बहुत जीव हुक्काके जलमें उपजैं । अर जल महादुर्गन्ध होजाय । अर जहां पडै तहां छह कायके जीवनिकी विराधना

ही करै । अर चूना, ईंट पकावनेका उपदेश मत करो , बहुरि बहुत पापके वनिजका उपदेश मत करो । गाय, भैंस, बलध, ऊंट, गाडा, गाडीनिका राखनेका उपदेश मत करो ! कोऊ दातार मनुष्य तिर्यंचनिकूं भोजन वस्त्र धनादिक देता होय ताके अंतराय मत करो । कुपात्र दानका उपदेश मत करो । देतेमें विघ्न मत करो । व्रत-भङ्ग करनेका उपदेश मत करो इत्यादि । बहुत कहा कहिये अपने धर्म-अर्थ-कामना कुछ भी सिद्ध होय नाहीं, केवल आपके पापहीका बंध होय, ऐसा पापरूप उपदेश मत करो । बहुरि जिनतैं हिंसा बहुत होय ऐसे उपकरण किसीकूं मत द्यो, मांगे मत द्यो, भाडे मत द्यो, प्रीतिकरि मत द्यो, मोलकरि मत द्यो, जिनके देनेमें किंचित् लाभ हू होय तो हू महापापके कारण जानि देना योग्य नाहीं । जिनकूं हस्तमें लेते ही दुष्ट परिणाम होजाय, घातहीका विचार रहै ऐसे खड्ग, छुरी, भाला, बाण, धनुष, बन्दूक, कटारी इत्यादिक आयुध देना योग्य नाहीं । बहुरि भूमि खोदनेके कारण जिनकरि गलीनिमें, रोडीनिमें, खेतनिमें बडे बडे जीव सर्प, बिच्छू, गिंडोला, लट, कीडा, मूसा इत्यादिक जीव कटि जांय, छिद जांय, कोटनि जीवनिकी हिंसा हो जाय ऐसा फावडा, कुदाल, कुस, खुरपा, हल, मुद्गर, हथोडा किसीकूं मत द्यो । तथा अनेक त्रस स्थावरनिकूं चीरनेवाला, मारनेवाला परसी, कुल्हाडा, वसोला, करोंत, दांतला, दतीला किसीकूं मत द्यो । तथा तिर्यंच मनुष्यनिके मारनेके कारण लाठी, घोंटा, चाबुक, चामडा, लोढा किसीको मत द्यो । बहुरि अग्नि, विष, बेडी, सांकल, पिंजरा, जाल, जीव पकडनेका यन्त्र किसीको मत द्यो । मार्जार, कूकरा इत्यादिक हिंसक जीवनिकूं अपना करि मत पालो । सूआ, तीतर, बुलबुल, कूकडा, मैना, कबूतर, बाज इत्यादिक पक्षीनिकूं पींजरामें रखना पालना मत करो । बहुरि केतेक बहुत पापके उपकरण घरमें हू मत राखो, घरमें रहै देखते हू हिंसाके उपकरण परिणाम ही बिगाडै हैं । बहुरि निन्द्य वनिज हू महापापके कारण जिनमें किंचित् लाभ होय तो हू पापसूं भयभीत होय त्याग करो । लोहा, नील, मैण, लवण, लकडा, साजी, सण, सावण, लाख, चमडा, ऊन, केश, कसूंभा, गुड, खांड, अन्न, चावल, सिंहाडा, शस्त्र, दारू, गोला, सीसा, लहसन, कांदा, आदो, जमीकन्द, तथा घृत, तैल, आम, नींबू, इत्यादिक वनस्पतिकाय, भांग, तमाखू, जर्दा, तिल, खल, काकडा, पिंजरा, फांसी, गांजा, चरस, दासी, दास, घोडा, ऊंट, बलध, भैंसा, गाडा, गाडी, ईंट, इनके बेचनेमें, खरीदनेमें, संचयमें महा हिंसा होय है । यातैं त्याग करो । समस्तका त्याग नाहीं बन सके तो यामें महापाप जानि कोऊ अन्नादिकमें अल्प संग्रह, अल्प प्रमाण राखि अन्य समस्तका तो त्याग करो । बहुरि केतीक खोटी आजीविका महापापबन्ध करि दुर्गति लेजाय ते परिहार करो । कोटवाली करनेकी, कोटवालका पियादापनाकी, वनकटी करानेकी, गाडा, गाडी, ऊंट, बलध, भाडैं देनेकी, ऊंट, बलध, गाडा, गाडी, भाडै करानेवाला दलाल यो नाहीं दीखै है जो याका कांधा गल गया है, कि नासिका गल गई हैं, कि पीठ गल गई है, पग दूखैं कि याका अंगमें कीडा पडि रह्या है, कि वृद्ध है कि रोगि है ऐसा विचार भाडाकी दलालीवालाकै नाहीं है । चातुर्मासमें भी बहुत बोझ लदाय दे । अर भाडाकी आजीविका अर भाडाकी दलाली दोऊ

महापाप हैं। अर लोभ के वश होय वृद्ध पुरुषका व्याह-सगाई मत करावो। राजका हासिल मत चुरावो। तथा अन्य अपराधीकी चुगली खानेकी, झूठी साखि भरनेकी, गवाही होजानेकी, वैद्यपनाकी आजीविका मत करा, जंत्र, मंत्र, भूत, भूतणी, डाकनिके इलाज करनेकी रसायणादिक धूर्ताईतैं दिखाय ठग लेनेकी आजीविका मत करो। यह दुर्गतिको ले जानेवाली है। तथा काठ बेचनेवाला मदिरा करनेवाला, कलाल, कषायी, धोबी, चमार, ईंट चूना पकानेवाला, नीलगर, जुआरी, घसियारा, घास खोदनेवाला इनकूं व्याज पर धन मत दो। मांसभक्षिनिकूं, वेश्यानिकूं, निंद्य पापकी आजीविका करनेवालेनिकूं व्याज पर रुपया मत दो, अपना मकान भाडे मत दो। बहुरि अशुभ परिणामके धारक अन्य-मार्गी मांसभक्षी, मद्यपायी, वेश्यामें आसक्त, परस्त्री-लम्पटी, अधमीनितैं मित्रता, प्रीति करनेका हू त्याग करो। परके दोष ग्रहण मत करो। अन्यकी लक्ष्मी में वांछा मत करो। अन्यकी लक्ष्मीकूं देखि आश्चर्य मत करो। अपना दीनपना मत चिन्तवन करो। अन्यकी स्त्रीके देखनेमें अभिलाषा मत करो अन्य मनुष्य तिर्यंचनिकी कलह मत देखो। अन्यके पुत्रका स्त्री का वियोगकी वांछा मत करो। परका अपमान अपयश सुनि हर्षित मत होहू। अन्यके लाभ देख विषाद मत करो। अन्यके रससहित भोजन आभरणादिक देखि अपने परिणाममें दुःखित मत होहू। आपकै दारिद्र, वियोग, रोग, होते आर्त्त परिणामकरि क्लेशित मत होहू, धनवाननिसूं ईर्षा मति करो। बहुरि कोऊ सिंह, व्याघ्र, सर्पादिकनिकी शिकार चिन्तवन मत करो। कोऊका संग्राममें जय-पराजय मत चाहो। परकी स्त्रीका संसर्ग, वचनालाप करनेमें वेश्यादिकनिका हाव-भाव नृत्यका विलास देखनेमें अभिलाषा मत करो। गाली भंडवचनलिये गीत मत सुनो। खोटे राग सांग कौतूहल परिणाम मलिन करनेका कारण श्रवण, देखना दूरहीतैं छांडौ। दारिद्र आवतेहू नीच प्रवृत्तिकरि आजीविका मत करो। किसीतैं याचना मत करो। दीनता मत भाखो। निर्धनपणाकूं होते हू प्रवृत्ति विकाररूप मत करो। नीचकुलवालेनिके करनेयोग्य वस्त्र रंगना, धोवना इत्यादिक निंद्यकर्म करनेका परिहार करो। बहुरि जिनालय आदिक धर्मके स्थाननिमें स्त्रीनिकी कथा, राजकथा, चोरकथा, देशकथा, महापाप-बन्ध करनेवाली कथा कदाचित् मत करो। बहुरि लेन-देन, व्याह-सगाईका झगडा तथा न्याय-पंचायती जिन मंदिरमें बैठि जाति-कुलका विसंवाद कदादित मत करो। मन्दिरमें बैठि करोगे तो धर्मस्थानकी मर्यादा तोडनेतैं नरक-निगोद का कारण घोरकर्मका बन्ध होयगा। तातैं धर्मायतनमें पापका बधावनेवाला कर्म दूरहीतैं त्याग करो। बहुरि जिनमन्दिरमें भोजन-पान, ताम्बूल, गन्ध, पुष्प, विषयादिक तथा शयन, उच्चासन, वनिज, सगाई, झगडा, गालीके वचन, हास्यके वचन, अविनयके वचन, आरम्भके वचनादिकमें कदाचित् प्रवर्तन मत करो। बहुरि मिथ्या श्रुतका श्रवण मत करो, जिनके श्रवणतैं विषयनि में राग बधै, हास्य कौतुक उपजै, काम जाग्रत हो जाय, भोजनके नाना स्वादनिमें चित्त चलि जाय ऐसी कथनी श्रवण मत करो। तथा स्त्री-पुरुषनिके पापरूप चरित्रको कथा, तथा भूत—प्रेतनिकी असत्य कथा, तथा हिंसाकी प्रधानता के धारक वेद—स्मृत्यादिकी कथा, तथा कपोल-कल्पित अनेक कहानी, तथा फारसी किताबनिका लिख्या तिनकूं किस्सा कहै हैं ते महा दुर्ध्यान करने वाले श्रवण मत करो। तथा भारत, रामायणादिकनिकी कल्पित कथा कदाचित् श्रवण मत करो। बहुरि कषायनिके उत्पन्न करने वाले क्रोधीनिके वचन, अभि-

मानीके मदके भरे वचन, मायाचारीनिके कुटिल वचन, लोभीनिके लालसा उपजावनेवाले वचन, मद्य, मांस, अभक्ष्यके स्वादकी प्रशंसा करनेवालेनिके वचन, मद्य, अमल, भांग, तमाखू, हुक्कानिकी प्रशंसा करनेवालेनिके वचन श्रवण मत करो। बहुरि धर्मके अभाव करनेवाले परलोकादिकके अभाव कहनेवाले नास्तिकनिके वाक्य पापबन्धके कारण मत श्रवण करो। बहुरि वृथा आरम्भ, विसंवादकूं छोडो। तथा माटी, कजोडी, कर्दम, कांटा, ठीकरा, मल, मूत्र, कफ, उच्छिष्ट, जल, अग्नि, दीपक इत्यादिक भूमिकूं देखे विना मत पटको, तथा शीघ्रतासूं पाषाण, काष्ठ, आसन, शय्या, पल्यंक, धातुका पात्र, चरवा, चरी, तबला, परात, चौकी, पाटा, वस्त्रादिकनिकूं जमीन ऊपरी घींसकरि रगडकरि, प्रमादतैं मत सरकाओ। यामें बहुत जीवनिकी हिंसा होय है। यत्नाचारका अभाव है तातैं देखि यत्नतैं उठावो, मेलो। बहुरि विना प्रयोजन भूमिका कुचरना, वृक्षकी डाहलीनिका मोडना, हरित तृणादिककूं छेदना, मर्दन करना, वृक्षनिके पत्र पुष्पादिकनिकूं चीरना-तोडना, वृथा जल पटकना, इत्यादिक पापतैं भयभीत होय मत करो। बहुत कहा कहिये गृहाचारमें जेता वस्तु, पात्र, अन्न, जलादिक हैं तिनकूं देखकरि धरो। जैसे धर्म नाहीं बिगडै है, उजाड बिगाड नाहीं होय तैसैं करो। प्रमाद छांडि भोजन, पान, औषधि, पकवानादिक नेत्रनितैं देखि-सोधि भक्षण करो, शीघ्रतासूं प्रमादी होय बिनासोध्या भोजन मत करो। गमनमें, आगमनमें, उठनेमें देखे विना, सोधे विना, प्रवर्त्तन मत करो। जातैं दया पलै अर अपना शरीरकै बाधा नाहीं होय, हानि नाहीं होय तथा प्रमादी होय हित-अहितका विचार किये विना, सुपात्र-कुपात्र का विचार-विना, किसीकूं वार्ता मत कहो। कहनेमें गुण-दोषका विचार करि कहो। अर कोई आपकूं पूछै तो शीघ्रतासे उत्तर मत द्यो। याही कहो मैं समझ करि विचार करि, आपकूं जबाब देस्यों। पाछै अवकाश पाय धर्म-अर्थ-कामसूं अविरुद्ध विचार-विनय-सहित उत्तर करो। शीघ्रतातैं उत्तर देनेमें उस कालमें क्रोध, मान, माया, लोभके वशतैं वचन निकसनेका ठिकाना नाहीं, कषायके उदयतैं योग्य-अयोग्य कहनेका विचार नाहीं रहै है। अन्यका वाक्य हू परिपूर्ण श्रवण करि लेवे तथा कहनेका समस्त अभिप्राय जाननेमें आजाय तदि उत्तर करना योग्य हैं। तातैं प्रमाद जो असावधानतातैं वचन मत कहो। एकान्तरूप हठग्राही पक्षपाती मत होहु। धर्म बिगड जायगा। तातैं दोऊ लोकके हितके अर्थी हो तो प्रमादचर्या नामा अनर्थदण्ड छोडो। ऐसैं पंच प्रकार अनर्थदण्डनिकूं समझ करि त्याग करै ताकैं अनर्थदण्डत्याग नामा व्रत होय है।

बहुरि अनर्थदण्डनिमें महाअनर्थकारी द्यूतक्रीडा है। जूवा समस्त व्यसननिमें प्रधान है, समस्त पापनिका स्थान है, महान् आपदाका कारण है, समस्त अनीतिनिमें महा अनीति है। याका परिणाम ही महादुष्ट है जो अपना समस्त घर सम्पदा जूवामें संकल्प करिकैं हू अन्यका धन लिया चाहै है। जुवारी के एता बडा लोभ है जो कोऊ प्रकार परका धन मेरे आजाय ऐसैं रात्रि-दिन चिंतवन करता रहै है। मेरा धन जाय तो जावो, अपयश होहु, मरण होहु, दरिद्रता होहु, कोऊ प्रकार परका धनमैं जीत ल्यूं तदि मेरा जीवितव्य सफल है। लोभकषायकी तीव्रता सो ही महाहिंसा है। जुवारीका महानिर्दयी परिणाम होय है। परका घात ही चिंतवन करै है। जो जुवामें धन हारि जाय तो चोरी करै, धन वास्ते मनुष्यनिकूं मारै ही, जुवारीनिके परस्पर महाक्लेश होय ही,

मारामारी होय ही, मायाचारी होय ही। जिनसूं महाप्रीति होय तिनसूं भी महाकपट अनेक छल करि धन ग्रहण कर्‍या ही चाहै। जुवा कपटका तो स्थान ही है। हजारां छल रचै है। अपनी स्त्रीनै जुवामें संकल्प कर दे, पुत्र पुत्रीनै कर दे, स्त्रीनै हार जाय, पुत्रीनै हार जाय, जुवारीनै देदे है। जुवारी दरिद्रीव्यसनीकूं पुत्री परिणाय दे है। जुवामें अपना मकान रहनेका बेच दे है। दावपर लगाय दे है। तथा पुत्रकूं बेच दे है। लक्ष धनका धनी एक क्षणमें समस्त धन हार दरिद्री हो जाय है तदि महा-आर्तध्यान, रौद्रध्यानतैं मरि दुर्गतिमें भ्रमण करै है। अर धन जीत ल्यावै तो मद उपजै है, कुमार्गमें ही जाका धन खर्च होय है। महा रौद्रध्यानके प्रभावतैं मरि महा कुयोनि पाय भ्रमण करै है। जुवारी मद्यपान, भङ्गपानादि करै है। वेश्यामें आसक्त होय जाय है। सुमार्गमें धन लगै नाहीं। जुवारीतैं न्यायरूप अन्य आजीविका नाहीं करी जाय है। जुवारीकी प्रतीति जाती रहै है। याकूं कोऊ धन नाहीं दीजै है। जुवारीके सत्य वचन कदाचित् नाहीं होय है। जुवारीकै शुभ परिणाम होय नाहीं। अपना पूर्वोपार्जित कर्मका दिया न्यायका धनमें संतोष कदाचित् आवै नाहीं। एकान्तमें एकाकीकूं मारि धन खोस ले जाय है। अपना घनां नातादार भाई होय ताकूं एकान्तमें मारि आभरणादि ले ही जाय है। जुवारीकी प्रतीति मूरख होय सो हू नाहीं करै है। परधनकी अति तीव्र तृष्णाकरि कुदेवनिकी बोलारी बोलैं है। मिथ्याधर्म सेवन करै है। संतोष, शील, निराकुलताकूं जलांजलि दे है। अति लोभके परिणामतैं विपरीत बुद्धि हो जाय है। परमार्थ जामें नाहीं हैं। धर्म को श्रद्धान् स्वप्नमें हू नाहीं होय है। समस्त पापनिका मूल जुवाकूं जानि दूरहीतैं त्याग करो। जुवारीकी बुद्धि कोट उपायकरि हू विपरीतता नाहीं छांडै है। परलोकमें दुर्गति ही पाय है। जुवारी तो तीव्रलोभकरि अपना आत्माकूं घात्या है।

बहुरि केतेक अज्ञानी जुवामें हार जीत धनकी तो नाहीं करैं; परन्तु मनुष्य जन्मकूं वृथा व्यतीत करनेका इच्छुक धन संकल्प कर तो जुवा नाहीं करै हैं। अर क्रीडाके निमित्त चौपड, शतरंज, गंजफा इत्यादिक अनेक अविद्या करै हैं। तिनके हारमें अर जीतमें रागद्वेषकी बडी तीव्रता है। हर्ष विषाद बहुत होय है। कपट बहुत करै हैं। पिता पुत्र हु परस्पर विसंवाद कलह करै ही हैं। परिणाम जीत हारमें तीव्रतानै प्राप्त होय है। या ऐसी अविद्या है, जो इस क्रीडामें रचै है ताका इस लोकसम्बन्धी सेवा-वनिज लिखना इत्यादिक समस्त कार्य विगडि जाय तो हू छांडि नाहीं सकै है। जाकै द्यूतक्रीडा है ताकै अन्य उद्यमांका अभाव होय है। दरिद्रता नजीक आवै है। हीन, नीच, मलीन जातिकें बराबर वैठ द्यूतक्रीडा करै है। यो नाहीं देखैं है, यो म्लेच्छ है। नाई, कलाल, धोबी, समस्त द्यूतक्रीडामें सामिल प्रत्यक्ष देखिये है। जिनकी महादुर्गंध आवै है, वस्त्रनिमेंतैं जुवा झड झड पडै हैं, निके बरोबर बैठ रमिये हैं। अन्य अधर्मनिका स्थानमें आप जाय बैठे है। मार्गमें खेलते देखकर खडा रह जाय। बैठनेकूं स्थान नाहीं होय, तो आप खडाखडा ही देखै है। ऐसा व्यसन है। खावना, पीवना, देन, लेन, सब छांडि खडा हुआ देखै है। सनियार, नीलगर, कमनीगर, बिसायती समस्त मांसभक्षी नीचकर्मीनिके सामिल खेल खेलै देखै है। बहुत कहा कहिये अपना सर्व कार्य बिगडि जाय, तथा माता पितादिकका मरण हो जाय, तो हू इस ख्यालमेंतैं उठ्या नाहीं जाय है। ऐसा तीव्र परिणामतैं नरक तिर्यंच बंध होय ही।

जामें धन कछु नाहीं आवै, बडा विसंवाद होय तिस क्रीडामें तीव्र राचनेतैं धनकी हारजीतवालेतैं तीव्र पापका बंध करै है। जाके धनकी हार-जीत होय सो तो अल्पकाल राचै है, याका परिणाम समस्त कालमें राचै है। इस व्यसनमें लागै है, ताकूं धर्मका नाम नाहीं सुहावै है, ताकै बुद्धि विपरीत होय पापक्रियामें, अन्यायमें, असत्यमें, विकथा ही में राचै है। देखहु यह मनुष्य जन्म अर उत्तम कुल अर निरोग शरीर उत्तम धर्म ए अनन्तकालमें नाहीं पाया, सो संयोग मिलि गया। याका एक घडी कोटी धनमें नाहीं मिलै ऐसा अवसर सिद्धांतनिका स्वाध्याय, जीवादिक द्रव्यनिकी चर्चा, अनित्यादिक द्वादश भावना, षोडशकारण भावना, पञ्च परमगुरुका नमस्कार, जाप, स्मरणादिककरि सफल करनेका था, तानैं चौपड, गञ्जफा, शतरञ्ज ये महा अविद्या में राचि समस्त धर्मतैं, धर्मके मार्गतैं पराङ्मुख होय महापाप उपजाय मर जाना यो फल ग्रहण करि तिर्यंच नरकादिकमें जाय उपजै है। बहुरि ऐसा जानना भगवानका परमागममें तो सप्त व्यसनका त्याग जाकै होयगा सो ही जिनधर्म ग्रहण करनेका पात्र होयगा। जाकै ए व्यसन ग्रहण हो जाय तिसकी बुद्धि ही विपरीत हो जाय है, पापकार्यनिमें प्रवीण हो जाय है, अनीतिमें तत्पर होजाय है। इस लोकका कार्य तो न्यायमार्गतैं अपने कुलके योग्य षट्कर्म करि आजीविका करना अर खान-पानादिक शरीरका संस्कार तथा न्यायरूप लेना देना धरना, जाना-आना, प्रयोजनरूप करना अर परलोकके अर्थि धर्मकार्यमें प्रवर्तन करना यही गृहस्थके दोय करने योग्य कार्य हैं। इन दोय कार्य बिना जो प्रवृत्ति सो ही व्यसन है। ते सप्त व्यसन हैं—द्यूतक्रीडा (१), मांस-भक्षण (२), मद्यपान (३), वेश्यासेवन (४), शिकार करना (५), चोरी करना (६), परस्त्रीसेवन करना (७) ये महाघोर पापबन्धके कारण सप्तव्यसन हैं। इन व्यसननिमें उलझना सहज है, छूटकरि सुलझना बडा कठिन है। इन व्यसननितैं पापबन्ध ही ऐसा होय है, जो बुद्धि ही विपर्ययमें होजाय है, निकसि नाहीं सकै है। यहां द्यूतव्यसन वर्णन किया, याहीमें होड लगावना है। अब दस-बीस बरसतैं अफीमके फाटकाको व्यौपार हू तीव्र तृष्णाकरि युक्त पुरुषके संतोषका बिगाडनेवाला प्रवर्त्या सो हू जुवा ही में गर्भित जानना। बहुरि मांस, मद्य, शिकार जैनीनिके कुलमें है ही नाहीं। ये लगे पीछैं महाव्यसन हैं; परन्तु आगै अभक्ष्यनिमें कहैंगे तथा बीध्या अन्नादिकनिका समस्त भोजन, अर चमडाका स्पर्श्या समस्त जल, घृत, तेल, रसादिक, रात्रि भोजन इत्यादिक समस्त अभक्ष्य मांसके दोष समान जानि त्यागै ही। बहुरि भांग, तमाखू, जर्दा, अफीम, हुक्का, ये समस्त पराधीन करनेतैं, अर ज्ञानके नष्ट करनेतैं, परमार्थरूप बुद्धिकूं नष्ट करनेतैं, मदिरा समान ही हैं। यातैं त्याग ही करना। बहुरि अन्य जीवनिकी दया नाहीं करके आजीविका बिगाड देना, धन लुटा देना, तीव्र दण्ड कराय देना सो समस्त शिकार ही है। अन्यका मान-भङ्ग कराय देना, स्थान छुडाय देना सो समस्त शिकारतैं अधिक-अधिक है। सो त्याग ही करना। बहुरि वेश्या-सेवन किया जाका समस्त आचार भोजन-पान भ्रष्ट है। वेश्याकूं चांडाल, भील, म्लेच्छ, मुसलमान इत्यादिक

समस्त सेवन करै हैं। जो वेश्या मांस मद्यका खानपान नित्य ही करै है, धनहीतैं जाके प्रीति है, ऐसी वेश्याकी मुखकी लाल पीवै है। जाति, कुल, आचार समस्त भ्रष्ट है। तातैं त्याग ही श्रेष्ठ है। वेश्याका संगम किया तिसके चोरी, जूवा, मद्यपानादिक समस्त व्यसन होय है। समस्त धनकी हानि होय है। धर्मतैं पराङ्मुखता हो जाय है। बुद्धि विपरीत हो जाय है। मायाचारमें, झूठमें, छलमें तत्परता होजाय है। निंद्य कर्मकी ग्लानि जाती रहै है। लज्जा नष्ट हो जाय है। वेश्याका देखनेमें हाव, विलास, विभ्रमादिक देखने चिंतवन करतैं अतिरागी होय कुलमर्यादा समस्त भंग करै है। वेश्यामें आसक्त हुआ पुरुष कफविषैं पडी मक्षिकाकी ज्यों आपकूं नाहीं छुडाय सकै है; महा अनीत है। बहुरि चोरपनाका महा व्यसन है। चोर आप भी निरन्तर भयरूप रहै है, अर चोरका अन्य जविानिकै बडा भय रहै है। माता कै भी चोरपुत्रका भय रहै है। चोर इस लोकमें आपकी समस्त प्रतिष्ठा बिगाडि महाकलङ्कित होय है। राजासूं तीव्र दण्ड पावै है। हस्त नाशिकादिक छेद्या जाय है। चोरका परिणाम संतोषरूप कदाचित् नाहीं होय है। चोरके योग्य–अयोग्य करने योग्यका विचार ही नाहीं रहै ह। यांहीतैं धर्मध्यान स्वाध्याय धर्मकथातैं पराङ्मुख रहै है। अर जिनशास्त्रनिका श्रवण-पठन करता हू अन्यके धन ऊपर चित्त चलावै है, सो ठग है। जगतके ठगनेकूं शास्त्ररूप शस्त्र ग्रहण किया है, तिसके धर्मकी श्रद्धा कदाचित् नाहीं जानना। जाके जिनधर्मकी प्रधानता होय है, ताकै चारित्रमोहका उदयतैं त्याग, व्रत, संयम नाहीं होय तो हू अन्यायके धनमें तो वांछा नाहीं चालै है। चोरीतैं दोऊ लोक भ्रष्ट होना जानि विना दिया परका धनमें वांछा मत करो। बहुरि पर-स्त्री को वांछा नाम व्यसन समस्त अनर्थनिमें प्रधान है। परस्त्रीलम्पटकै इसलोक परलोकमें जो घोरपाप· आपदा, अकीर्ति, अपयश, मरण, रोग, अपवाद, धनहानि, राजदण्ड, जगतका वैर, दुर्गतिगमन, मारन, ताडन, बन्दीगृहमें बन्धनादिक होय हैं। तिनकूं वचनद्वारे कौन कहनेकूं समर्थ है? ऐसें सप्तव्यसन दूरतैं ही त्यागो। इनके त्यागनेमें कुछ हानि नाहीं है। जानै सप्तव्यसन त्याग किया, सो आपका समस्त दुःख, अकीर्ति, नरकादिक कुगति, समस्त आपदाका निराकरण किया।

अब अनर्थदण्डव्रतके पंच अतिचार कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

कंदर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च। असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥८१॥

अर्थ—चारित्रमोहनीयका उदयतैं, रागभावकी अधिकतातैं, हास्यतैं, मिल्या हुआ भण्ड वचन बोलना, सो कंदर्प नाम अतीचार है (१) बहुरि तीव्ररागका उदयतैं हास्यरूप भंडवचन करि सहित जो कायकी खोटी चेष्टा, शरीरकी निंद्य क्रिया करना, सो कौत्कुच्य है (२) अर विना प्रयोजन बहुत सार-रहित बकवाद, सो मौखर्य कहिये है (३) अर प्रयोजन-रहित अधिकता करि मनवचनकायको प्रवर्तावना सो असमीक्ष्याधिकरण कहिये है। रागद्वेष करनेवाला काव्य, श्लोक, कवित्त, छन्द, गीतनिका, चिंतवन

सो मन-असमीक्ष्याधिकरण कहिये है। बहुरि पापकथाकरि अन्य के मनवचनकायकूं बिगाडनेवाली खोटी कथा कहना सो वचन असमीक्ष्याधिकरण है। बहुरि प्रयोजन विना गमन करना, उठना, बैठना, दौडना, पटकना, फेंकना तथा पत्र फल पुष्पादिकनिका छेदन, भेदन, विदारण, क्षेपणादिक करना तथा अग्नि विष क्षारादिकका देना, सो काय-असमीक्ष्याधिकरण नामका अतीचार है
(४) जेता भोग-उपभोगकरि प्रयोजन सधै, तातैं अधिक विना प्रयोजनका अतिसंग्रह करै, सो अतिप्रसाधन नाम अतीचार है।
(५) ऐसे अनर्थदण्डव्रतके पांच अतीचार कहे, ते त्यागने योग्य हैं।

अब भोगोपभोगपरिमाणव्रत अष्ट सूत्रनिकरि कहैं हैं—

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्। अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥ ८२ ॥

अर्थ—प्रयोजनवान हू पंच इन्द्रियनिके विषयनिका जो राग-भाव करिकैं आसक्ति ताकौं घटावनेके अर्थि जो परिमाण करना, सो भोगोपभोग परिमाण नामा व्रत है।

भावार्थ—संसारी जीवनिकैं इन्द्रियनिके विषयनिमें अतिराग वर्तै है। रागतैं व्रत, संयम, दया, क्षमादिक समस्त गुणनितैं पराङ्मुख होय रह्या है। यातैं अणुव्रतका धारक गृहस्थ है, सो हिंसा, असत्य, चोरी, परस्त्रीसेवन, अपरिमाणपरिग्रहतैं उपजी जो अन्यायके विषयनिमें प्रीति तिसका त्याग करकैं तो व्रती भया। अब न्यायके विषयनिकूं हू तीव्ररागके कारण जानि जाकै अति अरुचि भई होय, सो रागकी आसक्तता घटावनेके अर्थि अपने प्रयोजनवान हू इन्द्रियनिके विषयनिमें परिमाण करै, सो भोगोपभोगपरिमाण नामा गुणव्रत है। व्रतीनिकूं इन्द्रियनिके विषयनिमें निरर्गल प्रवृत्ति रोकि भोगोपभोगका परिमाण करना महान संवर का कारण है।

अब भोग तो कहा होय है अर उपभोग कहा, तिनका लक्षण कहनेकू सूत्र कहै हैं—

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः। उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पंचेंद्रियो विषयः ॥८३॥

अर्थ—जो एक वार भोग करिकैं फिर त्यागने योग्य होय, सो भोग है। बहुरि भोग करकैं फिर भोगने योग्य होय, सो उपभोग हैं। भोग तो भोजनादिक पंच इन्द्रियनिके विषय है अर उपभोग वस्त्रादिक पंच इन्द्रियनिके विषय हैं।

भावार्थ—जो एक बार ही भोगनेमें आवै, फिर भोगनेमें नाहीं आवै ते भोग हैं। अर जो बार-बार भोगनेके अर्थि आवैं ते उपभोग हैं। जैसैं भोजन नानारूप एक बार ही भोगनेमें आवै तथा कर्पूर चन्दनादिकका विलेपन तथा पुष्पमाला, अत्तर, फुलेल तथा मेला, कौतुक, इन्द्रजालादिक स्तवनके गीतके शब्दादिक एक बार ही भोगनेमें आवै हैं ते पंच इन्द्रियनिके विषय-भोग कहावैं

है। अर जैसैं वस्त्र, आभरण, स्त्री, सिंहासन, पर्यंक, महल, बाग, वादित्र, चित्राम, इत्यादिक बारंबार भोगनेमें आवै ते उपभोग हैं। भोगोपभोग दोऊनिका परिमाण केर ताकैं व्रत होय है।

अब जे परिमाण करने योग्य नाहीं, यावज्जीव त्याग करने योग्य हैं तिनके कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये। मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥

अथ—जिनेन्द्र भगवानके चरणनिका शरणकूं प्राप्त भये ऐसे सम्यग्दृष्टि हैं, तिननै त्रसनिकी हिंसाका परित्यागके अर्थि क्षौद्र जो मधु, अर पिशित कहिये मांस वर्जन करने योग्य है। अर प्रमाद जो हित-अहितमें असावधानी, ताका वर्जनके अर्थि मद्यका त्याग करना योग्य है।

भावार्थ—जे पुरुष जिनेन्द्रके चरणनिकी आज्ञाके श्रद्धानी हैं, ते त्रसजीवनिकी हिंसाका त्यागके अर्थि मधु अर मांसका त्याग ही करैं। अर प्रमाद जो अचेतपना ताका त्यागके अर्थि मदिराका त्याग करैं हीं। जाकै मधु, मांस, मद्य का त्याग नाहीं, सो जिन-आज्ञातैं पराङ्मुख है, जैनी नाहीं है।

बहुरि त्यागने योग्यनिकूं कहैं हैं—

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि। नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥८५॥
यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्। अभिसंधिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद् व्रतं भवति ॥८६॥

अर्थ—जिनके सेवनतैं फल जो अपना प्रयोजन सो तो अल्प सिद्ध होय अर जिनके भक्षणतैं घात अनन्त जीवनिका होय ऐसे मूल, कन्द, आदो-शृंगवेर इत्यादिक कन्दमूल अर नवनीत जो माखन, निंबका फूल, केवडा, केतकीका फूल इत्यादिक ज अनन्त काय ते त्यागने योग्य हैं। एक देहमें अनन्त जीव त अनन्तकाय हैं। जो आपके अनिष्ट होय, ताका व्रत करना-त्याग करना, अर जो सेवन योग्य नाहीं तो अनुपसेव्यनिका त्याग ही करना योग्य है। यद्यपि अनिष्ट अनुपसेव्यके सेवनका प्रयोजन नाहीं हैं, तो हू अपने अभिप्रायकरि योग्य विषयका हू त्याग, सो व्रत है। जातैं जाका फल तो एक जिह्वाका आस्वादनमात्र अर जाका एक बाल मात्र कणहूमें अनन्तानन्त बादरनिगोदजीवनिका घात होय, ऐसे कन्दमूलादिक अर निंबका पुष्प अर केतकी केवडा का पुष्प त्यागने योग्य है। तथा अन्यहू पुष्प प्रत्यक्ष त्रसजीवनिकरि भरे हैं, ते जिनधर्मीनि के त्यागने योग्य हैं। बहुरि जो वस्तु शुद्ध

---

१ प्रस्तावनामें इस विषयका खुलासा किया गया है।

हू है अर भक्षण करनेतैं अपना देहमें वेदना उपजावै, उदरशूलादिक उपजावनेवाला वात, पित्त, कफादिक दोष तथा रुधिरविकार उदरविकारादिककूं उत्पन्न करनेवाला भोजनादिक तथा अन्य हू दुःखके कारण इन्द्रियविषयनिका सेवन मत करो। जातैं जो अति तीव्र रागी, इन्द्रियनिका लम्पटी होयगा, सो ही अनिष्ट सेवन करेगा। जो अपना मरण हो जाना तथा तीव्रवेदना भोगना ऐसैं तीव्र दुःख हू कूं नाहीं गिणता भक्षण करै है, ताकैं ताकैं जिह्वाकी तीव्र विकलतातैं महापापका बन्ध होय है। अनेक मनुष्य भोजनके आस्वादनमें अनुराग करिकै अनिष्ट भोजनतैं रोग बधाय आर्तध्यानकरि दुर्गतिकूं जाय हैं। तातैं अनिष्टका त्यागही श्रेष्ठ है। बहुरि केती ही वस्तु अपने कुलकूं तथा व्यवहारकूं, धर्मकूं, मलीन करनेवाले हैं, ते सेवने योग्य नाहीं, ते अनुपसेव्य हैं। शंख, हस्तीका दांत, केश, मृगमद, गोलोचन इत्यादिकका स्पर्श्या हुआ भोजन जल सेवन योग्य नाहीं तथा ऊंटनीका तथा गधीका दुग्ध और गायका मूत्र तथा मल, मूत्र, कफ, लाल उच्छिष्ट भोजन ये सेवने योग्य नाहीं। तथा म्लेच्छ, भील, अस्पर्श्य शूद्रनिका स्पर्श किया हुआ भोजन तथा अशुद्धभूमिमें पड्या, चर्मका स्पर्श्या, मार्जार श्वानादिक करि तथा मांसभक्षी मद्यपायीनिकरि बनाया हुआ, स्पर्श किया हुआ समस्त भोजन लोकनिंद्य भोजन अनुपसेव्य है। जिनधर्मीनिके भक्षण करने योग्य नाहीं। बुद्धिकूं विपरीत करै है। मार्गतैं भ्रष्ट करने वाला, धर्मतैं भ्रष्ट करनेवाला है। इहां ऐसा विशेष जानना, श्रीराजवार्तिकमें हू पंचप्रकार भोग संख्या कही है तहां त्रसका घात जामें होय ॥ १ ॥ प्रमाद उपाजनेवाला होय ॥ २ ॥ बहुवध कहिये जामें अनन्त जीवनिका घात होय ॥ ३ ॥ अनिष्ट होय ॥ ४ ॥ अनुपसेव्य होय ॥ ५ ॥ ये पांचप्रकार त्यागने योग्य हैं, यावज्जीवन त्यागने योग्य हैं। अर जिसका यावज्जीव त्याग करनेकूं समर्थ नाहीं तो वाका त्याग कालको मर्यादाकरि करना। यहां केतीक वस्तुनिमें तो प्रगट त्रसनिका घात है अर केतीक वस्तुनिमें अनन्त जीवनिके संघट्ट इकठ्ठे होय घात होय है। बीधा अन्न है तामें ईलीं, घुन प्रगट हजारां फिरैं हैं। बीधे अन्न खानेवालेकैं अप्रमाण त्रसनिका घात होय है। जो गृहस्थ धान्यका संग्रह राखै हैं, ताकैं नित्य बीधा अन्नके भक्षणतैं महापाप प्रवर्तै हैं। याहीतैं पापतैं भयभीत जैनी होय, सो अबीधा अन्न खरीदै और दोय महीनाका खरचप्रमाण राखैं। दोय महीना भक्षण करि चुकै तदि और अबीधा अन्न देखि ग्रहण करै। थोडा संग्रहमें अच्छी तरह सोधनेमें आजाय, थोडाका जावता यत्नाचारतैं बनि सके। बीधता दीखै तदि बदलाय मंगावै। अन्य पांच जायगा अबीधा देखि लावै। बहुत धान्य होय तो देय सके नाहीं, फटकि सकै नाहीं, बदल्या जाय नाहीं, बहुत बीधा होजाय अर खावना पडै तदि नित्य छांणि-छांणि ईलि, लट, घुणनिकूं पात्र भर भर मार्गमें पटकै तहाँ मनुष्यनिके तथा पशूनिके पगतलैं खुंद जांय, मर जांय, पशु चर जाय। बहुरि धान्यमें जीव पडने लगैं हैं तदि दिन प्रति दूना, चौगुना, सौगुना, हजार गुना, छोटा बडा बधता चल्या जाय है अर समस्त घरकें मकाननिमें अर रसोईमें परींडा ऊपर, दीवारपर, चाकीपर फैलतैं खान, पानकी वस्तुनिमें, जमिनमें, छतनिमें लाखां कोट्यां जीव विचरने लग जांय हैं। तातैं लोभके वशतैं, प्रमादके वशतैं

प्रमादके वशतैं, अभिमानके वशतैं बहुत संग्रह मत करो। बहुरि मूंग, मोठ, उडद तथा अन्य हू फलादिक जिनके ऊपरि सुफेद फूली प्रगट होजाय, तामें त्रसजीव जानि भक्षण मत करो। बहुरि वर्षाकालके चार महीनेमें केतीक वस्तुका संग्रह मत राखो। नगर शहरमें बसनेका सुख तो ये ही है कि जिस अवसरमें चाहें तिस अवसरमें दस पांच दो चार दिनके खरचमें आवै तितनी दश पांच जायगामें आछी निर्दोष दीखै सो खरीदो। वर्षा ऋतुमें गुडमें, शक्करमें, खांडमें बहुत चींटीं, लट, सुलसुली पडैं हैं। तथा सूंठ, अजवायणि, इलायची, डौंडा, सुपारी बहुत बोध हैं। दाख, पिस्ता, चारोली, छिंवारा, खोपरा इत्यादिकनिमें परिमाणरहित लट, कीडा, इल्यां, बहुत हजारां लाखां उत्पन्न होय हैं। पुरवाई पवनका संयोगतैं ही गुडादिकमें परिमाणरहित जीव उपजै हैं। तथा मर्यादारहित वहू, लाडू, पेडा, घेवर, बरफी इत्यादिकनिमें बहुत जीव प्रगट लट उपजै हैं। बहुरि हलदी, धणां, जीरा, मिरच, अमचूर, कोथोडी इनमें वर्षाऋतुमें बहुत त्रसजीव उपजै हैं। तातैं अल्प संग्रह करो; नित्य देख सोधि प्रवर्तो। यो यत्नाचार ही धर्म है। चून शीतऋतुमें सात दिनका, ग्रीष्मऋतुमें पांच दिनका, वर्षाऋतुमें तीन दिनका सिवाय भक्षण मत करो, चूनका संग्रह मत करो। चूनमें बहुत लट पैदा होजाय हैं। दाल, चावल इत्यादिक जब रांधो तदि दोय तीन बार सोधि रांधो। बहुरि प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें ऐसा लिख्या है।

श्लोकार्ध—"सर्वाशनं च न ग्राह्यं दिनद्वययुतं नरैः" अर्थ—समस्त भोजन दोय दिनकरयुक्त नाहीं भक्षण करना। यातैं एक रात्रि गयां सिवाय दूजी रात्रि व्यतीत होजाय सो भक्षण योग्य नाहीं। यामें जलका संसर्गयुक्त पक्वान्नादिक हू आगये। बहुरि पुवा, मोलपुवा, सीरो इत्यादिक तथा बडा, कचोरी रात्रि वास्या को रस चलि जाय है। जातैं यामें जलका संसर्ग बहुत रहै है। बहुरि रोटी, खिचडी, तरकारी, लौंजी, रात्रिवासी तो भक्षण ही नाहीं करना अर स्वादसौं चलि जाय तो उस दिनमें भी भक्षण नाहीं करना। बहुरि रात्रिका बनाया समस्त भोजन भक्षण नाहीं करना। बहुरि दही पहिला दिनका जमाया दूजा दिन पर्यंत खावो, अधिक नाहीं। बहुरि दोय दालका अन्नकूं दही छाछके सामिल भक्षण मत करो। जो मिलायकर खावोगे, तो यामैं बिदलका दोष लगेगा। जीभ नीचे कण्ठमें उतरते ही संमूर्छन जीव उपजै हैं, याकूं बिदल कहिए हैं। वहुरि दुग्ध दूह्यां पाछैं छानि दोय घडी पहली तप्त करो, पाछैं सम्मूर्च्छन त्रसनिकी उत्पत्ति होय है। घृत हू छाछमेंसूं निकस्या पाछ शीघ्र ही तपाय छानि भक्षण करना योग्य है। ताया छान्या बिना मत भक्षण करो। बहूरि घृत, तेल, जल इत्यादिक रस चामका पात्रमें घाल्या हुआ भक्षण योग्य नाहीं। यामें असंख्यात त्रस जीव उपजै हैं। सींघडा (कुप्पा) बनै है, ते मांसकूं गाडि पाछैं कूटि माटीके सांचे ऊपरि बनावै है। इनका स्पर्श्या घृत, तेल, जल मांसके समान है। इनकी प्रवृत्ति[१] मुसलमानांका राज्य हुआ तदि मुसलमानां चलाई है। जो चामका विना स्पर्श्या घृतादि नाहीं मिलैं, तो रूक्ष भोजन करो। अर फागुन पीछैं तिलनिमें तथा सिंघाडेनिमें बहुत त्रस जीव उपजै हैं; यातैं फागुन पीछैं तेल अथवा सिंघाडा कदाचित मत भक्षण करो। बहुरि जलकूं गाढी दोहरा कपडासूं छाणिकरि पीवो, अन्यकूं छाणि-

---

[१] खुलासा प्रस्तावना में देख लीजिये।

करि प्यावो। छाणिकरि ही पशूनिकूं हू प्यावो। अणछाण्या जलतैं स्नान, भोजन, वस्त्रधोवन इत्यादि कोई भी क्रिया मत करो। जलमें यत्नाचार क्रियातैं दयावानपनाकी हद्द बनी रहै है। पात्रका मुखतैं तिगुना लांबा दोहरा वस्त्र नवीन होय तातैं छाणा अजवाण्या (बिलछन) अन्य पात्रमें करि जलके स्थानमें पहूंचावो जलमें यत्नाचारकी यही मर्यादा है। छान्या पाछैं दोय घडीकी मर्यादा है फिर काम पडैं, तो फिर छान करि वर्तौं। तप्त जल दोय पहर वर्तौं, बहुत उकलतो तप्त कियो हुवो आठ प्रहर वर्तौं, पाछैं निकाम है। बहुरि केतेक वस्तुनिकूं त्रसनिको घात जानि सर्वथा भक्षण मति करो। जैसैं—बोर लटांको प्रत्यक्ष स्थान है, भिंडीनिमें बहुत लट उपजैं हैं, बैंगण, तरबूज, कोहला, पेठा, जामुन, आडू, बडवाळा, गोल, अंजीर, कठूमर, ऊमर, फल, पीलू, आलू, जामफल, टींडू, अज्ञातफल, सूक्ष्मफल, बीजाफल, चलितरस तथा साराफल तथा पत्र, शाक, कन्दमूल, आदो, श्रृंगवेर, सलगम, प्याज, लहसन, गाजर, किशोरिया इत्यादिक तथा कचनार, महुआ, क्षीरवृक्ष का फल खिरनीकुं आदि लेय नीमका फल इत्यादिक अनेक फल हैं। केवडा, केतकी इत्यादिक फूल हैं। तिनका तो प्रगट दोष आगमतैं वा प्रत्यक्षतैं है ही; परन्तु परमागमतैं वनस्पतिका ऐसा स्वरूप जाननां-वनस्पति दोय प्रकार है। एक प्रत्येक, दूजी साधारण। प्रत्येक तो एक देहमें एक जीव है। अर देह एक जामें जीव अनन्तानन्त सो साधारण वनस्पति हैं। यातैं साधारण भक्षण करैं, तामें अनन्तानन्त जीवनिका घात जानि त्याग करना योग्य है। अब साधारण प्रत्येककी पहचानके ऐसे लक्षण जानने—जिस वनस्पतिमें लीक प्रगट नाहीं भई होय; रेखसी नाहीं दीखी होय, कली प्रगट नाहीं भई होय अर जामें पैली प्रगट नाहीं भई होय अर जाका तोडता ही समभङ्ग हो जाय वा कांटे फूटे नाहीं तथा जाके मापीतांतूं तूतडो प्रगट नाहीं भयो होय, सो साधारण वनस्पति है। यामें एक अणुमात्रमें अनन्तानन्त जीव हैं। अर जिस वनस्पतिमें धार तथा कला तथा रेखा तथा पैली प्रगट दीखै सो साधारण नाहीं, प्रत्येक वनस्पति है तथा जाकूं तोडिये टेढा बांका टूटै, सूधा शस्त्रसे बनारया जैसा साफ बरोबर नाहीं टूटै तथा जाकै माही तार तूतडा प्रगट हो गया होय, सो प्रत्येक वनस्पति है; परन्तु कोऊ वनस्पति पहली साधारण होय, वाही एक अन्तर्मुहूर्तमें प्रत्येक हो जाय है। कोऊ साधारण ही बनी रहै। पान, फूल, बीज, डाहली, कूंपल, इत्यादिक समस्त साधारण प्रत्येककी याही पिछाण जानना। पत्रमें समभंगादिक होय तो पत्र साधारण है। अन्य समस्त वृक्ष साधारण नाहीं। बीज-कूंपल समभंगसहित होय, रेखादिक प्रगट नाहीं होय; तेते बीज, कूंपल साधारण हैं; अन्य साधारण नाहीं। ऐसैं इस वनस्पतिमें कोऊ साधारण मिल जाय, कोऊ प्रत्येक हो जाय इत्यादिक दोषरूप तथा वनस्पतिमें अनेक त्रसजीवनिका संसर्ग उत्पत्ति जानि जे जिनेंद्रधर्म धारण करि पापिनितैं भयभीत हैं, ते समस्त ही, हरितकायका त्याग करो, जिह्वा इन्द्रियकूं वश करो। अर जिनका समस्त हरितकायके त्याग करनेका सामर्थ्य नाहीं है, ते कंदमूलादिक अनंतकायका

१—प्रस्तावना में इस बातका खुलासा किया गया है।

तो यावज्जीव त्याग करो। अर जे पंच उदंबरादिक प्रगट त्रस जीवनिकर भऱ्या है, ऐसा फल, पुष्प, शाक, पत्रादिकनिकूं छांडि करिकै त्रसघातकरि रहित दीखै ऐसी तरकारी फलादिक दश वीसकूं अपने परिणामनिके योग्य जानि नियम करो। इन सिवाय अठाईस लाख कोड कुल वनस्पतिकाय हैं। तिनका तो त्यागकरि भार उतारो। हरितकाय प्रमाणीकका नियम करै, ताकैं कोट्यां अभक्ष्य टलै। तिसमें पत्रजात भक्षण योग्य नाहीं। त्रसकी उत्पत्ति टालि अन्य बहुत घटाय नियम करो। विना घटाय निरर्गल रह्यां असंयमीपना होय, आस्रव होय है। तातैं हरितकायका भक्षणमें नियम व्रत करना योग्य है। बहुरि जिस भोजन ऊपरि ऊलण आजाय, ऊपर फूल सा नीला, हरा, लाल आजाय, सो भोजन मत करो। यामें अनन्तजीवनिका घात है। यातैं जिसके ऊपर फूली आजाय, सो दूरतैं ही त्यागो। बहुरि मोहके कारण प्रमादके उपजावनेवाले, ज्ञानकूं विगाडनेवाले, जिव्हाइन्द्रिय अर उपस्थइन्द्रिय कूं विकल करनेवाली ऐसी भांग, तमाखू, छोंतरा, अमल, हुक्का, जरदा इत्यादिक अभक्ष्यनिका खावना-पीवना जिनधर्मीनिकैं त्यागने योग्य है। ये अमल पराधीन करै हैं। इनमें अफीमका भक्षण करनेवालेकूं एक घडी अफीम नाहीं होय, तो जमीनमें बेहोश होय पडी जाय है। वेदनाका आर्त्तपरिणामतैं पशु ज्यों पग जमीनमें पड्या पड्या रगडै है। निर्लज्ज हुआ याचना करै है। नेत्रनितैं नीर पडै है। और अफीम मिली जाय तदि अमलमें आया भूला हुआ ऊंगवो करै है, जिव्हा इन्द्रियकी लोलुपता वधि जाय है, स्वाध्याय, धर्मश्रवण, व्रत, संयम, उपवासादिकनिकूं दूरहीतैं त्यागै है। बुद्धि धर्मतैं पराङ्मुख हो जाय है। उत्तम आचार नष्ट हो जाय है। बहुरि हुक्काकी महामलीनता दुर्गंध तमाखू और धुवांका योगतैं पानीमें जीवनिकी उत्पत्ति होय है। जहां हुक्काका जल पडे, तहां छहकायके जीवनिका घात होय है। अर याकी दुर्गंधतैं उत्तम आचारके धारक नजीक बैठ नाहीं सकै हैं अर बारम्बार घरघरमें अग्नि हेरतो फिरै है। घरमें राखको ठिकरो धऱ्योही रहै है। नीचकुलवाले नीचजननिके पीवने योग्य है। हुक्का पीवनेवालेकूं गाडीवान, घोडाका चाकर, मीणा, गूजर, मुसलमान इत्यादिकनिकी संगति रुचै है। उत्तम कुलवालेनिके योग्य नाहीं हैं। अर हुक्का नाहीं मिलै तो नाई, धोबी, गूजर, मीणा, तेली, तमोली, मुसलमाननिकी चिलम याचना करि पीवै है। अर नाहीं पीवै तो बडा रोग पैदा होजाय। उदरमें आफरो चढि जाय। नीहार बन्द हो जाय। महान दुःख गले बाँध्या है। तातैं व्रत, संयम, उपवास, स्वाध्यायादिक समस्त उत्तम कार्यनिकूं तिलांजलि दे है। बहुरि जरदा महा अशुचि द्रव्य है। याकूं मुखमें राखि मलमूत्र मोचन करै है। रास्तामें, मार्गमें मलमूत्रादिक ऊपरि पग रखी पहरे जरदा खाय है। मांसभक्षी मद्यपायीनिका तथा नीच जातिका घरका पानी मिल्या कत्था चूना खाय है। नीच जाति अपना हस्तादिक विना धोये अंग खुजावते जरदा मसल दे है। उच्छिष्टकी ग्लानि नाहीं करै है। समस्त शय्या, आसन, खूणा, बारी समस्त जायगां उच्छिष्टसूं लिप्त करि देय है। पशु हू रस्ते चालता सोता मुख नाहीं चलावै है। याकै पशुतैं हू अधिक विकलता है। मुखमें महादुर्गंध रहै है। जरदाका पीकां जहां पडै तहां माछी, माछर, डांस, मकडी, कीडा, कीडी, बडा बडा त्रस ही मरि जाय। तहां पंचस्थावरनिका घात होय ही। व्रत, संयम, स्वाध्याय, जाप्य, शुभ भावनाका नाश होय है। जरदा खानेवालेनिकी बुद्धि आत्माके हितमें प्रवर्तन नाहीं करै है। संयमके योग्य नाहीं

होय है। तामें दया, क्षमा, शील, सन्तोष, इन्द्रियविजय परिणाम कदाचित् नाहीं प्रवर्तैं हैं। अनेक पापाचार कपट छलमें बुद्धि प्रवीण होजाय है। अनेक व्यसनिनमें प्रवृत्ति होजाय है। जरदा खानेवालेके मांगनेकी लाज नाहीं रहै। समस्त नीच जातिसूं भी मांगीकरि खाय है। मद्य, मांस खानेवाले जिसकाल मद्य पीवै हुक्का पीवै है उसका हस्ततैं दीया जरदा, बीडी मांगि मांगि खाय है। जरदा खानेवाले बहुत मनुष्यनिकूं नीकेकरि देखिए है। एककै हू परमार्थ में बुद्धि-परलोक शुद्ध करनेकी बुद्धि नाहीं होय है। इस जरदेके प्रभावकरि हीन आचारकी वृद्धि होय, तदि परमार्थतैं बुद्धि भ्रष्ट होय लौकिकजनमें, व्यभिचारमें, लोभमें प्रबल होय है। सांचा धर्म याकै नाहीं होय है। ऐसा आपका परिणाममें आप अनुभव करो। अर परका जरदा खानेका स्वरूप प्रत्यक्ष देखि जरदा खानेका त्याग करो। अर जरदा एक दिन हू नाहीं खाय, तो परिणाममें उपाधि, उदरमें व्याधि, अनेक रोग व्याधि उपजावै है। तातैं जरदा खाना महारोगकूं, महाव्याधिकूं, सूगलापनाकूं अंगीकार करना है। बहुरि भांग पीवना हू अपना बडापना, शोभितपना नष्ट कर दे है। भंगेराका दरजा घटि जाय है। भंगेराके जिह्वा इन्द्रियनिकी लंपटता बधि जाय है। विकलीपना होइ जाय है। प्रमादी हुआ ऐश करना, बहुत निद्रा लेना, बहुत घृत खांडका भोजन करना चाहै है। पाचों इन्द्रियां विषयाँकी लंपटतानै प्राप्त होजाय हैं। ज्ञान शिथिल होजांय है। बैमी होजाय है। भांग पीवनेवालेके मीठा भोजनमें ऐसी लंपटता होजाय है जो मीठा मिलै कृतकृत्य होजाय है। आत्मज्ञान, धर्मका ज्ञान कदाचित् नाहीं होय है। बाह्य आचरण भ्रष्ट होय ही है। अर भांगमें हजारां त्रसजीव चालता दौडता उपजै है। वर्षाऋतु में भांगमें अपरिमाण त्रसजीव उपजै हैं। भंगेरा भांग सोधै नाहीं, घोटिकरि पीजाय है। ऐसैं हू अफीम खाना, जरदा खाना, हुक्का पीवना, भांग पीवना अर और हू छोंतरा पीवना, तमाखू सूंघना ये देहके तो महारोग ही हैं। अमल करनेवालेकी आकृति विगडि जाय है धर्म विगडि जाय ऐसा नियम है। ये नसा सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका हू महाघातक है। ये अमल अनर्थदंडनिमें हू हैं, अर व्यसननिमें हू हैं। यातैं मनुष्य जन्म अर जिनधर्म उत्तम कुलादिक पायाकूं सफल किया चाहो हो, तो अमल नसा करनेका त्याग ही करो।

बहुरि रात्रिके अवसरमें भोजन करना त्यागने योग्य ही है। रात्रि-भोजन करै ताकै यत्नाचार तो रहै ही नाहीं अर जीवनिकी हिंसा होय ही। रात्रिविषै कीडी, मांछर, मांखी, मकडी, कसारी, अनेक जीव आय पडै हैं। अर दीपक जोव भोजन करै तो दीपकके संयोगतैं दूर-दूरके जीव दीपक कने शीघ्र आय भोजनमें पड हैं। अर रात्रिभोजन जिनधर्मी होय करै तो आगानै मार्ग-भ्रष्ट होजाय अर रात्रिमें चूल्हा, चाकी, परींडाका आरम्भ करना, मेलना, धोवना, मांजना ये घोरकर्म प्रगट होजांय तदि महान हिंसा अर महान दुःख प्रगट होजांय; तदि घोर आरम्भीके जिनधर्मका लेश हू नाहीं रहै है। बहुरि कोऊ कहै जो आरम्भ तो नाहीं करै, सीधा भोजन लाडू, पेडा, पूडी, पूवा, बरफी, दुग्धादिक भक्षण करनेमें रात्रि-आरम्भ नाहीं भया, ताकूं

ऐसा समझना जो दिवस कूं छांडि रात्रि भोजन करै, ताकैं तीव्ररागरूप महान हिंसा होय है; जैसैं अन्नके ग्रासका अनुराग अर मांसके ग्रासका अनुराग समान नाहीं होय है, तैसैं रात्रि भोजनका अनुराग है। सो दिनके भोजनका अनुरागके समान नाहीं है। दिवसमें ही भोजन बहुत है। रात्रि दिवस दोऊनिमें भोजन करैं, ताकैं ढोरसमान संवररहित प्रवृत्ति रही तथा रात्रिभोजन करनेवालेके व्रत, तप नाही होय है। ऐसा विशेष जानना जो अनादिकालतैं विदेहनिमें एक बार वा दोय बार ही भोजन है; रात्रि में कदाचित् हू भोजन नाहीं। जो रात्रि भोजन करैं तो चूल्हा, चाकी, बुवारी, जलादिकका समस्त आरम्भ रात्रिमें हो जाय, तदि भोजन करनेमें, तरकारी बनावनेमें तथा पुरुषनिके भोजन करनेमें, स्त्रीनिके कुटुम्ब सेवकादिकनिके भोजन करनेमें धोयवेमें, बुहारिवेमें, मांजनेमें दोय पहर रात्रि व्यतीत हो जाय है, अनेक जीवनिका संहार होजाय, समस्त यत्नाचारका अभाव होय जाय अर कीडा, कीडी, कसारी, मकडी इत्यादिक बडे बडे जीवनिका भोजनमें पतन तथा ईंधनमें, चूल्हामें, तरकारीमें, जलमें, पात्रनिमें पतन होय है अर दीपकादिक तथा चूल्हाका निमित्तकरि माखी, मच्छर, डांस, पतंगादिक अनेक जीवनिका नित्यप्रति होम हो जाय। अर दिनमें भी आरम्भ अर रात्रिमें हू घोर आरम्भ करि समस्त कुटुम्बजननिके महादुःख पैदा होजाय। रात्रिमें घोर धन्धातैं समता नाहीं आसके, तामें धर्मसेवन तथा शास्त्रका पठन, श्रवण, तत्वार्थकी चर्चा, सामायिक, जाप्य, शुभध्यानका तो अवसर ही रात्रिभोजन करनेवाले के नाहीं रहै है। यातैं जिनेन्द्रधर्मके धारक रात्रिभोजन कदाचित् हू नाहीं करै है। ऐसी सनातनरीति अब ताईं चली आवै है। अर जिनधर्मी रात्रि भोजन नाहीं करै हैं। ऐसैं कोट्यां मनुष्यनिमें प्रसिद्धता अर उज्ज्वलता अर प्रभावना अर उच्चता अर भोजनकी शुद्धताकूं बिगाड कोऊ, विषयनिकरि प्रमादी अन्ध भया रात्रिमें दुग्ध, कलाकन्द, पेडा खाय है तथा औषधि जलादिक पीवे है, सो अपने उत्तम आचार धर्मनै अर कुल मर्यादानै अर जैनीपनानै जलांजलि देय सन्मार्गतैं भ्रष्ट हुआ उन्मार्गी है। उनका मार्ग तो बाह्य अभ्यन्तर भ्रष्ट है अर आगांनै अधर्मकी परिपाटी चलावै है। बहुरि रात्रिका किया भोजन दिनमें हू भक्षण करना योग्य नाहीं है। बहुरि मिथ्याधर्मके धारकनिकैं, मांसभक्षीनिकै संग बैठि भोजन मत करो। नीचजातिकेसूं मित्रता मति करो। देवताके चढ्या भोजन मत भक्षण करो। दांतका चूडा, रोमका वस्त्र, कामली पहिर भोजन बनावै तो भक्षण योग्य नाहीं। मांसभक्षीनिके घरमें भोजन नाहीं करना। नीचजातीके घरमें भोजन नाहीं करना। बहुरि अत्तारनिका अर्क तथा माजूम तथा शरबत अन्य हू समस्त वस्तु भक्षण करना योग्य नाहीं। अत्तारके विलायतका बण्या म्लेच्छानिके जलकर बनाया उच्छिष्ट अर्कनिकी भरी हुई बोतलां आवै हैं। अर समस्त वस्तु अज्ञात हैं। अर अर्कादिकनिमें अनेक जलचर, थलचर, नभचर, पंचेन्द्रियादिक जीवनिके मांसके कई अर्क हैं। अर बहुत जातिकी मदिरा बनाय अर्क संज्ञा करै है। बहुत जीवनिके अण्डानिका रसका बोतलां भरी है अर मधु जो शहद सो समस्त शरबत, मुरब्बा, माजूम, जवारसादिकनिमें है अर अनेक जीवनिका अनेक अङ्ग इन्द्रियां, जिह्वा, कलेजा, इत्यादिक शुष्क हुआ मांसनिकूं अत्तार बेचैं है। यहांके समस्त उत्तमकुलानिकी बुद्धि भ्रष्ट करनेकूं मुसलमान लोक अपनी उच्छिष्ट भक्षण करवानेकूं, समस्त हिन्दुस्तानके लोकानिकूं भ्रष्ट करनेकूं अत्तारानिकी दुकानां

करवाई हैं। करोड कसायीनिकी दुकान समान एक अत्तारकी दुकान है। यहां इस देशमें राजालोग हिन्दूधर्मकी रक्षावास्ते अठारासै बाईसका संवत् तांई तो अत्तारका बसना, दुकान करना नाहीं होने दिया। फिर कालके निमित्ततैं पापकी प्रवृत्ति फैली ही। अब उत्तम कुलवाले हू इनका अर्कादिक खावने लगे हैं। सो मुसलमाननिका झूंठन और मांस-मदिरादिक भक्षण करने लगे तदि ब्राह्मणपना, महाजनपना, वैश्यपना कहां रह्या, सब कुलभ्रष्ट भये। अर अभक्ष्य भक्षण करनेहीतैं सत्यार्थधर्मतैं रहित, लोकनिकी बुद्धि होगई है अर अत्तारनि की औषधिहीतैं रोग मिटै है ऐसा नियम नाहीं। अत्तारनिका अर्क पीवा करि धर्मभ्रष्ट होय बहुत लोक मरते देखिये हैं। जिनके दुर्गतिका बन्ध होगया है, तिनके ही इनकी भ्रष्ट औषधिसे आराम होय है। जैसैं राजा अरबिन्दके दाहज्वरका अनेक इलाज किया तो हू दाहज्वर शांत नाहीं भया अर पाछैं अपना महलकी छाति ऊपर लडते विसमरानिका शरीरतैं रुधिरका बून्द अपने शरीर ऊपरि पडा, तातैं शीतलता भई तदि पापी पुत्रनिसूं कही मोकूं रुधिरकी बावडी भराय द्यो जो मैं वामें क्रीडा करि आतापरहित हो हूं। तब पुत्र पापतैं भयभीत होय लाखका रङ्गकी बावडी भराई तदि राजा बावडीकूं देखि बडा आनन्द मानि बावडीमें गर्क होय अर कपटके लोहेकी बावडी जानि पुत्र ऊपर क्रोधित होय पुत्रकूं मारनेंकूं छुरी लेय दोड्या, सो मार्गमें पडि अपना हाथकी छुरीतैं आप मरि नरक जाय पहुंच्या। ऐसैं ही जिनकी दुर्गति होनी है तिनकै अत्तारनिकी औषधिसूं आराम होय है तदि उनके पापरूप अत्तारी वस्तुनिमें प्रवृति होय है। यातैं प्राणनिका नाश होते हू छह महीनेके बालक हूकूं अत्तारकी औषधि देना योग्य नाहीं। धर्म बिगड्यां पाछैं यो जिनधर्म अनन्तकालमें हू नाहीं मिलेगा। तातैं जैनधर्मके धारकनिकूं हजारां खण्ड होजाय तो हू अभक्ष्यभक्षण नाहीं करना। बहुरि बजारकी दुकाननिका चून कदाचित् मति भक्षण करो। बेचनेवालेनिकैं समस्त चमारी, खटीकनी, ओर मुसलमानिनी, धोबिन इत्यादिक तो पीसै हैं। मुसलमान, धोबी, बलाईनिके राजाका तबेला तोपखानानितैं चून मिलै, सो बजारवाले मोल लेय लेवे हैं अर महीनाका, छह महीना का पीस्याको प्रमाण नाहीं; हजारां सुलसुल्यां पडि जाय हैं। घणा जणा बीधो नाज लेय मोदी लोग पिसावै हैं अर मुसलमान, म्लेच्छ, समस्त उसहीमें हस्त घालि तुला ले जाय हैं। मुसलमानांकै नुकता विवाहमें काम नाहीं आवै सो आधा ओसाणि आधो फेर जाय हैं। बहुरि सरायका दुकानदारां का पीतलका, कांसीका, लोहेका, पात्र भोजन करनेकूं लेना योग्य नाहीं। समस्त मांसभक्षी दुराचारीनिकूं भी वे ही पात्र दे हैं। तातैं अपना आचारकी उज्वलता चाहै हैं सो तीन-चार पात्र अपने निकट राखि विदेशमें गमन करै हैं अर जहां जाय तहां दमडी बधती देय चून तयार कराय भक्षण करै। चूनकी नाहीं विधि मिलै, तो खिचडी तथा घूघरी रांधि खाय। बहुरि बजारकी मिठाई, लाडू, बरफी, घेवरादिक मत भक्षण करो। इनका चूनका, घृतका, जलका कुछ परिणाम नाहीं है। लोभी निंद्यकर्मीनिकै आचार नाहीं होय है। बहुरि मैदाका खमीरा वाडिफरि सडावै है। खट्टा पडते ही जामें अनन्तानन्त जीव पडै है। पाछै कढाईमें पकै हैं, भुनै हैं सो जलेवी करैं हैं। साबूनी करै हैं सो भक्षण करने योग्य नाहीं। तथा दहीमें खांड बूरा मिलाय बहुत काल पर्यंत मति राखो। दोय महूरततांई खाना योग्य है। __अपना मित्र, भाई पुत्रादिकके सामिल एक

पात्रमें भोजन करना योग्य नाहीं। मनुष्य, कूकरा, बिलाई इत्यादिकनिका उच्छिष्ट भोजन त्यागना योग्य है। तथा गाय, भैंस, गधा, इत्यादिक तिर्यंचनिका उच्छिष्ट जलादिकमें स्नान मति करो; पान तो कदाचित् हू मत करो। तथा अन्नका, खांडका लापसीका बनाया मनुष्य तिर्यंचनिका आकार ताकूं मत भक्षण करो। तथा देवी, दिहाडी, व्यन्तरादिकनिकी पूजाके वास्तै संकल्प किया भोजन त्यागने योग्य है। तथा मांसभक्षीनिका भाजनमें भोजन मत भक्षण करो। भोजन मांसभक्षी को मांग्या मत द्यो। नाइका भाजनका जलसों छौर मत करावो। रजस्वलाका स्पर्श किया पात्र भोजन योग्य नाहीं। बहुरि अनुपसेव्य जानि विकाररूप वस्त्र आभरण मत पहरो। जो उत्तम कुलके योग्य नाहीं ऐसा नीच कुलनिके पहरनेके, वेश्या तथा विटपुरुषनिके पहरनेके तथा म्लेच्छ मुसलमाननिके पहरनेके तथा स्वामी, योगी, फकीर, भांडनिके पहरनेके वस्त्र आभरण परिणाम बिगाडे हैं। अपने तथा परके विकार उपजानेवाला तथा अपना पदस्थके योग्य लोकतैं अविरुद्ध ऐसा आभरण वस्त्र भेष धारना योग्य है। बहुरि कहनेकरि कहा, संक्षेपतैं जानना। जो समस्त संसारपरिभ्रमणके कारण पंचइन्द्रियनिका विषयनिमें लालसा है, तिन इन्द्रियनिमें हू जिह्वाइन्द्रिय अर उपस्थ इन्द्रिय दोय इन्द्रियनिकी लालसा इसलोक परलोक दोऊंनिकूं बिगाड देनेवाली है। इन दोय इन्द्रियनिके विषयकी लोलुपता जिनके अधिक है, ते मनुष्यजन्ममें हू पशुके समान हैं। पशुयोनिमें हू इन दोऊ इन्द्रियां का विषयकी चाहकरि परस्पर लडि लडि मरजाय है अर मनुष्यजन्ममें हू कलह करना, मारना, मरना, निर्लज्ज होना, उच्छिष्ट खावना, दीनता भाषणा, पुण्यदान लेना, अभक्ष्य भक्षण करना, इत्यादिक समस्त नीचकर्मनिमें प्रवृत्ति रसनाइन्द्रियके विषयनिकी लालसातैं ही होय है। अर देखहु भोगभूमिके अर देवलोकके नानाप्रकारके भोगनितैं हू तृप्तता नाहीं भई, अब ये किंचित् जिह्वाका स्पर्शमात्राका स्वाद अति अल्पकालमें है भोजन गिल्यां पाछैं नाहीं अर पहली नाहीं ऐसा तृष्णाका बधावनेवाला आहारमें लुब्धताका त्याग करि समस्त इन्द्रियांको विजय करि, रस नीरसकी कर्म जैसी विधि मिलाई, तिसमें सन्तोष धरि, अभक्ष्यनिका त्याग करि, देहका धारणमात्रके अर्थि भोजन करै है, सो समस्त पापरहित होय देवलोकका पात्र होय है। अब यहां ऐसा जानना। जो भोगोपभोग परिणाम करै सो अपना परणामनिकी दृढता देखै जो मेरे एता घस्या है एता हाल नाहीं घस्या है। अर सामर्थ्य देखै जो ऐसा योग्य बनैगा तो मेरा देहका तथा परिणामका इसकूं निर्वाह करनेका सामर्थ्य है कि नाहीं है ऐसा विचार करि व्रत धारण करना। अर देशकी रीति निर्वाहयोग्य देखनी, अर कालकूं अवसरकूं देखना, अवस्था देखना, अपना कोऊ सहायी है कि त्यागव्रतके बिगाडनेवाला है ऐसा हू विचार करना, शरीरका रोगरहितपना (नीरोगपना) देखना, भोजनादिक मिलनेका, नाहीं मिलनेका संयोग देखना तथा भोजनादिक मेरे आधीन है कि पराधीन है ऐसे त्यागव्रततैं हमारे तथा स्त्री, पुत्र, स्वामी इत्यादिकनिके परिणाममें संक्लेश होयगा कि संक्लेश नाहीं होयगा अपना स्वाधीनपना पराधीनपना जानि जैसैं परिणामनिकी उज्वलता सहित व्रतका निर्वाह होय तैसैं नियमरूप त्याग करो। तथा यम कहिये यावज्जीव त्याग करो। केतेक तो यावज्जीव ही त्यागने योग्य हैं—जामें प्रगट त्रसनिका घात होय तथा अनन्त जीवनिका घात होय, अपने कुलमें सेवने योग्य नाहीं

होय तथा मद करनेवाला होय तथा मांस, मद्य, माखन, मदिरा, अचार, महाविकृति अर रात्रिविषै भोजन द्यूतक्रीडादिक सप्तव्यसन, बिना दिया परधनका ग्रहण अर त्रसहिंसा अर स्थूल असत्य, अन्यायका परिग्रह, बिना छान्या जल, अनर्थदण्ड ये तो यावज्जीव ही त्यागने योग्य हैं। इनमें नियम कहा करिये। ये तो महा अनीति हैं। इनके त्याग करनेमें शरीर ऊपरि कुछ क्लेश भार दुःख नाहीं आवै, अपयश नाहीं होय है। इनका त्यागमें धन चाहिये नाहीं, बल चाहिये नाहीं, स्वामीका तथा स्त्रीका पुत्र कुटुम्बादिकनिका सहाय चाहिये नाहीं, किसीकूं पूछनेका वाकिफ करनेका हू काम नाहीं। अपने परिणामके ही आधीन है। कोऊप्रकार इनका त्यागमें शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषादिककी बाधा पीडा भोगना पडै नाहीं; स्वाधीन है। परिणामनिमें, देहमें, सुख करनेवाला हैं। यातैं दुर्लभ सामग्री भोगोपभोगका परिमाण करना श्रेष्ठ है। बहुरि कदाचित् प्रबलकर्मके उदयतैं यो मनुष्य कुदेशमें पराधीनतामें जाय पडै, प्रबलरोगतैं पराधीन होजाय तथा प्रबल जराके आवनेतैं उठने बैठने चालनेकी सामर्थ्य घटि जाय तथा कोऊ स्त्री पुत्रादिक सहायी नाहीं होय तथा नेत्रनिकरि अंध होजाय बधिर होजाय तथा लम्बा रोग आजाय तथा बन्दीखानामें दुष्ट म्लेच्छादिक अपना भोजन जलादिक बिगडि दें तथा जबरीतैं समस्तके सामिल बैठाय खान-पान करावै ऐसा ऐसा उपद्रव आजाय तो तहां अन्तरंगमें तो व्रतसंयमकूं छांडे नाहीं बाहिर श्रीपंचनमोकार मन्त्र को ध्यान करि ही शुद्ध है, क्योंकि बाह्य देहादिक पवित्र होहु वा अपवित्र होहु मलमूत्र रुधिरादिककरि लिप्त होहु समस्त कुत्सित ग्लानियोग्य अवस्थाकूं प्राप्त हुआ जो पुरुष परमात्माकूं स्मरण करै है सो बाह्य हू पवित्र है। अर अभ्यन्तर हू जातैं देह तो सप्तधातुमय मलमूत्रादिकी भरी हुई अर रोगनिका स्थान है। एक क्षणमें समस्त शरीरमें कोढ झरने लगि जाय है, हजारां फोडा, फुनसी, गूमडी, लोहू, राध, स्रवणे लगि जाय, मलमूत्र अशुद्धिपूर्वक स्रवणे लगि जाय है ऐसा अवसरमें बाह्य व्यवहार शुद्धता कैसैं होय? अर निर्धन एकाकीका सहायक कौन होय? तहां धर्मात्मा पुरुष अशुभकर्मका उदयमें ग्लानि त्याग करके, धीरता धारण करि; आर्त्त परिणाम करि संक्लेश नाहीं करै है। अशुभकर्मके उदयकूं निर्जरा मानता अतरङ्ग वितरागताकरि संसार, देह, भोगनिका स्वरूप चिन्तवन करता। बारह भावना भावता, कर्मके उदयतैं अपना आत्मस्वरूपकूं भिन्न ज्ञांता, दृष्टा, शुद्ध, चिंतवन करता वीतरागताकरि ही राग, द्वेष, हर्ष, विषाद, ग्लानि, भय, लोभ, ममतारूप आत्माके मलकूं धोय आपकूं शुद्ध मानै है। ताकैं समस्त शुद्धता होय है।

अब भोगोपभोगपरिमाण व्रतकै दोय प्रकारता कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारे। नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥८७॥

अर्थ—भगवान हैं सो भोग अर उपभोगका घटावनेतैं नियम अर यम ऐसैं दोय प्रकार भोगोपभोग परिमाण व्रत कह्या हैं। तिनमें कालका परिणामकरि त्याग करना सो नियम कह्या है अर इस देहमें जीवन है तितने तक तो त्याग करि रहना सो यम कह्या है।

भावार्थ—जो एकबार भोगनेमें आवैं ऐसे आहारादिक तो भोग हैं अर जें बारम्बार भोगनेमें आवैं ऐसे वस्त्र आभरणादिक उपभोग हैं। इन भोग-उपभोगनिका परिमाण यम नियम करि दोय प्रकार है। तिनमें जिस भोग उपभोगका एक मुहूर्त तथा दोय मुहूर्त तथा पहर तथा दोय पहर, एक दिवस, दोय दिवस, पांच दिन, पन्द्रह दिन, एक मास, दोय मास, चार मास, छह मास, एक वर्ष, दोय वर्ष, इत्यादिक कालकी मर्यादा करि त्याग करै सो नियम नामका परिमाण है। जातैं जो आपके उपयोगी होय, शुद्ध होय ताका त्यागमें तो कालकी मर्यादाकरि ही नियमरूप त्याग करना। अर जो आपके प्रयोजनरूप हू नाहीं होय तथा परिणामनिकूं बिगाडने वाला होय अथवा सदोष होय, ताकूं यावज्जीव त्याग करि यमनामा परिमाण करना योग्य है। इस भोगोपभोग-परिमाणतैं अनेक पापके आस्रव रुक जाय हैं। इन्द्रियां वशीभूत हो जाय हैं। राग अतिमन्द हो है। व्यवहार शुद्ध हो जाय है। मन वश हो जाय। व्यवहार परमार्थ दोऊ उज्ज्वल हो जाय। तातैं भोगोपभोगपरिमाण व्रत ही आत्मा का हित है। विरुद्ध भोग तो त्यागिये ही और अविरुद्ध भोग होय तिनमें हू अपनी शक्ति परिमाण देश काल देखि दिवस रात्रिके कालकी मर्यादा करो। तामें हू फिर दोय घडीकी, चार घडीकी, मर्यादा करि रहना। यातैं कर्मनिकी बडी निर्जरा है।

अब और हू भोगोपभोगनिमें परिमाण कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

भोजनवाहनशयनस्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु। ताम्बूलवसनभूषण-मन्मथसंगीतगीतेषु ॥८८॥

अर्थ—भोगोपभोगपरिमाण नाम व्रतमें नित्य हू नियम करै—आजका दिनमें एक बार भोजन करूंगा वा दोय वार भोजन करूंगा वा तीन चार बार इत्यादिक भोजन करनेका परिमाण करै अथवा आजका दिनमें एती जातीका अन्न तथा एते रस, एते व्यञ्जन भक्षण करूंगा, अधिक प्रकार भक्षण नाहीं करूंगा, ऐसैं भोजनका नियम करै। बहुरि वाहन जे हाथी, घोडा, ऊंट, वलध, पालकी, रथ, बहली, नाव, जहाज इत्यादिक वाहन ऊपर चढनेका नियम करै। बहुरि पलंग, खाट इत्यादिक विषैं शयनका नियम करै। जो आज मैं पलंगादिकमें शयन करूंगा वा भूमिमें ही शयन करूंगा। बहुरि आज एक बार स्नान करूंगा वा दोय बार स्नान करूंगा वा स्नान नाहीं करूंगा इत्यादिक नियम करै। बहुरि पवित्र जो अङ्गराग कहिये चंदन, केशर, कर्पूरादिके विलेपन करना वा नाहीं करना इनमें नियम करै। बहुरि पुष्प तथा पुष्पनिकी माला आभरणादिक धारण करनेमें नियम करै। बहुरि तांबूल, इलायची, सुपारी, लवंगादिक भक्षण करूंगा वा नाहीं करूंगा ऐसा नियम करै। बहुरि वस्त्रानिका नियम करै—जो आज एते

वस्त्र पहरूंगा, अधिक नाहीं पहरूंगा ऐसैं वस्त्रनिमें नियम करै। बहुरि आज एते ही आभरण पहरूंगा अधिक नाहीं ऐसैं आभरण पहरनेमें नियम करै। बहुरि काम सेवनेका नियम करै। बहुरि नृत्य देखनेका नियम करै। बहुरि गीत गावनेका वा अन्य वेश्या कलावन्तादिकतैं गवावनेका नियम करैं। बहुरि और हू हरितकायके भक्षणमें नियम करै। बहुरि षट्रसके भक्षणमें, जल पीवनेमें नियम करै। बहुरि सिंहासन, कुर्सी, चौकी इत्यादिक आसनमें बैठनेका नियम करै। इत्यादिक अपने योग्य हू भोग-उपभोगनिमें नित्य नियम करै है ताकैं भोजन-पानादिक करनेतैं हू निरन्तर संवर होय है।

अब नियमके अर्थि कालकी मर्यादा कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा। इति कालपरिछिच्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥

अर्थ—अद्य कहिये एक घडी, मुहूर्त, प्रहर, अर दिवा कहिये दिवस तथा रात्रि, पक्ष तथा एक मास तथा दोय मासका ऋतु अर अयन कहिये छह मास इत्यादिक कालका परिमाण करि त्याग करना सो नियम है। ऐसैं भोगोपभोगका परिमाण वर्णन किया।

अब भोगोपभोगपरिमाण व्रतके पच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवौ। भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः पंच कथ्यन्ते ॥९०॥

अर्थ—ये भोगोपभोग व्रतके पांच अतीचार त्यागने योग्य हैं। विषय हैं ते संताप बधावै हैं अर विषयांका निमित्ततैं मरण होय हैं। यातैं ये पंच इन्द्रियनिके विषय विष हैं। इनमें परिणामका राग नाहीं घटना सो अनुप्रेक्षा नाम अतीचार है ॥ १ ॥ बहुरि जे विषय पूर्वकालमें भोगे थे तिनकूं बारम्बार याद कर्‍या करै सो अनुस्मृति नाम अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि विषय भोगै तिस काल में अतिगृद्धितातैं अति आसक्त हुआ भोगै सो अतिलौल्य नाम अतीचार है ॥ ३ ॥ बहुरि विषयनिकूं आगामी कालमें भोगनेकी अति तृष्णा लगी रहै सो अतितृष्णा नाम अतीचार है ॥ ४ ॥ बहुरि विषयनिकूं नाहीं भोगै तिस कालमें भी जानै भोगू ही हूँ ऐसा परिणाम सो अनुभवनाम अतीचार है ॥ ५ ॥ ऐसै भोगोपभोगपरिमाण व्रतके पांच अतीचार छांडि व्रत कूं शुद्ध करना।

इति श्रीपरमपूज्य धर्मसाम्राज्यनायक, योगींद्रचूडामणि, सिद्धांतपारंगत, चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य श्रीशांतिसागरजी महाराजके
आदेशसे ज्ञानदानके लिए श्री प. पू. चा. च. आ. शांतिसागर दिगंबर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाकी ओरसे
छपे हुए श्री १०८ स्वामीसमन्तभद्राचार्यविरचित रत्नकरण्डश्रावकाचारके सूत्रनिकी देशभाषामयवच-
निकाविषैं तृतीय अधिकार समाप्त भया ॥ ३ ॥

ग्रंथप्रकाशनसमिति फलटण वीर सं. २४८०

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

रत्नकरंडश्रावकाचार

(चतुर्थ अधिकार)

अब च्यार शिक्षाव्रतनिके स्वरूपका निरूपण करनेकूं सूत्र कहैं हैं—

देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा । वैय्यावृत्त्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥९१॥

अर्थ—देशावकाशिक (१) सामायिक (२) प्रोषधोपवास (३) वैयावृत्य (४) ऐसैं चार शिक्षाव्रत कहे हैं।

भावार्थ—ए चार व्रत हैं ते गृहस्थपनामें मुनिपनाकी शिक्षा करै हैं।

अब देशावकाशिक व्रतके कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य । प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥९२॥

अर्थ—अणुव्रतनिके धारक पुरुषानिकैं दिन दिन प्रति विस्तीर्ण देशकूं कालकी मर्यादा करि घटावना सो देशावकाशिक नाम शिक्षाव्रत है।

भावार्थ—जो पूर्वकालमें दश दिशानिमें जावना, मंगावना, भेजना, बुलावना, इत्यादिकनिकी मर्यादा यावज्जीव दिग्व्रतमें करी थी सो तो बहुत थी। तामेंतैं अब रोजीना क्षेत्रकूं घटाय कालकी मर्यादा करि व्रत करै सो देशावकाशिक व्रत है। जैसें पूर्व दिशामें दोयसै कोसका परिमाण यावज्जीव किया सो तो दिग्व्रत है। फिर यामेंतैं रोजीना मर्यादा रूपकरि राखै जो आज चार कोसहीका म्हारै परिमाण है वा इस नगरका ही परिमाण है वा आज अपने घर बाहिर नाहीं जाऊंगा सो देशावकाशिक व्रत है।

अब देशावकाशिक व्रतमें क्षेत्रकी मर्यादा प्रगट करै हैं—

ग्रहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च । देशावकाशिकस्य स्मरंति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥९३॥

अर्थ—तपोवृद्ध जे गणधर हैं ते देशावकाशिक व्रत करनेकूं सीमा मर्यादा कहै हैं। गृहकूं, कटककूं, ग्रामकूं, क्षेत्रकूं, नदीकूं, वनकूं, योजनकूं, देशावकाशिक व्रतमें मर्यादा कहैं हैं। इनकूं उल्लंघनका हमारे इतने काल त्याग है।

अब देशावकाशिकमें कालकी मर्यादा कहैं हैं—

संवत्सरमृतुरयनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च । देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥९४॥

अर्थः—प्रवीण पुरुष हैं ते एक वर्ष, छह महीना, दोय मास, चार मास, एक पक्ष, एक नक्षत्र इस प्रकार देशावकाशिक व्रतके कालकी मर्यादा कहैं हैं ।

अब देशावकाशिकका प्रभाव दिखावै हैं—

सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपंचपापसंत्यागात् । देशावकाशिकेन च महव्रतानि प्रसाध्यंते ॥९५॥

अर्थ—रोजीना जेता क्षेत्रका परिमाण किया ताकैं बारैं स्थूल अर सूक्ष्म जे पंच पाप तिनका त्यागतैं देशावकाशिक व्रत करकैं महाव्रतनिकूं सिद्ध करिये हैं ।

भावार्थ—मर्यादा करी तीं बारैं समस्त पंच पापनिका त्यागतैं अणुव्रत महाव्रत तुल्य भये ।

अब देशावकाशिक व्रतके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ । देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पंच ॥ ९६ ॥

अर्थ—आपके जेता क्षेत्रकी मर्यादा थी तिस बाहर प्रयोजनके अर्थि अपना सेवककूं वा मित्र पुत्रादिककूं कहै तुम जाओ तथा या काम कर दो ऐसैं कहना सो प्रेषण नाम अतीचार है ॥ १ ॥ बहुरि मर्यादाबाह्य क्षेत्रमें तिष्ठेनितैं वचनालाप करना तथा अन्य शब्दकी समस्या करि समझाय देना सो शब्द नाम अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि मर्यादाबाह्य क्षेत्रमें कोऊकूं बुलावना वा वस्त्रादिक वांछित वस्तुकूं शब्द कहि मंगावना सो आनयन नाम अतीचार है ॥ ३ ॥ बाह्य क्षेत्र में तिष्ठेनिकूं समस्या वास्ते अपना रूप दिखावना सों रूपाभिव्यक्ति नाम अतीचार है ॥ ४ ॥ बहुरि मर्यादाके क्षेत्रके बाह्य क्षेत्रमें वस्त्रादिक तथा कंकरी, पाषाण, काष्ठखण्ड आदिक फेंकि आपा जितावना सो पुद्गलक्षेप नाम अतीचार है ॥ ५ ॥ ऐसैं देशावकाशिक व्रतके पंच अतीचार त्यागने योग्य हैं ।

ऐसैं देशावकाशिक व्रत कह करि अब सामायिक शिक्षाव्रतका स्वरूप कहैं हैं—

आसमयमुक्तिमुक्तं पंचाघानामशेषभावेन । सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥

अर्थ—सामायिक कहिये परम साम्यभावकूं प्राप्त भये ऐसे गणधर देव हैं ते सामायिक नाम करि ताकी प्रगट प्रशंसा करैं

हैं जो सर्वत्र कहिये मर्यादा करी तिस क्षेत्रमें अर मर्यादाबाह्य क्षेत्रमें हू समस्त मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदनाकरि कालकी मर्यादारूप जो समस्त पंचपापनिका त्याग सो सामायिक है।

भावार्थ—समस्त पंचपापनिका कालकी मर्यादाकरि समस्तपनाकरि त्याग सामायिक है।

अब सामायिकमें पंचपापनिका त्याग करि कैसैं तिष्ठै सो कहैं हैं—

मूर्धरुहमुष्टिवासोबन्धं पर्यंकबन्धनं चापि। स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः॥ ९८॥

अर्थः—समयज्ञ जे परमागमके जाननेवाले हैं ते मूर्द्धरुह जे केश तिनका बन्धन अर मुष्टिबन्धन अर वस्त्रबन्धन अर पर्यंकासंनबन्धन हू जैसैं होय तैसैं स्थान कहिये खडा तथा उपवेशन कहिये बैठा समय कहिये रागद्वेषादि रहित शुद्धात्मा जो है ताहि जानता रहै।

भावार्थ—सामायिक करनेवाला कालकी मर्यादा-परिमाण समस्त प्रकार पापनिका त्याग करि खडा होय करि तथा पर्यंकासन कर बैठै। अर पर्यंकासनमें अपना वाम हस्ततल ऊपरि दक्षिण हस्ततलकूं स्थापन करै। अर अपना मस्तकका केश वा वस्त्र हालता होय तो परिणामके विक्षेप करै। यातैं मस्तकके चोटी इत्यादिकके केश होय तिनकूं बांधि ले अर वस्त्र हू बिखरि रह्या होय ताकूं हू गांठ देय बांधि करि सामायिक खडा हुआ करै वा बैठा हुआ करै।

अब सामायिकके योग्य स्थानकूं कहैं हैं—

एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च। चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया॥९९॥

अर्थः—जिस स्थानमें चित्तकूं विक्षेप करनेके कारण नाहीं होय अर बहुत असंयमीनिकां आवना जावना नाहीं होय अर अनेक लोकनिकरि वाद-विवादादिकका कोलाहल नाहीं होय अर जहां गीत, नृत्य, वादित्रादिकनिका प्रचार नजीक नाहीं होय अर तिर्यंचनिका अर पक्षीनिका संचार नाहीं होय और जहां बहुत शीतकी तथा उष्णताकी, प्रचण्ड पवनकी, वर्षाकी, बाधा नाहीं होय तथा डांस, माछर, मक्षिका, कीडा, कीडी, जुवा, मधुमक्षिका, टांट्या, सर्प, बीछू, कनसला इत्यादिक जीवनकृत बाधा नाहीं होय ऐसा विक्षेपरहित स्थान एकान्त होय वा वन होय, जर्णि बागके मकान होय वा गृह होय वा चैत्यालय होय वा धर्मात्मा जननिका प्रोषधोपवास करनेका स्थान होय ऐसा एकान्त विक्षेपरहित वन होहु वा जीर्ण बाग तथा सूना गृहादिक चैत्यालयादिक में प्रसन्नचित्त हुआ सामायिकमें परिचय करौ।

अब सामायिककी और हू सामग्री कहिये हैं—

व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्यामन्तरात्मविनिवृत्या । सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥
सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यम् । व्रतपंचकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

अर्थ—कायकी चेष्टारूप व्यापार तामें विरक्तपनातैं बाह्य आरम्भादिकतैं छूटि अर अन्तरात्मा जो मन ताकूं विकल्परहित करिकैं अर उपवासके दिनविषैं अथवा एकभुक्तिके दिनविषैं सामयिकरूप तिष्ठै तथा आलस्यरहित पुरुष दिवस दिवस प्रति नित्य रोजीना यथावत् सामायिक जो है ताहि एकाग्रचित्तकरि युक्त हुआ परिचय करने योग्य है, वृद्धि करने योग्य है । कैसाक है सामायिक ? अहिंसादिक पञ्च व्रतनिकी परिपूर्णताका कारण है ।

भावार्थ—सामायिक करनेमें उद्यमी श्रावक है सो समस्त आरम्भादिक कायकी क्रियाकूं त्याग करि अर मनका विकल्प छांडि सामायिक करै । तिनमें कोऊ तो पर्वका निमित्त पाय उपवास जिल दिन करै तिसही दिनमें सामायिक करै । कोऊ एक ठाणाके दिन सामायिक करै । कोऊ नित्य-प्रति सामायिक करैं, सो पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण तीनकालविषैं दोय दोय घडीका नियम करि साम्यभाव की आराधना करै, सो एक स्थानमें निश्चल पर्यंकासन तथा कायोत्सर्ग नाम निश्चल आसन धरि अंग-उपांगनिका चलायमानपना छांडि, काष्ठ-पाषाणकरि गढ्या प्रतिबिंबतुल्य अचल होय, दशादिशानिकूं नाहीं अवलोकन करता, अपने अङ्ग-उपांगनिकूं नाहीं देखता, किसीतैं वार्ता नाहीं करता, समस्त पंच इन्द्रियनिके विषयनितैं मनकूं रोकि समस्त अचेतन द्रव्यनिमें राग, द्वेष, हर्ष, विषाद, वैर, स्नेहादिकनिकूं छांडि सामायिकमें तिष्ठै है । सामायिकमें तिष्ठता, समस्त जीवनिमें मैत्री धारण करता, परम क्षमा धारण करै है । मैं सर्व जीवनिमें क्षमा धारण करूं हूं, कोई जीव मेरा वैरी नाहीं है, मेरा उपार्जन किया मेरा कर्म ही वैरी है, मैं अजान भावतैं क्रोधी, अभिमानी, लोभी होय करकै विपरीतपरिणामी हुआ । जाकी प्रवृत्तिसूं मेरा अभिमानादि पुष्ट नाहीं भया, तिसकूं ही वैरी मान्या । कोऊ मेरा स्तवन बडाई नाहीं करी, मेरे कर्तव्यकी प्रशंसा नाहीं करी, ताकूं वैरी समझ्या । मेरा आदर, सत्कार, उठना, स्थान देना, इत्यादिकमें मन्द प्रवर्त्या ताकूं वैरी जान्या । तथा कोऊ मेरा दोष छो ताकूं जनाया ताकूं वैरी जान्या । तथा कोऊ मेरे आधीन नाहीं प्रवर्तन किया, मोकूं कुछ भोजन, वस्त्र, धनादिक नाहीं दिया ताकूं वैरी मान्या । सो ये समस्त मेरी कषायतैं उपजी दुर्बुद्धितैं अन्य जीवनिमें वैर बुद्धि ताहि छांडि क्षमा अंगीकार करूं हूं । अर अन्य समस्त जीव हैं, ते हू मेरा अज्ञानभाव विषयकषायांके आधीन जानि मेरे ऊपरि क्षमा करो, मोकूं माफ करो । ऐसैं वैर विरोधकी बुद्धिकूं छांडि मैं समस्तमें समभाव धारि सामायिक अंगीकार करूं हूं । जेते दोय घटिका परिमाण में मनकरि, वचनकरि, कायकरि, समस्त पंच इन्द्रियनिका विषयनिकूं समस्त आरम्भ परिग्रहकूं त्यागकरि भगवान पंचपरमेष्ठीके स्मरण करता तिष्ठूं हूं ऐसैं सामायिकका अवसरमें प्रतिज्ञाकरि पंच नमस्कारके अक्षरनिका ध्यान करता तथा पंच परमेष्ठीके गुणनिकूं स्मरण करता तथा जिनेन्द्रका प्रतिबिंबकूं चिंतवन करता सामायिकमें तिष्ठै तथा अपने आत्माका

ज्ञाता-दृष्टास्वभावकूं रागद्वेषतैं भिन्न अनुभव करता तिष्ठै तथा चार मंगल पद, चार उत्तम पद, चार शरण पदनिकूं चिंतवन करता तिष्ठै तथा द्वादशभावना, षोडशकारणभावना चिंतवन करै अर चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका स्तवनमें तथा एक तीर्थंकरकी स्तुति तथा पंच परम गुरुनिके स्तवनमें इनके अर्थमें एकाग्रचित्त धारण करि सामायिक करै तथा प्रतिक्रमण करनेकूं समस्त दिवसमें किये दोषनिकूं दिनका अन्तमें चिन्तवन करै अर समस्त रात्रिमें जे दोष किये तिनकूं प्रभात समय चिन्तवन करै। जो यो मनुष्य-जन्म अर तामें भगवान सर्वज्ञ वीतरागका उपदेश्या धर्म अनन्तकालमें बहुत दुर्लभ प्राप्त भया है, इस जन्मकी घडी हू धर्मविना व्यतीत मत होहू, ऐसा विचार करै; जो आजका दिनमें तथा रात्रिमें जिनदर्शन पूजन स्तवनमें केता काल व्यतीत किया, अर स्वाध्याय, सत्संगति तत्त्वार्थनिकी चर्चा तथा पंचपरमेष्ठीनिका जाप ध्यानमें तथा पात्रदानमें केता काल व्यतीत किया, अर बहुत आरम्भमें अर इन्द्रियनिके विषयनिमें अर व्यवहारादिक विकथामें अर प्रमादमें, निद्रामें, काम-सेवनमें, भोजनपानादिकमें, आरम्भादिकनिमें केता काल व्यतीत किया तथा मेरा मनवचनकायकी प्रवृत्ति तथा रागादिक संसारके कार्यनिमें अधिक भई कि परमार्थमें अधिक भई ऐसैं समस्त दिवसका किया कर्तव्यकूं दिनका अन्तमें चिन्तवन करै अर रात्रिका कियाकूं प्रभात समय चिंतवन करै। जातैं जो पांच रुपयाकी पूंजी लेय बनिज करै है सो हू नित्य रोजाना अपना ठगावना, कुमावना, टोटा नफाकी संभाल करै है तो पुण्यके प्रभावतैं इस जन्म पाया जो उत्तम मनुष्य जन्म वीतरागधर्म सतसंगति इन्द्रियपरिपूर्णतादिक धन तिसमें व्यवहार करता ज्ञानी अपनी आत्माके हानि वृद्धि नाहीं सम्भालि करै कहा ? जो टोटा नफाकी संभाल नाहीं करै तो परलोकतैं ल्याया धर्मधनादिकनिकूं नष्ट करि घोर तिर्यंच गतिमें वा नारकीनिमें, निगोदनिमें जाय नष्ट हो जाय। तातैं, धर्मरूप धनका बधावनेका अर्थि एक दिनमें दोय बार तो संभाल करै ही अर जो कषायनिके वशतैं जो अपने मन-वचन-काय की दुष्ट प्रवृत्ति भई ताकूं बारम्बार निन्दा करै, हाय ! मैं दुष्ट चिन्तवन किया तथा कायतैं दुष्ट क्रिया करी। हाय ! मैं वचनकी प्रवृत्ति बहुत निन्दा करी, यामें महा अशुभ कर्मबन्ध किया, धर्मकूं दूषित किया, अपयश प्रगट किया, अब इस निंद्य कर्मकूं चिन्तवन करते मेरे परिणाम पश्चात्तापकरि दग्ध होय हैं। अहो ! मोहकर्म बडा बलवान है, जो मैं मेरे दुष्ट परिणामनिकी दुष्टताको अर पापके करनेवाले अर दुर्गतिके ले जाने वाले हमारे निंद्य परिणामनिकूं नीकै मेरा घात करने वाले जानूँ हूं अर प्रयोजन रहित जानूं हूं अर अपनी जीवितव्यकूं बहुत अल्प जानूं हूं अर परलोकमें मेरे किये कर्मका फलकूं मैं ही अकेला ही भोगूंगा ऐसा अच्छी तरह बारम्बार परिणाममें निश्चय करूं हूं चिंतऊ हूँ। चिंतवन करते करते हू मेरा परिणाम जो अन्य जीवनितैं वैर अर विषयनिमें राग नाहीं घटै है सो यो प्रबल मोह कर्मकी महिमा है। याहीतैं मोहकर्मका नाश करि विजयकूं प्राप्त भये ऐसे पंच परमेष्ठिनिकूं स्मरण करूं हूं। जो मोहकर्मके जीतनेवाले जिनेन्द्रका प्रभावकरि मेरे मोहकर्मतैं उपजे रागभाव, द्वेषभाव, कामादिविकारभाव, तथा क्रोधभाव, अभिमानभाव, मायाचारके भाव, लोभभाव मेरा नाशकूं प्राप्त होहू। जैसी वीतरागता जिनेन्द्र भगवान पाई तैसी मेरे भी होहू इस अभिप्रायतैं मैं कायतैं ममत्व छांडि पंचपरमेष्ठीका ध्यानसहित कायोत्सर्ग

करूं हूं। तथा अज्ञानभावतैं जो पूर्वकालमें पृथ्वीकायका खोद्‌ना, कुचरना, कूटना इत्यादिक करि घात किया होय तथा अवगाहनेकरि, विलोबनेकरि, छिडकनेकरि, स्नानादिककरि जलकायका जीवांकी विराधना करी, तथा दाबना, बुझावना, कसेरना, कूटना इत्यादिककरि अग्निकायके जीवनिकी विराधना करी, तथा बीजणां इत्यादिककरि पवनकायका जीवांकी विराधना करी, तथा जड, कन्द, मूल, छाल, कूपल, पत्र, फूल, फल, डाहला, डाहली, सींख, तृण, घास, बेल, गुल्म, वृक्षादिकनिका तोडना छेदना, बनारना, उपाडना, चबाना, रांधना, वांटना इत्यादिककरि वनस्पतिकायकी विराधना करि तिनतैं उत्पन्न भया पापकर्म तिनका नाश परमेष्ठीके जाप्यके प्रभावतैं अब मेरा परिणाम छह कायनिके जीवनिके घाततैं पराङ्मुख होहू संयमभावकी प्राप्ति होहू। बहुरि जो मेरे गमनमें, आगमनमें, उठनेमें, पसरनेमें, संकोचनेमें, भोजनमें, पानीमें, आरम्भ उठावनेमें, मेलनेमें, तथा चाकी, चूल्हा, ओखली, बुहारी, जलका परींडा अर सेवा कृषि, विद्या, वाणिज्य, लिखना, शिल्पकर्म जीविकामें तथा गाडी घोडा, इत्यादिक वाहननिमें प्रवर्तन करि जो मेरी यत्नाचाररहित प्रवृत्ति ताकरि जो द्विइन्द्रिय त्रिइन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवनिकी विराधना भई होय सो मिथ्या होहू। मैं बुरी करी। ये आरम्भादिक भला नाहीं। संसारमें डुबोनेवाले हैं। नरक देनेवाले हैं। इन आरम्भ विषय कषायनिकरि ही यो जीव एकेन्द्रियादिक तिर्यंचनिमें अनन्तानन्त काल क्षुधा, तृषा, मारन, ताडन, लादन, बंधन, बालन, छेदन, फाडन, चीरन, चावन इत्यादिक घोर दुःख भोगता ते हिंसातैं उपजाय कर्म को नाशके अर्थि अर आगाने हिंसारूप परिणामका अभावके अर्थि मैं पंच नमस्कार पदका शरण ग्रहण करूं हूं। बहुरि अज्ञान भावतैं व प्रमादतैं जो मैं असत्य वचन कह्या तथा गाली दीनी तथा भण्डवचन कह्या तथा मर्मछेद करनेवाले कर्कश वचन व कठोर कह्या तथा किसीकूं चोरीका कलंक लगाया, किसीकूं कुशीलका कलंक लगाया तथा धर्मात्मा, ज्ञानी, तपस्वी, शीलवन्तनिकूं दोष लगाया तथा धर्मात्मानिकी निन्दा करी तथा सांचे देवधर्मगुरुकी निन्दा करी तथा मिथ्याधर्मकी प्ररूपणा करी तथा स्त्रीनिकी कथा, राजकथा, भोजनकथा देशकथा इत्यादिक घोर पापनिमें मेरा वचन प्रवर्त्या ताका अब पश्चात्ताप करूँ हूँ। मैं घोर कर्मका वन्ध किया, जाका, फल नरकनिके दुःख तथा तिर्यंचगतिनिके घोर दुःख अनन्तकाल भोगने हैं अर अनन्तकाल गूंगा, बहिरा, आंधा, नीच जाति, नीच कुलमें महा दारिद्रसहित उपजना है। यातैं अब दुष्ट वचनके बोलनेकरि उपजाया पापकर्मका नाशके अर्थि अर अब आगाने मेरे दुष्ट वचनमें प्रवृत्ति कदाचित् मत होहु इस वास्ते मैं पंचनमस्कारपदका शरण ग्रहण करूं हूं। बहुरि अज्ञानभावतैं वा प्रमादतैं पूर्वकालमें जो मैं परका विना दिया धन, गिऱ्या पड्या, भूल्या, ग्रहण करनेमें परिणाम किया, कपट छलतैं ठग्या तथा जबर होय परका धन राखि मेल्या, नाहीं दिया तो बहुत संक्लेश आपकै अर अन्यकै उपजाय दिया तातैं घोर पाप उपजाया। ताका फल नरक तिर्यंचादि गतिनिमें परिभ्रमण अनन्तकालपर्यंत दरिद्रादिक घोर दुःख होना है। यातैं चोरी करि उपजाया जो पापकर्म ताका नाशके अर्थि अर आगानै मेरा

पराया धन विना दिया ग्रहण करनेमें परिणाम कदाचित् मत होहू इस वास्ते, मैं पंचनमस्कारपदका शरण ग्रहण करूं हूँ। बहुरि परकी स्त्रीके रूप, आभरण, वस्त्र, हाव-भाव विलासकूं राग भावतैं देखनेकी इच्छा करि तथा राग भावतैं देखि तथा संगमादिक किया तातैं उपार्जन किया घोर पाप जाका फल अनन्तकालपर्यंत नरकगतिमें परिभ्रमण करि अनेक भवनिमें हजारां रोगका पावना तथा दरिद्रादि दुःख भोगना तथा बहुत कालपर्यंत कामरूप अग्निकरि दग्ध भया असंख्यात भवनिमें कामवेदनाकरि पीडित हूआ लडि लडि मर जाना है। तातैं परस्त्रीकी वांछाकरि उपजाया पापकर्मका नाशके अर्थि अर आगामी कालमें मेरा अन्यकी स्त्रीमें अनुराग कदाचित् मत होहु इस वास्ते मैं पंचपरमगुरुनिका पंचनमस्कारमन्त्रका ध्यान करूं हूँ। बहुरि मैं अज्ञानी परिग्रहमें बडी ममता करि शरीरादिक पुद्गलकूं मेरा मानि यामें ही आपा जान्या तथा रागादिकभाव मोहकर्मके उदयतैं भया तिनिकूं अपना भाव मानि परद्रव्यनिमें बडी आसक्तता करी धन-धान्य कुटुम्बादिककी वृद्धिकूं अपनी वृद्धि मानी इनकी हानिकूं अपनी हानि मानी अर अब हू जायगा हाट आजीविका स्त्री पुत्र धन धान्य आभरण वस्त्रादिक हजार वस्तुरूप परिग्रहमें हमारा हमारा ऐसी बुद्धिमें विपरीतता लग रही हैं जो आपका ज्ञान परका ज्ञान पाप-पुण्यका ज्ञान परलोकका ज्ञान नष्ट होय रह्या है। कण्ठगत प्राण हो जाय तो हू ममता नाहीं घटै है। अर जगत्में प्रत्यक्ष देखै है जो किसीकी लार परिग्रह गया नाहीं, मेरी लार जायगा नाहीं, तो हु दिन प्रति बधाया चाहै है। यामें मरण करूं तहां पर्यंत किंचित् मत घट जावो। उस प्रकार ही निरन्तर चिंतवन रहै है। इस परिग्रहरूप दावाग्निकूं संतोषरूप जलकरि नाहीं बुझाया चाहै है। समस्त पापनिका मूल एक परिग्रहमें मूर्च्छा है, मैं अज्ञानी याहीका आरम्भमें, याहीमें ममता धारण करनेकरि अनन्तकालमें दुर्लभ ऐसा मनुष्य जन्म जिनधर्म पाया ताहि बिगाडि अनन्तभवनिमैं नरक तिर्यंच गतिनिके दुःखकूं अङ्गीकार किया ताका मेरे बडा पश्चात्ताप है। अब ऐसे घोर पापकर्मके नाश करनेका उपाय भगवान पंचपरमेष्ठी विना कोऊ दूजा है नाहीं अर आगामी कालहूमें परिग्रहमें विरक्तताका करानेवाला भगवान पंचपरमेष्ठी विना कोऊ है नाहीं। यातैं मूर्च्छाका नाशके अर्थि, परम सन्तोष उपजनेके अर्थि, परिग्रहका त्यागके अर्थि, पंचनमस्कारका ध्यानपूर्वक कायोत्सर्ग करूं है।

अब सामायिकमें तिष्ठता गृहस्थ कैसा है सो कहैं हैं—

सामायिके सारम्भाः परिग्रहा नैव संति सर्वेऽपि। चेलोपसृष्टमुनिरिव[1] गृही तदा याति यतिभावम् ॥१०२॥

अर्थ—गृहस्थ जो हैं तिनके सामायिकके अवसरविषैं आरम्भकरि सहित समस्त ही परिग्रह नाहीं हैं। यातैं सामायिक करता गृहस्थ जो है सो वस्त्रसहित ज्यों यतिका भावकूं प्राप्त होय है।

१—मेरी दृष्टिमें 'वस्त्र के द्वारा जिनको उपसर्ग हुआ है ऐसे मुनिराज के समान' ऐसा होना चाहिये। जिसप्रकार वस्त्र के द्वारा जिनको उपसर्ग हुआ है ऐसे मुनीश्वर का महाव्रत नष्ट नहीं होता है—वह बना ही रहता है; क्यों कि उनके वस्त्रविषयक मूर्छा का अभाव हो है उस प्रकार सामायिक में मग्न हुए गृहस्थ के भी सभी प्रकार के आरम्भ और मूर्च्छाका अभाव होनेसे वह सामायिक के कालमें मुनिपनाको प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—सामायिकके अवसरमें समस्त आरम्भ अर समस्त परिग्रह नाहीं है; परन्तु गृहस्थ है यातैं वस्त्र पहरै है। तातैं वस्त्र बिना अन्य प्रकार तो मुनितुल्य ही है। मुनिकै नग्नपना होय है याकै वस्त्रधारण है एता ही अन्तर है। तातैं मुनि नाहीं कह्या जाय है। बहुरि जो उपसर्ग परीषह आजाय तो मुनीश्वरनिकी ज्यों धीरता धारण करि सहै, कायर नाहीं होय, ऐसैं सूत्र कहैं हैं—

शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः। सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥

अर्थ—सामायिककूं धारण करता गृहस्थ मौंनकूं धारण करै है अर वचन कायकूं नाहीं चलायमान करता शीत, उष्ण, दंश-मशकादि परीषह अर चेतन-अचेतनकृत उपसर्गनिकूं सहै हैं।

भावार्थ—सामायिक करनेके अवसरमें जो शीतका, उष्णता का, वर्षाका, पवनका, डास-मांछर दुष्टनिके दुर्ववचन रोग पीडादिका परीषह आजाय तथा दुष्ट वैरीकरि किया तथा सिंह व्याघ्र सर्पादिक तथा अग्नि-जलादिक-जनित उपसर्ग आजाय तो बडा धैर्य धारणकरि मनवचनकायकूं साम्यभावतैं नाहीं चलायमान करता मौनसहित समस्तकूं सहै है—

अब सामायिक करता संसारका स्वरूपकूं अर मोक्षके स्वरूपकूं ऐसै चिंतवन करै है—

अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्। मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

अर्थ—सामायिक धारता गृहस्थ संसारकूं ऐसे चिंतवन करै। यो चतुर्गतिमें परिभ्रमणरूप संसार अशरण है। यामें अनन्तानन्त जन्म-मरण करते अनन्तकाल व्यतीत भयो। अर समस्त पर्यायनिमें क्षुधा, तृषा, रोग, वियोग, मारन, ताडन, भोगतैं कहूं शरण नाहीं। जो कोऊ कालमें, कोऊ क्षेत्रमें कोऊ रक्षा करनेवाला नाहीं; तातैं संसार अशरण है। बहुरि अशुभकर्मके बन्धनकरि दुःखका देंनेवाला अशुभदेहरूप पिंजरामें फस्या हुआ, अशुभ कषायनिरूप अशुभभावनिमें लीन हुआ निरन्तर अशुभका ही बन्ध करता अशुभ ही कूं भोगै है। यातैं यो संसार अशुभ है। बहुरि इस संसारमें जीव अनन्तानन्तकाल परिभ्रमण करते करते कदाचित् सुक्षेत्रमें वास, उत्तमकुल, इन्द्रियपरिपूर्णता, सुन्दर रूप, प्रबल बुद्धि, जगतमें पूज्यता, मान्यता तथा राज्यसम्पदा, धनसम्पदा, सुन्दर मित्रनिका सङ्गम, आज्ञाकारी महाप्रवीण सुपुत्र, मनोहर वल्लभाका संगम तथा पण्डितपना, सूरपना, बलवानपना, आज्ञा ऐश्वर्यादिक मनोवांछित भोग, नीरोग शरीरादिक कर्मके उदयकरि पा जाय तो क्षणमात्रमें बिजुलीवत् इंद्रधनुषवत, इन्द्रजालीका नगरवत् नियमतैं विलाय जाय हैं। फिर अनन्तानन्तकालमें हू नाहीं प्राप्त होय हैं। तातैं संसार अनित्य है। अर समस्तकालमें कर्मबन्धनसहित देहपिंजरमें फस्या अनन्तानन्त जन्ममरणादिकनिकरि सहित है। अनन्तकालहूमें दुःखका अभाव नाहीं। तातैं संसार दुःख ही है। बहुरि संसारपरिभ्रमणरूप मेरा आत्मा नाहीं। तातैं संसार अनात्मा है। ऐसे सामायिकमें तिष्ठता गृहस्थ

चिंतवन करै है । अहो ! परिभ्रमणरूप संसार है, सो अशरण है, अनित्य है, दुःखरूप है । अर मेरा स्वरूप नाहीं ऐसा संसारमें मिथ्याज्ञानका प्रभावकरि मैं अनन्त कालतैं वास करूं हूँ । अब मोक्ष जो संसारतैं छुटना है सो मेरा आत्माकूं शरण हैं, फिर अनन्तानन्त कालमें हू संसारमें आपनेकरि रहित है । बहुरि शुभ है, अनन्त कल्याणरूप है । बहुरि नित्य है, अविनाशी हैं । बहुरि अनन्तानन्तस्वरूप है । जामैं अनन्तज्ञानादि अर अनाकुलतारूप सुख है अर मेरा आत्माका स्वरूप है—पर रूप नाहीं ऐसैं सामायिकमें तिष्ठता गृहस्थ संसारका अर मोक्षका स्वरूप चिंतवन करै है । साम्यभावसहित सामायिक दोय घडी मात्र हो जाय तो महान कर्मकी निर्जरा है । सामायिककी महिमा कहनेकूं इन्द्र हू समर्थ नाहीं है । सामायिकके प्रभावतैं अभव्य हू ग्रैवेयिक पर्यंत उपजै है । सामायिक समान धर्म न कोऊ हुयो न होसी यातैं सामायिक अङ्गीकार करना ही आत्माका हित ह । अर जाके सामायिकादिकका पाठका ज्ञान आवै नाहीं ते पंचनमस्कारमात्र ही एकाग्रतातैं मनवचनकायकूं निश्चल कीर समस्त आरम्भ कषाय विषयनिका त्याग करि पंचनमस्कारमन्त्र का ध्यान करता दोय घटिका पूर्ण करो ।

अब सामायिकके पंच अतीचार कहै हैं—

वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे । सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पंच भावेन ॥१०५॥

अर्थ—ए पांच सामायिकका भावनिकरि अतीचार हैं । सामायिक करते वचनकी संसार सम्बन्धी प्रवृत्ति करना सो वचन–दुःप्रणिधान नाम अतीचार है ॥ १ ॥ बहुरि शरीरकी संयम-रहित चलायमानपनाकी चेष्टा सो कायदुःप्रणिधान नाम अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि मनमें आर्तरौद्रादिक चिंतवन करै सो मनोदुःप्रणिधान नाम अतीचार है ॥ ३ ॥ बहुरि सामायिककूं उत्साहरहित निरादरतैं करै सो अनादर नाम अतीचार है ॥ ४ ॥ बहुरि सामायिक करता देव-वंदनादिकके पाठ भूलि जाय वा कायोत्सर्गादिक भूलि जाय सो अस्मरण नाम अतीचार है ॥ ५ ॥ ऐसैं पंच अतीचार सहित सामायिकका वर्णन किया ।

अब प्रोषधोपवासकूं वर्णन करै हैं—

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु । चतुरभ्यवहार्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥

अर्थ—पर्वणि जो चतुर्दशी अर अष्टमीका दिवस-रात्रिविषैं चार प्रकार आहारका जो सम्यक् इच्छा करि त्याग करना सो प्रोषधोपवास जानने योग्य है । एक मासविषैं दोय अष्टमी अर दोय चतुर्दशी ए अनादितैं पर्व ही हैं । इन पर्वनिमें गृहस्थ व्रत-संयम सहित ही रहै । जातैं धर्मात्मा संयमी हैं ते तो सदाकाल व्रती ही रहै हैं । यातैं धर्ममें अनुरागका धारक गृहस्थ एक महिना में चार दिन तो समस्त पापके आरम्भ अर इन्द्रियनिके विषयनिकूं नष्ट करि व्रतशीलसंयमसहित उपवास धारण करि, चार प्रकारका आहारका त्याग करि, संयम सहित तिष्ठैं ताकैं प्रोषधोपवास जानना । अब प्रोषधोपवासका विशेष कहै हैं । सप्तमीके दिन वा

त्रयोदशीके दिन मध्याह्नकाल पहली एक बार भोजन-पानादिक करि समस्त आरम्भ, वाणिज, सेवा, लेन-देनका त्याग करि, देहादिकमें ममत्व त्यागि, एकान्त वसतिका तथा जिनमन्दिरमें एकान्त स्थान वा चैत्यालय वा शून्य गृह मठादिक वा प्रोषधोपवास करनेका स्थानमें जाय समस्त विषयनिका त्याग करि, मनवचनकायकी प्रवृत्तिनिकूं रोकि धर्म-ध्यान करिकैं वा स्वाध्याय करिकैं सप्तमी वा त्रयोदशीका अर्द्ध दिनकूं व्यतीत करै, पाछैं संध्याकाल-सम्बन्धी देववन्दनादिक करि रात्रिनै धर्मकथा वा जिनेन्द्रका स्तवनादिक करि रात्रि व्यतीत करै वा धर्मध्यान करता शोधित संथरामें अल्प काल प्रमाद टालि रात्रि व्यतीत करै। अष्टमी चतुर्दशीका प्रातःकालमें सामायिकादिक वन्दना करि तथा प्रासुक द्रव्यनितैं पूजनकरि, शास्त्रका अभ्यासकरि, भावनाका चिंतवनकरि, धर्मध्यानसहित अष्टमी चतुर्दशीका दिन अर समस्त रात्रिकूं व्यतीत करि, नवमी वा पूर्णिमाका प्रभातसंबंधी कर्मक्रिया करि, पूजनादि वन्दना करि, उत्तम मध्यम जघन्य पात्रमें कोऊ पात्रका लाभ होय ताकूं भोजन कराय आप पारनौ करै। ऐसैं षोडश प्रहर धर्मसहित व्यतीत करै ताकैं उत्कृष्ट प्रोषधोपवास होय है। तथा कार्तिकेयस्वामी कह्या है। जो अष्टमी चतुर्दशीके दिन स्नान, विलेपन, आभूषण, स्त्रीसंसर्ग, पुष्प, अत्तर, फुलेल, धूपादिकनितैं त्याग जो ज्ञानी वीतरागतारूप आभरण करि भूषित हुआ दोऊ पर्वनि में सदाकाल उपवास करै वा एक वार भोजन करै वा नीरस आहार करै ताकै प्रोषधोपवास होय है। तथा अमितगतिश्रावकाचारमें पर्वीका दिनमें उपवास, अनुपवास, एक भुक्त ऐसैं तीन प्रकार कह्या है। तिनमें चार प्रकार आहारका त्यागकूं उपवास कह्या अर एक वार जल ग्रहण करै ताकूं अनुपवास कह्या अर एक वार अन्न-जल ग्रहण करना ताकूं एकभुक्त ऐसी संज्ञा है, परन्तु तात्पर्य ऐसा जानना जो अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय करिकै धर्ममें लीन भया उपवास करै तथा आगैं प्रोषधप्रतिमा चतुर्थी कहसी तिसविषैं तो षोडश प्रहरका नियम जानना अर दूजी व्रतप्रतिमामें यथाशक्ति व्रत, तप, संयम धारण करि पर्वीमें धर्मध्यानसहित रहना।

अब उपवासमें और हू वर्णन करै हैं—

पंचानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्। स्नानाञ्जन-नस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात् ॥१०७॥

अर्थ—उपवासके दिन हिंसादिक पञ्च पापनिका त्याग करि रहै अर अलंक्रिया कहिये आभरणादिक मण्डनका त्याग करै अर गृहकार्यका आरम्भ, जीविकाका आरम्भ छांडै अर सुगंधि केशर कर्पूरादिक तथा अत्तर फुलेलादिक गंधके ग्रहणका त्याग करै अर पुष्पनिका ग्रहण करनेका त्याग करै। बहुरि स्नान करनेका, नेत्रमें अञ्जन आंजनेका, अर नास लेनेका त्याग करै। तथा और हू नृत्य वादित्रके बजावनेका, देखनेका, श्रवणका त्याग करै। तथा और हू पंच इन्द्रियनिके भोगका त्याग करै। जातैं उपवास करिये है सो इन्द्रियनिका मद मारनेकूं अर इन्द्रियनिका विषयांमें गमन है ताके रोकनेकूं अर कामके मारनेकूं, प्रमाद आलस्यादिकनिके

रोकनेकूं-नष्ट करनेकूं, आरम्भादिकतैं विरक्त होनेकूं, परीषह सहनेमें सामर्थ्य होनेकूं, धर्मके मार्गतैं नाहीं चिगनेकूं, जिह्वा इन्द्रिय उपस्थइन्द्रियके दण्ड देनेकूं, उपवास करिये है । अर अपनी प्रशंसा वा लाभ वा परलोकमें राज्यसंपदादिक प्राप्त होनेकूं उपवास नाहीं करिये है। केवल विषयानुराग घटावनेकूं शक्ति बधावनेकूं उपवास करिये है । जातैं इन्द्रियां खानपानादिकके नाना स्वादमें निरन्तर प्रवर्तैं हैं उपवास करनेतैं रसादिकके भोजनमें लालसा नष्ट हो जाय, निद्राका विजय हो जाय, काम मार्‍या जाय तातैं उपवासका बडा प्रभाव जानि उपवास करिये है ।

अब उपवासका दिन कैसे व्यतीत करै सो कहैं हैं—

धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान् । ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥१०८॥

अर्थ—उपवास करता गृहस्थ है सो निरालसी हुआ संता ज्ञानका अभ्यासमें अर धर्मध्यानमें तत्पर होहु अर अतितृष्णारूप हुआ धर्मरूप अमृतका पान कर्णइन्द्रियकरि करिहू । अर अन्य भव्य जीवनिकूं धर्मरूप अमृतका पान करावो ।

भावार्थ—उपवासके दिन धर्मकथा श्रवण करो तथा अन्य धर्मात्मानिकूं धर्मश्रवण करावो ज्ञानका अभ्यासकरि वा धर्मध्यानमें लीनता करि ही उपवासका अवसर व्यतीत करो । आलस्य निद्राकरि व्यतीत मत करो तथा आरम्भादिकमें, विकथामें काल व्यतीत मत करो ।

अब उपवासका अर्थ कहैं हैं—

चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः । स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥१०९॥

अर्थ—अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य ये चार प्रकारके आहार इनका त्याग सो उपवास है । अर धारणाका दिनविषैं अर पारणा का दिनविषैं एकवार भोजन करना सो प्रोषध कहिये हैं । ऐसैं षोडश प्रहर भोजनादिक आरम्भ छांडि पाछैं भोजनादिक आरम्भ आचरण करै सो प्रोषधोपवास है ।

अब उपवासके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे । यत्प्रोषधोपवासव्यतिलंघनपञ्चकं तदिदम् ॥११०॥

अर्थ—जो प्रोषधोपवासके पंच अतीचार हैं ते ऐसैं जानने:--नेत्रनितैं देख्यां बिना अर कोमल उपकरणतैं शुद्ध किये बिना जो पूजाके तथा स्वाध्यायके उपकरण ग्रहण करना (१) बहुरि देख्यां सोध्यां विना उपकरणनिका मेलना अथवा शरीरके हस्त पादादिक

पसारना (२), बहुरि देख्यां सोध्यां विना आस्तरण जो शयन करनेका उपकरण बिछावना बैठना (३), ऐसैं ए तीन अतीचार हैं। बहुरि उपवासमें अनादर करना उत्साह-रहित करना सो अनादर नाम अतीचार है (४) बहुरि उपवासके दिन क्रिया पाठ करनेकूं भूल जाना सो अस्मरण नाम अतीचार है (५) ऐसैं उपवासके पंच अतीचार कहे ते टालने योग्य हैं।

अब वैयावृत्य नामा शिक्षाव्रत कहनेकूं सूत्र कहैं हैं। इस व्रतकूं अतिथिसंविभाग नाम हू कहिये हैं—

दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये। अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

अर्थ—यहां परमागममें दाननीकूं वैयावृत्य कहिये हैं। जाकै तप ही धन है अर्थात् जो इच्छानिरोधादिक तपहीकूं अपना अविनाशी धन जानै है, जातैं तप विना समस्त कर्मकलंकमलरहित आत्माका शुद्ध स्वभावरूप अविनाशी धन नाहीं पाइये, तातैं रागादिक कषायमलका दग्ध करनेवाला ऐसा तपरूप धन ग्रहण किया अर जो संसारमें नष्ट करनेवाला जड अचेतन विनाशीक सुवर्णादिक त्याग किया ऐसा जो तपकी निधि जो परम वीतरागी दिगम्बर यतिनिकूं आप दातारके अर पात्रके धर्मप्रवृत्तिके अर्थि जो दान देना सो वीतरागी यतीनिकी वैयावृत्य है। कैसे हैं दिगम्बर यती? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इत्यादिक गुणनिका निधान हैं। बहुरि कैसे हैं? जातैं नाहीं है अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह जिनके ऐसे मठ, मकान, उपासरा, आश्रमादिकरहित एकाकी अथवा गुरुजनांकी चरणांकी लार कदे वनमें, कदे पर्वतनिकी निर्जन गुफानिमें, कदे घोर वनमें, नदीनिके तटनिके नियमरहित है नित्य विहार जिनका, असंयमीनिका, गृहस्थानिका संगमरहित आत्माकी विशुद्धता जो परम वीतरागताकूं साधता अर लौकिकजनकृत पूजा, स्तवन, प्रशंसादिककूं नाहीं चाहता, परलोकमें देवलोकादिकानिके भोगनिकूं तथा इन्द्रपनाका अहिमिंद्रपनाका ऐश्वर्यकूं, रागरूप अंगारेनिकरि तप्त महान् आताप उपजावनेवाली तृष्णाके बधावनेवाले जानि परम अतीन्द्रिय आकुलतारहित आत्मीक सुखकूं सुख जानता देहादिकमें ममत्वरहित आत्मकार्य साधै है। ऐसे साधुजनका वैयावृत्यका लाभ अनन्तकालमें दुर्लभ है। कैसै हैं साधु? यद्यपि इस देहतैं अत्यन्त निर्ममत्व हैं तो हू देहकूं रत्नत्रयका सहकारी कारण जानि रस नीरस कडा नरम आहार देय रत्नत्रयका साधनकरि धर्मके अर्थि इस कृतघ्नदेहकी रक्षा करै हैं। जो अकालमें देह नष्ट होय जायगा तो मरकरि देवादिक पर्यायमें असंयमी जाय उपजूंगा; तहां असंख्यातकालपर्यन्त असंयमी हुआ कर्मका बन्ध करूंगा। तातैं जो आहारादिकका त्याग करि इस मनुष्यपनाका देहकूं मार्‍या तो कर्ममय कार्माण देह नाहीं मरैगा। इस देहकूं मार्‍या तो नवीन और देह धारण करूंगा। तातैं इन समस्त शरीर के उत्पन्न करनेका बीज जो कर्ममय कार्माणदेह है, याके मारनेमें यत्न करूं। यातैं कषायनिकूं जीतता विषयनिका निग्रह करता, छियालीस दोष टालि बत्तीस अन्तरायरहित चौदह मलका परिहार करिकैं आपके निमित्त नाहीं किया ऐसा शुद्ध आहारकी योग्यता मिल जाय तो अर्द्धा उदर तो भोजनतैं भरै, चतुर्थ भाग जलतैं भरै, चतुर्थ भाग ध्यान अध्ययन कायोत्सर्गादिकमें सुखतैं प्रवृत्तिके अर्थि खाली राखै है। न्योत्या बुलाया जाय नाहीं, याचना करै

नाहीं, हस्तादिककी समस्या करै नाहीं ऐसे साधुनिकूं जो आहारादिकका दान सो वैयावृत्य है। कैसाक है दान ? अनपेक्षितोपचारोपाक्रिय जो प्रत्युपकार कहिये हमारा हू कुछ उपकार करैगा वा उपक्रिय कहिये। हमकूं प्रसन्न होय विद्या, मन्त्र, औषधादिक देगा तथा मुनीश्वरनिके अर्थि देनेतैं मेरी नगरमें दातापनाकरि मान्यता हो जायगी वा राज्यमान्य हो जाऊंगा, मेरे घरमें अटूट धन होजायेगा, तातैं आगैं पंचाश्चर्य भये हैं मेरे हू लाभ होयगा ऐसा विकल्प अर वांछा नाहीं करता, केवल रत्नत्रयका धारकनिकी भक्तिकरि आपकूं कृतार्थ मानि अपना मनवचनकायकूं तथा गृहचारा पायाकूं कृतार्थ मानता दान करै है, आनन्दसहित आपनेकूं कृतकृत्य मानै है सो वैयावृत्य है।

अब वैयावृत्यका अन्य हू स्वरूप कहैं हैं—

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्। वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥११२॥

अर्थ——संयमीनिके जो व्यापत्ति-व्यपनोद कहिये नाना प्रकारकी जे आपदा ताहि दूर करना अर सयमीनिका चरणमर्दनादिक करना और हू जो संममीनिका गुणमें अनुराग करि यावन्मात्र उपकार करनासो वैयावृत्य है।

भावार्थ—साधुनिके ऊपरि कोऊ देव मनुष्य तिर्यंच वा अचेतनकरि किया उपसर्ग आया होय तो अपनी शक्तिप्रमाण उपसर्ग दूर करै तथा चोर, भील, दुष्टादिक मार्गमें खेदित किया होय अर परिणाम क्लेशित होय गया होय तिनकूं धैर्य धारण करावना तथा मार्गकरि खेदित भया होय ताका पादमर्दनादिक करना, रोगी होय ताका संयम मलीन नाहीं होय तैसैं यत्नाचारतैं आसन शय्या वसतिकाका सोधना, यत्नाचारपूर्वक उठावना, बैठावना, शयन करावना, मलसूत्रादिक कराय देना जो अबुद्धिपूर्वक मलसूत्रादिक अयोग्य स्थानमें वा वसतिकामें भया होय तो यत्नतैं अविरुद्ध स्थानमें क्षेपना तथा कफ नाशिका मलादिककूं पूंछना उठाय अविरुद्ध स्थानमें क्षेपना, आहार औषधादिक संयमीके योग्य होय तिनकूं अवसरमें देय वेदना दूर करना तथा कालके योग्य बाधारहित वस्तुका देना , वेदना करि चलायमान चित्त होगया होय तो उपदेश देय चित्तकूं थांमना, धर्मकथा करना, अनुकूल प्रवर्तना, गुणनिका स्तवन करना ऐसैं संयमीनिका गुणनिमें अनुराग करि जेता उपकार करना सो समस्त वैयावृत्य है।

अब वैयावृत्यमें प्रधान आहारदान है ताकूं कहिये हैं—

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन। अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥११३॥

अर्थ—सप्त गुणनिकरि सहित जो दातार है सो सून अर आरम्भ करि रहित जे आर्य कहिये सम्यग्दर्शनके धारक मुनि तिनकूं नवपुण्य परिणामनिकरि जो प्रतिपत्ति कहिये गारव आदर करि अंगीकार करना ताहि दान कहिये हैं।

भावार्थ—दान करना सो तीन प्रकारके पात्रनिकूं करना। तिनमें जो चाकी, चूल्हा, ओखली, बुहारी, परींडा ये तो पंच सून अर द्रव्यका उपार्जनकूं आदि लेय समस्त आरम्भ अर पंच सून करि रहित तो उत्तम पात्र दिगम्बर साधु है। व्रतनिका धारक श्रावक मध्यमपात्र है अर व्रतकरि रहित अर सम्यक्त्व करि सहित जघन्य पात्र है। तिनमें उत्तमपात्रादिकनिकूं दानका देनेवाले दातार के सप्त गुण है। दान देय इस लोकसम्बन्धी विख्यातता, लोकमान्यता, राजमान्यता, धनधान्यादिककी वृद्धि, यशकीर्तनादि इस लोकसम्बन्धी फल न चाहिये ॥ १ ॥ बहुरि दातार क्रोधकषायकूं नाहीं प्राप्त होय जो बहुत लेनेवाले हैं कौन कौनकूं देवैं ऐसा क्रोध नाहीं करि मुनि श्रावकादिकनिकूं दान देना ॥ २ ॥ बहुरि कपटकरि सहित दान नाहीं करै। कहना और, दिखावना और, करना और, लोकनिकूं भक्ति दिखावनेमाही संक्लेशित होना ऐसा कपटकरि रहित दान करै ॥ ३ ॥ अन्य दातारतैं ईर्ष्यारहित होय दान करै। जो इसने कहा दिया है ? मैं ऐसा दान करूं जो मेरा दानतैं इसका यश घटि जाय ऐसैं ईर्ष्याभावकरि दान नाहीं करैं ॥४॥ अर दान देय विषाद करै नाहीं। जो कहा करूं ? मैं समस्तमें उच्चता राखूं हूँ अर नाहीं दूं तो मेरी उच्चता घटि जाय ऐसैं विषादी हुआ नाहीं देवै ॥ ५ ॥ बहुरि पात्रका संगम मिल जाय या निर्विघ्न दान होजाय तिसका अपूर्व निधि पायेकासा आनन्द मानना सो मुदितभाव जानना ॥ ६ ॥ दान देनेका मद अहंकार नाहीं करना सो निरहंकारता नाम गुण है ॥ ७ ॥ ऐसैं पात्र-दान करता दातार सप्तगुण सहित होय है। बहुरि पात्रकूं दान दैवै सो मुनि श्रावकका जैसा पद होय तिसं परिमाण नवधा भक्तिकरि देवै। नव प्रकार भक्तिके नाम—संग्रह ॥ १ ॥ उच्चस्थान ॥ २ ॥ पादोदक ॥ ३ ॥ अर्चन ॥ ४ ॥ प्रणाम ॥ ५ ॥ मनःशुद्धि ॥ ६ ॥ वचनशुद्धि ॥ ७ ॥ कायशुद्धि ॥ ८ ॥ एषणाशुद्धि ॥ ९ ॥ तिनमें मुनीश्वरनिकूं तथा क्षुल्लककूं तो तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ याका अर्थ खडा रहो खडा रहो ऐसैं तीन बार कहना। जामें अति पूज्यपनातैं अति अनुराग जाका चित्तमें होयगा सो ही तीन बार आदरपूर्वक कहैगा। अन्य हू श्रावकादिक योग्यपात्र घर आवें तो आइये पधारिये इत्यादिक आदरके वचनका कहना सो संग्रह वा प्रतिग्रह है ॥ १ ॥ बहुरि उच्चस्थान देना ॥ २ ॥ अर प्रासुक प्रमाणीक जलसूं चरण धोवना ॥ ३ ॥ जैसा अवसर जैसा पात्र ताकैं योग्य पूजन स्तवन पूज्यपनाके वचन कहना ॥ ४ ॥ अर मुनि वा श्रावककी योग्यता प्रमाण नमस्कार आदि करना ॥ ५ ॥ मनकी शुद्धता करनी ॥ ६ ॥ वचनकी शुद्धता करनी—अयोग्य वचन नाहीं बोलना ॥ ७ ॥ कायशुद्धि यत्नाचार सहित चलना उठना इत्यादिक ॥ ८ ॥ अर भोजन शुद्धि पात्रके योग्य होयं सो देना यो एषणा शुद्धि है ॥ ९ ॥ ऐसैं जिन-सूत्रके अनुसार पात्रके योग्य देशकालके योग्य आहार देना। जातैं पात्रके गुणनिमें हर्ष अनुराग विना देना निष्फल है अर जाकूं धर्मप्रिय होयगा ताकैं धर्मात्मामें अनुराग होयगा ही ऐसा नियम है। अर मुनीश्वरनिके जिनधर्मींकी नवधा भक्तिहीतैं परीक्षा होय है। जाकै नवधा भक्ति नाहीं, ताका हृदयमें धर्म हू नाहीं। धर्मरहितके मुनीश्वर भोजन हू नाहीं करै हैं। अन्य हू धर्मात्मा पात्र गृहस्थादिक हैं। ते हू आदर विना लोभी होय, धर्म

का निरादार कराय, दान वृत्तितैं भोजनादिक कदाचित् नाहीं ग्रहण करै है। जैनीपना ही दीनतारहित परम संतोष धारण करना है। अर दातार है सो ऐसा आहार, औषधि, शास्त्र, वसतिका, वस्त्रादिक द्रव्यका दान करै जातैं रागद्वेष वधै नाहीं, मद वधै नाही; जातैं मोह, काम, आलस्य, चिंता, असंयम, भय, दुःख अभिमानका करनेवाला द्रव्यकूं देना योग्य नाहीं। जिस द्रव्यके देनेतैं स्वाध्याय ध्यान तप संतोषकी वृद्धि होय सो द्रव्य देने योग्य है। जातैं पात्रका दुःख मिटि जाय, रोग नष्ट होजाय, परिणामका संक्लेश नष्ट होजाय ऐसा द्रव्य देना योग्य है। इहां अन्य विशेष जानना, दानविषैं पांच प्रकार जानना— दाता ॥ १ ॥ देय ॥ २ ॥ पात्र ॥ ३ ॥ विधि ॥ ४ ॥ फल ॥ ५ ॥ दाता तो कैसाक होय ? सप्त गुणका धारक होय धर्ममें तत्पर पात्रनिके गुणनिके सेवनमें लीन भया पात्रकूं अंगीकार करै। प्रमादरहित ज्ञानसहित शांत परिणामी हुआ पात्रकी भक्तिमें प्रवर्तै सो भक्तिगुण दातारका है ॥ १ ॥ देनेमें अति आसक्त हुआ पात्रका लाभकूं परम निधान लाभ मानै सो दाताका तुष्टि गुण है ॥ २ ॥ साधुनिकूं दान होजाना इसलोक परलोकमें परम कल्याण है ऐसा परिणाममें गाढ प्रीति सो दाताका श्रद्धा नाम गुण है ॥ ३ ॥ जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकूं सम्यक् विचार योग्य वस्तु का दान करै सो दातारका विज्ञान गुण है ॥ ४ ॥ दानकूं देय दानका प्रभावतैं संसारसंबंधी धन, राज्य, ऐश्वर्य, विद्या, मन्त्र, यश, कीर्तनादि फलकूं नाहीं चाहै सो दातारका अलोलुप गुण है ॥ ५ ॥ जाकै अल्प हू वित्त होय तो हू दान देनेमें बडा उद्यम होय जाका दानकूं देखि धनाढ्य पुरुषनिके हू आश्चर्य उपजै सो दातारका सात्विकगुण है ॥ ६ ॥ कलुषताका महान कारण हू आजाय तो हू किसीके अर्थि रोष नाहीं करै सो दाताका क्षमा गुण है ॥ ७ ॥ और हू मुनि तथा श्रावक तथा अव्रत सम्यग्दृष्टि ये तीन प्रकारके पात्र तिनके अर्थि देनेवाले उत्तम दातारके अनेक गुण हैं। विनयवान होय। विनयरहितका दान निष्फल है। जातैं कुछ देनेकूं नाहीं होय, तो विनय करना ही महादान है। सत्कार करना, प्रिय वचन बोलना, स्थान देना, गुण स्तवन करना, यो ही बडो दान है। धर्ममें प्रीति होय, दानका अनुक्रमका ज्ञाता होय, दानका कालकूं जाननेवाला होय, जिनसूत्रका जाननेवाला होय, भोगनिकी वांछा रहित होय, समस्त जीवनिका दयालु होय, रागद्वेषकी मंदता जाकैं होय, सार असारका जाननेवाला होय, समदर्शी होय, इन्द्रियनिकूं जीतनेवाला होय, आया परीषहतैं कायरतारहित होय, अदेखसका भावरहित होय, स्वमत परमतका ज्ञाता होय, प्रियवचनसहित होय, व्रतीनिका पवित्र गुणकरि जाका चित्त व्याप्त होय, लोकव्यवहार अर परमार्थ दोऊनिका जाननेवाला होय, सम्यक्त्वादि गुणसहित होय, अहंकारादि मदरहित होय, वैयावृत्यमें उद्यमी होय ऐसा उत्तम दातार प्रशंसायोग्य है। बहुरि जाका हृदयमें निरन्तर ऐसो विचार रहै कि जो द्रव्य व्रतीनिकी सेवामें लागे तथा साधर्मी जननिका उपकारमें, श्रावक जननिके आपदा दुःख निवारनमें धर्मके बधावनेमें, धर्ममार्गके चलावनेमें, लगैगा सो धन मेरा हे। अन्य संसारके कार्यनिमें, विषय–भोगनिमें, कुटुम्बके विषय-कषाय साधनेमें जो धन खर्च होय सो केवल बंधके करनेवाला संसारसमुद्रमें डबोनेवाला है। ये कुटुम्बके धन खाय हैं ते तो दायादार हैं, धन बटावनेवाले हैं, जबरीतैं धन लूटनेवाले हैं, राग-द्वेष क्रोधादि कषाय उपजाय व्रत संयमका घात करनेवाले

हैं अर मोकूं पापमें प्रेरणा करनेवाले हैं अर मेरे हू इनका संयोगतैं ऐसा अज्ञानरूप अंधकार छाया है जातैं धर्म अधर्म, न्याय अन्याय, यश अपयश कछु नाहीं दीखं है, स्त्री पुत्रादिकके विषय साधनेकूं अन्य निर्बल तथा भोले अज्ञानी जीवनिका धनके ठगनेमें, लूट लेनेमें, परिणाम उद्यमी होय जाय हैं। इस कुटुम्बकूं धन, वस्त्र, आभरण, भोजनादिककरि तृप्ति करनेके अर्थि झूठमें, चोरी में निरन्तर परिणाम लग्या रहै है। यातैं अब भगवान वीतरागका धर्मकूं पाय कुटुम्बके अर्थि धनका उपार्जनके अर्थि अन्यायमें, अनीतिमें तो नाहीं प्रवर्तन करना। जो न्यायमार्गतैं धनका उपार्जन होइगा, तिसमेंतैं मेरा कुटुम्बका अर धर्मके अर्थि दानका विभाग करि जीवनका दिन व्यतीत करूंगा। धन यौवन जीतव्य क्षणभंगुर है। अवश्य जायगा। मरण अचानक आयगा। धनसंपदा कुटुम्बादि कोऊ लार नाहीं जायगा। मेरा, दान, शील, तप, भावनाकरि उपजाया पुण्य एक परलोकमें मेरा सहायी होय लार जायगा। जो इहां समस्त सामग्री मिली है सो पूर्व जन्ममें जैसा दान दिया तैसी फली है। अब दानके देनेमें, धर्मात्मानिकी सेवामें, दुःखित बुभुक्षितनिके उपकारमें, प्रवर्तूंगा तो परलोकमें समस्त सुखकूं प्राप्त हूंगा, मोक्षमार्गकी सम्यग्ज्ञानादिक सामग्रीकूं प्राप्त हूँगा। भोजन तो दानपूर्वक भक्षण करैं ताका भोजन करना सफल है। अपना उदर भरना तो पशुके हू है। जाके गृहमें पात्रदान है ताका गृहाचार सफल है। दान विना पशुनिके हू रहने योग्य बिल होय ही है। पक्षीनिकै घूंसला होय ही हैं। समुद्रमें जल हू बहुत अर रत्न हू बहुत परन्त जल तो महाक्षार अर रत्न, मगर, मच्छादिकनि करि व्याप्त दोऊ उपकार विना निष्फल हैं। तैसैं धनवान कृपणका धन परके उपकार-रहित है सो निष्फल है। जो गृहस्थ धन पाय साधर्मीनिका उपकारमें, दीन अनाथनिके सत्कारमें नाहीं खरच किया सो यो धन याको नाहीं। यो धन तो किसी अन्य पुण्यवानको है। यो तो रखवालो भयो चौकसी करै है। धनका स्वामी तो अन्य ही पुण्यवान् है जो दान भोगमें लगावेगा। जाके घरमें पात्र आजाय अर देनेकी सामग्री होय फिर नाहीं दिया जाय ताकैं हस्तमें चिन्तामणि रत्न नष्ट भया जानहू। जो धनकूं पाय दानमें नाहीं प्रवर्तै है सो मूढ अपने आत्माकूं ठगे है। धनकूं दानमें लगावै है सो धनका स्वामी है। जाका परिणाम दानका देनेमें, पात्रके हेरनेमें निरन्तर प्रवर्तै है तिनके दानका संयोग नाहीं होय तो हू निरन्तर दान ही है। जो द्रव्यकूं अल्प होते वा बहुत होते हू पात्रकूं पाय अतिभक्तितैं देवै है सो दातार है। भक्तिरहितके दातापना नाहीं होय है।

बहुरि अवसर टालि अकालमें दान दे है तिनकै अकालमें बोया बीजकी ज्यों निष्फल होय है अर जो अपात्रमें दान दे है ताको दान खारडी भूमिमें बोया बीजकी ज्यों निरर्थक है। अथवा दुष्टकूं दिया दान सर्पकूं पाया दुग्ध मिश्रीकी ज्यों दातारने संसारके घोर दुःख मरण आताप देनेकूं विष समान परिणमै है। बहुरि अपना भाग्यप्रमाण जेता धन मिलै तितनामें दानका विभागमें परिणाम करै; ऐसा नाहीं विचारै। जो मेरे पास अधिक धन होय तो अधिक दान करूं। ऐसैं दान वास्ते अभिमानी होय धनकी वांछा मत करो। जेता आपके लाभान्तरायका क्षयोपशमसूं लाभ भया तेतामें संतोष करि अधिक की वांछा नाहीं करना सो ही बडा दान

है। आपकूं जो न्यायपूर्वक द्रव्य प्राप्त भया तिसमें जाका निरन्तर ऐसा परिणाम रहै-जो मेरा धनमेंतैं कोऊके अर्थि आजाय तो कमावना मेरा सफल है। अपने गृहके खरचमें लेनेमें देनेमें केई मोतैं कुछ कमायले तो ये ही हमारे बडा लाभ है ऐसा परिणाम दातारका रहै है। अर जो दान देय सो हर्षित चित्त होय देवै। जो देवै भी अर क्रोधकरी देवै, अपमानकरि देवै, तिरस्कारके वचन कहि देवै, रोषकारि देवै, दूषण लगाय देवै, तिस दातारके इस लोकमें तो कलह अर अपयश होय है, परलोकमें अशुभकर्मका फलतैं दारिद्र अपमानादिक अनेक भवनिमें प्राप्त होय है। अर देने योग्य नाहीं ऐसे खोटे दान कुदान ही हैं। तिनकूं देना योग्य नाहीं। भूमिदान देना योग्य नाहीं जामें हल, फावडा, खुरपादिकनिकरि भूमि विदारन करिये अर महान् हिंसा प्रवर्तै, महा आरम्भ पंचेन्द्रियादिक सर्प, मूषा, सूर, हिरणादिक बडे बडे जीवनिकूं धान्यादिक फलके बाधक जान मारिये हैं; भूमिकी ममताकरि भाई भाई परस्पर मारि मर जांय। तीव्ररागको कारण ऐसा भूमिदानतैं महाघोर पापका बन्ध जानो। बहुरि महाहिंसाका कारण तातैं अनेक हिंसा होय ऐसा लोहका दान महाकुदान जानि छांडना। बहुरि स्वर्णदान त्यागना, जाकरि पात्रका नाश होजाय, मान्या जाय, सदाकाल भय उपजावे, संयमका नाश करै तथा इस धनतैं राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, भय, मद, आरम्भादिकी प्रचुर उत्पत्ति होय, आत्मस्वरूपका विस्मरण हो जाय। तातैं वीतराग धर्मका इच्छुक स्वर्णदानकूं पाप समझि त्यागना। बहुरि कोट्यां त्रसजीवनिकी उत्पत्तिका कारण ऐसा तिलदान त्यागन योग्य है। बहुरि चाकी, चूल्हा, छाजला, बुहारी, मूसल, फावडा, दतीला, अन्न, तेल, दीपक, गुडादि रस इत्यादिक महापाप सामग्रीका भऱ्या महा आरम्भ मोहका उपजावने वाला, गृहका दानकूं धर्म मानि मिथ्यधर्मी दे हैं, सो कुदान है। बहुरि जिस गौकूं बांधनेमें हरित तृणादिक चरनेमें तथा जीया (जवा) बुग (वग) उपजनेमें, मलमें मूत्रमें असंख्यात जीव उपजैं। सींगनतैं मारनेतैं खुर पूंछादिकनितैं जीवघात करने वाला गौका कुदान सो दान है। बहुरि संसारके बधावनेवाला, महा बंधन करनेवाला, जो कन्याका दान सो कुदान है। इहां कहो जो कन्यादान तो गृहस्थकूं दिये विना कैसैं रह्या जाय? सो ठीक है। गृहस्थ है सो अपनी कन्याका विवाह योग्य कुलमें उपज्या जो जिनधर्मी व्यवहारचातुर्यादिक वरके गुण देखि कन्या देवे है; परन्तु कन्यादानकूं धर्म तो श्रद्धान नाहीं करै। जिन-धर्मी तो कन्यादानकूं पाप ही श्रद्धान करै है। जैसैं गृहाचारका आरम्भादिक अनेक पापका कारण है, तैसैं कन्यादान हू पापका कारण है; परन्तु विषयनिका दण्ड है सो अङ्गीकार किया ही सरै। अन्यमत वाले तो कन्यादान देनेका बहुत बडा फल कहै है; लक्ष यज्ञ कियाका फल कहै है, कोटि ब्राह्मणकूं भोजन करावनेतैं, कोटि गऊनिका दान देनेतैं हू अधिक फल कहे हैं। अन्यकी कन्याका विवाह कराय देनेका हू बडा धर्म कहै हैं। सो जिनधर्ममें तो याकूं संसार परिभ्रमणका कारण कुदान कहे हैं। बहुरि और हू संसार-समुद्रमें डबोवने वाले मिथ्यादृष्टि, लोभी, विषयनिका लंपटनिकरि कह्या कुदान त्यागने योग्य है। स्वर्णकी गाय बनाय देवैं हैं। तिलकी गाय, घृतकी गाय, रूपाकी गाय बनाय देवैं हैं। अर लेनेवाला घृतकी गायकूं लापसीकी गायकूं तिलकी गायकूं खाय है। स्वर्ण रूपाकीकूं कटावै है, गलावै है। अर गायकी पूंछमें तेतीस

कोटि देवता अर अडसठ तीरथ कहै हैं। तथा दास दासीका दान दे हैं। रथदान दे है। तथा संक्रांति मानि, ग्रहण मानि, व्यतीपातादि मानि, दान देवैं हैं। ते समस्त मिथ्यात्वका प्रभाव है। बहुरि मृतककूं तृप्ति करने के अर्थि ब्राम्हणादिकनिकूं भोजन करावै हैं। देखहु ब्राह्मणनिके जीमनेतैं मृतककूं कैसैं पहुंचेगा ? दान तो पुत्र देवै अर पिता पापतैं छुटै। बहुत कालका मऱ्या हुआका हाड गंगामें क्षेपणेतैं मृतकका मोक्ष होय। गयामें जाय श्राद्ध करनेतैं इकवीस पीढीका उद्धार कहै हैं। गयामें पिंड देनेतैं दश पीढी पहली दश पाछली एक आप ऐसैं एकवीस पीढी संसारमें कुगतिमें पडी हुई निकस बैकुण्ठ वास करै है। अगाऊ बेटा पोतानिका सन्तान चाहै जेता पाप करो गया श्राद्ध इकबीस पीढीमें कोऊ एक हू पिंडदान दिया तो सबकी मुक्ति होय जायगी तातैं कोऊ पापको भय मत करो। बहुरि जे श्राद्धमें ब्राह्मणनिकूं मांसपिंड जिमावै है, मांसकरि देवतानिकूं तृप्त करै हैं। देवता दुर्गा भवानी जीवनिका, राक्षसनिका, तिर्यंचनिका, रुधीर पीवनेतैं बहुत तृप्त होती मानै हैं। देवीनिकै बकरा, भैंसा काटि बलिदान करै हैं। पापी खोटा शास्त्र बनाय अपने मांसभक्षणके अर्थि महाघोर कर्म करि नरकके मार्गकूं आप जाय हैं। अन्यकूं नरक पहुंचावै हैं। सो जिह्वाइन्द्रीका लोलुपी लोभी कौन घोरकर्म नाहीं करै ? वे पापी मनुष्यपनामें ल्याली, स्याल, कागला, कूकरा, व्याघ्रकासा आचरण करै हैं। जिनका ऐसा घोरपापके शास्त्र तिनके धर्ममें अर म्लेच्छ धर्ममैं कुछ फरक नाहीं। ये अक्षर म्लेच्छनिके हैं। वेदके अक्षरनितैं लोकनिके अज्ञान उपजाय शिकारमें धर्म जनाया। जलचर, थलचर, नभचर जीवनिके मारनेमें धर्म बताया, जगतकूं भ्रष्ट किया है अर करै हैं। अर जाका देवता तो मुंडमाला अर मांसभक्षक रुधिर पीवनेमें अतिलीन है तिनके सेवकनिके पापकी कहा कथा। तिन कुपात्रनिकूं दान देना सो महा दुःखका करनेवाला कुदान है। ऐसैं कुदानके बहुत भेद हैं। कुदानके देनेतैं अर कुदानके लेनेतैं नरक–तिर्यंचनिमें बहुत जन्म–मरणकरि निगोदमें एकेन्द्रिय विकलत्रयमें अनन्तकालपर्यंत असंख्यात परावर्तन करै है। या जानि कुदान मत करो। कुपात्रदान मत करो।

अब यहां पहले सूत्रके अनुकूल दानका फल कहैं हैं—

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानां।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥११४॥

अर्थ— गृहरहित ऐसे अतिथि जे मुनि तिनकी जो प्रतिपूजा कहिये दान सन्मानादिक उपासना है सो गृहस्थके षट्कर्मकरि उपार्जन किया जो पापकर्मरूप मल ताहि शुद्ध करै है। जैसैं शरीर ऊपरि लग्या रुधिररूप मल तिनै जल धोवै है।

भावार्थ—गृहस्थके नित्य ही आरम्भादिककरि निरन्तर पापका उपार्जन होय है। तिस पापकूं धोवनेकूं एक मुनीश्वरादिकनिकूं दिया दान ही समर्थ है। जैसे रुधिर लग्या होय सो रुधिरतैं नाहीं धुवै है; जलकरि धुवै है, तैसें गृहचारके आरम्भतैं उपज्या पाप मल है सो गृहके त्यागी साधूनिके अर्थि दान देनेकरि धुवै है।

अब दानका और हू कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा। भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥११५॥

अर्थ—तपके निधान जे साम्यभावके धारक, द्वाविंशति परीषहनिके सहनेवाले अपने देह पंचइन्द्रियनिके विषयनिमें निर्ममत्व, ऐसे उत्तम पात्र जो मुनि तिनके अर्थि नमस्कार प्रणति करनेतैं उच्चगोत्र जो स्वर्गलोकमें जन्म तथा स्वर्गतैं आय तीर्थंकरपनामें जन्म वा चक्रीपनामें जन्मरूप उच्चगोत्रकूं तथा सिद्धनिकी सर्वोत्कृष्ट उच्चताकूं प्राप्त होय है। अर उत्तमपात्रके दान देनेतैं भोगभूमिके भोग वा देवलोकके भोग भोगि, राज्यादिकनिके भोग पाय, अहमिंद्र लोकके भोग पाय, तीर्थंकर चक्रीपना पाय, निर्वाणके अनन्त सुखका भोगकूं पावै हैं। बहुरि साधुनिकी उपासना जो सेवन ताकरि त्रैलोक्यमें पूज्य केवली होय हैं। बहुरि साधुनिका भक्ति करनेतैं सुन्दर रूप ताहि प्राप्त होय हैं। बहुरि साधुनिका स्तवन करनेतैं त्रैलोक्य-व्यापिनी कीर्ति इन्द्रादिकनिकरि स्तवन कीर्तनकूं प्राप्त होय हैं।

और हू दानके प्रभाव कहनेकूं सुत्र कहै हैं—

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले। फलति च्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥११६॥

अर्थ—अवसरविषै, सत्पात्रविषैं गया अल्प हू दान सुन्दर पृथ्वीमें प्राप्त भया वडका बीजकी ज्यों प्राणीनिके छाया जो महात्म्य ऐश्वर्य अर विभव जे भोगोपभोगकी सम्पदारूप वांछित बहुत फलकूं फलै है; जातैं पात्रदानका अचिंत्य फल है। पात्रदानके प्रभावतैं सम्यक्त्व ग्रहण हो जाय है। बहुरि सम्यक्त्वरहित मिथ्यादृष्टि हू पात्रदानके प्रभावतैं उत्तम भोगभूमिविषैं जाय उपजै है। कैसाक है भोगभूमि? जहां तीन पल्यकी आयु, तीन कोशका ऊंचा शरीर, अद्भुतरूप, समचतुरस्र संस्थान, महाबल, पराक्रमयुक्त मनुष्य होय है। स्त्री पुरुषनिका युगल उपजै है। तीन दिन गये कदाचित् किंचित् आहारकी इच्छा उपजै सो बदरीफल प्रमाण आहार करनेकरि क्षुधाकी वेदनारहित होय है। दश जातिके कल्पवृक्षनितैं उपजे वांछित भोगनिकूं भोगै है। जहां शीत उष्णताकी वेदना नाहीं है, जहां वर्षाका ताडनाका उपजना नाहीं, दिन रात्रिका भेद नाहीं, सदा उद्योतरूप अन्धकाररहित काल वर्तै है, शीतल मन्द सुगन्ध पवन निरन्तर विचरै है, जिस भूमिमें रज पाषाण तृण कंटक कर्दमादि नाहीं होय है, स्फटिक मणि-

समान भूमिका है, यावज्जीव रोग नाहीं, शोक नाहीं, जरा नाहीं, क्लेश नाहीं, जहां सेवक नाहीं, स्वामी नाहीं, स्वपर चक्रका भय नाहीं, षट्कर्मकरि जीवनोपाय करना नाहीं। दश प्रकारके कल्पवृक्ष हैं। तूर्याङ्ग ॥ १ ॥ पात्रांग ॥ २ ॥ भूषणांग ॥ ३ ॥ पानांग ॥ ४ ॥ आहारांग ॥ ५ ॥ पुष्पांग ॥ ६ ॥ ज्योतिरंग ॥ ७ ॥ गृहांग ॥८॥ वस्त्रांग ॥९॥ दीपांग ॥ १० ॥ तूर्याङ्ग जातिका कल्पवृक्ष तो बांसुरी, मृदंग इत्यादिक कर्णइन्द्रियनिकूं तृप्त करनेवाला वादित्र दे हैं ॥ १ ॥ पात्रांग जातिका वृक्ष रत्न-सुवर्णमय अनेक प्रकारके आनन्दकारी कलश, दर्पण, झारी, आसन, पर्यंकादि समस्त जातिके पात्र दे हैं ॥ २ ॥ भूषणांग जातिके वृक्ष अनेक प्रकारके आभूषण क्षण-क्षणमें पहरने योग्य हार, मुकुट, कुण्डल, मुद्रिकादि अङ्गकूं भूषित करनेवाले वा महलकूं, द्वारकूं, तथा शय्या आसन भूमिकूं भूषित करनेवाले अनेक आभूषण दे हैं ॥ ३ ॥ पानांगजातिके वृक्ष नाना प्रकार पीवनेका योग्य शीतल सुगन्ध पान लिये खडे हैं ॥ ४ ॥ आहारांगजातिके कल्पवृक्ष अनेक स्वादरूप अनेक प्रकारके आहार धारै हैं; परन्तु क्षुधाकी पीडा ही नाहीं तदि रोग विना इलाज औषधि कौन अङ्गीकार करै ? भोगभूमिमें उपजनेवालेके क्षुधा नाहीं। तीन दिन गये बदरीफल मात्र भोजन करै हैं ॥ ५ ॥ पुष्पांगजातिके वृक्ष नानाजातिके महा कोमल सुगंध पुष्पमाला आभरणादिक अनेक पुष्प धारै है ॥ ६ ॥ ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्षनिकी ज्योतिकरि सूर्य, चंद्रमा, नजर ही नाहीं आवै हैं। सूर्यके उद्योततैं बहुतगुणा उद्योत धारण करै हैं तातैं रात्रि दिनका भेद नाहीं हैं ॥ ७ ॥ गृहांगजातिके कल्पवृक्ष अनेक महल चौरासी खणनिपर्यंत विस्तीर्ण रत्ननिकरि चित्र विचित्र दे हैं ॥ ८ ॥ वस्त्रांगजातिके कल्पवृक्ष नानाप्रकारके वांछित पहरने योग्य वस्त्र तथा शय्या, आसन, बिछायत आदि समस्त वस्त्र दे हैं ॥ ९ ॥ बहुरि दीपांगजातिके अन्धकार विना ही दीपमालिकाकी शोभाकूं विस्तारै हैं ॥ १० ॥ बहुरि भोगभूमिमें स्त्रीपुरुषनिका युगल मरण-समययें पुरुषकूं छींक अर स्त्रीकूं जम्भाई आवै है। तिस समयमें सन्तान युगल उत्पन्न होय है। सन्तानकूं तो माता-पिता नाहीं दीखैं अर माता-पिताकूं सन्तान नाहीं दीखैं। तातैं इनके वियोगका दुःख नाहीं है। अर मरण किये पाछैं इनका देह शरद् कालका मेघपलटवत् विलाय जाय है। बहुरि युगलिया उत्पन्न हुआ पाछैं सप्त दिन तो अपना अंगुष्ट चाटै हैं। अर पाछैं सप्त दिनमें सूधा औंधा पलटना होय, पाछैं सप्त दिनमें अस्थिर गमन करैं हैं। पाछैं सप्त दिनमें परिपूर्ण यौवनवान होय हैं। बहुरि सप्त दिनमें समस्त दर्शन-ग्रहण, चातुर्य कलाग्रहण करै हैं। ऐसैं गुणचास दिनमें परिपूर्ण होय अनेक पृथक् विक्रिया अपृथकविक्रियासहित नानाप्रकारके महल, मन्दिर, वनविहार करते क्षणक्षणमें अनेक कोटि नवीन नवीन विषय तिनकी सामग्री भोगतैं अनेक क्रीडा रागरङ्गादिक अनेक सुखरूप क्रीडा-चेष्टाकरि तीन पल्य पूर्ण करि मरण समय में छींक जंभाई मात्रतैं प्राण त्यागै। सम्यग्दृष्टि होय सो तो सौधर्म ईशान स्वर्ग में जाय है अर मिथ्यादृष्टि मरणकरि भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवनिमें उपजै है। कषायके प्रभावतैं देवलोक विना अन्य गति नाहीं पावै हैं। बहुरि सम्यग्दृष्टि होय तथा श्रावकके व्रतका धारक होय जो पात्र दान करै सो षोडशम स्वर्गपर्यंत महर्द्धिक देव ही उपजै है। आगममें पात्र तीन प्रकार हैं अर्थात् उत्तमपात्र, मध्यमपात्र और जघन्यपात्र। तिनमें उत्तमपात्र तो महाव्रतनिके

धारक, अट्ठाईस मूलगुण तथा उत्तरगुणनिके धारक, देहमें निर्ममत्व वीतराग साधु हैं। मध्यम पात्र ग्यारह भदरूप श्रावक सम्यग्दृष्टि व्रतनिकरि सहित हैं तथा स्त्रीपर्यायमें व्रतनिकी हदकूं धारण करती तिनक एक वस्त्रतैं अन्य समस्त परिग्रहरहित-परके घर एक बार याचनारहित मौनतैं भिक्षा भोजनकरि आर्यिकानिका संगमें धर्मध्यानसहित महातपश्चरण करती तिष्ठै ऐसी आर्यिका मध्यमपात्र है। तथा अणुव्रत अर सम्यक्‌दर्शनसहित श्राविका मध्यमपात्र है। अर व्रतरहित जिनेन्द्रवचनके श्रद्धानी सम्यग्दर्शनसहित पुरुष तथा सम्यदर्शनसहित व्रतरहित स्त्री जघन्यापात्र है। इन तीन प्रकारका पात्रनिमें चार दान देना तथा सत्कार करना, स्थानदान करना, आदर करना, तथा यथायोग्य स्तवन पूजा प्रशंसादिकके वचन बोलना, उठि खडा होना, उच्च मानना सो समस्त दान हैं।

अब चार प्रकार दान कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्चदानेन । वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥ ११७ ॥

अर्थ—चतुरस्र ज प्रवीण ज्ञानी हैं ते आहार दान, औषधि दान, उपकरण दान अर आवास दान इन चार प्रकारके दान करके वैयाव्रतकूं चार स्वरूप करि कहै हैं। आहारदान, औषधिदान, उपकरणदान, आवासदान या प्रकार गृहस्थकै चार प्रकार दान कह्या। जातैं अभयदानकी प्रधानता तो छहकायके जीवनिकी कृत कारित अनुमोदनाकरि विराधनाका त्यागी दिगम्बर मुनीश्वरनिके है। अर श्रावकनिकै हू त्रस जीवनिका संकल्पी हिंसाका त्यागतैं अभयदान है ही; परन्तु अभयदानकी मुख्यता तो आरम्भका त्यागतैं, विषयनितैं अत्यन्त पराङ्मुखतातैं होय है। तातैं जेते गृहाचारतैं सम्पदातैं तथा न्यायरूप विषयनितैं परिणाम नाहीं निराला होय तितने आहारादिक चार प्रकारका दान करि पापका नाश करहू। सम्पदा, आयु, काय अत्यन्त अस्थिर है। गृहचारी तो दानकरि ही पूज्य है। आहारादिक दान विना गृहस्थपना पाप-आरम्भके भार करि पाषाणकी नाव-समान केवल संसार-समुद्रमें डबोवने वाला है। बहुरि ज्ञानी गृहस्थ चिंतवन करै है—जो यो धन मैं उपार्जन किया तथा पितादिकनिका धर्‍या हमारे विना खेद प्राप्त होगया तथा राज्य ऐश्वर्य, देश, नगर, आभरण, वस्त्र, स्त्री, सेवकनिका समूह समस्त जो विना खेद प्राप्त होगया सो समस्त पूर्व जन्ममें दान दिया दुःखितनिका पालनपोषण किया ताका फल है। तथा परके धनमें स्वप्नमें हू चित्त नाहीं चलाया, परम संतोष धारण करी विषयनिसूं विरक्त होय निर्वांछकता धारण करी ताका फल है। तथा दीन दुःखित, रोगी, असमर्थ, बाल, वृद्धनिकी दया धारण करि उपकार किया ताका फल यह सम्पदा है। सो दोय दिन याका संयोग है। परलोक लार जायगी नाहीं; जमीनमें गडी रहैगी तथा अन्य देशान्तरमें धरी रहैगी तथा अन्यपै रह जायगी वा स्त्री पुत्र–कुटुम्ब दायेदार मालिक बनैंगे तथा राजा

लूट लेगा तथा अचानक मरि दुर्गति चल्या जाऊंगा। यो धन सैकडां दुर्ध्यानतैं, महापापके आरम्भतैं, देश-देशनिमें परिभ्रमण करि बडा कष्टतैं उपार्जन किया था; प्राणनिसूं हू अधिक याकी रक्षा करी; अब इस धनका फल छोडकरि मरि जाना ऐसा विचारना तो योग्य नाहीं। जगतमें देखो जो लाख धन होय भोगनेमें तो आवै नाहीं, जातैं भोगनेमें तो आधा सेर अन्न आवै है। अर तृष्णा ऐसी वधै है जो अब धन बधाऊं। अहो अन्यकै तो पचास लाख धन होगया, मेरे पांच लाख ही है। अब कैसैं बधाऊं, कौन आरम्भ करूं, कौन उपाय करूं, कौन राजानिकूं रिझाऊं, तथा कौन बनिज करूं तथा कौनसूं मित्रता करूं, जाके बुद्धितैं मेरे धन उपार्जन होजाय तथा कौनसा सेवककूं अङ्गीकार करूं जो मेरा अल्प धन खाय अर मोकूं बहुत धन उपार्जन करदे, ऐसैं हजारां दुर्ध्यान करतो संसारी जीव समस्त सम्पदा, राज्य, ऐश्वर्य छांडि महामूर्च्छातैं, अतिरौद्र परिणामतैं मरि घोर नरकका घोर दुःख भोगै है। संसारमें अनन्त दुःखरूप परिभ्रमण करता क्षुधा, तृषा, रोग, दारिद्रकूं भोगता अनन्तकाल असंख्यातकाल व्यतीत करै है। अब इस घोर कालमें कोऊ किंचित् मोहनिद्राके उपशमतें, जिनेन्द्रभगवानके वचनतैं कोऊ अति विरले पुरुष सचेत होंय अपना हितकूं चिंतवन करते चार प्रकारके दानमें प्रवर्तन करै हैं। दानमें आहारदान प्रधान है। इस जीवका जीवन आहारतैं है; कोटि सुवणका दान आहारदान समान नाहीं है। आहारहीतैं देह रहै है। देहतैं रत्नत्रय धर्म पलै है। रत्नत्रयधर्मतैं निर्वाण होय है। निर्वाणमें अनंत सुख है। त्यागी निर्वांछक साधुनिका उपकार तो एक आहारदानतैं ही है। आहर विना कोऊ तिल-तुपमात्र वस्तु हू नाहीं अङ्गीकार करै। आहार विना देह रहै नाहीं। आहार विना अनेक रोग उपजै हैं। आहार विना ज्ञानाभ्यास नाहीं होय। आहार विना व्रत संयम तप एक हू नाहीं पलै। आहार विना सामायिक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, ध्यान एक हू नाहीं होय। आहार विना परमागमको उपदेश नाहीं होय। आहारविना उपदेश ग्रहण करनेकूं समर्थ नाहीं होय। आहार विना कांति विनसी जाय, मति विनसि जाय, कीर्ति, क्षांति, शांति, नीति, गति, रति, उक्ति, शक्ति, द्युति, प्रीति, प्रतीति नाशकूं प्राप्त होय है। आहार विना समभाव, इंद्रियदमन, जीवदया, मुनि, श्रावकका धर्म, विनयमें प्रवृत्ति, न्याय में प्रवृत्ति, तपमें प्रवृत्ति, यशमें प्रवृत्ति समस्त विनाशनै प्राप्त होय जाय। आहार विना वचनकी प्रवीणता नष्ट हो जाय है। आहार विना शरीरका वर्ण बिगडि जाय, शरीरमें मुखमें दुर्गंधता हो जाय। शरीर जीर्ण हो जाय, समस्त चेष्टा नष्ट हो जाय। आहार नाहीं मिलै तो अपने प्यारे पुत्रकूं, पुत्रीकूं, स्त्रीकूं, बेच देइ। आहार विना नेत्रनितैं देखनेकूं समर्थ नाहीं होय, कर्णनितैं श्रवण करनेकूं, नासिकातैं गन्ध ग्रहण करनेकूं, स्पर्शन-इंद्रियतैं स्पर्शन करनेकूं समर्थ नाहीं होय। आहार विना समस्त चेष्टा रहित मृतकसमान होय। आहार विना मरण हो जाय, आहार विना चिंता, शोक, भय, क्लेश

समस्त संताप प्रकट होय हैं। दीनता होजाय। संसारी लोक अपमान करैं। ऐसैं घोर दुःख दुर्ध्यानकूं दूर करनेवाला जो आहारदान दिया सो समस्त व्रत संयममें प्रवृत्ति कराई, समस्त रोगादिक दूर किया। यातैं आहारदान समान कोऊ उपकार नाहीं है।

बहुरि रोगका नाश करनेवाला प्रासुक औषधिका दान श्रेष्ठ है। रोगकरि व्रत संयम बिगडि जाय, स्वाध्याय ध्यानादिक समस्त धर्मकार्यका लोप हो जाय है। रोगीकै सामायिकादिक आवश्यक नाहीं बनि सकै है। रोगकरि आर्तध्यान निरंतर होय है, मरण विगडि जाय है, रोगीके संक्लेश दिन प्रतिदिन बधै है। अपघात कर्‍या चाहै है। रोगी पराधीन हो जाय है। मन इंद्रियां चलायमान हो जाय हैं। उठना, वैठना, सोवना, चालना बहुत कठीन हो जाय है। स्वास की लार वेदना बधै है। क्षणमात्र जक (चैन) नाहीं लेने दे है। बहुत कहा कहिये, रोगीकूं खावना, पीवना, बोलना, चालना देना, सोवना, उठना, वैठना समस्त कार्य जहर पीवने समान बाधाकारी होय हैं। यातैं प्रासुक औषधिदान करि रोग मेटने समान कोऊ उपकार नाहीं। रोग मिटै आहारादिक किया जाय, समस्त तप, व्रत, संयम, ध्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्गादि रोगरहित होय तदि करि सकै है।

बहुरि ज्ञानदान समान जगतमें उपकार नाहीं। ज्ञान विना मनुष्य जन्ममें हू पशु समान है। ज्ञानाभ्यास विना आपका परका ज्ञान नाहीं होय। ज्ञान विना इसलोक परलोकका जानना कैसैं होय? ज्ञान विना धर्मका स्वरूप, पापका स्वरूप, करने योग्य-नाहीं करने योग्यका विचार नाहीं होय है। ज्ञान विना देव-कुदेवका, गुरु-कुगुरुका, धर्म-कुधर्मका जानना नाहीं होय हैं। ज्ञान विना मोक्षमार्ग ही नाहीं। ज्ञान विना मोक्ष नाहीं। ज्ञानरहित मनुष्यमें अर पशुमें भेद नाहीं। इंद्रियनिका विषय पोषना, कामसेवन करना तो तिर्यंचनिकै भी होय है। जातैं मनुष्य जन्म तो ज्ञानहीतैं पूज्य है, तातैं ज्ञान दान दिया सो पुरुष समस्त दान दिया। परमोपकार तो ज्ञानदान ही है।

वहुरि वसतिकादान जो स्थानका दान। जामें शीत, उष्ण, वर्षा, पवनादिक बाधारहित ध्यान स्वाध्यायकी सिद्धताको कारण, ऐसा स्थानका दान श्रेष्ठ है। यहां ऐसा जानना। उत्तम पात्र जे—परम दिगम्बर महामुनि तिनका समागम तो कोऊ महाभाग पुरुषकै कदाचित् होय है। जैसैं जगत पाषाणनिकरि बहुत भर्‍या है। परन्तु चिंतामणिरत्नका समागम होना अति दुर्लभ है; तैसैं वीतराग साधुका समागम दुर्लभ है। फिर आहारदान होना अति ही दुर्लभ हैं। अर आहार हू आप के निमित्त नाहीं किया अर सोलह उद्गम दोष, षोडश उत्पादन, दश एषणा दोष ऐसैं बियालीस दोष, अर प्रमाण १ संयोजन १ धूम १ अंगार १ ऐसैं छयालीस दोष, बत्तीस अंतराय, चौदह मलनिकूं टालि एक बार भोजन करै सो अर्द्ध उदर तो भोजनसूं भरे, अर चतुर्थभाग जलकरि पूर्ण करै, अर उदरका चतुर्थभाग खाली राखै। सो हू एक उपवासके

पारने, कदै दोय उपवासके पारने, कदाचित् तीन उपवास भये, कदाचित् पक्षोपवास, मासोपवासादिकके पारने अजाचीक वृत्तिकरि नवधा भक्तिकरि दिया हुआ भोजन कोऊ पुण्यवानके घर होय है। अर अजाचीक वृत्तिकूं धारते मौनसहित मुनीश्वरनिकूं औषधिदानहू का देना दुर्लभ है । कोऊ गृहस्थ आपके निमित्त प्रासुक औषधि करी होय अर अचानक मुनीश्वरनिका समागम हो जाय अर शरीरकी चेष्टासूं रोगकूं बिना कह्या जानि योग्य औषधि होय तो देवै । तातैं साधुनिकूं औषधिदानहू दुर्लभ है। शास्त्रदान हू योग्य पुस्तक इच्छा होय तो पढै तितने ग्रहण करै । पाछैं वनमें तथा वनके चैत्यालयमें मेलि चला जाय है । बहुरि मुनीश्वरानिके अर्थि वसतिका दानहू दुर्लभ है। जातैं दिगम्बर मुनि एक स्थानमें रहैं नाहीं, कदै पर्वतनिकी गुफामें, कदै भयङ्कर वनमें, कदै नदीनिके पुलनिमें ध्यान अध्ययन करते तिष्ठै है। कदाचित् कोऊ वसतिकामें एक दिन ग्राम के बाह्य अर पांच दिन नगरके बाह्य अर वर्षाऋतूमें चार महीना एके स्थानमें रहैं। अर कदाचित् कोऊ साधुके समाधिमरणका अवसर आ जाय तो मास दोय मास एक स्थान रहै । अन्य प्रकार जैनका दिगम्बर एक स्थानमें रहै नाहीं । अर एक रात्रि, दोय रात्रि हू कोऊ कदाचित निर्दोष प्रासुक वसतिकामें रहै । सो वसतिका कैसी होय ? आपके निमित्त करी नाहीं होय, आपके निमित्त भुवारी नाहीं होय, मुनि आयां पाछै धोलैं नाहीं, उजालदान खोलै नाहीं, वारणा मुद्या होय तो वारणा खोलै नाहीं भाडा देइ लेवै नाहीं । बदलके अपना वसतिका देय परकी लेवै नाहीं, याचना करि लीनि नाहीं होय, राजाका भय दिखाय लीनि नाहीं होय । इत्यादिक छियालीस दोष-रहित वसतिका होय, तथा जीर्ण वनमें तथा उजड ग्रामका मकान होय जहां असंयमीनिका आर (आना) जार (जाना) नाहीं होय, स्त्री नपुंसक तिर्यंचनिका आगम नाहीं होय, जीव-विराधनारहित होय, अन्धकारादि नाहीं होय, तहां साधुजन एक रात्रि दोय रात्रि कदाचित वसैं । अनेक देशनिमें विहार करैं तिनकूं वसतिकादान होना बहुत दुर्लभ है । यातैं उत्तम पात्रकूं दान होना अति दुर्लभ है। अर इस पंचमकालमें वीतरागी भावलिंगी साधु ही कोई विरला देशान्तरमें तिष्ठै है । तिनका पावना होय नाहीं । पात्रका लाभ होना चतुर्थकाल में हीं बडे भाग्यतैं होय था। परन्तु इस क्षेत्रमें पात्र तो बहुत थे । अब इस दुःषमकालमें यथावत् धर्मके धारक पात्र कहीं देखनेमें ही नाहीं आवैं । धर्मरहित अज्ञानी लोभी बहुत विचरै हैं, सो अपात्र हैं । इस कालमें धर्म पाय करिकैं गृहस्थ जिनधर्मके धारक श्रद्धानी कोई कहीं कहीं पाइए हैं । जे वीतराग धर्मकूं श्रवण करि कुधर्मकी आराधना दूरहीतैं त्याग करि नित्य ही अहिंसाधर्म के धरनेवाले जिवनचनामृत पान करनेवाले शीलवान संतोषी तपस्वी ही पात्र हैं अन्य भेषधारी बहुत विचरै हैं । जिनके मुनि श्रावकके धर्मका सत्य सम्यग्दर्शनादिकको ज्ञान ही नाहीं, ते कैसैं पात्रपना पावै ? मिथ्यादर्शनके भाव करि आत्मज्ञान-रहित लोभी भये जगतमें धनादिकनिका, मिष्ठ आहारदानका इच्छुक भये बहुत विचरै हैं, ते अपात्र हैं । तातैं पात्रदान होना अतिदुर्लभ है।

यहां ऐसा विशेष जानना जो कलिकालमें भावलिंगी मुनीश्वर तथा आर्जिका तथा क्षुल्लकका समागम तो है ही नाहीं। अर

जो कदाचित् चिंतामणिरत्नकी ज्यों किसी महाभाग्य पुरुषकूं उनका दानका समागम मिले तो आध सेर अन्नका भोजनमात्र उनके अर्थि देनेमें आवै अर जो क्षुल्लक अर अर्जिकाके कदाचित् वस्त्र जीर्ण होजांय तो अर्जिका तो एक श्वेत वस्त्र ही ग्रहण करि पुराना वस्त्र वहां छांडि जाय, अर क्षुल्लक एक कोपीन एक श्वेत ओछा वस्त्र जातैं समस्त अंग नाहीं ढकै ऐसा थोडे मोलका ग्रहण करि पुराना वस्त्र वहां ही छांडि जाय है; अन्य तिल-तुषमात्र हू ग्रहण करै नाहीं । ऐसैं पात्रनिके दानमें तो कुछ द्रव्यको खर्च नाहीं । विना न्योता, विना बुलाया कदाचित् अचानक आ जाय तो गृहस्थ अपने निमित्त किया रूक्ष सचिक्कण भोजन तिसमें दानका विभाग करिये है । धनाढ्य पुरुष धनकूं कौन कार्यमें लगाया सफल करै ? जो भोगनिमें लगाइये तो भोग तो तृष्णाके बधावने वाले, इन्द्रियनिकूं विकल करने वाले, महापापमें प्रवर्तन कराय नरकादिक कुगतिकूं प्राप्त करै हैं, जीवका हित-अहितका जाननेकूं लुप्त करै हैं अर मोहवश होय पुत्रादिकनिकूं समर्पण करिये है । सो पुत्रादिक तो ममताके बधावने वाले विना दिये हू सर्वस्व लेवेंगे । पापाचार करि, दुर्ध्यानतैं सम्पदामें ममता धारणकरि, धर्मका विध्वंस करि, सम्पदा बधाई ताका अर्धविभाग तो धर्मके अर्थि दयाके पात्रनिमें दानकर अपना हित करो । सम्पदा छांडि परलोक जाओगे तहां पुत्र पौत्रादिकको देखनेकूं कैसैं आवोगे ? कुटुम्बका सम्बन्ध तो तुम्हारा यह चामडामय मुख नासिका नेत्रादिकतैं है । सो इनकी भस्म होजासी, तथा मृत्तिकामें मिल जासी, कुटुम्ब तुमकूं अन्य पर्यायमें देखने आवै नाहीं; तुम कुटुम्बकूं देखने आवो नाहीं; क्योंकि जिन नेत्र कर्णादिकनितैं कुटुम्बकूं जानो हो तिन नेत्रादिकनिकी तो राख उड जायगी तदि कुटुम्बकूं कैसैं जानोगे ? अर पुत्रादिक कुटुम्बका सम्बन्ध तुम्हारे शरीरका चामतैं है । तुम्हारे आत्माकूं जानैं नाहीं । अर तुम्हारे अर तुम्हारा चामडाकी राख उड जायगी तदि कुटुम्बके तुमसूं कहां सम्बन्ध करैगे ? तातैं भो ज्ञानीजन हो ! जीवन अल्प है । पुत्रादिकनिका सम्बन्ध हू अल्प काल है । कोऊ संसारमें शरण नाहीं है । एक धर्म ही शरण है । अर यो धन है सो हू तुम्हारा नाहीं है । कोऊ पुण्यका प्रभावकरि दोय दिन इनका स्वामीपना अङ्गीकार करि छांडि मर जावोगे । यो धन लार जायगा नाहीं । पुत्रका ममत्वतैं महादुराचार करि धन संचय करो हो, सो धनका ममत्व अर पुत्रादिकनिके ममत्वतैं संसारमें आपा भूलि नरक जाय पहुंचोगे अर अनेक पर्यायनिमें दीन दरिद्री भये विचरोगे । अर प्रत्यक्ष देखो हो, हजारां मनुष्य अन्न अन्न करते मर जाय हैं, दरिद्री रङ्क भये घर घरके बारने फिरै हैं, दीनता करै हैं जिनकी ओर कोऊ देखै हू नाहीं, कोऊ उनकी श्रवण करै नाहीं, सो समस्त प्रभाव पूर्वजन्मान्तरमें धनसूं तीव्र ममता बांधि कृपण होय धन संचय किया ताका फल है । अर तुम्हारे विभव, सम्पदा, रत्न, स्वर्ण, रूपादिक हैं तथा नाना रसनि करि सहित भोजन अर शीलवंती रूपवंती राग-रसकरि-भरी स्त्रीनिका समागम अर आज्ञाकारी प्रवीण सुपुत्र अर हितमें सावधान कार्यसाधक चतुर सेवक अर महान विस्तीर्ण महल मन्दिरनिमें निवास इत्यादिक जे साग्रमी पाई हैं ते कोई पूर्व जन्ममें दान दिया ताका फल है । दानके प्रभावतैं भोगभूमिमें जन्म अर स्वर्गके

विमाननिके स्वामीपना होय है। तहां असंख्यात कालपर्यंत सुख भोगिये है। सो यहांका तुच्छ कायक्लेश–सहित महामलीन देहादिक कहा वस्तु है? ऐसी सम्पदा हू तुम्हारे थिर नाहीं रहैगी। अर तुम्हारे ऐसा विचार है जो। "या लक्ष्मी हमारी है, हमारा कुलमें चली आवै है। हम बुद्धिरहित नाहीं हैं, जो हमारी विनसि जाय। जे बुद्धिहीन चूक करि चालै हैं, तिनकी सम्पदा विनसै है। ऐसा तुम्हारा भ्रम है। सो मिथ्यादर्शनके उदयकरि बडा भ्रम है अर अनन्तानुबन्धी कषायतैं अभिमान है। सो थोरे दिनानिमें नरकके नारकी बनाय देगा। तातैं हे आत्मन्! जो जिनेंद्रदेवके वचननिका श्रद्धान है अर धर्मसूं प्रीति है अर दुःखी लोकनिकूं देख दया आवै है, तो चित्तमें सम्यक् चिंतवन करो। जो मैं मूढात्मा धनसूं ममता करि पूर्वला धन था ताकी तो बडा यत्नतैं रक्षा करी अर नवीन भी बहुत धन उपार्जन किया। धनके उपार्जनके निमित्त क्षुधा, तृषा, शीत, उष्णादिक भोगे अर अनेक आरम्भ बनिज राजसेवा विदेशगमन समुद्र-प्रवेश इत्यादिक किये। अधर्मी म्लेच्छादिकनिके परिणामकूं राजी करनेकूं निंद्यकर्म किये। जीं तीं प्रकार धन उपार्जन किया तो अब मरण अचानक आवेगा। धन रक्षा नाहीं करैगा। तातैं अब मोकूं अन्यायतैं, अनीतितैं तथा पापके बनिजतैं अर पापीनिकी पापरूप सेवातैं तो धन उपार्जन करनेका शीघ्र ही त्याग करना चाहिये अर न्यायतैं उपार्जन किया धन तिसमें मर्यादा करि रहना अर जिनका धन भुलाय चुकाय राख्या तिस धनकूं उलटा देय क्षमा करावना।" बहुरि जो द्रव्य है तिसमें पुत्रादिकनिका विभागका धन तो पुत्रादिकके अर्थि न्यारा करना अर दानके अर्थि निराला धन राख करके परका उपकारके अर्थि, धर्मकी प्रवृत्तिके अर्थि दान करना। अर जो नवीन धन उपार्जन होय तिसमें हू चतुर्थ भाग तथा छठा भाग तथा अष्टम भाग तथा जघन्य दशम भाग तो पुण्य-दान धर्मके कार्यमें धनवानकूं वा निर्धनकूं समस्तकूं ही दानादिकका विभाग करना योग्य है। जाके उदर पूर्ण भी नाहीं होय आधा चौथाई भोजनादिक मिलै ताकूं हू दानधर्मका विभाग उत्कृष्ट चतुर्थ भाग, जघन्य दशम भाग, मध्यम छठ्ठो भाग, अष्टम भाग न्यारो कर दुःखित बुभुक्षितका अर जिनपूजनादिकका विभाग करना श्रेष्ठ है। दान विना गृह है सो श्मसान है, पुरुष है मृतक है अर कुटुम्ब हैं ते इस पुरुषका धर्मरूप मांस चूंथि चूंथि खाय हैं। अर गृहस्थ धनवान है जैनीनिकी अनेक प्रकार पालना करै हैं, जे धर्ममें शिथिल होंय ते हू धनाढ्य–पुरुषनिका आदर देने करि मिष्ट वचन बोलनेकरि धर्ममें दृढ हो जाय हैं। केतेक काम चाकरी करावने लायक होय तो उनतैं काम हू लेना अर उनका भरण पोषण करना, केतेक कुमाय पैदा कर लेने योग्य होंय तिनकूं पूंजीका सहारा देय धन हू बन्या रखावै है अर ताकूं पांच रुपयाकी पैदासि कराय देय, केतेकनिकूं बनिज व्योहारमें अपने सामिल करि निर्वाह करदे। केतेनकी धीज प्रतीति करायकै पदांकै योग्य करदे। केतेकनिकूं कहिकरि रोजगार लगाय दे। केतेकनिकूं दलाली वगैरह लगाय रोजगार कराव दे क्योंकि

पुण्यवान-आश्रय विना पड्या मनुष्यका खडा होना दुर्लभ है। आप धर्मात्मा होय सो अपना धन बिगडवाका भय नाहीं करै है। जो मेरा धन साधर्मिनिके कार्यमें आवै सो धन मेरा है अर जो धन साधर्मिनिके कार्यमें नाहीं आया सो मेरा नाहीं। बहुरि केतेक पुरुष पहली धनाढ्य थे, प्रतिष्ठावान थे तिनके कर्मके उदयकरि धन नष्ट हो गया, आजीविका नष्ट हो गई और खानपानका ठिकाना रह्या नाहीं। घरमें स्त्रीबालकादिकनिकी बडी त्रास ऐसैं पुरुषनितैं मिहनत मजूरी होय नाहीं। ओछा काम किया जाय नाहीं। बडा आदमी जान कोऊ अंगीकार करै नाहीं। धन आभरण वस्त्र पात्र समस्त बेच खाये। अब कौनसौं कहै ? कौन उपाय करैं ? ऐसे प्रतिष्ठावान पुरुषकूं आजीविका लगाय देना, चिगतेनिकूं दुःखसमुद्रमें तैं हस्तावलम्बन देय काढना, धर्ममें, न्यायमें लगाय थोरा बहुत सहारा देय खडा कर देना, जेती योग्यता होय तिस माफिक धीरज करनी, अन्य दूजाके कने रख देना, रोटीका निर्वाह हो जाय तैसे करना, धर्मतैं जोड देना यो बडा उपकार है। केतेक स्त्री पुत्रादिरहित होय तिनकूं धर्मके कार्यमें लगाय खान पानका दुःख मेंटि देना। केते वृद्ध होगये उद्यम करनेकूं समर्थ नाहीं होंय, केतेक जिनधर्मी धर्ममें सावधान हैं तो हू इन्द्रियां थक गई, रोग सहित देह हो गया, सहाय विना समता रहै नाहीं, तिनकी स्थितिकरण धनवानहीसूं बनै। केतेक पुत्रादिक रहित हैं तिनकूं धर्मका आश्रय ग्रहण करावना, केती श्राविका विधवा होगई, तिनके भोजनवस्त्रका ठिकाना नाहीं, तिनमें करुणाबुद्धितैं भोजन वस्त्रादिकका साधन कराय धर्ममें लगाय देना। धनाढ्य पुरुषनिका सहाय पाय, केतेक पुरुष स्त्री कुधर्मका त्याग करि दृढ श्रद्धा करै हैं, केतेक अणुव्रतादिक ग्रहण करै हैं, केई श्रद्धानादि सहित सचित्तका त्यागी, केई परवीमें उपवास, केई दिवसमें ब्रम्हचारी, केई अपनी स्त्रीका त्यागी, केई आरम्भका त्यागी, केई परिग्रह-त्यागी, केई पापकी अनुमोदनाका त्यागी, केई उद्दिष्ट आहारका त्यागी, ऐसैं ग्यारह स्थान श्रावकके धारण करनेतैं दानते पात्र होय हैं। ते हू धनाढ्य पुरुषनिका सहायतैं धर्ममें प्रवर्तते देख अनेक पुरुष धर्म की प्रवृत्तिमें लगि जाय हैं। बहुरि धनाढ्य पुरुष है सो विद्या पढनेके स्थान बनाय दे, पढावनेवालेनिकूं जीविका देय व्याकरणविद्या, काव्यविद्या, गणितविद्या, तर्कविद्या इत्यादिक अनेक विद्या पढावनेकी पाठशाला स्थापना करदे, तो जैनीनिमें सैंकडां विद्याका पढवामें लगि जाय। बरसां बरस दस बीस पढिकरि तैयार हुआ करैं तो धर्मकी सन्तान चल्यो जाय। केई बुद्धिकरि अधिक होय तिनकूं आजीविकादिका सहायी होय निराकुल करदे, तो धर्मकी प्रवृत्ति चली जाय। तथा अनेक ग्रंथनिकूं लिखावना, पढनेवालेनिकूं पुस्तक देना, ग्रंथके सोधनेमें सोधनेवालेनिकूं निराकुल करदेना, ज्ञानके अभ्यास करनेवालेनिसूं प्रीति करना, अपने आत्माकूं ज्ञानके अभ्यासमें लगावना, अपने, सन्तानकूं तथा कुटुम्बीनिकूं ज्ञानके अभ्यासमें लगावना, जैसे तैसे लोकनिकी शास्त्रके अभ्यासमें रुचि करावना। ये शास्त्र धर्मके बीज हैं। जो शास्त्रनिका ज्ञान होय जाय तो सैकडां दुराचार नष्ट हो जाय। सम्यग्ज्ञान ही व्यवहार परमार्थ दोऊनिकूं उज्ज्वल करदे है। तातैं शास्त्र पढावने समान दान नाहीं हैं। तथा रोग मेटने वाली प्रासुक केतेक औषधि बनाय करि रोगीनिकूं देना। जे निर्धन मनुष्य हैं तिनकूं औषधि तैयार मिल जाय तो बडा उपकार है। तथा कोऊ निर्धन नाहीं

होय तिनका भी औषधि करि बडा उपकार है। निर्धन दुःखित जननिकूं औषधिदान देने समान उपकार नाहीं है। केतेक निर्धननिकूं औषधि मिलै नाहीं, करनेवाला नाहीं, विना सहाय औषधि बन सकै नाहीं। औषधि तैयार मिले ताका बहुत कोटि धन का लाभ है। रोग मेटने बराबर कोऊ दान नाहीं। बडा अभय दान है। बहुरि धर्मात्मा जननिके रहनेके अर्थि धर्म साधन करनेके अर्थि धर्मशाला वसतिकादिक अपनी शक्तिसारू मोल ले देना, अपना घरका स्थान होय तहां राखि देना। जातैं रहनेके स्थान विना धर्म सेवनादिकमें परिणाम थिर नाहीं रहै है। बहुरि जिनधर्मी परदेशी दुःखित आ जाय तो महीना दो महीनाको भोजनादिकके सहायमें प्रवर्तना। कोऊ परदेशीके पासि मार्गमें खरची अपने स्थान पहुंचनेकी नाहीं होय तथा मार्गमें लुटिगया होय, चोर ले गया होय, जैनी जानि आयकनै आया होय ताकूं अपने गृह पहुंचे तैसैं दानादिक करि पहुंचावना। अर परदेशी रोगी होय आया होय ताकूं स्थान बतावना, औषधिकादिकरि रोग रहित करना, बारम्बार धर्मोपदेश देय समता देना, बारम्बार पूछना, वैयावृत्य करना। बहुरि निर्धन मनुष्यनितैं नाहीं बन सकै ऐसा औषधिका दान निरन्तर करना। परिणाम चल गया होय रोगकरि वियोगके दुःखिकरि, दारिद्र करि धैर्य छूट गया होय तिनकूं धर्मोपदेश करि धीरज धारण करावना। बहुरि अपने आत्माकूं निरन्तर ज्ञानदान देना, आप ज्ञानवान होय तो नित्य अनेक जीवनिकूं धर्मोपदेश देना तथा कोऊ शास्त्रके अर्थके जानने वाले पुरुषकी प्राप्ति होय तो ताकूं कल्पवृक्षका लाभ तुल्य बडा हर्षसहित आजीविकादिककी थिरता कर देना, बहुत विनय आदरतैं राखि धर्मका ग्रहण आप करना, धर्मकी वृद्धिके निमित्त ज्ञानीनिका सन्मानादिकरि धर्मके उपदेशकी तत्त्वनिके स्वरूपकी चर्चाकी, गुणस्थान, मार्गणा—स्थानादिककी चर्चाकी प्रवृत्ति कराय धर्मकी प्रभावना, सम्यग्ज्ञानकी चर्चाकी प्रवृत्ति करावना। जहां धर्मकी प्रवृत्ति मन्द हो गई होय तिन ग्रामनिमें शास्त्र लिखाय भाषा वचनिका योग्य शास्त्र भेजना। ज्ञानदान समस्त मन्दकषायी भद्रपरिणामीनिकूं करना चाहिये। बहुरि सम्पदा पाय दान—सन्मानतैं, प्रिय वचनतैं अपने मित्रकूं, कुटुम्बकूं आनन्दित करना। सम्पदाका समागम अर जीवन क्षणभंगुर है। इस धनतैं अर देहतैं तथा वचनतैं अन्य जीवनिका उपकार करना ही श्रेष्ठ है। प्रिय वचन बोलने का बडा दान है। वैरीनितैं अपना वैर छांडना, प्रिय वचनतैं अपराध क्षमा करावना बडा दान है। अपना धन धरती देय करकैं हू संतोषित करना, वैर धोवना, अभिमान त्यागना, कुटुम्बी निर्धन होय तिनकूं शक्ति-प्रमाण दान सम्मान करना, अपनी बहीन बेटी निर्धन होय तो बारम्बार भोजन-पान वस्त्र आभरणादिककरि बारम्बार सम्मान दान करना। दयावान होय ते अन्यकूं दुःखित जान सन्मानतैं दुःख मेटे हैं। सो जिनका आपमें उदर पहुँचै अर अपना अंग समान भूवा बहन बेटी जमाई इनका संताप कैसैं सहै ? कोऊकरि अपना उजाड बिगाड हो गया होय, तो कटुक वचन नाहीं कहना, उनको या कहना-"जो भाई! तैं परिणाममें कुछ सन्ताप मत करो। गृहचारीमें हानि-वृद्धि लाभ-अलाभ तो कर्मके अनुकूल हैं। अर समस्त सामग्री विनाशीक है। तुम तो हमारे अनेक कार्य सुधारो हो तथा हमारे भले करनेकूं करो हो। कर्मके अनुसार कोऊ

विगडै भी है।" ऐसैं प्रिय वचनकरि सन्तोषित ही करै। बहुरि निरन्तर ऐसा परिणाम ही राखै जो मेरा धनतैं किसी जीवका उपकार होय तो अच्छा है। अन्य पुरुष अपने हितमें प्रवर्तन करो वा अपने अहितमें प्रवर्तन करो, आप तो उपकार करनेमें ही प्रवर्तन करै। बहुरि कोऊ बन्दीखानामें पड्या होय, कोऊ झगडा फस्या होय, तो अपने घरके पांच रुपया देयकर छुडावना। कोऊ चूकि अपना धन चोर्‌या होय तो प्रियवचनादिकतैं समताभावतैं सुलझाय लेना। निर्धन होय तासूं लेनेको इरादो वा झगडो नाहीं करना। कोऊ चोर खाया ताका फजीता अपवाद नाहीं करना। आपके आश्रित होय तिनका पालन-पोषण करना। विधवा होय, अनाथ होय, रोग वियोगादिक दुःख करि सन्तापित होय, तिनका दुःख सन्ताप दूर करनेमें सावधानी करना। बालक होय, बालविधवा होय, तिनका बहुत प्रकार सम्हालितैं प्रतिपालन करना। अपनेतैं जे वैर राखैं उपकार करेका हू अपकार मानैं तिनका हू गुण-ग्रहण करना अर दान सम्मान करना। अवसर पाय अपने मित्र बांधवादिकनिका सम्मान नाहीं किया, तो धन ऐश्वर्य पाय केवल अपयशकी कालिमा ही ग्रहण करी। बहुरि अपने पुत्र कुटुम्बादिककी पालन तो सूरडी कूकरी हू करै है। अवसर पाय अपने बिगाड करनेवाले, धन आजीविका हरनेवाले वैरीनिकाहू दान सन्मान उपकार करि वैरका अभाव करना दुर्लभ है। मनुष्यजन्म धन, सम्पदा, यौवन, ऐश्वर्य, क्षणभंगुर है। अनेक का धन जीवन नष्ट होगया; जिनका नाम अर स्थान हू नाहीं रह्या। सोई कार्तिकेयस्वामी कह्या है—अतिशय करके आभरण, वस्त्र, स्नान, सुगन्ध, विलेपन, नाना प्रकारके भोजन–पानादिक करि अत्यंत पालन पोषण किया हुआ हू देह एक क्षणमात्रमें जलका भर्‌या काचा घडाकी ज्यों विनशैं है। जो लक्ष्मी चक्रवर्तीनिकूं आदि लेय महापुण्यवाननिमें नाहीं रमी, सो लक्ष्मी अन्य पुण्यरहित जननिमें कैसैं प्रीति बांधि रहैगी ? या लक्ष्मी कुलवाननिमें नाहीं रमै है। कोऊ जानै मेरा कुल ऊंचा है, मेरे लक्ष्मी रहती आई है, ऐसा नाहीं जानना। कुलवानमें भी रहै वा नाहीं रहै। नीच कुलवालेमें जाय रहै है। धीरमें रमै वा नाहीं रमै, पण्डित प्रवीणके रह वा नाहीं रहै, मूर्खनिके हू होय है, शूरवीरनिके वा कायरनिकै मांहि रमै, वा न रमै, पूज्यपुरुषनिमें तथा सुन्दर रूपवाननिमें वा सज्जननिमें वा महापराक्रमीनिमें वा धर्मात्मामें या लक्ष्मी राचै है। ऐसा नियम जानै सो नाहिं है।

भावार्थ—-संसारी अज्ञानी भ्रमतैं ऐसा जानैं हैं। जो मैं तो कुलवान हूं मोकूं छांडि लक्ष्मी कैसैं जायगी ? तथा मैं धीर हूं धीरजवानके लक्ष्मी स्थीर रहे है। चलायमानके विनसै है। तथा मैं महापण्डित प्रवीण हूं, मैं बडा प्रवीण तातैं बधाई है, मूर्ख अज्ञानी चूकि करि चालै ताकी लक्ष्मी नष्ट होय है तथा मैं शूरवीर हूँ अन्यकी लक्ष्मीकी रक्षा करूं हूं, मेरैं कैसैं विनसै, कायरकै विनसै है। तथा मैं पूज्य हूं, समस्तकी लक्ष्मी पूज्यमें रही चाहिये, कोऊ नीचकी विनसै है। तथा मैं धर्मात्मा हूं, नित्य ही दान-पूजाशीलादिकमें प्रवर्तूं हूं, मेरी कैसैं नष्ट होय ? कोऊ पापीके सम्पदा विनसै है। तथा मैं सुन्दर रूपवान हूं, हमारी

सूरत ऊपर ही लक्ष्मीको वास दीखै है; कोऊ कुरूपकै विनसै। तथा मैं सुजन हूं, सबका प्रिय हूं, मेरे लक्ष्मी कैसे विनसै? दुष्ट होय, सबका अप्रिय होय ताकै विनसै। तथा मैं महापराक्रमी हूं, उद्यमी हूं; मैं प्रतिदिन नवीन उपार्जन करूं हूं; मेरी लक्ष्मी कैसैं विनसै? आलसी होय, उद्यमरहित होय ताकै विनसैं है। ऐसा समझना मिथ्या भ्रम है। या लक्ष्मी तो पूर्वले किये पुण्यकी दासी है; पुण्यपरमाणु नष्ट होते ही विनसै है। जैसैं पचास हाथकै महलमें दीपक बुझते ही अन्धकार होजाय, कौन रोके; तथा जैसैं जीव निकसते ही समस्त इन्द्रियां चेष्टारहित हो जांय; तथा जैसैं तेल पूर्ण होते ही दीपक नष्ट हो जाय, तैसैं पुण्य अस्त होते ही समस्त लक्ष्मी कांति, बुद्धि, प्रीति, प्रतीति एक क्षणमें नष्ट होजाय है। प्रथम तो या लक्ष्मी न्यायके भोगनिमें लगाओ अर परिणामनिमें दयाभाव विचारि दुःखित बुभुक्षितनिकूं दान करो या लक्ष्मी जैसैं जलमें तरंग क्षणमात्रमें विलाय जाय, तैसैं कोई दोय दिन लक्ष्मीका संयोग है; पाछैं नियम सू वियोग होयगा। जो पुरुष या लक्ष्मीकूं निरन्तर संचय ही करै है, न तो भोगै है अर न पात्रकूं दान देवै, सो अपने आत्माकूं ठगै है। अचानक मरि अन्तर्मुहूर्तमें नारकी जाय उपजैगा मनुष्यजन्मकूं निष्फल किया। जे पुरुष लक्ष्मीका संचय करके अतिदूर गाडैं हैं, विनसनेके भयतैं पृथ्वीमें बहुत ऊंडी गाडैं हैं, सो पुरुष तिस लक्ष्मीकूं पाषाण समान करै है। जैसैं जमीनमें अनेक पाषाण हैं, तैसैं धन भी धर्‍या रहेगा। आपके दान भोगके अर्थि नाहीं, तदि दरिद्री तुल्य रह्या। बहुरि जो पुरुष लक्ष्मीकूं निरंतर संचय करै है, अर दान नाहीं करै, अर भोगे हू नाहीं, तिस पुरुषके अपनी हू लक्ष्मी परकी समान है। जैसैं पडोसीकी लक्ष्मी तथा नगरनिवासीनिकी लक्ष्मी देखनेमें आवै है अपने भोगनेमें आवै नाहीं, देनेमें आवै नाहीं। बहुरि जो पुरुष लक्ष्मीमें अति आसक्त भया, प्रीतिरूप भया, अपना आत्माकूं खावनेमें, पीवनेमें, औषधादिकनिमें, वस्त्र, पहरनेमें, अपने रहनेकी जायगामें, और हू भोगोपभोगनिमें नित्य ही क्लेश भोगे है; पण धनके खरच होनेका बडा दुःख दीखै है, तातैं कष्टतैं आप दिन व्यतीत करै है, सो मूढ राजानिका वा अपने दाइयादार पुत्र, स्त्री, भ्रातादिकनिका कार्य सधै है। आप तो धनकी ममताकरि दुर्गतिमें जाय उपजैगा, अर धन राजा ले जायगा, अथवा पुत्र कुटुम्बादिक लेवेंगे। आप तो पापी धन उपार्जन करके हू केवल इस लोकमें क्लेशका पात्र ही रह्या। जो मूढ बहुत प्रकार अपनी बुद्धि करके लक्ष्मीकूं बधावै है, अर बधाता बधाता तृप्त नाहीं होय है, अर लक्ष्मी बधावनेकूं अनेक आरम्भ करै है, पाप होनेतैं नाहीं डरै है, रात्रिमें अर दिनमें धनके उपजानेके विकल्प करते करते बहुत रात्रि व्यतीत भए निद्रा ले है, अर दिनमें प्रातःकालहीतैं द्रव्यके उपार्जनके विकल्प करै है, अवसरमें भोजन हू नाहीं करै है, अनेक लेनदेन वनिज व्यवहार बकवाद करते करते कठिन क्षुधाकी प्रेरणातैं भोजन करै है, अर रात्रिविषैं कागद

पत्र लेखा हिसाव जवाव सवालकी वडी चिन्तामें मग्न भए तीन प्रहर रात्रि व्यतीत भए सोवै है सो मूढ केवल लक्ष्मीरूप तरुणीका दासपणा करिकै संकट भोगि दुर्गति गमन करै है। अर जो इस वर्द्धमान लक्ष्मीकूं निरन्तर धर्मकार्यके अर्थि दे है सो पंडित प्रवीण पुरुषनिकरि स्तुति करने योग्य है अर तिसहीका लक्ष्मी पावना सफल है। ऐसैं जान करि जे धर्मसंयुक्त दारिद्रकरि पीडित ऐसे मनुष्यनिनै, स्त्रीनिनै निरन्तर अपेक्षारहित ख्याति लाभ पूजाकूं नाहीं चाहता, तथा उनतैं कुछ अपना उपकार नाहीं चाहता, आदर प्रीति हर्षसहित दान देवै है, तिनका जीवना सफल है। जातैं धन, यौवन, जीवन तो प्रत्यक्ष जलमें बुदबुदाकी ज्यों अथिर देखिये हैं। अर दानका फल स्वर्गकी लक्ष्मीका, भोगभूमि लक्ष्मीका असंख्यात कालपर्यंत भोग—सम्पदा देनेवाला है। ऐसा जानि निरन्तर दानमेंही प्रवर्तन करो।

इहां ऐसा विशेष और हू जानना—जो पूर्वजन्ममें सुपात्रदान दिया है, सम्यक् तप किया ते पुरुष तो इस दुःषमकालमें भरत क्षेत्रमें नाहीं उपजै हैं, जातैं इस दुःषमकालमें यहां सम्यग्दृष्टिका उपजना है ही नाहीं। जे सम्यग्दृष्टि देवगति नरकगतितैं आवै ते विदेहक्षेत्रमें ही पुण्यवान मनुष्य होय हैं। अर मनुष्य तिर्यंच गतिका सम्यग्दृष्टि आय नाहीं उपजै है। यहां कोऊ पुण्याधिकारीकैं काललब्ध्यादि सामग्रीतैं नवीन सम्यक्त्व उपजै है। अर पूर्वजन्ममें जिनधर्म पालकरि पुण्य उपजाया सो हु यहां नाहीं उपजै है। याहीतैं जिनधर्ममें राजा उपजते रह गये। अर और हू बहुत धनाढच पुरुष हू जैनीनिके कुलमें नाहीं उपजै हैं। अर जो जैनीनिके कुलमें धनाढच उपजैं, तो ते जिनधर्मरहित होय हैं। कोऊ पुण्याधिकारीनै अठैं सत्संगति मिल जाय वा जिनसिद्धांतका श्रवण मिलै तदि नवीन बीजतैं जिनधर्ममें सावधान हो जाय है। बहुरि इस कालमें जैनी भी धनाढच होय अर धर्मकूं समझै त्याग आखडीमें सावधान होय तो हू दानमें धन नाहीं खरच्या जाय है। लाखां धन छांडि मर जाय; परन्तु आधा चोथाई धन हू दान धर्ममें नाहीं लेजाया जाय है। इस कलिकालके धनाढच पुरुषनिकी कैसी रीति वा परिणाम होय है सो कहिये हैं—परिणाम करि क्रोध बधै है, अपने पुरुषार्थका बडा अभिमान बधै है, वात्सल्यता मूलतैं जाती रहै है, अन्यका किया कार्यकूं सराहै नाहीं, समस्तकी सकल बुद्धि घाटि दीखै, दया रहै नाहीं, अन्य पुरुषका वचनादि करि अपमान तिरस्कार करता शंकै नाहीं, अन्य पुरुष धर्मनीति लिए वचन कहै तिनकूं कुयुक्तितैं खण्डन किया चाहै, धर्मात्मा पुरुष विनयसहित भी भाषण करै तो मनमें बडी शंका उपजै जो मोतैं कदाचित् कुछ याचना करैगा, निर्वांछक साधर्मीनिका भी भय ही रहे जो मोकूं कदाचित् धन खरचनेका उपदेश देगा, अभिमान दिन दिन प्रति बधै, स्वभाव ऊपरि तेजी बधै, जो अपना कार्य होय ताकूं बहुत शीघ्रतासूं चाहै, सेवकादिकका कष्ट-दुःखकूं नाहीं देखै, अपना प्रयोजन साध्या चाहै, परका प्रयोजन तथा दुःख क्लेशकूं तुच्छ जानै, सम्पदा बधै ताकी लार खरच बधै, खरचकी लारि दुःख बधै, दिन खरच घटावनेका ही परिणाम रहै, अपने भोगोपभोगकी वस्तु लेनेमें ऐसा परिणाम रहै जो अर्ध-दामनिमें आजाय, कुछ घाटि लेजाय, मोकूं बडा आदमी समझि बहुत मोलकी वस्तु थोडे दामनिमें दे जाय, कोऊ निर्धन तथा लूटका माल अति अल्प मोलमें आजाय ताका बडा हर्ष मानै, संचय करते करते तृप्ति नाहीं होय, कोऊ आपकूं ठगाई जाय तासूं

प्रीति करै, धनवान दिखै ताकूं आप ठगावै, धनवान पापी भी होय तासूं प्रीति करै, धनवान अधर्मी भी होय ताकी बुद्धिकूं बडी मानै, धनवानानै अपनी उदारता दिखावै, निर्धनके निकट अपना अनेक दुःख रोवै, दुःखी देख तिसको अपना बहुत दुःख सुनावै, अन्यकी वा निर्धनकी आवरू ओछी जानै, धनरहितकूं अपना वस्तु धीजतां बडी अप्रतीति करै, धनरहितकूं चोर दगाबाज समझै, आप पैला सर्वस्व खा जाय तो हू आपकूं सांचा जानै, अपनी बढाई करै, अपने कर्तव्यकी प्रशंसा करै, अन्य के उत्तम कार्यनिमें हू खोट प्रगट करै, आपकूं निःस्पृह निर्वांछक समझै, जगतके अन्य जीवनिके तृष्णा (वान्) समझै, आपकूं अजर अमर समझै, परकूं अनित्यपना समझै, अन्य जीवनिकूं अति लोभी समझै, आपकूं न्यायमार्गी समझै, आपकूं प्रभु समझै, धन रहितानिकूं रंक समझै, आरम्भ परिग्रह बधावता धापै नाहीं, तृष्णा अति बधै, मरणपर्यंत संतोष नाहीं धारे, अपयशका कार्य करे अर आपकूं यशस्वी समझै, कपटी छलीकूं धन ठिगा देवै, बहुत धूर्त कपटी छलीकूं अपना कार्य साधने वाला पुरुषार्थी प्रवीण समझै, सत्यवादी मर्यादासहित प्रवृत्तिका धारी निरपेक्ष होय तिनकूं बुद्धिहीन समझै, जहां अपना अभिमान बधै, कषाय पुष्ट होय, आपका नाम होता जानै, तहां जायगा, मेंमन्दिरमें, वाग वगिचनिमें, विवाहमें, यात्रामें, भाडानिमें, बहुत धन खर्च करै। मन्दिरादिकनिमें भी अपनी उच्चता होनेकूं पंचनिमें अभिमान जहां बधै तहां धन खरचि करै, जीर्णमन्दिरादिकनिमें नाहीं देवे, निर्धन भूखेनिके पालनमें पसियो (पैसा) एक नाहीं देवै, दुर्बल, दीन, अनाथ, वृद्ध, रोगी, विधवा, इनका पालनिमें धन कदाचित् नाहीं खरच करै, निर्धन दुःखितकूं नष्ट हुआ समझै, आपहू अच्छा भोजन न करै जो कुटुम्बादिकका विभाग करना पडैगा। ऐसा अभिमान धारै है, जे घणे ही धर्मात्मा तपस्वी पण्डित हमारे घर आवै हैं अर अनेक आवैंगे, समस्त देशी विदेशी गुणवान जैनीनिकूं बडा ठिकाना हमारा घर ही है, अर हम भी दातार हैं, और कहां ठिकाना है अर केतेक अपने घरके कार्य सुधारने वाले वा धर्म कार्यमें नियुक्त हैं, तिनकी भी धनका मदकरि बडी अवज्ञा करै हैं। इनकी हम पालना करै हैं। हमारेतैं छटै इनकूं कहां ठिकाना है। ऐसे पंचमकालके धनवाननिके ऊपरि मोहकी बडी अन्धरी पड रही है। पूर्व जन्ममें जिनधर्मरहित कुतपस्या करी है, कुपात्रकुं दान दिया है इस चीजतैं धन संपदा पाई है। सो धनसंपदा छांडि धन की मूर्च्छातैं मरि, कषायनिकी मंदता तीव्रताके प्रभाव-माफिक सर्पादिक तिर्यंचनिमें वृक्षांदिकनिमें मधुमाक्षिकादिकनिमें उपजि नरकादिकनिमें बहुत काल परिभ्रमण करैंगे। या धनकी मूर्च्छा इस लोकमें हू वैरको तथा अपयशको कारण है। कृपणका सकल जन अपवाद करै हैं। कृपणका परिणाम निरन्तर क्लेशित रहै है, दुर्ध्यानी रहै। अर दानके मार्गमें लगाया धन अपना धन जानहू पात्रदानमें गया धन मरणके समयमें परिणामनिकी उज्ज्वलता कराय अन्तर्मुहूर्तमें स्वर्गकी संपदाकूं प्राप्त करै है। यहां उत्तम पात्र तो निर्ग्रंथ, वीतरागी, समस्त मूलगुण, उत्तरगुणके धारक, दशलक्षण धर्मके धारक, बाईस परीषहके सहने वाले साधु हैं।

दर्शनादिक उद्दिष्टआहारका त्यागी पर्यंत ग्यारह स्थान श्रावकके हैं, ते मध्यम पात्र हैं। बहुरि जिनके व्रत तो नाहीं

अर जिनेन्द्रके प्ररूपे तत्वके श्रद्धानी, जन्म-मरणादिरूप संसार परिभ्रमणतैं भयवान, चार प्रकारके संघके हित होनेमें वांछा सहित, संसार देह भोगनिमें विरक्तबुद्धि, जिनशासनका उद्योतक, अपनी निंदा गर्हा करता, तत्वका स्वरूप विचारमें चतुर, जिनकथित तत्त्वमें धर्ममें दृढताका धारक, धर्म अर धर्मके फलमें अनुराग सहित, सकल जीविनिकी दयाकरि व्याप्तचित्त, मन्दकषायी, परमेष्ठीका भक्त इत्यादिक समस्त सम्यक्त्वके गुणनिका धारक सो जघन्य पात्र है।

ऐसे तीन प्रकारके पात्रनिमें यथायोग्य आहार औषधि शास्त्र वसतिकादिक स्थान, वस्त्र; जीविका, जीवनेकी स्थिरताके कारण विनयसहित दिये हुए भावनिके अनुकूल उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमिमें दातारकूं उत्पन्न करै हैं अर सम्यग्दृष्टिकूं सौधर्मादिक स्वर्गमें महर्द्धिक देवनिमें उत्पन्न करै हैं।

अब कुपात्रके ऐसे लक्षण जानना—जिनके मिथ्याधर्मकी दृढ वासना हृदयमें तिष्ठै है, अर घोर तपके धारक अर समस्त जीवनिकी दया करनेमें उद्यमी, असत्यवचन कठोरवचनसूं पराङ्मुख, समस्त प्रियवचन कहै, धनमें स्त्रीमें कुटुम्बमें निःस्पृह रहै, मिथ्याधर्मका निरन्तर सेवन करनेवाला, जप तप शील संयम नियममें जिनके दृढता सहित प्रीति हो, मन्द-कषायी, परिग्रहरहित कषायविषयनिका त्यागी, एकान्त बाग वनादिकमें वसनेवाले, आरम्भरहित, परीषह सहनेवाले, संक्लेशरहित, संतोषसहित, रस-नीरसके भक्षणमें समभावके धारक, क्षमाके धारक, आत्मज्ञानरहित, बाह्यक्रियाकाण्डतैं मोक्ष मानने वाले ऐसे कुपात्र हैं। तथा केई जिनधर्मके पक्ष ग्रहण करने वाले हू एकान्ती हठग्राही अपनी बुद्धि हीतैं अपने आपकूं धर्मात्मा मान रहै हैं, सो केई तो जिनेन्द्र का पूजन अराधना गान भजनहीसूं आपकूं कृतकृत्य मानि बाह्य पूजन स्तवनादिकमें तत्पर हैं, अन्य ज्ञानभ्यास व्रतादिकमें शिथिल रहै हैं। केतेक जलादिकतैं धोवना, सोधना, अन्नादिककूं धोवना, स्नान कर जीमना, अपना हस्ततैं बनाया भोजन करना वस्त्रादिकनिका धोवना, धोया हुआ स्थानमें जीमना इत्यादिक क्रिया करके ही आपके धर्म मानैं हैं, केई देखि सोधि; चालना, सोवना, बैठना, जलकूं बडा यत्नाचारतैं छानना याही तैं आपकूं कृतकृत्य मानै हैं। अन्यकूं क्रियारहितकूं निंद्य जानैं हैं। केई उपवासिक व्रत रसपरित्यागादिकरि आपकूं ऊंचा, मानैं हैं। केई दुःखित बुभुक्षितका दान हीकूं धर्म जानैं हैं। केई भद्रपरिणामी समस्त धर्महीकूं समान जानता विचाररहितताहीमें लीन हैं। केई परमेश्वरका नाम मात्रहीसू धर्म जानि विकथा निन्दादिरहित तिष्ठै हैं। केतेक अन्य जीवनिका उपकार करि समस्त विनय करनेकूं धर्म मानै हैं। केतेक अपनी इन्द्रियनिकूं दण्ड देते रूखा खूखा एक वार भोजन कर मौनावलम्बी भये अपने आयुकूं जेठै तेठै तिष्ठते व्यतीत करै हैं। केतेक नाना भेषके धारक मन्दकषायी, परिग्रहरहित, विषयरहित, तिष्ठै हैं। केतेक कोऊ एक बार हस्तमें भोजन धर दे, सो भक्षण कर याचनारहित विचरै हैं इत्यादिक अनेक एकांती परमागमका शरणरहित आत्मज्ञानरहित मिथ्यादृष्टी कुपात्र हैं। इनको दान देना अनेक प्रकार फलै है। जैसा पात्र, जैसा दातार, जैसा भाव

जैसा द्रव्य, जैसी विधिसूं दिया तैसा फलै है। केई तो असंख्यात द्वीपनिमें दानके प्रभावतैं पंचेन्द्रिय तिर्यंचनिके युगलनिमें उपजैं हैं, जहां च्यार च्यार अंगुल प्रमाण महामिष्ट सुगंध तृण भक्षण है, महान् अमृत समान जल पीवैं हैं, परस्पर वैर-विरोधरहित तिष्ठै हैं, जहां शीतकी बाधा नाहीं; उष्णता की तावडा, पवन--वर्षादिककी बाधारहित अनेकप्रकार स्थलचर, नभचर तिर्यंच होय यथेच्छ विहार करते सुखतैं भोग भोगते जुगल ही लार उपजैं लार ही मरकरि व्यन्तर भवनवासी ज्योतिषी देवनिमें उपजैं हैं। तथा केई कुपात्रदानके प्रभावतैं उत्तरकुरु देवकुरु भोगभूमिमें तिर्यंच उपजैं तीन पल्यपर्यंत सुख भोग देवनिमें उपजैं हैं। केई कुपात्रदानके प्रभावतैं हरिक्षेत्र रम्यकक्षेत्रनिमें दोय पल्यकी आयुके धारक, केई हिमवतक्षेत्रमें हैरण्यवतक्षेत्रनिमें एक पल्यकी आयुकूं धारण करि तिर्यंच युनलनिमें उपजी, मरि देवलोक जाय हैं। केई कुपात्रदानके प्रभावतैं अन्तरद्वीप छिनवै हैं तिनमें मनुष्य-युगल उपजैं हैं। इहां अन्तर द्वीपनिमें मनुष्य उपजैं हैं तिनका स्वरूप ऐसा है—समुद्रकी पूर्व दिशामें चार द्वीप हैं। तिनमें पूर्वदिशाके द्वीपमें मनुष्य एक पगवाले उपजैं हैं, दक्षिण दिशामें पूंछ वाले मनुष्य हैं, पच्छिम दिशामें सींगवाले मनुष्य हैं, उत्तर दिशामें वचनरहित गूंगे मनुष्य उपजैं हैं। समुद्रकी चार विदिशाके चार द्वीपनिमें अनुक्रमतैं सांकलकेसे कर्णवाले तथा शष्कुलीकर्ण मनुष्य उपजैं हैं। एक कर्णकूं ओढले एककूं विछायले ऐसे लम्बकर्ण उपजै हैं। बहुरि लम्बे कानवाले लम्बकर्ण मनुष्य अर सुआकेसे कर्ण वाले मनुष्य ए समुद्रकी विदिशामें उपजै हैं। बहुरि सिंहकासा मुख (१) घोडाका सा मुख (२) कुकराकासा मुख (३) सूकरकासा मुख (४) भैंसका सा मुख (५) व्याघ्रकासा मुख (६) घूघूकासा मुख (७) वानरका मुख (८) मच्छकासा मुख (९) कालमुख (१०) मीढाकासा मुख (११) गौकासा मुख (१२) मेघकासा मुख (१३) विजलीकासा मुख (१४) दर्पणका सा मुख (१५) हस्तीकासा मुख (१६) यह सोलह दिशा विदिशानिके अन्तरालमें तथा पर्वतानिके अन्तकी सूधिमें द्वीप हैं तिनमें मनुष्य से ऐ मुखवाले उपजै हैं। ऐसे ऐसे लवण समुद्रके एक तटमें चौवीस अन्तरद्वीप हैं। दोऊ तटके अडतालीस अर अडतालीसही कालोदधि समुद्रके ऐसे छियानवे अन्तरद्वीपनिमें कुभोगभूमि है। तिनमें कुपात्रदानतै मनुष्य युगल उपजै हैं। तिनमें एक टांग वाले हैं ते गुफानिमें बसैं हैं अर अन्यन्त मीठी मृत्तिका भक्षण करै हैं। इनतैं अन्य जे इसप्रकारके मनुष्य हैं ते वृक्षनिके नीचे बसैं हैं अर कल्पवृक्षनिके दिये नानाप्रकारके फल भक्षण करै हैं।

अब कुभोगभूमिके मनुष्यनिमें उपजनेके कारण परिणामनिकूं तीन गाथानिमें त्रिलोकसारजीमें कह्या सो कहै हैं—

जिणलिंगो मायावी जोइसमंतोवजीवि धणकंखा। अइगउरवसंजुत्ता करेंति जे परविवाहंपि ॥ ९२२ ॥
दंसणविराहिया जे दोसं णालोचयंति दूसणगा। पंचग्गितवा मिच्छा मोणं परिहरिय भुजंति ॥ ९२३ ॥
दुब्भावअसुइसूदगपुप्फवईजाइसंकरादिहिं । कयदाणावि कुपत्ते जीवा कुणरेसु जायन्ते ॥ ९२४ ॥

अर्थ—जो जिनेन्द्रका निर्ग्रंथ लिंग धारण करकैं अनेक परीषह सहते हू मायाचारके परिणाम धरै हैं तथा केतेक जिनलिंग धारण करि हू ज्योतिषविद्या मन्त्रविद्या लोकनिमें भोजनादिकारि जीवै हैं, लोकनिकूं ज्योतिष वैद्यक मन्त्रशास्त्रादि करि आपमें भक्त करै हैं तथा जिनेन्द्र का लिंग अर तपश्चरण करि धनकी वांछा करै हैं तथा जिनलिंग धारण करि ऋद्धिका गर्व करि युक्त हैं, हम जगतमें पूज्य हैं तथा अपना यश जगतमें विख्यातैं हैं ताका गर्वकरि युक्त हैं तथा अपने साताका उदयजनित सुखकरि गर्वकूं धारै हैं तथा जिनलिंग धारण करि आहारकी वांछा धारै हैं तथा अशुभका उदयको भय धारै हैं तथा मैथुनकी वांछा करै हैं, परिग्रह शिष्यादिकी वांछा करै हैं तथा जिनलिंग धरि परके विवाहमें प्रवृत्ति करै हैं ते कुतपके प्रभावतैं कुमानुषिनिमें उपजैं हैं। बहुरि जे जिनलिंग धारण करि सम्यग्दर्शनकी विराधना करै हैं, जे जिनलिंग धारण करके हू अपने दोषनिकी आलोचना गुरुनिसूं नाहीं करै हैं तथा जिनलिंग धारण करके हू अन्य के दोष कहै हैं, बहुरि जे मिथ्यादृष्टि पंचाग्नि तप करि कायक्लेश करै हैं, जे मौन छांडि भोजन करैं हैं तथा जे दुष्ट भावनिकरि दान दे हैं तथा जे अशुचिपणाकरि दान देवें हैं तथा सूतकादि सहित होय दान देवै हैं तथा रजस्वला स्त्रीका संसर्ग करि दान देवै हैं तथा जातिसंकरादिकनिकरि दान देवै हैं तथा कुपात्रनिमें दान करै हैं ते कुमानुषनिमें उपजै हैं। ते कुमानुषहू समस्त क्लेशरहित एक पल्यपर्यंत स्त्री पुरुषका युगल साथि ही उपजै अर मरैं है। दानके तपके प्रभावतैं सदा काल सुखमें मग्न काल पूर्ण करि मन्द कषायके प्रभावतैं भवनत्रिकनिमें जाय उपजै हैं। बहुरि केई कुपात्रनिकूं दान देय बहुत भोगनि सहित म्लेच्छ उपजैं हैं, केई कुपात्रदानके प्रभावतैं नीचकुलनि में बहुत धनके धनी मांसभक्षी मद्यपायी वेश्यामें आसक्त निरोग शरीर होय हैं, केई कुपात्रदान के प्रभावतैं राजानिके दासी दास हस्ती घोडा श्वान वानर इत्यादिकनिमें सुन्दर भोजन वस्त्र आभरणादिक प्रचुर भोग उपभोग सामग्री भोगि मरणकरि दुर्गति चले जांय हैं, जातैं कुपात्र हू अनेकजातिके अर दातारके भाव हू अनेक जातिके हैं अर दानकी सामग्री हू अनेक जातिकी हैं तातैं दानका फल हू अनेक जातिका है।

बहुरि दयादान ऐसा जानना—जो बुभुक्षित होय, दरिद्री होय, अन्धा होय, लूला होय, पांगला होय, रोगी होय, अशक्त होय, वृद्ध होय, बालक होय, विधवा होय, बावरा होय, अनाथ होय, विदेशी होय, अपने यूथतैं सङ्गतैं बिछुडि आया होय तथा बन्दीगृहमें रुक्या होय, वन्ध्या होय, दुष्टनिका आतापतैं भागि आया होय, लुट आया होय, जाका कुटुम्ब मर गया होय, भयवान होय, ऐसा पुरुष होहू वा स्त्री होहू तथा बालक होहू वा कन्या तथा तिर्यंच होहू इनकी क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण,

रोग तथा वियोगादिक करि दुःखित जानि करुणाभावतैं भोजनवस्त्रादिक दान देना। सो करुणादानमें हू उनका जाति, कूल, आचरणादिक जानि यथायोग्य दान करना। जो अभक्ष्यादि भक्षण करने वाले हैं उनकूं तो भोजन, अन्न, औषधि मात्र ही देना। अर निंद्य आचरण वाले नाहीं इनका दुःख दूर करने योग्य हु है। इनकूं भोजन, वस्त्र, औषधि, स्थान, उपदेश हू देना। तथा जे स्थान देने योग्य नाहीं इनको दुःखी देखि रोटी अन्नमात्र देय चलावना। वैयावृत्य करने योग्य तिनका वैयावृत्य करना, ज्ञानदान हू देना। जातैं करुणादान पात्र कुपात्र अपात्रका विचाररहित केवल दयामात्र ही करि देना है, तो हू देश, काल, परिणाम, जाति, कुलादि विचारसहित यत्नसहित दान करो। मांसभक्षी मद्यपायीकूं रुपया पैसा नाहीं देना। बहुत दुःखीमें करुणा उपजै तो अन्नमात्र देना। याका फल यशकीर्तनादि की वांछा नाहीं करना। बहुरि दानके देने योग्य नाहीं ते अपात्र है।

अब अपात्रनिके लक्षण कहै हैं—जे दयारहित होंय, हिंसाके आरम्भमें आसक्त होंय, महालोभी परिग्रह बधाया ही चाहैं, धनका धनी होय करकैं हू याचना करिवो करैं, यज्ञादिकके करनेवाले वेदोक्त हिंसाधर्ममें रक्त रहैं चंडी भवानीके सेवक होंय, बकरा भैंसानिका घात करावने वाले तथा कदानके लेने वाले, मद्य पीवने में, भंगपान करनेमें, वेश्या सेवनेमें लीन, जिनधर्मके द्रोही, शिकारादि करनेमें धर्म कहनेवाले, परधन परकी स्त्रीके रागी अपनी प्रशंसा करनेवाले, व्रती नाम कहाय व्रतभंगकरि पंच पापनिमें आसक्तता युक्त, बहुत आरम्भी, बहुपरिग्रही, तीव्रकषायी, असत्यमें लीन, खोटे शास्त्रके उपदेश देनेवाले तथा जिन शास्त्रमें खोटे मिलाय मिथ्या प्ररूपण करनेवाले व्यसनी, पाखण्डी, अभक्ष्य-भक्षक अर व्रतशीलसंयमतपतैं पराङ्मुख, विषयनिके लोलुपी, जिह्वाइन्द्रियके वशीभूत भये मिष्ट भोजनके लंपटी ये सब अपात्र हैं। जातैं इनमें पात्रपना तो रत्नत्रय धर्मके अभावतैं नाहीं। अर कुधर्म जे मिथ्याधर्म सेवने वाले भी परके उपकारी दयावानपना, क्षमा, सन्तोष, सत्य, शील, त्यागादिक, पूजा, जाप्य, नाम स्मरणादि, मिथ्याधर्म भी जिनमें पाइये नाहीं, तातैं कुपात्र हू नाहीं। अर गरीव, दीन, दरिद्र, दुःखित हू नाहीं। तातैं दयादानके पात्र हू नाहीं। केवल लोभी, मदोन्मत्त, विषयांका लम्पटी हैं धर्मके इच्छुक हू नाहीं। तथा केई जैनी नाम करके हू जिन धर्मका भेष हू केवल जिह्वा इन्द्रियका विषयरूप नाना प्रकारके भोजन जीमनेकूं धर्‌या है तथा धन पैदा करनेकूं भेष धर्‌या है, अभिमानी होय अपनी पूजा उच्चता धनका लाभके इच्छुक होय तप, व्रत, पठन, वाचनादि अङ्गीकार करै हैं ते अपात्र हैं; दानके योग्य नाहीं। इनको दान देना कैसाक है? पाषाणमें वीज बोवने समान है तथा कटुक तूंबीमें दुग्ध धारण तुल्य है तथा गहन वनमें चोरके हस्तमें अपना धन सौंपने तुल्य है तथा अपने जीवनिके अर्थि विषभक्षण समान है तथा रोग दूरि करनेकूं अपथ्यभोज समान है तथा सर्पकूं दुग्धपान करावने समान दुःखकी उत्पत्तिका बीज है। तातैं अन्धकूपमें अपना धनकूं पटकि देना, परन्तु अपात्रकूं दान मत करो। अपात्रका संगम दावाग्निवत् दूरहीतैं त्याग करो। जैसै विषवृक्ष की वासना ही मूर्च्छित कर दे है तैसैं अपात्रकी वासना हू आत्मज्ञानतैं भ्रष्ट

करै है ऐसा दानका वर्णनमें पात्र कुपात्रका वर्णन किया है।

अब चार प्रकार सुपात्रदान देय जे प्रसिद्ध हुआ तिनके आगमपाठतैं नाम कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टांताः। वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

अर्थ—चार प्रकारके वैयावृत्यका चार दृष्टांत जानने योग्य हैं। आहारदानका फलतैं श्रीषेण राजा प्रसिद्ध हुआ और औषधिदानका फलतैं वृषभसेना श्रेष्ठीकी पुत्री प्रसिद्ध भई, अर शास्त्रदानके फलतैं कौंडेश नामा ग्वाल शास्त्रदान देय अन्यभवमें केवली भयो अर वसतिकाके दानतैं अर मरि स्वर्गलोकमें महार्द्धि देव हुवो। दानका अचिंत्य प्रभाव है। इस लोकमें हू दानी समस्तमें उच्च होय जाय है। अब यहां ऐसा और हू जानना जो दान देय दानका फल विषयभोग मेरे होयगा ऐसैं विषयनिकी वांछा कदाचित् मत करो। जे दानका फलतैं इन्द्रियनिके भोग चाहै हैं ते चिंतामणि देय काचखंडकूं ग्रहण करै है तथा अमृत छांडि विष पीवै हैं तथा सूत्रके अर्थि मणिमय हारकूं तोडै हैं तथा ईंधनके अर्थि कल्पवृक्षकूं छेदैं हैं तथा लोहेके अर्थि नावकूं तोडै हैं तथा अपने कंठमें अतिभार पाषाण बांधि अगाध जलमें प्रवेश करै हैं। कैसेक हैं, इन्द्रियनिके विषय? अग्निकी ज्यों दाह उपजावै हैं, कालकूट जहरकी ज्यूं अचेत करै हैं मारै हैं, पंचपापनिमें प्रवर्तावनेवाले हैं, तृष्णा उपजावनेवाले हैं, नकरमें प्राप्त करनेवाले हैं, महावैरके कारण हैं, ज्वररोग की ज्यो सन्ताप, मूर्छा, प्रलाप, दुःख, भय, शोक, श्रम उपजावनेवाले हैं। विषयनिका चिन्तवन ही जीवकूं अचेत करै है। सेवन किये तो अनेक भवनिमें मारैं ही। यातैं निर्वांछक होय दानधर्ममें प्रवर्तन करो। आपकूं लाभांतरायका क्षयोपशमतैं जो प्राप्त भया तामें संतोष करि आगामी वांछा मत करो। पावभर धान हूं मिलै तामें भी दानका विभाग करो। दान निमित्त धनकी वांछा मत करो। वांछाका अभाव सो ही परम दान है, सो ही परम तप है। ऐसैं वैयावृत्यकूं ही अतिथि-संविभाग व्रत कहिये। ऐसैं दानका वर्णन तो किया।

अब वैयावृत्यहीमें जिनेन्द्र पूजनका उपदेश करनेकूं सूत्र कहैं हैं—

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्। कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥११९॥

अर्थ—देव जे इन्द्रादिक तिनका अधिदेव कहिये स्वामी जो अरहन्तदेव ताका चरणनिके समीप जो परिचरण कहिये पूजन सो आदरतैं नित्य ही करैं। कैसाक है पूजन? समस्त दुःखनिका नाश करनेवाला है, वांछितकूं परिपूर्ण करनेवाला हे अर कामकूं दग्ध करनेवाला है।

भावार्थ—गृहस्थके नित्य ही जिनेन्द्रका पूजन समान सर्वोत्तम कार्य अन्य नाहीं है। तातैं प्रथम ही नित्य जिनेन्द्रका पूजन करना। इहां ऐसा सम्बन्ध जानना। जो किंचिन्मात्र अशुभकर्मका क्षयोपशमतैं मनुष्य तिर्यंचनिका ज्यों सप्तधातुमय देह जिनके नाहीं तथा आहारादिके अधीन क्षुधा तृषादिक वेदनाका मेटना नाहीं, स्वयमेव कण्ठमेंतैं अमृत झरै है, तिसकरि क्षुधा तृषा वेदना करि जिनके बाधा नाहीं अर जरा आवै नाहीं रोग आवै नाहीं, इत्यादिक कर्मकृत किंचित् बाधाके अभावतैं च्यारगतिमें देवनिको उत्तम कहै हैं, अर जिनमें ज्ञानावरण वीर्यांतरायादिक कर्मका अधिक क्षयोपशम होनेतैं अन्य देवनिमें नाहीं पाइये ऐसी ज्ञान वीर्यादिक शक्तिकी अधिकतातैं देवनिके स्वामी इन्द्र भये, जे इन्द्र समस्त असंख्यात देवनिकरि वंद्य हैं। अर जो समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण। मोहनीय, अन्तराय आत्माकी शक्तिके घातक समस्त कर्मका नाश करि जिनेन्द्र भए ते समस्त इन्द्रादिककरि वन्दनीक भए ते देवाधिदेव हैं, देवाधिदेवका चरणनिका पूजन है सो समस्त दुःखका नाश करनेवाला हैं, अर इन्द्रियनिके विषयनिकी कामनाका नाश कर मोक्ष होनेरूप सुखकी कामनाकूं पूर्ण करनेवाला है, तातैं अन्य आराधना छांडि जिनेन्द्रका आराधन करो। बहुत काल संसारी रागी, द्वेषी, मोही, जीवनिकी आराधन सेवन करि घोर कर्मका बंधकारि संसारमें परिभ्रमण किया। वीतराग सर्वज्ञकूं आराधन करता तो कर्मके बंधका नाश करि स्वाधीन मोक्षरूप आत्माकूं प्राप्त होता। तातैं संसारके समस्त दुःखका नाश करने वाला जिनेन्द्रका पूजन ही करो। इहां कोऊ आशङ्का करैं भगवान अरहन्त तो आयु पूर्णकरि लोकके अग्रभागमें मोक्षस्थानमें हैं; धातु पाषाणके स्थानरूप प्रतिबिंबनिमें नाहीं तथा अपना पूजन स्तवन चाहैं नाहीं, अपना अनंतज्ञान अनंतसुखमें लीन तिष्ठै हैं, अपना पूजन स्तवन तो अभिमान कषाय करि संतापित अपनी बडाईका इच्छुक अपना अपना स्तवन करि संतुष्ट होय ऐसा संसारी रागद्वेष सहित होय सो चाहै। भगवान परमेष्ठी वीतराग अनंतचतुष्टयरूपमें लीन तिनके पूजाकी चाह नाहीं, धातु पाषाणका प्रतिबिंबमें आवै नाहीं, किसीका उपकार करै नाहीं, किसीका अपकार हू करै नाहीं, पूजन स्तवनादि करै तासूं प्रीति करै नाहीं, निंदा करैं तामें द्वेष करै नाहीं, किस प्रयोजनके अर्थि पूजन स्तवन करिये है? ताकूं उत्तर कहै हैं।

जो भगवान वीतराग तो पूजन स्तवन चाहैं नाहीं, परन्तु गृहस्थका परिणाम शुद्ध आत्मस्वरूपकी भगवानमें ठहरै नाहीं, साम्यभावरूप रहै नाहीं, निरालम्बित ठहरै नाहीं, तदि परमातमभावनाका अवलंबनके निमित्त विषय कषाय आरम्भका अवलंबन छांडि साक्षात् परमात्मस्वरूपका धातु पाषाणके प्रतिबिंबनिमैं संकलपकरि परमात्माका ध्यान स्तवन पूजन करैं है। तिस अवसरमें विषय–कषायादिक संकल्पके अभावतैं, दुर्ध्यानके छूटनेतैं, अपने परिणामकी विशुद्धताका प्रभावतैं, अशुभकर्मनिका रस सूक जाय अशुभकर्मनिकी स्थिति घटि जाय, अनुभाग घटि जाय सो ही पापकर्मका अभाव है। अर परिणामनिकी

विशुद्धताका प्रभाव करि शुभ प्रकृतिनिमें रस बधि जाय है। तिन शुभ आयु विना समस्त कर्मनिकी प्रकृतिकी स्थिति घटि जाय है। याहींतैं वीतरागका स्तवन पूजन ध्यानके प्रभावतैं पापकर्मका नाश होय है। सातिशय पुण्यकर्मका उपार्जन होय है। और हू निश्चय करो—पुण्यपापका बन्धका कारण तो अपना भाव ही है। बाह्य जैसा अवलंबन मिलै तैसा अपना भाव होय है। यद्यपि भगवान अरहन्त धातुपाषाणाके प्रतिबिंबमैं आवै नाहीं अर भगवान वीतराग किसीका उपकार अपकार करै नाहीं तथापि वीतरागका ध्यान, पूजन, नाम अपने शुभ परिणाम करनेकूं, रागद्वेषके नाश करनेकूं बाह्य कारण हैं। तातैं परम उपकार जीवका होय है। जैसैं काष्ठपाषाण चित्रामके स्त्रीनिके रूप रागकूं कारण है तथा अचेतन सुवर्ण, मणि, माणिक्य, रूपा, महल, बन, बाग, ग्राम, पाषाण, कर्दम स्मशानादिका देखना, श्रवण करना, रागद्वेष उपजावै है तथा शुभ अशुभ वचन राग रुदन सुगंध दुर्गंध ये समस्त अचेतन पुद्‌गल द्रव्य हैं इनका श्रवण अवलोकन चिंतवन अनुभव करि रागद्वेष होय है, तैसैं जिनेन्द्रकी परम शांतमुद्रा ज्ञानीनिके वीतरागता होनेकूं सहकारी कारण है, प्रेरक नाहीं। अर भव्य जीवनिके वीतरागतातैं अन्य कुछ चाहना नाहीं है। अर जिनेन्द्रनिके चरणनिके पूजनेमें जो जल चन्दनादि अष्ट द्रव्य चढाइये है, सो कुछ भगवान भक्षण करै वा पूजन विना अपूज्य रहैंगे वा वासना लेवै हैं ऐसा अभिप्रायतैं चढावना नाहीं है। भगवानके दर्शनका अति आनन्दतैं जलचंदनादिकरूप अर्घ उतारण करना है। जैसैं राजानिकी भेंट करना, नजर करना, उतारना, निछरावलि करनी, अक्षतपुष्पादिक क्षेपना, मोतीनिके थाल वार (फेर) के उतारन करै हैं तथा सुणर्वकी महोर रुपयांका थाल उतार करि लुटावै हैं, रत्ननिके थाल भर निछरावलि करि क्षेपै है, पुष्प अक्षतादिक उतारन करै हैं, ते राजानिकी भक्ति अर आनन्द प्रकट करना है, राजानिकूं दान नाहीं, राजानिके अर्थिं नाहीं है। निछरावलि राजानिके निकट करी हुई अर्थीजन, याचकजन ग्रहण करै हैं। तैसैं भगवान अरहंतनिके अग्रभागविषैं अष्टद्रव्यनिका अर्घ चढावना जानना।

अब पूजनके योग्य नव देवता हैं। उक्तं च गोमट्टसारे गाथा—

अरहंतसिद्धसाहूतिदयं जिणधम्मवयणपडिमाहु। जिणणिलया इदिएदे णवदेवा दिंतु मे बोहिं॥ १॥

अर्थ—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर इस प्रकार ये नव देव हैं ते मोकूं रत्नत्रयकी पूर्णता देवो। सो जहां अरहंतनिका प्रतिबिंब है तहां नव रूप गर्भित जानना। जातैं आचार्य, उपाध्याय, साधु तो अरहंतकी पूर्व अवस्था है अर सिद्ध है सो पूर्वैं अरहंत होय करके ही सिद्ध भया है। अरहंतनिकी वाणी सो जिनवचन है अर वाणीकरि प्रकाश किया अर्थ सो जिनधर्म है अर अरहंतका स्वरूप जहां तिष्ठै सो जिनालय है ऐसे नवदेवतारूप भगवान अरहंतके प्रतिबिंबका पूजन नित्य ही करना योग्य है।

अरिहंतके प्रतिबिंब अधोलोकमें भवनवासीनिके चमर वैरोचनादिक इन्द्र अर असंख्यात भवनवासी देवनिकरि पूजिये है। अर मध्यलोकमें चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्रादिक अनेक धर्मात्मानिकर पूजिये है । अर व्यंतरलोक में व्यंतरेंद्रादिक देवनिकरि पूजिये है, अर ज्योतिर्लोकमें चंद्र-सूर्यादिक असंख्यात ज्योतिषी देवनिकरि पूजिये है। स्वर्गलोकमें सौधर्म इन्द्रादिक असंख्यात कल्पवासी देवनिकरि पूजिये है। ऐसैं त्रैलोक्यके भव्यनि करि वंद्य पूज्य अरहंतका तदाकार प्रतिबिंब है। सो सदाकाल भव्यजीवनिकूं पूजना योग्य है ।

अब पूजा दोय प्रकार है–एक द्रव्यपूजा, एक भावपूजा । तहां जो अरहंत प्रतिबिंबका वचनद्वारै स्तवन करना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणा देना, अंजुलि मस्तक चढावना, जल चंदनादि अष्ट द्रव्य चढावना सो द्रव्यपूजा है अर अरहंतके गुणनिमें एकाग्र चित्त होय अन्य समस्त विकल्पजाल छांडि गुणनिमें अनुरागी होना तथा अरहंतप्रतिबिंबका ध्यान करना सो भावपूजा है। अथवा अरहंत प्रतिबिंबका पूजनके अर्थि शुद्धभूमिमें प्रमाणिक जलतैं स्नान करि, उज्ज्वल वस्त्र पहरि, महाविनयसंयुक्त अंजुलि जोडि भक्तिसहित उज्ज्वल निर्दोष जलकरि अरहंतके प्रतिबिंबका अभिषेक करना सो पूजन है । यद्यपि भगवानके अभिषेकका प्रयोजन नाहीं तथापि पूजकके ऐसा भक्तिरूप उत्साहका भाव है, जो अरहंतकूं साक्षात् स्पर्श ही करूं हूं, अभिषेक ही करूं हूँ, ऐसी भक्तिकी महिमा है। बहुरि उत्तम जलकूं झारीमें धारण करि अरहंतप्रतिबिंबका अग्रभागविषैं ऐसा ध्यान करे जो––हे जन्म जरा मरणकूं जीतनेवाले जिनेन्द्र! जन्मजरामरणके नाशके अर्थि जलकी तीन धार आपका चरणारविन्दकी अग्रभूमिविषैं क्षेपण करूं हूं । हे जिनेन्द्र! हे जन्मजरामरणरहित आपका चरणांका शरण ही जन्मजरामरणरहित होनेकूं कारण है । बहुरि हे संसारपरिभ्रमणका आतापरहित मैं अपने संसारपरिभ्रमणरूप आताप नष्ट करनेकूं चन्दन कर्पूरादिकद्रव्यकूं आपका चरणनिका अग्रभागविषैं चढाऊं हूं । हे अविनाशी पदके धारक जिनेन्द्र! मैं हूं अक्षयपदकी प्राप्तिके अर्थि अक्षतनिकूं आपका अग्रस्थानमें क्षेपण करूं हूं । हे कामबाणके विध्वंसक जिनेन्द्र! मैं हू कामका विध्वंसके अर्थि पुष्पनिकूं आपका अग्रस्थानमें क्षेपण करूं हूं। हे क्षुधारोगरहित जिनेन्द्र! मैं हू क्षुधारोगका नाशके अर्थि नैवेद्यकूं आपका अग्रस्थानविषैं स्थापन करूं हूं। हे मोहअंधकाररहित जिनेन्द्र! मैं हू मोह अंधकार दूरि करनेकूं आपका अग्रस्थानविषैं दीपक धरूं हूँ । हे अष्टकर्मके दाहक जिनेन्द्र! मैं हू अष्टकर्मके नाशके अर्थि आपका अग्रभागस्थानविषैं धूप स्थापन करूं हूं । हे मोक्षस्वरूप जिनेन्द्र! मैं हू मोक्षरूपफलके अर्थि आपका अग्रस्थानविषैं फलनिकूं स्थापन करूं हूं । ऐसैं अपने देश कालकी योग्यता प्रमाण एकद्रव्यतैं हू पूजन है दोय द्रव्यतैं तथा तीन च्यार पांच छह सात अष्ट द्रव्यनितैं हू पूजन करि भावनिकूं परमेष्ठी के ध्यानमें युक्त करै है, स्तवन पढै है, महापुण्य उपार्जन करै है, पापकी निर्जरा करै है ।

इहां ऐसा विशेष और जानना जो—जिनेंद्रके पूजन समस्त च्यार प्रकारके देव तो कल्पवृक्षनितैं उपजे गन्ध, पुष्प, फलादि सामग्री करि पूजन करै हैं, अर सौधर्म इन्द्रादिक सम्यग्दृष्टि देव हैं ते तो जिनेंद्रकी भक्ति पूजन स्तवन करके ही अपनी देवपर्यायकूं सफल मानैं । अर मनुष्यनिमें चक्रवर्ती नारायण बलभद्रादिक राजेन्द्र हैं ते मोतीनिके अक्षत रत्ननिके पुष्प फल दीपकादिक तथा अमृतपिंडादिकरि जिनेन्द्रका पूजन, स्तवन, नृत्य, गानादिककरि महापुण्य उपार्जन करै हैं। अर अन्य मनुष्यनिमें हू जिनके पुण्यके उदयतैं, सम्यक् उपदेशके ग्रहणतैं, जिनेन्द्रके आराधनामें भक्ति उत्पन्न होय ते समस्त जाति कुलके धारक यथायोग्य पूजन करैं हैं । समस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपना अपना सामर्थ्य, अपना अपना ज्ञान, कुल, बुद्धि, सम्पदा, संगति, देश–कालके योग्य अनेक स्त्री-पुरुष, नपुंसक, धनाढ्य, निर्धन, सरोग, नीरोग, जिनेंद्रका आराधना करैं हैं। केई ग्राम निवासी हैं, केई नगरनिवासी हैं, केई वननिवासी हैं, केई अति छोटे ग्राममें बसनेवाले हैं। तिनमें केई तो अतिउज्वल अष्टप्रकारसामग्री बनाय पूजनके पाठ पढिकरि पूजन करैं हैं । केई कोरा सूका जव, गेहूं, चना, मक्का, बाजरा, उडद, मूंग, मोठ इत्यादिक धान्यकी मूठी ल्याय जिनेंद्रको चढावै हैं । केई रोटी चढावै हैं, केई राबडी चढावैं हैं। केई अपनी बाडीतैं पुष्प ल्याय चढावैं हैं। केई नाना प्रकार के हरित फल चढावैं हैं। केई जल चढावै हैं । केई दाल, भात, अनेक व्यञ्जन चढावै हैं । केई नाना मेवा चढावैं हैं । केई मोतीनिके अक्षत, माणिकनिके दीपक, सुवर्ण रूपानिके तथा पंचप्रकार रत्ननिकरि जडे पुष्प फलादि चढावैं हैं । केई दुग्ध, केई दही, केई घृत, चढावैं हैं । केई नानाप्रकारके घेवर, लाडू, पेडा, बरफी, पूडी, पूवा, इत्यादिक चढावैं हैं । केई वंदना मात्रही करै हैं । केई स्तवन, केई गीत, नृत्य, वादित्र ही करै हैं । केई अस्पर्श्य शूद्रादिक मन्दिरके बाह्य ही रही मन्दिरके शिखरकी तथा शिखरनिमें जिनेन्द्रके प्रतिबिंबका ही दर्शन वन्दना करैं हैं । ऐसैं जैसा ज्ञान, जैसी सङ्गति, जैसी सामर्थ्य, जैसी धन संपदा, जैसी शक्ति तिस प्रमाण देशकालके योग्य जिनेन्द्रका आराधक मनुष्य हैं । ते वीतरागका दर्शन स्तवन पूजन वन्दनाकरि भावनिके अनुकूल उत्तम मध्यम जघन्य पुण्यका उपार्जन करै हैं । यो जिनेन्द्रका धर्म जाति कुलके अधीन नाहीं, धनसम्पदाके अधीन नाहीं, बाह्यक्रियाके अधीन नाहीं है । अपने परिणामनिकी विशुद्धताके अनुकूल फलैं है । कोऊ धनाढ्य पुरुष अभिमानी होय, यशका इच्छुक होय, मोतीनिके अक्षत माणिकानिके दीपक रत्नसुवर्णके पुष्पनिकरि पूजन करै हैं । अनेक वादित्र नृत्यगान करि बडी प्रभावना करै हैं । तो हू अल्प पुण्य उपार्जन करै, वा अल्प हू नाहीं करैं । केवल कर्मका बन्ध ही करै हैं । कषायनिके अनुकूल बन्ध होय है । केई अपने भावनिकी विशुद्धतातैं अति भक्तिरूप हुआ, कोऊ एक जल फलादिक करि वा अन्नमात्र करि वा स्तवनमात्रकरि महापुण्य उपार्जन करै हैं। तथा अनेक भवनिके संचय किये पापकर्मकी निर्जरा करै हैं । धनकरि पुण्य मोल नाहीं आवै है । जे निर्वांछक हैं मन्दकषायी, ख्याति

कार्य करि धर्मकी वृद्धि करैं। जिनमन्दिर है सो अहिंसाधर्मका आयतन है। जिनमन्दिरका निमित्तसूं अनेक जीव पापाचार छांडि जिनमन्दिरमें आवैं, तदि जिनधर्मके शास्त्रश्रवण करैं, तदि अपना अर परद्रव्यनिका भेदविज्ञान उपजै, तदि, मिथ्यादेव मिथ्यागुरु, मिथ्याधर्मकी उपासना छांडि सर्वज्ञ वीतरागके धर्ममें प्रवर्तन करैं, तदि हिंसादिक पापनितैं, सप्तव्यसनतैं, अन्यायतैं, अभक्षतैं विरक्त होय, वीतरागके ध्यानमें, पूजनमें, कायोत्सर्गमें, सामायिकमें, संयममें उपवास-शील-संयम-दान व्रत-प्रभावनामें लीन होय मोक्षमार्गमें प्रवर्तन करैं। तातैं ऐसा निश्चय जानहु, जिनमन्दिरका निमित्त विना मोक्षमार्ग नाहीं प्रवर्तैं। तातैं जा पुरुषनै जिनमन्दिर कराया, सो बहुत जीवनिका उपकार किया। बहुरि आपका हू बडा उपकार है। आप करावनेवाले का परिणाम सुलटे मार्ग में लगि जाय है-जो मैं जिनेन्द्र वीतराग का मंदिर कराया है। अब जो मैं अन्याय मार्ग चलूंगा, तो जगत में निंद्य हो जाऊंगा। मैं अभक्ष्य-भक्षण कैसैं करूं? झूठ कैसैं बोलूं? व्यसननि में प्रवृत्ति कैसैं करूं? कलह करना, गाली देना, लोकनिंद्य कर्म करना, ये अयोग्य दुराचार तो लोकलाजतैं ही अति दूर जाता रहै है। अर परिणाम ऐसा हो जाय जो मन्दिर में मैं मन्दिर करानेवाला ही प्रवर्तन नाहीं करूंगा, तो और कौन प्रवर्तैंगा? ऐसा विचार करि अभिषेकमें, जिन-पूजनमें, शास्त्र-श्रवणमें, जापमें, व्रतमें, जागरण-भजनमें प्रवर्तन लगि जाय, तदि आपके धर्म में अतिप्रीति वधि जाय। शास्त्रके बाचनेवालेनितैं, शास्त्र-श्रवण करनेवालेनितैं, धर्ममें प्रीति करनेवाले साधर्मीनिसूं, सिद्धांतकी चर्चा कथनी करनेवालेनिमें अनुराग बधता चल्या जाय। पढनेवालेनिसूं अतिहर्ष वधै। बहुरि आज मन्दिरमें पूजन कौन कौन किया? दर्शनमें कौन कौन आवै है? यहां व्याख्यान में कौन कौन बैठे है? आज उपवासवाले केतेक हैं? अबकैं बेला, तेला, कौन कौन किया? प्रोषधोपवासवाले केतेक हैं? जागरणमें केतेक लोग लुगाई प्रवर्तैं हैं? भजन, गान, बहुत सुन्दर भये। ऐसैं धर्मकी प्रवृत्ति देखि बहुत आनन्द बधै, समस्त साधर्मीनिमें वात्सल्यता दिन दिन वधै अर हजारां लोग-लुगाईनिमें प्रभाव जैसैं जैसैं प्रगट होय, तैसैं तैसैं धर्मानुराग बधता चल्या जाय। बहुरि गृहचारका नुकता व्योहार विवाह करना वस्त्र बनवाना, आभरण बनवाना, अपने रहनेका जायगामें मकान बनावना, चित्राम करावना, सुवर्ण लगावना इत्यादि रागके वधावनेवाले पाप कार्यनिमें तो प्रीति घटि जाय है---जो इनकरि कहा प्रयोजन है? कौनकूं दिखावना है? पाप का कारण है, निंद्य है ऐसा विराग आजाय है, लज्जा आजाय, जो पापकार्यकूं कहा दिखाऊँ? जो एता धन मन्दिर में लगाऊं, तो बहुत जीवनिकै बहुत कालपर्यंत धर्म में अनुराग वधै। ऐसा विचार जो धन लगावै सो मन्दिरके उपकरणनिमें सिंहासन, छत्र, चामर, भामण्डल, घण्टा, ठोणा, कलश तथा थाल, रकाबी, झारी, धूपदहनादिक, समवशरणादि अनेक उपकरण सुवर्ण-रूपाके, कांसेके, पीतलके, उपकरणनिमें धन लगाय आपकै धर्मात्मा जननिकै धर्ममें अनुराग वधावै तथा गदेला, चांदनी, पडदा, सायवान इत्यादिकनिकरि साधर्मी धर्म-सेवन करनेवालेनिका बडा वैयाव्रत होय है तथा विवाहादिकमें लगाया धनतैं ऐसी कीर्ति, उच्चापना प्रगट नाहीं होय, जैसा मन्दिर

करानेवालेका बहुत कालपर्यंत कीर्ति, (यश) प्रकट होजाय । अपने देशके समस्त लोक पूजन, प्रभावना, दर्शन, धर्मश्रवण करि महान पुण्य उपार्जन करैं हैं ।

यहां कोऊ कहैं—मन्दिर करावना, उपकरण कराय जिनमन्दिरमें मेलना, अपना अर अन्यका उपकार तो करैं हैं; परन्तु मन्दिर करावने में छहकायके जीवनिकी हिंसा तो, धर्म के घात करनेवाली होय ही है ।

ऐसैं कहनेवालेकूं उत्तर करिए है—यामें हिंसा नाहीं होय है । हिंसा तो अपना जीवघात करनेका परिणाम होयगा, तदि होयगी । मन्दिर करानेवालेके हिंसा करनेका परिणाम नाहीं है; अहिंसाधर्म में प्रवृत्ति करनेका परिणाम है । जैसे मुनीश्वरनिकूं यत्नाचारतैं आहार देता गृहस्थके हिंसा नाहीं, तथा जैसै साधुनिकी वन्दनाके अर्थि वा धर्मश्रवणके अर्थि गमन करता गृहस्थके हिंसा नाहीं होय है तथा जैसैं नित्य विहार करता ईर्यापथ सोधि गमन करता मुनीश्वरनिके हिंसा नाहीं है तथा मुनिश्वर नित्य उपदेश करै हैं, गमन करै हैं, शयन करै हैं, उठै हैं, बैठे हैं, आहार करै हैं, नीहार करै हैं, वन्दना करैं हैं, कायोत्सर्ग करै हैं, तीर्थवंदना गुरुवंदनाकूं जाय हैं, तिन कार्यनिमें हिंसक परिणाम विना जीवकी विराधना होते हू हिंसा नाहीं है । जीवनि करि तो धरती, आकाश, समस्त वस्तु भरया है; परन्तु कषायके वशि होय दयाभाव रहित होय समस्त प्रवर्तन करैगा, तिसकै जीव मरो वा मत मरो, हिंसा ही है; जातैं अपना परिणाममें दया नाहीं । हिंसाभाव अर अहिंसाभाव तो जीवके परिणाम हैं; बाह्यमें जीवका घात-अघातके आधीन नाहीं । सो पूर्वै बहुत वर्णन किया है । अब यहां मन्दिर बनावनेवालेका परिणाम विचारो । जाकूं हवेली बनावनेमें, बाग बनानेमें, कुआ-बावडी बनानेमें,महाहिंसा दीखै है अर जिसकै लोभ घट्या है, धनसूं ममता टूटी है, पापतैं भयभीत भया है सो मन्दिर करावै है । पहले गृहस्थकै व्यापारनिमें तो प्रवर्तनि करैं था, तदि दयाधर्मकूं याद हू नाहीं करै था । अब सब काममें धर्महीसूं परिणाम जोडै है, जो यत्नसूं करो । यो मन्दिरको काम है । जल दोहरा नातणासूं छान छान लगावै है । कली, चूना, तगार दो दिन सिवाय नाहीं राखै; दो दिनमें उठावनेमें यत्न करै है । अर उठावना, मेलना, धरना, इनमें अपना परिणाम तो यही राखै है 'जो यत्नसूं करो । विराधनाकूं टालो ।' इत्यादिक कार्यनिमें हिंसाका परिणाम तो नाहीं करै है । अपना परिणाम तो धर्मके आयतन बनावनेका है । जो धर्मका स्थान बनि जायगा, तो यामें अखण्ड अहिंसाधर्म प्रवर्तैगा । अर यो मन्दिर है, सो महान धर्मको आयतन है । गृहसम्बन्धी बहुत हिंसा, आरम्भ घटाय परिणामनिमें दयारूप प्रवर्तनमें यत्न किया है । मन्दिरमें पग धरतां प्रमाण ईर्यापथ सोधि चालो; यो मन्दिर है, मत विराधना हो जावो । मन्दिरमें प्रवेश किये पीछैं जैनीनिकै इतने त्याग तो विना करै ही हैं—भोजनका त्याग, जलपानका त्याग, विकथाका त्याग, गाली का त्याग, शयन का त्याग, पवन लेनेका त्याग, बनज करनेका त्याग इत्यादिक पापबन्धके कारण समस्त दुराचारका त्याग होय है । तातैं जिनमन्दिर तो समस्त प्रकार अहिंसा धर्महीका प्रवर्तक जानना, जामें आरम्भ विषय कषायनिका त्याग करने की ही महिमा है।

ऐसैं मांसादिकका त्यागरूप मूलगुण कहि अब तीन प्रकार गुणव्रत कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम् । अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥ ६७ ॥

अर्थ—आर्य जे भगवान गणधरदेव हैं, ते दिग्व्रत, अनर्थदंडव्रत, भोगोपभोगपरिमाण ये तीन व्रत हैं ते तिन अणुव्रतनिकूं गुणकार रूप बधावनेतैं गुणव्रत कहै हैं । दश दिशानिमें गमन करने की मर्यादा करना सो दिग्व्रत है ॥ १ ॥ अर जिनतैं कुछ कार्य तो सधै नाहीं अर जिनतैं सासतो पाप होय, विना प्रयोजन दण्ड भुगतना पडै, सो अनर्थदण्ड हैं । अनर्थदण्डनिका त्याग, सो अनर्थदंडविरति नामका गुणव्रत है ॥ २ ॥ अर एक वार भोगने में आवै, सो भोग अर बारम्बार भोगने में आवै, सौ उपभोग कहिये है । भोग उपभोगनिका परिमाण करना, सो भोगोपभोग परिमाणव्रत है ॥ ३ ॥

अब दिग्व्रत नाम गुणव्रतका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि । इति संकल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥ ६८ ॥

अर्थ—दश दिशानिका समूहमें परिमाण करिकैं अर परिमाण करी "तातैं बाहर में नाहीं गमन करूंगा," अणुमात्र हू पापतैं निवृत्ति के अर्थि, इस प्रकार मरणपर्यंत संकल्प करना, सो दिग्व्रत नाम गुगव्रत है ।

भावार्थ—गृहस्थ है सो अपना प्रयोजन जानै "जो हमारे इस दिशामें एता क्षेत्रतैं अधिक बनज व्यौहारका प्रयोजन नाहीं तथा इस दिशा में एता क्षेत्र सिवाय मोकूं व्यौहार नाहीं करना," लोभनाशके आर्थे, अहिंसाधर्मकी वृद्धिके आर्थि ऐसा विचार करि मरणपर्यंत दश दिशानिमें मर्यादा करि बाहर जावनेका, कोऊको बुलावनेका, भेजनेका, वस्तु मंगावनेका त्याग करि लोभकूं जीतना, सो दिग्व्रत नाम गुणव्रत है ।

अब दश दिशानिकी मर्यादा कौन परिमाणतैं करिये यातैं सूत्र कहैं हैं—

मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः । प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥

अर्थ—दश दिशानिकी मर्यादारूप संकोचविषैं प्रसिद्ध विख्यात मर्यादा परमागमविषैं समुद्र, नदी, पर्वत, वन, देश, योजन कहे हैं । मरणपर्यंत मर्यादाबाह्यक्षेत्रमें गमनागमनादि नाहीं करै, समुद्रादिक लोकविख्यात चिन्हतैं मर्यादा करै ।

अब दश दिशाकी मर्यादा धारण करनेवालेकै कहा होय, सो कहैं हैं —

अवधेर्बहिरणुपापप्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम् । पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥७०॥

अर्थ—दिग्व्रतनिनै धारण करते गृहस्थनिकै मर्यादा बाहर अणुमात्र हू पापप्रवृत्तिकी विरक्ततातैं अणुव्रत हैं ते ही पंच महाव्रतनिकी परिणतिकूं प्राप्त होय हैं।

भावार्थ—जो गृहस्थ दश दिशानिकी मर्यादा करिकैं रहै है, ताकैं मर्यादामांहि तो अणुव्रत रह्या अर मर्यादा बाहर समस्त त्रस-स्थावरनिकी हिंसादिक पंच पापनिके त्यागतैं अणुव्रत ही महाव्रतपनाकी परिणतिकूं प्राप्त होय हैं।

अब या कहै हैं—जो सम्वर कियो तितना क्षेत्र बाहर अणुव्रत हैं ते महाव्रतकी परिणतिकूं प्राप्त होना ही कैसैं कहो हो? मर्यादा बाहर साक्षात् महाव्रती कहो? ताकूं उत्तर करनेरूप सूत्र कहैं हैं—

प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः। सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्पन्ते ॥७१॥

अर्थ—अणुव्रती गृहस्थकै सकलसयंमका विरोधी, जो प्रत्याख्यानावरणका उदयका मन्दपनातैं मन्दतर चारित्रमोहका परिणाम 'सत्त्वेन दुरवधारा' कहिये अस्तिपनाकरि महाकष्ट करिकै हू धारणा नाहीं किया जाय, तातैं महाव्रतके आर्थि कल्पना[1] करिये है।

भावार्थ—जाकै चारित्रमोहकर्मकै मन्द उदयका परिणाम संज्वलनकषायरूप होय, ताकैं तिसकालमें महाव्रत होय है। अर गृहस्थ देशव्रतीकै प्रत्याख्यानावरण उदय विद्यमान है, तातैं संज्वलन कषायका मन्द उदयरूप परिणाम कष्टतैं हू होना दुर्लभ है। तातैं समस्त पापनिका त्याग होते हू महाव्रत नाहीं होय है। महाव्रतकी कल्पना ही करिये है। महाव्रत तो प्रत्याख्यानावरण कषायका उदयका अभावतैं होय हैं।

अब महाव्रत कैसैं होय सो कहैं हैं—

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः। कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥७२॥

अर्थ—हिंसादि पंच पापनिका मनवचनकायकरि, कृत-कारित-अनुमोदनाकरि त्याग, सो महन्त पुरुषनिके महाव्रत होय हैं।

अब दिग्व्रतके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम्। विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥७३॥

अर्थ—दिशानिकी मर्यादा करी तिनमें अज्ञानतैं वा प्रमादतैं पर्वतादिक ऊपरि चढावना, सो ऊर्ध्वातिपात अतीचार है। कूप वावडी इत्यादिकनिमें नीचैं उतरवो, सो अधःअतिक्रम है। तिर्यक् गुफादिकनिमें प्रवेश करना, सो तिर्यग्व्यतिक्रम है। बहुरि क्षेत्र

---

[1] इस का विशेष खुलासा प्रस्तावनासे जान लीजिये।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

श्रेयःपद्मविकासवासरमणिः स्याद्वादरक्षामणिः । संसारोरगदर्पगारुडमणिर्भव्यौघचिंतामणिः ॥
आश्रांताक्षयशांतिमुक्तिमहिषीसीमन्तमुक्तामणिः । श्रीमद्देवशिरोमणिर्विजयते श्रीवर्धमानो जिनः ॥

प. पू. चा. च. श्री १०८ आचार्य शांतिसागर दिगंबर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था प्रमाणित—

"श्रुतभांडार व ग्रंथप्रकाशन समिति, फलटण"

(स्थापनाः—भाद्रपद वदी ५ शके १८७६, वीर संवत् २४१०)

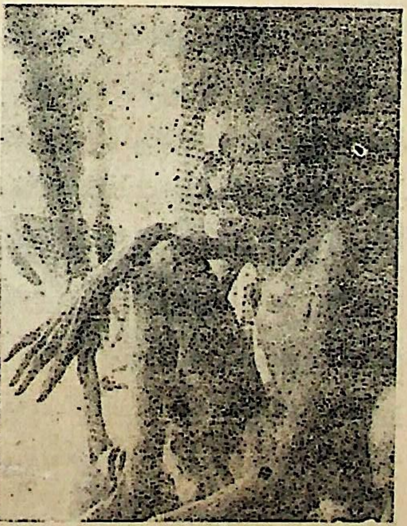

कार्यारंभके निमित्त— परमपूज्य, प्रातःस्मरणीय, वीतरागतपोनिधि, विश्ववंद्य, धर्मदिवाकर, दिगंबर महाश्रमण, योगींद्रचूडामणि, सिद्धांतपारंगत, धर्मसाम्राज्यनायक, जिनशासन उद्धारक श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्यवर्य शांतिसागरजी महाराजके जीवन तथा जीवन संदेशसे अखिल भारतवासी दिगंबर जैन जनता परिचित है। और यह सर्व विदित और सर्वमान्य है कि आचार्यश्रीका परमपवित्र तपोमय आंतरिक वैयक्तिक जीवन इस शताब्दीकी गौरवशाली परम वस्तु रही है। वैयक्तिक जीवनके साथ साथ पूज्य आचार्यश्रीके जीवनकालमें जैन समाजमें धर्मकार्योंकी और सामाजिक बहुविध संस्थाओंकी निर्मिति हुई। उनमें त्याग और तपस्याके मूर्तिमंत प्रतीक कतिपय संख्यामें निर्माण हुए। धर्मायतनोंकी निर्मिति हुई एवं धर्मप्रभावनाके अनेकानेक प्रभावशाली कार्य हुए जिसको समाज कभी भूल नहीं सकेगा। आचार्यश्रीने अपने उत्कृष्ट समाधि—कालमें स्वात्मानुभव तथा आगमके अनुसार जीवनस्वभाव और धर्मका आविष्कार करके जीवनकी सफलताके लिये अपूर्व उपदेश देकर मार्गदर्शन किया है। जिसमें आत्मचिंतनका एक अद्भुत मार्ग विशेषतया बताया है और दूसरा निरंतर आगम रक्षा तथा ज्ञानदान का सुलभ मार्ग बताया है। आत्मचिंतनका मार्ग व्यक्तिगत है फिर भी अिस मार्गपर चलनेके पहले आत्मविश्वासके लिये अध्ययनकी जरूरी है। आगमप्रमाण अध्ययनके लिये आगमरक्षा और आगमानुसार ज्ञानप्राप्तिके लिये प्रमाण आगम मिलनेकी सुविधा और वह भी दानोत्तम दान शास्त्रदानसे करनेका उत्कृष्ठ उपक्रम के लिये आचार्यश्रीजीने महत्वपूर्ण आदेश और उपदेश देकर प्रेरणा की जिस उपक्रमका परिचय सभी भारतवासी जैनभाईयोंको होना अत्यावश्यक है।

दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाकी निर्मिति-- परमपूज्य आचार्यश्रीके उत्तरजीवनके महत्वपूर्ण कालखंडमें महाराजजीका विहार प्राय: फलटण, लोणंद, नीरा, बारामती, दहिगांव, सोलापूर, बार्शी, कुंथलगिरी, आदि स्थानोंपर हुवा और यह भूमि एक तरहसे आचार्यश्रीके चरणधूलीसे पावन होगई है। इसी कालखंडमें आचार्यश्रीको यह ज्ञात हुवा कि आगम ग्रन्थोंमेंसे प्राचीनतम ग्रन्थराज श्रीधवल, श्रीजयधवल तथा श्रीमहाधवलकी केवल दो पूर्ण और एक अपूर्ण प्रतियाँ मूडबिद्रीमें जो थी वे अत्यंत जीर्ण होती जा रही हैं और दीमककी भी शिकार बनी हुई हैं। अिस प्रमाण ग्रंथके पांच हजार श्लोक नष्ट हुए यह सुनकर आचार्यश्रीके दिलमें विशेष चिंताका प्रादुर्भाव हुवा। वास्तवमें ऐसे महत्वपूर्ण और वीरवाणीसे साक्षात् संबंध रखनेवाले ग्रंथोंका युगयुगांतक सुरक्षित रखना कितना आवश्यक है इस आशयको अपने धीर गंभीर वाणी द्वारा पूज्य आचार्यश्रीने व्यक्त किया। और उनको ताम्रपत्रपर खुदवाकर सुरक्षित रखनेके लिये "प. पू. चा. च. श्री १०८ आचार्य शांतिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक" संस्थाकी निर्मिति आचार्यश्रीके आदेशसे, उनकी विशेष प्रेरणा तथा सदुपदेशके सातिशय निमित्तके कारन श्रीसिद्धक्षेत्र कुंथलगिरिपर वीर संवत् २४७० के पर्यूषण पर्वमें गुरु आज्ञापालनतत्पर बडे बडे व्यक्तियोंके सहकार्यके कारन अल्पावकाशमें हुई।

यथावकाश वीर संवत् २४७१ के फालगुन मासमें आचार्यश्रीके बारामतीके विहारके समय इस संस्थाकी नियमावली बनवाकर संस्था कानूनके अनुसार रजिस्टर की गई। संस्थाके द्वारा संपन्न कार्य अभीतक सुचारुरूपसे चल रहा है और मूल उद्देशकी पूर्तिमें आज जो कार्य संपन्न हुए हैं वे निःसंदेह गौरवशाली और महत्वपूर्ण हैं। प्रारंभमें युद्धकालमें कार्यपूर्तिमें बहुतसी कठिनाइयाँ आती रही किंतु आचार्यश्री जैसे महान् तपस्वी मुनीराजके आशिर्वादके कारन वे भी सुलझ गई। संस्थाके प्रगट किये उद्देशके अनुसार श्रीधवल, जयधवल, महाधवल ग्रंथोंके, अधिकारी, अनुभवी विद्वानोंद्वारा संशोधन करके ताम्रपत्रपर उत्कीर्ण किया गया। उत्कीर्ण ताम्रपत्रोंका आकार ८×१३ इंच है। और कुल ताम्रपत्रोंकी संख्या २६६३ (अपूर्ण) है जिनका वजन करीब ५० बंगाली मण हुवा है। साथही साथ तीनों ग्रंथोंकी पांच पांचसों प्रतियाँ भी मुद्रित की हैं जिसका उपयोग विद्वान् और स्वाध्यायप्रेमी अच्छी तरहसे बहुत कालतक कर सकते हैं इस दिशामें जैनसमाजमें तो क्या अन्य भारतीय या विदेशीय समाजमें भी इतना बडा कार्य अबतक नहीं हो पाया है।

श्रीधवल, जयधवल और महाधवलका परिचय, संशोधन, ताम्रपत्र छपानेका कार्य आदि बातोंका उल्लेख

उनकी प्रस्तावनामें आया है । किंतु ग्रंथराजके उत्पत्तिके कारणोंका कथन सर्वथा अवश्य उपयोगी होगा इस दृष्टिसे उनका संक्षेपमें परिचय कराना जरूरी है ।

श्रीधवल, जयधवल तथा महाधवल ग्रंथराज— श्रीधरसेनाचार्य संपूर्ण अंगों तथा पूर्वोंके एकदेशके ज्ञानी तथा अष्टांग महानिमित्त के ज्ञानी थे । अपने ज्ञानको अपने पश्चात् सुरक्षित रखनेकी भावनासे प्रेरित होकर दक्षिणापथ आंध्रदेशके वेणातटपर होनेवाली महापूजाके महोत्सव के समय, एकत्रित मुनिसंघके संघनायक को पत्र लिखा और संघनायकने आशय समझकर श्रीधरसेनाचार्यके पास दो शिष्य भेज दिये । श्रीधरसेनाचार्यने उनकी योग्यताकी जांच पडताल की और उन्हें योग्य समझकर कूँजी उनके हाथोंमें सौंप दी । प्रदान के अंतमें अतिशय के कारण देवोंद्वारा पूजा हुअी । ज्ञानदाताने उनके नाम ‘भूतबली’ और ‘पुष्पदंत’ रक्खे । गुरु आज्ञासे विहार करते समय पुष्पदंतने आधभागके सूत्रोंको बनाया और पढकर भूतबलीके पास भेज दिया जिसे सुनकर महाकर्म प्रकृति प्राभृत श्रुतके विच्छेदके भयसे ग्रंथरचनाका आशय जानकर द्रव्यप्रमाणानुगम आदि भागोंकी उन्होंने रचना की । पहला भाग जो छह भागोंमें विभक्त है ‘षट्खंडागम’ कहा जाता है । और टीकाके नामके कारण यह ‘धवला’ कहा जाता है । मूलसूत्रोंका रचनाकाल लगभग दो हजार वर्ष पूर्वका है । उस समयके ‘द्वादशांग’ से जिसका सीधा संबंध पाया जाय ऐसा रचनात्मक अन्य आगम ग्रंथ नहीं पाया जाता ।

ऐसे महत्वपूर्ण जीर्णोद्धार किये गये श्रुतकी सुरक्षापर भी काफी विचार किया गया ।

फलटणमें श्रुतभांडार और श्रुतनिधीकी सुरक्षा— फलटण शहर दक्षिण भारतके दि. जैनोंकी ‘काशी’ मानी जाती है । जहाँ ५–६ दिगंबर जैनियोंके विशाल मंदिर हैं जिनमेंसे तीन मंदिर भव्य मानस्तम्भोंसे युक्त हैं । और उनमें एक १००८ आदिनाथ भगवानका और दूसरा श्री १००८ श्रीचंद्रप्रभ भगवानका ऐसे दो विशेष भव्य और महत्वपूर्ण मंदिर हैं । फलटण शहर अहिंसा धर्मप्रेमी, समाजप्रेमी तथा प्रजावत्सल मराठा राजा नाईक निंबालकर जी की पुरानी राजधानी है । राजधानी छोटी होती हुये भी यहाँ सभी प्रकारकी शहरके समान सुविधाएँ हैं । दो पुराने हेमाडपंती कलात्मक मंदिर भी हैं । सन १९२६ में आचार्यश्रीका फलटणमें प्रथमबार पदार्पण हुआ था और उससमय फलटणके राजासाहाब श्रीमंत मालोजीरावजीने धर्मके प्रति साम्यभावके साथ आचार्यश्रीका दर्शन बडे आदरभावसे किया था ।

आचार्यश्रीके यहाँ तीन चौमासा बहुत धर्मप्रभावनाके साथ सफल हुये । इसी श्री १००८ आदिनाथ

मंदिरजीमें आदि भगवानके साक्षीसे आचार्यश्रीने सन १९४८ में मंदिर प्रवेश कानूनके निमित्त अन्नत्यागकी घोर प्रतिज्ञा करके कोटिसंख्यादि जप प्रारंभ किया था। तथा सन १९५२ के लोणंदके चातुर्मास के पश्चात् कार्तिक मासमें इसी मंदिरजीमें आजन्म अन्नत्यागकी घोर प्रतिज्ञा की थी जो पूर्णतया सफलता पायी। इतनाही नहीं बल्कि इस प्रतिज्ञापूर्तिसे और आचार्यश्री के चरित्रसे अखिल भारतीय जनताको सत्य, अहिंसा और अपरिग्रहका दिव्य संदेश प्राप्त हुवा।

आचार्यश्रीका हीरक जयंती महोत्सव अखिल भारत वर्षीय दिगंबर जैन महासभा की ओरसे सन १९५२ में बडी धर्मप्रभावनाके साथ फलटण के उत्साही जैनसमाजने अत्यंत भक्तिभावसे उत्साह तथा लगनके साथ संपन्न किया जो अपनी शानका एक असाधारण रहा जिससे प्रसिद्धि प्राप्त फलटण नगरीको भी एक अपूर्व गौरव प्राप्त हुवा। जिसे अखिल भारतवासी जैन जनता कभी भूल नहीं सकेगी।

आचार्यश्री के श्रीसिद्धक्षेत्र कुंथलगिरीके सन १९५३ के चौमासाके पश्चात् उनका विहार दक्षिण के तरफ अपूर्व धर्मप्रभावना और धर्मजागृती के साथ, २७ वर्ष के बाद, हुवा और वहांसे आचार्यश्री जल्दसे जल्द कुछ निश्चित विचारसे फलटण तरफ विहार करते हुए निकले। और फलटणमें वीर संवत् २४८० के पर्यूषण पर्वमें विशेष आगमसंरक्षण सहित ज्ञानदानकी योजनाकी रचनात्मक घटना आचार्यश्रीने समाज के सामने रख दी और ताम्रपत्रोत्कीर्ण ग्रंथराजकी सुरक्षा के लिये श्री १००८ चंद्रप्रभु के भव्य मंदिरजी में, आचार्यश्री के हीरक-महोत्सवसमय संकलित निधिमेंसे बचे हुए करीब २०,००० रुपिया खर्च करके, नया भवन बनवाया गया जिसमें यह सारा श्रुतनिधि अत्यंत सुरक्षित रूपसे रक्खा गया और ज्ञानदान योजनासह श्रुतभांडारकी प्रस्थापना की गई।

शास्त्रदानसे जिनशासन–उद्धारकी योजना– अपने उत्कृष्ट सल्लेखनाकालमें आचार्यश्रीसे धर्मभावना तथा धर्मप्रभावना, आचार्यश्रीका ध्यान तथा ध्यानके लिये उपदेश आदि बडी अजीब और आश्चर्यजनक बातें दिखाओी देती थी लेकिन सबसे बडा कार्य अबतक शेष था जिसतरफ किसीका भी चित्त विशेष आर्कषित नहीं हुवा था। अबतक आचार्यश्री गृहस्थोंके कल्याणके लिये आगमानुसार जिर्नबिब, जिनागर, पूजादिक पुण्यकार्यके लिये अधिकतर उपदेश देते थे। आचार्यश्रीने सभी भारतवासी दिगंबर जैन भाई बहनोंमें धर्मश्रद्धान तो देखा था किंतु उसके स्थिरीकरणका जो अपूर्व साधन जिनागम उसकी प्राप्तिकी कोई विशेष तरकीब देखनेमें नहीं आई। आचार्यश्रीने सोचा कि बिना स्वाध्याय धर्मश्रद्धान दृढ नहीं रहेगा और स्वाध्याय आगमोंकी सुलभताके

अभावमें नहीं होसकेगा । अतः हरएक गाँवमें जिनमंदिरोंमें आगमोंकी सुलभता होनी चाहिए । स्वाध्यायके साधनभूत आगमग्रंथ यदि सानुवाद हो तो जनताको बडा भारी लाभ हो सकता है । शास्त्रदानसे ज्ञानावरणीय-कर्मका क्षय भी होजायगा और जनताको ऐसे ग्रंथ विनामूल्य मिल जाय तो जनता स्वाध्यायके द्वारा लाभ उठा सकेगी । अतः लोगोंको ग्रंथ विनामूल्य मिलने चाहिये इस अभिप्रायसे ज्ञानदानके लिये संपन्न देशोंमें भी न पाई जानेवाली योजना आचार्यश्रीके चित्तमें दृढमूल हो गयी और इस पंचमकालमें जिनशासनउद्धारकार्यकी अभूतपूर्व नींव फलटणमें डाली गयी ।

श्रुतभांडार और ग्रंथप्रकाशन समिति, फलटण— फलटण और यहाँका दि. जैन समाज इस धर्मकार्यके लिए योग्य और अनुकूल समझकर निश्चित मनसे आचार्यश्रीने आदेश दिया । जिस आदेशके अनुसार श्रुतनिधि सुरक्षा और ज्ञानदानकी योजनानुसार कार्य करनेके लिए पूर्व संस्थापित प. पू. चा. च. श्री. १०८ आचार्य शांतिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था प्रमाणित श्रुतभांडार और ग्रंथ प्रकाशन समिति की स्थापना संस्थाके स्थानिक विश्वस्त श्री. तलकचंद वेणीचंद शहा वकील की अध्यक्षतामें की गई । इस संस्थाके निर्माणमें तथा कार्यविकासमें फलटणके सभी भाईयोंने पूर्वकी तरह उत्साहपूर्ण सहयोग दिया । कार्यसंपादनके लिए स्थानिक विद्वान् व्याकरण पंडित श्री. मोतीचंद गौतमचंद कोठारी, एम्. ए. जीने अपना विशेष सहयोग देनेकी स्वीकृति प्रदान की ।

समितिके सामने चार विशेष हेतु पूर्तिके लिये रक्खे गये । और फलटणके सभी दि. जैन समाजने भक्तिभावसे कार्य पूरा करनेका वचन देकर स्वीकृति दी । जिन उद्देशोंको लेकर यह संस्था स्थापित हुई वे इस प्रकार हैं ।

(१) प्राचीन तथा जीर्णोद्धार किये गये श्रीधवलादि ग्रंथराज इस संस्थाके द्वारा सुरक्षित रक्खे जाय और उसका निरंतर सुरक्षाकार्य फलटणवासियोंकी ओरसे उनहीके जिम्मेदारीपर किया जाय ।

(२) श्रीधवलग्रंथ के ताम्रपत्र तथा अन्य छपे ग्रंथोंकी छपी हुअी प्रतियोंकी सुरक्षा तथा ज्ञानदानके योग्य प्रबंधका कार्य होवे.

(३) इन दोनों उद्देशोंकी पूर्तिके लिए योग्य और अच्छे भवनका प्रबंध ।

(४) आगमग्रंथोंके स्वाध्यायके लिए प्रचलित भाषाओंमें अनुवादसहित मूल गाथा सूत्रोंके साथ महत्वपूर्ण ग्रंथ छपानेका और ज्ञानदानका साक्षात् प्रबंध करना ।

प्रथम तीन उद्देश्योंके पूर्तिके विषयमें पहलेही पर्याप्त निवेदन किया गया है। चौथा उद्देश अपनी विशेषता को लिए हुए है। इस दिशामें अत्यल्प कालमें जो कार्य बन पाया है वह समाजके सम्मुख है। ज्ञानदानके शुद्ध ध्येयको दृष्टिमें रखकर जो आचार्यश्रीके आदेशके अनुसार ग्रंथोंका चुनाव करके ग्रंथरत्न मुद्रित होकर वितरण करनेके लिए तैय्यार हो गये हैं उनकी सूचि तथा केवल छपाई मात्रमें लगे हुए खर्चके लिए जिन्होंने दान दिया है उनके शुभनाम भी आगे दिये हैं।

आचार्यमहाराज के संकेत और आज्ञानुसार सब ग्रंथोंके लिए कागज संस्थाकी ओरसे दिया जायगा। ग्रंथोंका वितरण प्रारंभमें बम्बईप्रांतमें ही होगा। शहर तथा हरएक गांवगांवमें जहाँपर दि. जैनभाई और दि. जिनमंदिर विद्यमान हैं वहाँपर प्रमुख मंदीरजीमें हर ग्रंथोंकी एक प्रति पहुंचे इस प्रकारकी अयोजना हुई है। बादमें मद्रास, म्हैसूर वगैरह अन्य प्रांतोंमें वितरण किया जावेगा। संस्थाके सभी सदस्योंको भी एक एक प्रति विनामूल्य दी जायगी। ग्रंथोंकी सूचि बनवानेमें भी आचार्यश्रीकी आगमभक्ति, वर्षों का अनुभव, आचार-मार्ग-प्रेम तथा संस्कृति-रक्षाकी आस्था विशेष रूपसे प्रगट है।

ग्रंथ प्रकाशनके लिये ग्रंथोंका चुनाव और क्रम और आचार्यश्रीकी व्यावहारिक दृष्टिविशेषता— यथार्थ तत्वज्ञानकी प्राप्तिके बिना शुद्ध आचार असंभव है। और व्यावहारिक जीवनकी दृष्टिसे आचार शास्त्रका महत्व है। सामाजिक और वैयक्तिक जीवनकी सफलता के लिये सदाचार एक महत्वपूर्ण आधार है। वैयक्तिक जीवनकी दृष्टिसे मुनि और गृहस्थ ये दो मूल भेद हैं। विना गृहस्थी याने श्रावक मुनी–जीवन कठीण है। इस दृष्टिसे तत्वज्ञानके साथ सदाचार निरूपण करनेवाले शास्त्रकी जरूरी है। इस लिये ग्रंथोंके चुनावमें पहला स्थान 'श्रीरत्नकरंडश्रावकाचार' को दिया गया। साथ साथ दूसरा 'श्रीसमयसार' तीसरा 'श्रीसर्वार्थसिद्धि टीकावचनिका' और चौथा 'श्रीमूलाचार' ग्रंथ आदिका यथार्थ क्रम निश्चित किया गया। और समाज के लिए बडे सौभाग्यकी बात है कि नीचे लिखे धर्मप्रेमी भाईयोंने क्रमशः इस ग्रंथके प्रकाशन-कार्यके लिए समयपर स्वीकृति देकर आचार्यश्री का कार्यादेश सफल किया जिससे आगे और भी ग्रंथोंका चुनाव करके ग्रंथक्रम निश्चित किया गया।

दातारोंके शुभनाम – १) श्री. गंगाराम कामचंद दोशी, फलटण— श्रीरत्नकरंडश्रावकाचार.
२) श्री. हिराचंद केवलचंद दोशी, फलटण— श्रीसमयसार
३) श्री. शिवलाल माणिकचंद कोठारी, बुध— श्रीसर्वार्थसिद्धि

४) श्री. गुलाबचंद जीवन गांधी,	दहिवडी—	श्रीमूलाचार
५) श्री. जीवराज खुशालचंद गांधी,	फलटण—	श्रीउत्तरपुराण
६) श्री. चंदूलाल कस्तुरचंद,	मुंबई—	श्रीअनगारधर्मामृत
७) श्री. पद्मराज वैद्य,	निमगांव—	श्रीसागारधर्मामृत
८) श्री. हिराचंद तलकचंद,	बारामती—	श्रीधवलग्रंथराज

वगैरह दातारोंसे प्रकाशन कार्य स्वीकृतिके साथ प्रारंभ हुवा ।

ग्रंथ प्रकाशन प्रारंभ— वीर संवत् २४८० के पर्यूषणपर्वमें गुरुसेवा तत्पर श्री. गंगाराम कामचंद दोशी और उनकी धर्मपत्नी श्री. सौ. रूपाबाई दोनोंने अपने दशलाक्षणिक व्रतके १० उपवासके पारणाके दिन उनके यहाँ आचार्यश्रीका उत्कृष्ट आहार हुवा उस समय बडे धर्म सेवा भावसे ज्ञानदानका भाव प्रकट किया और आचार्यश्रीके उपदेशसे उपर्युक्त कार्यकी नींव डाली गयी । श्रीरत्नकरंडश्रावकाचार ग्रंथकी ४००० प्रतियोंके प्रकाशनकार्यके छपाईका बोझ उठानेकी स्वीकृति दी । जिससे प्रत्यक्ष कार्यारंभ उत्तम मुहूर्तपर उत्तम शुभाशिर्वादके साथ श्रीऋषभनाथ ग्रंथमालाके 'श्रीनेमि मुद्रण मंदिर' में किया गया ।

संस्थाके सभासद तथा दातारोंका ऋणस्मरण— समाजके कतिपय श्रीमानोंका संस्थाकी स्थापनामें और विकासमें आर्थिक सहयोग रहा है जिसके कारण संस्था के द्वारा महान् कार्य हुवा है । आचार्य महाराजकी अमूर्त आज्ञाको साकार एवं कार्यान्वित करनेमें संस्थाके सभासदोंकी सहाय्यता प्रधान कारण है । साथही साथ जिन जिन दातारोंने उदारतापूर्वक ग्रंथोंके छपाई आदिमें आर्थिक सहाय्यता पहुंचाई उन सबके धर्मप्रेमके लिए अनेकशः धन्यवाद हैं ।

समाजसे आवश्यक निवेदन— आशा है कि समाजके अन्य दानी धर्मप्रेमी महाशय ! इस परम पवित्र विश्वपावनी जिनवाणीके प्रसारके इस महत्व पूर्ण कार्यके लिए सक्रिय सहकार देकर वे अपनी उदारता प्रगट करें और महान पुण्यका संचय करें । संस्थाकी योजना में अल्प सहयोगसे महान् कार्य हो सकता है ।

पुण्यस्मरण, ग्रंथसमर्पण और सद्‌भावना प्रदर्शन— प. पू. जगद्‌वंद्य श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्यवर्य शांतिसागर महाराज वर्तमानकालमें मानो पवित्र तथा असाधारण मांगल्य की मूर्ति है । प्रशांत गाढ तपस्वी जगद्‌वंद्य जिनधर्मप्रभावक, प्रत्यक्ष रत्नत्रयधर्मोपदेष्टा, देशनाधिपति, सद्धर्मप्रचारक, पंचमकालीन जिनशासन-

उद्धारक, श्रेयोमार्गप्रवर्तक, बालब्रह्मचारी, ब्रह्मवेत्ता, चिरकल्याणरूप, परम दयालु, लोकहितैषी आदि अनेक गुणोंसे मंडित आचार्यश्री इस परमागमरूपिणी भगवती शारदा माताके शरीरके अनुपम जीर्णोद्धार कार्य तथा सेनवंशके महान् पूर्वज आचार्य श्री १०८ वीरसेन भगवानकी कृतिको चिरस्थायी करनेके कारण आर्षवंशके प्रकाशक एवं समुद्योतक हैं कि जिनके बिना इस पंचमकालमें धर्मसंरक्षण, ज्ञानदान, धर्मप्रभावना प्रचारका कार्य तथा आत्मचिंतनका सफल मार्गदर्शन भी किंबहुना असंभव था। ऐसे महान् आचार्यके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनेकी किंचिदपि शक्ति समाजके लिये किसी भी शब्द या अर्थमें नहीं। कृतज्ञता व्यक्त करनी ही है तो उनके अनुसार धर्ममें प्रगाढ श्रद्धा, चारित्रमें अचल निष्ठा, स्वाध्याय और आत्मचिंतनमें त्रिगुप्तिसहित यथार्थ दर्शनभाव, अतिलोभादि कषाय त्याग सहित व्रती की ही संसारकी लालसा रखकर सबसे विशेष प्रेम अपने प्राणसे भी जादा धर्मसंरक्षाकी हरएक बातोंमें अर्थात् धर्मके प्रति श्रद्धान रखनेसे व्यक्त हो सकती है। पूज्य आचार्यश्रीके बिना इस महान् कार्यका प्रारंभ असंभव था। उनके उत्कृष्ट समाधिकालमें उत्कृष्ट शांत परिणामके साथ दीर्घायुरारोग्य संपन्नताके लिए निरंतर मनोकामनाके साथ श्रीमहावीर भगवानके पास अनेक प्रार्थना।

यह सब कार्य पूज्य आचार्यश्रीके असाधारण आदेश, उपदेश, मार्गदर्शन और प्रेरणाका सुफल है। सो भक्तिभावसे पूज्य आचार्यश्रीके करकमलोंमें सादर समर्पण करते हैं। और यह सद्भाव करते हैं कि सद्धर्म प्रसारकी भावनाके पूर्ति करनेके लिए समाज अधिक सावधान और सजग रहे।

दर्शं दर्शं सूरि शांतस्वरूपम् । पायं पायं वाक्यपीयूषधाराम् ॥
स्मारं स्मारं तद्गुणान् स्पृष्टपादाः । जाताः शांताः साधवोऽक्षेश्वरक्ताः ॥

श्रीसिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि, मित्ती श्रावण वद्य १२ वीर संवत् २४८१ दि. १५-८-१९५५

वालचंद देवचंद शहा, मंत्री,
श्री १०५ जिनसेन भट्टारक पट्टाचार्य, महास्वामी, मठाधीश, अध्यक्ष,

माणिकचंद मलुकचंद दोशी, मंत्री.
तलकचंद वेणीचंद शहा, अध्यक्ष,

"प. पू. चा. च. श्री १०८ आ. शांतिसागर दि॰ जैन जि. जी. संस्था"–"श्रुतभांडार व ग्रंथप्रकाशन समिति, फलटण"

श्रीस्वामी समन्तभद्राचार्य और उनकी ग्रंथरचना।

आप समर्थ विद्वान्, पूज्य महान् सत्पुरुष–" प्रणेता जिनशासनस्य " ऐसे जैन समाजके प्रतिभासंपन्न आचार्य थे। आप क्षत्रिय राजकुलोत्पन्न उरगपूराधिपतिके राजपुत्र थे। मूलसंघकी आचार्य परम्परामें प्रधान आचार्य " श्रीमूलसंघव्योमेन्दुः " ऐसे महान् कीर्तिमान् आचार्य थे। 'गुणतो गणीशः'–संघाधिपति थे। समंतभद्र–भद्रस्वरूपी, महान्योगी, त्यागी, तपस्वी, तत्वज्ञानी, ध्यानाध्ययनमग्न, अध्यात्मवाद्–मर्मज्ञ, तर्क–व्याकरण–छंद–अलङ्कार–काव्य–कोषादिमें निष्णात थे। आप संस्कृत, प्राकृत, कन्नड, तामिल अित्यादि भाषाओंमें प्रवीण थे। समंतभद्रका संस्कृत भाषापर विशेष प्रेम और असामान्य प्रभुत्व था। और उनकी असाधारण योग्यता थी। समंतभद्रका काल ऐतिहासिक दृष्टिसे संस्कृत साहित्यमें विशेषताको लिए हुए है। जब बौद्धके नैराश्यवाद, क्षणिकवाद आदिके कारण जनता विचलित हुई थी तब आपने जन्म लिया और उपर्युक्त वादोंके विरुध्द झगडनेमें आप आजन्म बद्धपरिकर रहे। आपके परिश्रम निःसंशय महत्त्वपूर्ण तथा चिरस्मरणीय हैं। अिन परिश्रमोंके पीछे लोगोंको स मार्गपर प्रवृत्त करनेकाही हेतु था। कवित्त्व, गमकत्त्व, वाग्मित्व आदि चार गुणोंके द्वारा, तथा प्रखर प्रतिभाके द्वारा आपके व्यक्तित्वकी कुछ कल्पना हो सकती है। उसकी ओर देखकर हम यह कह सकते हैं कि आपकी दिगंत कीर्ति और शुभचंद्राचार्योक्त " भारतभूषण " संबोधन यथार्थ ही है। इसलिए भगवज्जिनसेनाचार्यने महापुराणमें

" यतीनां गमकानां च वादीनां वाग्मिनामपि, यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥ ४४ ॥ "

ऐसा गौरवपूर्ण उल्लेख किया है। आपके संबंधमें 'स्वाद्वाद,–विद्यागुरु, स्याद्वाद–विद्याधिपति, स्याद्वाद–शरीर–स्याद्वाद–मार्गाग्रणी' ऐसे सार्थ विशेषण प्रमुख आचार्योंके द्वारा ग्रंथोंमें और शिलालेखोंमें अंकित हैं। आप अखिल भारतवर्षमें राजाश्रित विद्वानोंके तत्कालिन प्रचलित रूढीसे भेरीताडन करके, आह्वान देकर स्याद्वाद पद्धतिसे (वस्तु अनेक धर्मात्मक दृष्टिसे) वाद व्यवहारमें श्रेष्ठ बनकर लोगोंको तत्त्व सिद्धांत प्रतिपादनसे मुग्ध करके उन्हें पराभूत करके या शिष्य बनाकर वादमें सफलता प्राप्त करते थे। आराधनाकथाकोषमें—

" पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता। पश्चात् मालवासिंधुठक्कविषये कांचीपुरे वैदिशे॥
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटै संकटम्। वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम्॥ "

ऐसा उल्लेख आया है। जीयात् पदर्द्धिकः–विशेष ऋद्धिधारी थे। आपकी वक्तृत्वशक्ति भी अपूर्व थी। " कलिकाल गणधर " " शास्त्रकर्ता " ऐसे शिलालेखोंमें उल्लेख हैं। अतः आप विद्वान्, तपस्वी, ऋषि, मुनि, सद्गुणी, सत्कृति और

लोकहितैषी लोगोंके स्वामी थे। सतत लोकहितचिंतक और विश्वप्रेमी थे । भावी तीर्थंकर थे। असाताकर्मके उदयके कारण, २८ मूलगुणधारक, पंचमहापापोंका सर्वस्वी त्याग, पंच समितीका पालन, पंचेंद्रिय संयमन, चार कषायोंका निग्रह षट्काय जीवरक्षा, निद्रा, स्नेहका त्याग और खडे होकर एक बार भोजन करनेवाले मुनि होनेपर भी और उत्तर गुणोंका पालन करते हुए भी 'मणुवकहल्ली' गाँवमें भस्मक रोगसे पीडित हो गये। बहुत स्निग्ध आहार लिये बिना यह रोग हटाना असंभव था। और दैनंदिन क्रिया योग्य तरहसे करना अशक्य होनेके कारण सल्लेखनाका एकही मार्ग रह गया । लेकिन थोडे दिनके लिए मुनिधर्म छोडकर गृहस्थी बनकर चाहे उतना आहार लेना और पहले पहल रोग निवारण करना और बादमें जैनशासनके उद्धारका संकल्प पूरा करके पुनः मुनिधर्म स्वीकारकर आत्म-हित साध्य करनेका आप विचार करने लगे। किंतु पहला विचार निश्चित करके आप सल्लेखना लेनेके लिए गुरुके पास गये। गुरु योगज्ञानी थे। उन्होंने समन्तभद्र बडे जिनशासनउद्धारक होंगे ऐसा जान लिया। उन्होंने समन्तभद्रको भस्मक रोग निवारणके लिए वेष बदलकर जितना चाहे उतना आहार लेनेकी और पहले रोग निवारण करनेकी आज्ञा दी। उसके पश्चात् फिर मुनिव्रत धारण करनेके लिए कहा। आराधनाकथाकोषमें लिखा है कि—

> “अंतःस्फुरित–सम्यक्त्वो बहिर्व्याप्त–कुलिंगकः । शोभितोऽसौ महाकान्तिः कर्दमाक्तो मणिर्यथा ॥ ”

समन्तभद्र कांचीमें शिवकोटिराजाके भीमलिंग नामके शिवमन्दिरमें कुलिंगी साधुवेषमें गये जहाँ “ईश्वरको मैं नैवेद्य खिलाता हूँ” ऐसा बहाना करके स्वयं नैवेद्य खाकर उन्होंने रोगमुक्ति की। भस्मक रोगका नाश होनेसे भूख ठंडी हो गई और नैवेद्य खाना दुष्कर हो गया। उसी कारण लोगोंके संशयके पात्र बनकर राजसंकटमें फँस गये। संकट समयमें अन्न त्याग करके एकाग्र चित्तसे भक्तिपूर्वक चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी स्तुति शुरु की और भक्ति प्रभावके कारण अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवानके स्तुतिसमय चंद्रलांछनयुक्त स्फटिकमूर्ति प्रकट हुअी। जिसे देखते ही मुनिराजने दरवाजा खुला किया। अिस चमत्कारको देखते ही राजाको आश्चर्य हुआ। राजा और उनके भाई दोनोंने समन्तभद्रसे दीक्षा ले ली। समन्तभद्रने संकटसे मुक्त होकर फिर प्रायश्चित ले लिया। और जन-मुनि-दीक्षा ग्रहण की। क्योंकि वे “अन्तःस्फुरित–सम्यक्त्वो” थे।

समन्तभद्रकी विशेष ग्रंथरचनाएँ—(१) आप्त–मीमांसा (२) युक्त्यनुशासन (३) स्वयंभूस्तोत्र (४) जिनस्तुतिशतक (५) रत्नकरंडउपासकाध्ययन (रत्नकरण्डश्रावकाचार) (६) जीवसिद्धि (७) तत्त्वानुशासन (८) प्राकृतव्याकरण (९) प्रमाणपदार्थ (१०) कर्मप्राभृतटीका (११) गंधहस्तीमहाभाष्य आदि महाग्रंथोंकी रचना आपने की।

श्री रत्नकरंडश्रावकाचार

धार्मिक साहित्यके स्थूल रीतीसे दो भाग होते हैं (१) तत्त्वज्ञानविषयक और (२) आचारविषयक। व्यावहारिक जीवनकी दृष्टिसे आचारशास्त्रका स्थान महत्त्वपूर्ण है। उसके ही द्वारा मनुष्य वैयक्तिक जीवनमें सुखी हो सकता है और समाज आदरणीय हो जाता है। आचारके दो भेद होते हैं। एक मुनि आचार और दूसरा गृहस्थ आचार। द्वादशांग श्रुतमें प्रथम–आचारांगमें मुनिधर्मका और सातवे उपासकाध्ययनमें गृहस्थ धर्मका प्रतिपादन है। प्राचीनतम ग्रंथोंमें मूलाचार और रत्नकरंडश्रावकाचार ये ही दो इस विषयके निरूपक ग्रंथ उपलब्ध हैं।

रत्नकरंडश्रावकाचारकी रचना संस्कृत पद्यमें है। भाषाशैली सरल, आकर्षक हृदयग्राही तथा गंभीर अर्थवाहिनी है। इस आचारग्रंथकी महत्ता हम किन शब्दोंके द्वारा कह सकते हैं? मेरी यह राय है कि अगर इस ग्रंथमें प्रतिपादित तत्त्वोंका और आचारधर्मका अनुसरण या अनुचरण किया जाय तो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र कभी भी विषमताकी शिकार नहीं बन सकते। पारस्परिक द्वेष या मनोमालिन्यको कभी स्थान नहीं रहेगा। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य या कुशीलत्याग और अपरिग्रह या परिग्रहप्रमाणव्रत ये पांच व्रत अणुरूप होनेपर भी बडे उपकारक होते हैं। क्योंकि इनके पालनसे मनुष्य स्वभावसे ही मद्य, मांस विन्मुख हो जायगा। झूठको वह कभी नहीं अपनाएगा। परधनका अपहरण नहीं करेगा। अपनी दृष्टिको परस्त्रीका ओर नहीं जाने देगा। और अपरिमित धनसंचयका विरोधी होनेके कारण परोपकारक भी रहेगा। सामाजिक और राष्ट्रीय शांतिके लिये इससे अधिक क्या चाहिए?

पंडित सदासुखजीने हिन्दीमें सर्वांगपरिपूर्ण भाष्य लिखा है। रत्नकरंडश्रावकाचारमें श्रावकाचारका वर्णन है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्ररूपी रत्नत्रयधर्मका स्वरूप अच्छी तरहसे स्पष्ट किया है। इस धर्मको समझकर श्रावक अगर यथाक्रम आराधना करें तो मुनिव्रत पालनकी योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। अनंतर मुनिव्रत पालन करके और कर्मका क्षय करके मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

श्री रत्नकरंडश्रावकाचारके हिन्दी भाष्यमें वर्णित कुछ विचारणीय बातें

पृष्ठ १४....“तथा कलिकालके....” यक्ष यक्षिण्यादिका स्थान नष्ट करना जितना अनुचित है उतना ही उनके भक्तिपूजादिका अधिकतर आडंबर करना भी अनुचित है।

कुछ अपेक्षासे पाक्षिक श्रावक इन देवताओंकी आराधना कर सकेगा लेकिन दार्शनिक श्रावकोंके लिये इन देवताओंकी पूजादिक शास्त्रविहित नहीं है। श्रावक स्वधर्मोत्कर्षका इच्छुक है। इसलिये इन देवताओंकी आराधना उसके

लिये सर्वथा मान्य करना योग्य नहीं । सांसारिक आपत्तिके कारण और पाक्षिकत्वके कारण नैमित्तिक आराधना पाक्षिकोंको शास्त्रविहित होगी । इसीलिये टीकाकारका इस विषयका कथन सर्वथा ग्राह्य मानना उचित न होगा ।

पृष्ठ ३९........" बहुरि पार्श्वजिनेन्द्रकी प्रतिमाके ऊपरी........"

यह कथन योग्य नहीं क्योंकि श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रभगवानकी प्रतिमा फणाबिगर नहीं की जाती, यह प्रतिपादन ही यथार्थ नहीं । दोनों प्रकारकी मूर्तियाँ दक्षिण भारतमें भी पायी जाती हैं । श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रकी मूर्ति तीर्थंकरके समवशरणका प्रतीक है । इस सत्यको अमान्य करना योग्य नहीं । यद्यपि श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकरके मूर्तिके ऊपर परीषहके ऊपर विजयदर्शक फणा रहनेसे श्रावकोंके विचार दृष्टिसे उनके मनपर परिणामकारक और मनकी शांतता रखनेमें सहाय्यक होनेके कारण फणासहित मूर्ति होनेसे सम्यक्त्व को बाधक कैसी होती है यह बात समझमें नहीं आती ।

पृष्ठ ७३............... " अर उत्तम कुलवाला खेती करै नाहीं "

उत्तम कुलवाला खेती नहीं करता यह अभिप्राय यथाथ नहीं क्योंकि उत्तम कुल और खेती इन दोनोंमें क्या विरोध है इसका स्पष्टीकरण टीकाकारने नहीं किया । खेतीमें कुलघातकता कैसी होती है यह समझमें नहीं आता। कुलघात चारित्रमोहनीय और नीच गोत्र कर्मके उदयपर अवलंबित है । वस्तुतः नीच उच्च परिणाम ही नीच उच्चताका कारण है । इसप्रकार जब हीन परिणाम निर्माण होंगे तब अंशतः या सर्वथा कुलघात संभव होता है । खतीमें इसप्रकारके परिणाम निष्पत्तिके कारण मिलनेके निश्चित नियम नहीं । मिलनेका संभव होगा । किन्तु खेतीवालोंकी परिस्थिति ठीक होनेसे या रहनेसे या जब ठीक होती है या रहती है तब उनके आर्तरौद्र परिणाम क्वचित् होते हैं । इसलिये खेती कुलघातक है यह विधान ठीक नहीं । यशस्तिलकचम्पूमें जो प्रमाण दिया है वह इस विषयमें उपयुक्त होगा । इसलिये उसका उल्लेख यहाँ जरूर है । जब धींवर मछलीके लिए जाल फेंकता है तब उसका हेतु मछली मारनेका ही होता है । जालमें मछली फँसना या न फँसना दूसरी बात है । परंतु जाल फेंकते समयका ही हेतु पाप बंधका कारण होता है । खेतीवालोंका हेतु इसप्रकार खेती करते समय न रहनेके कारण 'निघ्नन्नपि न पापभाक्' इस उक्ति प्रमाणके अनुसार वह पापका अंशभागी नहीं बनता । इसलिये कुल और खेतीमें वध्यघातकरूप विरोध नहीं है ऐसाही मानना चाहिये ।

पृष्ठ ९६ " अणुव्रतीगृहस्थके........... "

प्रत्याख्यानावरणकषाय अत्यंत क्षीण होनेके कारण चारित्रमोहनीयके परिणाम इतने मंद होते हैं कि उनका

अस्तित्व जानना भी कठिन हो जाता है। ऐसे परिणाम जब इतने मंद होते हैं तब वे परिणाम ही इस मंदताके कारण आत्मामें उत्पन्न हुई अधिकतर शुद्धिको महाव्रतरूपमें परिणत कर देते हैं।

टीकाकारका अनुवाद, सिद्धांत और व्याकरणशास्त्रकी दृष्टिसे योग्य नहीं कारण जब प्रत्याख्यान कषायकी अतिशय मंदता होती है तब आत्माका विशिष्ट प्रकारका शुद्धतर पर्याय व्यक्त होता है। यह पर्याय ही महाव्रत रूपमें परिणत होता है। कल्पनाके लिए यहाँ स्थान नहीं रहता। क्योंकि कल्पना अभावके स्थानमें ही हो सकती है, याने जहाँ जिसका अभाव होता है वहाँ उसकी कल्पना की जाती है।

यह आत्माके महाव्रतका पर्याय उत्पन्न होनेके कारण महाव्रतकी कल्पना की जाती है।

पृष्ठ १०३ " लोभकषायकी तीव्रता सोही महाहिंसा है। ...... "

टीकाकारका यह वाक्य अत्यंत सूचक और अर्थबोधक है। हिन्दीमें 'लोभ पापका बाप बखाना' यह यथार्थ उक्ति है।

दसवें सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें अन्य किसी भी कषायका सद्भाव न हो किन्तु सूक्ष्म संज्वलन लोभ कषायका उदय होता है। और ग्यारहवें गुणस्थानमें जीव जानेके अनन्तर यदि इस कषायका पुनरुत्थापन होगा तो उपशमश्रेणीवाले जीवोंके अधःपतनका कारण यही एक कषाय होता है। इस कषायके कारण आत्मगुणोंका घात होता है और वही हिंसा है। इस प्रकारकी हिंसा पहले गुणस्थानसे ऊपरके गुणस्थानपर्यंत भी लोभकषायमूलक रहती है। इसलिये लोभकषायकी तीव्रता ही महाहिंसा है। इस प्रकारका अभिप्राय जो व्यक्त किया है वह यथार्थ है।

पृष्ठ १०८ "........... अर प्रमाद जो........... "

" मद्ये मांसे मधुनि च नवनीते बहिर्गते। उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते असंख्याताश्च जन्तवः। " (महाभारत)

मद्य, मांस तथा मधु और बाहर निकाला हुवा मक्खन इनमें असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। जैनोंके अनुसार महाभारत भी इस विषयका समर्थन करता है।

प्रस्तुत श्लोकमें " प्रमादपरिहृतये । मद्यं च वर्जनीयं .... " इन पदोंसे मद्यका त्याग प्रमाद नाशके लिएही करनेका अभिप्राय व्यक्त नहीं किया तो त्रसजीवोंकी हत्या न होनेके हेतुसे वह करना आवश्यक है इस बातको भी प्रगट किया है। " प्रमादपरिहृतये " इस हेत्वर्थक विशेषणसे प्रमादका त्याग अत्यंत आवश्यक है यह बात भी स्पष्ट होती है। मांस और मधुका भक्षण प्रमादके कारण ही होता है और भक्षणसे प्रमादकी उत्पत्ति होती है। इस लिये " प्रमादपरिहृतये " इस हेतुगर्भित विशषणको " क्षौद्रं " और " पिशितं "

इन दोनोंको लगाना जरूरी है । इस प्रकारही “ त्रसहति परिहरणार्थ ” इस हेतुगर्भित विशेषणको “ मद्यं ” पद लगाना जरूरी है । क्योंकि मद्य सेवनमें भी त्रसजीवोंकी हत्या होती है ।

“ मद्य ” का याने “ मदकरणं मद्यं ” (जैनेन्द्र व्याकरण) मदोत्पादक प्रमादकी भी उत्पत्ति न होनी चाहिये । इसलिये त्याग होना आवश्यक है । इस अभिप्रायसे “ प्रमादपरिहृतये ” विशेषण मुख्यतः मद्य को लगाया है । इसका मतलब ऐसा नहीं कि किसी भी मद्य या मादक पदार्थके सेवनसे त्रस जीवोंकी हिंसा होती ही नहीं । मद्य या मादक पदार्थ त्रसजीवयुक्त और त्रसजीवविरहित ऐसे दो प्रकारके होते हैं । “ पिशितं ” में त्रसजीवयुक्त मद्यका समावेश होता है । इसलिये उसका पृथक् निर्देश नहीं किया गया । निर्जन्तुक मादक पदार्थका सेवन न करना प्रमादका नाश होनेके हेतुसे इष्ट है ।

पृष्ठ ११० “……. सर्वाशनं च न ग्राह्यं……. ”

जो पदार्थ दो दिनके पश्चात् सजन्तुक होता है उसे दो दिनके बाद खाना नहीं ऐसा इस वाक्यका अर्थ लेना चाहिये । इसका अभिप्राय यह भी नहीं कि प्रत्येक भक्ष्य पदार्थ दो दिनतक निर्जन्तुक रहता है । क्योंकि ऐसे कई पदार्थ हैं जो तैयार करनेके पश्चात् तीन चार घंटोमें ही जन्तुयुक्त होते हैं इसलिए उपर्युक्त सामान्य विधान सर्वत्र लगाना उचित नहीं । मतलब इतनाही है कि जबतक पदार्थ निर्जन्तुक रहता है तबतक ही वह खाद्य होता है ।

“ बहुरि दोय दालका अन्न………. ” बिना गरम किए दूधका दही या उससे बनाए हुए छाँछमें द्विदल धान्य मिश्रित करनेसे उनमें त्रसजीवोंकी उत्पत्ति होती है इसलिए ऐसे मिश्रित धान्यका सेवन वर्ज्य है । गरम किए हुए दूधसे बनाए हुए दही या छाँछमें मिश्रित धान्यमें ऐसी जीवोत्पत्ति नहीं होती इसलिए उसका ग्रहण वर्ज्य नहीं ।

पृष्ठ १११ “ ……..अणछाण्या जलतै स्नान……” महापुराणमें श्रीआदिनाथ तीर्थंकर तथा श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरके जीवनमें उन्होंने स्नान और जलक्रीडा कुए तथा नालानमें की थी ऐसा स्पष्ट वर्णन है । इससे यह स्पष्ट है कि अगालित जलस्नान दार्शनिक श्रावकोंको ही वर्ज्य है सर्व श्रावकोंको वर्ज्य नहीं । इसलिए टीकाकारका विधान सर्वथा ग्राह्य नहीं ।

पृष्ठ १७३ “……बहुरि जिस मकानमें……” शून्यागारमें दूसरे किसीका झगडा नहीं रहता । विमोचित आवासका अर्थ जिसमें—जहाँ झगडा नहीं ऐसा स्थान लेना चाहिए । जिससे शून्यागार और विमोचितावासमें भेद नहीं रहेगा । शून्यागार और विमोचितावासका उल्लेख शास्त्रकारने पृथक् रीतीसे क्यों किया है ऐसा प्रश्न पूछना है ।

विमोचितावासका अर्थ छोडा हुआ स्थान ऐसा होता है । विमोचित शब्द प्रयोजक प्रत्यय लगाकर बने हुए रूपको भूतकालवाचक 'तं' प्रत्यय लगाकर बना है । इसलिए उसका प्रयोजक अर्थ ही लेना चाहिए । जब किसीसे छुडवाकर स्थान लिया जाता है तब स्थान छुडानेवालोंके मनमें यदि कषायकी उत्पत्ति न होगी तो यह स्थान विमोचितावास बन सकता है ।

इसप्रकार भिन्न विधानोंका यथार्थ अर्थ विचारपूर्वक ग्रहण करना चाहिए ।

फलटण
दि. १५-८-५५

पंडित मोतीचंद गौतमचंद कोठारी,
एम्. ए.

इस ग्रंथके सहाय्यक दातार श्रीमान् शेठ गंगाराम कामचंद दोशीजी का अल्प परिचय ।

श्री अतिशय क्षेत्र दहिगांव (जि. सोलापूर) में रहनेवाले, धर्मवत्सल और समाजप्रेमी नेता, बीसाहूमड ज्ञातीय काष्ठासंघीय भद्रेश्वर गोत्रोत्पन्न गुर्जर प्रांतके ईडर निवासी, स्व. श्री. कामचंद फत्तेचंद दोशीके आप सुपुत्र हैं । आपका जन्म १८ जून १९०८ को इसी अतिशय क्षेत्र में हुआ । आपकी माताजी स्व. माणिकबाई सरल स्वभावी, उदार और धार्मिक थी । आपको मातापितासे धार्मिक संस्कार होनेसे आप भी धार्मिक हैं । आप श्रावकोंकी देवपूजादि नित्य क्रियाएँ यथाविधि पालन करते हैं । आपने हजारों रुपियोंका धर्मादाय किया है । आपकी परमपूज्य श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजी गुरु के प्रति गाढ श्रद्धा है । और उनके सानिध्यमें सं. २०११ के फलटणके चातुर्मासमें आपने और आप की धर्मपत्नी दोनोंने दूसरीबार दशलाक्षणिकव्रतके दस दस उपवास धारण किये थे । आपको सौ. पनुबाई भ्र. बडुचंद गांधी फोंडशिरस तथा सौ. हिरूबाई भ्र. माणिकचंद गांधी भोंडेकीवाडी में रहनेवाली ऐसी दो बहनें हैं ।

दहिगांव आपकी महत्वाकांक्षा के लिए छोटा गांव होनेके कारण आप उसे छोडकर फलटण आये । और प्रयत्नशील रहकर अपनी हर प्रकारकी उन्नति की । आपने आत्मविश्वासपर बेपार करके अच्छा धन कमाया । और धनका व्यय चारों दानोंमें करके अपना जीवन सफल बनाया जिससे आपका कौटुंबिक जीवन हरतरहसे समृद्ध हो रहा है ।

आपकी धर्मपत्नी श्री. सौ. रूपाबाईजी (श्री. बंडूचंद शिवराम दोशी कुरोलीवालोंकी सुकन्या) संसारमें एक आदर्श धर्मपत्नी बनकर आपके हर कार्योंमें उत्कृष्ट सहकार देकर आपका आदर्श गृहस्थीजीवन सफल बना रही हैं। आपको श्री. शरद्कुमार (भार्या, श्रीमान् हिराचंद केवळचंद दोशी, फलटण, की सुकन्या श्री. सौ. पुष्पाबाई पुत्र शिरीषकुमार कन्या शीला) और रमणलाल ऐसे दो सुपुत्र तथा निर्मला और कमला ऐसी दो सुपुत्री हैं। श्री. शरद्कुमारजी अहमदाबादके एंजिनिअरिंग कॉलेजमें उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

आचार्यश्रीने फलटणमें ज्ञानदानकी योजना समाजके सामने रख्खी उस वख्त यह योजना आपके दिलमें दृढ हुई और इस योजनाका प्रत्यक्ष कार्यप्रारंभ आपसे ही शुरू हुवा। अपने पूज्य पिताजी और माताजी इनके तथा आपके कुटुंबीय जनोंके ज्ञानावरणीय कर्मक्षयार्थ इस ग्रंथके प्रकाशन कार्यके लिये लगभग रु. ७५१ प्रदान कर सहकार्य किया है इसी लिये आपको अनेक धन्यवाद।

श्री नेमि मुद्रण मंदिर के आभार।

आचार्यश्रीके परमशिष्य पूज्य श्री १०८ नेमिसागर महाराज की प्रेरणासे प्रस्थापित श्रीऋषभनाथ ग्रंथमाला की ओरसे चलनेवाले फलटणके श्रीनेमि मुद्रण मंदिरमें “ ग्रंथप्रकाशन ” और ज्ञानदान की योजनामें पहला ग्रंथ श्रीरत्नकरंड श्रावकाचार अल्पावकाशमें आकर्षक ढंगसे छपवाकर पूरा किया जिसलिये उनका व्यवस्थापक मंडल धन्यवादको पात्र है। प्रुफसंशोधनकार्यमें श्री. वालचंद जिवराज शहा और श्री. गुणपाल दादा कत्तेजी ने विशेष सहकार्य किया है जिस लिये उनका आभार मानना जरूर है।

श्री. विद्वद्रत्न पंडित मोतीचंद गौतमचंद कोठारी, एम्. ए., फलटण।

श्रीरत्नकरंड श्रावकाचार ग्रंथके संशोधन कार्यमें “ श्री समंतभद्राचार्य ” तथा “ कुछ विचारणीय बातों ” का लिखाणमें आपने अपूर्व सहयोग दिया इसलिये संस्था आपकी बहुत आभारी है।

“श्रुतभांडार और ग्रंथप्रकाशन समिति”
फलटण, दि. १५-८-५५

प्रकाशक

श्री देशभूषण कुलभूषण दिगंबर जैन सिद्ध क्षेत्र कुंथलगिरी (जि. उस्मानाबाद) येथें,
परमपूज्य, योगींद्रचूडामणि, धर्मसाम्राज्य नायक,

श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्यवर्य शांतिसागर महाराज

यांनीं आपल्या यमसल्लेखना-उपोषणाचे २६ वे दिवशीं दि. ८-९-१९५५ गुरुवार रोजीं ५-१० ते ५-३२ वाजेपर्यंत २२ मिनिटे मराठी भाषेंत दिलेला अंतिम '**आदेश व उपदेश**'

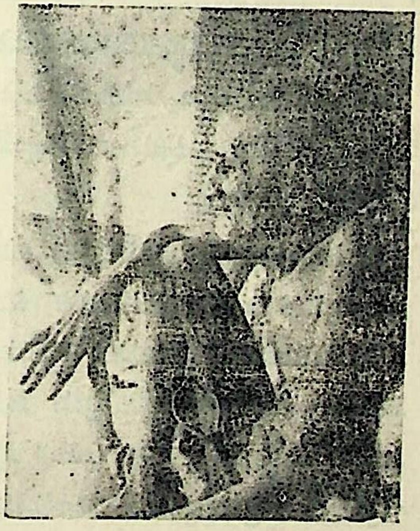

ॐ जिनाय नमः । ॐ सिद्धाय नमः । ॐ अर्हंत सिद्धाय नमः । पांच भरत पांच ऐरावतस्थ भूतभविष्य वर्तमान तीसचोवीसो भगवान् जिनाय नमो नमः । सीमंधरादि वीस विहरमान् तीर्थंकर भगवान् जिनाय नमः । ऋषभादि महावीरपर्यंत चौदाशे बावन्न गणधरदेवाय नमो नमः । चारणऋद्धिधारी मुनीश्वरेभ्यो नमो नमः । चौसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वराय नमो नमः । अंतकृत केवलिभ्यो नमो नमः । प्रत्येक तीर्थंकरवेळीं दशदश घोरोपसर्गविजयी मुनीश्वराय नमो नमः । (मराठीमध्यें बोलूं ? चालू आहे कां ? हूं ।)

अकरा अंग चौदा पूर्व शास्त्र महासमुद्र आहे । त्याचे वर्णन करणारे आज कोणी श्रुतकेवली नाहीं । श्रुतकेवली त्याचा वर्णन करणारा आहे । केवली वर्णन करणारा आहे । आमच्यासारखे क्षुद्र मनुष्य काय वर्णन करतो ! सर्वच लोकांच्या, हा आत्म्याचा कल्याण करणारा आहे । जिनवाणी सरस्वती श्रुतदेवी अनंत समुद्राइतकी आहे । तर त्याच्यामध्यें जिनधर्म हा कोणते जीव धारण करेल त्या जीवाचं कल्याण अवश्य होतो । अनंत सुखामध्यें त्याची प्राप्ति होऊन मोक्षप्राप्ति करून घेतो । असे नियम आहे । अनंत ग्रंथामध्यें एक अक्षर ! एक ॐ अक्षर !! एक अक्षर 'ॐ' अक्षर इतका धारण केला तर सुद्धा त्या जीवाचा कल्याण होतो । सम्मेदशिखरजीवर दोन बंदर लडत होते, णमोकार मंत्रापासून स्वर्गाला गेले । शेठी सुदर्शननें बैलाला उपदेश दिला । स्वर्गामध्यें गेला । जो सप्तव्यसनधारी अंजनाचोर तो णमोकार मंत्राच्या उपदेशानें स्वर्गाला गेला । मोक्षाला गेला । अरे हे तर सोडा, कुत्ता महा नीच जातीचा, जीवंधर मुनीनें-कुमारनें उपदेश दिला , देवगति झाला । इतका महिमा जिनधर्माचा आहे । परंतु (दीर्घ श्वास घेऊन) कोणी धारण करीत नाहीं । जैनी होकर सुद्धा जिनधर्मावर विश्वास नाहीं । अनंत कालापासून जीव पुद्गल दोन्हीं भिन्न आहे । हे सर्व जग सगळे जाणतो । परंतु विश्वास नाहीं करत । पुद्गल अलग आहे । जीव अलग आहे । तर दोन्हीं भिन्न असून आपण जीव आहे कां

पुद्गल आहे हा विचार करावा । आपण तर जीव आहे, पुद्गल नाहीं । पुद्गल अलग आहे । जड आहे । त्याच्यांत ज्ञान नाहीं । ज्ञानदर्शन चैतन्य गुण हा जीवामध्यें आहे । स्पर्श रस वर्ण गंध हा पुद्गलामध्यें आहे । दोन्हींचे गुण-धर्म अलग आहे । व दोन्हीं अलग अलग आहे । आपण जीव कां पुद्गल ? आपण जीव आहे । पुद्गलाच्या पाटी पडून हा मोहनीय कर्म आपणाला वेढून घेतलेला आहे । मोहनीय कर्म जीवाचा घात करतो । पुद्गलाचा पक्षाला पडला तर जीवाचा घात होतो । जीवाच्या पक्षाला पडला तर पुद्गलाचा घात होतो । आपण तर जीव आहे । तर जीवाचें कल्याण होणें अनंत सुखांत पोचविणें मोक्षास जीव जाणे जीवाला होतो । पुद्गल मोक्षांत नाहीं जात । इतका समजून हा लोक सगळा जग सगळा भुलून गेलेला आहे । पंच पापांत पडलेला आहे । आणखी यात हा दर्शन मोहनीय कर्माच्या उदयानें सम्यक्त्वाचा घात केलेला आहे । चारित्र मोहनीय कर्माच्या उदयानें संयमाचा घात केलेला आहे । या जीवाचा दोन्हीं कर्मानी घात केलेला आहे । अनंत कालापासून ! तर आपण काय केलं पाहिजे ?

सुखप्राप्तिची ज्याला इच्छा असेल त्या जीवानं, आमचं आदेश इतकाच आहे कीं, दर्शन मोहनीय कर्माचा नाश करावा, सम्यक्त्व प्राप्ति करून घ्यावा । (दीर्घ श्वास घेऊन) चारित्र मोहनीय कर्माचा नाश करावा । संयम धारण करावा । या दोन कर्माचा, मोहनीय, दोन मोहनीयाचा नाश करावा आणि आपला आत्मकल्याण करावा । हे आमचं आदेश ! हे आमचे उपदेश आहे । सर्व जिवाला हेच आहे !! अनंत कालापासून हा जीव फिरत आलेलाच आहे । कशा कारणाने ? एक मिथ्याकर्माच्या उदयाने फिरत आलेला आहे । तर आपले कल्याण कशाने होईल ? या मिथ्याकर्माचा नाश पहले केला पाहिजे । सम्यक्त्व प्राप्ति करून घेतलाच पाहिजे । सम्यक्त्व म्हणजे काय ? हा कुंदकुंदस्वामीनें समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड, आणखी गोम्मटसारादि बडे बडे ग्रंथामध्यें वर्णन केलेलें आहे । पण याच्यावर श्रद्धा ठेवतो कोण ? आपला आत्मकल्याण करणारा तो ठेवेल । आणि असेच जर संसारामध्यें फिरण्याचे असेल तर फिरत आलेलाच आहे, त्याला उपाय नाहीं । पण असें करूं नये । हा आमचा आदेश आहे । उपदेश आहे । ॐ सिद्धाय नमः ।

आपण काय केले पाहिजे ? दर्शन मोहनीय कर्माचा क्षय केला पाहिजे ! कशानें क्षय होतो ? आत्मचिंतनानें होतो । कर्मनिर्जरा कशाने होतो ? आत्मचिंतनानें होतो । दानपूजा सगळे केले तर पुण्यबंध पडतो । तीर्थयात्रा केले तर पुण्यबंध पडतो । हरएक धर्माचें कार्य केलें तर पुण्यबंध पडतो । कर्मनिर्जरा होण्याला आत्मचिंतन साधन आहे । केवलज्ञान होण्याला आत्मचिंतन साधन आहे । हा अनंत कर्माचा निर्जरा होण्याला आत्मचिंतनच साधन आहे ।

आत्म्याचा ध्यान केल्याशिवाय कर्मांची निर्जरा होत नाहीं । केवलज्ञान होत नाहीं । केवलज्ञानाशिवाय मोक्षप्राप्ति होत नाहीं । तर आपण काय केले पाहिजे ? चोवीस घंटेमध्यें ६ घडी उत्कृष्ट सांगितलेले आहे । ४ घडी मध्यम सांगितलेले आहे । दोन घडी जघन्य सांगितलेले आहे । जितके वेळ मिळेल तितके करावा निदानला १०।१५ मिनिटे तरी करावा । निदानला आमचें म्हणणें पांच मिनिटे तरी करावा । आत्मचिंतन करावा । आत्मचिंतन केल्याशिवाय सम्यक्त्व प्राप्ति होत नाहीं । सम्यक्त्वाशिवाय कर्माचा संसारबंध तुटत नाहीं । जन्म जरा मरण सुटत नाहीं । सम्यक्त्वाशिवाय ! पुढें सम्यक्त्व झाल्यानंतर संयमाचा पाटी लागला पाहिजे । हा चारित्र मोहनीय कर्माचा उदय आहे । सम्यक्त्व होऊन ६६ सागर पर्यंत राहील । मोक्ष होत नाहीं । कां ? चारित्र मोहनीय कर्माचा उदय असल्याकारणानें । तर ! चारित्र मोहनीय कर्माचा क्षय करण्याकरितां संयमच धारण करायला पाहिजे । हरेक जीवानें संयम धारण करायलाच पाहिजे । संयमाशिवाय चारित्र मोहनीय कर्मांचा क्षय होत नाहीं । तर हा संयम, कसे भी असो पण संयम धारण करायला पाहिजे । भिऊं नका ! संयम धारण करायला भिऊं नका !! संयम धारण केल्याशिवाय सातवे गुणस्थान होत नाहीं । कपड्यांत सातवे गुणस्थान होत नाहीं । सातव्या गुणस्थानाशिवाय आत्म्याचा अनुभव येत नाहीं । आत्म्याच्या अनुभवाशिवाय कर्मांची निर्जरा होत नाहीं । कर्माच्या निर्जराशिवाय केवलज्ञान होत नाहीं । ॐ सिद्धाय नमः ।

निर्विकल्प समाधि, सविकल्प समाधि दोन भेद सांगितलेले आहे । गृहस्थी, कपडेमध्यें करणारे, सविकल्प समाधि करतील । मुनिशिवाय निर्विकल्प समाधि होत नाहीं, मुनि ! कपडा काढल्याशिवाय मुनिपद येत नाहीं । बाबानो भिऊं नका । मुनी पदवी धारण करा ! “बरोबर संयम झाल्याशिवाय निर्विकल्प समाधि होत नाहीं ।” निर्विकल्प समाधि झाला तरच सम्यक्त्व होतो असे समयसारामध्यें कुंदकुंद स्वामीनी सांगितलेले आहे । आत्मानुभवाशिवाय सम्यक्त्व होत नाहीं । उपचार सांगितलेला आहे । व्यवहार सम्यक्त्व हा खरा सम्यक्त्व नाहीं आहे । हा साधन आहे । फळ येण्याला फूलांत जसे कारण आहे तद्वत् व्यवहार सम्यक्त्व सांगितलेला आहे । खरा सम्यक्त्व नाहीं । खरा सम्यक्त्व केव्हां होईल ? आत्मानुभव झाल्यानंतर होतो । आत्मानुभव केव्हां होईल ? निर्विकल्प समाधि झाल्यानंतर होतो । निर्विकल्प समाधि केव्हां होतो ? मुनिपदवी धारण केल्यानंतरच होतो । निर्विकल्प समाधि केव्हां सुरू होतो ? सातवे गुणस्थानापासून आरंभ होतो । बारावे गुणस्थानाला पूर्ण होतो । तेरावे गुणस्थानाला केवलज्ञान होतो, असे नियम आहे । शास्त्रामध्यें असे लिहिलेले आहे । तर आपण भिऊं नका ! कां ? संयम धारण करा ! सम्यक्त्व धारण करा !! हें आपलें कल्याण करणारे आहेत । त्याच्याशिवाय कल्याण होत नाहीं । आत्मचिंतनाशिवाय

कल्याण होत नाहीं । पुद्गल आणि जीव अलग–भिन्न आहे । पक्का समजा । तुम्हाला सामान्य समजतो । खरे समजत नाहीं । अजून खरे खरे जर समजले असावा तर ह्या पुद्गालाचे मोहाला कशाला तुम्हीं पडला असता? मुले बाळे भाई-बंधू, मुले बाळे आईबाप हे सगळे पुद्गलाचे संबधवाले आहेत । जीवाचे संबंधवाले कोणी नाहीं रे बाबा! जीव अकेला आहे ! अकेला आहे! ह्या जीवाला कोणी नाहीं । कित्येक भवभवामध्यें अकेला जाणार आहे! मोक्षालाही अकेला जाणार आहे!!!

देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप आणि दान हा सहा क्रिया सांगितलेला आहे । (खोकला) असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या हा सहा धंदा सांगितलेला आहे । हा सहा धंद्याचे क्षय करण्याकरितां हा सहा क्रिया करायला पाहिजे । हा व्यवहार झाला । ह्याच्यापासून खरा मोक्ष होत नाहीं । ऐहिक सुख मिळेल । पंच पाप त्याग केल्यानें पंचेंद्रिय सुख मिळेल । हा मोक्ष नाहीं मिळत । मोक्ष कशानें मिळतो? बाकी कोणते कर्मानें, कोणते क्रियानें, कोणते कार्यानें, मोक्ष नाहीं मिळत ।

नय, शास्त्र, अनुभव ह्या तिन्हींचे मेळ घालून बघावा । म्हणजे कशानें मोक्ष मिळतो? बाकी सगळे असू दे, आपला अनुभव कसला? भगवानाच्या वाणीपुढें कांहीं किंमत नाहीं । सत्यवाणी आहे । वाणीवर खूप विश्वास ठेवला पाहिजे । हा वाणीचे एक शब्द ऐकले तर एक शब्दानें जीव तरून मुक्तीला जाईल असे नियम आहे । तर हा वाणीमध्यें विश्वास ठेवावा । सत्यवाणी कोणता आहे ? एक आत्मचिंतन । आत्मचिंतना पासून सगळे कार्य साध्य होणार आहे । त्याच्याशिवाय कांहीं नाहीं रे बाबा ! बाकी कांहीं क्रिया केला तर पुण्यबंध पडतो, स्वर्गसुख मिळतो, राज्यपदवी मिळतो, संपत्तिवान होतो, संतति, संपत्ति, धन हा सगळे मिळतो, पण मोक्ष नाहीं मिळत । मोक्ष मिळण्याला फक्त एक आत्मचिंतन कारण आहे । तर तें कार्य करायलाच पाहिजे । त्याच्याशिवाय हा सद्गति (खोकला) सद्गति होत नाहीं । हा क्रिया केलाच पाहिजे ।

सारांश धर्मस्य मूलं दया, जिनधर्माचा मूल कोणता? सत्य अहिंसा । अरे तोंडानें सर्व सत्य अहिंसा म्हणता पाळत नाहीं । तोंडानें स्वयंपाक करावा भोजन करावा, स्वयंपाक करावे, भोजन म्हटले–(म्हटलेतर)–पोट भरतो काय? क्रिया केल्याशिवाय–जेवल्याशिवाय पोट भरत नाहीं रे बाबा! तर क्रियामध्यें आणला पाहिजे । क्रिया केले पाहिजे । तेव्हां आपलें कार्य साध्य होऊन जातें । बाकी सगळे काम सोडा! सत्य अहिंसा पाळा! सत्यामध्यें सम्यक्त्व होतें । अहिंसामध्यें कोणत्याही जीवाला दुःख नाहीं होत । हा व्यावहारिक, गोष्ट आहे । हा व्यवहारिक पाळा! सम्यक्त्व धारण करा! तर आपला कल्याण होतो । त्याच्याशिवाय कल्याण होत नाहीं । [आतां पुरें]

प. पू. चा च. श्री १०८ आ. शांतिसागर दि. जैन जि. जी. संस्था प्रमाणित " श्रुतभांडार व ग्रंथप्रकाशन समिति, फलटण "

परमपूज्य श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्यवर्य शांतिसागर महाराजके आदेशसे ज्ञानदानके लिये छपा हुवा

वीर संवत् २४८०] ॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥ [अनंत १४, फलटण

श्रीसमंतभद्राचार्यकृत

रत्नकरंडश्रावकाचार

यहां इस ग्रन्थकी आदिमें स्याद्वादविद्याके परमेश्वर परमनिर्ग्रंथ वीतरागी श्रीसमन्तभद्रस्वामी जगतके भव्यनिके परमोपकारके अर्थि रत्नत्रयका रक्षणको उपायरूप श्रीरत्नकरंड नाम श्रावकाचारकूं प्रकट करनेके इच्छुक विघ्नरहित शास्त्रकी समाप्तिरूप फलकूं इच्छा करता इष्ट विशिष्ट देवताकूं नमस्कार करता सूत्र कहैं हैं—

नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीवर्द्धमान तीर्थंकरके अर्थि हमारा नमस्कार होहु । श्री कहिये अंतरंगस्वाधीन जो अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य, अनंतसुखरूप अविनाशीक लक्ष्मी अर बहिरंग इन्द्रादिक देवनिकरि वंदनीक जो समवसरणादिक लक्ष्मी तिसकरि वृद्धिकूं प्राप्त होय सो श्रीवर्द्धमान कहिये है । अथवा अव—समंतात् कहिये समस्त प्रकारकरि ऋद्ध कहिये परमअतिशयकूं प्राप्त भया है केवलज्ञानादिक मान कहिये प्रमाण जाका सो वर्द्धमान कहिये । इहां "अवाप्योरल्लोपः" इस व्याकरणशास्त्रके सूत्रकरि अकारका लोप भया है। कैसा कहै श्रीवर्द्धमान निर्द्धूतकलिल है आत्मा जाका, निर्द्धूत कहिये नष्ट किया है आत्मातैं कलिल कहिये ज्ञानावरणादि पापमल जानै ऐसा है । बहुरि जाकी केवलज्ञानविद्या अलोक-सहित समस्त तीनलोककूं दर्पणवत् आचरण करै है ।

भावार्थ—जाके केवलज्ञानविद्यारूप दर्पण विषैं अलोकाकाशसहित षट्द्रव्यनिका समुदायरूप समस्त लोक अपनी भूत, भविष्यत्, वर्तमानकी समस्त अनंतानंत पर्यायनिकरि सहित प्रतिबिम्बित होय हैं ऐसा अर जाका आत्मा समस्त कर्ममलरहित भया ऐसा श्रीवर्द्धमान देवाधिदेव अन्तिम तीर्थंकर ताकूं अपने आवरणकषायादिमलरहित सम्यग्ज्ञानप्रकाशके अर्थि नमस्कार किया । अब आगैं धर्मके स्वरूपकूं कहनेकी प्रतिज्ञारूप सूत्र कहैं हैं:—

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिबर्हणम् ।
संसारदुःखतः सत्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ २ ॥

अर्थ—मैं जो ग्रन्थकर्ता हूं सो इस ग्रन्थविषैं तिस धर्मकूं उपदेश करूं हूं जो प्राणीनिनै पञ्चपरिवर्तनरूप संसारके दुःखतैं

निकाल स्वर्गमुक्तिके वाधारहित उत्तमसुखनिमैं धारण करै । वहुरि कैसेक धर्मकूं कहूँ हूँ जो समीचीन कहिये जामें वादीप्रतिवादीकारि
२ तथा प्रत्यक्ष अनुमानादिककरि बाधा नाहीं आवै, अर जो कर्मबंधनकूं नष्ट करनेवाला है तिस धर्मकूं कहूं हूँ। २

भावार्थ—संसारमें धर्म ऐसा नाम तो समस्त लोक कहैं हैं परन्तु शब्दका अर्थ तो ऐसा जो नरकतिर्यचादिक गतिमें परिभ्रमणरूप दुःखतैं आत्माकूं छुडाय उत्तम आत्मीक, अविनाशी, अतीन्द्रिय मोक्षसुखमें धारण करै सो धर्म है । सो ऐसा धर्म मोल नाहीं आवै जो धन खरचि दानसन्मानादिकतैं ग्रहण करिये तथा किसीका दिया नाहीं आवै, जो सेवा उपासनातैं राजी कर लिया जाय । तथा मन्दिर, पर्वत, जल, अग्नि, देवमूर्ति, तीर्थादिकनमें नाहीं धरया है जो वहां जाय ल्याइये । तथा उपवासव्रत, कायक्लेशादि तपमें हू, शरीरादि कृश करनेतैं हू नाहीं मिलै । तथा देवाधिदेवके मन्दिरनिमें उपकरणदान मण्डलपूजनादिकरि तथा गृह छोड वन स्मशानमें बसनेकरि तथा परमेश्वरके नामजाप्यादिककरि नाहीं पाइये है । धर्म तो आत्माका स्वभाव है जो परम आत्मबुद्धि छोड अपना ज्ञाता दृष्टारूप स्वभावका श्रद्धान अनुभव तथा ज्ञायकस्वभावमें ही प्रवर्तरूप जो आचरण सो धर्म है । तथा उत्तमक्षमादि दशलक्षणरूप अपना आत्माका परिणमन तथा रत्नत्रयरूप तथा जीवनकी दयारूप आत्माकी परणति होय तदि आत्मा आप ही धर्मरूप होयगा । परद्रव्यक्षेत्रकालादिक तौ निमित्तमात्र हैं । जिसकाल यह आत्मा रागादिरूप परणति छोड वीतरागरूप हुवा देखै है तदि मन्दिर, प्रतिमा, तीर्थ, दान, तप, जप समस्त ही धर्मरूप हैं । अर अपना आत्मा उत्तमक्षमादि वीतरागरूप सम्यग्ज्ञानरूप नाहीं होय तो वहां कहीं हू धर्म नाहीं होय । शुभराग होय जदि पुण्यवन्ध होय है अर अशुभ राग, द्वेष, मोह होय तहां पापवन्ध होय है । जहां शुभश्रद्धानज्ञानस्वरूपाचरण धर्म है तहां बन्धका अभाव है । बंधकर अभाव भये ही उत्तम सुख होय है । अब ऐसा सुखका कारण जो आत्माका स्वरूप धर्म ताकूं प्रगट करनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥ ३ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनोंको धर्मके ईश्वर भगवान तीर्थंकर परमदेव धर्म कहैं हैं अर इनतैं प्रतिकूल जे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र हैं ते संसारपरिभ्रमणकी परिपाटी होय हैं ।

भावार्थ—जो आपका अर अन्य द्रव्यनिका सत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण सो तो संसारपरिभ्रमणतैं छुडाय उत्तम सुखमें धारण करनेवाला धर्म है । अर आपका अर अन्य द्रव्यनिका असत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण संसारके घोर अनंतदुःखनिमें डवोवनेवाले हैं ऐसें भगवान वीतराग कहैं हैं । हम हमारी रुचिविरचित नाहीं कहैं हैं । अव प्रथम ही सम्यग्दर्शनका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥

३ अर्थ—सत्यार्थ जे आप्त, आगम, तपोभृत् तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन होय हैं। आप्त तो समस्त पदार्थनिकूं जान, तिनका स्वरूपकूं सत्यार्थ प्रगट करनेहारा है अर आगम आप्तका कह्यां पदार्थनिकी शब्दद्वारकरि रचनारूप शास्त्र है अर आप्तका प्ररूप्या शास्त्रके अनुसार आचरणकूं आचरनेवाला तपोभृत् कहिये गुरु है। इहां जो सांचा आप्त, सांचा शास्त्र, सांचा गुरुका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। अर असत्य आप्त, आगम, गुरुका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन नाहीं है। सो सम्यग्दर्शन तीन मूढताकरि रहित है अर अपने अष्टअंगनिकरि सहित है अर अष्टमद जामें नाहीं हैं।

भावार्थ—सत्यार्थ आप्त, आगम, गुरुका तीन मूढतारहित, निःशंकितादि अष्टअंगसहित, अष्टमदरहित श्रद्धान होय सो सम्यग्दर्शन है।

इहां कोऊ कहे जो सप्ततत्त्व, नवपदार्थनिका श्रद्धानकूं आगममें सम्यग्दर्शन कह्या है सो इहां कैसे नाहीं कह्या? ताका समाधान–जातैं निर्दोष वाधारहित आगमका उपदेशविना सप्ततत्वनिका श्रद्धान कैसे होय। अर निर्दोष आप्तविना सत्यार्थ आगम कैसें प्रगट होय हैं तातैं तत्वनिका श्रद्धानकाहू मूल कारण सत्यार्थ आप्त ही है। अब सत्यार्थ आप्तहीका लक्षणकूं प्रगट करैं हैं,—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ ५ ॥

अर्थ–धर्मका मूल भगवान आप्त है ताके तीन गुण हैं निर्दोषपणा, सर्वज्ञपणा, परमहितोपदेशकपणा। तिनमें जाकै क्षुधा, तृषादिक दोष नष्ट हो गये, तातैं निर्दोष अर त्रिकालवर्ती समस्त गुण पर्यायनिकरि सहित समस्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाशनिकी अनन्त परणति तिनकूं युगपत् प्रत्यक्ष जाणै तातैं सर्वज्ञ, अर परमहितोपदेशकपणाकरि आगम जो द्वादशांग ताका मूल कर्ता तातैं आगमका स्वामी ऐसें यह कहे जे तीन गुण तिनकरि संयुक्त होय सो निश्चयकरि आप्त होय है, याहीकूं देव कहिये है। अन्य प्रकार इन तीन गुणनिविना आप्तपणा नाहीं होय है जातैं जो आप ही दोषनिकरि सहित है सो अन्य जीवनकूं निराकुल सुखित, निर्दोष कैसे करेगा? जो क्षुधा की बाधा, तृषाकी बाधा, कामक्रोधादिक दोषसहित होय सो तो महादुःखित है, ताकैं ईश्वरपणा कैसे होय? अर जो निरन्तर भयवान भया, शस्त्र आदिक ग्रहण कऱ्या रहै, ताकै वैरी विद्यमान है सो निराकुल कैसें होय? अर जाकै द्वेष, चिन्ता, खेदादिक निरन्तर वर्तै सो सुखित नहीं होय। अर जो कामी रागी होय सो तो निरन्तर परकै वश है वाकै स्वाधीनता नहीं, पराधीनतातैं सत्यार्थवक्तापणा वणै नहीं। अर मदके वशीभूत निद्राके वशीभूत होय ताकै सत्यार्थ-

वक्तापणा नाहीं होय सकै है। अर जो जन्म–मरणसहित है ताकै संसारपरिभ्रमणका अभाव नाहीं संसारी ही है ताकै आप्तपणा नाहीं बणै। जातैं निर्दोष होय ताही के सत्यार्थपणाकरि आप्त नाम वणै हैं। रागी–द्वेषी तो आपका अर परका रागद्वेष पुष्ट करनेरूप ही कहै, यथार्थवक्तापणा तो वीतरागकै ही सम्भवै है। बहुरि सर्वज्ञ नाहीं होय तो इंद्रियनिके अधीन ज्ञानवाला पूर्वैं भये जे राम रावणादिक तिनकूं कैसैं जानैं ? अर दूरवर्ती जे मेरु कुलाचल ·स्वर्ग नरक परलोकादिकनिकूं कैसैं जानै ? अर सूक्ष्मपरमाणूं इत्यादिकानिकूं कैसैं जानैं ? इंद्रियजनित ज्ञान तो स्थूल विद्यमान अपने सन्मुखहीकूं स्पष्ट नाहीं जानै है। इस संसारमें पदार्थ तो जीव, पुद्‌गल, कालादिक अनन्त हैं अर एक कालमें अपनी भिन्न-भिन्न परणतिरूप परिणमें हैं यातैं एकसमयवर्ती अनन्त पदार्थोंकी भिन्न-भिन्न अनन्त ही परिणति हैं। अर इन्द्रियजनितज्ञान क्रमवर्ती स्थूल पुद्गलकी अनेक समयमें भई जे एक स्थूल पर्याय ताकूं जाननेवाला है। अनेक पदार्थनिकी अनेकपर्याय हैं। जो एक समयवर्ती ही जाननेकूं समर्थ नाहीं तो अनन्तकाल गया अर अनन्तकाल आवैगा तिनकी अनन्तानन्त परणतिकूं इन्द्रियजनित ज्ञान कैसैं जानैं। तातैं सर्व त्रिकालवर्ती समस्तद्रव्यनिकी परिणतिकूं युगपत् जाननेकूं समर्थ ऐसा सर्वज्ञहीके आप्तपणा संभवै है। अर जो परम हितोपदेशक है सोई आप्त है ये तीन गुण जामें होय सो ही देव है। यद्यपि अरहन्तदेव मनुष्यपर्यायकूं धारण करता मनुष्य है तो हू ज्ञानावरणादि चारिघातिया कर्मनिके नाशतैं प्रगट भया जो अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्तसुखरूप निजस्वभाव तिसमें रमनेतैं तथा कर्मनिके विजयतैं अप्रमाण शरीरकी कान्ति प्रगट होनेतैं अनन्त आनन्दसुखमें मग्न होनेतैं, तथा इन्द्रादिक समस्त देवनिकरि स्तुतियोग्य होनेतैं, तथा अनन्तज्ञानदर्शनस्वभावकरि समस्त लोकालोकमें व्याप्त होनेतैं, अनन्त-शक्ति प्रगट होनेतैं, अन्यदेव मनुष्यनितैं असाधारण आत्मरूपकरि दिपै है। तातैं मनुष्य पर्यायहीमें अपने अनन्त ज्ञानवीर्यसुखादि गुणनितैं याकूं देवाधिदेव कहिये है।

इहां कोऊ प्रश्न करे जो आप्तका लक्षण तीन काहैतैं कह्या ? एक निर्दोष कहनेतैं ही समस्त गुण लक्षण आवता ? ताकूं कहिये है,–निर्दोषपणातो आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्‌गल कालादिकके हू है इनके हू अचेतनपणातैं क्षुधा-तृषा, राग-द्वेषादिक नाहीं है यातैं निर्दोषपणातैं आत्मपणाका प्रसङ्ग आवता तातैं निर्दोष होय अर सर्वज्ञ होय सोई आप्त है। अर निर्दोष सर्वज्ञ दोय ही गुण कहैं तो भगवान सिद्धनिके आप्तपणाका प्रसङ्ग आवता तब सत्यार्थ उपदेशका अभाव आवता तातैं निर्दोष सर्वज्ञ परमहितोपदेशकता इन तीन गुणनिकरि सहित देवाधिदेव परम औदारिक शरीरमें तिष्ठता भगवान सर्वज्ञ वीतराग अरहंतहीके आप्तपणा है ऐसें निश्चय करना योग्य है। अब अरहन्तदेव जिन दोषनिकूं नष्ट करि आप्त भये तिन दोषनिके नाम कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥६॥

अर्थ—क्षुत् कहिये क्षुधा १, पिपासा कहिये तृषा २, जरा कहिये वृद्धपणा ३, आतङ्क कहिये शरीर-सम्बन्धी व्याधि ४,

जन्म कहिये कर्मके वशतैं चतुर्गतिमें उत्पत्ति ५, अन्तक कहिये मृत्यु ६, भय कहिये इस लोकका भय, परलोकका भय, मरणभय, वेदनाभय, अनरक्षाभय, अगुप्तिभय, अकस्मात्‌भय, ऐसें सप्त प्रकारका भय ७, स्मय कहिये गर्व मद ८, राग ९, द्वेष १० मोह ११, और 'च' शब्दतैं ग्रहण किये चिन्ता १२, रति १३, निद्रा १४, विस्मय कहिये आश्चर्य १५, विषाद् १६, स्वेद कहिये पसेव १७, खेद व्याकुलता १८, ए अष्टादशदोष जाकै नाहीं सो आप्त कहिये।

अब यहाँ कोऊ श्वेताम्बर मतका धारक प्रश्नकरै है,–भो दिगम्बरधर्मधारक-हो! जो केवली भगवानकैं क्षुधा, तृषाका अभाव है तो आहारादिकनिमें प्रवृत्तिका अभाव होतैं केवलीकैं देहकी स्थिति नाहीं रही चाहिये अर देहकी स्थिति तुम्हारे मान्य ही है तातैं केवलीकैं आहार करनेकी सिद्धि भई। जैसे आहार कियेविना अपने देहकी स्थिति नाहीं रहै तैसैं केवलीकै भी आहारविना देह नाहीं रहै अर देहकी स्थिति है तो अवश्य आहार करै ही है। तिसकूं उत्तर कहैं हैं,–केवलीकैं आहारमात्र साधिये है कि कवलाहार साधिये है? जो आहारमात्र हीकी सिद्धि चाहो तदि सयोगकेवलीपर्यन्त समस्त जीव आहारक ही हैं ऐसा परमागमका वाक्य है क्योंकि समस्त ही एकेंद्रियकूं आदि लेय सयोगीपर्यन्त जीव समय-समयमें सिद्ध राशिके अनंतवें भाग अर अभव्यराशितैं अनन्तगुणा कर्मपरमाणु अर नोकर्मपरमाणूंनिकूं निरन्तर ग्रहण करै हैं। अर जो तुम या कहो हम तो केवलीकैं कवलाहार कहिये ग्रास–ग्रास मुखमें ले अन्नजलादिक अपना भक्षण करनेकी ज्यों आहार करना कहैं हैं? कवलाहार जो ग्रासरूप आहार तिस विना केवलीके देहकी स्थिति नाहीं रहै। जैसैं अपना देह कवलाहारविना नाहीं रहै। ताकूं कहैं हैं—देवनिका देह कवलाहार विना सागरांपर्यन्त कैसे तिष्ठै है? समस्त देवनिके कवलाहार कदाचित् नाहीं है अर देहकी स्थिति है ही, तातैं तुम्हारा हेतु व्यभिचारी भया। अर जो या कहो देवनिके देहकी स्थिति तो मानसिक आहारतैं है जो मनमें आहारकी इच्छा उपजते ही कण्ठमें अमृत झरै है तातैं तृप्ति होय है सो मानसीक आहार है सो भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी चतुरनिकायके देवनिकै कवलाहारविना मानसिक आहारतैं ही देहकी स्थिति है तो तैसैं ही केवली भगवानके कर्मनोकर्मवर्गणाके आहारतें देहकी स्थिति है। अर जो या कहो केवलीकी तो मनुष्य देहमें स्थिति है यातैं अपने देहकी तुल्य कवलाहारतैं ही देहकी स्थिति मानिये है तो अपना देह ज्यों पसेव, खेद, उपसर्ग, परीषहादिक भी मानना चाहिये। अर जो या कहोगे केवलीके अतिशय प्रभावतैं नाहीं होय है तो भोजनका अभावरूप भी अतिशय कैसैं नाहीं मानो हो। बहुरि अपने देहमें देखिये तैसैं केवलीकै हूँ मानो हो तौ जैसैं अपने इंद्रियजनित ज्ञान है तैसैं केवलीके हू ज्ञान इन्द्रियजनित मानो। देखना, श्रवण करना, आस्वादना, चिन्तवना इन्द्रियनितैं भया तदि केवलज्ञानरूप-अतीन्द्रियज्ञानको जलांजलि दीनी, सर्वज्ञपणाका अभाव आया। अर जो या कहोगे ज्ञानकरि समान होते हू केवलीकै अतीन्द्रियज्ञान ही है, तो देहमें स्थिति होते हू कवलाहार अभाव कैसैं नाही मानो हो? अर जो या कहोगे केवलीकै वेदनीयकर्मका सद्भाव है यातैं भोजनकी इच्छा उपजै है यातैं कवलाहारमें प्रवृत्ति होय है। सो ऐसैं कहना हू उचित नाहीं जातैं मोहनीयकर्मके सहायसहित ही वेदनीयकर्मकै

भोजनकी इच्छा उपजावनेमें समर्थपणा है क्योंकि भोजनकी इच्छा सो बुभुक्षा है। इच्छा है सो मोहनीयकर्मका कार्य है, यातैं नष्ट हुवा मोहनीयकर्म जाके ऐसे भगवान केवलीकै भोजन करनेकी इच्छा काहेतैं उपजै ? अर मोहनीय विना हू इच्छा उपजै है, तो मनोहर स्त्रीकूं भोगनेकी इच्छा हू उपजनेका प्रसङ्ग आया तथा सुन्दर शय्यामें शयन, आभरण, वस्त्रादि भोगोपभोगकी इच्छा का प्रसङ्ग आया, तदि वीतरागताका अभाव भया, जहाँ इच्छा तहाँ वीतरागता नाहीं।

बहुरि तुम्हारे केवली आहार करैं हैं सो एक दिनमें एक बार करैं हैं कि अनेकबार करैं हैं, कि एक दिनके अन्तर, कि दोय दिन, पांच दिन, पक्ष मासादि केता अन्तर करि भोजन करैं हैं ? जेता अन्तर कहोगे तितना प्रमाण ही शक्ति रही, शक्ति घटे भोजन करैं हैं, भोजनके आश्रय बल भया तदि अनन्तवीर्य भगवान् केवलीकै कहना असत्य भया। केवलीकै आहारकै अधीन ही बल रह्या। बहुरि केवली बुभुक्षाका उपशम करनेके अर्थि भोजनका आस्वादन करै हैं सो केवलज्ञानतैं भोजनका स्वाद ले हैं कि रसना इंद्रियतैं आस्वादै हैं ? जो केवलज्ञानतैं आस्वादै हैं तो दूर क्षेत्रमें तिष्ठता हू भोजनका आस्वादन कर लें तदि कवलाहारकरि कहां प्रयोजन रह्या ? अर जो रसनाइन्द्रियतैं स्वाद ले हैं तो मतिज्ञानका प्रसङ्ग आया क्योंकि इन्द्रियनिकरि देखना, स्वादना, श्रवण करना, स्पर्शना, चिंतवन करना सो तो मतिज्ञान हैं। बहुरि जो तुम यह कहो कि सर्वज्ञपणाकै अर कवलाहारकै विरोध नाहीं। जैसैं इहां आहार करि मनुष्यनिकै ज्ञानकी हीनता नाहीं देखिये है तैसैं भोजन करते हू केवलज्ञानकी हीनता नाहीं होय है। ताकूं कहिये है–जो हम पूछें हैं द्रव्य, आभरण, वस्त्र, वाहन, काम विषय भोगनेमें हूँ सर्वज्ञपणाका विरोध नाहीं। अर जो तुम या कहो सर्वज्ञकै मोहके उदयका अभाव है यातैं द्रव्य, आभरण, काम, विषयभोगादिकग्रहण करनेकी इच्छा नाहीं है अर असातावेदनीयका उदय विद्यमान है तातैं आहार ग्रहण करैं हैं क्योंकि कर्मनिकी शक्ति भिन्न-भिन्न है। कर्मनिकी शक्ति एकली होय तो कर्मनिमें जुदा-जुदा भेद नाहीं होय। मोहके उदयका अभाव भया तातैं द्रव्यादिक नाहीं ग्रहण करै हैं। ताकूं कहै हैं–जो मोहका अभाव भया तदि ग्रास उठाय मुखमें देना, चाबना, निगलना, यह इच्छा काहेतैं भई ? जो या कहौ कि––अन्तरायकर्मका अभाव भया तातैं इच्छाविना ही मुखमें ग्रास क्षेपै हैं तो अन्तरायकर्मका अभाव भोगोपभोग कामसेवनादिकका हू ग्रहण क्यों नाहीं करावै ? जो यह कहोगे कि–द्रव्य आभरण, काम, विषयादिक ग्रहण करनेतैं व्रत भङ्ग हो जाय, दीक्षाका भंग हो जाय, साधूपणा नष्ट हो जाय है अर अहार करनेतैं व्रतका तथा दीक्षाका भंग नाहीं होय है। कवलाहार करनेतैं तो साधूकै धर्मका कारण देहकी स्थिति रहै। ताका उत्तर करैं हैं, तुम्हारे श्वेताम्बरमतमें व्रतधारणतैं अर दीक्षाग्रहण करनेतैं ही केवलज्ञान उपजनेका नियम नाहीं है। मल्लीकुमारीके गृहस्थ अवस्थाहीमें केवलज्ञानकी उत्पत्ति कहो हो तथा भरतचक्रवर्तीकै समस्त छह खण्डका राज भोगते सन्तेहू, आरसीका (काचका) महलमें केवलज्ञान उपज्या कहो तथा मरुदेवी हाथीचढी, पुत्रके अर्थि रुदन करतकै केवलज्ञान कहो हो। बांस चढ्या नटके केवलज्ञान कहो हो। उपासरामें बुहारी देती दासीकै केवलज्ञान कहो हो तथा गृहस्थीके वा स्त्रीके तथा अन्यधर्मी कोऊ भेषधारी होहु दंडी, त्रिदंडी, संन्यासी, कपाली, फकीर, जटाधारी, मुण्डनकरनेवाला, मृगछाला, वाघाम्बर ओढनेवाला समस्त कुलिंगीनकै मोक्ष कहो हो।

समस्त नाई, धोबी, खटीक, चांडालादि समस्तकै मोक्ष कहो हो । हृषिकेश चांडालके केवलज्ञान अर मोक्ष कहो हो। तुम्हारे व्रततैं, दीक्षातैं ही प्रयोजन नाहीं, तुम्हारे केवलज्ञान तो पहले गृहस्थके उपजि आवै अर दीक्षा पाछें होय, यतीपणा पाछें होय ऐसे कहो हो। सर्वज्ञपणा पहले हो जाय अर दीक्षा पाछें होय तदि दीक्षातैं कौन प्रयोजन सध्या ? अर गृहस्थके मोक्ष होय अर अन्य कुलिंगीनकै हू मोक्ष हो जाय तदि तुम्हारा दीक्षाग्रहण, मुंहपट्टीबंधन, दण्डग्रहण, बोधपात्रनिका ग्रहण निरर्थक रह्या । इत्यादि तुम्हारे हजारां दोष आवैं हैं । अर जो तुम कहो असातावेदनीथ उदयतैं केवलीकै क्षुधा, तृषा, रोग, मल मूत्रादिक होय, सो नाहीं है इसका उत्तर सुनहु-क्षुधा तो असातावेदनीयकर्मकी उदीरणातैं होय है सो असाताकी उदीरणाकी छट्टे गुणस्थानमें व्युच्छित्ति है तदि सप्तम गुणस्थानादिकनिमें क्षुधादि वेदनाका अभाव है । वहुरि और सुनहु,—जिसकाल मुनि श्रेणी चढैं तदि सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानमें अधःकरणके प्रारम्भमें चार आवश्यक होय हैं, एक तो प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि १, अर दूजा स्थितिवन्धका अपसरण कहिये घटना २, अर सातावेदनीयादिक पुण्यप्रकृतिनिमें अनन्तगुणकारूप रसका वर्द्धित होना ३, अर असातादिक अशुभ प्रकृतानिका रस अनन्तगुणा घट निंबकांजीररूप दोय स्थानरूप रहै है, विष हालाहलरूप शक्ति घट जाय है ४ । पाछें अपूर्वकरणमें गुणश्रेणी निर्जरा १, गुणसंक्रमण २, स्थितिखंडन ३, अनुभागखण्डन ४ ये चार आवश्यक होय हैं । तातैं तिनकरणपरिणामानिके प्रभावतैं असातादिक अप्रशस्त प्रकृतिके रसके असंख्यात वार अनन्तका भाग लगि घटनेतैं ऐसी मन्द शक्ति रही सो सर्वज्ञकै असातावेदनीयपरीषह उपजायवेकूं समर्थ नाहीं । अर घातिया कर्मका सहाय रह्या नाहीं तातैं परीषह देनेमें समर्थ नाहीं है । वहुरि उक्तं च गोमट्टसारे,—

"समयट्ठिदिगो बन्धो सादस्सुदयप्पगो जदो तस्स । तेणासादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि ॥ १ ॥
एदेण कारणेण हु सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ । तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि ॥ २ ॥
णट्ठा य रायदोसा इन्दियणाणं च केवलिम्हि जदो । तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इन्दियजं ॥ ३ ॥"

अर्थ—पूर्वली बांधी जो असातावेदनीय ताका असंख्यातबार अनन्तका भाग लागि रस घटि अति मन्द रह गया । अर नवीन असाताका बन्ध होय नाहीं । जातैं सप्तम गुणस्थानतैं एक सातावेदनीयका ही वन्ध नवीन होय है अर असाताका बन्ध होय नाहीं । अर केवलीकै साताकर्म वन्धै सो भी एक समयकी स्थितिरूप बन्धै सो उदय होता हुवा ही होय है तातैं असाताका उदय भी सातारूप ही परिणमैं है ।

भावार्थ—साताका उदय तो नवीन निरन्तर अनन्तगुणा रसरूप सर्वज्ञके उदयमें आवे अर असातावेदनीयका रस अनन्तवें भाग, सो जैसें अमृतके समुद्रकूं एक विषकी कणिका विषरूप करनेकूं समर्थ नाहीं होय तैसें सर्वज्ञके अतितीव्र अनन्तगुणा साताकर्मके रसका उदयमें अनन्त, भागरूप अतिमन्द असाताका उदय कैसें क्षुधाकी वेदना उपजावै ? या कारणतैं भगवान सर्वज्ञके निरन्तर साताकर्मका ही उदय है, यामें किंचित् असाताका उदय हू सातारूप ही परिणमें है, ता कारण असाताका उदयजनित परीषह जिनेंद्रकै नाहीं हैं । जातैं भगवान केवलीके राग-द्वेष नष्ट भया तथा इन्द्रियजनित ज्ञानका अभाव भया, तातैं साता असातातैं

उपज्या इन्द्रियजनित सुखदुःख हू केवलीकै नाहीं है। अर और हू कहैं हैं—अतिमन्द उदयरूप असाता अपना कार्य करनेमें समर्थ नाहीं है। जैसैं मन्दउदयरूप संज्वलनकषाय अप्रमत्तादि गुणस्थाननिमें प्रमाद नाहीं उपजाय सकै तथा जैसैं अतितीव्र वेदके उदयतैं उपजी मैथुनसंज्ञा सो मन्दवेदका उदयरूप नवमें गुणस्थानमें नाहीं है तथा निद्रा प्रचलाका उदय तो बारवैं गुणस्थानमें द्विचरम समय पर्यन्त है। परन्तु उदीरणाविना निद्राकूं नाहीं कर सकै है तातैं जागृत अवस्थाविना आत्मानुभवनरूप ध्यान नाहीं बन सकै, तैसैं असाताकी उदीरणाविना असाता कर्म क्षुधा तृषादिक नाहीं उपजाय सकै है। अर और भी समझो कि—अप्रमत्त हू साधू आहारकी इच्छामात्रतैं प्रमत्तपणानैं प्राप्त होय है तो भोजन करता हू केवली प्रमत्त नाहीं होय सो बडा आश्चर्य है। बहुरि केवली भगवान् त्रैलोक्यके मध्य मारण, ताडन, छेदन, ज्वालन, मद्य मांसादि अशुचि द्रव्यनिकूं प्रत्यक्ष देखता कैसैं भोजन करै है? अल्प शक्तिका धारक गृहस्थ हू अयोग्य वस्तु, निंद्य कर्म देख अन्तराय करै है अर केवली अन्तराय नाहीं करै, तो केवली कै गृहस्थनितैं हू अधिक भोजनमें लम्पटता रही। अर शक्तिकी हीनता रही, तदी अनन्तशक्ति कहां रही? अर जाके क्षुधा वेदना होय ताके अनन्तसुख कहां रह्या? क्षुधा समान वेदना जगतमें अन्य नाहीं है। यातैं क्षुधा वेदना सर्वज्ञकै होतैं अनन्तवीर्य, अनन्तसुख नाहीं ठहरैं। तथा ऋद्धिजनित अतिशयवान मुनिविषै अन्य मनुष्यनिमें नाहीं पाइये ऐसा कार्य करनेका सामर्थ्य पाइये है तो अनन्तवीर्यका धारक केवली भगवान कै आहारविना देहकी स्थिति रहना कहा नाहीं सम्भवै हैं। अर जो सर्वज्ञकै हू अन्य मनुष्यनिकी ज्यों आहार, निहार, निद्रा, रोग, स्वेद, खेद, मल, मूत्र विद्यमान होय तो सामान्य आत्मामें अर परमात्मामें कहा भेद रह्या? बहुरि जीवना कवलाहारतैं ही नाहीं है, आयुकर्मके उदयतैं है, उक्तं च गाथा—

"णोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो। ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो भणिओ ॥ ४ ॥
णोकम्मं तित्थयरे, कम्मं णिरये य, माणसो अमरे। कवलाहारो णरपसु, ओजो पक्खी, य इगि लेप्पो ॥ ५ ॥"

अर्थ—आहार छह प्रकार है–कर्म आहार १, नोकर्मआहार २, कवलाहार ३, लेपआहार ४, ओजआहार ५, मानसीकआहार ६, ऐसैं छह प्रकार है। भगवान अरहंतकैं तो अन्य जीवनिके असंभव ऐसे शुभ सूक्ष्म नोकर्मवर्गणाका ग्रहण सो ही आहार है। अर नारकीनकैं कर्मका भोगना सोही आहार है, अर चार प्रकारके देवनिकैं मानसीक आहार है, मनसें वांछा होतैं ही कण्ठमेंतैं अमृत झरे है ताकरि तृप्तता होय है। मनुष्य अर पशुअनिकैं कवलाहार है। अर पक्षीनके अण्डेमें तिष्ठतेनिकैं माताकी उदरकी ऊष्मारूप ओजाहार है। अर एकेन्द्रिय पृथिव्यादिकनकैं लेपआहार है अर्थात् पृथिव्यादिकनका स्पर्श ही आहार है। बहुरि भोगभूमिके औदारिक देहके धारक मनुष्यनिका शरीर तीन कोसप्रमाण अर भोजन आंवलाप्रमाण तीन दिनके अन्तर गये ले हैं, यातैं कवलाहार ही देहकी स्थितिका कारण नाहीं है अर जो आहारकपनातैं कवलाहारकी ही कल्पना करो हो तो सयोगीपनातैं मनके माननेंका अर प्राण माननेंतैं पंच इन्द्रियनिका अर शुक्ललेश्यातैं कषायका हू प्रसङ्ग आवैगा। अर एकादश परीषह जिनके हैं ऐसे कहना तो उपचारमात्र है। वेदनीयकर्म विद्यमान है यातैं कह्या है। परन्तु जैसें मन्त्र औषधिआदिकके प्रभावकरि, जाकी विषशक्ति नष्ट

भई ऐसा विष मारनेकूं समर्थ नाहीं, तैसैं शक्तिरहित असातावेदनीय क्षुधा उपजावनेकूं समर्थ नाहीं है। मणि-मन्त्र, औपधि, विद्या ऋद्ध्यादिकनिका अचिन्त्य प्रभाव है।

श्वेताम्बरनिके कल्पित सूत्र हैं तिनमें अनेक, कल्पित असंभव रचना रची है। कोऊ एक गोशाला नाम गारोड्या महावीरस्वामीके निकट दीक्षित होय, विद्याका मदकरि, महावीर स्वामीसूं विवाद करनेकूं समोसरणमें जाय विवाद किया, तो विवादमें हार गयो। तदि क्रोधकरि भगवान ऊपरि तेजोलेश्या कोऊ ऋद्धि अग्निमय प्रज्वालित चलाई। तिसकरि समोसरणमें दोय मुनि सिंहासन नीचैं दग्ध भए। अर उस तैजस ऋद्धितैं उपजी अग्निमयज्वाला भगवानके ऊपर भी जाय पहुंची, भगवानकूं उपसर्ग भारी भया तिस अग्निकी गरम बाधातैं भगवानके आंवरुधिरका पेचस (अतिसार) भया। सो छह महीना रह्या। पाछैं केवलज्ञानतैं जानकरि शिष्यकूं कहि सेठका घरतैं सुपक्षी जीवका पका मांसकूं मंगाय, भक्षण करि, व्याधि मेटी। अर कही मैं ऐसे कुपात्रकूं विना-समझ्या दीक्षा दीनी ऐसा अवर्णवाद लिखैं हैं। तथा तीन ज्ञान लियें उपजे वीर जिनेन्द्रका चटशालामें (पाठशालामें) पढना कहैं हैं। तथा तीर्थंकर तो पहिले दीक्षित नग्न होय हैं। पीछे इन्द्र स्कन्ध ऊपरि वस्त्र धरि देवै तब वस्त्रकूं (ग्रहण कर) लेहैं। तथा वीर–जिनकी वाणी गणधर विना निष्फल खिरी, कोऊ भी मानी नाहीं तथा आदिनाथकूं जुगलिया कहैं हैं। अर कोऊ एक अन्य जुगलियो मर गयो ताकी स्त्री, विधवा भई। तिस विधवा स्त्रीकों ऋषभदेव अङ्गीकार करी, तदि दूजी सुनन्दा रानी नाताकी भई। इन ढुण्ढ्यादिक श्वेताम्बरिनिकैं ऐसे अनर्थरूप वचन कहनेका भय नाहीं है। तथा ऐसा विरुद्ध कहैं हैं कि—वीर जिन पहिली देवनन्दा नाम ब्राह्मणीके गर्भमें अवतार लय, अस्सी दिन पर्य्यंत रह्या ता पीछैं इन्द्रने विचारी कि ऐसे नीच घरमें इनका जन्म योग्य नाहीं, तातैं हरिण्यगवेषी देवनैं आज्ञा करी, तदि देव जाय देवनन्दा नाम ब्राह्मणीके गर्भमेंतैं निकालि, राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिसला ताके गर्भमें धरया। विचारो कि जीव अपने बांधे कर्मनिकरि कुलादिकमें उपजैं हैं देवनिकरि जन्म कैसें फिरै। परन्तु मिथ्यादर्शनके प्रभावकरि कहनेका ठिकाना नाहीं। तथा तीर्थंकर केवलीकूं सामान्य केवली नमस्कार करै है। बाहुबलीने ऋषभदेवकूं नमस्कार किया कहैं हैं, सप्तम गुणस्थानतैं ही वंद्यवन्दक-भाव नाहीं। जहाँ आत्मस्वभावका अनुभव तहां विभाव कैसें कहैं है। कृतकृत्य भगवान सर्वज्ञदेव तिनकै नमस्कार करि कहा साध्य है ? वंदन योग्य परमेष्ठी अर मैं वंदना करनेवाला ऐसा भाव तो प्रमत्त नाम छट्टा गुणस्थानपर्यंत ही है तथा ऐसैं कहैं हैं एक स्कन्धक नाम त्रिदंडी कुलिंगी भेषीकूं अपने निकट आवता जान वीरजिन गौतमगणधरकूं कही कि—यह स्कन्धक संन्यासी आवै है यह जबर है थारै इनके मेल है सामै जाय याकूं ल्यावो। तदि गौतम गणधर बडी भक्तिसूं सन्मुख जाय ल्यायो। बडा अनर्थ है अव्रतसम्यग्दृष्टी भी कुलिंगीका समान नाहीं करै ? तो महाव्रती गणधर कैसैं भक्तिपूर्वक सन्मान करै ? स्त्रीकै पंचमगुणस्थान सिवाय गुणस्थान ही नाहीं आदिके तीन संहनन नाहीं, अहमिंद्रलोक नाहीं अर सप्तम नरकमें गमन नाहीं, ता स्त्रीके मुक्ति कैसे कहैं हैं ? तथा मल्लिजिनकूं नारी कहैं हैं ताकी प्रतिमा

पुरुषरूप बनाय पूजैं हैं ऐसे महा असत्यवादी हैं। तथा कोऊ एक हरिक्षेत्रका निवासी मनुष्य जाका दोयकोस ऊँचा काय तिसकूं कोऊ पूर्व जन्मका वैरी देव हर ल्याया, अर दोय कोसके देहको छोटा करिकैं भरतक्षेत्रमें ल्याय, मथुरा नगरका राजदेय, अर मांस भक्षण कराय पापी करि नरक पहुंचाया। तासूं हरिवंशकी उत्पत्ति कहैं हैं। तिन अज्ञानिकी मिथ्या कल्पनाका कुछ ठिकाना नाहीं। दोय कोसकी काय ताकूं कैसैं छोटी बनाई ? ऊपरसे छेद्या कि नीचैंसैं कि बीचमेंसैं छेद्या, ताका कछु उत्तर नाहीं। अर भोगभूमिके तो समस्त मनुष्य तिर्यंच देवगतिगामी हैं तथा भोगभूमिमें तो स्त्री-पुरुष प्रमाणिक हैं। माता पिता मरै तिनकी एवज पहिलें उपजैं हैं। जो अनन्त काल गये भी एक-एक घटै तो समस्त भोगभूमि रीती हो जाय। परन्तु मिथ्यादृष्टीनिकै कुछ कुबुद्धिका ओर (अन्त) नाहीं है। तथा छह द्रव्य कहना अर मुख्य कालद्रव्यका अभाव कहना समयादिक विनाशीककूं ही काल जानना।

तथा और कहैं हैं कि–साधुके निंदकके मारनेका पाप नाहीं। जो देव, गुरु, धर्मका द्रोही चक्री हू होय तो चक्रवर्तीका कटककूं हूँ विध्वंस करता साधुकै पाप नाहीं। जो आपकै ऋद्ध्यादिक करि उपजी शक्ति होते हू नाहीं मारै तो वह साधु अनंतसंसारी है, ऐसे पापी साधुके कहां साम्यभाव ? कहां वीतरागता रही ? तथा पापिष्ठ महान शीलवंतीनकै हू दोष लगाय निर्दोष कहैं हैं। भरत नामा चक्रवर्ती तो ब्राह्मी नामा बहनकूं परणि लीनी कहैं हैं। अर द्रोपदीकूं पंचभर्तारी कहैं हैं अर पंचभर्तारीहीकूं सती कहैं हैं। अर कोऊ पूछै तुम सती कहो हो तो पंचभर्तारी मति कहो अर पंचभर्तारी कहो तो सती मत कहो। ताकूं ये कहैं हैं कोऊ राजादिक सौ स्त्रीका नियम राखे ताकै शीलवानपणा ही है, तैसैं स्त्रीहू कितनेक पुरुषनिका प्रमाण करैं तातैं सिवाय ग्रहण नाहीं ताकै शीलवतीपणा ही है। तथा देवनिकै अर मनुष्यनिकै कामभोग सेवन कहैं हैं सो वैक्रियिकदेहधारीके अर सप्तधातुमय मलीन देहकै संगम कदाचित् नाहीं होय है। बहुरि कोऊ साधुकै उपवास होय अर अन्य साधुकै आहार उबरि जाय (बच जाय) तो उपवासीक साधु भक्षण कर ले है गुरु की आज्ञातैं व्रत भङ्ग नाहीं है। तथा उपवासमें औषधि भक्षण करैं तो दोष नाहीं लागै। तथा समोसरणमें भगवान नग्न बैठैं हैं अर वस्त्रसहित दीखता कहैं हैं। तथा साधु यतिकैं लाठी पात्र वस्त्रादिक चौदह उपकरण रखना ही धर्म है। तथा चांडालादिकनिकै मुक्ति कहै हैं तथा वीरजिनका समोसरणमें चन्द्रमा सूर्य विमानसहित आये कहैं हैं। सरस्वती गतिकी मर्यादाका भंग कहैं हैं। तथा साधूका मन चल जाय तो श्रावक अपनी स्त्रीकूं देय कामवेदना मिटाय मन थिर करै। तथा गंगादेवीसे पचपन हजार वर्ष पर्यन्त भरतचक्रीने कामभोग किया कहैं हैं, तथा भोगभूमिके युगल मलमूत्र धारण करैं हैं अर मर जाय तदि तीन कोसके मुरदेके शरीरकूं देवता उठाय भैरुण्डादिक पक्षीनको खुवाय देय हैं। जादव आदिक समस्त क्षात्रियनकूं मांसभक्षी कहैं हैं। गौतम नाम गणधर आनन्द श्रावक के घर शरीरकी कुशल पूछने गया तदि झूंठ बोल्या, गणधर भी चूकक्कर झूंठ बोलैं हैं। तथा जन्मके समयमें वीरजिन मेरुकूं कम्पायमान किया कहैं हैं। चर्मका नीर घृतादिक निर्दोष कहैं हैं। इत्यादि हजारां अनर्थरूप कथन करि कल्पितसूत्र बनाये हैं तिनकी विशेष कथा कहां तक कहिये ?

इनही श्वेताम्बरीनमें महाभ्रष्ट ढूंडिया भए हैं, ते प्रतिमा के वंदनका अभाव कहैं है। अर भोले लोगनिकूं कहैं हैं ए प्रतिमा

एकेंद्रिय पाषाण तिनकै आगैं पंचेन्द्रिय होय कैसैं नाचो हो, कैसैं वंदन करो हो। तुमकूं क्योंकर शुभगति देयगी तातैं साधु ढूंडियानकी वंदना दर्शन करो तिनकूं कहिये है कि—तुम्हारा चर्ममय मलीन चामकर ढक्या, मलमूत्रादि करि भऱ्या, कफ लार करि लिप्त देह ताका दर्शन करनेतैं कहा साध्य ? तुम आत्मज्ञानकरि रहित समस्त जगतके अभक्ष वस्तुनिकूं भक्षणकरनेहारे तुम्हारा दर्शनतो बंधहीका कारण है। अर तुम्हारा कल्पितसूत्रका श्रवण सम्यक्त्वका विध्वंस करनेहारा वंधका कारण है। अर जिनेन्द्रका धातु पाषाणका प्रतिबिंब, तिनका दर्शनमात्रतैं परम वीतराग सर्वज्ञका ध्यान प्रगट होजाय, परमशान्तता शुभोपयोग प्राप्त होय जाय अर तुम्हारे पापमय देहके दर्शनतैं पापका बन्ध होय जाय। कैसे हो तुम महाविद्रूप विकारी रागद्वेष कषायादि पाप-मलसहित, अयोग्य अभक्ष्य आहारके लंपटी, हिंसादिक पापनिमें प्रवृत्ति करनेंवारे, अन्य जीवनिकूं मिथ्यामार्गमें प्रवर्तावनेहारे, तुम्हारे देखनेंकरि घोर पापबंध होय। सराहनेवालेके सत्तर कोडाकोडी सागरकी स्थिति लियें मोहनीय कर्मका बन्ध होय है। इस कलिकालमें जैनधर्मका सत्यार्थ मार्गकूं श्वेताम्बरोंने विगाड्या है। यातैं इनका स्वरूप जाननेंके अर्थि ऐसे प्रकरण पाय श्वेतांवरनिके मतका स्वरूप दिखाया। इनकैं सत्यार्थ आप्तता कैसैं होय ? और हू मतवाले जे देव प्रत्यक्ष भयभीत तथा असमर्थ होय चक्र त्रिशूल, खड्ग ग्रहण करि राखे है और कामी होय स्त्रीनिके अधीन होय रहे हैं। अरु क्षुधा, तृषा, काम, राग, द्वेष, निद्रा, नीहार वैर, विरोध प्रगट जाकैं प्रसिद्ध है तिनके निर्दोषपना कैसैं होय। अरु जे इन्द्रियज्ञानसहित ज्ञानी तिनके सर्वज्ञपना आप्तपना कहांसैं होय ? तातैं सर्वज्ञ वीतराग परमहितोपदेशहीके आप्तपना बनें है। अब पूर्वापरविरोधादि दोषनिकरि रहित सत्यार्थ पदार्थनिका उपदेश देनेवाला जो शास्ता ताका नाम प्रगट करता सूत्र कहैं हैं—

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥ ७ ॥

अर्थ-जो अर्थसहित अष्ट नामनिकूं धारण करै है सो शास्ता कहिये है। परमेष्ठी, परंज्योतिः, विरागः, विमलः, कृती, सर्वज्ञः, अनादिमध्यान्तः, सार्वः, ऐसे सार्थक नाम जाके हैं सो शास्ता है, याहीकूं आप्त कहिये है ॥ ७ ॥

भावार्थ–परमेष्ठी कहिये परम इष्ट, जो इन्द्रादिकनिकरि वंद्य जो परमात्मा स्वरूपमें तिष्ठै सो परमेष्ठी है। कैसा है परमेष्ठी अन्तरङ्ग तो घातियाकर्मनिके नाशतैं प्रगट भया अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्वरूप अपना निर्विकार, अविनाशी परमात्मस्वरूप, तिसमें तिष्ठै है। अर बाह्यमें इंद्रादिक असंख्यातदेवनिकरि वंद्यमान समवसरण नाम सभाके मध्य तीन पीठके ऊपर दिव्यसिंहासनमें चार अंगुल अंतरीक्ष (अधर) चौसठ चमरनिकरि युक्त विराजमान, छत्रत्रयादिक दिव्य सम्पदाकर विभूषित, इन्द्रादिक देव तथा मनुष्यादिक निकट भव्यनिकों धर्मोपदेशरूप अमृतपान कराय, जन्मजरामरणका संतापकूं निराकरण करता तिष्ठै है, यातैं भगवान आप्तकूं परमेष्ठी कहिये हैं। अर जो कर्मनिकी अधीनतातैं इन्द्रियनके कामभोगादिविषयानिमें तथा विनाशीक सम्पदारूप राज्यसंपदामें

लीन भये स्त्रीनिके अधीन भये विषयांकी आतापसहित तिष्ठैं तिनके परमेष्ठीपना नाहीं संभवै है। बहुरि जो परंज्योति है, जाका परं कहिये आवरणरहित ज्योतिः कहिये अतीन्द्रिय अनंतज्ञानमें लोक अलोकवर्ती समस्त पदार्थ अपने त्रिकालवर्ती अनन्त गुणपर्यायनिकरि सहित युगपत् प्रतिबिंबित होय रहे हैं, सो भगवान परंज्योतिस्वरूप आप्त है। अन्य जे इंद्रियजनित ज्ञानकरि सहित अल्पक्षेत्रवर्ती वर्तमान स्थूल पदार्थनिकूं अनुक्रमकरि जानै ताकूं परंज्योति कैसैं कह्या जाय ? बहुरि जाके मोहनीयकर्मके नाशतैं समस्त पर वस्तूमें रागद्वेषका अभावतैं वांछारहित परमवीतरागता प्रगट भई वस्तुका सत्यार्थस्वरूप जानैं तदि कौनमें राग करै ? कौनमें द्वेष करै ? जैसा वस्तुका स्वभाव है तैसा रागद्वेषरहित जानैं ऐसा विराग नामसहित अर्हंतही आप्त है। जो कामी विषयनिमें आसक्त, गीत, नृत्य वादित्रानिमें आसक्त, जगत्की स्त्रीनिकूं राजी करनेमें, वैरीनकूं मार लोकनिमें अपना शूरपणा प्रगट करनेमें वांछासहित होय तिसके विरागपणा नाहीं संभवै है। बहुरि जाके काम, क्रोध, मान, माया लोभादिक भावमल नष्ट भया अर ज्ञानावरणादिक कर्ममल नष्ट भया अर मूत्र, पुरीष, पसेव, वात, पित्तादिक शरीरमल नष्ट होय निगोदरहित परम औदारिक छायारहित कांतियुक्त क्षुधा, तृषा, रोग, निद्रा, भय, विस्मयादिकरहित शरीरमें तिष्ठै सो आप्त भगवान अरहंत ही विमल हैं। अन्य जे काम क्रोधादि मलसहित ते विमल नाहीं हैं। बहुरि जिनके कछु करना नाहीं रह्या जो शुद्ध अनन्त ज्ञानादिमय अपना स्वरूपकूं प्राप्त होय कृतकृत्य व्याधिउपाधिरहित भया सो भगवान आप्त ही कृती हैं। अन्य जे जन्ममरणादिसहित चक्र, त्रिशूल, गदादिक आयुध अर कनककामिनीमें आसक्त भोजनपान कामभोगादिककी लालसासहित, शत्रुनिके मारनेकी आकुलता सहित है ते कृती नाहीं हैं। बहुरि जो इन्द्रियादिक परकी सहायरहित युगपत् समस्त द्रव्यगुणपर्यायनिकूं क्रमरहित प्रत्यक्ष जानैं सो भगवान आप्त ही सर्वज्ञ हैं। अन्य इन्द्रियाधीन ज्ञानकरि सहित सो सर्वज्ञ नाहीं हैं। बहुरि जाका जीव द्रव्यकी अपेक्षा तथा ज्ञान दर्शन सुख वीर्यकी अपेक्षा आदि, मध्य, अन्त नाहीं तातैं अनादिमध्यान्त है, अथावा भगवान आप्त अनादि कालतैं है अर अन्तको प्राप्त नाहीं होयगा तातैं अनादि मध्यान्त है, अर जिनके मतमें आप्तके जन्म-मरण तथा जीवका नवीन प्रगट होना तथा जीवके ज्ञानादि गुण नवीन प्रगट होना मानैं है तिनके अनादिमध्यान्तपणा नाहीं बनै है। बहुरि जिनके वचनकी अर कायकी प्रवृत्ति समस्त जीवनके हितके अर्थि ही है सो भगवान आप्त सार्व कहिये है। अन्य जे काम, क्रोध, संग्रामादिक हिंसाप्रधान समस्त पापनिकरि अपना-परका अहितमें प्रवर्तन करै हैं, करावै हैं, तिनके सार्व ऐसा नाम हू नाहीं है। ऐसैं अष्ट विशेषणसहित सार्थक नामनिकरि शास्ता जो आप्त–ताका असाधारण स्वरूप कह्या। ‘शास्तीति शास्ता’ इस निरुक्तिका ऐसा अर्थ है जो शिष्य जे निकट भव्य तिनकूं हितरूप शास्ति कहिये शिक्षा करै सो शास्ता कहिये। अब कहैं हैं जो शास्ता कहिये आप्त है सो सत्पुरुषनिकूं स्वर्गमुक्तिक प्राप्तकरनेवाली शिक्षा करता आपके कुछ विख्याततता, लाभ तथा पूजादिक फलकूं वांछा नाहीं करै है, ऐसा देखावैं हैं,—

अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ? ॥८॥

अर्थ-शास्ता जो धर्मोपदेशरूप करनेवाला अरहंत आप्त सो अनात्मार्थं कहिये अपना ख्याति लाभ पूजादिक प्रयोजनविना तथा शिष्यनिमें रागभावविना सत्पुरुष जो निकट भव्य तिननै हितरूप शिक्षा करै है जैसैं शिल्पी जो वादित्र बजानेवाला ताका हस्तका स्पर्शमात्रतैं नाना शब्द करता जो मृदंग, सो किंचित् अपेक्षा नाहीं करै है ॥ ८ ॥

भावार्थ—संसारी जन लोकमें जितना कार्य करै हैं तितना अपना अभिमान लोभ जस प्रशंसादिकके अर्थि करै हैं अर भगवान अरिहंत आप्त अपना प्रयोजन-विना इच्छा-विना ही जगतके जीवनिकूं हितरूप शिक्षा करैं हैं जैसे मेघ प्रयोजनविना ही लोकनिका पुण्यउदयका निमित्ततैं पुण्यदेशनिमें गमन करै अर गर्जना करै अर प्रचुर जलकी वरषा करै है। तैसैं भगवान आप्त हू लोकनिके पुण्यके निमित्ततैं पुण्यदेशनिमें विहार करै अर धर्मरूप अमृतकी वरषा करता उपदेश करै है जातैं सत्पुरुषनिकी चेष्टा जो आचरण सो परका उपकारके अर्थि है। तथा जैसैं कल्पवृक्षादिक वृक्ष तथा धान्यादिक तथा आम्रादिक वृक्ष परजीवनिका उपकारके उपकारके अर्थ ही फलैं हैं। पर्वतादिक सुवर्णरत्नादिकनिनै तथा प्रचुर जलनै अनेक वृक्षादिकनिनै इच्छाविना ही जगतका अर्थ धारण करै हैं, तथा समुद्रहू रत्नादिकनिनै तथा गौ दुग्धनै परके अर्थि ही धारण करै हैं, तथा दातार परके उपकार निमित्त धनकूं धारण करै है, तैसैंही सत्पुरुष वचननिकूं परोपकारके अर्थि ही इच्छाविना धारण करै हैं। बहुत कहने करि कहा ? जेते उपकारक पदार्थ हैं तितने इच्छाविना ही लोकनिकै पुण्यके प्रभावतैं प्रगटैं हैं तैसैं ही भगवान आप्त इच्छाविना ही. लोकनिका परमोपकारके निमित्त धर्मरूप हितोपदेश करैं हैं। ऐसैं आप्तका स्वरूप तो चार श्लोकनिमें कह्या। अब एक श्लोकमें सत्यार्थ आगमका लक्षण कहैं हैं,—

आप्तोपज्ञमनुलंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—शास्त्र ताकूं कहिये हैं जो सर्वज्ञ वीतरागका कह्या होय अर किसी वादीप्रतिवादी करि उल्लंघन नाहीं किया जाय, अर दृष्ट जो प्रत्यक्ष अर इष्ट जो अनुमान तिनकरि जामें विरोध नाहीं आवै, अर तत्व कहिये जैसा वस्तुका स्वरूप होय तैसा उपदेश करनेवाला होय, अर सर्वजीवनिका हितरूप होय अर कुमार्ग जो मिथ्यामार्ग ताकूं निराकरण करै, ऐसैं छह विशेषण सहित शास्त्रका स्वरूप वर्णन किया ॥ ९ ॥

इहां ऐसा भाव जानना-जो कालके निमित्तकरि मिथ्यामार्गी बहुत पैदा भये हैं तिननें अपना अभिमान विषय-कषायपुष्ट करने कूं अनेक खोटे शास्त्र रचि, जगतकूं सत्यार्थ धर्मतैं भ्रष्ट किया है, जेते मत संसार में प्रवर्तैं हैं तितनें समस्त शास्त्रनितैंही प्रवर्तैं

हैं शास्त्रविना कोऊ मत है ही नाहीं । ब्राह्मणादिक तो वेद, स्मृति, पुराण तिनमें हिंसाकी प्रधानताकरि अश्वमेध, नरमेधादिक यज्ञ अर जीवनिका शिकार समस्त जलचारी, थलचारीनिकी हिंसाकरनेमें धर्म कहैं हैं। तथा देवतानिके अर पित्र्य व्यंतरादिकनिकूं तृप्तताके अर्थि मांसापिंडका देना हू धर्म बतावैं हैं । अर भवानी भैरवादिक देव भैंसा-वकरा इत्यादिकनिकूं मार चढावैं, अर भक्षण किये ही प्रसन्न होय हैं । तथा देवता मांसाहारी ही हैं। राजनिका धर्म शिकार ही है इत्यादिक शास्त्रनिके वचनतैं ही प्रवर्तैं हैं तथा हरिहर ब्रह्मादिक भगवान हैं, परमेश्वर हैं, ऐसे कह करिकै हरिकूं तो निरन्तर ग्वालनिकी स्त्रीनिमें आसक्त होय वांसुरी बजावना, नाचना तथा गोवर्द्धन अहीरकूं मार स्त्री का हरना, अनेक न्यायअन्याय लीला करना, सो सव शास्त्रनिमें लिखी ही जगत मानै हैं । तथा हर जो शिव, ताके अर्द्धअङ्गमैं नारीका धसना, अर भस्म लगावना, अनेक हत्या तथा सरापनैं (शाप) प्राप्ति होना, त्रिशूलादिक आयुध रखना, फिर लोकका संहार करना, ए समस्त शास्त्रनिमें लिखनेतैं ही जगतके लोग निश्चय करैं हैं । तथा शिवका लिंग पार्वतीकी योनिमें तिष्ठतेकूं निरन्तर जल सींचना, आक-धतूरा चढावना इत्यादि समस्त शास्त्रनिमें लिखनेतैं ही जगतमें अनेक मनुष्य ऐसी प्रवृत्तिकू ही धर्म जानि सेवन करैं हैं । तथा ब्रह्माकूं समस्त सृष्टिका कर्ता अर पितामह कहैं हैं, तिस ब्रह्माकूं अतिकामी होय अपनी पुत्रीसूं विषय करि भ्रष्ट हुवा कहैं हैं, उर्वसी नाम अप्सरामें मोहित होय अपने चार हजार वर्षके फलतैं चार मुख धारण कर उर्वसीकूं अवलोकन करि तपतैं भ्रष्ट भया अर उर्वसीका सरापकूं प्राप्त भया सो समस्त उनके शास्त्रनिमें ही लिखा है। तथा जगतकी रचना करनेवाला अर पालन करनेवाला भगवान नारायण कच्छ, मच्छ, सूर, सिंहादिक अनेक अवतार धारण करि दानवांका संहार करना तथा हनूमानकूं वांदरा, गणेशकूं हस्तीरूप, अर मूसापरि चढ्या अर मोदक (लाडू) के भक्षणमें अतिरागी सो समस्त शास्त्रहीमें लिखै हैं । जीव मारनेमें, तथा जीव मारि देवतानिकूं तृप्ति करनेमें तलाव, कूप वा बावडी खुदवानेमें बडा धर्म होना शास्त्रहीमें लिखा है । तथा श्वेतांबर अनेक कल्पित सूत्र रचे हैं तिनका भ्रष्टाचार समस्त शास्त्रनितैं ही प्रवर्तैं है । तथा कलिकालके भेषधारी कुलदेव्यांकी पूजा, क्षेत्रपालादि व्यंतरांकी आराधना, पद्मावती चक्रेश्वरी इत्यादिक देवीनिकी पूजा तथा अनेक मिथ्या प्ररूपणा तर्पणादिक लिखदिये हैं। तथा अन्य भील, म्लेच्छ, मुसलमानादिक समस्तके शास्त्र हैं । शास्त्रांविना मिथ्या कल्पना कैसैं प्रवर्तैं ? तातैं जगत मैं शास्त्र बहुत हैं ।

शास्त्रनिके बलतैं ही अनेक पाखण्ड, भेष, मिथ्याधर्म प्रवर्तैं हैं तातैं परीक्षा–प्रधानी होय परीक्षा करि शास्त्रकूं ग्रहण करना। पूर्वोक्त छह विशेषणकरि सहित ही आगम है। प्रथम तो सर्वज्ञ वीतरागका कह्या होय तो सर्वज्ञविना इन्द्रियजनित ज्ञानकरि जीव अजीव अतीन्द्रिय अमूर्तीक पदार्थनिकूं नाहीं प्रकट कर सकेगा तथा पाप पुण्यादिक अदृष्ट पदार्थनिकूं तथा परमाणु इत्यादिक सूक्ष्म पदार्थनिकूं कैसैं प्ररूपण करैगा । तथा स्वर्ग नरककी पर्यायनिकूं अर स्वर्ग-नरकमें उपजे सुख-दुःखके कारण अनेक सम्वन्ध-

---

१ — इस विषय का खुलासा प्रस्तावनामें किया गया है ।

निकूं कैसैं जानैगा। तथा मेरु कुलाचलादिकनिका प्ररूपण कैसैं करैगा। तथा जीवादिक द्रव्यनिके अनन्त पर्याय होय गया अर अनन्त होयगा। अर अनन्त वस्तुके अनन्त गुण अर अनन्त पर्यायनिका एक समयमें युगपत् परिणमन तिनको क्रमवर्ती इन्द्रियजनित ज्ञानका धारी कैसैं प्ररूपण करैगा। तातैं सर्वज्ञविना इन्द्रियजनित ज्ञानिकै आगमका कहना यथार्थ नाहीं बनै है। तातैं सत्यार्थ आगमका कहना सर्वज्ञके ही बनैं है, अर रागद्वेषका धारक अपना अभिमान पुष्ट करनेका इच्छुक, अपनी विख्यातता करनेका इच्छुक, तथा विषयाँका लोभी होयगा सो सत्यार्थ नहीं कहैगा। तातैं सर्वज्ञ वीतरागका कह्या हुआ ही आगमकै प्रमाणता है। वहुरि जिस आगममें वादी प्रतिवादी करि दिखाया अनेक दोष आजाय सो आगम प्रमाण नाहीं, जातैं वादी प्रतिवादी जाकूं उल्लंघन नाहीं कर सकै, वाधा नाहीं दे सकै ऐसा अनुल्लंघ्य ही आगम है। वहुरि जिस आगममें प्रत्यक्ष अनुमानकरि बाधा नाहीं आवै सो आगम है। जिसमें प्रत्यक्ष प्रमाणतैं तथा अनुमान प्रमाणतैं बाधा आय जाय सो आगम प्रमाण नाहीं है। बहुरि जिस आगममें आपका अर परका निर्णय नाहीं तथा हेय-उपादेय, कृत्य-अकृत्य, देव-कुदेव, धर्म-अधर्म, हित-अहित, ग्राह्य-अग्राह्य, भक्ष्य-अभक्ष्यका निर्णय करि सत्यार्थ वस्तुका स्वरूप नाहीं, वृथा शब्दोंका आडम्बररूप लोकरञ्जन असत्य कथा, देशकथा, राजकथा, स्त्री-कथा, कामकथा इत्यादिककरि अनेक विकथा संसारमें उरझानेवाला है, अर आत्माका संसारतैं उद्धार करनेका उपायरूप कथन नाहीं कहै सो मिथ्या आगम है। यातैं तत्वभूत जीवके हितका उपदेशरूप जामें कथन होय सो तत्वोपदेशकृत् ही आगम है। वहुरि जो सर्व प्राणीनिका हितरूप उपदेश करनेवाला होय सो ही सार्वविशेषण सहित आगम है। जामें प्राणीनिकी हिंसाप्ररूपण करी तथा मांसभक्षण तथा जलथल आकाशगामी जीवनिके मारनेके उपाय तथा महाआरम्भके तथा मारण उच्चाटन करनेका, परधन हरनेका, संग्राम करनेका, सैन्यके विध्वंस करनेका, नगर ग्राम विध्वंस करनेका, परिग्रह परस्त्रीमें रुचनेका, उपाय वर्णन किया सो आगम सार्व कहिये समस्त प्राणीनिका हितरूप नाहीं। वहुरि जो कुमार्गका निराकरण करि स्वर्ग-मोक्षके मार्गका उपदेश करनेवाला होय सो कापथघट्टन विशेषण सहित आगम है अर जो श्रृंगार वीर रसादिकका वर्णन करि कुमार्गमें प्रवर्तावनेवाला तथा जुआ मांसभक्षणादिक खोटे विसनिरूप मार्गमें तथा संसारमें डबोवनेके कारण जो रागी, द्वेषी, विषयी, कषायी देव तिनकी सेवा तथा पाखण्डी भेषीनिकी उपासना, मिथ्या धर्मरूप कुमार्ग तिनमें प्रवर्तिरूप कथनी जामें होय सो खोटा आगम है। जो विशेष नाहीं समझैं तिनकूं भी इतना समझना चाहिये जो वीतरागका आगम होयगा तामें रागादिक विषय कषायका अभाव अर समस्त जीवनिकी दया ये दोय तो प्रधान होय ही। ऐसैं एक श्लोकमें आगमका लक्षण कह्या।

अब तपस्वी जो सत्यार्थगुरु ताका स्वरूप कहैं हैं,—

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १०॥

अर्थ–जो पांच इन्द्रियनिकी विषयनिकी जो आशा कहिये वांछा ताकरि रहित होय, छह कायके जीवनिका घात करनेवाला आरम्भ कर रहित होय अर अन्तरङ्ग बहिरङ्ग समस्त परिग्रहकरि रहित होय अर ज्ञान ध्यान तपमें आसक्त होय ऐसैं चारि विशेषण सहित जो तपस्वी कहिये गुरु सो प्रशंसा करिये है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो रसना इन्द्रियका लम्पटी होय, नाना रसनिके स्वादकी आशाके वशीभूत होय रह्या होय, तथा कर्ण इन्द्रियका वशीभूत होय, अपना यश–प्रशंसा सुनवाका इच्छुक होय, अभिमानी होय, तथा नेत्रादिककरि रूप महल मन्दिर वन बाग ग्राम आभरण वस्त्रादिक देखनेका इच्छुक तथा कोमल शय्या कोमल उँचा आसन ऊपरि सोवने बैठनेका इच्छुक, सुगन्धादिक ग्रहण करनेका इच्छुक विषयोंका लम्पटी होय सो औरनिकूं विषयनितैं छुडाय, वीतराग मार्गमें नाहीं प्रवर्तावैं, सराग मार्गमें लगाय संसार समुद्रमें डबोय देय है। तातैं विषयनिकी आशाके वश नाहीं होय सो ही गुरु आराधना-करने, वन्दने योग्य है। जातैं विषयनिमें जाके अनुराग होय सो तो आत्मज्ञानरहित बहिरात्मा है गुरु कैसैं होय बहुरि जाकैं त्रसस्थावर जीवनिका घातका आरम्भ होय ताकै पापका भय नाहीं, पापिष्ठकैं गुरुपना कैसैं सम्भवै? बहुरि जो चौदह प्रकार अन्तरङ्गपरिग्रह अर दस प्रकार बहिरङ्गपरिग्रहसहित होय सो गुरु कैसैं होय? परिग्रही तो आप ही संसारमें फंसरह्या है सो अन्यका उद्धारक गुरु कैसैं होय। इहां मिथ्यात्व १, वेद जो स्त्री-पुरुष नपुंसक २, राग ३, द्वेष ४, हास्य ५, रति ६, अरति ७, शोक ८, भय ९, जुगुप्सा १०, क्रोध ११, मान १२, माया १३, लोभ १४, ऐसैं चौदह प्रकार अन्तरङ्ग परिग्रह हैं। इनका स्वरूप कहिये है,— यद्यपि मनुष्यादि पर्याय अर शरीर अर शरीरका नाम, शरीरका रूप तथा शरीरके आधार जाति, कुल, पदस्थ राज्य, धन, कुटुम्ब, जस-अपजस, उँच-नीचापना, निर्धनपना, मान्यता-अमान्यता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादिक वर्ण, स्वामी-सेवक, जती-गृहस्थपना इत्यादिक बहुत प्रकार हैं ते पुद्गलनिकी रचनामय कर्मनिके किये हुए प्रत्यक्ष देखैं हैं, सुनैं हैं, अनुभवैं हैं, जो ये विनाशीक हैं पुद्गल मय हैं, मेरा स्वरूप नाहीं है ऐसैं अच्छीतरह बारम्बार निर्णय करि राख्या है तो हू अनादिकालतैं मिथ्यात्वकर्मका उदयकरि ऐसा संस्कार दृढ होय रह्या है जो इनिका नाशतैं आपका नाश मानै हैं। इनके घटनेंतैं अपना घटना, बढनेंतैं अपना बढजाना, ऊँचापना नीचापना मानि समस्त देहादिकमय होय रहैं हैं। यद्यपि अपने वचनकरि इन समस्तकूं पररूप कहैं हैं हमारा नाहीं, पराधीन विनाशीक है, तथापि अभ्यन्तर इनका संयोग वियोगमें राग-द्वेष-सुख-दुःखरूप अपने आत्माका होना सो मिथ्यात्व नाम परिग्रह है ॥ १ ॥ बहुरि स्त्री, पुरुष, नपुंसकादिकमें कामसेवनेंरूप राग अन्तरङ्ग में होना सो वेद नामका परिग्रह है ॥ २ ॥ परद्रव्य जो देह, धन, स्त्री, पुत्रादिकनिमें रंजायमान होना सो रागपरिग्रह है ॥ ३ ॥ परका ऐश्वर्य, यौवन, धन, सम्पदा, यश, राज्य, विभवादिकतैं वैर रखना सो द्वेषपरिग्रह है ॥ ४ ॥ हास्यके परिणाम सो हास्यपरिग्रह है ॥ ५ ॥ अपना मरण होनेतैं वियोग, वेदनादि होनेतैं डरपना सो भयपरिग्रह है ॥ ६ ॥ आपके राग करनेवाला पदार्थमें आसक्ततातैं लीन होना सो रतिपरिग्रह है ॥ ७ ॥ आपकूं अनिष्ट लागे तिसमें परिणाम नहीं लगना सो अरतिपरिग्रह है ॥ ८ ॥ इष्टका वियोग होतें क्लेशरूप परिणाम होना सो शोकपरिग्रह है ॥ ९ ॥

घृणावान वस्तुको देख श्रवण, स्पर्शन, चिंतवनादिक करि परिणाममें ग्लानि उपजना सो जुगुप्सापरिग्रह है अथवा परका उदय देख सुहावै नहीं सो जुगुप्सापरिग्रह है ।।१०।। रोषके परिणाम सो क्रोधपरिग्रह है ॥११॥ ऊँच जाति, कुल, तप रूप, ज्ञान, विज्ञान, ऐश्वर्य, बल इत्यादिका मद करनेकरि आपकूं ऊँचा और परकूं नीचा समझि, कठोर परिणाम होना सो मानपरिग्रह है ॥ १२ ॥ कपटलिये वक्रपरिणाम सो मायापरिग्रह है ॥ १३ ॥ परद्रव्यनिमें चाहरूप परिणाम सो लोभपरिग्रह है ॥ १४ ॥ ऐसैं संसारका मूल, आत्माका घातक, तीव्रबन्धनके कारण चतुर्दशप्रकार अभ्यन्तरपरिग्रह है । अर क्षेत्र १, वास्तु २, हिरण्य ३, सुवर्ण ४, धन ५, धान्य ६, दासी ७, दास ८, कुप्य ९, भांड १०, ऐसैं दशभेदरूप बाह्यपरिग्रह है। ऐसैं अन्तरङ्ग बहिरङ्ग चौवीस प्रकारके परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ मुनिकैं ही गुरुपना निश्चय करना । संयमधारण करकै भी अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग परिग्रहकरि जिनका मन मलीन है, तिनके गुरुपना नाहीं बनैं है । बहुरि जे निरन्तर दिवस रात्रिविषैं चालते हालते, बैठते, भोजन करतेहू ज्ञानाभ्यासंमें धर्मध्यानमें इच्छानिरोध नाम तपमें आसक्त हैं ते गुरु प्रशंसायोग्य मान्य हैं, पूज्य हैं, वन्द्य हैं । इन गुणनिविना अन्यकूं सम्यग्दृष्टि वन्दनादिक नाहीं करै है । अथवा "ज्ञानध्यानतपोरक्तः" ऐसा हू पाठ है याका अर्थ ऐसा है ज्ञान ध्यान तप ही हैं रत्न जाकै ऐसा गुरु होय है । ऐसा गुरुका स्वरूप कह्या ।

ऐसैं देव गुरु आगमका श्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा सम्यग्दर्शन ताका निःशंकित नाम गुण कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पाऽऽयसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥११॥

अर्थ—इदं कहिये यह आप्त, आगम, गुरुका लक्षण कह्या सो ही तत्वभूत सत्यार्थ स्वरूप है । ईदृशं चैव कहिये और इस प्रकार ही है, अन्यप्रकार नाहीं । ऐसैं अकम्प जो खड्गका जल तिसकी ज्यों सन्मार्गमें संशयरहित जो रुचि कहिये श्रद्धान सो निःशंकित गुण है ॥ ११ ॥

भावार्थ—संसारमें जब अनेक प्रकारके गदा, चक्र, त्रिशूलादिक आयुध अर स्त्रीनिमें अति आसक्त क्रोधी, मानी, मायाचारी, लोभी अपना कर्तव्य दिखावनेंके इच्छुकनिकूं देव कहैं हैं अर हिंसा तथा काम क्रोधादिकनिमें धर्मका प्ररूपक आगमकूं आगम कहैं हैं, अनेक पाखण्डी लोभी कामी अभिमानीनिकूं गुरु कहैं हैं सो कदाचित् नाहीं है । ऐसा जाके दृढ श्रद्धान है मूढनिकी खोटी युक्तिकरि जाका चित्त चलायमान नाहीं होय तथा खोटे देवतानिके विकार करनेकरि मन्त्रतन्त्रादिकनिकरि परिणाम विकारी नाहीं होय हैं । जैसे खड्गका जल पवनकरि चलायमान नाहीं होय तैसैं परिणाम सत्यार्थ देव, गुरु, धर्मके स्वरूपतैं मिथ्यादृष्टीनिके वचनरूप पवनकरि सँशयकूं नाहीं प्राप्त होंय, तिसके निःशंकितगुण होय है । इहां और हू विशेष कहिये हैं,—

जो आत्मतत्त्वका स्वरूप निर्दोष आगममें कह्या ताकूं स्वानुभवकरि आपकूं आप जाण्या अर पर-पुद्गलिनके सम्बन्धकूं पररूप जाण्या सो सम्यग्दृष्टि सप्तभयकरिरहित होय, निःशंकितगुणकूं प्राप्त होय है। सो सप्तभयके नाम कहैं हैं—इस लोकका भय १, परलोकका भय २, मरणका भय ३, वेदनाभय ४, अनरक्षाका भय ५, अगुप्ति भय ६, अकस्मात् भय ७,। तिनमें अपना परिग्रह कुटुम्बादिक तथा आजीविकादिक बिगडि जानेंका भय सो इसलोकका भय है सो समस्त संसारी जीवनिके है। बहुरि जा परलोकमें कौन गति क्षेत्रकूं प्राप्त हूंगा ऐसा परलोकका भय है। बहुरि मरण होनेका बडा भय जो मेरा नाश होयगा, नाहीं जानिये कैसा दुःख होयगा, मेरा अभाव होयगा, ऐसा मरणभय है। बहुरि रोगादिक कष्ट आवनेका भय सो वेदनाभय है। बहुरि अपना कोऊ रक्षक नाहीं ऐसा जानि भय करना सो अनरक्षाभय जानना। बहुरि अपनी वस्तुका चोरनेका भय सो अगुप्ति भय है। बहुरि अकस्मात् अचानक दुःख उपजनेका भय सो अकस्मात् भय है। अपना अर परका स्वरूपकूं सम्यक् जाननेवाला सम्यग्दृष्टिके ये सप्तभय नाहीं हौंय हैं। इस देहमें पगके नखतैं लगाय मस्तक पर्यंत जो ज्ञान है चैतन्य है, सो हमारा धन है, इस ज्ञानभावतैं अन्य एक परमाणूं मात्र हू हमारा नाहीं है। देह अर देहके सम्बन्धी जे स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, राज्य विभवादिक हैं ते मोतैं भिन्न परद्रव्य हैं संयोगतैं उपजैं हैं हमारा इनका कहा संबंध ? संसारमें ऐसे सम्बन्ध अनन्तानन्त हौंय वियोग भये हैं। जिनका संयोग भया हैं तिनका वियोग निश्चयतैं होय ही गा। जो उपजा है सो विनसैगा। मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा उपज्या नाहीं, विनसूंगा नाहीं, ऐसा जाके दृढ निश्चय है तिसकै देह छूटनेंका अर दस प्रकार परिग्रहका वियोग होनेका भय नाहीं, तदि इस लोकके भयरहित सम्यग्दृष्टि निःशंक हैं। बहुरि सम्यग्दृष्टिकै परलोकका भय हू नाहीं है। जिसमें समस्त वस्तु अवलोकन करिये सो लोक है। जातैं हमारा लोक तो हमारा ज्ञानदर्शन है जिसमें समस्त प्रतिबिंबित होय रहे हैं ।

भावार्थ—जो समस्त वस्तु झलकैं हैं सो हमारा ज्ञानस्वभाव मैं अवलोकन करूं हूं, हमारे ज्ञानके बाह्य किसी वस्तुकूं मैं नाहीं देखूं हूं, नाहीं जाणूं हूँ, जो कदाचित् हमारा ज्ञान है सो निद्राकरि मुद्रित होय जाय तथा रोगादिककरि मूर्छाकरि मुद्रित होय जाय तो समस्त लोक विद्यमान है तो हू अभावरूपसा ही भया यातैं हमारा लोक तो हमारा ज्ञान ही है। हमारा ज्ञान बाह्य किसी वस्तुकूं देखनें जाननेमें आवै नाहीं है अर हमारे ज्ञानतैं बाह्य जो लोक है, जिसमें नानाप्रकार नरकस्वर्ग सर्वज्ञके प्रत्यक्ष है सो सब मेरा स्वभावतैं अन्य है। पुण्यका उदय है सो देवादि शुभगतिका देनेवाला है। अर पापका उदय है सो नरकादिक अशुभगतिका देनेवाला है, यातैं पापपुण्य दोऊ ही विनाशीक हैं अर स्वर्ग नरकादिक पाप-पुण्यका फल हू विनाशीक है। अर मैं आत्मा ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यका अविनाशपणानैं धारण करता अखण्ड हूँ, अविनाशी हूँ, मोक्षका नायक हूँ, मेरा लोक मेरे मांही है। तिसहीमें समस्त वस्तुकूं अवलोकन करता वसूं हूँ। ऐसैं परलोकका भयकूं नाहीं प्राप्त होता सम्यग्दृष्टी निःशंक है। बहुरि स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कर्ण ये पंच इंद्रिय अर मन, वचन, कायका बल अर आयु अर श्वासोच्छ्वास ये कर्मनिकरि रचे बाह्यप्राण हैं, पुद्गलमय है, इन प्राण नाशकूं जगतमें मरण कहैं है अर आत्माका ज्ञान-दर्शन-सुख सत्तारूप भावप्राण हैं तिनका नाश कोऊ कालमें हू नाहीं

है । यातैं जो उपजैगा सो मरैगा सो पुद्गल परमाणु संचयकूं प्राप्त होय इंद्रियादिक प्राणस्वरूपकरि उपजैं हैं, ये ही विनशैं हैं, ये मेरा स्वभावरूप ज्ञान-दर्शन-सुख सत्ता कदाचित् तीनकालमें हू विनाशीक नाहीं हैं। इन्द्रियादिक प्राण पर्यायकी लार उपजैं हैं, विनशैं हैं, मैं तो चैतन्य अविनाशी हूँ ऐसा निश्चयका धारक सम्यग्दृष्टिके मरणके भयकी शंका नाहीं है । वहुरि वेदना भयकूं जीत निःशंक है । वेदना नाम जाननेंका है सो जाननेवाला मैं जीव हूं, सो अपना एक अचलज्ञानका ही अनुभव करूं हूं, सो तो वेदना अविनाशीक है । सो ज्ञानका अनुभव वेदना तो शरीरविषैं नाहीं है अर वेदनीयकर्मजनित सुखदुःखरूप वेदना है, सो मोहकी महिमातैं आपमैं ही दीखै है परन्तु मेरा रूप नाहीं है, शरीरमें हैं । मैं इसतैं भिन्न ज्ञाता हूं, ऐसैं ज्ञानवेदनातैं देहकी वेदनाकूं भिन्न जानता सम्यग्दृष्टि निःशंक है । वहुरि अनरक्षाभय हू सम्यग्दृष्टिकैं नाहीं होय है जातैं जगतविषै जो सत्तारूप वस्तु है ताका त्रिकालहूमें नाश नाहीं है ऐसा हमारे दृढ निश्चय है तातैं मेरा ज्ञानस्वरूप आत्मा हू स्वयं किसीकी सहाय विना ही सत् है । यातैं याका कोऊ रक्षा करनेवाला हू नाहीं, अर कोऊ विनाश करनेवाला भी नाहीं है जाका कोऊ विनाश करनेवाला होय, ताका रक्षक हू कहूँ देख्या चाहिये, तातैं सम्यग्दृष्टि अविनाशी स्वरूपकूं अनुभव करता, अनरक्षाभयरहित निःशंक है। वहुरि अगुप्तिभय जो कपाटादिककी रक्षाविना हमारा धन नष्ट होय जासी, ऐसा चोरको भय सो हू नाहीं है जो वस्तुका स्वरूप निजरूप अपने स्वरूपकैं मांही ही है अपना रूप आपतैं वाहर नाहीं है यातैं चैतन्यस्वरूप जो मैं आत्मा ताका चैतन्यरूप हमारे मांही ही है यामें परका प्रवेश नाहीं, यो अनन्तज्ञानदर्शन हमारा रूप सो ही हमारा अप्रमाण अविनाशी धन हैं, यामें चोरका प्रवेश नाहीं, चोर हर सकै नाहीं तातैं सम्यग्दृष्टि अगुप्तिभय निःशंक है । वहुरि सम्यग्दृष्टिके अकस्मात्भय हू नाहीं है, जातैं मेरा आत्मा तो सदाकाल शुद्ध है, दृष्टा है, अचल है, अनादि है अनन्त है, स्वभावतैं सिद्ध है, अलक्ष है, चैतन्य प्रकाशरूप सुखका स्थानक है, इसमें अचानक कछू हू होना नाहीं हैं, ऐसैं दृढभावयुक्त सम्यग्दृष्टि निःशंक है । जाकै सम्यग्दर्शन है, ताके परिणाममें सप्त भय नाहीं हैं सत्यार्थ अपना स्वरूप जानैंविना सप्तभयरहित अपना आत्मा नाहीं होय है । वहुरि सम्यग्दृष्टि अहिंसाकूं ही धर्म निश्चयरूप जानैं है, जाके ऐसी शङ्का नाहीं उपजै है, जो यज्ञ-होमादिक जीवघातके आरम्भ इनमें हू धर्म कछू तो होयगा ऐसी शङ्काका अभाव सो निःशङ्कित अङ्ग है ।

अव एक श्लोक करि दूजे निःकांक्षित गुणकूं कहै हैः—

कर्मपरवशे सांते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ।। १२ ।।

अर्थ—जो इन्द्रियजनित सुखमें सुखपनाका आस्थारहित श्रद्धानभाव सो अनाकांक्षणा नामा सम्यक्त्वका गुण भगवान कह्या है । कैसाक है इन्द्रियजनित सुख, कर्मनिके परवश है, स्वाधीन नाहीं है, पुण्यकर्मके उदयके अधीन है । पुण्यकर्मका उदयके सहाय-

विना कोट्यां उपाय महान पुरुषार्थ करते हू सुखकी प्राप्ति नाही होय है, इष्टका लाभ नाहीं होय है, बहुरि अनिष्टको प्राप्त होय है । अर कदाचित् पुण्यके उदय करि सुखकूं प्राप्त भी होय तो सो सुख अन्तकरि सहित है, पराधीन कितने काल भोगैगा ? जातैं इन्द्रियजनित सुख है सो अपने इष्ट विषयके अधीन है अर इष्टको समागम है सो विनाशीक है । इन्द्रधनुषवत् विजुरीका चमत्कारवत् क्षणभंगुरि है तथा पराधीन है, शरीरकी नीरोगिताके अधीन तथा धनके अधीन, स्त्रीके अधीन, पुत्रके अधीन, आयुके अधीन, जीविकाके अधीन तथा क्षेत्रके अधीन, कालके अधीन, इन्द्रियनके अधीन, इन्द्रियनिके विषयके अधीन, इत्यादिक हजारां पराधीनताकरि सहित अर पतनके सम्मुख केतेक काल भोगनेमें आवै है तातैं इन्द्रियजनित सुख है सो अवश्य अन्तकरि सहित ही है । अर अन्तकरि सहित है तो हू अखण्ड धारा प्रवाहरूप नाहीं है बीचि-बीचिमें अनेक दुःखनिके उदय सहित है । कदे तो रोग आय जाय है, कदे स्त्री-पुत्र-मित्रको वियोग होना, कदे अपमानको होना, कदे धनकी हानि होना, कदे अनिष्टको संयोग होना, ऐसैं अन्तरित अनेक दुःखनिसहित है । बहुरि पापका बीज है, इन्द्रियजनित सुखनिमें लीन होते अपना स्वरूप भूलै ही, अर महाघोर आरम्भमें तो प्रवर्तैं ही, अन्यायके विषयसेवन करै ही, यातैं पापबन्ध होय ही है, तातैं इन्द्रियजनित सुख नरक-तिर्यंचादिक गतिमें परिभ्रमण करावनेवाला पापबन्धका बीज है । ऐसा पराधीन अन्तसहित दुःखनिकरि व्याप्त जे इन्द्रियजनित सुख हैं ते सम्यग्दृष्टिकूं सुख नाहीं दीखैं हैं तदि सुखमें आस्थारूप श्रद्धान कैसैं होय ? जब श्रद्धान ही नाहीं तदि वांछा कैसैं करै ? भाव ऐसा जानना जो सम्यग्दृष्टि है, ताकै आत्माका अनुभव होय ही अर आत्माका अनुभव भया, तब आत्मा स्वभाव जो अतींद्रिय अनन्तज्ञान अर निराकुलता लक्षण अविनाशीक सुख तिसका अनुभव होय है । जातैं संसारीनिकै जो इन्द्रियनके अधीन सुख है सो तो सुखाभास है, सुख नाहिं है, वेदनाका इलाज है, जाकै क्षुधाकी तीव्र वेदना उपजैगी सो भोजन करि सुख मानैगा । तृषा उपजैगी, सो शीतल जल पीया चाहैगा । शीतकी वेदना व्यापैगी, सो रुईका वस्त्र तथा रोमादिक वस्त्र ओढ्या चाहैगा । गरमीकी वेदना उपजैगी, सो शीतल पवन चाहैगा, जातैं वेदनाविना इलाज कौन चाहै ? नेत्ररोगविना खपरयो (औषधि) नेत्रनिमें कौन क्षेपै ? कर्णरोगविना बकराका मूत्र तथा तैलादिक कर्णमें कौन क्षेपै ? तथा शीतज्वरकी वेदनाविना अग्निका ताप तथा सूर्यका आताप आदरतैं कौन सेवन करै ? तथा वातरोगविना दुर्गंध तैलादिकका मर्दनादिक कौन आदरै ? तातैं इन संसारीक पांचौं इन्द्रियनके तीव्र चाहरूप आताप उपजै है तदि विषयनिके भोगनेकी इच्छा उपजै है । तातैं विषयभोगना तो उपजी हुई वेदनाकूं थोरे काल शांति करै है फिर अधिक-अधिक वेदना उपजावै है यातैं इंद्रियनके विषयनके भोगनेतैं उपज्या सुख है सो तो दुःखही है । बाह्यशरीर इन्द्रियादिककूं ही आत्मा जाननेंवाला बहिरात्मा है सो विषयनिकी वेदनापूर्वक इलाजकूं सुख मानैं है । सो मानना मोहकर्मजनित भ्रम है । सुखतो वेदना ही नाहीं उपजै ऐसा निराकुलता लक्षणरूप है । विषयनिके अधीन सुख मानना मिथ्या श्रद्धान है, यातैं सम्यग्दृष्टिकूं अहमिंद्रलोकका हू सुख पराधीन आकुलतारूप विनाशीक केवल दुःखरूप ही दीखै है तातैं सम्यग्दृष्टिकै इंद्रियजनित सुखमें वांछा कदाचित् नाहीं होय है । इस जन्ममें तो धन, सम्पदा, विभवादिक नाहीं चाहै है अर परलोकमें इंद्रपना,

चक्रीपना इत्यादिक कदाचित् हू नाहीं चाहै है । ए इन्द्रियनिके विषय तो अल्पकाल हैं अर आगैं इनका फल असंख्यात-काल नरकका दुःख तथा अनन्तकाल, असंख्यात-काल तिर्यंचादिक गतिनिमें तथा महा दरिद्री, महा रोगी नीच कुलके धारक कुमानुषनिमें अनेक जन्म धारणकरि दुःख भोगवै है । इस जगतमें आशा अर शङ्का दोऊ मोहके उदयकरि जीवके निरन्तर वर्तैं हैं । सो आशा किये कुछ प्राप्ति होय नाहीं है । समस्त जीव अपने नित्य ही धनकी प्राप्ति, नीरोगता, कुटुम्बकी वृद्धि इन्द्रियनिका बल अपनी उच्चता चाहैं हैं परन्तु चाह किये कुछ होय नाहीं है, समस्त जीव चाहकरि निरन्तर पापका बन्ध अर अन्तरायका तीव्र बन्ध करैं हैं । अर केतेक भोगाभिलाषी होय दान, तप, व्रत, शील, संयम धारण करैं हैं परन्तु वांछा करि पुण्यका घात होय है । पुण्यबन्ध तो निर्वाञ्छकके होय है । तथा शुभ-अशुभ कर्मके दिये विषयनिमें सन्तोषी होय, निराकुल होय विषयनिमें वांछा नाहीं करै, तिसके पुण्यका बन्ध होय है । बहुरि समस्त जीव नित उठ यह चाहैं हैं मेरे-वियोग, मरण, हानि, अपमान, धनका नाश, रोग वेदना, मत होहु । निरन्तर इनकी शङ्का करैं हैं बहुत भय करैं हैं तो हू वियोग होय ही, मरण होय ही तथा धनहानि, बलहानि, अपमान, रोग, वेदना पूर्वकर्मबन्ध किये तिनके अनुकूल होय ही । तिनकूं टालनेकूं इन्द्र, जिनेन्द्र, मन्त्र, तन्त्रादिक कोऊ समर्थ नाहीं, क्योंकि मरण होय है सो आयुकर्मका नाशतैं होय है । अलाभादिक अन्तरायकर्मके उदयतैं होय है, रोग वेदनादिक असाता कर्मके उदयतैं होय है । अर कर्मकूं हरनेमें अर देनेमें अर पलटनेमें कोऊ देव, दानव, इन्द्र, जिनेन्द्रादिक समर्थ हैं नाहीं, अपने भावनिकरि बन्ध किये कर्मनितैं अपने किये सन्तोष, क्षमा, तपश्चरणादिक भावनिकरि छुडावनेंकूं आप ही समर्थ है अन्य नाहीं । ऐसैं दृढनिश्चयका धारक निःशंक निर्वाञ्छक सम्यग्दृष्टि ही होय है ।

इहां कोऊ प्रश्न करै है,—जो सकल परिग्रहके त्यागी जे मुनीश्वर साधु, तिनकै तथा त्यागी गृहस्थनिकै तो शंकारहितपना तथा वांछाका अभावपना होय सकै परन्तु व्रतरहित गृहस्थीनिकै निःशंकित, निःकांक्षित कैसैं सम्भवै । अव्रतसम्यग्दृष्टि गृहस्थीके भोगनिकी इच्छा देखिये है । वणिज व्यवहारमें, सेवा करनेमें, लाभ चाहै ही है अपने कुटुम्बकी वृद्धि, धनकी वृद्धि वांछै ही है तथा रोगकी शंका, कुटुम्बके वियोगकी शंका, जीविकाके बिगडि जानेकी, धनके नाश होनेकी शंका निरन्तर वर्तै है । तदि निःशंकपना निर्वाञ्छकपना कैसे होय ? अर निःकांक्षितभावविना सम्यक्त्व कैसें होय, तातैं अव्रती गृहस्थीकै सम्यक्त्व होना कैसें सम्भवै ?

तिसका उत्तर ऐसा जानना —

जो सम्यक्त्व होय है सो मिथ्यात्व अर अनन्तानुबन्धीं कषायके अभावतैं होय है यातैं अव्रतसम्यग्दृष्टि गृहस्थकै मिथ्यात्वका अभाव भया अर अनन्तानुबन्धी कषायका हू अभाव भया, तातैं मिथ्यात्वके अभावतैं तो सत्यार्थ आत्मतत्वका अर परतत्वका श्रद्धान प्रगट होय है । अर अनन्तानुबन्धी कषायके अभावतैं विपरीत रागभावका अभाव भया, तदि ज्ञान श्रद्धानकी

विपरीतताका अभावतैं इसलोक, परलोक, मरणभय आदिक सप्त भय अव्रतसम्यग्दृष्टिकै नाहीं हैं, याहीतैं अपने आत्माकूं अविनाशी टंकोत्कीर्ण ज्ञान-दर्शन स्वभाव श्रद्धान करै है। अर विपरीत जो पर वस्तुमें वांछा, ताका अभावतैं समस्त इन्द्रियनिके विषयनिमें वांछारहित है। स्वर्गलोकमें उपजे इन्द्र अहमिन्द्रनिके हू विषयभोगनिकूं विष समान दाह-दुःखके उपजावनेवाले जानि कदाचित् स्वप्नमें हू वांछा नाहीं करै है। अपना आत्माधीन निराकुलतालक्षणरूप अविनाशी ज्ञानानन्दहीकूं सुख मानैं है अर अपने देहकूं धन सम्पदादिकनिकूं कर्मजनित पराधीन विनाशीक दुःखरूप जानि ये हमारा है, ऐसा विपरीत झूठा संकल्प हू नाहीं करै। यातैं अनन्तानुवन्धी कषायके उदयजनित विपरीत झूठा भय, शंका परवस्तुमें वांछा अव्रतसम्यग्दृष्टिके कदाचित् नाहीं है। परन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय, प्रत्याख्यानावरण कषाय, संज्वलनकषाय, तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद इन इकवीस कषायके तीव्र उदयतैं उपज्या रागभावका प्रभावकरि इन्द्रियनिका आतापका मार्‍या त्यागतैं परिणाम कांपै है। यद्यपि विषयनिकूं दुःखरूप जानैं है तथापि वर्तमानकालकी वेदना सहनेकूं समर्थ नाहीं। जैसैं रोगी कडवी औषधिकूं कदाचित् पीवना भला नाहीं जानैं है तथापि वेदनाका मार्‍या कडवी औषधिकूं वडा आदरतैं पीवै है परन्तु अन्तरङ्गमें औषधि पीवना महा बुरा जानै, जो ऐसा दिन कव आवैगा जिस दिन औषधिका नाम भी ग्रहण नाहीं करूंगा, तैसैं अव्रतसम्यग्दृष्टि हू भोगनिकूं भला कदाचित् नाहीं जानैं है परन्तु तिनविना निर्वाह होता दीखै नाहीं, परिणामनिकी दृढता दीखै नाहीं। कषायनिका प्रवल धक्का लगि रहा है इन्द्रियनिका आताप सहा जाय नाहीं, यातैं वेदनाका मार्‍या वाँछै है। संहनन कच्चा, कोई सहाई दीखै नाहीं, कषायनिका उदय करि शक्ति नष्ट हो रही है, परवश पड्या है तथा जैसैं बन्दीगृहमें पड्या पुरुष बन्दीगृहतैं अति विरक्त है तथापि पराधीन पड्या महादुःखका देनेवाला बन्दीगृहकूं ही लीपै है, धोवै, भूवारै है तैसैं सम्यग्दृष्टि हू बन्दीगृह समान देहकूं जानता, क्षुधा-तृषादिक वेदना सहनेकूं असमर्थ हुआ, देहकूं अपना नाहीं जानैं है। वर्तमानकालकी वेदनाका ही याकै भय है। अर वेदना मेटनें मात्रही अव्रतसम्यग्दृष्टिकै वांछा है। कर्मके उदयके जालमें फंसा है। निकल्या चाहै है। तथापि राग, द्वेष, अभिमान, अप्रत्याख्यानका सम्बन्धही ऐसा है जो त्याग व्रतादिका चाहै है। तो हू नाहीं होनें दे है। उदयकी दशा वडी बलवान है संसारी, जीव अनादितैं कर्मके उदयके जालमेंतैं निकल नाहीं सकै है। देहका संयोग बनि रह्या तितने देहका निर्वाहके आर्थि जीविका भोजन वस्त्रकूं वांछैही है। तथा अप्रत्याख्यान कषायका उदयकरि लोकमें अपनी नीची प्रवृत्तिका अभावरूप उच्चप्रवृत्ति चाहै है। धन, सम्पदा जीविका विगड जानेंका भय करै ही है, तिरस्कार होनेंका भय करै ही है। इन्द्रियनिका संताप सहनेंकी असमर्थपनातैं विषयनिकूं वांछै है जातैं कषाय घटी नाहीं, राग घट्या नाहीं, तातैं आगानैं बहुत दुःख उपजतो दीखै, ताकूं टाल्या चाहै ही है, तथापि राज्य-भोगसंपदानिकूं सुखकारी जानि वांछा नाहीं करै है। ऐसै निःकांक्षित अङ्गका लक्षण कह्या।

अब निर्विचिकित्सा नामा तीसरा अङ्गका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते ।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सता ॥ १३ ॥

अर्थ—जो मनुष्यपर्यायका काय है सो स्वभावहीतैं अशुचि है यामें कोऊ उत्तम मनुष्यके रत्नत्रय प्रकट होजाय तो अशुचि भी काय पवित्र है । यातैं व्रतीनिका देह रोगादिकतैं मलिनहू देख इसमें जुगुप्सा जो ग्लानि ताका अभाव अर रत्नत्रयमें प्रीति सो निर्विचिकित्सित नामा अङ्ग है ॥ १३ ॥

भावार्थ—यो देह तो सप्तधातुमय तथा मलमूत्रादिकमय है । स्वभावहीतैं अशुचि है । यो देह तो रत्नत्रयस्वरूप प्रकट होनेतैं पवित्र है, यातैं रोगसहित तथा वृद्धता तथा तपश्चरणकरि क्षीणता मलीनता देख ग्लानि जाकै नाहीं होय, अर गुणनिमें प्रीति होय ताकैं निर्विचिकित्सा नाम अङ्ग है । यहां ऐसा विशेष जानना । जो सम्यग्दृष्टि है सो वस्तुका सत्यार्थ स्वरूप जानैं हैं । यातैं पुद्गलके नानास्वभाव जानि मलमूत्र, रुधिर, मांस, राधसहित तथा दारिद्र रोगादिक सहित मनुष्य, तिर्यंचनिका शरीरादिकी मलीनता, दुर्गन्धतादिक देखि करि तथा श्रवण करि ग्लानि नाहीं करै है । जो कर्मनिके उदय करि अनेक क्षुधा, तृषा, रोग, दारिद्रादिककारि दुःखित होना तथा पराधीन वन्दीगृहादिकमें पडना, नीच कुलादिकमें उत्पन्न होना तथा नीच कर्मकरि मलीन भोजन करना, महामलीन वस्त्र धारना, खोटारूप अङ्ग उपांगादिकनिका पावना होय है । सम्यग्दृष्टि यामें ग्लानि करि अपने मनकूं नाहीं विगाडै है । तथा कषायांके अधीन होय निंद्य आचरण करते देख अपने परिणाम नाहीं विगाडै है ताकैं निर्विचिकित्सा अंग होय है । तथा मलीन क्षेत्र, मलीन ग्राम तथा गृहादिकनिमें मलीनता, दरिद्रता देख ग्लानि नाहीं करै तथा अन्धकार, वर्षा, ग्रीष्म, शीत वेदना ताकरि सहित कालकूं देख ग्लानि नाहीं करै बहुरि आपके दरिद्रता तथा रोग आवता तथा वियोग होता तथा अशुभ कर्मके उदयकूं आवता परिणामकूं मलीन नाहीं करै । जो मैं कर्म बन्ध किया ताके फलकूं मैं ही भोगूंगा, अशुभकर्मका फल तो ऐसा ही होय है, ऐसैं जानि अपना परिणामकूं मलीन नाहीं करै । तिस पुरुषकै निर्विचिकित्सा अंग होय है । जिसके निर्विचिकित्सा अंग है तिसहीके दया है, तिसहीके वैयावृत्य होय, तिसहीके वात्सल्य स्थितिकरणादिक गुण प्रकट होय हैं । ऐसैं सम्यक्त्वका निर्विचिकित्सा नामा अंग कह्या ।

अब अमूढदृष्टिनामा सम्यक्त्वका चौथा अंग कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसंमतिः ।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—नरक तिर्यंच कुमानुषादि गतिनिका घोर दुःखनिका मार्ग ऐसा जो मिथ्यामार्ग तिसविषैं अर कुमार्गी जो मिथ्या-

मार्गमें तिष्ठनेवाले पुरुषनिविषैं जाकै मनकरि प्रशंसा नाहीं, वचनकरि स्तवन नाहीं तथा कायकरि प्रशंसा जो अंगुलिनिके नखादिकनिका मिलाप नाहीं, सराहनां नाहीं सो अमूढदृष्टि है ॥ १४ ॥

इहां संसारी जीव मिथ्यात्वके प्रभावतैं रागी, द्वेषी देवनिका पूजन प्रभावना देखि प्रशंसा करैं हैं, देवीनिकै जीवनिका विराधना की प्रशंसा करैं हैं तथा दशप्रकारके कुदानकूं भला जानैं हैं तथा यज्ञ होमादिककूं तथा खोटे मन्त्र, तन्त्र, मारण, उच्चाटनादिक कर्मनिकी प्रशंसा करैं हैं तथा कुआ, बावडी, तालाब खुदावनेकी प्रशंसा करैं हैं तथा कन्दमूल, शाक, पत्रादिक भक्षण करनेवालेनिकूं उच्च जानि प्रशंसा करैं हैं तथा पंचाग्निकरि तपनेवाले, बाघाम्बर (व्याघ्रचर्म) ओढनेवाले, भस्म लगानेवाले, ऊर्ध्वबाहु रहनेवालेनिकूं महान उच्च जानैं हैं तथा गेरुकरि रंगे वस्त्र तथा रक्त वस्त्र तथा श्वेत वस्त्रादिकनिकूं धारण करते, कुलिंगीनके मार्गनिकी प्रशंसा करैं हैं तथा खोटे तीर्थनिकी अर खोटे रागी द्वेषी मोही वक्रपरिणामी शस्त्रधारी देवनिकूं पूज्य जानैं हैं तथा जोगिनी, यक्षणी, क्षेत्रपालादिकनिकूं धनके दातार मानैं हैं तथा रोगादिक मेटनेवाले मानैं हैं, यक्ष, क्षेत्रपाल, पद्मावती, चक्रेश्वरी इत्यादिकनिकूं जिनशासनके रक्षक मानि पूजैं है तथा देवतानिके कवलाहार मानि तेल, लापसी, पूवा, बडा, अतर पुष्पमाला इत्यादिककरि देवतानिकूं राजी करना मानैं हैं तथा देवतानिकूं रिसवत देनाकरि विचारैं हैं जो मेरा अमुक कार्य सिद्ध होजाय तो तेरे छत्र चढाऊँ, तेरे मन्दिर बनवाऊँ, तेरे रुपया चढाऊँ, तथा जीव मारि चढाऊँ, सवामणका चूरमा करि चढाऊँ तथा बालकनिके जीवनिके अर्थि चोटी, जडूला उतराऊँ इत्यादिक अनेक बोली बोलना सो समस्त तीव्रमिथ्यात्वका उदय का प्रभाव है। जहां जीवनिकी हिंसा तहां महा घोर पाप है जातैं देवतानिके निमित्त, गुरुनिके निमित्त हिंसा संसार-समुद्रमें डबोवनेवाली है। कोऊ देवादिकनिके भयतैं तथा लोभतैं तथा लज्जातैं हिंसाके आरम्भमें कदाचित् मत प्रवर्तो । दयावानकी तो देव रक्षा ही करै है जो किसीका अपराध नाहीं करै, ताकी विराधना देव हू नाहीं कर सकैं हैं । रागी, द्वेषी, शस्त्रधारी देव हैं ते तो आप ही दुःखी हैं, भयभीत हैं, असमर्थ हैं । समर्थ होंय अर भयरहित होंय सो शस्त्र कैसैं धारण करैं ? अर क्षुधावान होंय सो ही भोजनादिक करि पूजा चाहै, तातैं खोटे मार्ग जो संसारमें पतनके कारण ऐसे मिथ्यादृष्टीनिके त्याग, व्रत, तप, उपवास, भक्ति, दानादिक अर इनके धारण करनेवालेनिकी मन-वचन-कायकरि प्रशंसा नाहीं करै सो अमूढदृष्टिनामा सम्यक्त्वका अंग है । जातैं जाकै देव-कुदेवका तथा धर्म-कुधर्मका तथा गुरु-कुगुरुका तथा पाप-पुण्यका तथा भक्ष्य-अभक्ष्यका तथा त्याज्य-अत्याज्यका आराध्य-अनाराध्यका तथा कार्य-अकार्यका तथा शास्त्र-कुशास्त्रका, दान-कुदानका, पात्र-अपात्रका तथा देनेयोग्य-नाहीं देनेयोग्यका तथा युक्ति-कुयुक्तिका तथा कहने योग्य-नाहीं कहनेयोग्यका, ग्रहण करने योग्य-नाहीं ग्रहण करनेयोग्यका अनेकान्तरूप सर्वज्ञ-वीतरागका परमागमतैं आछीतरह जानि निर्णय करि मूढता रहित होय, पक्षपात छोड करकैं व्यवहार परमार्थमें विरोधरहित होय, तैसैं श्रद्धान करना सो अमूढदृष्टिनामा चौथा अंग है ।

अब उपगूहननामा सम्यक्त्वका पांचमा अङ्ग प्ररूपण करनेकूं सूत्र करैं हैं,—

स्वयंशुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम् ।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥१५॥

अर्थ--यो जिनेन्द्रभगवानको उपदेश्यो हुवो रत्नत्रयरूप मार्ग है सो स्वयमेव शुद्ध है, निर्दोष है, इस रत्नत्रयमार्गकै कोऊ अज्ञानीजनका आश्रय तथा कोऊ अशक्त जनकरि निंद्यता प्रगट भई होय, ताहि जो दूर करें, शुद्ध निर्दोष करैं, तानै उपगूहन कहिये हैं ॥१५॥

इहां ऐसा जानना जो यो जिनेन्द्र भगवानका उपदेश्या हुवा दशलक्षणरूपधर्म तथा रत्नत्रयधर्म है, सो अनादिनिधन है, जगतके जीवनिका उपकार करनेवाला है। समस्तप्रकार निर्दोप है, कोऊ का हू यातैं अकल्याण नाहीं होय है अर कोऊकरि बाधा नाहीं दी जाय है ऐसा धर्मविषैं कोऊ अज्ञानीके चूकनिके निमित्ततैं तथा कोऊ शक्तिहीनके निमित्ततैं जो धर्मकी निन्दा होती होय ताकूं दूर करै, आच्छादन करै, सो उपगूहननामा अङ्ग है।

भावार्थ—अन्य मिथ्यादृष्टि लोक सुनैंगे तो धर्मकी निन्दा करैंगे तथा एक अज्ञानीकी चूक सुनि, समस्त धर्मात्मानिकूं दूषण लगावैंगे कहैंगे-इस जिनधर्ममें तो जेते ये ज्ञानी, तपस्वी, त्यागी व्रती हैं ते पाखण्डी हैं, गैरमार्गी हैं। एकका दोष देखि समस्त धर्म अर समस्त धर्मात्मा दूषित होय जायेंगे, तातैं धर्मात्मापुरुष होय सो धर्मात्मा में कोऊ दोप हू लगि जाय तो धर्मसूं प्रीति करि, धर्ममें परके निमित्ततैं आगया दोषकूं ढांके हैं। जैसैं माताकी पुत्रमें ऐसी प्रीति है जो पुत्र कदाचित् अन्याय खोटे हू करै तो ताके खोटकूं आच्छादन करै ही, तैसैं धर्मात्मापुरुषकी साधर्मीतैं तथा धर्मतैं ऐसी प्रीति है, जो कर्मके प्रबलउदयकरि कोऊ साधर्मीके अज्ञानतातैं तथा अशक्ततातैं व्रतमें, संयममें, शीलमें दोष आजाय, बिगडि जाय, तो आपका सामर्थ्यप्रमाण तो आच्छादन ही करै। इहां विशेष ऐसा और हू जानना जो सम्यग्दृष्टिका स्वभाव ही ऐसा है जो कोऊ ही जीवका दोष प्रगट नाहीं करै अर अपना उच्चकर्तव्य प्रकाश नाहीं करै, अपनी प्रशंसा परकी निन्दा नाहीं करै है। सम्यग्दृष्टिकै परजीवनिके दोप हू देखि, ऐसा विचार उपजै है, जो इस संसारमें जीवनिके अनादि कालका कर्मानिके वशीभूतपना है, यातैं जहां मोहनीयका उदय तथा ज्ञानावरण-दर्शनावरणका उदय प्रवर्तै है तहां दोषमें प्रवर्तनेका अर चूकनेका कहा आश्चर्य है? जीवनिकूं काम-क्रोध-लोभादिक निरन्तर मारैं हैं, भुलावै हैं, भ्रष्ट करैं हैं। हमहू संसारमें राग-द्वेष-मोहके वशीभूत होय कौन-कौन अनर्थ नाहीं किये हैं, अब कोऊ जिनेन्द्रका, परमागमका शरणका प्रसादतैं किंचित् दोपकी अर गुणकी पहीचान भई है तो हू अनादि कालका कषायनिका संस्कारकरि, अनेक दोषनिमें प्राप्त होय रहा हूं तातैं अन्यजीवनिके कर्मके उदयकी पराधीनतातैं भये दोषनिकूं देखि, करुणा ही करना। संसारी जीव विषयनिके अर कषायनिके वशीभूत होय पराधीन हैं। ए कषाय अर विषय ज्ञानकूं बिगाडि, नाना प्रकार नाच नचावैं हैं अर आपा भूलावैं हैं।

तातैं अज्ञानी जनकृत दोषकूं देखि आप संक्लेश नाहीं करै है। क्षेत्रपालादिकके निमित्ततैं, जो भावी है, ताहि टालनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है। ऐसैं उपगूहन नामा सम्यक्त्वका पंचम अङ्ग कह्या।

अब स्थितिकरणनामा सम्यक्त्वका छठा अङ्ग कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,——

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितीकरणमुच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—कोऊ पुरुष सम्यग्दर्शनकरि सहित श्रद्धानी था तथा चारित्रधारक व्रत संयमसहित था, फिर कोऊ प्रबल कषायके उदयकरि तथा खोटी संगतिकरि तथा रोगकी तीव्र वेदना करि तथा दरिद्रताकरि तथा मिथ्या उपदेशकरि तथा मिथ्यादृष्टीनिके मंत्र-तंत्रादिक चमत्कार देखि सत्यार्थ श्रद्धान, आचरणतैं चलायमान होता होय, तिनकूं चलते जानि, जिनका धर्म में वात्सल्य है ऐसे धर्मात्मा प्रवीण पुरुष ताकूं उपदेशादिकरि फिर सत्यार्थ श्रद्धानमें, चारित्रमें स्थापन करैं सो स्थितीकरण कहिये ॥ १६ ॥

इहां ऐसा जानना—कोऊ धर्मात्मा अव्रतसम्यग्दृष्टि तथा व्रती पुरुषका परिणाम रोगकी वेदनाकरि तथा दरिद्रताकरि वियोगकरि धर्मतैं चिग जाय तो धर्ममें प्रीतिके धारक प्रवीण पुरुष ताकूं धर्मतैं छूटता जानि, ताकूं उपदेशकरि धर्ममें स्थिर करै ताकै स्थितिकरण अंग है। भो धर्मके इच्छुक ! धर्मानुरागी हो !! मनुष्यभव अर यामें उत्तमकुल, इन्द्रियनिकी शक्ति, धर्मका लाभ ये बहुत दुर्लभ मिल्या है अर छूटै पाछैं इनका पावना अनन्तकालमें हू कठिण है, तातैं कर्मका उदयकरि प्राप्त भया रोग-वियोग-दारिद्रादिक दुःख तिनकरि कायर होय, आर्त्तपरिणामी होना योग्य नाहीं। दुःखित भये कर्मका अधिक बन्ध होयगा, कायर होय भागोगे तो कर्म नाहीं छांडैगा। अर धीरवीरपनाकरि भोगोगे तो हू नाहीं छांडैगा। तातैं दुर्गतिका कारण जो कायरता, ताकूं धिक्कार होऊं। अब साहस धारण करो। मनुष्य जन्मका फल तो धीरता तथा संतोषव्रतसहित धर्मका सेवन करि आत्माका उद्धार करना है। अर जो मनुष्यका देह है सो रोगनिका घर है इसमें रोग उपजनेका कहा आश्चर्य है ? यामें तो धर्म ही शरण है। अर रोग तो उपजैहीगा अर संयोग है सो वियोगकरि सहित ही है। कौन-कौन पुरुषनिपै दुःख नाहीं आये ? तातैं अपना साहस धारण करि एक धर्मका ही अवलम्बन करो। बहुरि जे-जे वस्तु उपजैं हैं ते-ते समस्त विनाशसहित हैं, जो देहही का वियोग होयगा तो अन्य अपने कर्मके आधीन उपजैं मरैं तिनिका हर्ष, विषाद करना वृथा बन्धनका कारण है।

बहुरि इस दुःषमकालके मनुष्य हैं ते अल्पआयु-अल्पबुद्धि लिए ही उपजैं हैं इस कालमें कषायकी आधीनता अर विषयनकी गृद्धता, बुद्धिकी मन्दता, रोगकी अधिकता, ईर्षाकी बहुलता दरिद्रता लिए ही बहुधा उपजैं हैं तातैं सम्यग्ज्ञानकूं प्राप्त होय, कर्मके जीतनेकूं उद्यम करना योग्य है, कायर मति होहु। ऐसैं उपदेश देय परिणामकूं स्थिर करैं। रोगी होय तो औषधि भोजन, पथ्यादिक कर उपचार करै। द्वादश भावनाका स्मरण करावै, शरीरकी टहल मलमूत्रादिक विकृतिको दूर करनेकरि जैसैं तैसैं परिणामनिकूं धर्मविषैं

दृढ करना सो स्थितिकरण है। तथा कोऊ कै रोगकी अधिकताकरि ज्ञान चलायमान हो जाय, व्रत भङ्ग करने लगि जाय, अकालमें भोजन पानादिक जाचवा लगि जाय, त्याग करि वस्तुकूं चाहिवा लगि जाय; ताकूं दयालु होय ऐसा मधुर उपदेशादिक करै जाकरि फिर सचेत हो जाय वाकी अवज्ञा नाहीं करै। कर्म बलवान है वातपित्तादिक करि ज्ञान बिगडनेका कहा प्रमाण है, सो यहां बहुत उपदेश लिखने करि ग्रन्थ बढि जाय तातैं थोरा ही करि बहुत समझना। तथा दारिद्रादिकरि पीडित ताकूं अपना शक्तिप्रमाण उपदेश तथा आहार, पान, वस्त्र, जीविका, रहनेका मकान तथा पात्र तथा जैसैं स्तंभन होय जाय तैसैं दान, सम्मान उपाय करि स्थिर करना सो स्थितीकरण नामा सम्यक्त्वका छठा अंग है। जो अपना आत्मा हू नीतिमार्ग छोडता होय तथा काम-मद लोभके वश होय अन्यायका विषय अन्याय धनकी चाहरूप हो जाय तथा अयोग्य वचनमें प्रवृत्ति करने लगजाय तथा अभक्ष्य भक्षण में प्रवृत्ति हो जाय, अभिमानके वशी हो जाय, सन्तोषतैं चिगि जाय, अनेक परिग्रहोंमें लालसा बधि जाय, कुटुम्बमें अतिराग बधि जाय तथा रोगमें कायर होय जाय, आर्तध्यानी होय जाय, वियोगम शोकसहित होय जाय, तथा दरिद्रतातैं दीन होय जाय, उत्साहरहित आकुलतारूप होय जाय, ताकूं हू अध्यात्मशास्त्रका स्वाध्याय कराय, भावनाको शरण ग्रहण कराय, अपना आत्माका स्वभाव अजर-अमर अविनाशी, एकाकी, अन्य परद्रव्यका स्वभावरहित चिंतवन कराय धर्मतैं नाहीं छूटने देना तथा असातादिक कर्म अन्तरायकर्म तथा अन्य हू कर्मका उदयकूं आपतैं भिन्न मानि कर्मका उदयतैं अपना स्वभावकूं नाहीं चलने देन। सो स्थितिकरण नामा छठा अंग है।

अब वात्सल्यनामा सम्यक्त्वका सप्तम अंगके कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

स्वयूथ्यान् प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप धर्मके धारकनिका जो यूथ (समूह) सो धर्मात्मा के अपना यूथ है। रत्नत्रयके धारकनिका यूथमें भये ऐसे मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका तथा अव्रत सम्यग्दृष्टि तिनतैं सत्यार्थभावसहित अर कपटरहित यथायोग्य प्रतिपत्ति कहिये उठी खडा होना, सन्मुख जाना, बन्दना करना, गुणनिका स्तवन करना, अञ्जुलि करना, आज्ञा धारण करना, पूजाप्रशंसा करना, उच्चस्थान बैठाय आप नीचे बैठना तथा जैसें कोऊ दरिद्रीकै महा निधानका लाभतैं हर्ष होय तैसैं धारना, महान् प्रीतिका उपजाना अर यथाअवसरमें आहार-पान, वस्तिका, उपकरणादिककरि वैयावृत्य करि, आनंद मानना सो वात्सल्यनामा अंग कहियें है ॥१७॥

बहुरि यहां और विशेष जानना—जाके अहिंसा धर्ममें प्रीति होय जे हिंसारहित कार्य होंय तिनकूं प्रीतिसहित करै अर हिंसाके कारणनिकूं दूरहीतैं टाल्या चाहै तथा सत्यवचनमें, सत्यवचनके धारकनिमें अर सत्यार्थ धर्मकी प्ररूपणामें प्रीति होय तथा

परका धन, परकी स्त्रीनिके त्याग में राग होय परधन, परस्त्रीका त्यागीनिमें जाके प्रीति होय, तिसहीक वात्सल्य अङ्ग होय हैं। तथा दशलक्षणधर्ममें अर धर्मके धारक साधर्मीनिमें, जाके अनुराग होय ताकै वात्सल्यअंग होय है। वहुरि जाकैं धर्ममें अनुरागकरि त्यागी संजमीनिमें महान् आदरपूर्वक प्रियवचनकरि प्रवर्त्तन होय ताकै वात्सल्यअंग होय है। यद्यपि सम्यग्दृष्टिकै अन्तरंग तो अपना शुद्ध ज्ञानदर्शनमें अनुराग है अर बाह्य उत्तम क्षमादिधर्मके धारकनिमें तथा धर्मके आयतनमें अनुराग है तथापि अन्य मिथ्याधर्मीनितैं द्वेष नाहीं करै है। जातैं प्रवचनसार सिद्धान्तमें ऐसैं कह्या है–जो राग–द्वेष–मोह ये बन्धके कारण हैं तिनमें मोह जो मिथ्यात्व अर द्वेष ये दोऊ तो अशुभ भाव ही हैं एकान्तकरके संसारपरिभ्रमणका कारण पापकर्मका ही बन्ध करैं। अर राग भाव है सो शुभ अर अशुभ दोय प्रकार है, तिनमें अरहंतादिक पंचपरमेष्ठीनिमें तथा दशलक्षणधर्ममें तथा स्याद्वादरूप जिनेन्द्रका आगममें तथा वीतरागका प्रतिबिम्ब, वीतरागप्रतिबिम्बके आयतनमें अनुरागरूप शुभ राग है सो स्वर्गादिक साधक पुण्यबन्धका करनेवाला तथा परम्पराकरि मोक्षका कारण है। अर विषयनिमें अनुराग तथा कषायनिमें अनुराग तथा मिथ्याधर्ममें, मिथ्यादृष्टिनिमें, परिग्रहादि पंच पापनिमें अनुराग है सो अर मोहभाव अर द्वेषभाव है ते नरकनिगोदादिकनिमें अनन्तकाल परिभ्रमणके कारण हैं। यातैं सम्यग्दृष्टि है सो अन्य अज्ञानी मिथ्यादृष्टि पातकीनिमें हू द्वेषभाव नाहीं करै है। जातैं समस्त जीव मिथ्यात्वकर्मके तथा ज्ञानावरणादिकर्मके वशीभूत होय आपा भूल रहे हैं —अज्ञानी हैं इनमें वैर करि कहा साध्य है? इनकूं तो इनकी विपरीतबुद्धि ही मारि राखे है, यातैं सम्यग्दृष्टि दयाभाव ही करै है, रागद्वेषरहित मध्यस्थ रहै है। जातैं सम्यग्दृष्टि है सो तो वस्तुका स्वभावनै सत्यार्थ जानि एक इन्द्रियादिक जीवनिमैं करुणाभाव रूप प्रीति ही करै है तथा समस्त मनुष्यनिमें वैररहित होय किसी जीवकी विराधना, अपमान हानि नाहीं वांछै है तथा मिथ्यादृष्टिनिकरि किये जे देवानिके मन्दिर, स्थान, मठ तिनतैं वैर करि बिगाडना नाहीं चाहे है तथा सरागदेवनिकी मूर्ति तथा देवनिकी क्रूरमूर्ति तथा योगिनी, यज्ञ भैरवादिक व्यन्तरनिकी स्थापनास्थान इनसूं कदाचित् वैर नाहीं करैं जातैं ये देवनिकी मूर्ति अर इनके स्थान तो अनेक जीवनिके अभिप्रायके आधीन पूजनेकूं आराधनेकूं बनाये हैं। अन्यका अभिप्रायकूं अन्यप्रकार करनेकूं कौन समर्थ है? समस्त ही मनुष्य अपना-अपना धर्म मानि देवतानिका स्थापन करै हैं। जाकूं जैसा सम्यक् तथा मिथ्या उपदेश मिल्या तैसै प्रवर्तन करै हैं। तातैं वस्तुका यथावत् स्वरूपकूं जानता, समस्तमें साम्यभाव करता, सम्यग्दृष्टि किसी मनुष्यहीकूं रैकारो-तूकारो नाहीं दे है तो अन्यके धर्म, अन्यके देवनिकूं, अन्यके मन्दिरनिकूं गाली अवज्ञाके वचन कैसे कहै? नाहीं कहै। समस्त जीवनिमें मैत्रीभाव धारता, सम्यग्दृष्टि है सो अचेतन जे स्थान पाषाण, गृहादिक, अन्यके विश्रामस्थानतैं स्वप्नमें हूँ वैर नाहीं करैं है। अर अन्य जे दुष्ट बलवान होयकरि अपना धन-धरती-आजीविका तथा कुटुम्बका घात अर आपका मरण करै तिसमें हूँ बैर नाहीं करैं। ऐसा विचार करै जो हमारा पूर्वोपार्जित कर्मके उदय करि मोतैं वैर विचारि बलवान शत्रु उपज्या है, सो अब मैं जेता सामर्थ्य है तिस प्रमाण साम जो प्रिय वचन, दान जो धन देना तथा अपना बल प्रमाण दण्ड देना, इनमें परस्पर भेद करना इत्यादिक उपायनितैं रोकि अपनी रक्षा करूं

अर जो नाहीं रुके तो आप विचारै जो मेरे पूर्व उपजाये कर्मनिका उदय आया सो याकूं बलवान उपजाया, मोकूं निर्बल उपजाय मौकूं दण्ड दिया है, सो मैं कौनसूं वैर करूं ? मेरा वैरी कर्म निर्जर जाय तैसै साम्यभाव धारणकरि कर्मका विजय करूं, अन्यसूं वैर करि वृथा कर्मबन्ध नाहीं करूं । सम्यग्दृष्टिके वातसल्य समस्तमें है, कोऊसे वैर नाहीं करै है । बहुरि कोऊ दुष्ट जीव धर्मसूं वैर करि मन्दिर प्रतिमाका विघ्न कऱ्या चाहे तो ताकूं आपका सामर्थ्यसूं रोक्या जाय तो रोकै अर प्रबल होय तो विचार करैं जो काल-निमित्तसूं धर्मका घातक प्रकट होय अपना वैर साधै है सो प्रबल कैसै रुकै ? हमारे उत्तम क्षमादिक तथा सम्यग्ज्ञान-श्रद्धानादिक कोऊ घातनेकूं समर्थ नाहीं अर मन्दिरादिक दुष्ट बिगाडै ही है अर धर्मात्मा फिर करावै ही है । कालके निमित्तसूं अनेक दुष्ट उपजै हैं उनके रोकनेको कौन समर्थ है । भावी बलवान है । आछी होनी होय तो दुष्ट मिथ्यादृष्टि प्रबल बलके धारक नाहीं उपजतै, तातैं वीतरागता ही हमारे परम शरण होहु । ऐसै वात्सल्यनामा सम्यक्त्वका सप्तम अङ्ग वर्णन किया ।

अब प्रभावना नामा सम्यक्त्वका अष्टम अङ्ग कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम् । जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ १८ ॥

अर्थ— संसारी जीवनिके हृदयविषै अज्ञानरूप अन्धकारकी व्याप्ति होय रही है । ताहि सत्यार्थ स्वरूपके प्रकाशतैं दूरि करिकैं जिनेन्द्रके शासनका, महात्म्यका प्रकाश करना सो प्रभावनानामा सम्यक्त्वका आठवां अंग है ॥ १८ ॥

इहां ऐसा विशेष है अनादिकालका संसारी जीव सर्वज्ञ-वीतरागका प्रकाश्यां धर्मकूं नाहीं जानै है । याहीतै ऐसा हू ज्ञान नाहीं है जो मैं कौन हूं ? मेरा स्वरूप कैसा है ? मैं यहाँ जन्म नाहीं लिया तदि कैसा था ? कौन था ? इहां मोकूं कौन उपजाया ? अब रात्रि-दिन व्यतीत होय आयु विनसै नष्ट होय है। मेरे कहा करनेयोग्य है ? मेरा हित कहा है ? आराधने योग्य कौन है ? जीवनिकै नानाप्रकार, नाना जीवनिके सुख दुःख कैसे हैं ? तथा देवका, गुरुका, धर्मका स्वरूप कैसा है ? तथा मरणका, जीवनका कहा स्वरूप है ? तथा भक्ष्य अभक्ष्यका स्वरूप कहा है ? इस पर्यायमें मेरे कौन कार्य करनेयोग्य है ? मेरा कौन है ? मैं कौन हूँ ? इत्यादि विचाररहित मोहकर्मकृत अन्धकारकरि आच्छादित होय रहे हैं तिनका अज्ञानरूप अन्धकारकूं स्याद्वादरूप परमागमका प्रकाशतैं दूरकरि स्वरूप-पररूपका प्रकाश करना सो प्रभावना नामा अङ्ग है । बहुरि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकरि आत्माका प्रभाव प्रकट करना सो प्रभावना है । तथा दानकरि, तपकरि, शील-संयम, निर्लोभता, विनय, प्रियवचन, जिनेन्द्रपूजन, गुणप्रकाशनकरि जिनधर्मका प्रभाव प्रकट करना सो प्रभावना है । जिनका उत्तम परिणामकरि उत्तमदानकूं तथा घोर तप निर्वांछि-कताकूं देखिकरि, मिथ्यादृष्टि हू प्रशंसा करै । अहो ! जैनीनके वत्सलतासहित बडा दान है। यह निर्वांछक ऐसा तप जैनीनतै ही बनै, अहो ! जैनीनका बडा व्रत है, जो प्राण जाते हू व्रतभङ्ग जिनके नाहीं। अहो ! जैनीनके बडा अहिंसा व्रत जो प्राण जाते हू अपने

संकल्पतैं जीवहिंसा नाहीं करैं हैं तथा जिनकै असत्यका त्याग तथा चोरीका त्याग, परस्त्रीका त्याग, परिग्रहका परिमाण करि समस्त अनीतितैं पराङ्मुख हैं अर अभक्ष्य नाहीं खावना, प्रमाणसहित दिवसमें देखि, सोधि भोजन करना, इन जिनधर्मीनिका बडा धर्म है। जिनके महा विनयवन्तपना है अर प्रिय-हित मधुरवचन ही करि समस्तकै आनन्द उपजावै हैं। तथा अतिशयकारी जिनकै बडी क्षमा है। अपना इष्ट देवमें अतिशयकारि भक्ति है। आगमकी आज्ञाका बडा दृढ श्रद्धानी जिनकै बडी प्रबल विद्या, जिनकै महान् उज्ज्वल आचरण है वैरभावरहित हुआ समस्त जीवनिमें जिनकै मैत्रीभाव है, ऐसा आश्चर्यरूप धर्म इनतैं ही बनै ऐसी प्रशंसा जिनधर्मकी जिनके निमित्ततैं मिथ्याधर्मीनिमें हू प्रकट होय तिनकरि प्रभावना होय है। जो अनीतिका धन कदाचित् नाहीं वांछै हैं अर अन्यान्य, विषयभोग स्वप्नमें हू अङ्गीकार नाहीं करै हैं, जो हमारा निमित्तसूं जिनधर्म की निन्दा होय जाय तो हमारा जन्म दोऊ लोकका नष्ट करनेवाला भया। तातै सम्यग्दृष्टि अपना तथा कुलका तथा धर्मका तथा साधर्मीनिका तथा दान-शील-तप-व्रतका अपवाद नाहीं होय तैसै प्रवर्तन करै है। धर्मके दूषण लगवाका बडा भय करैं है। धर्मकी प्रशंसा, उच्चता, उज्ज्वलता ही प्रगट होय तैसै प्रवर्तन करै, तिसकै प्रभावना नामा अष्टम अङ्ग होय है। ऐसै सम्यक्त्वके अष्टअङ्गनिका संक्षेपतै वर्णन किया। इन अष्टअंगनिका समुदाय सो ही सम्यग्दर्शन हैं। अङ्गनितै अंगी भिन्न नाहीं, अंगनिका समूहकी एकता सो ही अंगी है। तैसे ही निःशंकितादिक गुणका समुदाय सो ही सम्यग्दर्शन होय है। अर इन अंगनिका प्रतिपक्षी जे शङ्का, कांक्षा, ग्लानि, मूढता, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना इत्यादिककरि धर्मकूं दूषित नाहीं करै है।

अब निःशंकितादिक अंगनिका पालनमें जे आगममें प्रसिद्ध भये तिनका नाम दोय श्लोकनिमें कहै हैं,—

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतिः स्मृता। उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥ १९ ॥
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः। विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्षतां गतौ ॥ २० ॥

अर्थ—तावत् अंगे कहिये प्रथम अंग, जो निःशंकित अंग तिसविषै अंजनचोर आगम विषै कह्या है। द्वितीय अंगविषै अनन्तमती नामा सेठकी पुत्री कही। तृतीय अंगविषै उद्दायन नामा राजा अर चतुर्थअंगविषै रेवती नामा राणी कही। पंचम अंगविषै जिनेन्द्रभक्त नामा श्रेष्ठी हुआ। छठा अंगविषै वारिषेण नामा राजपुत्र हुआ। बहुरि शेष जे सप्तम अर अष्टम अंगविषै विष्णुकुमार मुनि अर वज्रकुमार मुनि दृष्टान्तपनानै प्राप्त होते भये। ऐसे सम्यक्त्वके अष्टअंगनिमें प्रसिद्ध भये तिनकी कथा प्रथमानुयोगके आगममें प्रसिद्ध है, तहांतें जाननी।

अब अंगहीन सम्यक्त्वके संसारपारिपाटीके छेदनमें असमर्थता दिखावनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम्। न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥ २१ ॥

अर्थ—अंगकरि हीन जो सम्यग्दर्शन सो संसारकी परिपाटीके छेदनकूं समर्थ नाहीं होय है। जैसै अक्षर करि हीन जो मन्त्र सो विषकी वेदनाकूं नाहीं हनै है ॥ १ ॥ जातें जाके परिणाममें निःशंकितादिक अंग प्रकट होय हैं सा ही सम्यग्दृष्टि संसारपरिभ्रमणकूं हनै है अर जाकै एक भी अंग नाहीं भया होय ताके संसारका अभाव नाहीं होय है। अक्षरकरि हीन मन्त्र जैसै सर्पादिकनिका विष दूर नाहीं करैं।

अब तीन प्रकार मूढता हैं ते सम्यक्त्वके घातक है। याते तीन प्रकार मूढताका स्वरूप जानि सम्यग्दर्शनको शुद्ध करना योग्य है सो तिनमेंतें लोकमूढताके स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्। गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—जो लौकिक जे मिथ्याधर्मी जन तिनकी रीति देख जे नदीस्नानमें धर्म माने हैं, समुद्रके स्नानमें धर्म माने है, बालू रेतका पुञ्ज करैं हैं तथा पाषाणका ढेर करनेमें धर्म मानें हैं, धर्म मानि पर्वततैं पडना, अग्निविषै पडना, ताहि लोकमूढता कहियें हैं, सो लोकमूढताकरिरहित सम्यग्दर्शन होय है ॥ २२ ॥

इहां मिथ्यात्वके उदयतें देशकालके भेदतें लौकिक अज्ञानी परमार्थरहित जन अनेक प्रकारकी प्रवृत्तिकरि अपने धर्म होना, पवित्रता होना, लाभ होना, वियोग नाहीं होना, दीर्घ जीवना मानें हैं सो लोकमूढताकूं प्रगट अज्ञानता जानि, याका त्याग करि सम्यक्त्वभावकी विशुद्धता करो। इहाँ केते एकान्ती जन हैं ते स्नान करि आपकूं पवित्र माने हैं सो ज्ञाननिकूं आगमज्ञानपूर्वक विचार करना जो आत्मा है सो तो अमूर्तीक है तिस पर्यंत तो स्नान पहुंचे नाहीं। अर काय हैं सो महा अपवित्र है। जाका संगमतें अपावित्र हू चन्दन, गंगाजल, पुष्पादिक स्पर्शने योग्य नाहीं रहै। अर जो हाड, मांस, रुधिर, चाम इत्यादिक अशुचि सामग्री करि रच्या अर जो दुर्गन्ध विष्टा मूत्रादिक अशुचि द्रव्यनिकरि भऱ्या अर जाके मुखके द्वार होय तो महा अशुचि कफ अर लार दंतमल जिह्वामल निरन्तर वहै है अर नेत्रनिमें सचिक्कण दुर्गन्ध गीड स्रवै है अर कर्णनितें कर्णमल स्रवै है अर नासिकातें निरन्तर दुर्गन्ध घृणां योग्य सिणक बहै है, अधोद्वार मल मूत्र दुर्गन्ध आंव कृमिनिकूं निरन्तर वहै है अर समस्त शरीरके रोमते महादुर्गन्ध मलीन पसेव स्ववै है। ऐसे जाके नवद्वार निरंतर मल स्रवैं हैं ऐसा शरीर जलका स्नानतें कसें शुद्ध मानिये? जैसें मल करि बनाया घडा अर मलकरि भऱ्या अर समस्त तरफ मलहीकूं वहै, सो जलकरिकैं धोवनैतैं कैसै शुद्ध होय? इस लोकमें जो वस्तु तथा भूम्यादिक क्षेत्र अशुचि अपवित्र कहिये हैं ते समस्त इस शरीरके सङ्गमतें ही अपवित्र होय हैं। कोऊ चाम पडनेतैं, कोऊ केश पडनेतैं, कोऊ उच्छिष्ट (ओंठि) पडनेतैं तथा रुधिर, मांस, हाड, वसा (चरबी), राध, मूत्र मूकलार कफ, नासिकामल इनका स्पर्श होनेतैं ही तथा स्नानके जलके छीटेनिके, कुरलेनिके स्पर्शतैं ही अपवित्र (अशुचि) देखिये है सुनिये हैं। यातैं आछीतरह विचारो-जो देहका सङ्ग विना कोऊ अशुचि है ही नाहीं। ऐसा देह जलके स्नानतैं कैसें शुद्ध होय? अर जो

जलके स्नानादिकतैं शुद्ध होय गया तो फिर कोऊकै स्नानका छांटा लगि जायगा तो अपवित्र हुआ ही मानैगा। तथा गंगा पुष्करादिकमें हजारबार स्नान कुरला करि फिर कोऊ वस्तु ऊपर कुरला करैगा तो महा अपवित्रता मानैगा। जल करि तो देहके ऊपरि मैल लाग्या होय तथा वस्त्रादिक मलिन होय, तो धोवनेतैं उज्ज्वल होय है अर देहकूं उज्ज्वल पवित्र नाहीं करे हैं। जैसे—कोयलाकूं ज्यों धोवो त्यों कालिमा ही निकलै है। तैसैं ज्यों ज्यों देहकूं धोइये त्यों त्यों महा मलिनता प्रकट होय है। स्नानतें पवित्र होना मानना सो तीव्रमिथ्यात्व है। अर और हू विचारो जगतमें जल बराबर कोऊ अपवित्रही नाहीं है जामें निरन्तर मींडका, काछवा, सर्प, ऊंदरा, विसमरा, मांखी—मांछरादि अनेक जीव नित्य मरैं हैं अर जामें चर्म, हाड समस्त गलि जाय है अर अनेक त्रसनिका घात जामें होय है ऐसा महानिंद्य अपवित्र जल तिसके स्पश होनेतैं कैसैं पवित्र होय ? अर गंगादिक नदीनमें कोट्यां मनुष्यनिके मल, मूत्र, रुधिर, मांस, कर्दम तथा मनुष्यानिके तिर्यञ्चनिके मृतक कलेवर घुल रहैं तिस गंगाका जल कैसैं पवित्र करै ? जलका सूतक कदें ही मिटे नाहीं। यातैं बाहिर लाग्या मैल दूर हो जाय। यातैं मनकी ग्लानि मिट जाय। (अर) (परन्तु) यातैं पवित्र होना तथा स्नानमें धर्म मानना सो तो मिथ्यादर्शन है। जो गंगाका जलतैं ही पवित्र हो जाय वा स्नान करि मुक्त होजाय तो कीर-धीवरनिके पवित्रता ठहरे वा मुक्ति होय। अन्य दान पूजादिक समस्त निष्फल हुआ। मिथ्यात्वका प्रभावतैं सब विपरीत श्रद्धानी होय रहे हैं। जे अष्ट प्रकार लौकिक शुचि कही हैं ते व्यवहार आचार कुलाचारके उज्ज्वल करनेकूं तो समर्थ हैं, परन्तु देहकूं पवित्र नाहीं करै हैं। ए तो मनमें ग्लानि आप मानि राखी है। सो संकलपतैं दूरि करले है जो मैं स्नान कर लिया है। सो ही श्रीराजवार्तिकजीमें अशुचि भावनामें कह्या हैं।

शुचिपना है सो दोय प्रकार हैं—एक लौकिक, एक लोकोत्तर-ताहि अलौकिक हू कहिये है। तहां जिसके कर्ममल-कलंक दूर भया ऐसा आत्माका अपने स्वभावविषैं स्थित रहना सो लोकोत्तर शुचिपना हैं। अर तिसका साधन सम्यग्दर्शनादिक हैं, अर सम्यगदर्शनादिकका धारक साधु है अर तिनका आधार निर्वाणभूम्यादिक हू सम्यग्दर्शनादिकका उपाय है, तातैं शुचिनामके योग्य है। अर लौकिक शौचपना है सो अष्टप्रकार है—कालशौच १, अग्निशौच २, भस्मशौच ३, मृत्तिकाशौच ४, गोमयशौच ५, जलशौच ६, पवनशौच ७, ज्ञानशौच ८ ए आठ शौच शरीरके पवित्र करनेकूं समर्थ नाहीं हैं। लौकिकजनोंके व्यवहार छोडैं बडा अनर्थ होय जाय। हीन आचारकी ग्लानि जाती रहैं, तो समस्त एक होय जांय तदि परमार्थ हू नष्ट होय जाय, यातैं अनादिकालतैं बाह्यशुचिताकी मानता देखि मनकी ग्लानि मेट ले हैं। जातैं केती वस्तु तो जगतमें कालव्यतीत भये शुद्ध मानिये हैं जैसैं रजस्वला स्त्री तीन रात्रि गये शुद्ध मानिये हैं परन्तु शरीर तो कोऊ काल हू शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि केतेक उच्छिष्ट धातुके पात्र भस्म करि माँजनेतैं शुद्ध मानिये हैं परन्तु शरीर तो भस्मकरि शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि केतेक शूद्रादिक स्पर्श क्रिये हुये धातुमय पात्र आग्निके संस्कारकरि शुद्ध मानिये हैं परन्तु शरीर तो अग्निका संसर्ग करे हू शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि मलमूत्रादिकका स्पर्श मृत्तिकातैं धोय शुद्ध मानिये हैं, परन्तु शरीर तो मृत्तिकातैं शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि गोमयकरि भूम्यादिककूं लीप शुद्ध माने हैं,

परन्तु गोमयतैं शरीर तो शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि कर्दमादिक लगनेतैं तथा अस्पृश्यका स्पर्श होनेतैं जलकरि धोवनेतैं तथा जलकरि स्नान करनेतैं शौच मानिये हैं, परन्तु शरीर तो स्नानतैं शुद्ध नाहीं होय है, स्नान किए पीछैं हू चन्दन पुष्पादिक पवित्र वस्तु हू शरीरके स्पर्शमात्रतैं मलीन होय जाय है। बहुरि केतेक भूमि, पाषाण, कपाट, काष्ठादिक पवनकरिही शुद्ध मानिये है; परन्तु शरीर तो पवनकरि शुचि नाहीं होय है। बहुरि केतेक वस्तु अपने ज्ञानमें जाका अशुद्धताका संकल्प नाहीं होनेतैं शुद्ध मानिये है; परंतु शरीरमें तो शुद्धपनाका संकल्प हू नाहीं उपजै है, तातैं शरीर तो अष्ट प्रकारका लौकिक शौचकरि शुद्ध नाहीं होय है। लौकिकशौच परिणामनिकी ग्लानि मेटै है। व्यवहारमें उज्ज्वलता जानि कुलकी उच्चता जनावै है; परन्तु शरीरकूं तो शुचि नाहीं करैं हैं। देह तो सर्वप्रकार अशुचि ही है। यामें जो आत्मा परका धन अर परकी स्त्रीमें अभिलाषरहित होय अर जीवमात्रका विराधना रहित होजाय तो हाडमांसका मलीन देह हू देवनकरि पूज्य महापवित्र होय जाय। इस देहकूं पवित्र करने का और कारण ही नाहीं हैं, सो ही श्रीपद्मनन्दी नाम दिगम्बर वीतराग मुनि कह्या है सो जानहु। जिसकी निकटतातैं सुगन्ध पुष्पमाला, चन्दनादि पवित्र द्रव्य हू अस्पर्शताकूं प्राप्त होय है। अर विष्टा मूत्रादिककरि भऱ्या रुधिर, रस, हाड, चामादिककरि रच्या अर महाशूगला अर महादुर्गंध, महामलीन समस्त अशुचिका रहनेका एक संकेतगृह ऐसा मनुष्यका शरीर जलकरि स्नान करनेतैं कैसे शुद्ध होय? आत्मा तो अपने स्वभावतैं ही अत्यन्त पवित्र है, अर अमूर्तिक है। ताकूं जल पहुँचै ही नाहीं। ऐसे पवित्रमें स्नान वृथा है। अर यो काय है सो, अशुचिही है सो स्नानकरि कदाचित् शुचिताकूं प्राप्त नाहीं होय। यातैं स्नानके दोऊ प्रकारकरि विफलता भई। अर जे फिर हू स्नान करैं हैं तिनकै पृथ्वीकाय, जलकायादिक अर अनेक त्रसनिका घात होनेतैं पापबन्धके अर्थि अर रागभावके अर्थि ही है।

भावार्थ—गृहस्थके स्नान विना सरै नाहीं; परन्तु अज्ञानी गृहस्थ स्नानमें धर्म मानै है। अर स्नानतैं पवित्रता मानै है ऐसी मिथ्याबुद्धि लग रही है सो याका स्वरूपकूं समझै तो याकूं धर्म तो नाहीं मानै अर यातैं पवित्रपना नाहीं मानै। यद्यपि गृहस्थके स्नानविना व्यवहार समस्त दूषित होय जाय अर व्यवहार दूषित होय जांय तदि परमार्थकी शुद्धता नाहीं कर सकै; परन्तु याकूं राग वधावनेतैं, अर हिंसा होनेतैं पापरूप तो श्रद्धान करै। बहुरि और हू शिक्षा जाननी,—चित्तकेविषैं पूर्वकालका कोटिनभवकरि संचय किया कर्मरूप रज ताका सम्बन्ध करि उपज्या जो मिथ्यात्वादिक मल ताका नाश करनेवाला जो आपपरका भेद जाननेरूप विवेक सो ही सत्पुरुषनिकै मुख्य स्नान है। सत्पुरुषनिकै तो मिथ्यात्वमलका नाश करनेवाला एक विवेक ही स्नान है अर अन्य जो जलकरि स्नान है सो तो जीवनिका समूहका घात करनेतैं पापका करनेवाला है। यातैं धर्म नाहीं होय है। ताही कारणतैं स्वभावहीतैं अशुचि जो काय तिसविषैं पवित्रता नाहीं है। बहुरि कहैं हैं भो ज्ञानीजन हो! आपकी शुद्धताके अर्थि परमात्मा नामा तीर्थमें सदा काल स्नान करो। वृथा खेदकरि व्याकुल भये गंगादिक तीर्थनप्रति क्यों दोडो हो? कैसाक है परमात्मा नामा तीर्थ?

सम्यग्ज्ञानरूप ही जामें निर्मल जल है अर देदीप्यमान सम्यग्दर्शनरूप जामें लहरि है अर अविनाशी अनन्तसुख करि शीतल है अर समस्त पापनिकै नाश करनेवाला है। ऐसा परमात्मस्वरूप तीर्थमें लीन होहू। बहुरि जगतके पापिष्ठ मिथ्यादृष्टि जननिनें निर्मल तत्त्वनिका निश्चयरूप द्रह नाहीं देख्या है अर कठै हू ज्ञानरूप रत्नाकर समुद्र हू नाहीं देख्या। अर समता नामा अतिशुद्ध नदी हू नाहीं देखी। तिसकारण करि पापके हरनेवाले सत्य तीर्थनिकूं छांडि करि मूर्खलोक हैं ते तीर्थ जिनकूं कहै हैं ते संसारके तारनेवाले नाहीं ऐसे गंगादिक नदीनिमें डूबकरि हर्षित होय हैं।

भावार्थ—जिनमूर्खनिनैं तत्त्वनिका निश्चयरूप द्रहकूं नाहीं देख्या, अर ज्ञानरूप समुद्र नाहीं देख्या, अर समता नाम नदी नाहीं देखी, ते गंगादिक तीर्थाभासनिमें दौडता फिरे हैं। जो तत्त्वनिका निश्चयरूप द्रहकूं देखता अर ज्ञानरूप समुद्रकूं देखता अर समता नामा नदीकूं देखता, तो इनमें गरक होय, मिथ्यात्वकषायरूप मलकरि रहित होय, आपकूं उज्वल करलेता। बहुरि इस भुवनमें ऐसा कोऊ तीर्थ नाहीं है तथा ऐसा जल हू नाहीं तथा और हू कोऊ द्रव्य नाहीं है, जिसकरि यो समस्त अशुचि मनुष्यका शरीर साक्षात् शुद्ध होजाय। अर यह शरीर कैसाक है? आधि, व्याधि, जरा, मरणादिक करि निरन्तर व्याप्त अर निरन्तर ताप करनेवाला ऐसा है। जातैं सत्पुरुषनिके याका नाम हू सहने योग्य नाहीं है। बहुरि समस्त तीर्थनिके जलतैं नित्य स्नान करिये अर चन्दन कपूरादिकका विलेपन करिये तो हू यह शुद्ध नाहीं होय, सुगंध नाहीं होय रक्षा करते हू विनाश के मार्ग ही तिष्ठै है। जो नदीमें स्नानतैं ही शुद्ध होजाय तो कोट्यां मच्छी, मच्छ, काछिवा, कीर, धीवरादिक शुद्ध होजांय, तातैं यह लोकमूढता त्यागनें योग्य है।

अब इहां इतना विशेष और जानना। जो स्नान करनेतैं पवित्र नाहीं होय अर धर्म हू नाहीं होय, परन्तु गृहस्थाचारमें मुनीश्वरनिकी ज्यों स्नानका त्याग योग्य नाहीं, क्योंकि जो पापिष्ठ जीवनिसूं स्पर्श होजाय अर स्नान नाहीं करैं, तो अपना मनमें पापकी ग्लानि जाती रहै। तदि तिनकी संगति, स्पर्शन, खान, पान, यथेच्छ करने लगि जाय, तब व्यवहारधर्मका लोप होजाय। यातैं जिनधर्मीनिका आचार है ते व्यवहारके विरोधी नाहीं। जो अतिपापतैं आजीविकाके करनेवाला चांडाल, कसाई, चमार, शिकारी, भील, धीवरादिक अतिपापिष्ठ तथा मुसलमान म्लेच्छनिकी शरीर ऊपर छाया पडते हू महामलीनता मानिये है, तो इनका स्पर्श होनेतैं स्नान कैसैं नाहीं करै? स्नान हू करै अर परमात्माका स्मरण हू करै। अर याकै नजीक बैठनेतैं बुद्धि मलीन होय है। अर जो मुसलमान वेश्यादिकसूं कान लगाय मुखके सन्मुख अपना मुख करि वचनलाप करै हैं तिनकी बुद्धि उत्तम धर्मादिक कार्यतैं विमुख होय विपरीत प्रवर्त्तन करै है। तथा जीवनिकै घातक कूकरा, मार्जारादिक पशु अर पक्षी इत्यादिक दुष्ट तिर्यंचनिका भोजनके स्थाननिमें आगमन होजाय तथा भोजनका स्पर्शन होजाय तो त्याग करना उचित है, तो इनका स्पर्शन होतें स्नान विना भोजन स्वाध्यायादिक करनेमें हीनाचारपना होय है, पापतैं ग्लानि जाती रहै, कुलका भेद नाहीं ठहरै। अर स्त्रीकारि सहित संगम करै तहां अनेक जीवनिकी हिंसा अर महाअशुचि अङ्गनिका संघटन अर रुधिर-वीर्यादिकनिका बाह्यस्पर्शनादिक अर महानिंद्य रागका उपजना है याका त्याग नाहीं बन सकै तो इस पापकी ग्लानि करि आपको अशुद्धि मानि स्नान तो करै जो मैं निंद्यकर्म किया है तातैं

बाह्य शुद्धिता वास्ते स्नान किये विना पुस्तकानिका तथा जिनमन्दिरके उपकरणनिका उत्तम वस्तुका कैसैं स्पर्शन करूं ? यद्यपि देहमें रुधिर, मांस, हाड, चाम, केश, मलमूत्र भरे हैं, परन्तु रुधिर, राध, चाम, हाड, मांस, मल-मूत्रादिकानिका बाह्य स्पर्श होजाय तो अवश्य धोवना उचित है, जातैं केश चामादिक शरीरतैं दूर हुआ पाछे स्पर्शनेयोग्य नाहीं है । अर इनका हस्तादिककरि स्पर्श होजाय तो शीघ्र ही हस्त धोवना उचित है । इनकी ग्लानि नाहीं करै, तो नीच चमार, चाण्डाल, कसायीनितैं एकता होनेतैं आचरण भेद नाहीं रहे । तदि समस्त जाति व्यवहारके लोप होनेतैं उत्तम कुलका अर नीच कुलका आचार समान होजाय, तदि व्यवहार आचारके बिगडनेतैं धर्मका मार्ग भ्रष्ट होजाय । निंद्यकर्म करनेंकी लज्जा छूटि जाय, तदि कुलके मार्ग बिगाडनेतैं महा पापका बन्ध होय है । परमार्थशौच तो व्यवहारकी शौचता करि ही शुद्धि होय है । जाका भोजनमें, पानमें, स्पर्शनमें, संगतिमें, प्रवृत्तिमें मलीनता होजाय, तदि परमार्थ धर्म मलीन हो ही जाय । जिनधर्मी है सो चांडाल, भील, म्लेच्छ, मुसलमानादिककी शरीरकी छायाहीतैं मलीनता मानैं है अर धोबी, कलाल, लुहार, खाती, सुनार, भडभूजा, इत्यादिकनिका स्पर्शनकूं हिंसाकर्म करनैतैं दूर ही छांडिये हैं । मुनीश्वर तो नीच जातीके मनुष्यका स्पर्श होतैं दण्डस्नान करैं अर तिस दिन उपवास करैं अर नाहीं जाननेंतैं नीचकुलके गृहनिमें प्रवेश होजाय तो भोजनका अन्तराय करै हैं । अर मदिरा, मांस अर शरीरतैं चार अंगुल बहता रुधिर, राधि अर पंचेन्द्रिय जीव मृतकका कलेवर भोजन करते देखैं, तो भोजनका अन्तराय करैं हैं तो जिनधर्मी गृहस्थ हाड, कौडी, चाम, केश, ऊन इनके स्पर्शनतैं भोजन कैसैं नाहीं छाँडैं । याहीतैं गृहस्थ हैं सो हस्तपाद प्रक्षालनकरि शुद्धभूमिमें शुद्ध भोजन करैं हैं । अधम जातिका स्पर्श्या भोजन नाहीं करैं । बहुरि जिनेन्द्रका पूजन वास्तै स्नान करना योग्य ही है, क्योंकि स्नानकरि देवका स्पर्शन-पूजन करना यह बडा विनय है । यद्यपि स्नानतैं शुद्धता नाहीं, तो हू देवके उपकरणनिकूं स्नानकरि स्पर्शना, धोया हुआ द्रव्य चढावना सो देव-विनय ही है । विनय है, सो ही आराधना है । जातैं जिनमन्दिरतैं उपकरणका हू विनय करिये है तो जिनेन्द्रके आगमकी वाणीका, पुजनके द्रव्यका हू स्नानकरि स्पर्शना, हस्त धोय लगावना, मन्दिरमें हस्तपाद प्रक्षालनकरि प्रवेश करना, सो हू विनय ही है । यद्यपि पापमलकी शुद्धता करना प्रधान है तो हू भगवान जिनेंद्रका आगममें अष्टप्रकार लौकिक शुद्धि कही है । लौकिक शौचके विना परमार्थधर्मतैं भ्रष्ट होजाय हैं । मुनीश्वरका देह रत्नत्रयका प्रभावतैं महापवित्र हैं, तो हू बाह्यशौचके निमित्त कमण्डलु राख हैं, हस्तपाद धोय स्वाध्याय करैं हैं, अत्यंत मन्द जलतैं पादप्रक्षालन कराय भोजन करैं हैं, तातैं व्यवहार आचारकूं नाहीं छांडैं हैं । यो भगवान जिनेन्द्रका धर्म अनेकान्तरूप है अर निश्चय-व्यवहारका विरोध रहित ही धर्म है । सर्वथा एकान्तरूप जिनेन्द्रधर्म नाहीं है । लौकिक शुचितारहित होय सो धर्मकी निन्दा करावै, कुलकी निन्दा करावै, तदि अपना आत्मा मलिन होय ही है । बहुरि मैथुनसेवन किया होय अर मृतककूं दग्धकरि आया होय अर केशक्षौर कराया होय अर चांडाल म्लेच्छादिकनिका स्पर्श भया होय, मृतक पंचेन्द्रीका स्पर्श भया होय, रजस्वलादि अशुचिका स्पर्श भया होय इत्यादि और कारण होय, तहां अवश्य स्नान करना अर अन्य कारणनिमें जहां मल, मूत्र, हाड, चामादिकका जिस अंगसों स्पर्श भया होय तिसकूं धोवना शीघ्र ही उचित है । अष्टप्रकार शौच लौकिकमें

अनादिका प्रवर्तै हैं। यातैं आगमकी आज्ञा मानना अपना हित है। बहुरि जगतमें प्रगट देखिये है, कर्णके मलतैं नेत्र मलकूं, अर यातैं नासिका मलकूं, यातैं कफ लालादिक मुखके मलकूं, यातैं मूत्रकूं, यातैं विष्टाकूं अधिक २ अशुचि मानिये है अर जो समस्त मलकूं समानही मानिये तो समस्त आचार उपद्रित (उपद्रुत) होय, विपरीत होय जाय। यद्यपि द्रव्यार्थिकनयतैं समस्त एक पुद्गल जाति हैं, तथापि बहुत भेद हैं। यद्यपि हाड, मांस, रुधिर, मल, मूत्रादिक समस्त पृथ्वीरूप, जलादिरूप होजाय हैं अर पृथ्वी जलादिकनिका मांस, रुधिर, मलादिकरूप होजाय है, तथापि पर्यायनिमें बडा भेद है। द्रव्यके अर पर्याकके सर्वथा एकता मानेंतैं समस्त व्यवहार परमार्थका लोप होय, तातैं द्रव्यके पर्यायके कथंचित् एकपना कथंचित् अनेकपना मानना ही श्रेष्ठ है।

बहुरि बालूके पिंड करनेमें, तथा पर्वततैं पडनेंमें, अग्निमें दग्ध होनेंमें, हिमालय गलनेमें, पंचाग्नितपनेमें धर्म मानै है सो लोकमूढता है। तथा ग्रहणमें सूतक मानना, स्नान करना, चांडालादिककूं दान देना, संक्रांति मानि दान देना, कुवा पूजना, पीपलपूजना, गायकूं पूजना, रुपया मोहरकूं पूजना, लक्ष्मीकूं पूजना, मृतक पितरकूं पूजना, छींक पूजना, मृतकनिके तृप्ति करनेकूं तर्पण करना श्राद्ध करना, देवतानिका रतजगा करना, गङ्गाजलकूं शुद्ध मानना, तिर्यंचनिके रूपकूं देव मानना, कुआ, बावडी, वापिका तलाव खुदावनेमें धर्म मानना, बाग लगावनेमें धर्म मानना मृत्युञ्जय आदिके जप करावनेतैं अपनी मृत्युका टलजाना मानना, ग्रहांका दान देनतैं अपने दुःख दूर होना मानना, सो समस्त लोक मूढता है। बहुत कहनेकरि कहा जो योग्य-अयोग्य सत्य-असत्य, हित-अहितका, आराध्य-आराध्यका विचाररहित, लौकिक जनकी प्रवृत्ति देख, जैसैं अज्ञानी अनादिके मिथ्यादृष्टि प्रवर्तै तैसी प्रवृत्तिकूं सत्य मानना, विचार रहित लौकिकजननिकी प्रवृत्ति देख प्रवर्तन करना सो लोकमूढता है। अर केतेक जिनधर्मी कहाय करके हू आत्मज्ञानकररहित परमागमकी आज्ञाकूं नाहीं जानते भेषधारीनिके कल्पे हुए अनेक क्रियाकांड तथा तीर्थंकरादिकनिका तर्पण कराना, अपना पिता, पितामहका तर्पण कराना, तथा यक्षादिकनिके अर्थि होम-यज्ञादिकनिमें अपना कल्याण होना मानैं हैं। शकलीकरणादिक विधान कराना सो लोकमूढता है। तथा केतेक स्नान करि रसोई करनेमें तथा स्नानकरि जीमनेमें तथा आला (आर्द्र) वस्त्र पहरि जीमनेंमें अपनी पवित्रता शुद्धता मानै हैं, परम धर्म मानै हैं अर अभक्ष्य-भक्षण अर हिंसादिकका विचार नाहीं करैं हैं, सो समस्त मिथ्यात्वके उदयतैं लोकमूढता हैं,—

अब देवमूढता कहनेकूं सूत्र कहै हैं,—

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः। देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—अपने वांछित होय ताकूं वर कहिये। वरकी वांछा करके आशावान हुवा संता जो रागद्वेषकरि मलीन देवताकूं सेवन करै सो देवतामूढ कहिये है ॥ २३ ॥

संसारी जीव हैं, ते इस लोकमें राज्यसंपदा स्त्री, पुत्र, आभरण, वस्त्र वाहन, धन-ऐश्वर्यनिकी वांछा सहित निरन्तर वर्तै हैं।

इनकी प्राप्तिके अर्थि रागी, द्वेषी, मोही देवनिका सेवन करैं सौ देवमूढता है। जातैं राज्यसुखसंपदादिक तो सातावेदनीयका उदयतैं होय है, सो सातावेदनीयकर्मकूं कोऊ देनेकूं समर्थ है नाहीं तथा लाभ है, सो लाभांतरायका क्षयोपशमतैं होय है, अर भोग सामग्री उपभोग सामग्रीका प्राप्त होना सो भोगोपभोग नाम अन्तंरायकर्मका क्षयोपशमतैं होय है अर अपने भावनिकरि बांधे कर्मनिकूं कोऊ देव-देवता देनेकूं तथा हरनेकूं समर्थ है नाहीं। बहुरि कुलकी वृद्धिके अर्थि कुलदेवीकूं पूजिये है अर पूजते-पूजते हू कुलका विध्वंस देखिये हैं अर लक्ष्मीके अर्थी लक्ष्मीदेवीकूं तथा रुपया मोहरनिकूं पूजते हू दरिद्र होते देखिये हैं। तथा शीतलाका स्तवन पूजन करते हू सन्तानका मरण होते देखिये हैं। पितरनिकूं मानते हू रोगादिक वधै हैं तथा व्यन्तर क्षेत्रपालादिकनिकूं अपना सहायी मानै है सो मिथ्यत्वका उदयका प्रभाव है। बहुरि केतेक कहैं हैं जो चक्रेश्वरी, पद्मावती देवी ये शस्त्रधारण किये जिनशासनकी रक्षक हैं तथा सेवकनिकी रक्षा करनेवाली एक एक तीर्थंकरनिकी एक एक देवी है, एक एक यक्ष है, इनका आराधन करने, पूजनेतैं धर्मकी रक्षा होय है; ये धर्मात्माकी रक्षा करै हैं, तातैं इन देवीनिका और यक्षनिका स्तवन करना, पूजन करना योग्य है। देवी समस्त कार्यके साधनेवाली तीर्थंकरनिकी भक्त हैं। इसविना धर्मकी रक्षा कौन करैं। याहीतैं मन्दिरनिके मध्य पद्मावतीका रूप, जाके चार भुजा तथा वत्तीस भुजा अर नाना आयुधनकरि युक्त अर तिनके मस्तक ऊपर पार्श्वनाथस्वामीका प्रतिबिंब अर ऊपर अनेक फणनिका धारक सर्पका रूपकरि वहुत अनुरागकरि पूजैं हैं। सो सब परमागमतैं जानि निर्णय करो। मूढलोकनिका कहिवो योग्य नाहीं। प्रथम तो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी इन तीन प्रकारके देवानिमें मिथ्यादृष्टि ही उपजै है। सम्यग्दृष्टिका भवनत्रिक देवनिमें उत्पाद ही नाहीं अर स्त्रीपना पावै ही नाहीं, सो पद्मावती चक्रेश्वरी तो भवनवासिनी अर स्त्रीपर्यायमें अर क्षेत्रपालादिक यक्ष ये व्यन्तर, इनमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद कैसैं होय? इनमें तो नियमतैं मिथ्यादृष्टि ही उपजें हैं ऐसा हजारांवार परमागम कहै हैं। बहुरि जो इनके जिनधर्मसूं प्रीति है, तो जिनधर्मके धारीनतैं अपना पूजा वन्दना नाहीं चाहैं, जैनी होय सो आपकूं अव्रती जानता सम्यग्दृष्टिसे वन्दना पूजा कैसें करावै? साधर्मीनिका उपकारविना कहे ही करैं। बहुरि भगवानका प्रतिविंब तो अपने मस्तक ऊपरि है अर भगवानके भक्तनितैं अपनी पूजा करावैं, ऐसा अविनय धर्मात्मा होय कैसैं करैं? बहुरि अनेक आयुध धारण करि अपनी वीतराग धर्ममें प्रवृत्तिकूं बिगाडै है। अर अपना असमर्थपना प्रगट दिखावै है तथा जिन शासनके रक्षक एक एक यक्ष यक्षणी ही कैसैं कहो हो? भगवानके शासनके तौ सौधर्म इन्द्रकूं आदि लेय असंख्यात देव, देवी समस्त सेवक हैं अर जिनका हृदयमें सत्यार्थ धर्मतैं पूर्वकृत अशुभकर्म निर्जर गया होय, ताकै समस्त पुद्‌गलराशि अचेतन है, सो हू देवतारूप होय उपकार करै हैं, देव, मनुष्य उपकार करैं सो कहा आश्चर्य है? अर शासनमें हू ऐसी केई कथा हैं जो शीलवान तथा ध्यानी तपस्वीनिके धर्मके प्रसादतैं देवनिक आसन कम्पायमान भये, अर देव जाय उपसर्ग टाले अर नाना रत्ननी करि पूजा करी, ऐसी

कथा तो शासनमें बहुत हैं अर ऐसी तों कहूँ कथा भी नाहीं जो धर्मात्मा पुरुष देवनिकूं पूजै अर पद्मावती, चक्रेश्वरीकी भी केई कथा हैं जो शीलवन्ती व्रतवंतिनीकी देव-देवियोंने पूजा करी अर शीलवन्ती, व्रतवन्ती तो जाय कोऊ देव-देवीकी पूजा करी नाहीं लिखी है। तथा कार्तिकेय स्वामी कहैं हैं:—

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणइ उवयारं। उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥ ३१९ ॥
भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी । तो किं धम्मं कीरदि एवं चिंतेहि सद्दिट्ठी ॥ ३२० ॥

अर्थ—इस जीवकूं कोऊ लक्ष्मी नाहीं देवे है अर जीवका कोऊ उपकार अपकार हू नाहीं करै है। जो जगतमें उपकार अपकार करता देखिये है सो अपना किया शुभ-अशुभकर्म करि करै है। बहुरि जो भक्तिकरि पूजे व्यंतरदेव ही लक्ष्मी देवैं, तो दान, पूजा, शील, संयम, ध्यान, अध्ययन, तपरूप समस्त धर्म काहेकूं करिये? बहुरि जो भक्ति करि पूजे-वन्दे कुदेव ही संसारके कार्य सिद्ध करैंगे तो कर्म कछु बात ही नाहीं ठहरें? व्यंतर ही समस्त सुखका दायक रहै, धर्मका आचरण निष्फल रह्या।

भावार्थ—जगतविषैं इस जीवका जो देव, दानव, देवी, मनुष्य, स्वामी, माता, पिता, बांधव, मित्र, स्त्री, पुत्र तथा तिर्यंच तथा औषधादिक जो उपकार तथा अपकार करैं हैं, सो समस्त अपने किये पुण्यकर्म पापकर्म तिनके उदयके आधीन करै हैं। ये तो समस्त बाह्यनिमित्तमात्र हैं। देखिये हैं–भला कऱ्या चाहे, उपकार किया चाहे है अर अपकार होय जाय है अर अपकार किया चाहै है अर उपकार होय जाय है। यातैं प्रधान कारण पुण्य पापरूप कर्म है। बहुरि शास्त्रनिमें कह्या है— चांडालके अहिंसाव्रतका प्रभावतैं देवता सिंहासनादि रचे अर नीलीका शीलके प्रभावतैं देवता सहायी भये अर सीताके शीलका प्रभावतैं अग्निकुंड जलरूप होय गया अर सेठ सुदर्शनका देव आय उपसर्ग टाल्या अर और हू केतेनिके सहायी देवता भये, उपसर्ग टाले अर देवांका आसन कम्पायमान भये अर देव आय सहायी भये ऐसा हजारां कथा प्रसिद्ध हैं। अर भगवान आदीश्वरकै छह महीना अंतराय भोजनका भया, तदि कोऊ देव आय काहूकूं आहार देनेकी विधि नाहीं जनाई। पहली तो गर्भमें आनेके छह मास पहली इन्द्रादिक समस्त देव भगवानकी सेवामैं तथा स्वर्गलोकतैं आहार, वस्त्र, वाहनादिक लावनेमें सावधान भये हाजिर रहते थे। ते सब देव कैसैं भूल गये। तथा भरतादिक सौ पुत्रनिकूं अर ब्राह्मी सुन्दरी पुत्रीनिकूं मुनि-श्रावकका समस्त धर्म पढाया, ते हू विचार नाहीं किया जो भगवान् हू मुनि होय आहारके अर्थि चर्या करैं हैं, सो अन्तराय कर्मका मंद हुआ विना कौन सहायी होय? तथा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव ये महा वीतरागी होय वनमें ध्यान करते थे। तिनकूं दुष्ट वैरी आय आभरण अग्निमें लाल करि पहराय दीयै अर जिनका चाम मांसादिक भस्म होते हू कोऊ भी देव सहायी नाहीं भया। तथा सुकुमाल महामुनि तिनकूं तीन दिन पर्यंत स्यालिनी अपने बच्चानिसहित भक्षण करिवो किया तहां कोऊ देव सहायी नाहीं भये। अर जाकी माताका इतना ममत्व था, जो शोक रुदनादिक सन्तापहीमें लगी रही अर पुत्र कहां गया ऐसी खबर भी नाहीं मंगाई। तथा पांचसै मुनिनिकूं घानीमें

पेल दिया, तहां कोऊ देव सहायी नाही भया। तथा पद्म नाम बलभद्र अर कृष्ण नाम नारायण जिनकी पूर्वैं हजारां देव सेवा करैं थे जब हीन उदय आया अर पुण्य क्षीण भया तदि कोऊ देव पानी प्यायवे वाला एक मनुष्य हू नाहीं रह्या। तथा जो सुदर्शन चक्रसूं नाहीं मऱ्या अर भीलका एक बाणतैं प्राणरहित होय गया। ऐसैं अनेक ध्यानी, तपस्वी, व्रती, संयमी घोर उपसर्ग भोगे तिनका तो देव सहायी कोऊ नाहीं भये अर हरेकानिके सहायी भये। तातैं ऐसा निश्चय है जो अशुभकर्मका उपशम हुआ विना अर शुभ कर्मका उदय विना कोऊ देवादिक सहायी नाहीं होय है। अपना देह ही वैरी होजाय है। तथा खरदूषणका पुत्र शंबुकुमार महापुरुषार्थकरि द्वादशवर्षपर्यंत बाँसका बीडामें सूर्यहास खड्ग सिद्ध किया अर लक्ष्मण सहज ही लिया अर उसही खड्गसूं खरदूषणका पुत्र शंबुकुमारका मस्तक छेद्या गया। अपना हितके अर्थि साधन करी विद्या आपहीका घात किया। तातैं पूर्वकर्मका उदयकरि अनेक उपकार, अपकार प्रवर्तैं हैं। कोऊ देवादिक आराधन किए हुए धन आजीविका, स्त्री-पुत्रादिक देनेमें समर्थ नाहीं हैं। बहुरि यहां प्रत्यक्षही देखो नगरका राजा समस्त देव, देवी, पीर, पैगंबर, स्वामी, फकीर समस्त मतका भेषी अर समस्त देव पुराणके पाठी नित्य यज्ञ, होम, पाठ करनेवाले ब्राह्मणनिकों बहुत आजीविका देवैं हैं, अर बडा सत्कार अर लक्षां रुपयाका दान देहैं। अर बडा पूजा बलिदान सबकै पहुँचै है तो हू संयोग, वियोग, हानि, वृद्धि जीत-हारके टालनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है तातैं ऐसा निश्चय जानहु जों श्रद्धान नाहीं करकैं भी अनेक देव-देवीनिकूं आराधैं हैं—पूजैं हैं सो सब देवमूढता है। बहुरि जो मन्त्रसाधन, विद्याराधन, देव आराधन समस्त पाप-पुण्यके अनुकूल फलैं हैं। तातैं जो सुखका अर्थी है ते दया, क्षमा, सन्तोष, निर्वांछकता, मंद कषायता वीतरागताकरि एक धर्महीका आराधन करो। अन्य प्रकार वांछा करि पापबन्ध मत करो।

अर जो देवनिका समागममें ही प्रीति करो हो तो उत्तम सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र तथा शचि, इन्द्राणि तथा लौकांतिकदेवनिका संगममें बुद्धि करो। अन्य अधम देवनिका सेवन करि कहा साध्य है? बहुरि मिथ्याबुद्धिकरि स्थापन करैं है और नित्य पूजन करैं हैं, तदि प्रथम तो क्षेत्रपालका पूजन करैं हैं। अर क्षेत्रपालका पूजन किया पाछैं जिनेंद्रका पूजन करैं हैं, अर ऐसी कहै हैं जैसै पहली द्वारपालका सन्मान करके पीछे राजा का सन्मान करना द्वारपाल विना राजासौं कौन मिलावै। तैसैं क्षेत्रपाल विना भगवान्‌का मिलाप कौन करावै? तिन मूढनिके ऐसा विचार नाहीं जो भगवान् तो मोक्षमें हैं भगवान् परमात्माका स्वरूपकूं यो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कैसैं जानेगा अर कैसैं मिलावैगा? अर विघ्नकूं कैसैं विनाशैगा? आपका विघ्न ही नाश करनेकूं समर्थ नाहीं, सो विचाररहित मिथ्यादृष्टि लोक क्षेत्रपालका महा विपरीतरूप बनाय वीतरागके मन्दिरमें प्रथम स्थापन करै हैं जाका हस्तमें मनुष्यका कटा, मूंड, अर गदा, खड्ग अर कूकरा (कुत्ता) वाहनकरि सहित स्थापन करि तैल-गुडका भक्षणतैं क्षेत्रपाल प्रसन्न होय है ऐसैं लोकनिकूं बहकाय पूजै हैं अर इनका पहिली दर्शन पूजन स्तवन करै हैं। सो मिथ्यादर्शन अर कुज्ञानका प्रभाव जानहु। बहुरि पार्श्वजिनेन्द्रकी प्रतिमाके मस्तक ऊपरि फणविना बनावैं ही नाहीं। अर भगवान् पार्श्वअरिहन्त के समवसरणमें धरणेंद्रका फण मस्तक ऊपर कैसैं संभवै है?

१—इस विषयका खुलासा प्रस्तावनामें देख लीजियेगा।

धरणेन्द्र तो भगवान् के तपके अवसरमें फणामण्डप किया था । सो फेर फणामण्डपका प्रयोजन नाहीं । अर पार्श्वजिनेंद्र अर्हन्त भये अर इन्द्रकी आज्ञातें कुबेर समोसरण रच्यो । तहां भगवान् फणसहित नाहीं विराजे हुते चार निकायके देव, मनुष्य, तिर्यंच धर्मश्रवण-स्तवन-बन्दना करते ही तिष्ठैं, यातैं स्थापनाविषैं अर्हंतकी प्रतिबिंबनिके फण कैसैं संभवै ? वीतरागमुद्रा तो ऐसैं सम्भवै नाहीं; परन्तु कालके प्रभावतैं धरणेंद्रकी प्रभावना प्रगट करनेकूं लोक विपरीत कल्पना करनें लगि गये । सो कौन दूर करि सकै । जैसैं पाषाणमय भगवान्का प्रतिबिंब महा अङ्गोपांग सुन्दरताके कर्णानिकूं मस्तककी रक्षाके अर्थि लम्बा करि स्कन्धसौं जोड दे हैं तिनकौं देखि समस्त धातु प्रतिबिंबनिके भी कर्ण जोड दे हैं सो देखादेखी चल गई । तैसैं ही अर्हन्त प्रतिबिंबनिके ऊपरि फणका आकार करते लोकनिकूं देखि तत्त्वकूं समझे विना फण करनेकी प्रवृत्ति चल गई । सो फणके कर देनेतैं प्रतिमा तो अपूज्य होय नाहीं, क्योंकि चार प्रकारके समस्त ही देव सर्व तरफतैं सदैव ही भगवान्का सेवन करै हैं । अर जो फणा मण्डप करनेंतैं ही धरणेन्द्रकूं पूज्य मानैं सो देवमूढता है । ऐसे अनेक प्रकारकरि देवमूढता है तथा गणेश, हनुमान, योनि, लिंग, चतुर्मुख, षट्मुखका रूप देवत्वरहित प्रगट असम्भव तिर्यंचरूपकूं देव मानना, वड पीपलादि वृक्षनिकूं, नदीकूं, जलकूं, पवनकूं, अन्नकूं देव मानना सो समस्त देवमूढता है बहुत कहा लिखिये ।

अब आगे गुरुमूढताका वर्णन करनेकूं सूत्र कहै हैंः—

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम् । पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—परिग्रह, आरम्भ अर हिंसाकरि जे सहित संसाररूप भंवरनिमें प्रवर्त्तन करते ऐसै पाखण्डीनिकी जो प्रधानता उनके वचनमें आदर करि प्रवर्तन करना सो पाखण्डमूढता है ॥ २४ ॥

भावार्थ--जिनेन्द्रधर्मका श्रद्धान-ज्ञानकरि रहित होय जो नाना प्रकारका भेष धारण करिकै आपकूं ऊंचा मानि जगतके जीवनितैं पूजा, वन्दना, सत्कार चाहता जो परिग्रह राखैं हैं अर अनेक आरम्भ करैं है, हिंसाके कार्यनिमैं प्रवर्तन करैं हैं, इन्द्रियनिके विषयनिका रागी संसारी असंयमी अज्ञानीनितैं गोष्ठी करता अभिमानी होय आपकूं आचार्य, पूज्य, धर्मात्मा कहावता रागी-द्वेषी हुआ प्रवर्तै है, अर युद्धशास्त्र, शृंगारके शास्त्र, हिंसाके कारण, आरम्भके शास्त्र, रागके बधावनेवाले शास्त्रनिकूं आप महन्त भये उपदेश करै हैं, ते पाखण्डी हैं । जिनके नाना प्रकारके रसनिकरि सहित भोजनमें तत्परता याहीतैं कामादिककी कथामें लीन होय रहे अर परिग्रहके बंधावनेंके अर्थि दुर्ध्यानी हो रहे हैं, बहुरि जे मुनि, साधु, आचार्य, महन्त पूज्यनाम कहावैं अर लोकनितैं नमस्कार कराया चाहैं अर विकथा करनेमें, विषयनिमें, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, जप, होम, मारण, उच्चाटन, वशीकरणादिक निंद्य आचरण करैं हैं ते पाखण्डी है । तिन पाखण्डीनिका वचनकूं प्रमाण करना अर सत्कार करना धमकार्यमें प्रधान मानना सो पाखण्डमूढता है ।

अब सम्यक्त्वको नष्ट करने वाले अष्ट मद हैं तिनके नाम कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः । अष्टावाश्रित्यमानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ २५ ॥

अर्थ—नष्ट भये हैं मद जिनके ऐसे गणधर देव हैं, ते ऐसे स्मय कहिये मद ताहि कहै है-जो ज्ञाननै, पूजानै, कुलनै, जातिनै, बलनै, ऋद्धिनै, तपनै, शरीरके रूपादिक इन अष्टकूं आश्रयकरि जो मानीपना सो स्मय कहिये हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ—ज्ञानका मद १, पूजाका मद २, कुलका मद ३, जातिका मद ४, बलका मद ५, ऋद्धिका मद ६, तपका मद ७, शरीरका मद ८, सम्यग्दृष्टिकै नाहीं होय है। जिनकै एक हू मद होय सो सम्यक्त्वी कैसैं होय? सम्यग्दृष्टिकै सत्यार्थ चिंतवन है सो विचारै है—हे आत्मन्! जो तू इन्द्रियनिकरि उपज्या ज्ञान पाया है, सो याका गर्व कैसैं करै है? यह ज्ञान तो ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमके आधीन है, विनाशीक है, इन्द्रियनिके आधीन है, वातपित्तकफादिकके आधीन है। याकै विनशनेका प्रमाण मत जानो। याका गर्व कहा करो हो? इन्द्रियांकूं नष्ट होते ही ज्ञान हू नष्ट हो जाय है तथा वातपित्तादिक की घटत-वधत होते क्षणमात्रमें ज्ञान विपरीत हो जाय, बावला हो जाय। अर इन्द्रियजनित ज्ञान पर्यायका लार ही विनसैगा। अर केई बार एकेंद्रिय भया। तहां चार इन्द्रिय ही नाहीं पाई। एकेंद्रियनिमें जडरूप पाषाण, धूल, पृथ्वीरूप, होय असंख्यात काल अज्ञानी भया। अर केई बार विकलत्रयमें हित-अहितकी शिक्षारहित भया। तथा केई बार कूकर, शूकर, व्याघ्र, सर्पादिकविषैं विपरीत ज्ञानी होय भ्रम्या। अर निगोदमें अक्षरके अनन्तवेंभाग ज्ञान रहित भया। अर व्यंतरादिक अधम देवनिमें हू मिथ्यात्वके प्रभावतैं आपापरकूं नाहीं जानता नष्ट होय एकेन्द्रियमें उपजि अनन्तकाल परिभ्रमण किया। अर मनुष्यनिमें हू कोऊ विरले मनुष्यनिके ज्ञानावरणके क्षयोपशमकी अधिकतातैं तीक्ष्ण ज्ञान होय जाय, तो कोई मनुष्य तो नीच कर्मनिमें प्रवीण होय अनेक जलके जीव तथा थलके जीव तथा आकाशचारी जीवनिकें मारनेमें, पकडनेमें, बांधनेमें, अनेक यन्त्र, पींजरा, जाल, फांसी, वनवानेमें प्रवीण होय हैं। केई नाना प्रकारके खड्ग बन्दूक, तोप, बाण, जहर, विष आदिक विद्यामें प्रवीणता पाय अपना चातुर्यका मदकरि उन्मत्त भये ग्रामके, देशके विध्वंस करनेमें, प्रवीण होय हैं। केई सिंह, व्याघ्र, वराहादिक जीवनकी शिकारमें प्रवीण होय हैं। केई ज्ञान पाय अनेक जीवनिके धन हरनेमें, लूटनेमें मार्गमें गमन करतेनिका धन हरनेमें, प्राण हरनेमें प्रवीण होय हैं। केई ज्ञानकी तीक्ष्णता पाय भोले प्राणिनका तिरस्कार करनेमें तथा झूठेनिकुं सांचे कर देनेमें, अर सांचेनिकूं झूठे कर देनेमें धन अर प्राण दोऊनिकें हरनेमें प्रवीण होय हैं। केतेक अपने ज्ञानकी तीक्ष्णता करिकैं अन्य मनुष्यनिकी चुगली करनेमें, लुटाय देनेमें, धन धरती आजीविकादिक विनष्ट करा देनेमें, राजादिकनिकरि दण्ड करा देनेमें, मरण कराय देनेमें प्रवीण होय हैं। केतेक मनुष्यनिके काष्ठ-पाषाण-धातु-रत्ननिके अनेक वस्तु बनवानेमें, केतेकनिके चित्रकर्मादिक अनेक आभरण-वस्त्र-महलादिक अनेक रचना बनाय देनेमें प्रवीणता पाय गर्वके वश भये नष्ट होय हैं। अर केतेक मनुष्य ज्ञानकी

प्रबलता पाय अनेक श्रृंगारशास्त्र, युद्धशास्त्र, वैद्यकशास्त्रादिक बनाय राजानिकूं रिझावै हैं। अनेक छन्द अलंकार विद्या, एकान्तरूप न्यायविद्या, वेद-पुराण क्रियाकाण्डादिककी प्ररूपणा करि गर्विष्ठ भये आत्मज्ञानरहित होय संसार परिभ्रमण करै हैं। अर केई वीतराग धर्मकूं पाय करकैं हू मिथ्यात्वका तीव्र उदयतैं सत्यार्थज्ञानश्रद्धानकूं नाहीं प्राप्त होय अपना अभिमान, वचन, पक्ष पुष्ठ करनेकूं सूत्रविरुद्ध मार्गकूं प्रवर्तन कराय आपकूं कृतार्थ मानैं हैं। ऐसैं ज्ञानकी अधिकता पाय करके हू मिथ्यात्वके प्रभावतैं अधिक-अधिक बन्धनकरि नष्ट ही भया। अर तातैं अब वीतरागी सम्यग्ज्ञानी गुरुनिका उपदेश पाय ज्ञानका गर्व मत करो। भो आत्मन्! तेरा स्वभाव तो सकल लोकालोक का जाननेवाला केवलज्ञानरूप है। अब कर्मके क्षयोपशमतैं उपज्या इन्द्रियांके आधीन शास्त्रनिका किंचित्ज्ञान ताका कहा गर्व करो हो? जैसैं कोऊ प्रबल अपना वैरी मंडलेश्वर राजाकूं बांध बन्दीखाने मेलि किंचित्-कुत्सित भोजन देय नाना त्रास देता राखै अर किसी कालमें कोऊ किंचित् मिष्ट भोजन हू देवै तो तिस भोजनकूं पाय मंडलेश्वर राजा कैसैं गर्व करै? तैसैं तुम्हारा अनन्तज्ञान स्वरूप केवलज्ञानकूं इन कर्मनिनै लूट, देहरूप बन्दीगृहमें पराधीन करि इन्द्रियद्वारैं किंचित् ज्ञान दिया। ताकूं पाय कहा गर्व करो हो? यो ज्ञान विनाशीक, पराधीन है। पर्यायकी लार तो अवश्य नष्ट होय ही गा। अर इस पर्यायमें हू रोगतैं, वृद्धपनातैं, इन्द्रियनिकी विकलतातैं, दुष्टनिकी संगतितैं, कषाय विषयनिकी अधिकतातैं, क्षणमात्रमें विनाश होनेका भरोसा नाहीं। तातैं विनाशीक ज्ञान पाय मद करोगे तो समस्त गुण नष्ट होय ज्ञानरहित एकेन्द्रियादिकनिमें जाय उपजोगे। अर इस कालमें तुम कोऊ कविता छन्द, चरचा समझिकैं तथा नवीन काव्य, श्लोक, शास्त्र, छन्द, युक्ति बनाय करिके तथा जिनमतके सिद्धान्तनिका किंचित् ज्ञान पाय, मदकूं प्राप्त होय रहे हो। सो मदकूं प्राप्त होना योग्य नाहीं। पूर्वकालमें भये ज्ञानी वीतरागीनिके रचे ग्रन्थनिके वाक्यनिकूं देखहु। जो अकलंकदेवकरि रची लघुत्रयी, बृहत्त्रयी, चूलिका ये सात ग्रन्थ तिनिमें प्रवेशके अर्थि माणिक्यनन्दी नामा मुनीश्वरां परीक्षामुख रच्या। तिसकी बढी टीका प्रमेयकमलमार्तंड बारह हजार प्रभाचंद्रजी रची। अर लघुत्रयी ऊपरि न्यायकुमुदचंद्रोदय सोलह हजार श्लोकनिमें प्रभाचंद्रजी रच्या। तथा तत्त्वार्थसूत्रनिकी भाष्य तो चौरासी हजार श्लोकनिमें रची। सो इस अवसरमें प्रसिद्ध नाहीं है, तो हू तिसका मंगलाचरण जो देवागमनामा स्तोत्रके ऊपरि विद्यानन्दीस्वामी आप्तमीमांसानामा (?) अष्टसहस्री रची। तथा अकलंकदेवजी राजवार्तिक रच्या तथा विद्यानन्दस्वामी अठारह हजार श्लोकनिमें श्लोकवार्तिकजी रच्या तथा आप्तपरीक्षा रची। तिनिका निर्बाध वचनके प्रभावकूं देखते बडे बडे वादीनिको गर्व गल जाय। तथा नाटकत्रय, सारत्रय इत्यादिक अनेकान्तरूप निर्बाधयुक्ति वचनकूं जानि कर कैसैं ज्ञानका मद करो हो? कदाचित् श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशमतैं किंचित्ज्ञान पाया है तो बडा दुर्लभ लाभ याका जानि आत्माकूं विषयनितैं तथा अभिमानादिक कषायनितैं छुडाय, परम समता धारण करि संसारपरिभ्रमणका अभावमें यत्न करो। ज्ञानका मदकारि आत्माकूं अनन्तसंसारी मत करहु। ऐसैं ज्ञानके मदका अभावका उपदेश किया॥ १ ॥

अब दूजा पूज्यपनाका मद, ऐश्वर्यका मद, सम्यग्दृष्टि नाहीं करैं हैं। जातैं यो राज्य-ऐश्वर्य आत्माका स्वभाव नाहीं, कर्मका किया

है, विनाशीक है, पराधीन है, दुर्गतिका कारण है। मेरा ऐश्वर्य तो अनन्त चतुष्टयमय, अक्षय, अविनाशी, अखण्ड, सुखमय है तथा अनन्तज्ञानदर्शनमय है, अनन्त शक्तिरूप है। तातैं ये कर्मकृतमहाउपाधिरूप आत्माकूं क्लेशितकरि दुर्गति पहुंचानेवाले स्वरूपको भुलावनेवाले ऐश्वर्य आत्माका स्वरूप नाहीं। कलहका मूल, वैरका कारण, क्षणभंगुर, परमातमस्वरूपकूं भुलावनेवाले, महा दाहके उपजानेवाले, दुःखस्वरूप हैं। अनेक जीवनिके घातक हैं। महाआरम्भ, महा परिग्रहमें अंध करि नरक पहुंचाने वाले है। इस ऐश्वर्य करि मैं केते दिन पूज्य रहूँगा? क्षणमें विध्वंस होय रंक होजाऊंगा। जगतमें धनके लोभी तथा अज्ञानी लोक मोकूं ऊंचा मानै है, सत्कार करैं हैं, सो राज्य संपदादिकनिका मेरे कै दिनका स्वामीपना है? मृत्युका दिन नजीक आवै है; मुझसारिखे अनन्तानन्त जीव संपदाकूं अपनी मानते नष्ट हो गये। परमाणुमात्र हू परद्रव्य मेरा नाहीं है। अन्य द्रव्य अन्यका कैसे होय? इस पर्यायमें कर्म-कृत परका संयोगरूप ऐश्वर्य है। सो दान, सन्मान, शील, संयम, परजीवनिका उपकारकरि प्रशंसा योग्य है। ऐश्वर्य पाय गर्वरहित, वांछारहित, समतासहित, विनयवंतपना ही शुभगतिका कारण है। अन्यप्रकार मिथ्यादर्शनजनित मिथ्याभाव जीवकूं आपा भुलाय ऐश्वर्यमें उलझाय नरक पहुँचावै है। ऐसैं दृढ श्रद्धान करता सम्यग्दृष्टि पूज्यपनाका मद, ऐश्वर्यका मद नाहीं करै। अर अन्य जीवनिकूं अशुभके उदयवशतैं दारिद्रकरि पीडित, अशुभ सामग्री सहित देखि अवज्ञा तिरस्कार नाहीं करै है। करुणा ही करै है ॥२॥

अब सम्यग्दृष्टिके कुलका मद नाहीं होय ऐसा दिखावै हैं,—जगतमें पिताके वंशकूं कुल कहै हैं। सम्यग्दृष्टि विचारै है—मेरा आत्मा कोऊ करि उपजाया नाहीं है। तातैं ज्ञानरूप जो मैं, ताकै कुल ही नाहीं है। ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव ही मेरा कुल है। अर जो अनादि कालका कर्मकरि परापराधीन मैं, इस पर्यायमें जो उत्तम कुल पाया, तो इसका गर्व करना महा अनर्थ हैं। पूर्व भवनिमें मैं अनंतबार नारकी भया, अनन्तबार सिंह-व्याघ्र-सर्पनिके उपज्या, अनन्तवार सूकर, गीदड, गधा, ऊंट, मींढा, भैंसा इत्यादिकनिके कुलमैं उपज्या। अनेकबार म्लेच्छनिके, भीलनिके, चांडाल चमारनिके, धीवरनिके, कसायीनिके कुलमें उपज्या। अर अनेकवार नाई, धोबी, तेली, खाती, लुहार, भडभूजा, चारन, भाट, डूम, भांडनिके कुलमें उपज्या हूँ। और अनेकवार दरिद्रीनिके कुलमें उपज्या हूं। कदाचित् कोऊ शुभ कर्मका उदयतैं ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यनिके कुलमें आय उपज्या। तो अब कर्मका किया कुलमें आय गर्व करना सो बडा अज्ञान है। इस कुलमें मेरा केता दिन वास? अर अनादिसूं इस कुल-जातिमें मेरा वास था नाहीं, नवीन उपज्या हूँ अर विनाशिकरि अन्यकुलमें पुण्य-पापके आधीन उपजना होयगा। तातैं उत्तम कुल पावनेका फल तो ये है जो मोक्षमार्गका साधक रत्नत्रयमें प्रवर्तन करना, तथा अधम आचरणका त्याग करना। बहुरि ऐसा विचार करो—जो मैं पुण्यका प्रभावकरि उत्तम कुल पाया है सो मोकूं नीच कुलके मनुष्य ज्यों अभक्ष्य-भक्षण करना योग्य नाहीं। तथा कलह, विसंवाद, मारण, ताडन, गाली, भण्डवचन बोलना, योग्य नाहीं। तथा जुवाकी क्रीडा, वेश्यासेवन, परधनहरणादिक करना योग्य नाहीं। तथा निंद्यकर्मकरि आजीविका करना अयोग्य है। तथा हास्यवचन, असत्य वचन, छलकपट करना योग्य नाहीं। अर उत्तम कुलकूं पाय करिकैं हू जो निंद्यकर्म करूंगा तो इस लोकमें धिकार योग्य होय दुर्गतिका पात्र होऊंगा। ऐसैं कुलका मद सम्यग्दृष्टि नाहीं करैं हैं ॥ ३ ॥

बहुरि माताकी पक्ष जाति है। सो सम्यग्दृष्टि जीव जातिका गर्व नाहीं करैं हैं। जातैं अनेकवार नीच जातिमें उपज्या। बहुरि एकबार उच्च जातिमें उपज्या। अनन्तबार नीच जातिमें अर एकबार उच्च जातिमें उपज्या। ऐसैं नीच जाति अनंतबार पाई। अर उच्च जातिहू अनन्तबार पाई है। अब उच्च जातिके पायेका कहा गर्व करो हो? अनेकवार निगोदमें उपज्या तथा कूकरी, सूकरी, चांडाली, भीलनी, चमारी, दासी वैश्यानिके गर्भमें अनेकबार जन्म धारण किया। अब नीच जातिमें उपज्या पुरुषका तिरस्कार तो कैसै करो हो? अर उच्च जातिकी माताके जन्म लेय मदोन्मत्त कैसे भये हो? या जाति तो पुण्य-पापकर्मका फल है। सो रस देय निर्जरैगा, जाति-कुलमें ठहरना कै दिनका है? तातैं जातिकुलको विनाशीक अर कर्मके आधीन जानि उत्तम शील पालनेमें, क्षमा धारणमें, स्वाध्यायमें, परोपकारमें, दानमें, विनयमें, प्रवर्तनकरि जातिका उच्चपणा सफल करो। जातिका मदकरि संसारमें नष्ट मत होहू ॥४॥

अब बलका मद हू सम्यग्दृष्टिकै नाहीं होय है—सम्यग्दृष्टि विचारै हैं—मैं आतमा अनन्त बलका धारक हूँ। सो कर्मरूप मेरा प्रबल वैरी। मेरा बलकूं नष्ट करि बलरहित एकेन्द्रिय विकलत्रयादिकमें समस्त बल आच्छादनकरि मेरी बलरहित ऐसी दशा करी जो जगतकी टोकरांतै कुचल्या गया चींथ्या गया। अब कोऊ वीर्यान्तरायनाम कर्मका किंचित्-क्षयोपशमतैं मनुष्य शरीरमें आहारकें आश्रयतैं किंचित् बलका उघाड हुआ है। अब जो उस देहके आधार पराधीन बलतैं जो मैं तपश्चरणकरि कर्मनिका नाश करूं तो बल पावना सफल है। तथा इस बलकें लाभतैं मैं व्रत, उपवास, शील, संयम, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग करूं तथा कर्मके प्रबल उदयहीतैं आये हुए उपसर्ग परीषहनितैं चलायमान नाहीं होऊं, रोग-दारिद्रादिक कर्मनिके प्रहारतैं कायर नाहीं होऊं, दीनताकूं प्राप्त नाहीं होऊं तो मेरा बल पावना सफल है। तथा दीन, दरिद्री, असमर्थनिके दुर्वचन श्रवणकरके हू क्षमा ग्रहण करूं तो मेरी आत्माकी विशुद्धताका प्रभावतैं दुर्जय कर्मनिकूं मारि क्रम क्रम करि अनन्तवीर्यकूं प्राप्त होय अविनाशी पद पाऊं। अर जो बलवान होय निर्बलनिका घात करूं अर असमर्थनिकी धन, धरती, स्त्रीनिकूं हरण करूं तथा अपमान तिरस्कार करूं, तो सिंह, व्याघ्र, सर्पादिक दुष्ट तिर्यंचनिकी ज्यों परजीवनिके घातके अर्थ ही मेरे बल पावना रह्या, ताका फल दीर्घकाल नरकनिके दुःख, तिर्यंचनिके दुःख भोग; निगोदमें अनंतानन्त काल परिभ्रमण करूंगा। तातैं बलका मदसमान मेरी आत्माका घातक अन्य नाहीं है ॥ ५ ॥

बहुरि ऋद्धि जो धन सम्पदा पावनेका ज्ञानीके गर्व नाहीं होय हैं। सम्यग्दृष्टि तो धनादिकके परिग्रहको महाभार मानै है। ऐसा दिन कदि आवेगा जो समस्त परिग्रहका भारकूं छांडिकरि मैं आत्मिक धनकी संभाल करूं। यो धन-परिग्रहको भार महाबन्धन है। अर राग, द्वेष, भय, संताप, शोक, क्लेश, वैर, हानिकूं कारण है, मद उपजावनेवाला है, महा आरम्भादिकका कारण है, दुःख-रूप दुर्गतिका बीज है। परन्तु करिये कहां? जैसैं कफमें पडी मक्षिका आपकूं छुडावनेकूं समर्थ नाहीं अर कर्दमके समूहमें फंस्या वृद्ध अशक्त बलद निकलनेकूं समर्थ नाहीं अर कर्दमके द्रहमें पड्या हस्ती आपकूं निकासनेकूं समर्थ नाहीं होय है; तैसैं मैं हू इस धन कुटुम्बादिकके फन्दमेंसूं निकस्या चाहूं हूं, तो हूं आसक्तपनातैं तथा रागादिकका प्रबल उदयतैं तथा निर्वाह होनेकी कठिनताके देखनेतैं कम्पायमान हूँ। ऐसैं अपमान भयादिकका करनेवाला, परिग्रहतैं निकसनेका

इच्छुक, सम्यग्दृष्टि पराधीन, विनाशीक, दुःखरूप सम्पदाका गर्व नाहीं करै । याका संगमकी बडी लज्जा है जो मैं मेरी स्वाधीन, अविनाशी, आत्मीक लक्ष्मीकूं छांडि, ज्ञानी होय करके भी इस खाक समान लक्ष्मीकूं नाहीं छांडू हूँ । इस समान मेरी निर्लज्जता और कहा होयगी और हीनता कहा होयगी ? ॥ ६ ॥

अब सम्यग्दृष्टिके तपका मद नाहीं होय है। मद तो तपका नाश करनेवाला है । अर जे तपके प्रभावकरि अष्टकर्मरूप वैरीनिकूं नष्ट करि परमात्मापनाकूं प्राप्त भये ते धन्य हैं । मैं संसारी आसक्त हुआ इन्द्रियनिकूं भी विषयनितैं रोकनेकूं समर्थ नाहीं, कामका विजय किया नाहीं, निद्रा, आलस्य, प्रमादकूं हू जीता त्या नाहीं । इच्छा रोकनेमें समर्थ नाहीं । पर्यायमें लालसा घटी नाहीं ।जीवनेकी वांछा मिटी नाहीं । मरनेका भय दूर हुआ नाहीं । स्तवनमें, निन्दामें, लाभमें, अलाभमें, समभाव हुआ नाहीं । तितनें हमारे काहेका तप ? तप तो वह है जातैं कर्मवैरीनिके उदयकूं जीत शुद्धात्मदशामें लीन होय जाय । धन्य हैं जिनके वीतरागता प्रगट हुई है । ऐसा विचारकरि संयुक्त सम्यग्दृष्टिकै तपका मद केसैं होय ? ॥७॥

बहुरि सम्यग्दृष्टिकै शरीरके रूपका गर्व नाहीं है । जातैं सम्यग्दृष्टि तो अपना रूपकूं ज्ञानमय देखैं है । जिसमें समस्त वस्तुकूं यथावत् अवलोकन करिये और यो चामडामय शरीर को रूप हमारो रूप नाहीं है । यो देहका रूप क्षणक्षणमें विनाशीक है । एक दिन आहार पान नाहीं करै, तो महाविरूप दीखै है। इस देहका रूप समय समय विनाशीक है अर जरा आजाय तदि महासूगला, भयङ्कर दीखने लगि जाय है । अर रोग तथा दरिद्रता आजाय तदि कोऊके देखनेयोग्य, स्पर्शनेयोग्य नाहीं रहै । इस रूपका गर्व कौन ज्ञानी करै ? एक क्षणमें अंध हो जाय, एक क्षणमें काणा, कूबडा, लूला, टूटा, वक्रमुख, वक्रग्रीव, लम्ब–उदरादिक विरूप होजाय, इहां रूपका गर्व करना बडा अनर्थ है । सुन्दर रूप पाय शीलकूं मलीन मत करो । दरिद्री, दुःखी, रोगी, अंगहीन, कुरूप, मलीन देखि तिनका तिरस्कार मत करो, ग्लानि मत करो । संसारमें महाकुरूप मनुष्य-तिर्यंचनिमें महासूगला भयङ्कररूप अनेक-अनेकवार पाया है । तातैं रूपका गर्व मत करो ॥ ८ ॥

ऐसें सम्यग्दर्शनका नाश करने वाला अष्ट मदनिका स्वप्नमें भी जैसैं संसर्ग नाहीं होय वैसैं निरन्तर करना योग्य है ।

अब जो पुरुष मदोन्मत्त होय अन्य धर्मात्माजनका तिरस्कार करै है, तिसके दोषका उपजना दिखावता सन्ता सूत्र कहै है—

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः । सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥

अर्थ—गर्वरूप है अभिप्राय जाका ऐसा जो कोऊ पुरुष गर्वकरि धर्मके धारक अन्य धर्मात्मा पुरुषनिनै तिरस्कार करै है, सो आपका धर्मका तिरस्कार करै है । जातै धर्मात्मा पुरुष विना धर्म नाहीं पाइये है, तातैं जो धन, ऐश्वर्य, रूपादिकका मद करिकैं धर्मात्माकूं तिरस्कार करैं सो आपकां धर्महीका तिरस्कार किया, क्योंकि धर्म तो कोऊ पुरुषके आधार है, पुरुष विना है नाहीं ॥ २६ ॥

भावार्थ—संसारमें धन, ऐश्वर्य, आज्ञाका बडा मद है। मदकरि गर्विष्ठ होय जाय, तदि देव-गुरु-धर्मका हू विनय भूले है। ऐसा विचार करै है—जो मन्दिर कहा वस्तु है ? मैं अन्य नवीन बनाय लूंगा, वा हमारा ही बनाया है। अर जो ये तपस्वी त्यागी हैं, सो हू हमारे ही आधीन भोजन वस्त्रकरि जीवै है अर यो धर्म हू धन खरचनेतैं ही होय है। धन खरच्यांसूं ही ठाकुरजीकी पूजा प्रभावना होय है। ऐसैं अवज्ञा करै है। तथा अनेक पापाचरण करतो हू कोऊ अभिमानके वश होय दान, पूजा प्रभावनामें पांच रुपया लगाय आपकूं धन्य मानै है। तथा धन, आज्ञा, ऐश्वर्यका मदकरि अन्ध होय ऐसा मानै है। जो जगतमैं धन ही बडा है। जो धनवानकै घर बडे बडे ज्ञानी, शास्त्रनिके पारगामी, काव्य श्लोकनिके बनावनेवाले, नित्य आवै हैं। बडे-बडे ज्ञानी, शास्त्रनिके अर्थि, धनवाननिकूं घरमें आप श्रवण कराता फिरै है। तथा अनेक कला चतुराईवाला धनवानके घर नित्य आवै हैं। तथा पूजन करनेवाला प्रभावना करनेवाला तथा भजन करनेवाला अनेक धनवानका आश्रय लेय धनवानकूं श्रवण करावता फिरै है। तथा उपवास, व्रत, वेला, तेला करनेवाला त्यागी-तपस्वी धनवाननिके ही घर भोजनकूं आवै हैं। तथा मन्त्र-जापादिक हू धनवन्त पुरुषनिके भले होनेकूं करै हैं। तातैं समस्त धर्म और समस्त गुण हमारे धनके आधीन है। ऐसैं धन-ऐश्वर्यकरि अपना आत्माकूं ऊंचा मानता कृतकृत्य भये धर्मात्मानिकी अवज्ञा करै हैं; जातैं आत्मज्ञानी, परमार्थी, परमसंतोषीनिकूं तो देखै नाहीं। जिनको चक्रीकी सम्पदा अर इन्द्रलोककी सम्पदा हू दुःखरूप दीखै है, वे पुरुष धनवन्तनिका समागम स्वप्नहूमें नाहीं चाहै हैं। अर जगत् के अल्पपुण्यवाले निर्धन लोक गृहकुटुम्बके पालनेकी आशा करि संतप्त भये अपना अभिमान छांडि धनवानके घर आये, दयावान उपकारी जानि करिकै तथा धर्मसूं प्रीति अर धन पावनेका फल लेनेवाला जानि धनवानके द्वारै आवै हैं; परन्तु धनका मदकरि अन्ध होय, ताकै तो दान नाहीं होय है; उपकार नाहीं करै है; दयारहित निर्दयी होय है। केवल हमारा मान मत छीजो, मत बिगाडो, ऐसैं मानता मरणकरि, बहुत ममता कृपणताका प्रभावकरि, नरक तिर्यंचगतिमें बहुत काल परिभ्रमण करै हैं। बहुरि जे धन सम्पदा पाय करिके मदरहित हैं, तिनकै ऐसा विचार है जो या धनसम्पदा हमारी नाहीं, धनसंपदा रूप हमारा नाहीं, कोऊ पूर्वकृत पुण्य फला है, सो विनाशीक है। अब इस सम्पदाकरि किसीका उपकार करूं, दरिद्री लोगनिका संताप दूर करूं, करुणाकरि दुःखित जीवनिका उपकार करूं, तथा जिनधर्मके श्रद्धानी, ज्ञानी, तिनका दारिद्रादिक संताप मेटि निराकुल करूं। समस्त जन धनवानकी आशा करै हैं। मैं दरिद्री होता तो मौतैं कोन उपकार चाहता ? तातैं मेरे शुभ कर्म फल्या है, तो आश्रितनिका भरण पोषण करूं। बालक, वृद्ध, रोगी, अनाथ, विधवा, अशक्तनिका उपकार करिहीं मेरा धन पावना सफल है। तथा ऐसा कार्यमें लगाऊं, जातैं जिनधर्मकी परिपाटी बहुत काल प्रवर्तैं; ज्ञानाभ्यास की परम्परा चली जाय; नित्यपूजन, ध्यान, अध्ययन, तप, शील करि संसारके उद्धार करनेवाला कार्यका प्रवर्तन करै। ये धन पाएका फल है-लाभ है। जो पर उपकारमें धन नाहीं लागैगा, तो अवश्य विनाश होसी ही। किसीकी लार सम्पदा परलोक गई नाहीं। दान विना केवल पाप दुर्ध्यान कराय यह सम्पदा संसारमें डबोय देगी। इस सम्पदा पाइवेका तो दान करना ही फल है। कोट्यां मनुष्य पूर्वैं दान नाहीं दिया, ते घर घर द्वारै अन्न मांगता फिरै है, उदर भर भोजन नाहीं मिलै है, शरीर ऊपरी

कपडा नाहीं मिलै है, दरिद्री दीन हुआ परकी उच्छिष्टादिकनिमें आशा करता फिरै है। सो दानरहितताका तथा कृपणताका फल है। मनुष्यनिका, पशुवनिका दासपना करता हू उदर नाहीं भर सकै है। दान विना मोकूं आगामी कालमें सम्पदा नाहीं प्राप्त होयगी। दानमें, धर्मके स्थाननिमें, जो लागाऊंगा तो (धन का) पावना सफल है। मरण हुआ परलोक साथी जायगी नाहीं; जहां धरी है तहां रहैगी। तातैं कोऊ जीवनिके उपकारमें खरच होय तो सुफल है वाही सम्पदा हमारी है। ऐसा विचार सहित सम्यग्दृष्टि है। सो धनको परोपकारके कार्यनिमें लगावनेमें उद्यमी रहै है। यद्यपि धर्मात्मा पुरुषनिके तो या संपदा ग्रहण करनेयोग्य ही नाहीं, मोहकरि अंध करनेवाली है, आत्माकूं भुलावने वाली है। यामें सम्यग्दृष्टि अपनापन ही नाहीं करै, तथापि चारित्रमोहकै उदयतैं राग नाहीं घटै, तो परजीवनिके उपकारमें तो अवश्य लगावना। बहुत कष्टतैं उपजाई ताकूं उत्तम कार्यमें लगावना छांडिकरि मरजानेमें अपना कहा भला होयगा? या विचारि, जे पापरहित जन हैं, ते निर्धन, रोगी, दुःखित, जननिकूं देखि अवज्ञा नाहीं करै हैं; धन देय दुःख मेटे हैं, धर्ममें प्रवर्तावनेवाले शुभ कार्यमें खरचि करावनेवालेनिकूं देखि बडा आनन्द माने हैं, धर्म साधन करनेवालेनिके शामिल होय धनके भोगनेमें आनन्द मानै हैं, ते संपदा पावनेका फल लिया है अर आगैं परलोकमें देवनिकी सम्पदा, चक्रीनिकी सम्पदाकूं दानी ही प्राप्त होय हैं।

अर आगैं जे संपदामें रागी हैं, तिनकूं संपदाका स्वरूप दिखावनेकूं सूत्र कहैं हैं—

यदि पापनिरोधोऽन्यसंपदा किं प्रयोजनम्। अथ पापस्रवोऽस्त्यन्यसंपदा किं प्रयोजनम् ॥ २७ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि विचारै है—जो ज्ञानावरणादि अशुभ पापप्रकृतिनिका आस्रव होना मेरे रुक गया, तो इसतैं अन्य संपदाकरि मेरे कहा प्रयोजन है। अर जो हमारे पापका आस्रव होय है, अर संपदा आवै है, तो इस संपदाकरि कहा प्रयोजन है ॥२७॥

भावार्थ—इस जीवके जो त्यागरूप संयमरूप प्रवृत्तिकरि पापका आस्रव होना रुक गया तो अन्य जो इन्द्रियनिके विषयनिकी संपदा, राज, ऐश्वर्य संपदा नाहीं भई, तो इस संपदातैं कहा प्रयोजन है? आस्रव रुकनेतैं तो निर्वाणसंपदा, अहमिंद्रलोककी स्वर्गलोककी संपदा प्राप्त होय है। या खाक-धूलिसमान क्लेशकी भरी क्षणभंगुर संपदाकरि कहा प्रयोजन है? अर जो इस जीवके त्यागरूप संयमरूप प्रवृत्तिकरि पापका आस्रव नाहीं है, सो निर्वन्ध नाम संपदा बडी विभूति महालक्ष्मी है। अर जो अन्याय, अनीति, कपट, छल, चोरी इत्यादिककरि मेरे पापका आस्रव निरन्तर होय है अर धन सम्पदा प्राप्त होगई, तो इस करि कहा प्रयोजन है? शीघ्र ही मरणकरि अन्तर्मुहूर्तमें नरकका नारकी जाय उपजैगा। तातैं सम्यग्दृष्टिकै तो पाप कर्मके आस्रवका आवनेका बडा भय है अर पापका आस्रव रुक जानेकूं ही महा सम्पदाका लाभ माने है अर इस संसारकी सम्पदाकूं तो पराधीन दुःखकी देनेवाली जानि, यामें लालसा नाहीं करै है। अर कदाचित् लाभांतराय भोगांतराय कर्मका क्षयोपशमतैं प्राप्त होय ताकूं पराधीन, विनाशीक, बन्ध करनेवाली जानि इस सम्पदामें लिप्त नाहीं होय है। वर्तमानकी किंचित् वेदनाकूं मेटनेवाली मानि उदासीन भया कडवी औषधि ज्यों ग्रहण करै है, सम्पदाकूं अपना हित जानि वांछा नाहीं करै है।

अब छह अनायतनका ऐसा स्वरूप जानना--कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र अर कुदेवका श्रद्धान वा सेवन करनेवाला अर कुगुरुकी सेवा करनेवाला अर कशास्त्रका पढ़नेवाला ऐसैं छह प्रकार ये धर्मके आयतन कहिये स्थान नाहीं । इनतैं कदाचित् अपना भला होना नाहीं, यातैं छहूं अनायतन हैं । इनका संक्षेप स्वरूप ऐसा जानना–जामें सर्वज्ञपना नाहीं, वीतरागपना नाहीं, जाकूं कामी क्रोधी तथा चोरनिका अर जारनिका शिरोमणि कहिये, तथा जाकूं भोजनका इच्छुक, मांसका भक्षक, क्रोधी लोभी अपनी पूजा करावनेका इच्छुक, जीवनिका संहार करनेवाला, अपने भक्तनिका उपकारक, अभक्तनिका विनाशक कहैं, जिनको बहुत मूढलोग देवबुद्धि करि पूजैं हैं अर देवपनाका आयतन नाहीं उसमें देवबुद्धि करना मिथ्या है, वे देवपनाका आयतन नाहीं है । बहुरि जो व्रतसंयमरहित अनेक पाखण्ड भेषका धारक तिनिमें व्रत, त्याग, विद्याध्ययनादिक परिग्रह त्याग देखि करकैं तथा मन्त्रजन्त्रतन्त्रविद्या ज्योतिष, वैद्यक तथा शकुनविद्या तथा इन्द्रजालादिक विद्यानिकरि अनेक मूढ लोगनिके मान्य-पूज्य देखकरि पाखण्डी जिन-आज्ञाबाह्य भेषीनिमें पूज्य गुरुपना नाहीं जानना । बहुरि खोटे मिथ्याशास्त्र हिंसाके पोषक, तिनिमें आत्महित नाहीं । सो शास्त्र सम्यग्ज्ञानका आयतन नाहीं है । अर कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रनिके सेवन करनेवाले इनकी उपासनातैं अपना कल्याण माननेवालेनिकूं सम्यग्दृष्टि प्रशंसा नाहीं करै है । ऐसैं सम्यग्दर्शनके घात करनेवाले तीन मूढता, अष्ट मद, अष्ट शङ्कादिक दोष, छह अनायतन इन पच्चीस दोषनिका परिहार करि, व्यवहार सम्यग्दर्शनके धारणतैं निश्चय सम्यग्दर्शनकूं प्राप्त होहू । अर जाकै पच्चीस दोषरहित आत्माका श्रद्धानभाव है ताहीकै निश्चय सम्यग्दर्शन होनेका नियम है । जाकै बाह्यदोष ही दूर नाहीं होय, ताकै अन्तरङ्ग हू सम्यग्दर्शन शुद्ध नाहीं होय है ।

अब सम्यक्त्वके भेद अर उत्पत्ति कैसैं होय है सो कहै हैं;—

सम्यक्त्व तीन प्रकार है–उपशमसम्यक्त्व १, क्षयोपशमसम्यक्त्व २, क्षायिकसम्यक्त्व ३ । संसारी जीवनकी अनादिकालतैं अष्टकर्मनिका बन्धन है । तिनमें मोहनीयकर्मका भेद जो दर्शनमोहनी ताका तीन भेद है । मिथ्यात्व १, सम्यंग्मिथ्यात्व २, सम्यक्त्वप्रकृतिमिथ्यात्व ३ । अर चारित्रमोहनीका भेद जो अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसैं सात प्रकृति सम्यक्त्वका घात करनेवाली हैं । इन सप्त प्रकृतिनिका उपशमतें उपशमसम्यक्त्व होय है । अर इन सप्त प्रकृतिनिका क्षयतैं क्षायिकसम्यक्त्व होय है । इन ही सप्त प्रकृतिनिका क्षयोपशमतैं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होय है । याहीकूं वेदकसम्यक्त्व हू कहिये हैं । तहां अनादिमिथ्यादृष्टि जीवकैं पहलां उपशमसम्यक्त्व ही होय है । अर मिथ्यादृष्टिकै मिथ्यात्व छूटि सम्यक्त्व होय ताकूं प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिये है । अर जो उपशमश्रेणीकी आदिमें क्षयोपशमसम्यक्त्वतैं उपशमसम्यक्त्व होय, सो द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है । अब मिथ्यादृष्टिकैं मिथ्यात्वगुणस्थानतैं उपशमसम्यक्त्व कैसैं होय, ताकूं श्रीलब्धिसारजीके अनुसार किंचित् लिखिये है,—

सम्यग्दर्शन उपजै है सो चारोंही गतिमें अनादिमिथ्यादृष्टि वा सादिमिथ्यादृष्टिकै उपजै है परन्तु संज्ञीकै ही उपजैं है । असंज्ञीकै नाहीं उपजै । पर्याप्तकै ही उपजै, अपर्याप्तकै नाहीं उपजै । मन्द कषायीकैही उपजै, तीव्र कषायीकै नाहीं उपजै । भव्यकैही उपजै, अभव्यकै नाहीं उपजै । गुण दोषनिका विचार सहित साकारोपयोग जो ज्ञानोपयोगयुक्तकैही उपजै, दर्शनोपयोगीकै नाहीं उपजै । जागृतअवस्थाहीमें

उपजै, निद्राकरि अचेतकै नाहीं उपजै । सम्मूर्च्छनकै नाहीं उपजै । अर पांचमी करणलब्धिमें उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण तिसका अन्त समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व प्रगट होय है । अब पंचलब्धिके नाम ऐसैं हैं–क्षयोपशमलब्धि १, विशुद्धिलब्धि २, देशनालब्धि ३, प्रायोग्यलब्धि ४, करणलब्धि ५, इन पांच लब्धिविना सम्यक्त्व नाहीं उपजै । तिनमें चार लब्धि तो कदाचित् संसारी भव्य तथा अभव्यकै भी होय जाय हैं; परन्तु करणलब्धि तो जाकै सम्यक्त्व तथा चारित्रकूं अवश्य प्राप्त होना होय, तिसहीकै होय है । अब क्षयोपशमलब्धिकूं आगममें ऐसैं कहैं हैं–जिस कालमें ऐसा योग आ मिलै जो अष्ट कर्मनिमें ज्ञानावरणादिक समस्त अप्रशस्त प्रकृतीनिकी शक्ति जो अनुभाग सो समय समय प्रति अनन्तगुणा घटता, अनुक्रमकरि उदय आवै, तिसकालमें क्षयोपशमलब्धि होय है । जातैं उत्कृष्ट अनुभागका अनन्तवां भाग परिमाण जे देशघातिस्पर्द्धक तिनका उदय होते हू उत्कृष्ट अनुभागका अनन्त बहुभाग मात्र जे सर्वघातिस्पर्द्धक तिनकी सत्तामें अवस्थिति सो उपशम । ऐसा संयोगकी प्राप्ति जिस कालमें होय, सो क्षयोपशमलब्धि जाननी । प्रथम भई जो क्षयोपशमलब्धि, तिसकै प्रभावतैं उपज्या, जो जीवकैं सातावेदनीय आदि शुभ प्रकृतिके बन्धकूं कारण, धर्मानुरागरूप शुभ, परिणामनिकी प्राप्ति होय, सो विशुद्धिलब्धि है । सो ठीक ही है, जातैं अशुभकर्मनिका रस देय घटि जाय तदि जीवकै संक्लेशपरिणामकी हानि होजाय तदि विशुद्धपरिणामनि की वृद्धि होनी युक्त ही है । ऐसैं दूजी विशुद्धिलब्धि कही । अब देशनालब्धिका ऐसा स्वरूप जानना,—छह द्रव्य नवपदार्थनिके उपदेश करनेवाला आचार्यादिकनिका लाभ, अर तिनिका उपदेशकी प्राप्ति, अर तिनकरि उपदेश्या पदार्थनिका धारण करनेकी प्राप्ति, सो देशनालब्धि है । नरकादिकनिमें उपदेशदाता जहां नाहीं हैं । तहां पूर्व जन्ममें धार्या जो तत्त्वार्थ जिसके संसारका बलतैं सम्यग्दर्शन होय है ।

अब चौथी प्रायोग्यलब्धिका स्वरूप आगममें जैसा है सो कहै हैं,—ए कही जे तीन लब्धिकरि संयुक्त जे जीव समय-समय विशुद्धताकी वृद्धिकरि आयुकर्मविना सात कर्मनिकी अन्तःकोटाकोटिसागरमात्र स्थिति अवशेष राखै, तिसकालविषै जो पूर्वैं स्थिति थी ताको एक कांडक घात करि छेदि तिस कांडकके द्रव्यको अवशेष रही स्थिति विषै निक्षेपण करै है । अर. घातिकर्मनिका जो अनुभाग कहिये रस, सो तो दारु अर लतारूप अवशेष रहै है, शैलास्थिरूप नाहीं रहै है, अर अघातियानिका अनुभाग निंबकांजीररूप रहै, विष अर हालाहलरूप नाहीं रहै है। पूर्वैं जो अनुभाग था, ताके अनन्तका भाग दीए बहुभाग मात्र अनुभागकूं छेदि अवशेष रह्या अनुभागविषै प्राप्ति करैं हैं । तिस कार्य करनेकी योग्यताकी प्राप्ति, सो प्रायोग्यलब्धि है । सो भव्यके वा अभव्यकै भी समान होय है । बहुरि संक्लेशपरिणामी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकै जो संभवै ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अर उत्कृष्टस्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्त्व होतैं जीवकै प्रथमोपशमसम्यक्त्व नाहीं ग्रहण होय है अर विशुद्ध क्षपकश्रेणीविषै संभवता ऐसा जघन्यस्थिति बन्ध अर जघन्यस्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्त्व होते हू प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्ति नाहीं होय है । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके सम्मुख

भया जो मिथ्यादृष्टि जीव, सो विशुद्धिताकी वृद्धिकरि वधता संता प्रायोग्यलब्धिका प्रथम समयतैं लगाय पूर्वस्थितिके संख्यातवें भागमात्र अन्तःकोटाकोटिसागर प्रमाण आयुविना सात कर्मनिका स्थितिबन्ध करै है । तिस अन्तःकोटाकोटीसागर स्थितिबन्धतैं पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटतां स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्तपर्यंत समानता लिये करै है । बहुरि तातैं पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त समानता लिये करै । ऐसैं क्रमतैं संख्यात स्थितिबंधापसरणानि करि पृथक्त्व सौ सागर घटैं पहिला प्रकृतिबंधापसरणस्थान होय । बहुरि इसही क्रमतैं तिसतैं हू पृथक्त्व सौ सागर घटैं दूजा प्रकृतिबंधापसरणस्थान होय । ऐसैं ही क्रमतैं इतना स्थितिबंध घटे एक एक स्थान होय । ऐसैं प्रकृतिबंधापसरणके चौंतीस स्थान होय हैं । यहां पृथक्त्व[१] नाम सात-आठका है तातैं यहां पृथक्त्व सौ सागर कहनेतैं सातसै वा आठसै सागर जानना । अब यहां कैसी कैसी प्रकृतीनिका बन्धमेंतैं व्युच्छेद होय है, यहांतैं लगाय प्रथमोपशमसम्यक्त्वपर्यंत बंध नाहीं होय ऐसैं बंधापसरण हैं, तिन चौंतीस बन्धापसरणका वर्णन किए कथनी बहुत होजाय । जो विशेष जान्या चाहैं सो श्रीलब्धिसारग्रन्थतैं जानहु । अर और हू विशेष प्रायोग्यलब्धिमें जानना ।

अब पंचमी करणलब्धि सो भव्यहीकै होय अभव्यके नाहीं होय है । अधःकरण १, अपूर्वकरण २, अनिवृत्तिकरण ३, ऐसैं तीन करण हैं । इहां करण नाम कषायनिकी मंदतातैं विशुद्धरूप आत्मपरिणामनिका है । तिनमें अल्प अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल तो अनिवृत्तिकरणका है । यातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका काल है । यातैं संख्यातगुणा अधःप्रवृत्तकरणका काल है । सो हू अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है । जातैं इस अन्तर्मुहूर्तके असंख्यात भेद हैं । इस अधःप्रवृत्तकरणकालके विषैं अतीत-अनागत-वर्तमान त्रिकालवर्ती नानाजीवसंबंधी इस करणके विशुद्धितारूप परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं । ते परिणाम अधःप्रवृत्तकरणके जेते समय हैं तितनेमें समान वृद्धि लिये समय समय वृद्धि लिए हैं । जातैं इस करणके नीचले समयके परिणामनिकी संख्या अर विशुद्धिता ऊपरले समयवर्ती किसी जीवके परिणामनितैं मिलै है, तातैं याका नाम अधःप्रवृत्तकरण है । याका परिणामनिकी संख्या विशुद्धिताके लौकिक दृष्टांत अलौकिक संदृष्टि गोमट्टसारमें तथा लब्धिसारमें हैं तहांतैं विशेष जानना । इहां एता बडा विस्तार कैसैं लिखा जाय, ग्रन्थ बहुत बडा होजाय । बहुरि अधःप्रवृत्तकरणके परिणामनिका प्रभावतैं चार आवश्यक होय हैं । एक तो समय समय प्रति अनन्तगुणी विशुद्धिताकी वृद्धि होय है । दूजा स्थितिबन्धापसरण होय है । पूर्वैं जेता प्रमाण लिये कर्ममिका स्थितिबन्ध होता था, तिसतैं घटाय घटाय स्थितिबन्ध करैं है । बहुरि सातावेदनीयकूं आदि देकर प्रशस्तकर्मप्रकृतिनिका समय समय अनन्तगुणा वधता गुड, खांड, शर्करा, अमृत समान चतुःस्थानलियें अनुभागवन्ध होय है । बहुरि असातावेदनीयादि अप्रशस्तकर्मप्रकृतिनिका अनन्त गुणा घटता निंब कांजीर समान द्विस्थान लियें अनुभागबन्ध होय है । विष-हालाहलरूप नाहीं होय है । ऐसैं

---

[१]—पृथक्त्व का अर्थ शास्त्र में तीन से नव तक का पाया जाता है ।

अधःप्रवृत्तकरणके परिणामतैं चार आवश्यक होय हैं। अधःप्रवृत्तकरणका अन्तर्मुहूर्तकाल व्यतीत भये दूजा अपूर्वकरण होय है। अधःकरणके परिणामतैं अपूर्वकरणके परिणाम असंख्यात लोकगुणं हैं। सो नानाजीवनिकी अपेक्षा हैं। एक जीवकी अपेक्षा एक समयमें एक ही परिणाम होय है। एक जीवकी अपेक्षा तो जेते अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्तकालके समय हैं, तेते परिणाम हैं। ऐसे ही अधःकरणके भी एक जीवके एक समयमें एक परिणाम ही होय हैं। नाना जीवनिकी अपेक्षा एक समयकै योग्य असंख्यात परिणाम हैं, ते अपूर्वकरणके परिणाम भी समय समय सदृश चय करि वर्धमान हैं। इस अपूर्वकरणके परिणाम हैं ते नीचले समय संबंधी परिणामनितैं समान नाहीं हैं। प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धितातैं द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धिता हू अनन्तगुणी है। ऐसैं परिणामनिका अपूर्वपणा है। तातैं दूसरा करणकूं अपूर्वकरण कह्या है। अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय अन्तसमयपर्यंत अपने जघन्यतैं अपना उत्कृष्ट अर पूर्व समयका उत्कृष्टतैं उत्तर समयका जघन्य परिणाम क्रमतैं अनंतगुणी विशुद्धिता लिये सर्पकी चालवत् जानने। इहां अनुकृष्टि नाहीं है। अपूर्वकरणके पहले समयतैं लगाय यावत् सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीका पूर्ण काल जो जिस कालमें गुणसंक्रमण करि मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमोहनी, मिश्रमोहनीरूप परिणमावै है, तिसकालका अन्तसमयपर्यंत गुणश्रेणी १, गुणसंक्रमण २, स्थितिखंडन ३, अनुभागखण्डन ४ ये चार आवश्यक होय हैं। बहुरि स्थितिबन्धापसरण है सो अधःकरणका प्रथम समयतैं लगाय तिस गुणसंक्रमण पूर्ण होनेका कालपर्यन्त होय है। यद्यपि प्रायोग्यलब्धितैं ही स्थितिवन्धापसरण होय है, तथापि प्रायोग्यलब्धिके सम्यक्त्व होनेका अनवस्थितिपना है। नियम नाहीं। तातैं ग्रहण नाहीं किया। बहुरि स्थितिवन्धापसरणका काल अर स्थितिकाण्डकोत्करणका काल ए दोऊ समान अन्तर्मुहूर्तमात्र हैं। तहां पूर्वै बांध्या था ऐसा सत्तामें कर्मपरमाणुरूप द्रव्य तामेंसूं काढि जो द्रव्य गुणश्रेणीमें दिया ताका गुणश्रेणीका कालमें समय समय प्रति असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये पंक्तिवन्ध जो निर्जराका होना, सो गुणश्रेणीनिर्जरा है ॥ १ ॥ वहुरि समय समय प्रति गुणकारका अनुक्रमतैं विवक्षित प्रकृतिके परमाणु पलट करि अन्यप्रकृतिरूप होय परिणमें, सो गुणसंक्रमण है ॥ २ ॥ बहुरि पूर्वै बांधी थी ते सत्तामें तिष्ठती कर्मप्रकृतिनिकी स्थितिका घटावना सो स्थितिखण्डन है ॥३॥ वहुरि पूर्वै बांधा था ऐसा सत्तामें तिष्ठता अशुभ प्रकृतीनिका अनुभागका घटावना, सो अनुभागखण्डन कहिये ॥४॥ ऐसैं चार कार्य अपूर्वकरणविषैं अवश्य होय हैं। अपूर्वकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी प्रशस्त अप्रशस्त प्रकृतीनिका जो अनुभागसत्त्व है, तातैं ताके अन्तसमयविषैं प्रशस्तप्रकृतीनिका अनन्तगुणा वधता अर अप्रशस्तप्रकृतीनिका अनन्तगुणा घटता अनुभागसत्व होय है। इहां समय समय प्रति अनंतगुणी विशुद्धता होनेतैं प्रशस्तप्रकृतीनिका अनन्तगुणा अर अनुभागकांडकका महात्म्यकरि अप्रशस्तप्रकृतीनिका अनन्तवें भाग अनुभाग अन्तसमयविषैं सम्भवै है। इन स्थितिखण्डादि होनेंके विधानका कथन वहुत विस्ताररूप लब्धिसारतैं जानना। इहां संक्षेपमात्र प्रकरणके वशतैं जनाया है। ऐसैं अपूर्वकरणविषैं कहे जे स्थितिखण्डादि कार्य विशेषतैं तीसरा अनिवृत्तिकरण विषैं भी जानना। विशेष इतना इहां समान समयवर्ती नाना जीवनिके सदृशपरिणाम ही हैं। जातैं जितने अनिवृत्तिकरणके अन्तर्मुहूर्तके समय हैं तितने ही अनिवृत्तिकरणके परिणाम हैं, तातैं समय समय प्रति एक एक ही परिणाम हैं। अर इहां जो स्थितिखण्ड,

अनुभागखण्डादिका प्रारंभ और ही प्रमाणलियें होय है। जातैं अपूर्वकरणसंवन्धी है स्थितिखण्डादिक जिनका ताकैं अन्तसमयविषैं ही समाप्तपना भया। इहां अन्तरकरणादिविधि है सो लब्धिसारजीतैं जाननी।

इहां प्रयोजन ऐसा है—जो अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयविषै दर्शनमोहनीय अर अनन्तानुवन्धीचतुष्क इनके प्रकृति, स्थिति, प्रदेश, अनुभागनिका समस्तपनें उदय होनेकी अयोग्यतारूप उपशम होनेतैं तत्त्वार्थनिका श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शनकूं पाय औपशमिक-सम्यग्दृष्टि होय है। तहां प्रथम समयविषैं द्वितीय स्थितिविषैं तिष्ठता मिथ्यात्वके द्रव्यको स्थितिकांडक अनुभागकांडक घात बिना गुणसंक्रमणका भाग देय मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वमोहनीरूपकरि मिथ्यात्वके द्रव्यकूं तीन प्रकार करै है। भावार्थ-अनादि-कालका दर्शनमोहनी एकरूप था। तिसका द्रव्य करणनिके प्रभावतैं तीनप्रकार शक्तिरूप न्यारे २ होय तिष्ठै है। ऐसैं मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व होनेंका कारण पंचलब्धिनिका संक्षेपतैं स्वरूप जनाया। इस उपशमसम्यक्त्वका जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त ही काल है। अन्तर्मुहूर्त पूर्ण भये पाछैं नियमतैं तीन दर्शनमोहनी प्रकृतीनिमें एकका उदय होय है। तहां जो सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय तो उपशमसम्यक्त्व छूटि जीवकै वेदकसम्यक्त्व होय है। सो सम्यक्त्वमोहनीका उदयतैं वेदकसम्यग्दृष्टि चल, मल, अगाढरूप तत्त्वको श्रद्धान करै हैं। सम्यक्त्वमोहनीका उदयतैं श्रद्धानविषैं चलपना होय है तथा मल जो अतिचारसहित होय है वा शिथिल श्रद्धान रहै। इस वेदकसम्यर्क्त्वकूं ही क्षयोपशमसम्यक्त्व कहिये हैं। जातैं दर्शनमोहनींके सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदयका अभाव, सो ही यहां क्षय है अर देशघातिस्पर्द्धकरूप सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय होतैं बहुरि तिस सम्यक्त्वमोहनीहींके वर्तमानसमय सबंधीते ऊपरिके निषेध उदयकूं नाहीं प्राप्त भये तिनसम्बन्धी स्पर्द्धकनिका सत्तामें अवस्थित रूप है लक्षण जाका ऐसा उपशम होतैं क्षयोपशमसम्यक्त्व होय है। इसहीकूं सम्यक्त्वप्रकृति के उदयका वेदन जो अनुभवन तातैं वेदकसम्यक्त्व कहिये है। बहुरि जो उपशमसम्यक्त्वका अन्तर्मूहूर्त काल बीते पीछैं जो सम्यग्मिथ्यात्वका उदय होय तो मिश्रगुणस्थानी हो जाय, ताकै तत्त्व अतत्त्व दोऊनका मिल्या हुआ श्रद्धान होय है। अर जो मिथ्यात्वका उदय होय जाय तो मिथ्यादृष्टि विपरीत श्रद्धानी होय। जैसैं ज्वरकरि पीडित पुरुषकूं मिष्टभोजन नाहीं रुचै, तैसैं ताकूं अनेकान्तरूप वस्तुका सत्यार्थस्वरूप तत्त्व नाहीं रुचै। तथा रत्नत्रयरूप मोक्षका मार्ग नाहीं रुचै, तथा दशलक्षणरूप स्वपरकी दयारूप धर्म नाहीं रुचै। अर जो उपशमसम्क्त्वका अन्तर्मुहुर्तकालमेंतैं जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहै, जो अनंतानुबन्धी क्रोधमानमायालोभमेंतैं कोऊ उदय हो जाय तो सम्यक्त्वतैं छूटि सासादननाम गुणस्थान पाय जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली सासादन नाम पाय नियमतैं मिथ्यादृष्टि होय है। ऐसैं उपशमसम्यक्त्वका अंतर्मुहूर्तकाल पूर्ण भये पाछैं चार मार्ग हैं। जो सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय जाय तो क्षयोपशम सम्यक्त्वी होय। अर मिश्रप्रकृतिका उदय होय तो मिश्रगुणस्थानी होय अर मिथ्यात्वका उदय होय तो नियमतैं मिथ्यादृष्टि होय। अनन्तानुवन्धी चार कषायमेंतैं कोऊ एक का उदय होय तो सासादनगुणस्थानी नाम पाय पाछैं मिथ्यादृष्टि होय है। अव क्षायिकसम्यक्त्व होनेका संक्षेप कहै है-दर्शनमोहके क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व होय है। अर दर्शनमोहका क्षपावनेका आरम्भ करै सो कर्मभूमिका मनुष्य ही

करै; भोगभूमिका मनुष्य नाहीं करै, समस्त देव, नारकी अर तिर्यंचनिकै क्षायिकसम्यक्त्व आरंभ नाहीं होय है। अर कर्मभूमिका मनुष्य आरम्भ करै, सोहू तीर्थंकर वा अन्यकेवली श्रुतकेवलीके पादमूलके नजीक तिष्ठता होय, सोही दर्शनमोहकी क्षपणाका आरंभ करै है जातैं केवली श्रुतकेवलीकी निकटता विना ऐसी विशुद्धिता नाहीं होय है। यहां अधःकरणका प्रथमसमयसौं लगाय जेते मिथ्यात्वका अर मिश्रमोहनीका द्रव्यकूं सम्यक्त्वप्रकृतिरूप होय संक्रमण करै तावत् अन्तर्मुहूर्तकालपर्यंत दर्शनमोहनीकी क्षपणाका आरंभ कहिये है। तिस आरंभकालके अनंतरवर्ती समयतैं लगाय क्षायिकसम्यक्त्वके ग्रहणके प्रथम समयमें निष्ठापक होय है। सो जहां प्रारंभ किया था कर्मभूमिका मनुष्य वैहि निष्ठापक होय। तथा सौधर्मादिक कल्प वा कल्पातीत अहमिंद्रनिविषैं वा भोगभूमिके मनुष्य-तिर्यञ्चनिविषैं वा घम्मानाम नरकपृथ्वी विषै भी निष्ठापक होय हैं। जातैं पूर्वैं बांधी है आयु जानैं ऐसा कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि मरकरि च्यारो गतिनिविषैं उपजै है। तहां क्षपणाकूं पूर्ण करै है। अब अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ अर मिथ्यात्व, सम्यगमिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति इन तीनकी कैसैं क्षपणा करैं हैं सो कहै हैं। कोऊ मनुष्य वेदकसम्यग्दृष्टि, असंयत वा देशसंयत वा प्रमत्त वा अप्रमत्त इन चार गुणस्थाननिमैंतैं कोऊ एक गुणस्थानमें तिष्ठता पूर्वैं तीनकरणकी विधि करकैं अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ के उदयावलीमें तिष्ठते निषेकनिकूं छांडि अर उदयावली बाह्य तिष्ठते समस्त निषेकनिकूं विसंयोजना करता अनिवृत्तिकरणके अन्तके समयविषैं समस्त अनंतानुबन्धीके द्रव्यकूं द्वादश कषाय अर नव नोकषायरूप परिणमन करावै है सो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन है। यहां हू विसंयोजनमें गुणश्रेणी अर स्थितिकांडघातादिक बहुत विधि हैं। अनंतानुबन्धीका विसंयोजन किये पीछे अंतर्मुहूर्तकाल विश्रामकरि अन्य क्रिया नाहीं करि ता पाछै बहुरि तीन करणकरि अनिवृत्तिकरणका कालविषैं मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्वमोहनीको क्रमतैं नष्ट करै है। सो इन करणनिके सामर्थ्यतैं जो जो कर्मनिकी स्थिति अनुभागनिका घात होने का विधान है, सो लब्धिसारतैं जानहु। ऐसे सप्तप्रकृतिनिका नाशकरि क्षायिकसम्यक्त्वी होय है। ऐसैं तीन प्रकार सम्यक्त्व होनेका विधान संक्षेपतैं वर्णन किया अब सम्यग्दृष्टिके अन्य हू अष्ट गुण प्रकट होय हैं तिनकरि आपक वा अन्यकै सम्यक्त्व जाना जाय है। संवेग १, निर्वेद २, आत्मनिन्दा ३, गर्हा ४, उपशम ५, भक्ति ६, वात्सल्य ७, अनुकंपा ८ ये आठ जाकै होय उसके सम्यग्दर्शन होय है। संवेग कहिए धर्ममें अनुराग ताके होय ही, जातैं संसारी मिथ्यादृष्टिका अनुराग तो देहसूं लगि रह्या है जो मेरा देह उज्ज्वल रहै, बलवान् रहै, पुष्ट रहै, तथा देहसूं ममता करि अभक्ष्य भक्षणकरि आनन्द मानैं है। अन्यायके विषै श्रृंगारादिक करि देहहीकूं भूषित करै है। पापीनिका सम्बन्धमें आनन्द मानै है। तथा विकथामैं राग करै है। तथा स्त्रीपुत्रधनसम्पदामें नगर, देश, राज्य, ऐश्वर्यतैं अनुराग करै है। सम्यग्दृष्टिके देहादिकनिमें आत्मबुद्धि नाहीं। तातैं दशलक्षणधर्मम अनुराग करै है। अर सम्यग्दृष्टिके अनुराग तो धर्मात्मा पुरुषनिमें, धर्मकी कथामें, धर्मके आयतनमें होय है। ऐसा संवेगगुण है सो सम्यग्दृष्टिके होय ही है ॥ १ ॥ बहुरि सम्यग्दृष्टिके पंचपरिवर्तनरूप संसारतैं अर कृतघ्न देहतैं अर दुर्गतिके ले जाने वाले भोगनितैं विरक्तपना नियमतैं होय ही।

सो दूजा गुण निर्वेद प्रगट होय है ॥ २ ॥ बहुरि अपना प्रमादीपना करि तथा असंयमभावकरि तथा सांसारिक पापमें प्रवृत्तिकरि निरन्तर परिणाम में निंद्यपनाका चिंतवन जो ऐसा दुर्लभ मनुष्यपनाकी एक क्षण भी धर्मका आश्रय विना जाय है सो बडा अनर्थ है। ऐसैं अपने परिणामनिकरि अपना दोष सहित प्रवर्तनकूं विचारि अपने मनमें अपनी निन्दा करना सो तीजा आत्मनिंदानाम गुण है ॥३॥ बहुरि जो अपने गुरु होंय तथा बहुज्ञानी साधर्मी होंय, तिनके निकट विनय-सहित अपने निंद्य दोषादिक प्रकट करना सो चौथा सम्यग्दृष्टिका गर्हानाम गुण है ॥४॥ बहुरि जो क्रोध, मान, माया लोभकी सम्यग्दृष्टि के मन्दता होय ही है। राग, द्वेष, काम, उन्माद, वैरादिक सम्यग्दृष्टिके अपना घातक जानि मन्द होय ही है। सो ही उपशमगुण है ॥५॥ बहुरि सम्यग्दृष्टिके पंचपरमेष्ठीमें तथा जिनवाणीमें, जिनेन्द्रके प्रतिबिंबमें, दशलक्षण धर्ममें, धर्मके धारक धर्मात्मानिमें, तपस्वीनिमें, उनके गुण स्मरणकरि गुणनिमें, अनुराग करना सो सम्यग्दृष्टिके भक्तिनाम छठा गुण होय ही है ॥६॥ बहुरि सम्यग्दृष्टिके धर्मात्मामें प्रीति होय ही। जैसैं दरिद्रीनिके धनकूं देखि प्रीति आनन्द प्राप्त होय, तैसैं धर्मात्माकूं, सम्यग्दृष्टिकूं वा सम्यग्ज्ञानीके धर्मके व्याख्यानकूं श्रवण करि वा देखने करि सम्यग्दृष्टिकै अत्यन्त आनन्द प्रगट होना सो वात्सल्यनामा सप्तमगुण है ॥ ७ ॥ बहुरि सम्यग्दृष्टिकै षट्काय के जीवानिकी दया प्रगट होय ही है, परजीवनिके दुःख देख अपना परिणाम कंपायमान होजाय, जातैं आपमें दुःख आया तथा ताके दुःख मेटजाने प्रति परिणामका होना सो सम्यग्दृष्टिकै अनुकंपागुण प्रगट होय है ॥ ८ ॥ ऐसै और हू अपरिमाण गुण सम्यग्दृष्टिकै स्वयमेव प्रगट होय हैं। जातैं जिनके सत्यार्थ श्रद्धान ज्ञान प्रगट होगया तिनके समस्त बाह्य अभ्यन्तर गुण ही होय परिणमै है।

अब जो जीव सम्यग्दर्शनसंयुक्त है ताहीकै महान्‌पना है ऐसा कहनेकूं सूत्र कहै हैंः—

सम्यग्दर्शनसंपन्नमपि मातंगदेहजम्। देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनकरि संयुक्त चांडालके देहतैं उपज्या जो चांडाल, ताहि हू देवा कहिये गणधरदेव जे हैं ते देव कहै हैं। जैसैं भस्मकरि दबा जो अङ्गार ताकै आभ्यन्तर तेज है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनकरि सहित चांडाल है ताकूं हू भगवान गणधरदेव हैं ते देव कहै हैं। जातैं यो हाड मांसमय देह चांडालतैं उपज्या, तातैं देह चांडाल है। सम्यग्दर्शन जाकै हुआ ऐसा आत्मा तो दिव्यगुणनिकरि दिपै है। तातैं मनुष्य शरीरकूं भी उत्तम-गुणका प्रभावकरि देव कह्या है। जैसैं भस्मकरि आच्छादित अङ्गारा आभ्यन्तर झकझकाट करता तेजकूं धारण करै है, तैसैं सम्यग्दृष्टि हू मलीन देहके अभ्यन्तर गुणनिकरि दिपै है। तातैं स्वामी श्री समन्तभद्रजी कहै हैं—जो सम्यग्दृष्टिकी महिमा हमारी रुचिकरि नाहीं कहैं है। भगवानका द्वादशांगरूप आगममें गणधरदेव सम्यग्दृष्टि चांडालकूं हू देव कहै हैं। जातैं यह देह तो महामलीन मलमूत्रका भन्या हाडमांसचाममय जाके नवद्वारनितैं निरन्तर दुर्गन्ध मल झरे हैं ऐसा अपवित्र मलीन हू साधुनिका देह है, सो रत्नत्रयका प्रभाव करि

इन्द्रादिक देवनिके दर्शन करने योग्य, स्तवन करने योग्य, नमस्कार करने योग्य होय है। गुण विना चामडाका कफमलमूत्रका भऱ्या मलीनकूं कौन वन्दना करै, पूजै, अवलोकन करै। यातैं सम्यग्दर्शन होते वन्दने पूजने योग्य है।

अब धर्म अधर्मका फल प्रगट करता सूत्र कहै हैं,—

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात्। कापि नाम भवेदन्या संपद्धर्माच्छरीरिणाम्॥२९॥

अर्थ—धर्मके प्रभावतैं श्वान जो कूकरो (कुत्ता) सोहू स्वर्गलोकमें देव जाय उपजै है। अर पाप के प्रभावतैं स्वर्गलोकका महान् ऋद्धिधारी देव हू पृथ्वी में कूकरो आय उपजै हैं। अर प्राणिनिकै धर्मका प्रभावतैं और हू वचनद्वारै नाहीं कही जाय ऐसी अहमिंद्रनिकी सम्पदा तथा अविनाशी मुक्तिसम्पदा प्राप्त होय है।

भावार्थ—मिथ्यात्वका प्रभावतैं दूजा स्वर्गपर्यंतका देव एकेन्द्रियनिमें आय उपजै हैं। अनन्तानन्तकाल त्रसस्थावरनिमें परिभ्रमण करता फिरै है। अर बारमा स्वर्गपर्यंतका देव मिथ्यात्व के प्रभावतैं पञ्चेन्द्री तिर्यञ्चनिमें आय प्राप्त होय है। तातैं मिथ्यात्वभाव महा अनर्थकारी जानि सम्यक्त्वहीमें यत्न करना योग्य है।

अब कुदेवादिक सम्यग्दृष्टिके वन्दने योग्य नाहीं है ऐसा दिखावता सूत्र कहै हैं,—

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्। प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः॥ ३०॥

अर्थ—शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं ते भयतैं, आशातैं, स्नेहतैं, लोभतैं कुदेवनिकूं, कुआगमकूं, कुलिंगीनिकूं प्रणाम नाहीं करैं, विनय नाहीं करैं। जे काम, क्रोध, भय, इच्छा, क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष, मद, मोह, निद्रा, हर्ष, विषाद, जन्म, मरणादि दोषनिकरि संयुक्त हैं। ते समस्त कुदेव हैं। तिनकी व्यक्ति जगतमें पंचमकालके प्रभावतैं प्रगट बहुत है। एक सर्वज्ञ वीतराग विना समस्त कुदेव[1] हैं। अर हिंसाके पोषक, रागी, द्वेषी, मोहीनीकरि प्रकाश्या पूर्वापरदोषसहित, विषय कषाय आरम्भकूं पुष्ट करनेवाले, प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणकरि दूषित ऐसे शास्त्र कुआगम हैं। अर जो हिंसादि पञ्चपापनिका त्यागी आरम्भ-परिग्रहरहित, देहके सम्बन्धमें निर्ममत्व, उत्तमक्षमादि दश धर्मके धारी, दोष टारि अजाचीक (अयाचक) वृत्तिसहित, दीनतारहित, निर्जनस्थानमें बसतो, ध्यान अध्ययनमें निरन्तर प्रवर्त्ततो, पांच इन्द्रियनिके विषयांका त्यागी, षट्कायका जीवांका विराधना का त्यागी, एक बार मौनतैं परका दिया रस नीरस, आपके निमित्त नाहीं किया ऐसा भोजन रत्नत्रयका सहकारी कायकी रक्षा के निमित्त ग्रहण करता, ऐसा नग्न मुनिराजका लिंग (भेष) तथा एक वस्त्रका धारक तथा कोपीनधारक क्षुल्लक का लिंग (भेष) तथा तीजा अर्जिकाका लिंग (भेष) एक वस्त्र का धारक (ही गुरु होते हैं।) इन तीन लिंग विना जो अन्य अनेक लिंग धारण करैं हैं ते समस्त कुलिंगी हैं। एक मुनिका लिंग तथा कौपीनधारक

---

[1] —क्यों कि वे रागादिदोषों से युक्त होनेसे मोक्षमार्ग के उपदेशक नहीं बन सकते।

क्षुल्लक तथा एक वस्त्रकी धारनहारी अर्जिका इन तीन भेष सिवाय समस्त भेषीनिकूं सम्यग्दृष्टि विनय नमस्कार नाहीं करै है। ऐसे कुदेव कुशास्त्र कुलिंगीनिकूं भय, आशा, स्नेह, लोभतैं सम्यग्दृष्टि नमस्कार नाहीं करै, विनय नाहीं करै।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि है सो कुदेवकूं भयतैं नमस्कार नाहीं करैं। जो यो देव है, याकूं राजादिक हजारां मनुष्य पूजैं हैं। जो याकूं वन्दना नाहीं करूंगा, तो यो देव रोषकरि मेरा बिगाड करैगा, सम्पदा हरैगा, तथा स्त्री-पुत्रादिकको घात करैगा। तथा कदाचित् याका द्वेषतैं मेरे रोग विद्यमान हैं, दुःख विद्यमान है। तथा द्वेषकरी अब मेरे हानि करैगा, रोग करैगा। तथा इन क्षेत्रमें समस्त लोक पूजैं हैं तथा हमारे कुलमें बडा पिता तथा पिताका पिता, माता, भाई, बन्धु पूजते आवे हैं, अब मैं इसकी वन्दना पूजा उठा दूंगा अर कदाचित् मेरा घर अनेक पुत्र-पौत्रादिक लक्ष्मीकरि भरा है जो किसीका मरण वा धनहानि तथा रोगादिक होजाय, तो मोकूं दूषण आवै अर मेरे बडा दुःख खडा हो जाय तो बडा अनर्थ है। अर सारा लोक हू ऐसै कहै है "यो देवता आगैं नाहीं माननेवालेनिकूं अन्धा कर दिया था। याकी पूजा, बोलारी, सत्कारतैं अनेकनिके रोग दूरी करी दिये। तथा यो जगन्नाथस्वामी है। याकी पुरीमें नाई, धोबी, मीणा, खटीक, चमार, परस्पर शामिल होय ओठि (उच्छिष्ट) भक्षण करै हैं। याकी अवज्ञा करैं, ताकै कोढ निकाल दे है" ऐसा भय दिखावैं। तथा "अन्धेनिकूं आँखें दी हैं, सम्पदा दी है, याकी निन्दाकरि सम्पदा भ्रष्ट होगई थी। तथा आगै यह शनिश्चर देव रोषकरि विक्रमादित्य राजानै चोरंग्यों करा दियो छो" ऐसैं अनेक देवी, भैरों, क्षेत्रपाल, हनुमान, गणेश, दुर्गा, चण्डी, सूर्यादिक ग्रह, योगिनी, जक्ष इत्यादिकनिका भय मानि सम्यग्दृष्टि इनकूं नमस्कार विनयादिक नाहीं करैं। बहुरि कुछ, पुत्र, सम्पदा, आजीविका, राज्य, धन ये देवता देगा ऐसी आशा करि हू वन्दना नाहीं करै। तथा हमारे माहिं इस देवताका स्नेह है, हमारे तो दुःख आजाय। यदि हमारा रक्षक तो देवता ही हैं ऐसा स्नेहतैं हू वन्दना नाहीं करैं। बहुरि लोभतैं हू कुदेवनिका सत्कार वंदना नाहीं करैं। जो मैं तो जिस दिनतैं आराधना यो देवताकी करूं हूँ तिस दिनतैं मेरे लाभ है, उच्चता है, ऐसैं लाभका कारण, संकल्पकरि कुदेवनिका आराधना नाहीं करै। तथा राजाका भयतैं, पिता माताका भयतैं, कुटुम्बका भयतैं, तथा लोकलाजतैं कुदेवनिकूं वंदना नाहीं करैं। ऐसैं ही जो शास्त्र रागद्वेष हिंसाका पुष्ट करनेवाला तथा श्रृंगारकथा, युद्धकथा, स्त्रीकथादिक विकथाका प्ररूपक, एकांतरूप वस्तूकूं कहै, यज्ञ, होम, मन्त्र, यंत्र, तंत्र वशीकरण, मारण, उच्चाटनादिक तथा महाहिंसाके आरम्भके कहनेवाले, तथा कुदेव कुधर्मकी आराधना करानेवाले, संसारमें उलझावनेवाले शास्त्रनिकूं सम्यग्दृष्टि वंदना सत्कार नाहीं करै है। तिसके कथनकूं रचनाकूं प्रशंसा नाहीं करै। संसारमें उलझावनेवाला शास्त्रका व्याख्यानादिकर प्रकाश नाहीं करैं। भय अर आशा स्नेह लोभतैं खोटा आगमका प्रकाश नाहीं करै। जो मैं मेरा बाप-दादा आदिक करि मेरे इन शास्त्रनिकरि बहुत द्रव्यका उपार्जन हुआ है तथा इस शास्त्रतैं मैं हू बहुत धन उपार्जन करूं तथा मेरी प्रतिष्ठा बधाऊँ तथा जगतके मान्य होजाऊ तथा सबके ऊपरि होय राजादिकनै अपने सेवक करूं ऐसा लोभतैं कुशास्त्रनिका सेवन सम्यग्दृष्टि नाहीं करैं। तथा जो शास्त्रसेवन नाहीं करूंगा तो मेरी आजीविका नष्ट होजायगी तथा समस्त लोकनिमें मेरी मान्यता, पूज्यता घट जायगी, ऐसा भयतैं कुशास्त्रसेवन नाहीं करैं। तथा इस शास्त्रके बाँचने पढनेमें बडा

रस है, मन रंजायमान होजाय है, वडी रसीली कथा है तथा लोकनिनै रजायमान करनेवाला है ऐसा स्नेह करिहु कुशास्त्रनिका आराधन सम्यग्दृष्टि नाहीं करै है । वहुरि कोऊ आशा करिकैं हू सम्यग्दृष्टि कुशास्त्रनिका सेवन नहीं करै है । जो इसतैं देवता वश हो जायगा वा विद्या सिद्ध हो जायगी इत्यादिक इस लोकसम्बन्धी आशा करकैं हू कुशास्त्रनिकी प्रशंसा वंदना नाहीं करै है । बहुरि सम्यग्दृष्टि है सो कुलिंगीनिकूं हू भय, आशा, स्नेह, लोभतैं प्रणाम वन्दना प्रशंसा नाहीं करैं है । जो यो तपस्वी है वा विद्यावान् है, तथा राजमान्य है, लोकमान्य है तथा इनमें दृष्टि, मुष्टि, मारण, उच्चाटनादि अनेक शक्ति है, मेरा बिगाड मत कदाचित् करद्यो ऐसा भयतैं प्रणामादि नाहीं करै । तथा यो करामाती है वा विद्यावान् है । यातैं कोऊ विद्या सीखनी है तथा यो राजमान्य है । यातैं हमारा कार्य लेना है ऐसा लोभतैं हू पाखंडीनिकूं वन्दना नमस्कार सम्यग्दृष्टि नाहीं करै । तथा यो वेषधारी मोकूं रसायण देनी करी है तथा एक औषधि यासूं वाकिफ करनी वा सीखनी है तथा व्याकरणविद्या तथा न्याय तथा ज्योतिषविद्या मोकूं सीखनी है । यातैं याका सेवन है इत्यादिक आशा लोभ करि पाखंडी विषय आरम्भी परिग्रहधारीकूं सम्यग्दृष्टि नमस्कार नाहीं करैं, ताकी प्रशंसा नाहीं करै, ताकूं सत्यवादी नाहीं कहै, धर्मरूप जानै नाहीं ।

अब यहां कोऊ कहै जो कोऊ बलवान जबरीतैं नमावै तथा आप नाहीं नमैं तो बडा उपद्रव करै तदि कहा करै ? ताका उत्तर कहै हैं—

जो परकी जबरीतैं नमस्कार किये श्रद्धान नाहीं बिगडे है; जातैं देवतादिकनिके भयतैं तथा आशातैं, स्नेहतैं, लोभतैं जो नमस्कार करै तदि श्रद्धान बिगडे । अर जबरीतैं दुष्ट म्लेच्छादिक व्रतीमुखमें अभक्ष्य देवै तो व्रत नाहीं बिगडैगा । तथा अन्यमतीनके ग्रन्थनिमें तथा वाक्यनिमैं कुदेवनिकूं नमस्कार लिखा है तथा कुदेवनिकी स्तुति लिखी है तो उनके बांचनें मात्रतैं तो कदेवनिकूं नमस्कार स्तुति नाहीं होजायगी, सम्यग्दर्शन तो आतमाका भाव है । अपने भावनितैं जो कुदेवादिकनिमें वंदनयोग्य अर आपकूं वंदनेवाला मानि नमस्कार स्तवन बन्दना करै, कुछ इनतैं अपना भला होना जानै, तिसके सम्यक्त्वका अभाव है । बहुरि इस कालमें म्लेच्छ मुसलमान राजा भए जब वे कुछ पूछैं अर आप कुछ उनसूं कहा चाहै तदि हाथ जोड ही अर्ज करी जाय इसमें अपना श्रद्धान, ज्ञान नाहीं नष्ट होय है । चारित्रधारी त्यागी साधुजन होय सो हाथ हू नाहीं जोडै, अर अपनी देह खंड खंड करैं तोहू धर्मकार्यविना वचन नाहीं कहै, अर त्यागीनितैं दुष्ट मनुष्य म्लेच्छ राजादिक महापापी हू प्रणाम नाहीं चाहै हैं । तातैं संयमी तो राजाकूं, चक्रीकूं, माताकूं, पिताकूं, विद्यागुरुकूं कदाचित् ही नमस्कार नाहीं करैं हैं । ये द्विजन्मा हैं । अर अव्रतसम्यग्दृष्टि हू अपना वशतैं कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकूं नमस्कार नाहीं करै । अन्य व्यवहारीनिकूं यथायोग्य विनय सत्कारादि करैं है । अर परकी जबरीतैं देश त्यागै आजीविका त्यागै, धन त्याग जाय; परन्तु कुधर्मका सेवन कुदेवादिक की आराधना नाहीं करै है ।

अब रत्नत्रयमें हू सम्यग्दर्शनके श्रेष्ठपना दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

दर्शनं ज्ञानचारित्रात् साधिमानमुपाश्नुते । दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥३१॥

अर्थ—ज्ञान और चारित्रतैं सम्यग्दर्शन जो है ताहि अतिशय करकैं साधिमान कहिये सर्वोत्कृष्ट है ऐसा जानि सेवन करै है। तिस ही कारणतैं मोक्षके मार्गविषैं सम्यग्दर्शनकूं कर्णधार कहिए है। जैसैं समुद्रके विषैं जहाजकूं खेवटिया पार करै है, तैसैं अपार ऐसा संसार समुद्रविषैं रत्नत्रयरूप जहाजको पार करनमें सम्यग्दर्शन खेवटिया है।

भावार्थ--रत्नत्रयमें सम्यग्दर्शन ही अति उत्कृष्ट है।

अब सम्यग्दर्शनके उत्कृष्टपनाका हेतु कहनेकूँ सूत्र कहै हैं-

विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः । न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

अर्थ—विद्या कहिए ज्ञान अर वृत्त कहिए चारित्र इनकी उत्पत्ति अर स्थिति अर वृद्धि अर फलका उदय यह सम्यक्त्व नाहीं होते संते नाहीं होय है। जैसे बीजका अभाव होतैं वृक्षकी उत्पत्ति स्थिति वृद्धि फलका उदय नाहीं होय है।

भावार्थ--बीज ही नाहीं तदि वृक्ष कैसैं उपजैगा अर वृक्ष ही नाहीं उपज्या तदि स्थिति कौनकी होय, वृद्धि कोन की होय, अर फलका उदय कैसैं होय ? जातैं सम्यग्दर्शन नाहीं होय, तदि ज्ञान, चारित्र हू नाहीं होय। सम्यक्त्व विना ज्ञान है, सो कुज्ञान है अर चारित्र है, सो कुचारित्र है। जब सम्यक्त्व विना ज्ञान-चारित्रकी उत्पत्ति ही नाहीं, तदि स्थिति कहांते होय, अर ज्ञान-चारित्रकी वृद्धि कैसैं होय, अर ज्ञान चारित्रका फल जो सर्वज्ञ परमात्मारूप होना कैसैं होय ? तातैं सम्यक्त्व विना सत्यश्रद्धान, ज्ञान, चारित्र कदाचित् ही नाहीं होय। सो ही भगवान् गुणभद्राचार्य महाराजनैं आत्मानुशासनमें कह्या है—

शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः । पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥ १५ ॥

अर्थ—शम कहिये कषायनिकी मंदता अर बोध कहिये अनेक शास्त्रनिका प्रवल ज्ञान होना अर वृत्त कहिये त्रयोदश प्रकार दुर्धर चारित्रका पालना, अर कायरनितैं नाहीं बणि सकै ऐसा बारा प्रकारका घोर तप ये चारों ही पुरुषके बडे भारी हैं, परन्तु पुरुषकै इनका बडा भारीपणा पाषाणका भारीपणाके तुल्य है अर एही शमभाव, ज्ञान, चारित्र, तप जो सम्यक्त्व संयुक्त होय, तो महामणि चिन्तामणि ज्यों पूज्य हो जाय।

भावार्थ—जगतमें अनेक पाषाण हू हैं अर मणिहू हैं। मणि भी पाषाण ही है अर झाझडा पत्थर हू पाषाण ही है; परंतु कांतिकरि बडा भेद है, पाषाणसमान नाहीं। जो झाझडा पत्थर तीन मण हू ले जाय, तों एक पैसा मिलै

अर मणि जो पद्मरागमणि तथा वज्रमणि रत्यां, मासा हू हाथ लगि जाय, तो लक्ष्यां धन उपजै है। अपने पुत्र पौत्रादिकताईंका दरिद्र नष्ट हो जाय है। तैसैं सम्यक्त्वसहित अल्प हू शमभाव, अल्प हू चारित्र, अल्प हू तपभाव इस जीवकूं कल्पवासी इन्द्रादिकनिमें उपजाय, जन्ममरणके दुःखरहित परमात्मा कर दे है। अर सम्यक्त्व विना बहुत हू शमभाव तथा बहुत हू ग्यारा अंगपर्यन्त ज्ञानका अभ्यास, बहुत हू उज्ज्वल चारित्र, घोररूप हू तप किया हुआ सो कषायनिकी मंदता होय, तो भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषीनिमें तथा अल्पऋद्धिधारी कल्पवासीनिमें उपजाय फिर चतुर्गति संसारमें भ्रमण करावै है। तातैं सम्यक्त्वसहित ही शम, बोध, चारित्र, तप धारण जीवका कल्याण है।

अब कोऊ आशंका करै जो सम्यक्त्व नाहीं होय अर चारित्र तप ग्रहण करै ऐसा मनि है सो आरम्भादिकमें लीन ऐसा गृहस्थतैं तो उत्तम होयगा ? तिसकूं उत्तर करता सूत्र कहै हैं—

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्। अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

अर्थ—जाके दर्शनमोह नाहीं ऐसा गृहस्थ है सो मोक्षमार्गमें तिष्ठै है अर मोहवान ऐसा अनगार कहिये गृहरहित मनि सो मोक्षमार्गी नाहीं है। याहीतैं मोहवान् जो मुनि, तातैं दर्शनमोहरहित गृहस्थ है सो श्रेयान् कहिये सर्वोत्कृष्ट है।

भावार्थ--जाकै मोह जो मिथ्यात्व सो नाहीं ऐसा अव्रतसम्यग्दृष्टि हू मोक्षमार्गी है। जाकै सात आठ भव देव मनुष्यनिके ग्रहण होय करि नियमतैं मोक्ष हो जायगा। अर जाकै मिथ्यात्व है अर मुनिके व्रतधारी साधु भया तो हू मरि करि भवनत्रिकादिकमें उपजि संसारहीमें परिभ्रमण करैगा। सो ही कुन्दकुन्दस्वामी दर्शनपाहुडमें कह्या है—

दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णात्थि णिव्वाणं। सिज्झंति चरियभट्टा दंसणभट्टा ण सिज्झंति ॥ ३ ॥
सम्मत्तरयणभट्टा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं। आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ॥ ४ ॥
सम्मत्तविरहिया णं सुट्ठुवि उग्गं तवं चरंता णं। ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडिहिं ॥ ५ ॥
जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य। एदे भट्टविभट्टा सेसंपि जणं विणासंति ॥ ८ ॥
जह मूलम्मि विणट्टे दुमस्स परिवार णात्थि परिवड्ढी। तह जिणदंसणभट्टा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति ॥ १० ॥
जे दंसणेसु भट्टा पाए ण पडंति दंसणधराणं। ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥ १२ ॥
जे वि पडंति य तेसिं जाणंता लज्जगारवभएण। तेसिं पि णात्थि बोही पावं अणुमोअमाणाणं ॥ १३ ॥
जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमियभूदं। जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ १७ ॥
एक्कं जिणस्स रूवं वीयं उक्किट्ठसावयाणं तु। अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंगदंसणं णात्थि ॥ १८ ॥
जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं। केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ॥ २२ ॥

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो । को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ॥ २७॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शनकरि भ्रष्ट हैं ते भ्रष्ट हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शनतैं भ्रष्ट हैं तिनके अनंत कालहूमें निर्वाण नाहीं होय है । अर जिनकै सम्यग्दर्शन नाहीं छूट्या अर चारित्रतैं भ्रष्ट भए तो तीजे भवमें निर्वाण पाय जाय है । अर सम्यक्त्व छूटि जाय तो अनन्त भवमें हू संसारभ्रमण नाहीं छूटै है ॥३॥ जे सम्यक्त्वरत्न करि भ्रष्ट हैं, ते बहुत प्रकार शास्त्रनिकूं जानतेहू च्यार आराधनारहित भये संसारहीमें भ्रमण करै हैं ॥४॥ जे सम्यक्त्वरत्नकरि रहित हैं, ते हजार कोटिवर्ष आछी तरह उग्रतपकूं आचरण करता हू रत्नत्रयका लाभकूं नाहीं पावै हैं ॥५॥ जे सम्यग्दर्शनरहित हैं, ते ज्ञानके विषैं हू विपरीतज्ञानी भए भ्रष्ट ही हैं । अर जाका आचरण हू भ्रष्ट है, ते तो भ्रष्टनितैं हू भ्रष्ट हैं । जे इनकी संगति करै है तिनकूं हू धर्मरहित कर विनाश करै हैं ॥८॥ जैसैं जिस वृक्षका मूल कहिये जड ताका नाश भया तिसके डाहला, पत्र, पुष्प, फलादिक परिवारकी वृद्धि नाहीं होय है; तैसैं सम्यग्दर्शनकरि भ्रष्ट हैं, ते मूल भ्रष्ट हैं । तिनके ज्ञानचारित्रादिककी कैसे सिद्धि होय ? ॥१०॥ जे सम्यग्दर्शनकरि भ्रष्ट हैं अर सम्यग्दर्शनके धारकनिकूं अपने पगनिमें पडावनेकूं चाहै हैं, ते परलोकमें चरणरहित लूला अर वचनरहित गूंगा होय हैं ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनतैं रहित होय सम्यग्दृष्टीनितैं वन्दना नमस्कार करावै हैं तथा करावा चाहै हैं, ते बहुत काल एकेन्द्रिय होय हैं ॥१२॥ अर जे पुरुष लज्जा करकैं तथा गारव जो अपना बडापणा करके भय करकैं मिथ्यादृष्टिनिके चरणनिमें वन्दना करैं हैं तिनके हू पाप जो मिथ्यात्व ताका अनुमोदनातैं रत्नत्रयकी प्राप्ति दुर्लभ है ॥१३॥ सम्यग्दृष्टिकै यो जिनेन्द्रका वचन ही अमृतरूप औषधि है, अर विषयनिका सुखरूप आमाशयका विरेचन करनेवाला है अर जरा-मरण रूप वेदनाकें क्षय करनेका कारण है, अर समस्त संसारके दुःखनिका क्षयका कारण है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टिके ऐसा निश्चय है जो जन्मजरामरणादिक समस्त दुःखरूपरोगकूं दूर करनेवाला अमृतरूप तो जिनेंद्रका वचन ही है। इस विना इस अनादिकालका विषयनिकी चाह रूप दाहका नाश करनेवाला, आमाशयकूं काढि ज्ञान सुखादि अंगानिकूं अमृतवत् पुष्ट करनेवाला अन्य उपाय है ही नाहीं ॥१७॥ एक लिङ्ग तो जिनेंद्रका धारण किया नग्नस्वरूप समस्त वस्त्र शास्त्रादिरहित हैं, अर 'दूजा उत्कृष्ट श्रावकका एक कोपीन तथा खण्डवस्त्र सहित है, तीजा आर्यिकाका है । चौथा लिंग (भेष) जिनमतमें नाहीं । जो है सो जिनधर्मबाह्य है, वन्दने योग्य नाहीं ॥१८॥ जिनेंद्रकी जो आज्ञा है तिसको पालनेंका सामर्थ्य होय सो तो आप आचरण करै, अर जाका करनेकी सामर्थ्य नाहीं होय, तो ताका श्रद्धान ही करता जीवकै केवली जिन सम्यक्त्व कहा है ॥ २२ ॥ सम्यग्दृष्टिकै रत्नत्रयरहित देह वन्दनीक नाहीं है । जाति संयुक्त कुल हू वन्दने योग्य नाहीं हैं जातैं सम्यग्दर्शनादिक गुणरहित श्रावक हू वन्दनीक नाहीं अर मुनि हू वन्दनीक नाहीं । रत्नत्रयके प्रभावतैं देह वन्दनीक हो जाय है, कुल जात्यादिक हू वन्दनीक होय हैं ॥२७॥

अब इस जीवका सर्वोत्कृष्ट उपकार करनेवाला अर अपकार करनेवाला कौन है ? सो कहनेको सूत्र कहैं हैं:—

न सम्यक्त्वसमं किंचित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि । श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—इन प्राणीनिके सम्यग्दर्शन समान तीन कालमें अर तीन जगतमें अन्य कोऊ कल्याण है नाहीं, अर मिथ्यात्व समान तीन कालमें, तीन जगतमें अन्य कोऊ अकल्याण है नाहीं ।

भावार्थ—अनन्तकाल तो व्यतीत हो गया अर वर्तमानकाल एक समय अर अनन्तकाल आगैं आसी ऐसे तीन कालमें अर अधो भवनलोक अर असंख्यात द्वीप सागरपर्यंत मध्यलोक अर स्वर्गादिक उर्ध्वलोक इन तीन लोकमें सम्यक्त्वसमान अन्य कोऊ सर्वोत्कृष्ट उपकार करनेवाला जीवनिका है नाहीं, हुआ नाहीं, होसी नाहीं । जो उपकार इस जीवका सम्यक्त्व करै है ऐसा उपकार तीन लोकमें भये ऐसे इन्द्र, अहमिन्द्र, भुवनेन्द्र, चक्री, नारायण, बलभद्र, तीर्थंकरादिक समस्त चेतन अर मणि-मन्त्र औषधादिक समस्त अचेतन द्रव्य कोऊ सम्यक्त्व समान उपकार नाहीं करै, अर इस जीवका सर्वोत्कृष्ट अपकार जैसा मिथ्यात्व करै है तैसा अपकार करनेवाला तीन लोकमें, तीन कालमें कोऊ चेतनद्रव्य, अचेतनद्रव्य है नाहीं, हुआ नाहीं, होसी नाहीं । तातैं मिथ्यात्वका त्यागहीमें परम यत्न करो । समस्त संसारका दुःखकूं मेटनेवाला आत्मकल्याणका परम हद एक सम्यक्त्व है तातैं इसका उपार्जनमें ही उद्यम करो ।

अब सम्यग्दर्शनका प्रभाव वर्णन करनेकूं सूत्र कहैं हैं:—

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि । दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ।३५।

अर्थ—जो जीव सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध हैं, ते व्रतरहित हू नारकीपणा, तिर्यंचपणा, नपुंसकपणा, स्त्रीपणाकूं नाहीं प्राप्त होय हैं । अर नीचकुलमें जन्म अर विकृत कहिये आंधा, काणा, बहरा, टूंटा, लूला, गूंगा, कूबडा, वावन्या, हीनअंग, अधिकअंग, मांजरा, विरूप नाहीं होय, तथा अल्प-आयुका धारक अर दरिद्रपनाकूं नाहीं प्राप्त होय है । बहुरि व्रतरहित अव्रत सम्यग्दृष्टिकै इकतालीस कर्मप्रकृतिका बन्ध होय नाहीं ऐसा नियम है । मिथ्यात्व १, हुँडकसंस्थान २, नपुंसकवेद ३, असृंपाटिकसंहनन[१] ४, एकेंद्री ५, स्थावर ६, आताप ७, सूक्ष्मपना ८, अपर्याप्ति ९, बेंद्री १०, त्रीन्द्री ११, चतुरिंद्री १२, साधारण १३, नरकगति १४, नरकगत्यानुपूर्वी १५, नरकआयु १६ ए षोडश प्रकार प्रकृति तो मिथ्यात्व भावतैं ही बंधै हैं अर अनन्तानुबन्धीके प्रभावतैं बंधकूं प्राप्त होंय ऐसी पचीस प्रकृति और हैं । अनंतानुबन्धी क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४, स्त्यानगृद्धि ५, निद्रानिद्रा ६, प्रचला-प्रचला ७, दुर्भग ८, दुःस्वर ९, अनादेय १०, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान ११, स्वातिसंस्थान १२, कुब्जकसंस्थान १३, वामनसंस्थान १४, वज्रनाराचसंहनन १५, नाराचसंहनन १६, अर्द्धनाराचसंहनन १७, कीलितसंहनन १८, अप्रशस्ताविहायोगति १९, स्त्रीपना २०,

---

१—'असम्प्राप्तसृपाटिका' ऐसा पाठ अन्यत्र शास्त्रोंमें पाया जाता है ।

नीचगोत्र २१, तिर्यग्गति २२, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी २३, तिर्यंचायु २४, उद्योत २५ इसप्रकार इकतालीस कर्मकीप्रकृतीका मिथ्यादृष्टि ही बन्ध करै है अर सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धीका अभाव भया, तातैं अव्रतसम्यग्दृष्टिके इकतालीस प्रकृतिका नवीन बंध नाहीं होय है और जो सम्यक्त्व ग्रहण नाहीं हुआ तदि मिथ्यात्व अवस्था में बन्ध करी जे प्रकृति सम्यक्त्वके प्रभावतैं नष्ट होजाय हैं; परन्तु आयु बन्ध किया सो नाहीं छूटै, तो हू सम्यक्त्वका ऐसा प्रभाव है जो पूर्वैं सप्तमनरककी आयु बांधी होय अर पाछै सम्यक्त्व हो जाय तो प्रथम नरक ही जाय, द्वितीयादिकनिमें नाहीं जाय। और जो तिर्यंचमें निगोदकी एकेंद्रियकी आयु बांधी होय, तो सम्यक्त्वका प्रभावतैं उत्तम भोगभूमिको पंचेंद्रिय तिर्यञ्च ही होय, एकेन्द्रियादिक कर्मभूमिको जीव नाहीं होय। और जो पूर्वैं लब्धिअपर्याप्त मनुष्यकी आयु बांधी होय तो सम्यक्त्वके प्रभावतैं उत्तम भोगभूमिको मनुष्य होय है अर व्यन्तरादिकनिमें नीचदेवका आयु बन्ध किया होय तो कल्पवासी महर्द्धिक देव ही होय है अन्य भवनत्रिक देवनिमें तथा चार देवनिकी स्त्रीनिमें समस्त मनुष्यणी तिर्यंचणीनिमें नाहीं उपजै है ऐसा सम्यक्त्वका प्रभाव है। नीचकुलमें, दरिद्रीनिमें, अल्प-आयुका धारक नाहीं होय है।

अब सम्यग्दर्शनका प्रभावतैं कैसा मनुष्य होय सो कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः।
महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनकरि पवित्र पुरुष हैं ते मनुष्यनिका तिलक कहिये समस्त मनुष्यनिका मण्डन करनेवाला वा समस्त मनुष्यनिके मस्तक ऊपरि धारण करने योग्य ऐसा मनुष्यनिका तिलक होय है। कैसेक होय है? ओजः कहिये पराक्रम, अर तेजः कहिये प्रताप, अर विद्या कहिये समस्त लोकमें अतिशयरूप ज्ञान अर अतिशयरुप वीर्य कहिये शक्ति अर उज्ज्वल यश और वृद्धि कहिये दिनदिन प्रति गुणनिकी अर सुख की वृद्धि, विजय कहिये समस्त प्रकारकरि जीतनेरूप अर अतिशयकारी विभव ऐसैं ओज, तेज, विद्या, वीर्य, यश, विजय, विभव इन समस्त गुणनिका स्वामी होय है। बहुरि महानकुलका स्वामी होय है अर महान्धर्म महाअर्थ महाकाम महामोक्षरूप चार पुरुषार्थका स्वामी होय है। सम्यग्दर्शनके धारणतैं ऐसैं अप्रमाणप्रभावके धारक मनुष्य होय हैं।

अब सम्यक्त्वके प्रभावतैं देवनिका विभव प्राप्त होय है। ताकूं कहनेकूं सूत्र कहैं हैं —

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः। अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेंद्रभक्ताः स्वर्गे।३७।

अर्थ—जिनेन्द्रके भक्त ऐसे सम्यग्दृष्टि जे हैं, ते देवनिमें अप्सरानिकी सभाविषैं चिरकालपर्यन्त रमै हैं। कैसैं भये संते रमै हैं? अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्वादि, जो अष्ट गुण, तिनकी पुष्टता जो अन्य असंख्यात देवनिमें नाहीं पाईये ऐसी अधिकता करि संतोषित भये तथा सर्व देवनितैं उत्कृष्ट ऐसी कांति, तेज, यश, तिनकर युक्त ऐसे हुए स्वर्ग लोकमें तिष्ठै हैं।

भावार्थ—अव्रतसम्यग्दृष्टि स्वर्गलोकमें देव होय हैं, सो हीणपुन्नी नाहीं होय। इन्द्रतुल्य विभव, कांति, ज्ञान, सुख, ऐश्वर्यका धारक महर्धिक होय सामानिक वा त्रायस्त्रिंशत् वा लोकपालादिकनिमें उपजै हैं; अन्य असंख्यात देवनिकै ऐसी अणिमादिक ऋद्धि तथा देहकी कांति, आभरण, विमान, विक्रिया नाहीं होय, ऐसा उत्कृष्ट विभव पाय असंख्यातकालपर्यन्त कोड्यां अप्सरानिकी सभामें रमें हैं।

अब स्वर्गका सागरांपर्यंत इन्द्रियनितैं उपजे सुख भोग मनुष्यलोकमें आय कैसा होय? सो कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम्। वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशःक्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥

अर्थ—जिनके उज्ज्वल सम्यग्दर्शन हैं, ते स्वर्गलोकमें आयु पूर्ण करकैं यहां मनुष्यलोकमें आय अर नवनिधि चौदहरत्ननिका स्वामी समस्त भरतक्षेत्रके बत्तीस हजार देशनिका पति अर बत्तीस हजार मुकुटबन्ध राजानिकै मस्तक ऊपरी मुकुटरूप है चरण जिनका ऐसा चक्रकूं प्रवर्तन करनेकूं समर्थ चक्रवर्ती होय है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि स्वर्गतैं मनुष्यभवमें आय नव निधि चौदह रत्ननिका स्वामी, समस्त राजानिका मस्तक उपरि आज्ञा प्रवर्तन करता, षट्खण्ड पृथ्वी का पति अर्थात् चक्रवर्ती होय है।

अब सम्यक्त्वका प्रभावतैं तीर्थङ्कर होय हैं ऐसा सूत्र कहैं हैं—

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥३९॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यग्दर्शनकरि सम्यक् निर्णय किये हैं पदार्थ जिनने ते अमरपति, असुरपति, नरपति, अर संयमीनिका पति गणधर तिनकरि वन्दनीक हैं चरणकमल जिनका अर लोकनिके शरणमें उत्कृष्ट ऐसे धर्मचक्रके धारक तीर्थंकर उपजै हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि तीर्थङ्कर होय अनेक जीवनिके संसार दुःखके छेदन करनेवाला धर्मचक्रकूं प्रवर्तन करावै है, जिनकूं इन्द्र, असुरेन्द्र, गणधरादिक नित्य वन्दना करैं हैं, जीवनिकूं परम शरण हैं।

अब सम्यग्दृष्टिके ही निर्वाण होय है ऐसा सूत्र कहै हैं—

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्। काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः४०

अर्थ—जिनके सम्यग्दर्शन ही शरण है ते पुरुष शिव जो निराकुलता लक्षण मोक्ष, ताहि अनुभवै हैं। कैसाक है शिव? जामें जरा नाहीं, अनन्तानन्तकालहूमें आत्मा जहां जीर्ण नाहीं होय है, अर अरुज कहिये जामें रोग पीडा व्याधि नाहीं है अर अक्षय कहिये जामें अनन्त चतुष्टय स्वरूपका नाश नाहीं है, अर जहां कोऊ प्रकार बाधा नाहीं है अर नष्ट हुआ है शोक, भय, शङ्का जातैं ऐसा शोकभयशंकारहित है। बहुरि परम हद्दकूं प्राप्त भया है सुखका अर ज्ञानका विभव जामें, ऐसा है अर द्रव्यकर्म तो ज्ञानावरणादिक अर

भावकर्म रागद्वेषादिक अर नोकर्म शरीरादिक इस प्रकार कर्ममलका अभावतैं विमल है ऐसा अद्वितीय स्वरूप मोक्षकूं सम्यग्दृष्टि ही अनुभवैं है। ऐसैं सम्यक्त्वका प्रभाव वर्णन किया।

अब दर्शनाधिकारको समाप्त करता दर्शनकी महिमाकूं उपसंहार करता सूत्र कहैं हैं—

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानं, राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं, लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः॥ ४१॥

अर्थ—जिन जो परमात्मा तिसका स्वरूपमें है भक्ति कहिये अनुराग जाकैं, ऐसा सम्यग्दृष्टि भव्य है। सो इस मनुष्यभवतैं चय करि स्वर्गलोकमें अप्रमाण हैं ऋद्धि, शक्ति, सुख, विभवका प्रभाव जामें, ऐसा देवेन्द्रनिका समूहकी महिमा पायकरि पाछैं पृथिवीमें आयकर बत्तीस हजार राजानिका मस्तककरि पूजनीय ऐसा राजेन्द्र जो चक्रवर्ती ताका चक्रकूं पाय करके फिर अहमिंद्र लोकका महिमाकूं पाय, नीचे किया है समस्त लोक जानैं ऐसा भगवान् तीर्थङ्करनिका धर्मचक्र ताहि प्राप्त होय करि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। सम्यग्दर्शनका धारी इन अनुक्रमकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है। ऐसैं दर्शनमोहनीका अभावतैं सत्यार्थ श्रद्धान, सत्यार्थ ज्ञान प्रगट होय है। अर अनन्तानुबन्धीके अभावतैं स्वरूपाचरणचारित्र सम्यग्दृष्टिके प्रगट होय है। यद्यपि अप्रत्याख्यानावरणके उदयतैं देशचारित्र नाहीं भया है अर प्रत्याख्यानावरण का उदयतैं सकलचारित्र नाहीं प्रगट भया है तो हू सम्यग्दृष्टिके देहादिक परद्रव्य तथा रागद्वेषादिक कर्मजनित परभाव इनमें दृढ भेदविज्ञान ऐसा भया है जो अपना ज्ञानदर्शनरूप, ज्ञानस्वभाव ही में आत्मबुद्धि धारनैंतैं अर पर्यायमें आत्मबुद्धि स्वप्नमें हू नाहीं होनेसे ऐसा चिंतवन करै है—हे आत्मन्! तू भगवानका, परमागमका शरणग्रहण करकैं ज्ञानदृष्टितैं अवलोकन कर। अष्टप्रकारका स्पर्श, पंच प्रकारका रस, दोय प्रकार गंध, पंचप्रकार वर्ण, ये तुह्मारा रूप नाहीं है; पुद्गलका है। ये क्रोध, मान, माया, लोभ तुह्मारा स्वरूप नाहीं है; कर्मका उदयजनित ज्ञानदृष्टितैं विकार है। तथा हर्ष, विषाद, मद, मोह, शोक, भय, ग्लानि, कामादिक कर्मजनित विकार हैं, ते तुह्मारे स्वरूपतैं भिन्न हैं। बहुरि नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव ये चार गति आत्माका रूप नाहीं; कर्मका उदयजनित हैं— विनाशीक हैं। देव मनुष्यादिक तुह्मारा रूप नाहीं। सम्यग्ज्ञानी के ऐसा चिंतवन होय है—जो म गोरा नाहीं, मैं श्याम नाहीं, मैं राजा नाहीं, मैं रंक नाहीं, मैं बलवान नाहीं, मैं निर्बल नाहीं, मैं स्वामी नाहीं, मैं सेवक नाहीं, मैं रूपवान नाहीं, मैं कुरूप नाहीं, मैं पुण्यवान नाहीं, मैं पापी नाहीं, मैं धनवान नाहीं, मैं निर्धन नाहीं, मैं ब्राह्मण नाहीं, मैं क्षत्रिय नाहीं, मैं वैश्य नाहीं, मैं शूद्र नाहीं, मैं स्त्री नाहीं, मैं पुरुष नाहीं, मैं नपुंसक नाहीं, मैं स्थूल नाहीं, मैं कृश नाहीं, मैं नीचजाति नाहीं, मैं ऊंच जाति नाहीं, मैं कुलवान नाहीं, मैं अकुलीन नाहीं, मैं पंडित नाहीं, मैं मूर्ख-नाहीं, मैं दाता नाहीं, मैं जाचक (याचक) नाहीं, मैं गुरु नाहीं, मैं शिष्य नाहीं, मैं देह नाहीं, मैं इन्द्रिय नाहीं, मैं मन नाहीं; ये समस्त कर्मका उदयजनित पुद्गलका विकार है। मेरा स्वरूप तो ज्ञाताद्रष्टा है। ये रूप आत्माका नाहीं; पुद्गलका है। मुनिपना,

क्षुल्लकपना, हू पुद्गलका भेष है । ये लोक हमारा नाहीं, यो देश, यो ग्राम, यो नगर समस्त परद्रव्य हैं । कर्म उपजाय दिया कौन २ क्षेत्रमें अपना संकल्प करूं ? सम्यग्दृष्टिके ऐसा दृढ विचार होय है । अर मिथ्यादृष्टि परकृत पर्यायमें आपा मानै है । मिथ्यादृष्टिका आपा जातिमें, कुलमें, देहमें, धनमें, राज्यमें, ऐश्वर्यमें, महल-मकान-नगर-कुटुम्बनिमें है । याकी लार हमारी घटी, हमारी बढी, हमारा सर्वस्व पूरा हुआ, मैं नीचा हुआ, मैं ऊंचा हुआ, मैं मरा, मैं जिया, हमारा तिरस्कार हुआ, हमारा सर्वस्व गया इत्यादिक परवस्तुमें अपना संकल्प करि महा आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान करि दुर्गतिको पाय संसार परिभ्रमण करै है । बहुरि मिथ्यादृष्टि जीव किंचित् जिनधर्म मैं अधिकार पाय अर नवीन नवीन अपना परिणामते युक्ति बनाय लोकनिकैं भ्रम उपजाय आप पांच आदम्यांमें महान् ज्ञानीपनाका अभिमानकरि सूत्र विरुद्ध अनेक कथनी करै है । कृतघ्न भया जिनसूत्रनिकी हू निंदा करै है । बहुज्ञानीनिकी निंदा करै है । दुष्ट अभिप्रायी पांच आदम्यांमें मान्यता वा पक्षपात ग्रहण करि निजाधार रहित हुआ हठग्राही आप थापी एकांती, स्याद्वादरूप भगवानकी वाणीतैं पराङ्मुख हुआ, कलह, विसंवाद, परकी निन्दाहीकूं धर्म मानता तिष्ठै है । तथा केतेक मिथ्यादृष्टि किंचिन्मात्र बाह्य त्याग ग्रहण करकैं तथा स्नानकरि भोजन करते तथा अन्य देवादिकी वंदनाका त्यागकूं कृतकृत्य मानता जगतके जीवनिकी निंदा करि आपकूं प्रशंसा योग्य मानैं हैं, अर अन्यायतैं आजीविका अर हिंसादिकके आरंभमें निपुण होय अन्यधर्मीनिके छिद्र हेरते फिरैं हैं । तथा निर्दोष पुरुषनिके दोष विख्यात करि मदमें छके फिरै हैं, आपकूं ऊंचा मानै हैं, अन्यकूं अज्ञानी भ्रष्ट मानै हैं । पापिष्ठ आपकी प्रशंसा कराय फूलो फूलो फिरै है । अपना स्वरूपकी शुद्धताकूं नाहीं देखता नाना चेष्टा करै है । भोले जीवनिकूं मिथ्या उपदेश देय एकांतके हठकूं ग्रहण करावै है । अर कुगुरु, कुदेवनिकू नमस्कारके त्याग करनेतैं अर अन्य देवनिकी निंदा करके अर सभामें बैठ मिथ्या भेषधारीनिकी निंदा करकै आपहीकूं सम्यग्दृष्टि मानै है । तथा लोग हमकूं दृढ श्रद्धानी धर्मात्मा मानेंगे ऐसा अनन्तानुबन्धीमानके उदयतैं, परकी निंदा करनेतैं ही आपकूं उच्च जानतैं जगतकूं अधर्मी मानै है । जातैं कुदेव, कुगुरुकूं नमस्कार तो समस्त तिर्यंच भी नाहीं करैं हैं । अर नारकी नाहीं करैं हैं । भोगभूमि के कुभोग भूमि के हू नमस्कार नाहीं करै हैं । अर समस्त देवता हू नाहीं पूजै हैं । नमस्कार पूजा नाहीं करनेतैं ही सम्यग्दृष्टि होय, तो समस्त नारकी मनुष्य तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टि होय जांय, सो है नाहीं । बहुरि जगतके समस्त मिथ्यादृष्टि मनुष्य देवादिकनिकी निंदा करनेतैं ही सम्यक्त्व नाहीं होयगा । जगतकी निंदा करनेवाला अर पापीनितैं वैर करनेवाला तो कुगतिहीका पात्र होयगा । जातैं मिथ्याभाव तो जीवनिके अनादिका है । सम्यग्दृष्टि तो इनकी हू करुणा करै अर समस्तमें साम्यभाव ही करै है । यातैं सम्यग्दर्शन तो आपापरका सत्य श्रद्धान, ज्ञान, विनयसहित स्याद्वादरूप परमागमके सेवनतैंही होयगा ।

इति श्रीपरमपूज्य धर्मसाम्राज्यनायक, योगींद्रचूंडामणि, सिद्धांतपारंगत, चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य श्रीशांतिसागरजी महाराजके आदेशसे ज्ञानदानके लिए श्री प. पू. चा. च. आ. शांतिसागर दिगंबर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाकी ओरसे छपे हुए श्री १०८ स्वामीसमन्तभद्राचार्यविराचित रत्नकरंडश्रावकाचारके सूत्रनिकी देशभाषामयवचनिकाविषैं सम्यग्दर्शनका स्वरूपवर्णन नामवाला प्रथम अधिकार समाप्त भया ॥१॥

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

रत्नकरंडश्रावकाचार

(द्वितीय अधिकार ।)

अब सम्यग्ज्ञानरूप धर्मकूं प्रकट करनेकूं सूत्र कहै हैं—

(आर्या छन्द ।)

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्। निस्सन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ ४२ ॥

अर्थ—आगमके जाननेवाले श्री गणधर देव तथा श्रुतकेवली हैं, ते ताकूं ज्ञान कहैं हैं। जो वस्तुका स्वरूपकूं परिपूर्ण जाणै, न्यून नाहीं जानैं, अर वस्तुका स्वरूप जैसा है तातैं अधिक नाहीं जानै, अर जैसा वस्तुका सत्यार्थस्वरूप है, तैसाही जानै अर विपरीतपनाकरि रहित जानै अर संशयरहित जानै, ताहि भगवान् ज्ञान कहैं हैं। इहां सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कह्या है। सो जो वस्तुका स्वरूपकूं न्यून जानै, सो मिथ्याज्ञान है। जैसैं आत्माका स्वभाव तौ अनन्त ज्ञान स्वरूप है अर आत्माकूं इन्द्रियजनित मतिज्ञानमात्र ही जानैं सौ न्यून स्वरूप जाननेतैं मिथ्याज्ञान भया। अर वस्तुके स्वरूपकूं अधिक जानै, सो हू मिथ्याज्ञान है। जैसैं—आत्माका स्वभाव तो ज्ञान, दर्शन, सुख, सत्ता, अमूर्तीक है, ताकूं ज्ञान, दर्शन, सुख, सत्ता, अमूर्त भी जानना अर पुद्गलके गुण, रूप, स्पर्श, गंध, वर्ण, रस, मूर्तीक हू जानना, सो अधिक जाननेतैं मिथ्याज्ञान है। अर सीपकूं सुफेद अर चिलकता देख, वामैं रूपाका ज्ञान होना, सो विपरीतज्ञान हू मिथ्याज्ञान है। अर यह सीप है कि रूपो है, ऐसैं दोऊ में संशयरूप एकका निश्चयरहित जानना सो संशयज्ञान है, सो हू मिथ्याज्ञान है। अर जो वस्तु का जैसा स्वरूप है तैसैं जानना सो सम्यग्ज्ञान है अथवा जैसे सोलाकूं पांच गुणा करिये तो अस्सी होय। ताकूं अठहत्तर जानै सो न्यून ज्ञान भया अर अस्सी का बियासी जानिये, सो अधिकका जानना भया। अर अस्सी होय ताकूं सोलह जानना वा पांच जानना सो विपरीत ज्ञान भया। अर सोलहकूं पांचगुणा किये अस्सी भये कि अठहत्तर भये ऐसा संदेहरूप ज्ञान सो संशयज्ञान है। ऐसैं न्यून जानना तथा अधिक जानना तथा विपरीत तथा संशयरूप जानना ऐसैं चार प्रकारका मिथ्या ज्ञान है। अर जो वस्तुका स्वरूपकूं न्यून नाहीं जानैं, अधिक नाहीं जानैं, विपरीत नाहीं जानैं, संशयरूप नाहीं जानैं, जैसा वस्तुका स्वरूप है, तैसा संशयरहित जानैं, ताहि सम्यग्ज्ञान कहिये हैं।

अब सम्यग्ज्ञान है सो प्रथमानुयोगकूं जानै है ऐसा सूत्र कहैं हैं—

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्। बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥ ४३ ॥

अर्थ—सम्यग्ज्ञान है, सो प्रथमानुयोगनै जानै हैं। कैसाक है प्रथमानुयोग ?—अर्थ जे धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चार पुरुषार्थ तिनका है कथन जामें, बहुरि चरित कहिये एक पुरुषके आश्रय है कथा जामें, बहुरि त्रिषष्ठिशलाका पुरुषनिकी कथनीका सम्बन्धका प्ररूपक यातैं पुराण है। बहुरि बोधिसमाधिको निधान है। सो सम्यग्दर्शनादिक नाहीं प्राप्त भये, तिनकी प्राप्ति होना सो बोधि है अर प्राप्त भये जे सम्यग्दर्शनादिकनिकी जो परिपूर्णता सो समाधि है। सो यो प्रथमानुयोग रत्नत्रयकी प्राप्तिको अर परिपूर्णताको निधान है, उत्पत्तिको स्थान है अर पुण्य होनेका कारण है, तातैं पुण्य है। ऐसा प्रथमानुयोगकूं सम्यग्ज्ञान ही जानै है।

भावार्थ—जामें धर्मका कथन अर धर्मका फलरूप कहे जे धन, संपदा, रूप, अर्थ, काम, जो पंच इन्द्रियनिका विषय अर संसारतैं छूटनेरूप मोक्ष ताका कथन है अर एक पुरुषके आचरणका है कथन जामें ऐसा चारित्ररूप है। अर त्रिशष्ठिशलाका पुरुषनिका है वर्णन जामें, तातैं पुराणरूप है। अर वक्ता श्रोतानिके पुण्यके उपजावनेका कारण है तातैं पुण्यरूप है। अर चार आराधनाकी प्राप्ति होनेका अर चार आराधनाकी पूर्णता करनेका निधान है ऐसा प्रथमानुयोगकूं सम्यग्ज्ञान ही जानै है।

अब करणानुयोगका जाननेवाला ह सम्यग्ज्ञान है ऐसा सूत्र कहै हैं—

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च। आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥ ४४ ॥

अर्थ—तैसैं ही मति कहिये सम्यग्ज्ञान जो है, सो करुणानुयोग जो है, ताहि जानै है। कैसाक है करणानुयोग ? लोक अर अलोकके विभागको अर उत्सर्पिणीके छह काल अर अवसर्पिणीके षट्कालके परिवर्तन कहिये पलटनेका अर चार गतिनिके परिभ्रमणका आदर्शमिव कहिये दर्पणवत् दिखानेवाला है।

भावार्थ—जामें षट्द्रव्यका समुदायरूप तो लोक, अर केवल आकाश द्रव्य ही सो अलोक अपने गुणपर्यायनिसहित प्रतिबिंवित होय रहे हैं, अर छहूकालके निमित्ततैं जैसे जीवपुद्गलनिकी परणति है ते प्रतिबिंबरूप होय जामें झलके हैं, अर जामें चार गातिनिका स्वरूप प्रकट दिपै है सो दर्पण समान करणानुयोग है। तिनैं यथावत् सम्यग्ज्ञान ही जानै है।

अब चरणानुयोगका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्। चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥ ४५ ॥

अर्थ—गृहमें आसक्त है बुद्धि जिनकी ऐसे गृहस्थी, अर गृहतैं विरक्त होय गृहका त्यागी ऐसा अनगार कहिये यति, तिनके चारित्र जो सम्यक् आचरण ताकी उत्पत्ति अर वृद्धि, अर रक्षा, इनका अंग कहिये कारण ऐसा चरणानुयोग सिद्धांत ताहि सम्यग्ज्ञान ही जानै है।

भावार्थ—मुनिका अर गृहस्थका जो निर्दोष आचरण ताकी उत्पत्तिका, अर दिन दिन, वृद्धि होनेका, अर धारण किया

तिनकी रक्षाका कारण चरणानुयोगरूप ज्ञान ही है।

अब द्रव्यानुयोगका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च। द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥ ४६ ॥

अर्थ—यो द्रव्यानुयोग नाम दीपक है, सो जीव अर अजीव ये दोय जे निर्बाध तत्त्व तिननै अर पुण्य-पापनैं अर बंध मोक्ष जे हैं तिननै भावश्रुतज्ञानरूप प्रकाश होय तैसैं विस्तारै है।

भावार्थ—द्रव्यानुयोग नाम दीपक ऐसा है, जो बाधारहित जीव-अजीवका स्वरूपकूं अर पुण्यपापकूं, अर कर्मके बन्धकूं अर कर्मतैं छूट जानेकूं, आत्मामें उद्योत हो जाय, तैसैं विस्तार करि दिखावै है। ऐसैं चार अनुयोगरूप श्रुतज्ञानका स्वरूप वर्णन किया। ज्ञानके वीस भेद अर अंग तथा पूर्वरूप वर्णन किये ग्रन्थ बहुत हो जाय।

इति श्रीपरमपूज्य धर्मसाम्राज्यनायक, योगींद्रचूडामणि, सिद्धांतपारंगत, चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य श्रीशांतिसागरजी महाराजके
आदेशसे ज्ञानदानके लिए श्री प. पू. चा. च. आ. शांतिसागर दिगंबर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाकी ओरसे
छपे हुए श्री १०८ स्वामीसमन्तभद्राचार्यविरचित रत्नकरण्डश्रावकाचारके सूत्रनिकी देशभाषामयवचनिकाविषैं सम्यग्ज्ञानका स्वरूपवर्णन नामवाला द्वितीय अधिकार समाप्त भया ॥ २ ॥
ग्रंथप्रकाशनसमिति फलटण वीर सं. २४८०

—:×:—

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

रत्नकरंडश्रावकाचार

(तृतीय अधिकार)

अब सम्यक्चारित्रनामा तृतीय अधिकारकूं वर्णन करते चारित्रस्वरूप धर्मके कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः। रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ ४७ ॥

अर्थ—दर्शनमोहरूप तिमिरको दुर होते संते सम्यग्दर्शनका लाभतैं प्राप्त भया है सम्यग्ज्ञान जाकै ऐसा साधु जो निकटभव्य है सो रागद्वेष का अभावके अर्थि चारित्र है ताहि अङ्गीकार करै है।

भावार्थ—इस संसारी जीवकै अनादिकालसे दर्शनमोहनीयका उदयरूप तिमिरकरि ज्ञाननेत्र ढकि रह्या है। तिस मोह-तिमिरतैं अपना अर परका भेदविज्ञानरहित हुआ चारों गतिनिमैं पर्यायही कूं आपा जानता अनन्तकालतैं भ्रमण करै है। कोऊ जीवके करण-लब्ध्यादिक सामग्रीतैं दर्शनमोहका उपशमतैं तथा क्षयतैं तथा क्षयोपशमतैं सम्यग्दर्शन होय है तदि मिथ्यात्वका अभावतैं ज्ञान हू सम्यक्पनाकूं प्राप्त होय है, तदि कोऊ सम्यग्ज्ञानी रागद्वेषका अभावके अर्थि चारित्र अंगीकार करै।

अब रागद्वेषका अभावतैं ही हिंसादिकका अभाव होनेका नियमके अर्थि सूत्र कहैं है—

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति। अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥४८॥

अर्थ—रागद्वेषका अभावतैं हिंसादिक पंच पापनिकी निर्वृत्ति कहिये अभाव परिपूर्ण होय हैं। पंच पापनिका अभाव सो ही चारित्र है। अभिलाषरूप नाहीं है प्रयोजनकी प्राप्ति जाकै ऐसा कौन पुरुष राजनिनैं सेवन करै?

भावार्थ—जाकै अर्थ जो प्रयोजन तथा धनादिक फलके प्राप्त होनेकी अभिलाषा नाहीं ऐसा कौन पुरुष राजनिनै सेवन करै? नाहीं करै। राजनिकी महाकष्टरूप सेवा तो जाकै भोगनिकी चाह तथा धनकी तथा अभिमानादिककी अभिलाषा होय, सो करै। जाकै कुछ अपेक्षा चाहना नहीं, सो राजाका सेवन नाहीं करै। जाकै रागद्वेषका अभाव भया सो पुरुष हिंसादिक पंच पापनिमैं प्रवृत्ति नाहीं करैं।

अब चारित्रका लक्षण रागद्वेषका अभाव कह्या, सो इसका विशेष कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च। पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—हिंसा, अनृत, चौर्य, मैथुनसेवन परिग्रह ये पाप आवने के पनाला हैं। इनतैं जो विरक्त होना सो सम्यग्ज्ञानीके चारित्र है।

भावार्थ—निश्चय चारित्र तो वहिरङ्ग समस्त प्रवृत्तितैं छूटे, परमवीतरागताके प्रभावतैं परम साम्यभावकूं प्राप्त होय अपना ज्ञायकभावरूप स्वभावमें चर्या, सो स्वरूपाचरण नामा सम्यक्चारित्र है। तौ हू पंचपापनितैं विरक्त होय अन्तरंग बहिरंग प्रवृत्तिकी उज्ज्वलतास्वरूप व्यवहारचारित्र विना निश्चयरूप चारित्रकूं प्राप्त नाहीं होय है। तातैं हिंसादिक पंच पापनिका त्याग करना ही श्रेष्ठ है। पञ्च पापका त्याग करना ही चारित्र है।

अब इस चारित्रकैं दोय प्रकारका कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानां । अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानां ॥ ५० ॥

अर्थ—सो चारित्र समस्त अन्तरंग परिग्रहतैं विरक्त जे अनगार कहिये गृह मठादि नियत स्थानरहित वनखण्डादिकमें परम दयालु हुआ निरालम्ब विचरै, ऐसे ज्ञानी मुनीश्वरनिकैं सकल चारित्र है। अर जे स्त्रीपुत्रधनधान्यादिक परिग्रहसहित घरमें तिष्ठैं, ते जिन वचनके श्रद्धानी, न्यायमार्गकूं नाहीं उलंघन करिकैं पापतैं भयभीत ऐसे ज्ञानी गृहस्थीनिकै विकलचारित्र है।

भावार्थ—गृहकुटुम्बादिकके त्यागी अपने शरीरमैं निर्ममत्व साधूनिकै सकलचारित्र होय है। गृहकुटुम्बधनादिकसहित गृहस्थीनिके विकलचारित्र होय है।

अब गृहस्थीनिकै विकलचारित्र कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणं । पंचत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातं ॥ ५१ ॥

अर्थ—गृहस्थीनिकै चारित्र है, सो अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रतस्वरूप तीनप्रकारकरि तिष्ठै हैं। सो यो तीन प्रकार चारित्र है, सो यथासंख्य पांच भेदरूप, तीन भेदरूप, च्यार भेदरूप, परमागममें कह्या है।

भावार्थ—जो गृहवास छोडनेकूं समर्थ नाहीं, ऐसा सम्यग्दृष्टि गृहमें तिष्ठता ही पञ्च प्रकार अणुव्रत, तीन प्रकार गुणव्रत, च्यार प्रकार शिक्षाव्रत धारण करि चारित्रकूं पालै है।

अब पञ्च प्रकार अणुव्रत कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्छाभ्यः । स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥ ५२ ॥

अर्थ—प्राणनिका जो अतिपात कहिये वियोग करणा, सो प्राणातिपात कहिये हिंसा; अर वितथ असत्य ऐसा व्यवहार कहिये बचन कहना, सो वितथव्याहार कहिये असत्य वचन; अर स्तेय कहिये चोरी, और काम कहिये मैथुन, अर मूर्च्छा कहिये परिग्रह ये पांच पाप हैं। इन स्थूलपापनितैं विरक्त होना सो अणुतव्रत है।

भावार्थ—मारने का संकल्प करकैं जो त्रसकी हिंसाका त्याग, सो स्थूलहिंसाका त्याग है। बहुरि जिस वचन कर अन्य प्राणीका घात हो जाय, तथा धर्म बिगड जाय, अन्यका अपवाद हो जाय, कलह, संक्लेश, भयादिक प्रकट हो जाय, ऐसा वचन का क्रोध, अभिमान, लोभके वश होय कहनेका त्याग, करना, सो स्थूल असत्यका त्याग है। अर विना दिया अन्यके धनका लोभके वशतैं छलकरि ग्रहण करनेका त्याग सो स्थूल चोरीका त्याग है। बहुरि अपनी विवाही स्त्रीविना समस्त अन्य स्त्रीनिमें काम की अभिलाषा का त्याग, सो स्थूल कामत्याग है। बहुरि दशप्रकार परिग्रह का परिमाण करि अधिक परिग्रहका

त्याग, सो स्थूल परिग्रहका त्याग है । ऐसैं पाप आवने के प्रनाले ये पांच हिंसादिक तिनका त्याग सो ही पंच अणुव्रत है ।

अब अहिंसा अणुव्रतका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान् । न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

अर्थ—जो गृहस्थ मनवचनकायके कृत-कारित-अनुमोदनारूप संकल्पतैं चरप्राणी द्वीन्द्रियादिक त्रसप्राणीनिका घात नाहीं करै, ताहि निपुण जे गणधरदेव हैं ते स्थूलहिंसातैं विरक्त कहैं हैं । इहां ऐसा जानना—जो गृहस्थ सम्यग्दर्शनसंयुक्त, दयावान, हिंसातैं भयभीत होय त्यागके सम्मुख हुआ, तो गृहस्थके एकेन्द्रिय जे पृथिवीकायादिक, तिनकी हिंसाका त्याग तो वन सकै नाहीं । गृहका त्यागी योगीश्वरनिकै ही त्रसस्थावर दोऊनिकी हिंसाका त्याग वनैं । अप्रत्याख्यानावरणादिक कषायका उदयतैं गृहतैं ममता छूटी नाहीं, तिस गृहस्थके त्रसजीवनिका संकल्पी हिंसाके त्यागतैं भगवान अहिंसा-अणुव्रत कह्या है। संकल्पीहिंसाका त्याग ऐसे जानना-दयावान गृहस्थ अपने परिणामनिकर मारनेरूप संकल्पतैं तो त्रसजीवका घात करै नाहीं, करावै नाहीं, घात करतेका मनवचाकायतैं प्रशंसा करै नाहीं ऐसा परिणाम रहे । अर जो कोऊ दुष्ट वैर-ईर्षादिककरि आपको मारा चाहै तथा आजीविका धनादिक हरा चाहै, तिसका भी घात करनेकूं नाहीं चाहै । तथा कोऊ आपकूं बहुत धन देकर मरावै, तो कीडीमात्रकूं मारनेका संकल्प करि कदाचित् नाहीं मारै । तथा एक जीव मारनेतैं अपना रोग, आपदा दूर होय, तो जीवनिकैं लोभतैं त्रसजीवकूं नाहीं मारै । हिंसातैं अत्यन्त भयभीत है, तो हू गृहस्थके आरम्भ में तस जीवनिका घात हुआ विना रहै नाहीं । याहीतैं गृहस्थके मारनेका संकल्प करि त्रसकी हिंसाका त्याग है । अर आरम्भी हिंसाका त्याग करनेकूं समर्थ नाहीं है । केवल आरम्भमें यत्नाचारसहित दयाधर्मकूं नाहीं भूलता प्रवर्तैं हैं, क्योंकि गृहस्थके आरम्भ विना निर्वाह नाहीं । केतेक आरम्भ नित्य होय है । चूल्हा बालना, चाकी पीसना, ओंखलीमें कूटना, बुहारी देना, जलका आंरम्भ करना, उपार्जन करना यह छह पापके कर्म तो नित्य ही हैं । बहुरि केतेक और हू नित्य भी कदाचित् अन्य कारणतैं हू आरम्भ बहुत हैं । अपने पुत्र-पुत्रीका विवाह करना, मकान बनाना, लीपना, धोवना, झाडना होय ही । रात्रिगमनादि आरंभ करना धातुका, पाषाणका, काष्ठका आरंभ करना, शय्या विछावना, उठाना, पांव पसरना-समेटना, जातिकूं जिमावना, दीपकादिक जोवना इत्यादिक पाप हीके कार्य हैं । तथा गाडी-रथ ऊपरि चढि चलना, हस्ती, घोडा, ऊंट, बलध इत्यादिक ऊपर चढि चलना, गाय, भैंस इत्यादिक राखना, तिनमें त्रस जीवका घात होय ही । तथा जिनमन्दिर करवाना, दानका देना, पूजन करना इनमें हू आरम्भ है । तो कैसे त्रसहिंसाका त्याग होय ? ताका उत्तर कहै हैं,—जो आपका परिणाम तो जीव मारनेका है नाहीं, अर जीव मारने वास्ते आरम्भ करै नाहीं । इस कार्य करनेमें जीव मर जाय तो भला है ऐसा राग हू नाहीं । आप तो जीव विराधनातैं भयभीत हुआ गृहचाराका कार्य करनेको आरम्भ करै है । जीव मारनेके वास्ते नाहीं करै है । अपने परिणाममें तो मेलता, धरता, उठता, बैठता, लेता, देता जीवनिकी रक्षा करने ही का संकल्प करै है—मारनेका संकल्प नाहीं करै, तिसके पापबन्ध

कैसै होय ? जीव अपने आयुकर्मके आधीन उपजै अर मरै है ! अपने हाथ नाहीं । आप तो जेता आरम्भ करै, तितना दया रूप हुआ यत्नाचारतैं करै । यत्नाचारीके भगवान्का परमागममें हिंसा होते हू बन्ध होना नाहीं कह्या है । समस्त लोक जीवनिकरि भरा है, जीवनिके मरने-जीवने के आधीन अपना उपयोग विना हिंसा अहिंसा नाहीं है —अपने परिणामकैं आधीन हिंसा अर अहिंसा है । जातैं सिद्धांतमें ऐसा कह्या है —जो मुनिराज चारहस्तप्रमाण आगेको सोधता गमन करै है अर जो पगको उठाय धरवो होय तहां जीव उछलकरि आय पडै अर जीव मर जाय, तो मुनीश्वरनिके किंचित् हू बन्ध नाहीं होय है; क्योंकि साधुके परिणामनिमें तो ईर्यासमिती पालना चित्त विषैं तिष्ठै था, तातैं बन्ध नाहीं । आहार प्रासुक जानि, देखि, सोध करिये है अर सूक्ष्म जीव आय पडे तो कौन जानै ? भगवान् केवलज्ञानी ही जाने । आप प्रमादी होय यत्नतैं देखै, सोधै विना भोजन करै, तो दोषतैं लिपै । याहीतैं श्रावक प्रमाद छांडि बडी सावधानीतैं प्रवर्तन करता दोषकूं कैसैं प्राप्त होय ? चूल्हाकूं दिनमें सोधि बुहारि ईंधन झडकाय यत्नतैं अग्नि जलावै है । ऐसेही चाकी, ओखली भी सोधि झाडि अन्नकूं सोधि पीसण, खोटणका आरम्भ करै है । बीधा अन्नकूं नाहीं ग्रहण करै है । अर बुहारी हू दिवसमें देखि कोमल कूंचि, मूंज इत्यादिकतैं जीव विराधनाका भय सहित हुआ देवै है, कजोडा बुहारैं हैं तथा जलकूं दोहरा दृढ वस्त्रतैं छानि जतनपूर्वक वरतै हैं तथा द्रव्यका उपार्जन हू अपना कुलके योग्य सामर्थ्य सहायादिकके योग्य जैसैं यश अर धर्म नीति नाहीं बिगडै तैसैं यत्नतैं असि, मसि, कृषी, विद्या, वाणिज्य, शिल्प इन षट् कर्मनिकरि करै है; क्योंकि श्रावकका व्रत तो चारों वर्णोंमें होय है । आपके उज्ज्वल हिंसारहित कर्मसूं आजीविका ऐसी होती हो, तो निंद्य कर्मकरि, संक्लेश कर्मकरि, लोभादिकके वश होय पापरूप आजीविका करै नाहीं । अर आपकूं अन्य आजीविकाका उपाय नाहीं दीखै, तो घटायकरि पापतैं भयभीत हुआ न्यायतैं करै । क्षत्रियकुलका शस्त्रधारक होय, तो दीन-अनाथकी रक्षा करता दीन, दुःखित, निर्बलको घात नाहीं करै, शस्त्ररहितकूं नाहीं मारै, गिर पड्या ऊपरि घात नाहीं करै, पीठ देय भाग जाय, दीनता भाषैं, तिन ऊपरि घात नाहीं करै है । अर धनके लूटनेको घात नाहीं करै । अभिमानतैं, वैरतैं घात नाहीं करैं । अपने ऊपर घात करता आवैं ताकूं तथा दीननिकूं मारनेकूं आवै तिनकूं शस्त्रतैं रोकै । जो शस्त्रतैं जीविका करता होय, सो केवल स्वामिधर्मतैं तथा अनाथनिका स्वामीपना आपके होय सो शस्त्रधारण करै । जाकै शस्त्रसंबन्धी सेवा नाहीं अर प्रजाका स्वामीपना नाहीं, ताकै वृथा शस्त्र-धारण नाहीं होय है अर स्याहीतैं आमद-खरच लिखनेकी जीविका होय, तो मायाचारादिक दोष-रहित स्वामीके कार्यकूं यथावत्त सही लिखता जीविका करै । और माली, जाट इत्यादिक कुलमें अन्य जीविका नाहीं होय तो कृषि जो खेती करि आजीविका करता हूँ दयाधर्मको छांडै नाहीं । जो खेत पहली बहता आया होय, तिसकूं परिणाम करि अधिकका त्यागी हुआ खेती करै है—अधिक तृष्णा नाहीं करै । यामें हू बहुत घटाय आपकूं निन्दता खेती करै है । बहुत जल सींचै है, तो हू आप अनछाण्या जल एक चुल्लू मात्र हू नाहीं पीवै है । कोऊ आप बहुत धन भी देवै अर कहै तुम यहां धान्यके बहुत वृक्ष छेदो हो, हमतैं एक मोहर लेय हमारे एक वृक्षकी एक डाहली काट आवो, तो लोभके वशि होय कदाचित् नाहीं छेदै है । तथा खेतीमें बहुत जीव मरै हैं, तो

भी इसके जीव मारनेका अभिप्राय नाहीं, केवल आजीविकाका अभिप्राय है। कोऊ सौ मोहर देवै तो लोभके वशि होय अपना संकलपतैं एक कीडी हू मारे नाहीं ऐसी व्रतमें दृढता है। अर[1] उत्तम कुलवाला खेती करै नाहीं। बहुरि विद्याकरि आजीविका करै ऐसा ब्राह्मणादिक श्रावक है, सो मिथ्यात्वभावका पुष्ट करनेवाला तथा हिंसाकी प्रधानता लिये रागद्वेषका बधावने वाला शास्त्रनिकूं त्याग करि उज्ज्वल विद्या पढावै सो ही दया है। बहुरि श्रावक है, सौ बहुत हिंसाके खोटे वाणिज्य त्याग, न्यायपूर्वक तीव्र लोभकूं त्याग, आपकी निंदा करता, सन्तोष सहित प्रमाणीक सांचसूं व्यौहार करै, दयाधर्मकूं नाहीं भूलता समस्त जीवनिकूं आप समान जानता वाणिज्य करै है। बहुरि शिल्पकर्म करनेवाला शूद्र हू श्रावकका व्रत ग्रहण करै है, सो बहुत निंद्यकर्मनिकूं तो टालै ही। अर टालनेकूं समर्थ नाहीं तीमें बहुत हिंसा टालि दयारूप प्रवर्तै है; संकलपतैं याकूं मारना या जाणि घात करै। अर मन्दिर बनवाना, पूजन करना, दान देना इन कार्यनिमें तो निरन्तर बडा यत्नाचारतैं केवल दयाधर्मके निमित्त ही प्रवर्तन करै है।

हिंसाका भाव काहेतैं होय, जातैं पुरुषार्थसिद्ध्युपाय नामा ग्रन्थमें श्रीअमृतचन्द्रस्वामी ऐसैं कह्या है—

यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणां। व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥ ४३ ॥

अर्थ—जे कषायके संयोगतैं द्रव्यप्राण जे इन्द्रिय कायादिक अर भावप्राण जे ज्ञानदर्शनादिक, तिनको वियोग करवो, सो निश्चित हिंसा होय।

भावार्थ—जो कषायके वशि होय परके द्रव्यप्राण भावप्राणनिको वियोग करवो, सो निश्चितहिंसा होय है। कषाय रहितकै प्राणीका मरणमात्रतैं हिंसा नाहीं होय है; आप परजीवके मारनेकी कषायसहित होय, ताकैं हिंसा होय ह।

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति। तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो रागद्वेषादिको आत्माके नाहीं प्रगट होवो, सो अहिंसा है। अर आत्माके परिणाम में रागद्वेषादिकनिकी उत्पत्ति होय सो ही हिंसा है। जिनेन्द्रभगवानके आगमका संक्षेप तो इस प्रकार है—बाह्य प्राणीनिको हिंसा होहु वा मत होहु

---

[1] ‘अघ्नन्नपि, भवेत्पापी, निघ्नन्नपि न पापभाक्। परिणामविशेषेण यथा धीवरकर्षकौ’ ॥ यशस्तिलके। इस प्रमाणके अनुसार खेती करनेवाला पापी नहीं है। ऐसी हालतमें कुलकी उत्तमता किसतरह बाधित हो सकती है? अतः यह कथन युक्ति और आगमके विरुद्ध पडती है। यह वृत्ति तो आर्त रौद्रध्यानजनक वाणिज्य वृत्तिसे उत्तम मालूम होती है।

जो परिणाम रागद्वेषादि कषायसहित होय, सो ही अपना ज्ञानदर्शनादिरूप भावप्राणनिका घात है; सो ही आत्महिंसा है जाकै आत्माहिंसा है ताकै परकी हिंसा भी होय ही है ।

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि । न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव ॥ ४५ ॥

अर्थ—योग्य आचरण करता सत्पुरुषके रागद्वेषादि कषाय विना प्राणानिका घाततैं ही हिंसा कदाचित् नाहीं होय है ।

भावार्थ—यत्नतैं दयासहित प्रवर्तन करता पुरुषकै जीवघात होतै हू हिंसाकृत बन्ध नाहीं होय है ।

व्युत्थानावस्थायां रागादीनां वशप्रवृत्तायाम् । म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा ॥ ४६ ॥

अर्थ—रागद्वेषादिकनिके आधीन प्रवृत्ते जे गमन, आगमन, उठना, बैठना, धरना, मेलना ऐसे आरम्भ तिनमें जीवनिका मरण होहू वा मत होहू, हिंसा तो निश्चयतैं आगै दौडती है । यत्नाचाररहित होय आरम्भ करै है, ताकै जीव अपने आयुके आधीन मरण करो वा मत करो आप तो अपने परिणामतैं निर्दय भया, ताकैं हिंसाकृत बन्ध आगैं आगैं दौडे है ।

यस्मात्सकषायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानं । पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राण्यन्तराणां तु ॥ ४७ ॥

अर्थ—जातैं आत्मा कषायसहित हुवो संतो प्रथम ही आप करिकैं आपनै हनै है, पाछैं अन्य प्राणीनिकी हिंसा उत्पन्न होय वा नहीं होय, जिस काल कषायसहित अतमा भया तिस ही कालमें अपना ज्ञानानन्द वीतरागस्वरूपका घात तो अवश्य करि ही चुका ।

हिंसायामविरमणं हिंसापरिणमनमपि भवति हिंसा । तस्मात्प्रमत्तयोगे प्राणव्यपरोपणं नित्यम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जातैं हिंसाके विषै विरक्त होय त्याग नाहीं करना सो भी हिंसा है । अर हिंसामें प्रवर्तन है सो हू हिंसा है । तातैं प्रमत्तयोग होतैं प्राणनिका घात नित्य है ।

भावार्थ—अपना अर परका घात होनेकी सावधानीरहित प्रवर्तते जे मनवचनकायके योग, सो प्रमत्तयोग है । जहां प्रमत्तयोग है, तहां सासती हिंसा है । जो कोऊ हिंसा तो नाहीं करै; परन्तु हिंसातैं विरक्त होय हिंसाका त्याग नाहीं करै, सो सूते विलाव समान सदाकाल हिंसक ही है, अर हिंसामें प्रवर्तन करै है सो हू हिंसक ही है । भावनितैं तो दोऊ हिंसक है; बाह्य निमित्त हिंसाका मिलो वा मति मिलो ।

सूक्ष्मापि न खलु हिंसा परवस्तुनिबन्धना भवति पुंसः । हिंसायतननिवृत्तिः परिणामविशुद्धये तदपि कार्या ॥ ४९ ॥

अर्थ—अन्यवस्तु है कारण जाकूं, ऐसी तो सूक्ष्म हू हिंसा नाहीं है । जातैं पुरुषकैं जो हिंसा होय है, सो तो अपना परिणाममें

हिंसा करने का भाव हौतै हिंसा होय है। इहां कोऊ पूछै–जो परद्रव्यके निमित्ततैं सूक्ष्महिंसा नाहीं होय है, तो वाह्य वस्तुका त्याग, व्रत, संयम किस वास्ते करिये हैं ? ताका उत्तर करै हैं––यद्यपि हिंसक परिणाम होय, तदि ही जीवकै हिंसा होय; परन्तु हिंसा होनेके स्थाननिमें प्रवर्तेंगा, ताकै हिंसाके परिणाम कैसैं नाहीं होयगा ? तातैं परिणामकी विशुद्धताके अर्थि जहां हिंसा होय ऐसे खान, पान, ग्रहण, आसन, वचन, चिंतवनादिक त्याग करने योग्य हैं।

निश्चयमबुध्यमानो यो निश्चयतस्तमेव संश्रयते। नाशयति करणचरणं स बहिःकरणालसो बालः ॥ ५० ॥

अर्थ—जो जीव निश्चयनयका विषय रागादिकषायरहित शुद्धात्मारूपकूं तो जाण्या नाहीं, अर मेरा भाव कषायरहित है, मेरे समस्त प्रवृत्तिमें हिंसा नाहीं, ऐसा वृथा निश्चय करता निरर्गल यथेच्छ प्रवर्तै है, सो अज्ञानी वाह्य आचरण में प्रवृत्ति छांडि, प्रमादी हुआ, करणचरणरूप चारित्रका नाश करैं है।

भावार्थ—जाका परिणाम रागद्वेषरहित भया, ते अयोग्य भोजन, पान, धन, परिग्रह, आरम्भादिकमें कैसें प्रवर्तन करैगा ? जो हिंसासूं विरक्त है, सो हिंसा होने के कारण दूरहीतैं छांडैगा।

अब और हू पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहैं हैं—कौऊ तो हिंसा नाहीं करकै अर हिंसाके फलका भोगनेवाले होय है। जैसैं आयुध वनावनेवाले लुहार, सिकलीगर हिंसा नाहीं करकैं हू तन्दुलमच्छकी ज्यों हिंसाके फलकूं प्राप्त होय है। अर कोऊ दयावान होय यत्नाचारतैं जिनमन्दिर बनवाने वाला बाह्यहिंसा होते हू हिंसा के फलकूं नाहीं प्राप्त होय है। कोऊ पुरुष हिंसा तो अल्प करी; परन्तु तीव्र रागद्वेषरूप भावनितैं करने करि उदयकालमें महाफलकूं प्राप्त होय है। बहुरि केई अनेक पुरुष मिलिकरकें एक हिंसाकरी; परन्तु उस हिंसा करने में कोऊ तो तीव्र रागवाला सो तीव्र फलकूं प्राप्त होय है, मध्यमकषायवाला मध्यमफलकूं प्राप्त होय है। तथा कोऊ पुरुषके हिंसा तो पाछैं काल पाय वनेगी; परन्तु हिंसाके परिणाम करनेतैं हिंसाका फल पहले ही उदय होय रस दे है। अर कोऊकै हिंसा करतां करतां फलै है। जैसे कोऊ पुरुष अन्य कोऊकूं मारण करै तिस कालमें ही उसका प्रहारतैं आपहू मार्‍या जाय है। कोऊकै पूर्वैं करी पाछैं फलै है। कोऊ हिंसाका आरम्भ तो किया, अर पाछैं बन सकी नाहीं, सो हू फलै है। जैसैं कोऊका घात करने का उपाय किया तो वणि सक्या नाहीं, अर पाछैं वै जानि आपका घात किया ही। बहुरि हिंसा तो एक करै अर हिंसाका फल अनेक पुरुष भोगें। जैसैं चोर तथा हत्याराकूं मारै वा सूली चढावै तो एक चांडाल, अर देखनेवाले अनेक तमासगीर पापबंधकरि फल भोगवै हैं। अर संग्राम में हिंसा करनेवाला तो बहुत योद्धा होय हैं अर फलभोगनेवाला एक राजा होय है। तातैं करै एक अर भोगैं अनेक हैं, अर करैं अनेक भोगै एक है। बहुरि कोऊ के तो हिंसा करी हुई हिंसाहीका फल दे है। अर अन्यकै सो ही हिंसा अहिंसाका फल दे है। जैसे कोऊ पुरुष किसी जीवकी रक्षा करनेकूं यत्न करै था। यत्न करते हू उसका मरण हो गया, तो वाकै रक्षाका अभिप्रायतैं अहिंसाहीका फल होयगा। अर कोऊ का परिणाम तो किसी के मारने का था, आपदाकूं

प्राप्त करने का था, अर उसका पुण्यका उदयतैं आपदा हू नाहीं भई अर मरण हू नाहीं भया, अनेक लाभ भया; तो मारनेके अर्थी कों तो पापही का बन्ध होय है। अर कोऊका परिणाम किसीकूं दुःख देने का नाहीं था, सुख देनेका वा रक्षा करनेका था, अर उसके दुःख हो गया वा मरण होगया तो सुख देनेका परिणामकरि वाकै पुण्यबन्ध ही होयगा। इसप्रकार कर अनेक भंगनिकरि गहन यो जिनेंद्र का मार्ग है, यामें एकांती मिथ्यादृष्टीनका पार होना अतिकष्टतैं हू नाहीं होय। अनेकांतके प्रभावतें नयसमूहके जाननेवाला गुरु ही शरण है। यो जिनेंद्रभगवानको नयचक्र तीक्ष्णधाराकूं धारण करता एकांत दुष्ट आग्रह सहित मिथ्यादृष्टिनिका मिथ्यायुक्तीनिका हजारां खण्ड करने वाला है। यातैं भो ज्ञानीजन हो! भगवान वीतरागकी आज्ञातैं प्रथम ही हिंसा होने योग्य जे जीवनिके स्थान इंद्रियकायादिक जीवनिके कुलकोड तिनकूं जानो। बहुरि हिंसा करनेवाला भाव ताकूं जानो। बहुरि हिंसाका स्वरूप कहा है, ताकूं जानो। बहुरि हिंसाका फलकूं जानो। ऐसैं हिंस्य, हिंसक, हिंसा, हिंसाका फल इन चारकूं यत्नतैं जानि करके पाछैं देश, काल, सहाय अपना परिणाम, अर निर्वाह होना जानि अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय गृहस्थपणामें हू अपने पदके योग्य हिंसाका त्याग ही करो। तथा त्रसजीवनिकी संकल्पी हिंसाका तो त्याग करो अर समस्त आरम्भमें दयावान हुआ यत्नाचारतैं प्रवर्तन करो अर पंचस्थावरनिका आरम्भमें घटाय करि दयावान होय प्रवर्तो।

ऐसैं अहिंसा अणुव्रतका स्वरूप कह्या। अब अहिंसाव्रतका पंच अतिसार जनावनेको सूत्र कहैं हैं—

छेदनबंधनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः। आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पंच ॥५४॥

अर्थ—ये स्थूलहिंसाका त्यागनामक व्रतके पंच अतीचार है। ते गृहस्थके त्यागने योग्य हैं। छेदन कहिये अन्य मनुष्य-तिर्यंचनिके कर्ण, नासिका, ओष्ठादिक अंगनिका छेदना सो छेदन नामक अतीचार है ॥ १ ॥ अर मनुष्यनिकूं बंधनादिककरि बांधना तथा बंदीगृहमें रोकना तथा तिर्यञ्चनिकूं दृढबंधनकरि बांधना, पक्षीनिकूं पींजरेमें रोकना इत्यादिक बंधन नामा अतीचार है ॥ १ ॥ मनुष्यातिर्यञ्चनिकूं लात, धमूका, लाठी, चाबुक आदिका घातकरि ताडना करना, सो पीडन नामा अतीचार है ॥३॥ बहुरि मनुष्य, तिर्यंच, गाडा, गाडी, इत्यादिक ऊपरि बहुत बोझका लादना सो अतिभारारोपण नामा अतीचार है ॥४॥ अर मनुष्यतिर्यंचनिको खावने पीवनेको रोकना सो अन्नपानका निराकरण नामा अतीचार है ॥५॥ यह पांच अतीचार स्थूलहिंसाका त्यागीकूं त्यागने योग्य है।

अब सत्य नामक अणुव्रत के कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे। यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणं ५५

अर्थ—जो स्थूल असत्य नाहीं बोलै अर परकूं असत्य नाहीं बुलावै अर जिस वचनतैं आपकै अन्यकै आपदा आवै ऐसा सत्य हू नाहीं कहैं ताहि सत्पुरुष स्थूल झूठका त्याग कहै हैं।

भावार्थ—सत्य अणुव्रतका धारक होय, सो क्रोधमानमायालोभके वशीभूत होय ऐसा वचन नाहीं कहै । जाकरि अन्यका घात हो जाय, अन्यका अपवाद होजाय, अन्यकै कलंक चढि जाय, सो वचन निंद्य है । जिस वचन तैं मिथ्याश्रद्धान हो जाय तथा धर्मसूं छूटिजाय, व्रत, संयम, त्याग तैं शिथिल हो जाय, श्रद्धान बिगडि जाय, सो वचन नाहीं कहै तथा कलह, विसंवाद पैदा हो जाय, विषयानुराग बधि जाय, महाआरम्भमें प्रवृत्ति हो जाय, अन्यके आर्त्तध्यान प्रकट हो जाय, परके लाभमें अन्तराय हो जाय, परकी जीविका बिगडि जाय, अपना परका अपयश हो जाय ऐसा निंद्य वचन योग्य नाहीं। तथा ऐसा सत्य वचन हू नाहीं कहै, जाकरि आपको अन्य बिगाड हो जाय, आपदा आ जाय, अनर्थ पैदा हो जाय, दुःख पैदा हो जाय, मर्म छेद्या जाय, राजका दण्ड हो जाय, धनकी हानि हो जाय ऐसा सत्यवचन हू झूठ ही है । बहुरि गालीके वचन भण्डवचन नीचकुलवालेनिके बोलनेके वचन तथा मर्मछेद के वचन, परके अपमानके वचन, परके तिरस्कारके वचन, अहंकारके वचनकूं कदाचित् नाहीं कहै । जिनसूत्रके अनुकूल तथा आपका परका हितरूप अर बहुत प्रलाप रहित प्रमाणीक संतोषका उपजानेवाला, धर्मका उद्योत करनेवाला वचन कहैं, जातैं न्यायरूप आजीविका सधै, अनीतिरहित होय, ऐसे वचनको कहता गृहस्थके स्थूल असत्यका त्यागरूप द्वितीय अणुव्रत होय है ।

अब सत्याणुव्रतके पांच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

परिवादरहोभ्याख्या पैशून्यं कूटलेखकरणं च । न्यासापहारिताऽपि च व्यतिक्रमाः पंच सत्यस्य ॥५६॥

अर्थ—इहां परिवाद तो मिथ्या उपदेश है, जो स्वर्ग व मोक्षका कारण जो चारित्र तिस चारित्रकूं अन्यथा उपदेश करना, सो परिवाद नामा अतीचार है ॥ १ ॥ अर कोऊ आपकूं छानी बात कही होय, सो किसीकूं कह देना, विख्यात करि देना तथा कोऊ स्त्रीपुरुषादिकनिका एकान्तमें गुह्य चेष्टा देख करिकैं तथा गुह्यवचन श्रवण करि किसीकूं प्रगट करना, सो रहोभ्याख्यान नामा अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि अन्यका छिद्र जानि बिगाडि करानेके अर्थि कोऊकूं छिपकरि कह देना, चुगली करना, सो पैशून्यनामा अतीचार है ॥ ३ ॥ बहुरि अन्यके विना कह्या तथा बिना आचरण किया झूठा लिख देनो, जो इसने ऐसा कहा है, ऐसा आचरण किया है, सो कूटलेखकरण नामा अतीचार है ॥४॥ बहुरि कोऊ आपको धन सौंपि गया तथा वस्त्र आभरणादिक मेलि गया, फिर संख्या भूलि अल्प माँगने आया, ताकू कहै 'तुम्हारा है सो ही लेजावो, सो न्यासापहारिता अतीचार है ॥ ४ ॥ ऐसैं स्थूल असत्य का त्याग नामा अणुव्रतके पांच अतीचार त्यागने योग्य हैं। इहां ऐसा विशेष जानना । जो अनादितैं अनन्तकाल तो यो जीव निगोदमें ही वास किया, फिर कदाचित् निगोदमेंतैं निकसि करिकैं फिर पंच स्थावरनिमें असंख्यातकाल परिभ्रमण करि बहुरि निगोदमें अनन्तकाल बारम्बार अनन्तानन्त परिवर्तन एकेन्द्रियमें किये, तहां तो वचन पाया नाहीं, जिह्वा इन्द्रिय नाहीं भई । बहुरि द्वीन्द्रिय,

त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनी सैनी पंचेन्द्रियमें उपज्या, तहां जिह्वा पाई तो अक्षरात्मक कहने सुननेरूप वचन नाहीं पाया। कदाचित् अनन्तानंतकालमें मनुष्य-जन्ममें वचन बोलनेकी शक्ति पाई, तो नीच कुलनिमें अयोग्य वचन, हिंसाके वचन, असत्य वचन, पर कै अर आपकै संताप करनेवाला बचन, बोलि महापापबन्ध करि दुर्गतिका पात्र भया। अपने वचन करि अपना घातक भया। कदाचित् कोऊ पूर्वपुण्यके उदयकरि मनुष्यजन्म पाया है, तो यामें वचन बोलनेमें बडा यत्न करो। भोजनपान करना, कामसेवन करना, नेत्रनितैं देखना काननितैं, श्रवण करना तो शूकर, कूकर (कुता), गधा, कागलाकै भी होय है, क्योंकि आंख, नाक, कान, जीभ, कामेन्द्रिय ये तो समस्त ढोरनिके भी होय है। इस मनुष्यजन्ममें तो एक वचन ही सार है, करामातीं है। जो इस वचनकूं विगाड्या, सो अपना समस्त जन्म बिगाड्या। वचनतैं ही जानिये है ‘ यो पणिडत है, यो मुर्ख है, यो धर्मात्मा है, यो पापी है, यो राजा है, यो राजाका मंत्री है, यो रङ्क है, यो कुलीन है, यो अकुलीन है, यो हीनाचारी है, यो उत्तमाचारी है, यो संतोषी है, यो तीव्रलोभी है, यो धर्मवासनासहित है, यो धर्मवासनारहित है, यो मिथ्यादृष्टि है, यो सम्यग्दृष्टि नही है, यो संस्कृति सहित है, यो संस्कृतीरहित है, यो उत्तम संगतिको राजसभामें रह्यो तिसहित हुवो है, यो ग्राम्यजन गंवारनिमें रह्यो है, यो लौकिकचतुर है, यो लौकिकमूढ है, यो हस्तकलासहित है, यो कलाविज्ञानरहित है, यो उद्यमी-पुरुषार्थी है, यो आलसी-प्रमादी है, यो शूर है, यो कायर है, यो दातार है, यो कृपण है, यो दयावान है, यो निर्दय है, यो दीन याचक है, यो महन्त हैं, यो क्रोधी है, यो क्षमावान है, यो मदोद्धत है, यो मदरहित है, यो विनयवान है, यो कपटी है, यो निष्कपट है, यो सरल है, यो वक्र है, इत्यादिक आत्माके गुणदोषादिक समस्त वचनद्वारैं ही प्रगट हो हैं। यातैं मनुष्य-जन्म पावन सफल किया चाहो तो, एक वचनहीकी उज्ज्वलता करो। इस वचनहींतैं सत्यार्थ 'उपदेशकरि भगवान अरहन्त त्रैलोक्यकरि वंदनीक होय जगतको मोक्षमार्गमें प्रवर्तन कराया है। वचनहींतैं अनेक जीवनीका मिथ्यात्वरागादिक मल दूरिकरि अजर, अमर, अविनाशी पद दिया है। पंचपरमेष्ठीमें भी वचनकृत उपकारके प्रभावतैं प्रथम अरिहन्तनिकूं ही नमस्कार किया है, ज्ञानी-वीतरागके वचनकरि स्वर्गनरकादिक तीन लोक प्रत्यक्षकी ज्यौं दीखैं है। वचनहीकी सत्यताके प्रभावकरि पंचमकालमें धर्मप्रवर्तै है। अर उज्ज्वल वचन, विनयका वचन, प्रियवचनरूप पुद्गलनिकरि समस्त लोक भऱ्या है। मोल नाहीं लागै। तथा किसीकू जीकारो देनेमें अपना अंगमें दुःख नाहीं उपजे है। जीभ, तालू, कण्ठ नाहीं भिदै है। यातैं समस्त प्राणीनिकै सुख उपजावै ऐसा प्रियवचन ही कहो। अर असत्यवचनके प्रभावकरी ही मिथ्यादेवनिकी आराधना तथा यज्ञादिकहिंसाके प्ररूपक वेदादिक ग्रंथनिमें मांसभक्षणादिक कुकर्मानिमें प्रवृत्ती हू असत्य वचनतैं ही भई है। तथा खोटे शास्त्रनिकी रचना नाना प्रकारके मिथ्यात्वरूप मत नरकातिर्यंचानिमें परिभ्रमण करनेवाला समस्त दुष्ट आचार इस असत्य वचनके प्रभावकरि ही प्रवर्तै है। अर अयोग्यवचनतैं ही घरघरमें कलह, विसंवाद, परस्पर वैर, परस्पर ताडन-मारन, प्राणापहार, क्रोध भय, संताप भय, अपमानादिक देखिये है। अर अप्रतीति-अविश्वास-खेद का कारण एक असत्य वचनहीकूं जानो। अर असत्य का प्रभाव करि परलोकमें नरकतिर्यंचगतिकूं प्राप्त होय। अरु कुमानुषनिमें तथा नीच, चांडाल, चमार, भील, कषायी

इत्यादि कुलमें हू असत्य ही उपजावै तथा अनेक भवनिमें दरिद्री, रोगी, गूंगो, बहरो, हीण, दीन असत्यका प्रभावतैं ही होय है। तातैं समस्त दुःखका मूल एक असत्यवचन ही है। सो शीघ्र ही त्याग करि एक सत्यवचन प्रियवचनहीमें प्रवृत्ति करो। तातैं तुम्हारा वचन समस्तके आदरने योग्य, अनेक देव मनुष्यनिके ऊपरि आज्ञा करने योग्य होय। तथा समस्तश्रुतका परगामी श्रुतकेवलीपना, गणधरपना सत्यहीका प्रभावतैं प्राप्त होय है। यातैं असत्यका त्याग ही जीवका कल्याण है।

बहुरि पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहैं हैं—

हेतौ प्रभत्तयोगे निर्दिष्टे सकलवितथवचनानां। हेयानुष्ठानादेरनुवदनं भवति नासत्यं ॥ १०० ॥
भोगोपभोगसाधनमात्रं सावद्यमक्षमा मोक्तुं। ये तेऽप्यशेषमनृतं समस्तमपि नित्यमेव मुञ्चन्तु ॥ १०१ ॥

अर्थ—समस्त असत्य वचनको कारण प्रमत्तयोग भगवान कह्यो है। कषायके आधीन होय जो वचन कहै है सो असत्य है। यातैं कषायविना देना, मेलना, धरना, त्यागना, ग्रहण करना इत्यादिकका कहना सो असत्य नाहीं है। अर जे गृहस्थ अपना भोग उपभोगका साधनमात्र सदोष वचन त्यागनेकूं समर्थ नाहीं है, तो गृहस्थ अन्य निरर्थक पापबन्ध करनेवाला समस्त असत्य वचनकूं तो त्याग अवश्य ही करो।

भावार्थ—अपना भोग-उपभोगका साधनमात्र सदोष वचनका त्याग नाहीं होय सकै, तो ताका त्याग करनेमें बडा उद्यम राखणा। अर वृथा बहु आरम्भ, बहुपरिग्रहका कारण, दुर्ध्यानका कारण, अन्यके आपकै संतापका कारण, ऐसा सदोष निंद्यवचनका तो त्याग अवश्य करना ही श्रेष्ठ है। ऐसैं स्थूल असत्यका त्याग नामा दूजा अणुव्रतकूं कह्या है।

अब स्थूल चोरीका त्यागनामा तीजा अणुव्रतकूं कहैं हैं—

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं। न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्यादुपारमणं ॥५७॥

अर्थ—जो किसी पुरुषका जमीनमें गड्या हुआ धन होय, वा काऊ स्थानमें महल मन्दिर गृहादिकमें स्थापना किया हुआ धन होय, अथवा आपकूं अमानत सौंपि गया होय, वा अपने मकानमें तथा परके स्थानमें आपकूं नाहीं जनाया धर गया होय, अथवा ग्राममें, नगरमें, बनमें, बागमें पटकी गया होय, अथवा आपको सौंपि भूलि गया होय, वा हिसाब लेखामें चूकि गया होय, वा आपके स्थानमें भूलिकरि पटकि गया होय, अथवा लेने देनेमें गिनतीमें विस्मरण हुआ पैसा, रुपया, मोहोर, आभरण, वस्त्रादिक बहुत वा अल्प द्रव्य विना दिया नाहीं ग्रहण करै अर परका द्रव्य उठाय किसीकूं देवे भी नाहीं, सो स्थूलचोरीका त्यागरूप अणुव्रत है।

अर कार्तिकेयस्वामी ऐसैं कह्या है—

जो बहुमुल्लं वत्थुं अप्पमुल्लेण णेय गिण्हेदि । वीसरियं पि ण गिण्हेदि लाहे थूवेहि तूसेदि ॥ ६३५ ॥

अर्थ—जाके स्थूल चोरीका त्याग होय, सो बहुत मोलकी वस्तु अल्प मोलमें नाहीं ग्रहण करै । जैसैं कोऊ पुरुष आपको वस्तुको चौकसि करि बेचै, तो सवारूपयामें बिक जाय । अर आपकूं आय सौंपी जो इसकी कीमत होय, सो आप देवो, तो तहां सवा रुपयाकी वस्तुकूं प्रगट जानता लोभके वशि हो एक रूपयामें हू नाहीं लेवै, अन्यकी भुली हुई वस्तु ग्रहण नाहीं करै, तथा ऐसा परिणाम नाहीं करै, जो कोऊ निर्धन तथा अज्ञानीकी वस्तु हमारे थोडे मोल में आजाय तो भला है अर अल्प लाभहीमें बहुत संतोष राखै ।

भावार्थ—वनजके व्यवहारमें तथा सेवामें लाभ थोरा होय तो, संतोष ही करै, अधिकमें लालसा नाहि करै, तिसकैं स्थूलचोरीका त्याग जानना ।

अब अचौर्यनामा अणुव्रत के पांच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः । हीनाधिकविनिमानं पंचाऽस्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥

अर्थ—अचौर्य नामा अणुव्रतके ये पांच अतीचार हैं । आप तो चोरी नाहीं करै, परन्तु अन्यकूं प्रेरणा करै, तथा चोरी करनेका प्रयोग (उपाय) बतावैं, सो चोरप्रयोग नामा अतीचार है ॥ १ ॥ अर चोरका ल्याया धनको ग्रहण करना सो चौरार्थादान नामा दूसरा अतीचार है ॥ २ ॥ अर उचित न्यायतैं छांडी अन्यरीतितैं ग्रहण करना अथवा राजाकी आज्ञासूं जाका निषेध होय तिस कार्यका करना विलोप नामा अतीचार है ॥ ३ ॥ अर बहुत मोल की वस्तुमें अल्पमोलकी वस्तु मिलाय चला देना सो सदृशसन्मिश्र नामा अतीचार है । जैसैं घृतमें तेल मिलाय देणा शुद्धसुवर्णमें कृत्रिमसुवर्ण मिलाय देणा, सो सदृशसन्मिश्र है ॥ ४ ॥ बहुरि देनेके बांट, ताखडी, घाटी, परिणाम राखना, लेनेकूं बढती राखना, सो हीनाधिकमानोन्मान नामा अतीचार है ॥ ५ ॥ ऐसैं स्थूलचोरीका त्याग नामा अणुव्रतके पांच अतीचार त्यागने योग्य हैं । इस चोरीसमान जगतमें अपराध नाहीं है । समस्त उच्चता, कुलकर्म, धर्मविनाश करनेवाली, समस्त प्रतीति-बडापनाका विध्वंस करनेवाली है । अर चोरीका धन हू, वेश्यासेवनमें, परस्त्रीमें, व्यसननिमें, अभक्षमें खरच होय है वा अन्य किसीमें रह जाय है, सन्तोष नाहीं आवै है, क्लेशित होय रहै है । अर प्रगट होय तो राजा तीव्र दण्ड दे है, समस्त लोक मारे है । हस्त-नासिकाका छेदन, सर्वस्वहरणादिक दण्ड यहां ही प्राप्त होय है । परलोकमें नरकादिक कुयोनिनमें परिभ्रमण होय है ।

अब स्थूल ब्रह्मचर्य नामा अणुव्रतका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

न च परदारान् गच्छति, न परान् गमयति, च पापभीतेर्यत्। सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसंतोषनामापि ॥५९॥

अर्थ—जो पापका भयतैं परकी स्त्रीप्रति आप नाहीं प्राप्त होय, अर परकी स्त्री प्रति अन्य पुरुषनिनैं गमन नाहीं करावै, सो स्वदारसंतोषनामधारक परस्त्रीका त्याग नामा चौथा अणुव्रत है।

भावार्थ— जो अपने जाति-कुलकी साखतैं विवाही स्त्री तिसविषै सन्तोष धारण करके तिसतैं अंन्य समस्त स्त्रीमात्रमें रागभावका त्यागी होय, परस्त्री तथा वेश्या दासी तथा कुलका तथा कन्या इत्यादिक स्त्रीनिमें विरागताको प्राप्त होय स्त्रीनिसूं रागभाव करि संगम, वचनालाप, अवलोकन, स्पर्शनका त्याग करै, ताकूं परस्त्रीका त्यागी कहिये तथा स्वदारसन्तोषी हू कहिये है।

अब स्वदारसंतोषव्रतके पांच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः। इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पंच व्यतीचाराः॥६०॥

अर्थ—अस्मर जो स्थूल ब्रम्हचर्य ताके पांच अतीचार हैं, ते त्यागने योग्य हैं। अपने पुत्र-पुत्री विना अन्यके पुत्रपुत्रीनिका विवाहकूं आ समन्तात् कहिये आप रागी होय करवो सो अन्य विवाहाकरण नाम अतीचार है ॥ १ ॥ अर कामके अङ्ग छांडि अन्य अङ्गनितैं क्रीडा करिवो, सो अनङ्गक्रीडा नाम अतीचार है ॥२॥ बहुरि भण्डिमारूप पुरुषकूं स्त्रीका रूप स्वांगादिक बनाय मनवचनकायकी प्रवृति सो विटत्व नाम अतीचार है ॥३॥ बहुरि कामकी अतितृष्णा, कामकी तीव्रता, सो अतितृष्णा नाम अतीचार है ॥४॥ बहुरि इत्वरिका जे व्यभिचारिणी स्त्री तिनके घर जावना, व्यभिचारिणिकूं आपके घर बुलावना, देन लेन रखना, परस्पर वार्ता करना, रूप-शृंगार देखना, सो इत्वरिकागमन नाम अतीचार है ॥ ५ ॥ ये स्थूल ब्रह्मचर्यव्रतके पांच अतीचार त्यागने योग्य हैं। जो देवनिकरि पूज्य यो ब्रह्मचर्यव्रत ताकी रक्षा किया चाहै, सो अपनी विवाही स्त्री विना अन्य माता, भगिनी, पुत्री, पुत्रवधूके नजीक हू एकान्तस्थानमें नाहीं रहै। अन्य स्त्रीका मुख नेत्रादिककूं अपना नेत्र जोड नाहीं देखै। शीलवन्तपुरुषनिका नेत्र अन्य स्त्रीकूं देखतप्रमाण मुद्रित होय जाय हैं।

अब परिग्रहपरिमाणनामा अणुव्रत कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता। परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि॥ ६१ ॥

अर्थ—अपनै परिणामनिमें जेतामें सन्तोष आजाय तितना धन, धान्य, द्विपद चतुष्पद, गृह, क्षेत्र, वस्त्र, आभरणादि परिग्रहका परिमाण करकैं अधिक परिग्रहमें निर्वाञ्छकपनो सो परिमितपरिग्रहनामा व्रत है। याहीकूं इच्छापरिमाण नाम कहिये है।

बहुरि कोऊकै वर्त्तमानमें परिग्रह अल्प है अर वांछा अधिक करि बहुत धनमें परिमाण करि मर्याद करै ह, सोहू धर्मबुद्धि है, व्रती है; परन्तु अन्यायतैं लेवाका त्याग दृढ राखै। जैसैं कोऊकैं परिग्रह तो सौरुपया का है, परिमाण हजारका करै ‘जो हजार सिवाय नाहीं ग्रहण करूं यो भी व्रत है परन्तु हजार अन्यायतैं नाहीं ग्रहण करूंगा ऐसा दृढ नियम करै जातैं परिग्रहका परिमाण बिना निरन्तर परिणाम अनेक वस्तुनिमें परिभ्रमण करै है। समस्त पापनिका मूल कारण परिग्रह है। समस्त दुर्ध्यान याहीतैं होय है, जातैं भगवान् मूर्छाकूं परिग्रह कह्या है। बाह्यपरिग्रह अन्य वस्त्रमात्र तथा रहनेकूं कुटीमात्र नाहीं होतै हू परवस्तुमें ममता (वांछा) करिसहित है, सो परिग्रह ही है। परमागममें अन्तरङ्गपरिग्रह चौदह प्रकार कह्या है–मिथ्यात्व १, वेद २, राग ३, द्वेष ४, क्रोध ५, मान ६, माया ७, लोभ ८, हास्य ९, रति १०, अरति ११, शोक १२, भय १३, जुगुप्सा १४। तहां मिथ्यात्व तो देहादिक परद्रव्यनिमें अनादिकालतैं ममतारूप परिणाम हैं यह देह है सो मैं हूं, जाति मैं हूँ, कुल मैं हूँ, इत्यादिक परपुद्गलनिमें आत्मबुद्धि अनादितैं लाग रही है; सो मिथ्यात्व है। तथा रागद्वेषभाव, क्रोधादिकभाव, मोहकर्मकरि किए भावनिमें आत्मपनाको संकल्प, सो मिथ्यात्व-परिग्रह है। तथा कामतैं उपज्या विकारमें लीन हो जाना तथा राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्यादिक छह नोकषायनिमें आपा धारना, सो अंतरंग परिग्रह है। जाकै अंतरन्गपरिग्रहका अभाव है, ताकैं बाह्यपरिग्रहमें ममता नाहीं होय है। समस्त अनीति परिग्रहकी ममतासूं करै है। परिग्रहकी वांछातैं हिंसा करै, झूठ बोलै ही, चोरी करै ही, कुशीलसेवन करै ही, परिग्रहके वास्ते मर जाय, अन्यकूं मारै, महा क्रोध करै, परिग्रहका प्रभावतैं महाअभिमान करै, परिग्रहके वास्ते अनेक मायाचार करै। परिग्रहकी ममतातैं महालोभ करै। बहुत आरम्भ बहुत कषायको मूल परिग्रह ही है। समस्त पापनितैं छूट्या चाहै सो परिग्रहतैं विरक्त होय है।

सो ही कार्तिकेयस्वामी कह्या है—

को ण वसो इत्थिजणे? कस्स ण मयणेण खंडियं माणं?। को इंदिएहिं ण जियो? को ण कसाएहिं संतत्तो? ॥२८१॥
सो ण वसो इत्थिजणे, सो ण जियो इन्दिएहिं मोहेण। जो ण य गिण्हदि गंथं अब्भंतरवाहिरं सव्वं ॥ २८२॥
जो लोहं णिहणित्ता संतोसरसायणेण संतुट्ठो। णिहणदि तिण्हा दुट्ठा मण्णंतो विणस्सरं सव्वं ॥ ३३९ ॥
जो परिमाणं कुव्वदि धणधण्णसुवण्णखित्तमाईणं। उवओगं जाणित्ता अणुव्वयं पंचमं तस्स ॥ ३४० ॥

अर्थ—इस जगतमें स्त्रीनिके वश कौन नाहीं है? अर कामविकारनें कौनका मान खंडन नाहीं किया? अर इन्द्रियनिकरि कौन नाहीं जीत्या गया? अर कषायनिकरि तप्तायमान कौन नाहीं है? समस्त संसारी जीव हैं ते स्त्रीनिके वश होय रहे हैं, अर कामविकार समस्त संसारीनिका अभिमान खंडन करै है, अर समस्त संसारी जीव इन्द्रियनिके वश पराधीन होय रहे हैं, अर चार प्रकार कषायनिकरि समस्त प्राणी दग्ध होय रहे हैं। जो पुरुष अभ्यंतर अर बाह्य समस्त परिग्रहकूं ग्रहण नाहीं करै है, सो ही स्त्रीनिके

वश नाहीं, सो ही इन्द्रियनिके आधीन नाहीं, तिसहींकू मोह नाहीं जीतै, सो ही कामकरि नाहीं खण्डन होय हैं, सो ही कषायकरि दग्ध नाहीं होय है। जो पुरुष लोभको नष्ट करि संतोषरूप रसायणकरि आनन्दित हुआ समस्त धन-संपदादिकनिनै विनाशीक मानि दुष्टा तृष्णाकूं, आगामी वांछाकू, छांडिकरि धन, धान्य, सुवर्ण, क्षेत्र, स्थानादिकनिको अपना अभिप्राय जानि परिमाण करै है. जो 'इतना परिग्रहसूं मेरा निर्वाह करना, अधिकमें मेरा प्रवृत्ति करने का त्याग है' ऐसे पापरूप जानि वांछा छांडै ताकै परिग्रहपरिमाण नामा अणुव्रत होय है । बहुरि परमागममें परिग्रहका लक्षण मूर्च्छा कह्या है। जीवकैं जो परपदार्थनिमें ममताबुद्धि सो ही मूर्च्छा है जातैं परवस्तुमें ऐसा अपना मानकरि राग है, जो आत्माका जीवन-मरण, हित-अहित, योग्य-अयोग्यके विचारमें अचेत होय रह्या है, मोहकी उदीरणातैं 'म्हारो' 'म्हारो' ऐसो परद्रव्यमें परिणाम, सो ही मूर्च्छा है। मूर्च्छाहिकूं भगवान परिग्रह कह्या है। याहीतैं बाह्य परिग्रह अल्प होहु वा मति होहु, समस्त परिग्रहसहित है तो हू मूर्च्छावान परिग्रही है। सो ही कहै हैं—

बाहिर-गंथ-विहीणा, दलिद्दमणुआ सहावदो हुंति। अब्भिंतरगंथं पुण ण सक्कदे को वि छंडेदुं ॥ ३९७ ॥

अर्थ—बाह्य परिग्रह-राहित तो दरिद्री मनुष्य स्वभावहीतैं होय हैं सो देखिये ही हैं। हजारां लाखां मनुष्य ऐसे हैं जिनकूं जन्म लिये पीछे पीतल, तांबा, कांसाका पात्र मिल्या ही नाहीं । जे जन्मतैं घृत भक्षण किया नाहीं, मोदकादिक खाया नाहीं, पाग, अंगरखी, जामा कदे पहरया ही नाहीं, स्त्री विवाही ही नाहीं, कदे उदर भर भोजन मिल्या नाहीं, सुवर्णादिक देख्या नाहीं, समस्त जन्ममें दोय चार दिनके खावने योग्य अन्नमात्रका हू संग्रह हुआ नाहीं, अन्य सुवर्ण रूपादिकनिका तो दर्शन ही नाहीं, पैसा रुपया एक भी जिनकूं कदे प्राप्त हुआ नाहीं, रहने को कुटीमात्र हू अपनी भई नाहीं, ऐसैं अनेक मनुष्य देखीये हैं परन्तु अभ्यन्तर ममता छोडनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं, तातैं मूर्च्छा ही परिग्रह है। यहां कोऊ पूछै—जो मूर्च्छा ही परिग्रह है, तो बाह्य धन, धान्य, वस्त्रादिक बाह्य वस्तुका संगमके परिग्रहपना नाहीं ठहर्‍यो ? ताकूं उत्तर करै हैं—ये बाह्य परिग्रह अन्तरंग परिग्रहके निमित्त हैं। इन बाह्य परिग्रह का देखना, श्रवण करना, चिंतवन करना, शीघ्र ही परिग्रहमें लालसा उपजावै है, ममता उपजावै है, अचेत करै है। तातैं बहिरंग परिग्रह मूर्च्छाका कारण त्यागने योग्य है । अर अंतरंग बहिरंग दोऊ प्रकार परिग्रह के ग्रहणकूं भगवान हिंसा कहि है। अर दोय प्रकारका परिग्रहका त्याग, सो अहिंसा है, ऐसैं परमागमके जानने वाले कहैं हैं । जातैं मिथ्यात्व-कषायादिक अंतरंगपरिग्रह तो हिंसाहीके दूजे पर्यायनाम हैं। अर बाह्यपरिग्रहमें मूर्च्छा सो ही हिंसा है। बहुरि ये कृष्णादिक लेश्याके अशुभपरिणाम हू। परिग्रहमें रागकरि ही होय है; क्योंकि परिणामनिकी शुद्धता मंद कषायकरि होय है। कषायनिकी मंदता होय, सो परिग्रहके अभावतैं होय। अर महान आरम्भ भी परिग्रह की अधिकतातैं ही होय है । ऐसैं जानि समस्त परिग्रह छांडनेका राग नाहीं घट्या तो परिग्रहमें उपयोग माफिक परिमाण करिकैं तो रहो । अर जो परिग्रह तो अल्प है अर अधिककी वांछा वनि रही है, सौ इस वांछातै प्राप्त नहीं होयगा। लाभ तौ अंतरायकर्मका क्षयोपशमतैं होयगा; वांछातैं तो और

पाप कर्म का बंध ही होयगा। तातैं पाप का कारण परिग्रहकी ममता छांडि जेता प्राप्त भया तितनामें सन्तोष धारण करि ही रहो। यहां ऐसा विशेष जानना। यद्यपि समस्त परिग्रह त्यागने योग्य है, परन्तु जो गृहस्थपनामें रहि धर्मसेवन कर्‍या चाहै, सो अपने पुण्यके अनुकूल परिग्रह राखै हीं। जो परिग्रह गृहस्थके नाहीं होय, तो काल-दुकालमें, रोगमें, वियोगमें, व्याहमें, मरण में, परिणाम ठिकाने रहै नाहीं, परिणाम बिगडि जाय। तातैं गृहस्थधर्मकी रक्षावास्तै परिग्रह संचय करै ही। अर आजीविकाको उपाय न्यायमार्गतैं करैं ही; क्योंकि साधु तो परिग्रह अल्प हू राखे तो दोऊ लोक तैं भ्रष्ट हो जाय, अर गृहस्थ परिग्रह नाहीं राखै तो भ्रष्ट होजाय, जातैं गृहस्थाचारमें रहे तो ताकै अल्प तथा बहुत परिग्रह बिना परिणाममें समता नाहीं रहै। अर आजीविका नाहीं होय तो निराधारका परिणाम धर्मसेवनमें ठहर सकै नाहीं, परिणाम में तीव्र आर्ति मिटै नाहीं, भोजन-पान मिलने योग्य आजीविका बिना स्वाध्यायमैं, पूजनमें, शुभ भावनामें परिणाम ठहरि सके नाहीं, आकुलता करि संक्लेश बधतो जाय, सन्तोष रहै नाहीं। जातैं रोग आवतैं, वृद्धपना आवतैं, वियोग होतैं अन्न वस्त्र का आधार विना अपना परिणाम कोऊ देशमें, कोऊ कालमें थिरता पावै नाहीं, देहकी रक्षा आजीविका विना नाहीं। देह बिना अणुव्रत, शील, संयम काहेतैं होय? यातैं अपना पुण्यकी अनुकूलता अर उद्यम, सामर्थ्य, सहाय, साधनादिक देश कालके योग्य विचारि न्यायमार्गतैं आजीविका करि धर्म सेवन करौ। अहिंसातैं, सत्यप्रवृत्तितैं अदत्त परके धनका त्यागकरि आपकूं जगतकै लोकनिकै विश्वास आवनेयोग्य पात्र बनो। तथा विद्या, कला, चातुर्य करि आजीविका होने योग्य आपकूं करौ। पाछैं लाभांतराय का क्षयोपशम प्रमाण लाभ, अलाभ, अल्पलाभ होय, ताहीमें सन्तोष करो। अर कुटुम्बका पोषण, देहका पोषण, पुण्य के उदयतैं लाभ भया तिस परिमाण करौ। ऋणवान मत होहू, ऋण हुआ पाछैं समस्त धीरज, प्रतीति का अभाव हो जायगा, दीनता प्रगट हो जायगी, एक बार अपनी प्रतीति बिगडै पाछैं आजीविका होना कठिन है। बहुरि आजीविकाकै अनुकूल खरच राखो, पुण्यवाननिकूँ देख अधिक खरच करोगे तो जस अर धर्म अर नीति तीनों नष्ट हो जायंगे। अर अन्य पुण्यवानों का खरच देख बराबरी करोगे तो दरिद्री होय दोऊ लोकतैं भ्रष्ट हो जावोगे। अर या जानो हो जो हमारी बडी आबरू है, पूर्वैं हमारे बडा बडा कार्य भया है अब कैसे घटावैं? जो घटावैं तो हमारा समस्त बडापना बिगडि जाय ऐसी बुद्धि मति करो। पुण्य अस्त हो जाय, तब बडापना कैसैं रहेगा? अब बडापना तो सांच, सन्तोष धारण करि, शीलकरि, विनयकरि, दीनतारहितपनाकरि, इन्द्रियनिके विषयनिकी चाह घटावनेकरि है। जातें दोऊ लोक में उज्ज्वलता होय, पुण्य को उदय आ जाय तदि जीवकूं स्वर्गलोक का महर्द्धिक देव बना दे, चक्रवर्ती करदे, अर पापका उदय आवै, तदि नरक का नारकी तथा एकेंद्रिय बना दे। तथा भार बहनेवाला, रोगी, दरिद्री मनुष्य कर दे, तिर्यंच कर दे, इसही भव में राजा होय रंक हो जाय, कौन सा बडापनाकूं देखो हो। अर अपने धन तो अल्प अर अभिमानी होय बहुत धन खरच करोगे; तो दरिद्री अर ऋणवान दीन होय समस्ततैं नीचे हो जावोगे, निंद्यताकूं प्राप्त होय आर्तध्यानतैं दुर्गतिकै पात्र हो जावोगे। तातैं आजीविका होय तातैं अल्प खरच करो। यो ही प्रवीणपणो है, पण्डितपणो

है, जो आमदनीतैं अल्प खरच करै सो ही कुलवानपणो है, सोई उत्तम धर्म है। क्योंकि आमदनीतैं खरच वधावोगे, तो अपनी ही बुद्धितैं दरिद्री होय मूर्खता दिखावोगे। अर ऋणवान हो जावोगे, तदि उत्तम कुलयोग्य आदर-सत्कार आचरण समस्त नष्ट हो जायगा, अर मलीनता प्रगट हो जायगी। अर पूजन स्वाध्याय शुभ भावनामें बुद्धि निर्धन हुआ पीछैं, ऋणवान हुआ पीछैं, नाहीं तिष्ठैगी। तातैं आजीविकातैं अल्प खरच करना ही गृहस्थ की परम नीति है। अर अभिमानी होय अधिक खरच करै, ताकै अन्यका विना दिया धन ऊपरि चित्त चलि जाय है, अनेक असत्य कपटादिक पापमें प्रवृत्ति होय संतोप धर्म नष्ट हो जाय है। कोऊ या कहै—जो आजीविका तो पूर्वकर्मके आधीन है, धर्मसेवन अपने आधीन है, ताकूं कहिये है जो यहां आजीविका पुण्यके आधीन ही है; परन्तु धर्मग्रहण होजाना हू पुण्यकर्मका सहाय विना नाहीं होय है। धर्मग्रहणकी योग्यतामें हू एती सामग्री मिले हैं। जातें उत्तम कुलमें जन्म पावना होय है। चांडाल, चमार, भील, शुद्रादिकके कुलमें धर्मका लाभ कैसैं होय? वहुरि सुदेशमें उपजना, इन्द्रियांकी पूर्णता पावना, रोगरहित देह पावना, शुभ सङ्गति पावना, आजीविकाकी स्थिरता पावना, सम्यक्धर्मका उपदेश पावना, इत्यादिक पुण्यका उदय-जनित बाह्यसामग्री पाये विना धर्मग्रहण वा धर्मका सेवन नाहीं होय है। तातैं जाकैं पूर्वपुण्यका उदयतैं आजीविकाकी स्थिरता होय ताकै धर्मसेवनमें योग्यता होय है। बहुरि जाके इन्द्रियनिकी पूर्णता, नीरोगता हो जाय, अर न्याय-अन्यायका विवेक तथा धर्म-अधर्म, योग्य-अयोग्यका विवेक होय तथा प्रियवचन, विनय, अन्यके धन अर अन्यकी स्त्रीसूं पराङ्मुखता अर आलस्य प्रमादरहितता, धीरता, देश-कालके योग्य वचन होय, ताकैं आजीविकाका लाभ अर धर्मका लाभ हो जाय। गुणवानकै, निर्लोभीकै, आलस्यरहित उद्यमीकै, विनयवानकै, जीविका दुर्लभ नाहीं है। आप जीविका योग्य पात्र वन जाय, तो जीविका कदाचित् दूर नाहीं। लाभांतराय कर्मका क्षयोपशम प्रमाण आजीविका थोडी वा वहुत नियमतैं वन ही जाय। तिसमें संतोष करि, अधिकमें वांछाका त्याग करि, परिग्रहपरिमाणव्रत धारण करो। अर पुण्यका उदयके आधीन आजीविका प्राप्त होजाय तो अनीतिमें प्रवृत्ति करि आजीविकाकूं नष्ट मत करो। आजीविका नष्ट होजायगी तो धर्म अर जस नष्ट हो जायगा। अर अपने भावनिकरि जो नीति धर्म नाहीं छांडोगे, न्यायमार्ग चालोगे, फिर हू असाताका उदयतैं, अग्नितैं, जलतैं, चोरनितैं, राजाके उपद्रवतैं आजीविका बिगाडि जाय। तथा धन बिगड जायगा तो धर्म नाहीं बिगडैगा, यश नाहीं बिगडैगा। जगतमें अप्रतीतिका पात्र नाहीं होवोगा, अर प्रवल लाभान्तराय का उदयतैं न्यायरूप उधम करते हू जो लाभ नाहीं होय, तो समता ही ग्रहण करो। जो आयुकर्म बाकी है तो भोजनादिककी विधि कर्म मिलाय देगो, कर्म बलवान है। बनमें, पहाडमें, जलमें, नगरमैं, अन्तरायका क्षयोपशम प्रमाण सबकूं मिलै है। कोऊका पुण्य तो ऐसा है, जो बहुत लोकनिकूं भोजनादिक देय आप भोजन करै है। अर कोऊके अन्तरायका ऐसा उदय है, जो अपना उदर हू नाहीं भरै है। कोऊकूं आधा उदर भरने

लायक मिलै है। कोऊकूं एक दिन मिलै, एक दिन नाहीं मिलै। कोऊकूं दो दिनके आंतरे, कोऊकूं तीन दिनके आंतरे, नीरस भोजन मिलै, तो हू धर्मात्मा समताकूं नाहीं छांडै। जो पूर्वैं तिर्यंचनिके भवमें कदे उदर भर भोजन मिल्या नाहीं, तथा क्षुधा-तृषाके मारे अनेक बार मरे हैं, तातैं अब धैर्य धारण करि जैसैं हमारे धर्म नाहीं छूटै, तैसैं यत्न करना जिनका परिणाममें ऐसा गाढ प्रगट होय तो स्वर्गलोकमैं महर्द्धिक देव होय है। बहुरि कोऊ या कहै—जो आप जो गाढ पकडी समता राखै; परन्तु कुटुम्ब जाकी गैलि होय तो कहां करै तो ऐसे कुटुम्बकूं कहै—भो कुटुम्बके जन हो! जो आपां पूर्व जन्ममें दान दिया नाहीं, व्रत पाल्या नाहीं, अभक्ष्य भक्षण किये, अन्यायतैं परका धन ग्रहण किया, तिस पापके उदय करि ऐसे दरिद्री भये जो उदरकूं भोजन अर वस्त्र भी नाहीं, सो अपना किया पापका फल है। जो अब अन्य पुण्यवाननिके आमरण-भोजनादिक देखि क्लेषित होवोगे, तो केवल आगांनैं हू तिर्यंच गतिके घोर दुःखनिका कारण पापकर्म तथा कोटनि भवपर्यंत दरिद्रादिकके कारण पापबन्ध करोगे, परकी सम्पदा आपकै नाहीं आवैगी। क्लेश दुर्ध्यान तृष्णादि कियेतैं दुःख नाहीं मिटेगा अर दुःख बधैगा। अर जो अल्प मिल्यामें संतोष करि निर्वांछक होवोगे, तो वर्तमानमें तो दुःख ही नाहीं व्यापैगा अर समस्त पापकर्मकी निर्जरा ऐसी होयगी, जो घोर तपश्चरणतैं हू नाहीं होय। अर अल्प भोजन वस्त्रादिक मिले अर परिणाममें आकुलतारहित समतासूं रहै, तो बडा तप है। अर कर्म मुझे थांकै शामिल उपजायो, सो अब मैं दैव पुरुषार्थ दोऊनिके अनुकूल द्रव्य उपार्जनमें उद्यम करूं हूँ; परन्तु लाभांतरायका क्षयोपशम प्रमाण न्यायमार्गतैं प्राप्त हो जायगा, सो तुम्हारे निकट लाऊं हूँ। अब यामेंसूं हमारे विभागका बांटा होय, सो हमकूं द्यो अर तुह्मारा होय सो तुम विभाग करि भोजनादिक करो। परन्तु अब हम भगवानका उपदेश्या दुर्लभ धर्म ग्रहण किया है, सो अब तुह्मारे वास्तै अनीति कपट घोर पापकरि धन नाहीं ग्रहण करेंगे, न्यायनीतितैं जैसैं धर्म नाहीं बिगडै तैसैं उद्यम करि उपार्जन करेंगे। तुम भी जैसैं हमारा धर्म बिगडि जाय, तैसैं प्रवर्तन मत करो। अपना अपना पुण्य-पापका फल भोगो। आकुलता छांडि जेता मिलै तितनामैं संतोष धारि सुखतैं रहो। ऐसा जाके निश्चय है, ताकै परिग्रहपरिमाण नामा स्थूल व्रत होय है। और जो कुटुम्बका पोषणके अर्थि पाप-क्रियामें प्रवर्तैं हैं, असत्य, चोरी, कपट, हिंसा इत्यादिक पापनिमें प्रवर्तैं हैं तिनके घोर पापका बन्ध होय। पापतैं दुर्गतिका पात्र होय हैं। तातैं अल्प जीतव्यमें व्रत, शील, संयममें ही दृढता करो। केतेक लोक कहै हैं—जो धन तो पापहीतैं आवै है। पाप विना धन आवै नाहीं। त्यागी व्रती हुआ धन कैसैं आवै? ताकूं कहिये है—ऐसी तो तुम्हारी भ्रान्ति है जो पाप विना धन आवै नाहीं ऐसा कहना अयुक्त है। जो पापहीतैं धन आवै तो इस जगतमें लाखां भील, चांडाल, चोर, चुगल, मनुष्यनिकूं मारनेवाले, ग्राम दग्ध करनेवाले, मार्ग लूटनेवाले, समस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, समस्त जाति, समस्त कुल, पापीनि करि भऱ्या है। समस्त पुरुष, स्त्री, बालकादि हिंसाके करनेकूं, असत्य बोलनेकूं, चोरी करनेकूं तैयार हैं, परन्तु जो पूर्वजन्ममें कुपात्र दान दिया है, कुतप करि खोटा पुण्य बांध्या है, तिनकैं कुमार्गतैं धन आवै है, पुण्यहीन तो माऱ्या जाय, पूर्वपुण्य बिना पापतैं ही तो नाहीं आवै है, अर जो पुण्य बांध्या ते यहां चोरी, चुगली कऱ्या बिना ही सम्पदाकूं प्राप्त होय

है। राजा के घर जन्म ले है, तातैं कोटि धनके धणीनिकैं घर जन्म ले है । बहुत कहा कहिये, समस्त पुण्यका फल है । खोटे पुण्यकी लक्ष्मी भोगि नरक-तिर्यंचमें जाय डूबै है ।

अब परिग्रहपरिमाणव्रतके पंच अतीचार वर्णन करनेकूं सूत्र कहैं हैं—

अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि । परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पंच लक्ष्यन्ते ॥ ६२ ॥

अर्थ—परिमितपरिग्रहनामा व्रतके ये पांच अतीचार जानिये हैं, जो घोडा, ऊंट, बैल इत्यादिक तिर्यंचनिकूं तथा दास, दासी, सेवकादिकनिकूं अतिलोभ के वशतैं मर्यादारहित अतिदूरका मंजल करावै, बहुत चलावै, सो अतिवाहन नामा अतीचार है ॥ १ ॥ बहुरि अपने गृह में प्रयोजनरहित हू बहुत वस्तुनिका संग्रह करै, भोजन, वस्त्र, पात्र इत्यादिक थोरे का प्रयोजन होय अर बहुत का संग्रह करै तथा धान्यादिक अर वस्त्रादिक तथा औषधादिक तथा काष्ठ पाषाण धातु इत्यादिकनिका संग्रहमें बहुत परिणाम रहै, सो अतिसंग्रह नामा दूजा अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि अन्य के बहुत संपदा, बहुत परिग्रह तथा अनेक देशांतरनिकी वस्तु वा कदे नाहीं देखे ऐसे वस्तु का देखनेकरि, श्रवणकरि आश्चर्य करना सो विस्मयनामा तीजा अतीचार है ॥ ३ ॥ बहुरि कोऊ वनिज में तथा सेवा में तथा कला हुनरतैं आपके अन्तराय के क्षयोपशम प्रमाण लाभ होय, तो हू तृप्त नाहीं होना, सन्तोष नाहीं आवना, सो अतिलोभ नामा चौथा अतीचार है ॥ ४ ॥ बहुरि तिर्यंचनि ऊपरि लोभ के वशतैं अधिक भार लादि चलावना, सो अतिभारवहन नामा पांचमा अतीचार है ॥ ५ ॥ जो गृहस्थ परिग्रहपरिमाण करै, सो इन पांच अतीचार का हू परित्याग करै ।

ऐसैं गृहस्थनिके धारण करनेयोग्य पंच अणुव्रत कह करिकैं अब अणुव्रतनिके फल कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

पञ्चाणुव्रतनिधया निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम् । यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

अर्थ—अतीचारनिकरि रहित ये पूर्वोक्त पंच अणुव्रतरूप निधि हैं, सो देवलोकरूप फलकूं फलै हैं, जिस देवलोकमें अवधिज्ञान अर अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व ये अष्ट महागुण हैं, अर धातु, उपधातुरहित दिव्यशरीर पाइये है ।

भावार्थ—अणुव्रतनिके धारण करनेवाला मरकरि स्वर्गलोकमें महान् अणिमादिक ऋद्धिका धारक देव ही होय अन्य पर्याय नाहीं पावै ऐसा नियम है । स्वर्गमें धातु उपधातुरहित, रोग वृद्धत्वादिकरहित दिव्य शरीरकूं प्राप्त होय असंख्यात वर्षपर्यन्त सुखसम्पदामें लीन हुआ तिष्ठै है ।

अब जे पंच अणुव्रतनिकूं धारण करि इस लोक में विख्यात महिमाकूं प्राप्त भये, तिनके नाम प्रकट करनेकूं सूत्र कहैं हैं—

मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः । नीली जयश्च संप्राप्तः पूजातिशयमुत्तमम् ॥ ६४ ॥

अहिंसा नामा अणुव्रतकरि मातंग जो चांडाल अर सत्य अणुव्रतकरि धनदेव नामा वणिकपुत्र अर अचौर्यव्रत करि वारिषेण नामा राजपुत्र अर ब्रह्मचर्यव्रतकरि नीली नामा श्रेष्ठीकी पुत्री अर परिग्रहपरिमाणकरि जयकुमार ये व्रतके माहात्म्य करि उत्तम पूजाके अतिशयकूं प्राप्त भये, इस ही भवमें देवनिकरि पूज्य भये । यद्यपि इन व्रतनिके प्रभावतैं अनेक भव्य इस लोकमें महिमा पाय देवलोकमें गये तथापि आगमप्रसिद्ध इनकी ही कथा है ।

अब पंच पापनिके प्रभावतैं इस लोकमें घोर क्लेश पाय दुर्गति गये, तिनका नाम कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

धनश्रीसत्यघोषौ च तापसीरक्षकावपि । उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—हिंसा करि तो धनश्री, असत्यकरि सत्यघोष, चोरीकरि तापसी, कुशीलकरि कोतवाल, परिग्रहकरि श्मश्रुनवनीत ये इस लोकमें राजनितैं तीव्र दण्ड पाय दुर्गतिकूं प्राप्त भये इनका यथाक्रम दृष्टान्त जानना ।

अब अष्ट मूलगुणनिकूं कहैं हैं—

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम् । अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥

अर्थ—श्रमणोत्तम जे गणधर तथा श्रुतकेवली हैं ते गृहस्थके मद्य मांस मधुके त्याग सहित जे पंच अणुव्रत ताहि अष्टमूलगुण कहै हैं ।

भावार्थ——जीव मारनेके संकल्पकरि त्रस जीवनिके मारनेका त्याग (१), अन्यके अर आपके क्लेश उपजावनेवाला अर सांचा श्रद्धान, ज्ञान, आचरणका घात करनेवाला वचन का त्याग (२), विना दिया, धर्‍या, गड्या, भूल्या परके धनके ग्रहण करनेका त्याग (३), अपना कुलके योग्य विवाही स्त्री बिना अन्य समस्त स्त्रीनिमें रागका त्याग (४), न्यायकरि उपजाया परिग्रहके मांहि परिणामकरि अधिक परिग्रह का त्याग (५), ये पांच तो अणुव्रत, अर जिसतैं परिणाम मोहित होय अर अपना हित अहितकी सावधानी बिगडि जाय, सो मद्य है ताका त्याग (६), अर द्वीन्द्रिआदिक जीवनिके देहतैं उपज्या मांसका त्याग (७), अर मक्षिकानिकरि संचय किया मधुछत्तातैं उपज्या मधुका त्याग (८), इन अष्टका त्याग सो अष्टमूलगुण हैं । जातैं गृहस्थके पंच पाप अर तीन मकारका त्यागमें दृढता होजाय, तदि समस्त गुणरूप महलकी नीव लग गई । अनादिकालतैं संसारमें परिभ्रमणका कारण मिथ्यात्व, अन्याय अर अभक्ष्य था, तिनका अभाव हुआ तब अनेक गुणग्रहणका पात्र भया । तातैं ये अष्ट त्याग हैं ते ही मूलगुण है। बहुरी अन्य ग्रंथनिमें पंच उदंबरफल अर तीन मकारका त्यागतैं अष्टमूलगुण कहैं हैं । इहां उदुम्बर (१),

कठूमर (२), गूलर (३), पीपलका गोल (४), बडका बडबाल्या (५) ये पांच उदुम्बर फल कहिये हैं । इनमें बहुत त्रास जीवनिकूं प्रगट देखिये हैं । तातैं इन फलनिका भक्षण मांस के समान है और हू केतेक फल जिनमें काल पाय त्रास मर जांय । तिनका भक्षण में हू रागभावकी अधिकतातैं महाहिंसा होय है । जाकैं ऐसा परिणाम होय जो ' याकूं मैं सुखाय खाऊं गा ' तिसकैं अभक्ष्यमें तीव्र अनुरागतैं बहुत बन्ध होय है । मदिरा है सो मनकूं मोहित करै है, अचेत करै है, अर मन मोहित हो जाय, सो धर्मकूं विस्मरण होजाय । अर धर्म भूलि जाय, सो पुरुष निःशंक हिंसाकूं आचरण करै है । ऐसा विशेष जानना । जो वस्तु मनकूं उन्मत्त करै, स्वरूपकी सावधानी भुलाय विषयोंमें आसक्तता उपजावै, रसना इन्द्रिय अर उपस्थ इन्द्रियके विषयमें अतिराग उपजावै, सो ही मद्य है । यातैं भङ्ग पीवना तथा अमल (अफीम), पोस्त आदिक नशाकी वस्तु तथा इनके संयोगतैं उपजे पाक, माजूम, इन समस्त मदकारी वस्तुके भक्षण करनेतैं धर्मबुद्धिका नाश होय है । अर अभक्ष्यभक्षण में रक्त होजाय बुद्धिकी उज्ज्वलता, परमार्थका विचार नष्ट होजाय है । तातैं जिनेन्द्रकी आज्ञाकूं धारण कऱ्या चाहै तो अवश्य अमलकारी वस्तुका भक्षणका त्याग करै है । बहुरी भांगमें त्रस जीव बहुत उपजै हैं अर मदिरामें तो अपरिमाण त्रस जीवनिकी उत्पत्ति है, महा दुर्गन्ध है । उत्तम कुलके पुरुष मदिराकी धारा दूरतैं हू भोजन करते देख लें तो भोजन का शीघ्र त्याग करैं अर स्पर्शन तैं वस्त्र-सहित स्नान करैं । मदिराकरि उन्मत्त होय, सो माताकूं, पुत्रीकूं, स्त्रीरूप आचरण करै है । अर अपनी स्त्रीकूं माता पुत्रीरूप आचरण करै है । भय, ग्लानि, क्रोध, काम, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक ये समस्त दोष हिंसादिक के कारण हैं । ते समस्त मद्यपायीकैं होय हैं । तातैं धर्मका अर्थी मद्यपान का दूरहीतैं त्याग करै ।

बहुरि द्वीइंद्रियादिक प्राणीनिके घात करनेतैं मांस उपजै है अर जाकी आकृति महाघृणा उपजावे है मांसका स्पर्शन अर दुर्गन्ध अर नाम ही परिणाममें महाग्लानि उपजावै है । जे धर्मरहित नरकादिकके जानेवाले महा निर्दय परिणामी होंय ते मांस भक्षण करै हैं । अर जो स्वयमेव मरे हुए बलद, भैंसा, अजा, मृगादिकनिका मांस है, ताकैं आश्रय अनन्त तो बादर निगोदिया जीव अर असंख्यात त्रसजीव तिनका घात होय है । बहुरि कच्चा मांसमें अर अग्निकरि पक्या मांसमें अर जिस काल नीचे अग्नि लाग करि सीझे है, तिसकाल पकता हुआ मांसमें हू अनन्त जीव निरन्तर उपजै हैं । तैसी ही जातिका जीव समय-समय उजजै हैं तातैं कच्चा मांस, पक्या हुआ मांस, वा पकता हुआ मांस, सूका हुआ मांसकूं जो खाय हैं तथा मांस की डलीको स्पर्शन करै हैं, ते मनुष्य निरन्तर संचय किया ऐसा बहुत जीवनिका घात करै हैं । बहुरि चांडालनिकी उच्छिष्ट, कषायीनिकी, म्लेच्छनिकी, कूकरनिकी उच्छिष्ट तो मांस होय ही है । मांस भक्षीनिके दया नाहीं, आचार नाहीं । जाति, कुल, धर्म, दया, क्षमादिक समस्त गुणनिकरि भ्रष्ट है । दुर्गतिगामी महापापी महानिर्दयीनिनैं मांस भक्षणकूं शास्त्रनिमें धर्म कह्या है । मांसकरि देवता तथा पितरनिकूं

तृप्त होना कहैं, देवतानिकूं मांसभक्षी कहैं, श्राद्धनिमें ब्राह्मणनिकूं मांसापिंड भक्षण कराय, देवनिका, पितरनिका तृप्त होना कहै हैं । सो ये समस्त मिथ्यादर्शनका प्रभाव है ।

बहुरि मधु समान कोऊ अधम नाहीं । मक्षिकानिका वमन भील-चाण्डालनिकी उच्छिष्ट, अनन्तजीवनिका स्थान है । बहुत मक्षिकानिकूं मारि भील चांडाल ल्यावैं वा स्वयमेव मरै है । तिनमें हू असंख्यात त्रसजीवनिकी उत्पत्ति है । याकूं पवित्र मानना, पंचामृतनिमें कहना, याकूं शुद्ध कहना इस समान विपरीत और नाहीं । शहद का एक कणमात्र हू जो औषधादिकनिके अर्थि ग्रहण करै हैं, रोग के दूर करनेकूं भक्षण करै हैं, सो नरकनिके घोर दुःख भोगि असंख्यात वा अनन्त जन्मनिमें अनेक रोगनिका पात्र होय है । मधु, मद्य, मांस, नवनीत [मक्खन] ये चार महाविकृति भगवान् के परमागममें कहे हैं । जों जिनधर्म ग्रहण करै सो मद्य, माखन, मांस, मधु इन चार विकृतिनिका प्रथम ही परित्याग करै । इन चारनिकूं भगवान् महाविकृति कही है । इनका परिहार विना धर्मका उपदेश का पात्र ही नाहीं होय है । धर्म है सो अहिंसारूप है । ऐसैं जिनेंद्रनि की आज्ञा बारम्बार श्रवण करते हू जो स्थावरनिकी हिंसाकूं छांडनेकूं असमर्थ हैं, ते त्रस जिवनिकी हिंसाकूं तो शीघ्र ही छोडो । हिंसाका त्याग नव प्रकार करि है । मनकरि हिंसा करै नाहीं । अन्यकरि हिंसा करावै नाहीं । अन्य हिंसा करै ताकूं सराहै नाहीं । ऐसैं ही वचनकरि हिंसा करै नाहीं, करावै नाहीं, करनेकूं प्रशंसा करै नाहीं । ऐसैं ही कायकरी हिंसा करै नाहीं, परकूं हिंसा करनेकूं प्रेरणा करै नाहीं, करनेवालेकी प्रशंसा करै नाहीं । ऐसैं मन वचन कायद्वारै कृत कारितअनुमोदनाकरि हिंसाकूं छांडै है, तिसके औत्सर्गिक त्याग कहिये उत्कृष्ट त्याग है । अर नव भङ्ग विना जो त्याग, सो अपवादिक त्याग कहिये । सो अनेक प्रकार है । या अहिंसाधर्म मोक्षको कारण अर समस्त संसारके परिभ्रमणका दुःखरूप रोगके मेटनेकूं अमृत समान पाय करके अज्ञानी मिथ्यादृष्टिनिका अयोग्य आचरण देखि अपने परिणाममें आकुल मत होहू । संसारमें कर्मके प्रेरे अनेक प्रकारके जीव हैं । कई हिंसक हैं, कई अभक्ष्य भक्षण करनेवाले हैं, कई क्रोधी, लोभी, मानी, मायावी, महाआरम्भी, महापरिग्रही हैं, अन्यामार्गी हैं । तिनकी अनीति देखि अपने परिणाम मत बिगाडो । कर्मके प्रेरे जीव आपा भूल रहे हैं । आप तो साम्यभाव ही ग्रहण करो । कोऊ या कहै—भगवान्का धर्म सूक्ष्म है, धर्मके अर्थि हिंसा होनेमें दोष नाहीं, ऐसैं धर्ममूढ होय करिकैं प्राणीनिकी हिंसा नाहीं करिये । बहुरि जो देवके निमित्त, गुरुके कार्य करनेके निमित्त, करी हुई हिंसा हू शुभ नाहीं है । हिंसा तो पाप ही है । धर्म तो दयारूप है । जो देव गुरुके कार्य करनेके निमित्त हिंसाका आरम्भ ही धर्म होय, तो हिंसारहित धर्म है ऐसा जिनेन्द्रका वाक्य असत्य हो जाय । यातैं हिंसाकूं धर्म कदाचित श्रद्धान् मत करो । कोऊ कहै—धर्म तो देवतानितैं होय है । देवतानिके निमित्त समस्त देना योग्य है । ऐसी विपरीत बुद्धिकरि प्राणीनिकी हिंसा करना योग्य नाहीं । बहुरि केतक कहै हैं । देवी कहिये कात्यायनी, चंडिका, भवानी, दुर्गा, पार्वती इत्यादिक नाम करिके प्रसिद्ध हैं । ताके बकरा तथा भैंसा मारि चढाइये । या भवानी इनतैं ही प्रसन्न है । सो मिथ्यादृष्टिनिके वाक्यतैं चलायमान नाहीं होना । एक तो यह विचार करो—जो देवी जीवनिका मांसकूं भोगना चाहै है, तो आप अनेक भुजानिमें शस्त्रधारण करि, भोंह वक्र करि ख़डी है ।

आपही जीवनिकूं मारि करि भक्षण क्यों नाहीं करै है ? अपने भक्तनितैं दीन अनाथ जीवनिकूं भयभीतनिकूं क्यौं मरावै है ? आपही सिंह व्याघ्रादिक ज्यों सिंहादिकांनै मारि क्यों नाहीं भक्षण करै है ? और आप देवता होय करि हू कागला, कूकरा, भील, चांडालकी ज्यों मांस भक्षणमैं रत है, क्षुधातुर है, दुःखी है, ताकै काहेका देवपना ? जो आप ही दुःखी, आसक्त, सो भक्तनिकूं कैसैं सुखी करैगा ? महादुर्गन्ध तिर्यञ्चनिके दुर्गन्धमय घृणा देनेवाला मांसका इच्छुक महापापीनिकै देवपना नाहीं होय है । पापनिनैं, झूठे शास्त्र बनाय आपके मांस भक्षण करनेकूं अर मूढलोकांनिकूं देवीनिका प्रसादके संकल्पतैं मांस भक्षणमें प्रवृत्ति कराय जगतके जीवानिकूं अपनी इन्द्रियनिके पुष्ट करनेकूं नरकमें डबोवैं हैं । जिनेन्द्रके परमागममें तो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योंतिषी, कल्पवासी चार प्रकारके देवनिकै कवलाहार नाहीं है । मानसीक आहार कह्या है । कोऊ कालमें इच्छा उपजते प्रमाण अपने कण्ठहीमें अमृत झरै है । तिसकरि लेशमात्र क्षुधावेदना रहै नाहीं । तिनके दिव्य वैक्रियिक देह सात धातु-उपधातुरहित महादिव्यरूप सुगन्ध शरीर है । देवनिके मांसभक्षण कहना महाविपरीत बुद्धि है । जो देवता मांसभक्षी है, तो कागला, कूकरा, गीध, स्यालतैं हू देवता नीच ठहरया । तातैं देवताके अर्थि हिंसा करना योग्य नाहीं । अर कोऊ मांसभक्षी गुरुके अर्थि मांसका दान मत करो । जो पापी मांसादिक अभक्ष्य भक्षण करै, मदिरा पीवै, वह पापी काहेका गुरु ? वो तो मांसादिक भक्षण कराय नरक पोहचावनेका गुरु है । ताके स्पर्शनतैं, देखनेतैं घोर पापका बन्ध होय है । बहुरि कोऊ कहै—अन्नादिकके भक्षणमें तो बहुत जीवनिका घात है । तातैं एक जीवकूं मारि भक्षण करना श्रेष्ठ है ऐसा विचार करि बडा प्राणीकूं मारि खावना योग्य नाहीं । जातैं एकेन्द्रिय प्रत्येक वनस्पति, पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, समस्त त्रैलोक्यमें भरे हुए समस्त विकलत्रय अर समस्त देव मनुष्य तिर्यंच इन समस्तनिकूं इकट्ठा करि गिणिये तो समस्त असंख्यात परिमाण है । अर मनुष्य तिर्तंचनिके मांसका एक कणामें एतें बादर निगोदिया जीव है, जो त्रैलोक्यके एकेन्द्री, बेन्द्री, तेइन्द्री, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, समस्त मनुष्य, तिर्यंच, देव, नारकीनितैं अनन्तगुणा भगवान् सर्वज्ञ देखि परमागममें कह्या है । तातैं अन्न जलादिक असंख्यात वरस भक्षण करै । तिसमें जो एकेन्द्रीकी हिंसा होय, तातैं अनन्तगुणे जीवनिकी हिंसा सूईकी अणीमात्र मांसके भक्षण करनेमें है । बहुरि एकेन्द्रीकी हिंसा अर त्रसहिंसा बराबर नाहीं है । दुःखमें हू बडा अन्तर है । ज्ञानमें बडा अन्तर है । एकेन्द्रीका शरीर, रस, रुधिर, हाड, मांस, चामादिक धातुकरि रहित है । अर मांसभक्षणमें तीव्र परिणाम, तीव्र निर्दयपना है, तैसा अन्नके भक्षणमें नाहीं है । जैसे अपनी स्त्रीकूं स्पर्श करनेमें अर अपनी पुत्रीके, माताके, स्पर्श करनेमें परिणाम कैसैं समान होय ? बडा अन्तर है । तातैं बहुत कहनेकरि कहा ? त्रसजीवका घात करना घोर पाप जानना ।

बहुरि ऐसी आशंका हू मत करो, जो यह सिंह, व्याघ्र, सर्पादिक बहुत प्राणीनिका घातक हैं इनकूं मारे बहुत जीवनिकी रक्षा होयगी । ऐसी मिथ्याबुद्धिकरी हिंसक जीवनिकी हिंसा हू मत करो। जातैं कौन हिंसककूं मारोगे ? चिडी, कागला, सूवा, मैना, तीतर, इत्यादिक समस्त पक्षी हिंसक हैं । तथा कीडा, कीडी, लट, मकडी, माखी, सर्प, बीछू इत्यादिक तथा ऊंदरा, कूतरा, बिलाव, स्याल, सिंह, अनेक तिर्यंच, मनुष्यादिक, समस्त जीव पापकर्मके सन्तापतैं हिंसक ही हैं । तुम कौन कौनकी हिंसा करोगे ? और

तुम्हारे हिंसक जीवनिके मारनेका विचार भया तब तुम समस्त हिंसकनिके घात करनेवाले महाहिंसक भये। तुम्हारे समान पापी कौन रह्या ? तातैं हिंसक जीवनिकी हिंसाके परिणाम कदाचित् मत करो ? हिंसक कौननै किया ? पूर्वैं उपजाये अपने कर्मके आधीन समस्त जीव उपजै हैं । पापका सन्तान अनन्त कालतैं चल्या आया है। कोन दूरि करि सकै ? पापी जीव कोननै किया ? पुण्यवान कौननै ? समस्त कर्मकी विचित्रता है । कालके प्रभावतैं पापी जीवनिको पापके फल देनेकूं अनेक पापी जीव उपजै हैं । कौन दूरि करनेकूं समर्थ है ? तातैं दयावान होय समस्त जीवनिकी करुणा ही करो । बहुरि ऐसा विचार ही मत करो, जो यो बहुत जीवैगा, तो पापका बन्ध करैगा। जो इस पापरूप पर्यायतैं छूटि जाय, तो याकै बहुत पापका बन्ध नाहीं होय। ऐसी करुणा करकै हू पापी जीवनिकूं मत मारो, जातैं तुम तो समस्तकी दया ही करो । बहुरि ये जीव बहुत दुःख करि पीडित है, जो मरण करि जाय तो शीघ्र ही दुःखसौं छूटि जाय सो ऐसा मिथ्या विचार हू मत करो, जातैं मरण करि जो जायगा, तो वर्तमानकी पर्याय ही छूटैगी; असाता कर्म नाहीं छूटेगा । जो यहांतैं छूटि अन्य पर्याय तिर्यंच, नरक, मनुष्यादिक पावैगा, तहां बहुतगुणा रोग, दरिद्री प्राप्त होयगा। बहुत काल दुःख भोगैगा। बहुत कहने करि कहा है, जो कदाचित् सूर्यका उदय पश्चिम दिशामें हो जाय, अग्नि शीतल हो जाय, चन्द्रमाकी किरण उष्ण हो जाय अर सूर्यका आताप शीतल हो जाय और समस्त पृथ्वी जगतके उपरि हो जाय अर पाषाणमय भारी गोला जलतैं तिर जाय अर अग्निमैं कमल उपजि जाय अर सूर्यकूं अस्त हातैं दिनका प्रारंभ हो जायं, सर्पका मुखमें अमृत हो जाय, कलह तैं यश हो जाय, अजीर्णतैं रोग नष्ट हो जाय कालकूट जहरके भक्षणतैं जीवना बधि जाय, विवादतैं प्रीति बधि जाय, तो हूं हिंसातैं तो धर्म नाहीं उपजैगा। जगतमें एते नाहीं' होने योग्य कार्य हो जाय तो होहू; परन्तु हिंसाके परिणामतैं तो कोऊ देश, कोऊ कालमें धर्म नाहीं हुआ, नाहीं होय है, अर नाहीं होयगा । अब यहां कोऊ आशंका करै—जो गृहस्थ जिनमन्दिर करावै है। उपकरण करावै है, जिन-पूजा करै है, इनमें हू आरम्भ ही है। अर आरंम्भ है तहां हिंसा होय ही तातैं जिन मन्दिरादिक बनवानेमें धर्म कैसैं सम्भवै है ? ताकूं उत्तर कहिये है। जो गृहस्थ आरम्भादिकका त्यागी है अर जाका परिणाम वीतरागतारूप होय धनका उपर्जानादिकसूं विरक्त होयगा, ताकूं मन्दिरादिक बनवाना योग्य नाहीं । अर जाका राग धन परिग्रहसूं आरम्भसूं घस्या नाहीं, अभिमान घस्या नाहीं; अपनी जाति-कुलादिकमें ऊंचे होनेकै अर्थि, अभिमानतैं विख्यातता अर्थि, अपने भोगनिके अर्थि, हवेली महल चित्रशालादिक बनावै है, बाग बनावै है, अनेक अपने विहार करनेके स्थान बनावै है, सन्तानादिकोंके विवाहादिकमें बहुत धन लगावै है, जाति, कुल, नगर, निवासीनिकूं जिमावै है, तिनकूं कौऊ धर्मात्मा शिक्षा करै है । जो तुम्हारा राग आरम्भादिकतैं नाहीं घस्या, तो ये केवल पापबन्धके कारण अभिमानादिक पुष्ट करने वाले पापके आरम्भनिकूं त्यागकरि जिनमन्दिर बनवानेका आरम्भ करो, जिसके प्रभावतैं तुम्हारा अशुभ राग घटि जाय अर आगेकूं तुह्मारे परिणाम वीतरागके सम्मुख होजांय, अर अहिंसाधर्मका प्रवर्तन बधि जाय, अनेक जीव स्वाध्यायकरि, शास्त्र-श्रवणकरि वीतरागका दर्शन, भावना, पापाचारका रोकना, शील-संयमध्यानकी वृद्धि करना इत्यादिक उत्तम

लाभ पूजादिककूं नाहीं वांछा करता केवल परमेष्ठीका गुणांमें अनुरागी हैं तिनके जिनपूजन अतिशयरूप फलकूं फलै है ।

अब यहां जिनपूजन सचित्त द्रव्यनितैं हू अर अचित्तद्रव्यनितैं हू आगममें कह्या है । जे सचित्तके दोषतैं भयभीत हैं, यत्नचारी हैं, ते तो प्रासुक जल, गन्ध, अक्षतकूं, चन्दन कुंकुमादिकतैं लिप्त करि सुगन्ध रङ्गीनमें पुष्पनिका संकल्प करि पुष्पनितैं पूजैं हैं। तथा आगममें कहे सुवर्णके पुष्प वा रूपाके पुष्प तथा रत्नजडित सुवर्णके पुष्प तथा लवंगादिक अनेक मनोहर पुष्पनिकरि पूजन करै हैं । अरु प्रासुक ही बहु आरम्भादिकरहित प्रमाणीक नैवेद्यकरि पूजन करै है । बहुरि रत्ननिके दीपक वा सुवर्ण रूपामय दीपकनि करि पूजन करै हैं । तथा सचिक्कणद्रव्यनिके केसरके रङ्गादितैं दीपका संकल्पकरि पूजन करै हैं । तथा चन्दन अगरादिककूं चढावै हैं तथा वादाम जायफल पूंगीफलादिक अवधि शुद्ध प्रासुक फलनितैं पूजन करै हैं। ऐसैं तो अचित्त द्रव्यनिकरि पूजन करै हैं। बहुरि जे सचित्त द्रव्यनितैं पूजन करै हैं, ते जल गन्ध अक्षतादि उज्ज्वल द्रव्यनिकरि पूजन करै हैं । अर चमेली चंपक कमल सोनजाई इत्यादिक सचित्त पुष्पनितैं पूजन करै हैं । घृतका दीपक तथा कर्पूरादिक दीपकनिकरि आरती उतारै हैं । अर सचित्त आम्र, केला, दाडिमादिक फलकरि पूजन करै हैं । धूपायनिमें धूपदहन करैं हैं । ऐसैं सचित्त द्रव्यनिकरि हू पूजन करिये हैं । दोऊ प्रकार आगम की आज्ञा-प्रमाण सनातनमार्ग है। अपने भावनिके अधीन पुण्यबन्धके कारण हैं । यहां ऐसा विशेष जानना जो–इस दुःषमकालमें विकलत्रय जीवनिकी उत्पत्ति बहुत है अर पुष्पनिमें बेंद्री, तेंद्री, चौइंद्री, पंचेंद्री, त्रसजीव प्रगट नेत्रनिके गोचर दौडते देखिये हैं । पुष्पनिकूं पात्रमें झडकाय देखिये तो हजारां जीव फिरते दौडते नजर आवै हैं । अर पुष्पनिमें त्रसजीव तो बहुतही हैं अर वादर निगोदजीव अनन्त हैं, अर चैत्रमासमें तथा वर्षाऋतुमें त्रसजीव बहुत उपजैं हैं । तातैं ज्ञानी धर्मबुद्धि हैं ते तो समस्त कार्य यत्नाचारतें करो । जैसैं जीवनिकी विराधना न होय तैसैं करो । बहुरि फूलनिके धोवनेमें दौडते त्रसजीवनिकी बडी हिंसा है । यातैं हिंसा तो बहुत है अर परिणामनिकी विशुद्धता अल्प है । यातैं पक्षपात छांडि जिनेन्द्रका प्ररूप्या अहिंसाधर्म ग्रहण करि जेता कार्य करो तेता यत्नाचाररूप जीव-विराधना टालि करो । इस कलिकालमें भगवानका प्ररूप्या नयविभाग तो समझै नाहीं अर शास्त्रनिमें प्ररूपण किया तिस कथनीकूं नयविभागतैं जानै नाहीं अर अपनी कल्पनाहीतैं पक्ष ग्रहण करि यथेष्ट प्रवर्तैं हैं । बहुरि केतेक पक्षपाती भादवांमें दिवसमें तो पूजन नाहीं करैं, रात्रिमें पूजन करै हैं । बहुत दीपक जोवैं, नैवेद्य चढावै हैं तिनमें लाखां मच्छर, डांस, मक्षिका अर हरे पीत, श्याम, लाल, रङ्गके कोट्यां त्रसजीव अनेक रङ्गके छोटी अवगाहनाके धारक सामग्री करनेमें चढावनेके थालनिमें

वस्त्रानिमें दीपनिके निमित्त दूर-दूरतैं आप पडि पडि मरैं हैं प्रत्यक्ष देखै हैं । अपने मुखमें, नासिकामें, नेत्रनिम, कर्णनिमें, धसैं हैं, उडावैं हैं, मारै हैं तो हू अपनी पक्ष छांडै नाहीं । दिवस छांडि रात्रिमें ही पूजन करै हैं । रात्रिमें तो आरम्भ छांडि यत्नाचार-सहित रहनेकी आज्ञा है । धर्मका स्वरूप तो बाह्य जीवदया अर अन्तरङ्गमें रागद्वेषमोहका विजयरूप है । जहां जीवहिंसा तहां धर्म नाहीं । अर जहां अभिमानके वश होय एकान्त-पक्ष का ग्रहण करि अपना पक्ष पुष्ट करनेकूं हिंसाका भय नाहीं करै हैं तहां धर्म नाहीं । बहुरि केतेक एकांती मंडल मांडि आठ दिन दश दिन राखैं हैं । तिन सामग्रीनिमें प्रत्यक्ष नेत्रनिके गोचर लट कीडा विचरै हैं । फलादिक गलि चलितरस होय हैं । तथा नैवेद्यादिकनिकी गन्धतैं कीडा कीडीनिके नाला खुल जाय हैं । प्रभावनाके अर्थि अनेक मनुष्य आवैं तिन करि खूंदि मरि जाय हैं । ऐसैं प्रत्यक्ष देखते हू अपनी पक्षका अभिमानकी अंधेरी करि नाहीं देखै हैं । रात्रि की बासी सामग्री रखना महान् हिंसाका कारण है । बहुरि अनेक पुराणनिमें अर अनेक श्रावकाचारनिमें अरहन्तकी प्रतिमाका अष्ट द्रव्यनिकरि पूजन करनेका ही उपदेश है । अर कहूँ अरहन्त प्रतिबिंबका स्तवन बन्दनाका कहूँ अभिषेकका वर्णन है । अर प्रतिबिंब तदाकार होते किसी ग्रन्थमें हू स्थापनाका वर्णन नाहीं अर अब इस कलिकालमें प्रतिमा विराजमान होते हू स्थापनाही कूं प्रधान कहै हैं ।

इस जयपुरमें संवत १८५० अठारहसै पचासका सालमें अपना मनकी कल्पनातैं कोई कोई नव स्थापनाकी प्रवृत्ति रची है । तिनमें अरहंत १, सिद्ध २, आचार्य ३, उपाध्याय ४, साधु ५, जिनवाणी ६, दशलक्षण धर्म ७, षोडश कारण ८, रत्नत्रय ९, ऐसैं नव प्रकार स्थापना करै हैं अर ऐसैं कहै हैं—जो सप्तव्यसनका त्याग, अन्यायका त्याग, अभक्ष्यका त्याग, जाकैं नाहीं होय सो स्थापनासंयुक्त पूजन करै । अन्याय अभक्ष्यका त्याग जाकै नाहीं होय सो स्थापना मत करो । स्थापनासहित पूजन तो सप्तव्यसनका अन्याय अभक्ष्यका त्याग करनेवाला ही करैं । जाके त्याग नहीं सो स्थापना कऱ्या विना पूजन करलो । स्थापना नाहीं करना । अर स्त्रीनिकूं रङ्गीन कपडा पहरि स्थापना विना पूजन करना कहै हैं । ऐसैं कहनेवालेनिकै साक्षात् जिनेंद्रका प्रतिबिंब मानना नाहीं रह्या अर तदाकार चांवलाकी स्थापना हीका विनय करना रह्या । प्रतिबिंबका विनय करना मुख्य नाहीं रह्या । प्रतिमाका पूजन वंदना स्तवन तो चाहै सो ही करो । अर पीत तंदुलामें स्थापना करना तो उत्तम होय, व्यसन अभक्ष्यादिक पापरहित होइ तिसहीकै योग्य है । ऐसैं पीत अक्षतानिमें स्थापना सो तो मुख्य विनय रह्या, अर प्रतिमामें पूजनादिक गौण रह्या । अर पक्षपाती कहै हैं जिस तीर्थंकरकी प्रतिमा होय तिनकै आगैं तिनही की पूजा स्तुति करनी अन्य तीर्थंकरकी स्तुति पूजा नाहीं करनी अर अन्य तीर्थंकरकी पूजा करनी होय तो स्थापना तंदुलादिकतैं करके अन्यका पूजन स्तवन करना ऐसा पक्ष करै हैं ।

तिनकूं इस प्रकार तो विचार किया चाहिये जे—समन्तभद्र स्वामी शिवकोटी राजाके प्रत्यक्ष देखते स्वयंभू स्तवन कियो तदि चंद्रप्रभ स्वामीकी प्रतिमा प्रगट भई, तत्र चंद्रप्रभके सन्मुख अन्य षोडशतीर्थंकरनिका स्तवन कैसे किया ? बहुरि एक प्रतिमाके निकट एक हीका स्तवन पढना योग्य होय तो स्वयंभूस्तोत्रका पढना ही नाहीं सम्भवै। आदिजिनेन्द्रकी प्रतिमा विना भक्तामरस्तोत्र पढना नाहीं बनेगा, पार्श्वजिनकी प्रतिमा विना कल्याणमंदिर पढना नाहीं बनैगा, पंचपरमेष्ठीकी प्रतिमा विना वा स्थापना विना पंचनमस्कार कैसैं पढ्या जायगा ? कायोत्सर्ग जाप्यादिक नाहीं बनैगा, वा पंचपरमेष्ठीकी प्रतिमा विना नाम लेना, जाप्य करना, सामायिक करना नाहीं सम्भवैगा । तथा अन्य देशमें नाहीं—जान्या मंदिरमें पहली प्रतिमाका निश्चय विना स्तुति पढना नाहीं सम्भवैगा। तथा रात्रिका अवसर होय छोटी अवगाहनाकी प्रतिमा होय तहां पहली चिन्हका निश्चय करै पाछैं स्तवनमें प्रवर्त्या जायगा तथा जिस मंदिरमें अनेक प्रतिमा होय तदि जाको स्तवन करै तिसके सम्मुख दृष्टि समस्या हस्त जोड विनती करना सम्भवै अन्य प्रतिमाके सम्मुख नाहीं सम्भवै। बहुरि जिस मंदिरमें अनेक प्रतिबिंब होय तहां जो एकका स्तवन वंदना किया तदि दूजेका निरादर भया। दूजेका स्तवन किया तदि तीजे चौथे पांचमादिक का भावनिमें निरादर भया तदि भक्ति नष्ट भई । अर जो कहोगे बहुत प्रतिमा होंय तहां चौवीसका स्तवन करेंगे तो जहां जो वीस ही तथा तेईस ही होंय तो पहली एकके चिन्हका आछी तरह निर्णयकरि तितना ही का स्तवन किया जायगा, अन्य तीर्थंकरनिका स्तवन निकास्या जायगा । अर जहां छोटे स्वरूप होंय, दूरि विराजमान होंय तथा दृष्टिमन्द होय तहां पांच आदम्यांने पूछि स्तवन वंदना करना बनैगा। ऐते एकांती मनोक्त कल्पना करनेवालेके अनेक दोष आवैं हैं।

बहुरि जो स्थापनाके पक्षपाती स्थापन विना प्रतिमाका पूजन नाहीं करैं तो स्तवन वंदना करनेकी योग्यता हू प्रतिमाकै नाहीं रही । बहुरि जो पीततन्दुलनिकी अतदाकार स्थापना ही पूज्य है तो तिन पक्षपातीनिके धातुपाषाणका तदाकार प्रतिबिंब स्थापन करना निरर्थक हैं तथा अकृत्रिम चैत्यालयके प्रतिबिंब अनादिनिधन स्थापन है तिनमें हू पूज्यपना नाहीं रह्या। बहुरि एक प्रतिमाके आगे एकका पूजन होय अन्य तेईसका पूजन करैं सो पीतअक्षतनिकी स्थापना करके करै तदि तेईस प्रतिमाका संकल्प पीतअक्षतनिमें भया तदि जयमाल स्तवन पूजनमें अपनी दृष्टि पीतअक्षतनिमें ही रखनी; एक प्रतिमामें चौवीसीका भय अयोग्य ठहरै, तेईस प्रतिमास्थापनके पुष्प रहैं। जो पूजन ही स्थापना विना नाहीं तदि घरमें, वनमें, विदेशमें अरहन्तनिका स्तवन वन्दना हू नाहीं सम्भवै। एकांती आगमज्ञानरहित पक्षपाती हैं तिनके कहनेका ठिकाना नाहीं, पापका भय नाहीं । बहुरि पूजन चौवीसका करै शांतिमें सोलमां तीर्थंकरका स्तवन करै । तातैं अनेकान्तका शरण पाय आगमकी आज्ञा विना पक्षका एकांत ठीक नाहीं है ।

ऐसा विशेष जानना—एक तीर्थंकरकै हू निरुक्ति द्वारै चौवीसका नाम सम्भवै हैं । तथा एक हजार आठ नाम

करि एक तीर्थंकरका सौधर्म इन्द्र स्तवन किया है तथा एक तीर्थंकरके गुणनिके द्वारै असंख्यात नाम अनन्तकालतैं अनन्त तीर्थंकरानिके हो गये हैं अर माता पिताके हू ए ही नाम अर शरीरकी अवगाहना अर वर्णादिक ए हू अनन्तकालमें अनन्त हो गये । तातैं हू एक तीर्थंकरमें एकका भी संकल्प अर चौवीसका भी संकल्प संभवै हैं । अर इस कालमें अन्यमतीनिकी अनेक स्थापना हो गई । तातैं इसकालमें तदाकार स्थापनाकी ही मुख्यता है । जो अतदाकार स्थापनाकी प्रधानता हो जाय, तो चाहै जीहींमें वा अन्यमतीनिकी प्रतिमामें हू अरहन्तकी स्थापनाका संकल्प करने लगि जांय तो मार्ग भ्रष्ट हो जाय । अर प्रतिमाके चिन्ह हैं सो इन्द्र जन्माभिषेक करि मेरूसूं ल्यायो तदि ध्वजामें जो चिन्ह स्थापना किया था सो ही प्रतिमाके चरणचौकीमें नामादिक व्यवहारके अर्थि हैं अर एक अरहन्त परमात्मा स्वरूपकरि एकरूप है अर नामादिककरि अनेक स्वरूप है । सत्यार्थ ज्ञानस्वभाव तथा रत्नत्रयरूपकरि वीतराग भावकरि पंचपरुमेष्टीरूप एक ही प्रतिमा जाननी । तातैं परमागमकी आज्ञा विना वृथा विकल्प करना शङ्का उपजावनी ठीक नाहीं । जिनसूत्रकी आज्ञा सो हू प्रमाण है । बहुरि व्यवहारमें पूजनके पंच अंगनिकी प्रवृत्ति देखिये है—आह्वानन ॥ १ ॥ स्थापना ॥ २ ॥ संनिधिकरण ॥ ३ ॥ पूजन ॥ ४ ॥ विसर्जन ॥ ५ ॥ सो भावनिके जोड वास्तै आह्वाननादिकनिमें पुष्प क्षेपण करिये है । पुष्पनिकूं प्रतिमा नाहीं जानै है । ए तो आह्वाननादिकनिका संकल्पतैं पुष्पांजलि क्षेपण है । पूजनमें पाठ रच्या होय तो स्थापना करले, नाहीं होय तो नाहीं करै । अनेकांतिनिके सर्वथा पक्ष नाहीं । भगवान परमात्मा तो सिद्धलोकमें हैं । एक प्रदेश भी स्थानतैं चलै नाहीं; परन्तु तदाकार प्रतिबिंबसूं ध्यान जोडनेके अर्थि साक्षात अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुरूपका प्रतिमामें निश्चय करि प्रतिबिंबमें ध्यान पूजन स्तवन करना । बहुरि केतेक पक्षपाती कहै हैं जो—भगवान् प्रतिबिंब विना सभाके श्रावक लोकनिमें हजूरी पद तथा स्तोत्र मत पढो । भगवान् परमेष्ठीका ध्यान स्तवन तो सदाकाल परमेष्ठीकूं ध्यानगोचरि करि पढना स्तवन करना योग्य है । जो प्रतिमाका सम्मुख विना स्तुतिका हजूरी पद पढनेकूं निषेध है तिनके पंचनमस्कार पढना, स्तवन पढना, सामायिक वन्दनाका पढना प्रतिमाका सम्मुख विना नाहीं संभवैगा । शास्त्रका व्याख्यानमें नमस्कारके श्लोक पढनेका निषेध हो जायगा । तातैं अज्ञानीका कहनेतैं अध्यात्ममें कदाचित् पराङ्मुख होना योग्य नाहीं ।

यहां प्रकरण पाय अकृत्रिम चैत्यालयनिका स्वरूप ध्यानकी शुद्धताके अर्थि श्रीत्रिलोकसारके अनुसार किंचित् लिखिये है । अधोलोकमें सात करोड बहत्तर लाख भवनवासीके भवन हैं । तिनमें केतेक भवन असंख्यात योजनके विस्ताररूप हैं । केतेक संख्यात योजनके विसाररूप है तिन एक-एक भवनमें असंख्यात भवनवासी देवनिकरि वन्दनीक एक-एक जिन मन्दिर है । ऐसैं सात कोड बहित्तर लाख ही जिन मन्दिर हैं । अर मध्यलोकमें, पंचमेरुनिमें अस्सी जिन मन्दिर हैं । गजदन्तनि ऊपरि वीस हैं अर कुलाचलनिमें तीस । विजयार्द्धनिपरि एकसौ सत्तर, देवकुरु उत्तरकुरुमें दश, वक्षारगिरीमें अस्सी । मानुषोत्तर ऊपरि

चार, इष्वाकार ऊपरि चार, कुंडलगिरि ऊपरि चार, रुचिकगिरी ऊपरि चार, नन्दीश्वर द्वीपमें बावन ऐसे मध्यलोकमें चारसै अठावन हैं। ऊर्ध्वलोकमें, स्वर्गनिमें, अहमिंद्रलोकमें, चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस हैं। अर व्यंतरनिके असंख्यात जिनमन्दिर हैं अर ज्योतिर्लोकमें असंख्यात जिनमन्दिर हैं। ऐसैं संख्यारूप जिनमंदिर तो आठ कोडि छप्पन लाख सत्तानवे हजार चारसै इक्यासी हैं। अर व्यंतर-ज्योतिषिनिके असंख्यात जिनमन्दिर हैं। अब जिनालयनिका स्वरूप कहिये है—जिनालय तीन प्रकार हैं उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तिनमें उत्कृष्ट जिनमन्दिरकी लम्बाई सौ योजनकी है, चौडाई पचास योजन है, ऊंचाई पचहत्तर योजनकी है। अर मध्यम जिनमन्दिर पचास योजन लम्बे, पचास योजन चौडे, साढा सैंतीस योजन ऊंचे हैं। अर जघन्य जिनमन्दिर पचास योजन लम्बा, साढा बारा योजन चौडा, पौणाउगणीस योजन ऊंचा है। अर समस्तकी नींव जमीनमें आधा आधा योजन की है। बहुरि इन जिनमन्दिरनिके तीन तीन द्वार हैं। तिनमें सन्मुख द्वार तो एक है और पसवाडे दोऊनिके दोय-दोय द्वार हैं। तिनमें सन्मुख द्वारका परिमाण ऐसा जानना—उत्कृष्ट जिनमन्दिरनिके द्वार ऊंचाई सोलह योजनकी है, चौडाई आठ योजनकी है। मध्यम मन्दिरनिका द्वारकी ऊंचाई आठ योजनकी अर चौडाई चार योजनकी है। जघन्य जिनमन्दिरनिका द्वारकी ऊंचाई चार योजनकी अर चौडाई दोय योजनकी है। बहुरि पसवाडनिके दोय दोय छोटे द्वारनिका परिमाण ऐसा जानना—उत्कृष्ट जिनमन्दिरका छोटा द्वारकी ऊंचाई चार योजनकी है अर मध्यम जिनमन्दिरका छोटा द्वारकी ऊंचाई चार योजनकी है अर चौडाई दोय योजनकी है। अर जघन्य जिनमन्दिरनिके छोटे द्वार दोय योजन ऊंचे और एक योजन चौडे हैं। इहां भद्रशालवन नंदवन नंदीश्वरद्वीपमें अर स्वर्गके विमानमें उत्कृष्ट परिमाण सहित जिनालय हैं अर सौमनसवनमें, रुचक पर्वतमें, कुण्डलगिरि ऊपरि, वक्षारगिरनि ऊपरि, इष्वाकार ऊपरि, मानुषोत्तर ऊपरि, कुलाचलनि ऊपरि—मध्यमप्रमाण लिये जिनमन्दिर हैं। अर पांडुकवनके जिनालयनिका जघन्य प्रमाण है। बहुरि विजयार्द्ध पर्वतनिके ऊपरि अर जंबू-शालमलि वृक्षनिविषैं जिनमन्दिरनिकी लम्बाई एक कोसकी है। अवशेष जे भवनवासनिके भवननिमें तथा व्यंतरनिके, ज्योतिषीदेवनिके जिनालय हैं, ते यथायोग्य लम्बाई जिनेन्द्र भगवान देखी है तैसे-तैसे प्रमाण लिये है। अब जिनमन्दिरनिका बाह्य परिकर सात गाथानिमें कह्या है। समस्त जिनभवनके चार तरफ चार चार द्वारनिकरियुक्त मणिमयी तीन कोट हैं। अर द्वारनि होय जानेकी गली-गली एक एक मानस्तम्भ हैं अर नव नव स्तूप हैं अर तीन-तीन कोटका अंतरालके माहीं पहला दूजा कोटके बीच वन है दूसरा तीसरा कोटके बीच ध्वजा है। तीजा कोट अर चैत्यालयके बीच चैत्यभूमि है। तिन जिनभवननिविषैं एक सौं आठ गर्भगृह हैं।

तिन जिनभवनानिके मध्य रत्ननिके स्तम्भनिकरि युक्त सुवर्णमय दोय योजन चौडा, आठ योजन लम्बा, चार योजन ऊंचा देवच्छद कहिये मंडप गुम्मज छतिसहित हैं । तिसविषैं एक सौ आठ गर्भगृह हैं । तिन गर्भगृहनिविषैं आदि जिनेन्द्रके देह परिणाम उच्चतायुक्त एक सौ आठ जिन प्रतिमा रत्नमय हैं । कैसेक हैं जिनप्रतिमा ? भिन्न भिन्न सिंहासन छत्रत्रयादि प्रातिहार्यनिकरि सहित हैं । मस्तकविषैं जिनके अति नील केश हैं ते केशनिके आकार रत्ननिके पुद्‌गल परिणमें हैं; केश नाहीं हैं । बहुरि बज्र जो हीरा तिनमयी दन्तनिके आकार संयुक्त हैं अर विद्रुम जो मूंगा तिस समान रक्त जिनके ओष्ठ हैं । अर नवीन कूं पल समान शोभायुक्त रक्त हस्तपादतल हैं । श्रीराजवार्तिकमें प्रतिमाका वर्णनमें लोहिताक्ष मणिकरि व्याप्त अङ्क स्फटिकमणिमय हैं नयन जिनके अर अरिष्ट मणिमय हैं श्याम नेत्रनिकी तारका जिनकी अर अंजन मूल मणिमय वाफणी अर भृकुटीकी लता जिनके नीलमणिमय केशनिकरि युक्त ऐसी जिन प्रतिमा हैं । दश[1] तालप्रमाण लक्षणादिकरि भरी है । यहां तालका परिमाण बारह अंगुलका है । प्रथम जिनेन्द्र ज्यों (यों) जानो कि देखें ही हैं मानो बोले ही हैं । बहुरि एक गर्भगृहविषैं बराबर पंक्ति करि खडे नागकुमारनिके वा यक्षनिके बत्तीस युगल चमर हस्तनिमें लिये हैं ।

भावार्थ–एक एक गर्भगृहमें एक एक जिनप्रतिमाके दोऊं तरफ समस्त आभरणकरि भूषित अर श्वेत निर्मल रत्नमय चमर हस्तमें धारण करते नागकुमार वा यक्ष चौंसठ चमर ढारै हैं । ऐसैं एक सौ आठ प्रतिमानिके जुदे जुदे प्रातिहार्य एक एक जिनालयमें हैं । बहुरि तिन जिनप्रतिमाके दोऊं पसवाडेनविषैं श्रीदेवी अर सरस्वतीदेवी अर सर्वाह यक्ष अर सनत्कुमार यक्ष अर इनके रूपआकार तिष्ठैं हैं बहुरि अष्ट प्रकारके मंगल द्रव्य जिनप्रतिमाके निकट शोभै हैं । झारी ॥ १ ॥ कलश ॥ २ ॥दर्पण ॥ ३ ॥ बीजणा ॥४॥ ध्वजा ॥ ५॥ चमर ॥ ६ ॥ छत्र ॥ ७ ॥ ठोना ॥ ८ ॥ ए आठ मंगलद्रव्य हैं । ते एक मंगलद्रव्य एक सौ आठ प्रमाण एक एक प्रतिमाके शोभै है । अब गर्भगृहके बाह्यकी रचनाकूं ऐसैं जानो–मणिजटित सुवर्णमय पुष्पनिकरि शोभित बना जो देवच्छद तींका अग्रभागके मध्य रूपामयी अर सुवर्णमयी बत्तीस हजार कलस हैं । बहुरि महाद्वार जो बडा द्वार ताकै दोऊ पार्श्वनिविषैं चौईस हजार धूपके घडे हैं । बहुरि तिस महाद्वारके बाहिर दोऊ तरफ आठ हजार मणिमई माला है । तिन मणिमई मालानिके बीच चौईस हजार सुवर्णमय माला हैं । बहुरि तिस महाद्वारके आगैं सन्मुख मुखमण्डप है । तिस मुखमण्डपविषैं सोलह हजार कलश हैं, अर सोलह हजार सुवर्णमय माला हैं । तिस मुखमण्डपविषैं सोलह हजार धूपघट हैं । तिस मुखमण्डपका मध्यविषैं ही महान् मिष्ट झणझणा शब्द करती मोती अर मणिनिकर निपजी किंकणी जे छोटी घंटी तिनकरि सहित नानाप्रकारके घण्टनिके समूह अनेक रचना करि युक्त शोभैं

---

[1] १–‘ ते देवा दशताला अन्ये देवा भवन्ति नवतालाः । ’ वराहमिहिरः ।

हैं । अब जिनमंदिरके छोटे द्वारादिकका स्वरूप कहै हैं । जिनमन्दिरका दक्षिण उत्तरके पसवाडेनिका मध्यमें प्राप्त जे छोटे द्वार तिसविषैं कह्या विधानतैं समस्त रचना आधी आधी जानना । मणिमाला चार हजार हैं, धूपघट बारह हजार हैं, सुवर्णमाला बारह हजार हैं । तिन छोटे द्वारनिके आगैं मुखमण्डप है । तिसमें सुवर्णके घट आठ हजार हैं अर सुवर्णमय माला आठ हजार हैं, आठ हजार धूपघट हैं, और मुखमण्डपमें क्षुद्रघटिका अनेक रचना हैं । बहुरि तिस मन्दिर का पृष्ठभागविषैं मणिमाला तो आठ हजार हैं, अर सुवर्णमाला चौईस हजार हैं । माला हैं ते भीतिके चौगिरद लूंबती जाननी । अब मुखमण्डपनिका विस्तारादिका स्वरूप पंद्रह गाथानिमें कह्या है सो कहिये हैं—इस मन्दिर के आगैं मुखमण्डप है । सौ जिन मन्दिरके समान सौ योजन लम्बा, पचास योजन चौडा, सोलह यौजन ऊँचा है अर तिस मुखमण्डपके आगैं चौकोर प्रदक्षिणमण्डप है । सो प्रदक्षिणमण्डप सौ यौजन चौडा लम्बा है । सोलह योजनतैं अधिक ऊँचा है । तिस प्रदक्षिणमण्डपके आगैं अस्सी योजन चौडा लम्बा अर दोय योजन ऊँचा सुवर्णमय पीठ है । पीठ नाम चोंतरा का जानना । तिस पीठ का मध्यविषैं चौकोर चोंसठ योजन चौडा लम्बा अर सोलह योजन ऊँचा स्थानमण्डप है । स्थानमण्डप नाम सभामण्डपका है ।

बहुरि इस स्थानमण्डपके आगै चालीस योजन ऊंचा २ स्तूपनिका मणिमय पीठ हैं । सो पीठ चार द्वारनिकरि संयुक्त बारह अंबुज वेदनिकरि युक्त है । बहुरि तिस पीठके मध्य तीन कटनीकर युक्त चौसठ योजन चौडा, लम्बा, ऊंचा, बहुत रत्नमय जिनबिंबनिकरि सहित स्तूप है । तिस ऊपरि जिनबिंब विराजैं हैं । सो ऐसैं ही नव स्तूप हैं । तिनका ऐसा क्रम करि स्वरूप है । तिस स्तूपके आगैं एक हजार योजन चौडा लम्बा गिरदविषैं बारह वेदिनिकरि संयुक्त सुवर्णमय पीठ है । तिस पीठ ऊपरि चार योजन लम्बा अर एक योजन चौडा है स्कंध कहिये पेड जिनका अर बहुत मणिमय गिरदविषैं तीन कोटिनिकरि संयुक्त अर बारह योजन लम्बी है चार महा शाखा जिनके अर छोटी शाखा अनेक है जाके अर बारह योजन चौडा है शिखर कहिये ऊपरला भाग जिनका, अर नानाप्रकार पान, फूल, फल संयुक्त हैं, बहुरि एक लाख चालीस हजार एकसौ बीस वृक्षनिका परिवारसंयुक्त सिद्धार्थ अर चैत्य नामा दोय वृक्ष हैं । तिन वृक्षनिका मूलविषैं जो पीठ है ताके ऊपरि तिष्ठते चार दिशानिविषैं चार सिद्धनिकी प्रतिमा तो सिद्धार्थवृक्षका मूलविषैं हैं । अर चैत्यवृक्षका मूलविषैं पीठ हैं । ताके ऊपरि चार अर्हंतप्रतिमा विराजमान हैं । बहुरि इन वृक्षनि की पीठके आगैं पीठ हैं । ताविषैं नाना प्रकार वर्णनकरि युक्त महाध्वजा तिष्ठै है । सोलह योजन ऊंचे, एक कोस चौडें ऐसे ध्वजानिके सुवर्णमय स्तम्भ हैं । तिन स्तम्भनिका अग्रभागविषैं मनुष्यनिके नेत्र अर मनकूं रमणीक ऐसे नाना प्रकारके ध्वजा वस्त्ररूप रत्ननिकरि परिणये हैं अर तीन छत्र शोभे हैं । इहां ध्वजानिके वस्त्र नाहीं हैं । वस्त्रकासा आकार कोमलता नाना रंग ललितता लिये रत्नरूप पुद्गल परिणये हैं । तातैं

वस्त्र भी रत्नमय जानने । तिस ध्वजापीठके आगैं जिनमन्दिर है । ताकी चारों दिशानिविषैं नानाप्रकार पुष्पनिकरि युक्त सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौडे, दश योजन ऊँचे, मणिसुवर्णमयवेंदीनिकरि संयुक्त चार हृद कहिये द्रह हैं। ताकै आगैं जो मार्गरूपवीथी है-गली है। ताकै दोऊ पार्श्वनिविषैं पचास योजन ऊँचे, पचास योजन चौडे, देवनिके क्रीडा करनेके रत्नमय दोय मन्दिर हैं । बहुरि ताकै तोरण हैं सो मणिमय स्तम्भनिका अग्रभाग विषै स्थित हैं । दोय स्तम्भनिके बीच भींतिरहित मरगोलकासा आकार ताका नाम तोरण है । सो तोरण मोतीनिके जाल अर घंटासमूहकरि युक्त है । मोतीनिके जाल अर घंटासमूह तोरणनिकै लूम्बैं हैं । बहुरि सो तोरण पचास योजत ऊंचा, पचीस योजन चौडा है । ते तोरण जिनबिंबनिके समूह करि रमणीक है । जिनबिंबनिका आकार तोरणनिमें तिष्ठै है । तिस तोरणकै आगैं स्फटिकमय जो प्रथम कोट ताकै अभ्यन्तर कोटके द्वारका दोऊ पार्श्वनिविषैं सौ योजन ऊंचे, पचास योजन चौडे, रत्ननिकरि रचे दोय मन्दिर हैं । ऐसैं कोटपर्यंत वर्णन किया । पूर्वद्वारविषैं मंडपादिकका जो परिणाम कह्या, तातैं दक्षिणद्वार उत्तरद्वारविषैं आधा आधा परिमाण जानना । अन्य वर्णन तीन तरफ समान जानना ।

बहुरि ते चैत्यालय सामायिकादि क्रिया करनेका स्थान, वंदना-मण्डप अर स्नान करनेके स्थान, अभिषेक-मण्डप अर नृत्य करनेका स्थान नर्तन-मण्डप अर सङ्गीत साधन करनेके स्थान सङ्गीतमण्डप अर अवलोकन करनेके अवलोकन मण्डप तिनकरि संयुक्त बहुरि क्रीडा करनेके स्थान क्रीडनगृह शास्त्रादिक अभ्यास करनेके स्थान, गुणनगृह तिनकरि अर विस्तीर्ण उत्कृष्ट पट्ट चित्रामादि दिखावनेके स्थान पट्टशालादि तिनकरि संयुक्त है । अब द्वितीय कोट अर बाह्यकोटके बीच अन्तराल ताका स्वरूप कहै हैं । सिंह, गज, वृषभ, गरुड, मयूर चन्द्रमा, सूर्य, हंस, कमल, चक्र इन दशनिका आकारकरि संयुक्त ध्वजा हैं । ते जुदी जुदी एकसौ आठ आठ हैं । ऐसैं एक हजार अस्सी एक दिशामें है । ऐसैं चार दिशानिकै चार हजार तीन सौ बीस मुख्यध्वजा हैं । बहुरि एक एक मुखध्वजाविषैं एकसौ आठ क्षुल्लक छोटी ध्वजा है । आगैं दूसरा अर तीसरा कोटके बीच जो अंतराल ताकैविषैं अशोक अर सप्तच्छद अर चम्पक अर आम्रमई चार वन हैं । बहुरि यहां सुवर्णमय फूलनिकरि शोभित, मरकतमणिमय नानाप्रकार पत्रनिकरि पूर्ण ऐसे कल्पवृक्ष हैं । तिनके वैडूर्यमणिमय फल हैं । अर मूंगामय डालीकरि युक्त हैं । ऐसैं कल्पवृक्ष भोजनांगआदि भेद लिये दश प्रकार हैं बहुरि तिन च्यारों बननिविषैं चैत्यवृक्ष च्यारि हैं । ते वृक्ष तीन पीठि ऊपरि हैं । तीन कोटिकरि युक्त हैं । रत्नमय शाखापत्रपुष्पफलकरि युक्त चार वननिके बीच हैं । तिन चार चैत्यवृक्षनिके मूलमें दिशानिमें पल्यंकासन, सिंहासन, छत्र, प्रातिहार्यादियुक्त चार जिनेंद्रकी प्रतिमा हैं । बहुरि नन्दादि सोलह बावडी तीन कटनीनिकरि संयुक्त शोभै हैं । बहुरि वनकी भूमिमें द्वारनितैं आवनेका मार्ग रूप जो वीथी तिनका मध्यविषैं तीन कोट संयुक्त तीन पीठनि ऊपरि धर्मका विभवसंयुक्त मस्तकविषैं च्यारिदिशानिमें च्यार जिनप्रतिमाकूं धारण करते मानस्तम्भ हैं । श्री राजवार्तिकमें कह्या है—जिनालयकी महिमा वर्णन

करनेकूं हजार जिह्वाकरि हू समर्थ नाहीं होय है अर सहस्राक्ष जो हजार नेत्रधारक हजार नेत्रनिकूं विस्तारकरि निरंतर देखे तो हू तृप्तिताकूं नाहीं प्राप्त होय है । ऐसैं अप्रमाण महिमाके धारक अकृत्रिम जिनालयका वर्णन त्रिलोकसारनामग्रंथतैं अपने शुभ ध्यानकी सिद्धिके अर्थि वर्णन किया । ऐसैं जिन पूजनका कथन किया ।

अब जिन पूजनका फलमें तो प्रसिद्ध अनेक भये हैं । तथापि पूर्वाचार्यनिकरि प्रसिद्ध फल कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत् । भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥ १२० ॥

अर्थ— राजगृहनाम नगरके विषैं जिनेन्द्रके पूजनेका हर्षकरि मत्त कहिये अपना सामर्थ्यकूं नाहीं जानतो जो मींडको सो अरहंतके चरणनिकी पूजाका महाप्रभाव महानुपुरुष जे भव्यजीव तिनकूं प्रकट करतो हुओ दिखावतो हुओ । याकी कथा ऐसी जाननी–मगधदेशमें राजगृहनगर । तिसविषैं राजा श्रेणिक राज्य करै । तिस ही नगरके विषैं एक नागदत्तनाम श्रेष्ठी । ताके भवदत्ता नाम स्त्री । सो श्रेष्ठी आर्तपरिणामतैं मऱ्या । मरिकरि आपकी गृहकी बावडीमें मींडको उपजतो हुओ । एक दिन भवदत्तानाम सेठानी बावडी ऊपरि गई । तदि ताने देखि मींडकाके पूर्वजन्मको स्मरण हुओ । तदि पूर्वलो स्नेहकी यादकरि शब्द करतो उछलि उछलि सेठानीके वस्त्रां ऊपरि चढै । तदि सेठानी बारम्बार वाकों दूरि फेकी दियो तो हू बारम्बार सेठानिके वस्त्रानि परि आवै । तदि सेठानी मींडकानैं दूरि करि अपने घर गई । एक दिन सुव्रतनाम अवधिज्ञानी मुनिकूं पूछी-भो स्वामिन् ! मैं गृहवापिकामें जाऊं तदि एक मींडको शब्द करतो करतो बारम्बार हमारे अङ्गपरि आवै । इसका सम्बन्ध कहो । तदि मुनीश्वर कही—थारो भर्ता नागदत्त आर्त परिणामतैं मरि मींडको हुओ । ताकै जातिस्मरण हुओ । सो पूर्व जन्मका स्नेहकरि थारे निकट आवै है । तदि सेठानी मींडकाकूं अपना भर्ताको जीव जानिकरि अपने गृहमें ले जाय बहुत सन्मानतैं राख्यो । एक दिन राजा श्रेणिक भगवान वीर जिनेन्द्रका समवसरण वैभार पर्वत ऊपरि आयो जानि राजा वन्दनाके अर्थि नगरमें आनन्द भेरी दिवाई । तदि नगरके भव्यजीव भगवानकी वन्दनाके अर्थि नाना प्रकारके उज्वलवस्त्र आभरण पहरि पूजनसामग्री हस्तनिमें लेय जय-जय शब्द करते हर्षतैं नृत्यगानवादित्रादि शब्द सहित चाले । सो समस्त नगरमें आनन्द हर्ष व्याप्त होय गयो । तदि मींडको लोकनिका पूजनजनित आनन्दका शब्द श्रवण करि आपके पूजन करनेका बडा उत्साह प्रगट भया । तदि एक पुष्पकूं मुखमें लेय आनन्दसहित उछलतो हुओ वीरजिनेन्द्रका पूजन के अर्थि चाल्यो । अतिभक्तितैं ऐसा विचार नहीं भया जो विपुलाचल पर्वतऊपरि बीस हजार पैडीनिसहित समवशरण तो कहां, अर मैं असमर्थ मींडको वहां कैसे

पहुंचूंगा ? अतिभक्तितैं ऐसा विचार नाहीं रह्या। अब जिन पूजूं ऐसे उत्साहसहित मार्ग में गमन करतो राजाका हस्तीका पग नीचे मरि सौधर्मस्वर्गविषैं महान ऋद्धि को धारक देव हुओ। तदि अवधिज्ञानतैं पूजनके भावतैं अपना देवपनामें उत्पाद जानि मींडकाको चिन्ह धारण करि तत्काल वीरजिनेंद्रका समवसरणमें पूजन के अर्थि जाय समस्त जीवनिकूं पूजनको प्रभाव प्रगट दिखायो। जो तिर्यंच मींडक पूजन ताईं पहुंच्यो हू नाहीं। केवल पूजनके भाव करके ही स्वर्ग लोकमें महर्द्धिक देव भयो। जिनेंद्र का पूजन का अचिंत्य प्रभाव है। यातैं गृहचार में वडा शरण समस्त परिणामकी विशुद्धता करने वाला एक नित्य पूजन करना ही है। जिनपूजन निर्धन हू करि सकै धनाढ्य हू करि सके। जेता आपका सामर्थ्य हो तिस प्रमाण पूजन सामग्री बनि सकै है। बहुरि पूजन करना, करवाना, करतेकूं भला जानना, सो समस्त पूजन ही ह। तथा स्तवन वन्दना हू पूजन, एक द्रव्यतैं हू पूजन जैसैं अरहन्तके गुणनिमें भक्तिकी उज्वलता होय तैसा फल है। बहुरि जिन मंदिर में छत्र चमरसहित सिंहासन कलश घन्टा इत्यादिक सुवर्णमय, रूपामय, पीतलमय, कांसी--ताम्रमय अनेक सुंदर उपकरणनिकरि जेता अपना सामर्थ्य होय तिस प्रमाण जिनमन्दिर को भूषित करि वैयावृत्य करै। बहुरि जीर्णमन्दिरनिकी मरम्मत उद्धार करना तथा धनढ्य पुरुष है तिनको जिन बिंबनिकी प्रतिष्ठा करवाना कलश चढवाना ये समस्त अरहन्त की वैयावृत्य है।

बहुरि जिन मन्दिरनिकी टहल करना कोमल पीछीसूं यत्नाचारतैं बुवारना अभिषेक पूजना बिछवाना गाननृत्यवादित्रादिकनिकरि अरहन्तके गुण गावना सो समस्त अर्हद्वैयावृति है। मन से वचनसे कायसे, धनसे, विद्यासे, कलासे, जैसे अरहन्तके गुणनिमें अनुराग बधै तैसे करना। धन पावनेका, देह पावनेका, इन्द्रिया पावनेका, बल पावनेका, ज्ञान पावनेका सफलपणा जिनमन्दिर की टहल वैयावृति करके ही है। जिनमन्दिर की वैयावृत्ति सम्यक्त्व की प्राप्ति करै ह तथा सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति करै है। मिथ्याज्ञान मिथ्या श्रद्धान का प्रभाव करै। स्वाध्याय, संयम, तप, व्रत, शीलादिगुण जिनमन्दिर की सेवनतैं ही होय। नरकतिर्यंचादिगतिनि में परिभ्रमणका अभाव होय। जिनमन्दिर समान कोऊ उपकार करने वाला जगत में दूजा नाहीं। जिनमन्दिरका निमित्ततैं शास्त्र श्रवण पठन करि अनेक श्रोतानिका उपकार होय, वक्ताका उपकार होय है। जिनमन्दिर के निमित्ततैं केई जीव कायोत्सर्ग करै हैं। कोई जाप जपैं हैं। कोई रात्रि में जागरण करै हैं। केई अनेक प्रकार पूजनकरि प्रभावना करै हैं। केई स्तवन करै हैं। केई तत्त्वार्थनिकी चर्चा करै हैं। केई प्रोषधोपवास तथा बेला, तेला, पंचउपवासादिकरि वडी निर्जरा करै हैं। केई स्वाध्याय करै हैं। केई वीतराग भावना करैं हैं। केई नाना प्रकार उपकरणनि करि प्रभावना करै हैं। जिनमन्दिरके निमित्ततैं पाप–पुण्य देव–कुदेव धर्म–कुधर्म गुरु–कुगुरुका जानना होय। भक्ष्य–अभक्ष्य कार्य–अकार्य त्यागने योग्य–ग्रहण करने योग्य का ज्ञान हू जिनमन्दिर में प्रवृति करि ही होय है। त्याग, व्रत, शील, संयम भावनाका स्वरूप जानना तथा आचरण करना समस्त जिनमन्दिरके प्रभावतैं होय है। जिनमन्दिर बराबर कोऊ उपकारी

नाहीं है । जिनमंदिर अशरणनिकूं शरण है । ऐसैं परोपकार करनेवाला जिनमंदिरकूं जानि याका वैयावृत्य करो । ऐसैं वैयावृत्यमें जिनपूजाका वैयावृत्य कह्या ।

अब वैयावृत्यके पंच अतिचार कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि । वैयावृत्यस्यैते व्यतिक्रमाः पंच कथ्यन्ते ॥ १२१ ॥

अर्थ—वैयावृत्य जो दान ताके ये पांच अतिचार त्यागने योग्य हैं। हरितपिधान, हरितनिधान, अनादर, अस्मरण, मत्सरत्व। जो व्रतीनिकूं देने योग्य आहारपान औषधि है ताकूं हरित जो कमलका पत्र वा पातल पान, इत्यादि सचित्तकरि ढक्या हुवा देना सो हरितपिधान नाम अतीचार है ॥ १ ॥ बहुरि हरित जो वनस्पतिके पत्रादिक ऊपरि धर्‍या हुआ भोजन देना सो हरितनिधान नाम अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि दानकूं अनादरतैं अविनयतैं प्रियवचनादि-रहित देना सो अनादरनाम अतीचार है ॥ ३ ॥ बहुरि पात्रकूं भोजनादिक देनेके अर्थि स्थापनकरि अन्यकायमें लगि भूलि जाना तथा देनेयोग्य द्रव्यकूं तथा विधिकूं भूलि जाना सो अस्मरण नाम अतीचार है ॥ ४ ॥ बहुरि अन्य दातारतैं ईर्षाकरि देना सो मत्सरत्व नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे दान, जो वैयावृत्य ताके पंच अतीचार टालि महाविनयतैं शुद्ध दान करो।

इति श्रीपरमपूज्य धर्मसाम्राज्यनायक, योगींद्रचूडामणि, सिद्धांतपारंगत, चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य श्रीशांतिसागरजी महाराजके
आदेशसे ज्ञानदानके लिए श्री प. पू. चा. च. आ. शांतिसागर दिगंबर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाकी ओरसे
छपे हुए श्री १०८ स्वामीसमन्तभद्राचार्यविरचित रत्नकरण्डश्रावकाचारके सूत्रनिकी देशभाषामयवच-
निकाविषैं चतुर्थ अधिकार समाप्त भया ॥ ४ ॥
ग्रंथप्रकाशनसमिति फलटण वीर सं. २४८०

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

रत्नकरंडश्रावकाचार

(पंचम अधिकार)

अब श्रीपरमगुरुनिका प्रसादकरि परमागमकी आज्ञाप्रमाण भावनानामा महाधिकार लिखिए है । समस्त धर्मका मूल भावना है । भावनातैं ही परिणामनिकी उज्ज्वलता होय है । भावनातैं मिथ्यादर्शन का अभाव होय है ।

भावनातैं व्रतनिमें दृढ परिणाम होय है। भावनातैं वीतरागता की वृद्धि होय है। भावनातैं अशुभ ध्यानका अभाव होय शुभध्यानकी वृद्धि होय है। भावनातैं आत्मा का अनुभव होय है। इत्यादिक हजारां गुणनिकूं उपजावनेवाली भावना जानि भावनाकूं एक क्षण हू मति छांडो। अब प्रथम ही पंच व्रतनिकी पच्चीस भावना जानहू। अहिंसा अणुव्रत धारण करता पुरुष के पांच भावना विस्मरण नाहीं होय है। मनके विषे अन्यायके विषयनिके भोगनेकी वांछाका अभावकरि दुष्टसंकल्पनिकूं छांडि अपनी उच्चताकूं नाहीं चाहना, अन्यजीवनिके विघ्न, इष्टवियोग, मानभंगादि, तिरस्कार, धनकी हानि, रागादिक नाहीं चाहना सो मनोगुप्ति है ॥१॥ हास्यके वचन, विवादके वचन, अभिमानके वचन नाहीं कहना तथा कलह के, अपयशके कारण वचन नाहीं कहना सो वचन गुप्ति है ॥ २ ॥ बहुरि त्रसजीवनकी विराधना टालि करि हरिततृण कर्दमादिककूं छांडि, देखि, शोधि गमन करना तथा चढना, उतरना, उलंघना, बडा यत्नतैं। अपना सामर्थ्यप्रमाण ऐसा करना जैसैं अपना हस्त-पादादि अंग-उपांगनि में वेदना नाहीं उपजै। अन्य जीवकै बाधा नाहीं होय तैसैं हलन-चलन धीरतातैं करना सो ईर्या समति है ॥ ३ ॥ जो वस्तु अन्न, पान, वस्त्र, आसन, शय्या, काष्ठ, पाषाण, मुत्तिकाके तथा पीतल, कांसी, लोह, सुवर्ण, रूपा इत्यादिकके वासन, पात्र तथा घृतादि रस इत्यादिक गृहस्थके परिग्रह हैं तिनकूं यतनतैं उठावना मेलना जैसैं अन्य जीवनिका घात नाहीं होय, अपने अङ्गमें पडने गिरने करि पीडा नाहीं उपजै, उजाड-बिगाड होनेतैं आपकैं, अन्यकैं संक्लेश नाहीं उपजै तैसैं धरना, मेलना। हिंसाका कारण तथा हानिका कारण जो घसीटना सो नाहीं करै। ताकैं आदान-निक्षेपणसमिति नाम भावना होय है॥ ४ ॥ बहुरि गृहस्थ जो भोजनपान करै, सो अभ्यंतर तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी योग्यता-अयोग्यता विचार करै। योग्य देखि करै। अर बाह्य दिवसमें उद्योतमें नयनतैं अवलोकन करि बारम्बार शोधि धीरपनातैं ग्रासादिककूं मुखमें देय भक्षण करै। गृद्धितातैं विना विचाऱ्या बिना शोध्या भोजन नाहीं करै सो आलोकितपानभोजन नाम भावना है ॥ ५ ॥ ऐसैं अहिंसा अणुव्रतकी पाँच भावना कहीं। सो निरन्तर नाहीं भूलना।

अब सत्य अणुव्रतकी पँच भावना कहिये—क्रोधत्याग, लोभत्याग, भीरुत्वत्याग, हास्यत्याग, अनुवीचीभाषण ये पाँच भावना सत्यअणुव्रतकी हैं। जो सत्यअणुव्रत धारै, सो क्रोध करनेका त्याग करैं। ऐसा विचारै—जो क्रोधी होय वचन बोलै है ताकैं सत्य कहना नाहीं बनै है, यातैं क्रोध त्यागे ही सत्य रहै। अर जो कर्मके उदयतैं गृहस्थ के कोऊ बाह्य विपरीत निमित्त मिलनेतैं क्रोध उपजि आवैं तो ऐसा चिंतवन करै—जो मेरे परिणाममें क्रोधजनित तातई उपजि आई है तातैं मोकूं अब मौन ग्रहण ही करना, अब वचन नाहीं बोलना। जो वचनकूं रोकूंगा तो कषाय विसंवाद नाहीं बधैगा। हमारा क्षमादिगुण हू नाहीं विगडैगा। तातैं मेरे हृदय में क्रोधजनित अग्निका उपशम नाहीं होय

तितने वचनकी प्रवृत्ति नाहीं करनी । ऐसा दृढ विचार करै ताकैं सत्यकी क्रोधत्यागभावना होय है ॥ १ ॥ लोभके निमित्ततैं सत्य वचन नाहीं प्रवर्तै है । तातैं अन्यायका लोभ छांडना सो लोभत्यागभावना है ॥ २ ॥ बहुरि भयके वश होय ताकैं सत्यवचन नाहीं होय । तातैं भयका त्याग भये सत्य होय है ॥ ३ ॥ बहुरि हास्यमें सत्य नाहीं कह्या जाय है । यातैं सत्यअणुव्रती हास्यकूं हू दूरहीतैं छांडै है ॥ ४ ॥ बहुरि जिनसूत्रसूं विरूद्ध वचन नाहीं कहै। जिनसूत्रके अनुकूल वचन बोलना सो अनुवीचिभाषण नाम भावना है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो अपने सत्यअणुव्रत पालन किया चाहैगा सो क्रोधके कारणनिकूं रोकै है । जाके वास्ते अनेक असत्यमें प्रवर्तना होय ऐसा लोभकूं हू छांडि देगा अर जातैं धर्मविरुद्ध, लोकविरुद्ध वचनमें प्रवृत्ति हो जाय ऐसा धन बिगडनेका शरीर बिगडनेका भय नाहीं करेगा । अर जो आपना सत्यवादीपनाकी रक्षा किया चाहैगा, सो अन्यका हास्य कदाचित् नाहीं करैगा । अर जिनसूत्रसूं विरुद्ध वचन कदाचित् नाहीं कहैगा ।

अब अचौर्यअणुव्रतकी पांच भावना कहिये है । शून्यागार, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि, सधर्माविसम्वाद ए पंच भावना अचौर्यव्रतकी हैं । यातैं अचौर्यअणुव्रतका धारक गृहस्थ हू पँच भावना निरन्तर भावता रहै । व्यसनी मनुष्य तथा दुष्ट मनुष्य, तीव्रकषायी, कलहका करनेवाला पुरुषनिकरि शून्य मकान होय तहां वसनेका भाव राखै। जातैं तीव्रकषायी दुष्टनिके नजीक वसने में परिणामकी शुद्धता नष्ट हो जाय दुर्ध्यान प्रकट होजाय तातैं पापीनिकरि शून्य मकानमें वसना सो ही शून्यागार भावना है ॥ १ ॥ बहुरि जिस मकानमें अन्य दूजाका झगडा नाहीं होय तहां निराकुल वसना सो विमोचितावास है ॥ २ ॥ बहुरि अन्यके मकानमें आप जबरीतैं नाहीं धंस बैठना सो परोपरोधाकरण भावना है ॥ ३ ॥ बहुरि अन्याय अभक्ष्यकूं त्यागि भोगांतरायका क्षयोपशमके अधीन मिल्या जो रस-नीरस भोजन तामें समता धारि लालसारहित भोजन करना सो भैक्ष्यशुद्धि भावना है ॥ ४ ॥ साधर्मी पुरुषमें वादविसंवाद नाहीं करना सो सधर्माविसंवादभावना है ॥ ५ ॥ ऐसैं अचौर्याणुव्रत के धारकनिकूं पंच भावना भावने योग्य हैं।

अब ब्रह्मचर्यव्रतकी पंच भावना कहै हैं—स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग, स्त्रीनिके मनोहर अंग देखने का त्याग, पूर्वकालमें भोग भोगे तिनका स्मरण करने का त्याग, पुष्टरसका भोजन तथा इन्द्रियोंमें दर्प उपजावनेवाला भोजनका त्याग, अर—अपने शरीरके संस्कारका त्याग, ये पंच भावना ब्रह्मचर्यव्रतकी हैं । अन्यकी स्त्रीनिकी राग उपजावनेवाली कथा

१—इस विषयका खुलासा प्रस्तावनामें किया गया है ।

त्यागकी भावना करै ॥ १ ॥ तथा अन्यकी स्त्रीनिके स्तन, जघन, मुख, नेत्रादिक रूपकूं रागभावतैं देखनेका त्याग करै ॥ २ ॥ बहुरि आपके अणुव्रत धारण हुआ तिस पहली अव्रती होय भोग भोगे थे तिन भोगनिकूं याद नाहीं करना सो तीजी भावना है ॥ ३ ॥ बहुरि इष्ट पुष्ट कामोद्दीपन करनेवाला भोजनका त्याग सो चौथी भावना है ॥ ४ ॥ बहुरि अपने शरीरकूं अंजन, मंजन, अतर, फुलेलादि कामके विकार करनेवाले आभरण वस्त्रादिका त्याग करनेकी भावना करना सो स्वशरीरसंस्कारत्याग नामा पंचमी भावना है ॥ ५ ॥ ऐसे ब्रह्मचर्य नामा अणुव्रतके धारक गृहस्थकूं पंच भावना भावने योग्य है ।

अब परिग्रहत्यागकी पंच भावना कहै हैं,—जो परिग्रहपरिमाण नामा अणुव्रत धारण करै सो गृहस्थ बहुत पापबन्धके कारण अन्यायरूप अभक्ष्यनिका तो यावत् जीवन त्याग करै अर अन्तरायकर्मके क्षयोपशम-प्रमाण प्राप्त भये जे पंचेन्द्रियनिके विषय तिनमें संतोष धारणकरि मनोज्ञविषयनिमें अतिराग नाहीं करै अर अति आसक्त नाहीं होय । अर अमनोज्ञ असुहावने मिलैं तिनमें द्वेष नाहीं करै, क्लेश नाहीं करै । अर अन्य जीवनिके सुन्दर विषयभोग देखि लालसा नाहीं करना सो परिग्रहपरिमाण अणुव्रतकी पंच भावना हैं । बहुरि पंच पापनिका महानिंद्यपना है ताकी भावनाकूं हू भावना योग्य है । ये हिंसादिक पंच पाप हैं तिनतैं इस लोकमें महादुःखकरि अपना नाश है । अर परलोकमें घोर दुःख अनेक भवनिमें जानि पापनितैं भयभीत होय दूरहीतैं त्यागना । हिंसा करनेवाला निरंतर भयवान् रहै है । अर जाकूं मारै ताकैं अनेक भवनिपर्यंत वैर का संस्कार चल्या जाय है; जाकूं मारे ताका स्त्री, पुत्र, पौत्र, मित्र, कुटुम्बी वैर लेवैं हैं । तिर्यंचनि ऊपरि भी लाठी, पत्थर, शस्त्र, चाबुक चलावे ताका वैर तिर्यंच हू नाहीं छांडै है । हाथी, घोडा, सर्प, ऊंट बहुत दिनपर्यंत वैर धारण करि बदला लेवै हैं, मारै हैं । जगतमें निंद्य होय हैं, पापी कहावै हैं । सर्वमें प्रतीति जाती रहै है । तथा जाकूं मारै वे आपकूं मार ले है । राजाका तीव्र दण्ड भोगै है । हस्त, पाद, नाक, छेद्या जाय है । राजा सर्वस्व हरण करै है । महा अपयश गर्दभारोहणादिक तीव्र दण्ड भोगि नरकादि कुगतिनिमें बहुत काल नाना ताडन, मारन, छेदन, भेदन, शूलीरोहण, वैतरणीमें मज्जनादि असंख्यात दुःख भोगिता तिर्यंच मनुष्यमें तीव्ररोग, दारिद्र, अपमानादिक भोगता असंख्यात अनन्त भव दुःखका पात्र होय है ।

बहुरि जो अन्य जीवका घात तो नाहीं करै है अर अभिमान क्रोध करि अपने शरीरका बलकरि अन्य मनुष्य-तिर्यंचनिकूं तथा बालककूं स्त्रीकूं लात धमूका चांटनितैं मारै हैं तथा लाठी चाबुक वेतनितैं मारै हैं, त्रास देवै हैं । ते हू इस लोकमें राक्षसकी ज्यों भयंकर उद्वेग करने वाला महा अपयश पाय दुर्गतिका पात्र होय हैं । बहुरि जो निर्दयपरिणामी होय करके विकलत्रयादिकका कषायके वश होय घोर आरम्भादिक करि घात करै हैं तथा विना

प्रयोजन वनस्पतिका छेदन तथा पृथिवी जल अग्निकायके जीवनिकी अज्ञानभावतैं तथा प्रमादतैं विराधना करै हैं ते इस लोकमें ही सन्निपात, आमवात, पक्षाघात, संग्रहणी, अतिसार, वात, पित्त, कफ, खांसी, कोढ, खाज, पांव, फोडा, आदीठ वाला विष कण्टकादि रोगनितैं घोर दुःख भोग नाना दुर्गतिनि में रोग अर दारिद्र इष्ट वियोगादिक घोर दुःखनिका पात्र होय हैं। यातैं हिंसातैं इस लोक में घोरदुःखरूप फल जानि हिंसाका त्याग ही सर्व प्रकारकरि करना श्रेष्ठ हैं। बहुरि जो जीवनिकी दयाकरि युक्त होय समस्त जीवनिकूं अभयदान दे है, अपने परिणामनितैं जीवमात्रकी विराधना नाहीं चाहता यत्नाचाररूप प्रवर्तता प्रमाद छांडि अहिंसा धर्मकूं नाहीं भूलै है, तिसकी महिमा इहां ही देव करै हैं, पूज्य होय है, समस्त पापनितैं रहित होय स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देवपणा पाय मनुष्यलोकमें विदेहादिक उत्तम क्षेत्रमें महा प्रभावका धारक होय निर्वाण गमन करै।

अब असत्यवचनका स्वरूप केवल दोषरूप ही है सो प्रगट विचार करहू। असत्यवादीकी प्रतीति नाहीं रहै है। माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्रीनिके हू याकी प्रतीति नाहीं, विश्वास नाहीं आवे है, तदि अन्य के याका श्रद्धान कैसे होय? जातैं जगतमें जेता व्यवहार है तेता वचनके द्वारै है। जो वचन बिगाड्या सो अपना समस्त व्यवहार बिगाड्या। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चार पुरुषार्थ वचनकरि प्रवर्तै हैं। जाका वचन ही निंद्य भया ताका चारूं पुरुषार्थ निंद्य होय हैं। असत्यवादी समस्तकै अप्रिय होय है। याकैं मायाचार होय ही। असत्यके अर कपटकै अविनाभावीपना है। कुवचन बोलना, चुगली करना, अर विकथा, आत्मप्रशंसा, परकी निंदा ये असत्यका परिवार है। असत्यवादी इसही लोकमें जिह्वाछेद, सर्वस्वहरण तथा जिह्वाके रोगकरि नष्ट होना इत्यादिक घोर दुःखनिकूं प्राप्त होय है। अपवादकूं पावै है। परलोकमें नरकादिकनिमें परिभ्रमण, तिर्यंचगतिमें वचनरहितपना तथा गूंगा, बहिरा, अंधा, दरिद्री, रोगीपना पावै है। तथा मूर्खपना वचनकलारहितपना होय है। तथा जगतमें दीनताका विलाप करतो फिरै है तो हू कोऊ श्रवण ही नाहीं करै। तातैं असत्यवचनका त्याग ही श्रेष्ठ है। अर सत्यके प्रभावतैं देवलोकमें गमन, स्वर्गका महर्द्धिकपना होय है। समस्त जगतके आदरनै योग्य वचन होय तथा समस्त उत्तम शास्त्रनिका पारगामी होय। कविपना होय, वाग्मीपना होय अनेक जीवनिका उपकार होय। जाकी आज्ञा लाखां मनुष्य अंगीकार करैं ऐसा सत्यवचनका फल है। जो पूर्वजन्ममें वचनकी उज्ज्वलता धारी है ताका वचन श्रवण करनेका लाखां मनुष्य अभिलाप करै हैं--जो हमसूं बोलै तो हम कृतार्थ हो जावैं। ये समस्त सत्यवचनका प्रभाव है।

अब चोरीके दोषनिकी भावना कहिये है। चोर मनुष्य समस्तके भय उपजावनेवाला होय है। माता हू चोरी करनेवाले पुत्रका बडा भय करै है। तथा हितू बांधवादिक कोऊ चोरका संसर्ग नाहीं चाहैं हैं। याका संसर्गतैं कलंक चढि जायगा; कोऊ राजाकी आपदा आजायगी। तथा हमारा कुछ ले जायगा ऐसा भय नाहीं छांडै हैं।

चोर समस्तमें नीचा होजाय है। चोरकै काहूके मारनेकी दया नाहीं होय ह। असत्य, कपट, छल, अनेक चोरनिके निश्चयतैं होय ही है। चोर पापीनिमें महापापी है। चोरका कोऊ सहाई नाहीं होय है। पिता, माता, स्त्री, पुत्रादिक समस्त कुटुम्ब चोर की लार नाहीं लागे हैं। धीरज प्रतीति सब जाती रहै है। कोऊ स्थानदान नाहीं देवै है। चोर जानि समस्त मारने लगि जाय है। राजानिकरि तीव्र मारन, ताडन, हस्त-नासिका-छेदन, मारन दंड होय है। बंदीखानाकूं बहुत दीर्घकाल सेवन करि अपवाद पाय मरणकरि घोरनरककी वेदना भोगता असंख्यात अनंतकाल तिर्यंचनिमें भूख प्यास ताडन मारन लादन घसीटनादि असंख्यात भवनिमें पावै है। मनुष्य होय तो महानीच दरिद्री रोगी वियोगी घोर क्षुधा तृषा मारन बंधन चोरीके कलंकादी सहित निरादरका दुःख भोगता पैंड पैंडमें याचना करता घोर दुःख भोगनेका संतान चल्या जाय है। यातें चोरीका दूरहीतैं परिहार करो। अपने पुण्य पाप के अनुकूल जे विषय मिले हैं तिनमें संतोष धारणकरि अन्य के धनमें स्वप्नहूमें वांछा मति करो। परका धन पुण्य विना आवनेका हू नाहीं। पूर्व जन्ममें कुपात्र दान किया, कुतप किया, तातैं परका धन हाथ लगि जाय तो हू कै दिन भोगेगा। महासंक्लेशतैं अल्पआयु भोग दुर्गतिनिमें जाय प्राप्त होयगा। यातैं चोरीकाहू दूरहीतैं त्याग करना श्रेष्ठ है। जिनके परधनमें इच्छा नाहीं है, अपना पुण्यपाप के अनुकूल मिल्या तिसमें संतोष धारणकरि अन्यायका धनमें कदाचित चित्त नाहीं चलावै हैं, तिनका इसलोकमें हू यश है, प्रतीति है, समस्तमें आदर होय है। जाका परिणाम परधनमें नाहीं, अपने उपार्जन कियाहीमें मंदरागी है, तिनके एक हू क्लेश नाहीं आवै। अशुभ कर्म का बंध नाहीं होय है। समस्त जगत अपना धन दीजै है। परलोकमें देवलोककी अपरिमाण विभूति असंख्यात कालपर्यंत भोगि मनुष्यनिमें राजाधिराज मंडलेश्वर चक्रवर्तीनिका विभव भोगि क्रमतैं निर्वाणकूं प्राप्त होय है। यातैं भगवान वीतरागका धर्म धारण करि अन्यायका धनका त्याग करि रहना ही श्रेष्ठ है।

अब कुशीलके दोषनिकी भावना चिंतवनकरि विरक्त हो जाना योग्य है। कुशीलपुरुष है सो कामका मदकरि उन्मत्त हुआ मदोन्मत्त हस्तीकी ज्यों विचरै है। स्त्रीनिके रागकरि ठिग्या हुआ दोऊ लोकका विचाररहित कार्य-अकार्यकूं नाहीं जाने है। भक्ष्य-अभक्ष्य योग्य-अयोग्यका विचाररहित होय है। पाप-पुण्यकूं नाहीं देखे है। प्रत्यक्ष आपदा अपयश होता दीखै है तो हू कामकी अंधेरीतैं नाहीं देखै है। कामसारखी दूजी अन्धेरी त्रैलोकमें नाहीं है। कामकरि आच्छादित मनुष्यपर्यायमें हू पशुसमान है। पशुमें अर कामांधमें भेद नाहीं है। कामकरि अंध हुआ वनादिकमें तिर्यंच कटि कटि मरि जाय है। मनुष्य जन्ममें हू मरि जाय है अर मार ले है। कामांधके धर्म अधर्मका विचार नाहीं रहै है। लोकलाज मूलतैं नष्ट हो जाय है। परस्त्री—लंपटनिकूं अनेक ओछे आदमी मार लेवैं हैं। राजादिकनिकरि लिंगच्छेदन सर्वस्वहरणादि दंडनिकूं प्राप्त होय है। मरिकरि नरकादि दुर्गतिनिमें परिभ्रमण करि तिर्यंच-मनुष्यनिमें

घोर दुःख भोगता नीच चांडाल चमार धीवरनिमें महादरिद्री महाकुरूप कोढी अंगहीन आंधो लूलो पागलो कूबडो इत्यादि नीच मनुष्यनिमें उपजिकरि नरक बहुरि तिर्यंच बहुरि कुमानुप नपुंसकादि भवनिमें दुःख भोगे हैं । तातैं कुशीलका त्याग ही श्रेष्ठ है । बहुरि शीलवंत पुरुष स्वर्गलोकमें कोट्यां अपछराने सेव्यमान हुआ असंख्यात कालपर्यंत भोग भोगता मनुष्यनिमें प्रधान मनुष्य होय, अनुक्रमतैं मोक्षका पात्र होय है ।

अब परिग्रहकी ममताका दोष चिंतवनकरि परिग्रहतैं विरागी होना श्रेष्ठ हैं । परिग्रहकी ममता समस्त पंचपापनिमें प्रवृत्ति करावै है । परिग्रहकरि तृप्तिता नाहीं आवै है । जैसे ईंधन करि अग्नि बधै है, तैसे तृष्णारूप अग्निकरि निरंतर बधै है । अर परिग्रहके उपार्जनमें, रक्षणमें अर नाशमें महान् दुःखित होय है । परिग्रहकी ममताका धारक धर्म–अधर्मका, जीवन–मरणका विचार रहित होय है । परिग्रहकी ममता, हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, अभक्ष्य बहु आरम्भ, कलह, वैर, ईर्षा, भय, शोक, सन्ताप इत्यादिक हजारां दोषनिमें प्रवृति करावै है । संसारमें जेता बन्धन अर पराधीनता अर कषाय अर दुःख है तितना परिग्रहतैं है । अर परिग्रहका त्यागना है सो बडा भारका उतारना है । परिग्रहका त्यागी निर्बंध है । परिग्रहत्यागका फल स्वर्गमुक्ति है । यातैं परिग्रहका त्याग ही समस्त कल्याणका मूल है । ऐसैं हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रहनिमें दोष है । तिनकी भावना भावनी ।

बहुरि ये पंचपाप दुःख ही है ऐसी भावना राखना । हिंसादिक दुःखका कारण है, तातैं हिंसादिक पंच पाप हैं ते दुःख ही हैं । हिंसादिक दुःखका कारणनिमें कार्यका उपचार किया है तातैं पंचपापनिकूं दुःख ही कह्या है । जैसें वध बन्धन पीडन मोकूं अप्रिय हैं, तैसें ही समस्त अन्य प्राणीनिकूं हू अप्रिय हैं । जैसें झूठ, कटुक, कठोर वचन मोकूं कोऊ कहै ताकै श्रवण करनेतैं हमारे अतितीव्र दुःख उपजै है, तैसैं अन्य जीवनिके हू कटुकवचन असत्यवचन दुःख उपजावै हैं । जैसैं मेरा इष्टद्रव्यकूं कोऊ चोर ले जाय, तो मेरे महादुःख होय है, तैसैं अन्यजीवनिके हू धन हरनेका दुःख होय है । जैसैं हमारी स्त्री कोऊ तिरस्कार करै तिसकरि हमारे तीव्र मानसिक पीडा होय है । तैसैं अन्य जीवनिके हू अपनी माता, बहण, पुत्री, स्त्रीके व्यभिचारकूं श्रवणकरि देखने करि अति दुःख होय है । जैसैं धन–धान्य वस्त्रादिक नाहीं मिलनेतैं तथा प्राप्त हुआ ताकूं नष्ट होनेतैं वांछा, रक्षा, शोक भयकरि अपने दुःखितपना होय है, तैसैं परिग्रहकी वांछातैं तथा परिग्रहके नष्ट होनेतैं समस्तजीवनिके दुःख होय है । तातैं हिंसादिक पापनितैं विरक्त होना ही जीव का कल्याण है ।

यहां कोऊ कहै कोमल अंगकी धारक स्त्रीनिके अङ्गके स्पर्शन तैं रतिसुख उपजता देखिये है, दुःखरूप कैसैं कह्या ?

उत्तर—इन्द्रियनिका विषयनितैं उपज्या सुख सुख नाहीं है । भ्रांतितैं सुखरूप दीखै है । पहली विषयनिकी चाहरूप महावेदना उपजै है । वेदना उपजै तब ताके दूर करनेको चाहै । जैसैं देहमें चाम, मांस, रुधिर है ते सब विकारतैं कलुषपणानै प्राप्त हो जाय जब खाजि उत्कटताकूं प्राप्त होय तब नखनितैं ठीकरीतैं पत्थरतैं अपना शरीरकूं खुजावै है । गात्रकूं छेदने रगडनेतैं रुधिर करि लिप्त हुआ हू अत्यन्त खुजायकरि दुःखहीकूं सुख मानै है तैसैं मैथुनका सेवनहारा हू मोहतैं दुःखहीकूं सुख मानै है । तथा मनुष्य तिर्यंच असुर सुरेन्द्रादिक समस्त ही जीव अपने देहकी साथि उपजी इन्द्रियां तिनकरी उपज्या जो विषयनिकी चाह रूप आताप ताका दुःख सहनेकूं असमर्थ भया महानिंद्य विषयनिमें अति लालसा करि झंझापात लेवै हैं । अग्निकरि तप्तायमान लोहेका गोलाकी ज्यों इन्द्रियनिका ताप करि तप्तायमान जो आत्मा ताके विषयनिमें अतितृष्णातैं उपज्या अति दुःखरूप वेगके सहनेकूं असमर्थ भया विषयनिमें पडै है । जैसैं कोऊ पुरुष च्यारों तरफ अग्निकी ज्वालातैं बलता अग्निके आतापकूं नाहीं सहि सकता विष्ठाका भरया महा दुर्गंध अति ऊंडा खाडामें जाय पडै है, तिस विष्ठामें मस्तकपर्यंत डूबि ताकूं ही तापरहित सुख मानि मरण करै है; तैसैं ही संसारी जीव स्पर्शन इन्द्रिय का विषयकी चाहरूप आतापके सहनेकूं असमर्थ हुआ स्त्रीनिका दुर्गन्ध मलीन देहमें डूबि कामको आतापरहित सुख मानता अति तृष्णातैं उपज्या तीव्र दुःखकूं भोगता मरण करि संसार में नष्ट हो जाय है ।

तथा इस जीवकै ये इन्द्रियां तो आताप दुःख करनेवाली महाव्याधि हैं अर ये विषय हैं ते किंचित् काल दाहकी उपशमताका कारण विपरीत अपथ्य औषधि हैं । जिनकरि विषयनिकी चाहरूप दाह बधता चल्या जाय है, घटै नाहीं है, भ्रमतैं इलाज मानै है । जिनकै इन्द्रियां जीवती तिष्ठै हैं तिनके स्वाभाविक ही दुःख है । दुःख नाहीं होय तो विषयनिमें उछलि उछलि कैसैं पडैं । सो देखिये ही है । कपट की हथिनी का शरीरका स्पर्शके अर्थि वनका हस्ती स्पर्शता इन्द्रिय की आतापकरि खाडामें पडि घोर बन्धनकूं भौगे है । बहुरि जलकी चंचल मछली रसना इन्द्रियके वसि होय धीवरकरि पसार्‍या कांटामें फंसकरि प्राणरहित होय है । घ्राण-इन्द्रियका आतापका मार्‍या भ्रमर है सौ संकोचके सन्मुख कमल का गंधकूं ग्रहण करता कमलमें प्राणरहित होय है । नेत्रइंद्रिय-जनित सन्ताप कूं नाहीं सहि सकता पतङ्ग जीव रूपका लोभी दीपककी ज्वालामें भस्म होय है । कर्ण-इंद्रियजनित श्रवण करनेकी तृष्णाका आतापकूं नाहीं सहनेकूं समर्थ ऐसा हिरण शिकारीकरि गाया रागमें अचेत होय मार्‍या

जाय है। ऐसैं दुर्निवार इंद्रियनिकी वेदनाके वश पडे जीव ते निकट ही है मरण जिनमें ऐसे विषयनिविषैं यतन करै है । इंद्रियजनित आतापतुल्य त्रैलोक्यमें आताप नाहीं है । जैसैं इंद्रियनिका विषयनिकी चाहका आताप है, तैसा आताप अग्नि में नाहीं है, शस्त्रका नाहीं है, विषका नाहीं है । इंद्रियनिका आताप सहनेकूं असमर्थ भये विषयनिके अर्थि अग्निमें बलैं हैं, शस्त्रनिके सन्मुख होय मरै हैं, विषभक्षण करैं हैं, धर्मकूं लोपैं हैं, माता पिता गुरु उपाध्यायकूं विषयनिका रोकनेवाला जाणि मारि डारैं हैं । इस संसारमें इंद्रयनितैं केवल दुःख ही है जिनकैं इंद्रियरहित अतींद्रिय केवलज्ञान है तिनहीके निराकुलता लिये ज्ञानानंद सुख है। यातैं जे इंद्रियांके अधीन हैं, ताकैं स्वभाविक दुःख ही है। जो स्वाभाविक दुःख नाहीं होय तो विषयनिमें प्रवृत्ति कैसैं करै ? जाकै शीतज्वर मिटि गया सो अग्नितैं तापना नाहीं चाहैगा, जाकें दाहज्वर मिटि गया सो कांज्याका सींचना नाहीं चाहैगा, जाके नेत्ररोग मिटि गया सो खपऱ्या अंजनादिक नेत्रनिमें डाऱ्या नाहीं चाहैगा, जाकैं कर्णका शूल मिट गया सो कर्णमें बकराका मूत्रादिक नाहीं डारैगा, जाकैं व्रणघाव मिटि गया सो मल्हिम पट्टी नाहीं करैगा । तैसैं ही जाकैं इन्द्रियजनित वेदना नाहीं ताके विषयनिमें प्रवृत्ति कदाचित् नाहीं होयगी । क्षुधावेदना विना भोजन कौन करै, तृषावेदना विना जल कौन पीवै, गरमी की बाधा विना शीतल पवन कौन चाहै, शीतकी बाधा विना रुई का भऱ्या वस्त्र तथा रोमका वस्त्र कौन ओढै । तातैं ए समस्त विषय-वेदनाके इलाजके हैं । इन विषयनितैं किंचित् काल वेदना घटि जाय ताकूं अज्ञानी सुख मानै हैं । सो सुख वास्तवमें सुख नहीं हैं । सुख तो यो हैं जहां वेदना नाहीं उपजै है । अनाकुलता-लक्षण स्वाधीन अनन्त ज्ञान है । सो ही सुख है, अन्य नाहीं है; ऐसैं निश्चय जानहु । ऐसैं हिंसादिकनिकूं दुःखरूप ही चिंतवन करनेकी भावना भायवो योग्य है ।

अब श्रावककूं मैत्र्यादिक च्यारि भावना भावने योग्य हैं तिनकूं कहै हैं—एकेन्द्रियादिक समस्त प्राणीविषैं मैत्रीभावना भावै। जो कोऊ प्राणीनिकैं दुःखकी उत्पत्ति मति होहु ऐसा अभिलाष रखना सो मैत्री भावना है। अर जे सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र तप इत्यादिकनिकरि अधिक होंय तिनमें प्रमोद भावना करना। प्रमोद नाम हर्षका आनन्दका है। सो गुणनिकरि अधिककूं देखि परिणाममें ऐसा हर्ष उपजै जैसे जन्म दारिद्री निधीनिकूं पाय हर्ष करै। गुणवन्तनिकूं देखतां प्रमाण हर्षका रोमांच होना तथा मुखकी प्रसन्नता करि नेत्रनिका प्रफुल्लित होना हृदयमें आल्हादन स्तुतिभाषण नामकीर्तनादि करि अंतर्गत भक्तिका प्रगट करना सो प्रमोद भावना है । बहुरि असातावेदनीकर्मका उदयकरि रोगदारिद्रादिकरि पीडित जे क्लेश सहित प्राणी तथा इन्द्रियनिकरि विकल आंधा बहिरा लूला तथा अनाथ विदेशी तथा अति वृद्ध बाल तथा विधवा इत्यादिक दुःखित प्राणीनिके दुःख मेटनेका अभिप्राय सो कारुण्य भावना है। बहुरि जे धर्मरहित तीव्रकषायी हठग्राही उपदेश देनेके अयोग्य विपरीतज्ञानी, धर्मद्रोही, दुष्टअभिप्रायी, निर्दयी तिनविषै रागद्वेषका अभावरूप माध्यस्थ भावना करना।

भावार्थ—समस्त प्राणीनिके दुःखका अभाव चाहना सो मैत्री भावना है। बहुरि गुणनिकरि अधिक होंय तिन पुरुषनिकूं देखि करि, श्रवणकरि महान् हर्षका उपजावना सो प्रमोद भावना है। दुःखित देखि उपकार बुद्धिका उपजना सो कारुण्य भावना है। बहुरि हठग्राही निर्दयी अभिमानीनिमें रागद्वेषरहित रहना सो माध्यस्थ भावना है। ऐसैं धर्मके धारक श्रावकनिकूं मैत्र्यादि च्यारि भावना भावना योग्य है। बहुरि गृहस्थनिकूं जगत्का स्वभाव अर कायका स्वभाव हू चिंतवन करना योग्य है जगत्का स्वभाव चिंतवन करनेतैं संसार परिभ्रमणका भय उपजै है अर देहका स्वभावरूप चिंतवन करनेतैं रागभावका अभाव होय है यो जगत् कहिये लोक है सो अनादिनिधन है अर्द्धमृदंग ऊपरि एक मृदंग धरिये ऐसा ड्योड मृदंगसा आकार है। चौदह राजू ऊंचा है दक्षिण उत्तर सर्वत्र सात राजू चौडा है अर पूर्व-पश्चिम नीचै सात राजू है ऊपरि क्रमतैं घटता-घटता सात राजू ऊँचा जाय एक राजू चौडा रह्या है फेरि ऊपरि क्रमतैं बधता-बधता साढा तीन राजू ऊँचा गया तहाँ पाँच राजू चौडा है। फिर क्रमतैं घट्या है सो साढा तीन राजू ऊँचा गया लोकका अन्तमें एक राजू चौडा है ऐसे पूर्व-पश्चिम क्रमतैं घटती बढती ऊँचाई जाननी। ऐसे आकारका धारक लोकका एक राजू चौडा एक राजू लम्बा एक राजू ऊँचा विभाग कल्पना करिये तो तीनसै तियालीस खण्ड होय हैं इस लोकरूप क्षेत्रमें अनन्तानंतकाल परिभ्रमण करते व्यतीत भये सो ऐसा कोऊ पुद्गल नाहीं रह्या जो शरीरादिकरूप नाहीं धारण किया अर तीनसै तियालीस राजू प्रमाण क्षेत्रमें ऐसा कोऊ एक प्रदेश हू बाकी नाहीं रह्या जहां अनन्तानन्तवार इस जीवने जन्म नाहीं धर्या अर मरण नाहीं किया। अर उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, कालका बीस कोडाकोडी सागरमें ऐसा कोऊ एक कालका समय हू नाहीं रह्या जिसमें यो जीव जन्म-मरण नाहीं किया। अर नरक तिर्यंच मनुष्य देव इन चार गतिनिमें जघन्य आयुकूं लेय उत्कृष्ट आयुपर्यंत समयोत्तर ऐसा कोऊ पर्याय बाकी नाहीं रह्या जाकूं अनन्तवार नाहीं पाया। बहुरि ज्ञानावरणादिक समस्तकर्मनिकी मिथ्यादृष्टिके बन्ध होने योग्य जघन्यस्थिति तो अंतः कोटाकोटि सागर परिमाण है अर उत्कृष्ट स्थिति ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अन्तराय इन चार कर्मनिका तीस कोटाकोटि सागर की है अर मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टस्थिति सत्तर कोटाकोटी सागर प्रमाण है अर नामकर्म अर गोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति बीस कोटाकोटी सागर प्रमाण है अर आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीससागरकी है। सो जघन्य स्थितिकूं आदि लेय समयसमयकरि उत्कृष्टस्थिति वृद्धि पर्यंत जो कर्मनिकी स्थिति हैं तिन समस्त स्थितिनिके एक स्थानकूं असंख्यातलोक प्रमाण कषायनिके स्थान कारण हैं ते कषायनिके एक-एक स्थान अनन्तबार संसारी जीवकै भये हैं तातैं ऐसा परिभ्रमणरूप जगतमें जीव है ते नानाभेदरूप चतुर्गतिमें परिभ्रमण करता निरन्तर दुःख भोगे है। कोऊ जीव निश्चल नाहीं है जलका बुदबुदातुल्य जीवन अथिर है, अर भोगसम्पदा मेघपटलवत् विनाशीक है, राज्य धन-सम्पदा इन्द्रधनुषवत् क्षणभंगर है। इस

संसारमें प्राणी अनन्तानन्त परिवर्तन करैं हैं ऐसैं संसारका सत्यार्थस्वरूप चिंतवन करनेतैं संसारपरिभ्रमणतैं भय उपजै है।

बहुरि कायका चिंतवन करिये है यो मनुष्य शरीर है सो रोगरूप सर्पनिको बिल है अनित्य है दुःखका कारण है अपवित्र निःसार है कोटि यत्न करते-करते हू विनासि जाय है यो शरीर धोवते-धोवते मैलकूं निरन्तर उगलै है सुगंध अतर फुलेल लगाते-लगाते दुर्गंध वमै है पोषते-पोषते बल नाहीं धारै है सुखतैं राखते-राखते अपना नाहीं होय है, भूषित करते-करते विडरूप दिनदिन होय है सुधारतां सुधारतां दिन-दिन भयानकता धारै है, सुख देतां-देतां दुःखी हुआ जाय है मन्त्रते--मन्त्रते निरन्तर भयभीत रहै है दीक्षारूप होतां-होतां हू साधुनिका मार्गकूं दूषित करै है, शिक्षा देते-देते गुणनिमें नाहीं रमै है, दुःख भोगते-भोगते हू कषायनिका उपशमभावकूं प्राप्त नाहीं होय है रोकते- रोकते हू पापहीमें प्रवर्तन करै है प्रेरणा करते-करते हू धर्मकूं नाहीं धारण करै हैं मर्दन करते-करते हू दिन-दिन कठोर कर्कश होता जाय है रूक्ष करते-करते आमकूं धारै है तैलादिक रमावते-रमावते हू वासकूं प्राप्त होय हैं चंदनादिकतैं सींचते-सींचतैं हू पित्तकरि जलै है। सोपाण करते-करते हू कफकूं गलै है। पूंछतां-पूछतां कोढादिक रोगतैं मिलै है चामडाकरि बंध्या है तो हू क्षीण होता चल्या जाय है रक्षा करते-करते हू कालका मुखमें प्रवेश करै है। शरीरका ऐसा निंद्य स्वभाव चिंतवन करनेतैं शरीरमें राग भाव नष्ट होय जाय है यातैं जगत्का स्वभाव अर काय का स्वभाव संवेग जो संसारतैं भय अर वैराग्यके अर्थि चिंतवन करना श्रेष्ठ है।

बहुरि षोडश कारण भावना हू श्रावकके भावने योग्य हैं. षोडशकारण भावनाका फल तीर्थंकरपना है इसहीकरि तीर्थंकरप्रकृतिका बंध अव्रती सम्यग्दृष्टि हूकै होय अर देशव्रती श्रावकहूके होय अर प्रमत्तसंयत हूके होय है सर्वोत्कृष्ट पुण्यप्रकृति तीर्थंकरि प्रकृति है इसतैं अधिक पुण्यप्रकृति त्रैलोक्यमें नाहीं है। उक्तं च गोमट्टसारे कर्मकांडे—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादि चत्तारि। तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥ ९३ ॥

अर्थ—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका आरम्भ कर्मभूमिका मनुष्य पुरुषलिंगधारीहीके होय है अन्य तीन गतिमें आरम्भ नाहीं होय। अर केवली तथा श्रुतकेवलीके चरणारविंदकै समीप ही होय केवली श्रुतकेवलीका निकट विना तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धके योग्य भावनाकी विशुद्धता नाहीं होय है। अर तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रथमोपशमसम्यक्त्व में होय तथा शेषत्रिक जो द्वितीयोपशम तथा क्षयोपशम तथा क्षायिक इन चार सम्यक्त्वमें कोऊ एकमें होय है इस तीर्थंकरप्रकृतिबंधके कारण षोडशकारणभावना हैं ये भावना समस्त पापका क्षय करनेवाली भावनिके मलकूं विध्वंस करनेवाली श्रवण पठन करते संसारके बंध छेदनेवाली निरंतर भावने योग्य हैं।

अब यहाँ षोडशभावनकी षोडश जयमाला पढि महान् पुण्य उपार्जन करिये है तिनही का अर्थकूं भावनिकी विशुद्धता अर अशुभ भावनिका नाशके अर्थि लिखिए है ।

अथ समुच्चयजयमालका अर्थ प्रथमही लिखिये है–हे संसारसमुद्रतैं तारनेवाला, कुमतिकूं निवारण करनेवाला हे तीर्थंकर–स्वलब्धिकूं धारण करनेवाला, हे शिव ! जो निर्वाणका कारण, हे षोडशकारण ! मैं तिहारे ताईं नमस्कार करके तेरा स्तवन करूं हूँ अर मेरी शक्तिकूं प्रकट करूं हूं ।

भावार्थ– षोडशकारण भावना जाकै हो जाय सो नियमसूं तीर्थंकर हो जाय संसार समुद्रकूं तिरै ही ऐसा नियम है । बहुरि षोडशकारण भावना जाकै होय ताकै कुगति नाहीं होय, केई तो विदेहक्षेत्रनिविषै गृहाचारमें षोडशकारण भावना केवलीके अथवा श्रुतकेवलीके निकट भाय उसी भव में तपकल्याण, ज्ञानकल्याण, निर्वाणकल्याण देवनिकरि पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है । अर केई पूर्व जन्ममें केवली श्रुतकेवली के निकट भावना भाय सौधर्म स्वर्गकूं आदि लेय सर्वार्थसिद्धि पर्यंत अहमिंद्र उपजि करि फिर तीर्थंकर होय निर्वाण पावै हैं । कोई पूर्वजन्ममें मिथ्यात्व के परिणाममें नरकका आयु बन्ध किया फिर केवली श्रुतकेवली का शरण पाय सम्यक्त्व ग्रहणकरि षोडशकारण भावना भाय नरक जाय नरकतैं निकसि तीर्थंकर होय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं । पूर्वजन्ममें षोडशकारण भावना करि तीर्थंकरप्रकृति बांधै है ताकैं पंच कल्याणकी महिमा होय है अर जो विदेहनिमें गृहस्थपनामें तीर्थंकर प्रकृति बांधै सो उसही भवमें तप ज्ञान निर्वाण तीन कल्याणनिमें इंद्रादिककरि पूजन पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं । केई विदेहक्षेत्रनिमें मुनिके व्रत धरयां पाछैं केवलीके निकट षोडशकारण भावना भाय उसी भवमें तीर्थंकर होय ज्ञान, निर्वाण दोय कल्याणकी पूजाको प्राप्त होय हैं । तप कल्याण ताकै पहले ही भया तातैं नाहीं होय है । जाकै तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध होय जाय सो भवनत्रिक देवनिमें अन्य मनुष्य तिर्यंचनिमें भोगभूमिमें स्त्री नपुंसक एकेन्द्रिय विकल–चतुष्कादि पर्यायनिमें नाहीं उपजै है अर तीसरी पृथ्वीतैं नीचे नाहीं उपजै है याही तैं षोडशकारण भावना कुगतिका निवारण करनेवाली है । बहुरि षोडशकारण भावना हुआ पाछैं तीजे भव निर्वाण होय ही, तातैं शिवका कारण है अर तीर्थंकरत्व ऋद्धि षोडशकारणतैं ही उपजै है तातैं हे षोडशकारण भावना ! मैं तुम्हें नमस्कारकरि थारो स्तवन करूं हूँ ।

हे भव्यजीवो ! इस दुर्लभ मनुष्यजन्ममें पच्चीस दोषरहित दर्शन विशुद्धता नाम भावना भावहु । सम्यग्दर्शनके नष्ट करनेवाली दोषनिकूं त्यागना सोही सम्यग्दर्शनकी उज्ज्वलता है । तीन मूढता, अष्ट मद, छह अनायतन शंकादि अष्ट दोष ये सत्यार्थ श्रद्धानकूं मलीन करनेवाले पच्चीस दोष हैं तिनका दूरहीतैं त्याग करो । बहुरि चार प्रकारका विनय जैसे भगवान्का परमागममें कह्या तैसैं दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, उपचारविनय ये चार प्रकार विनय

जिन शासनका मूल भगवान् जिनेन्द्र कह्या है । जहां चारप्रकार विनय नाहीं है तहां जिनेन्द्रधर्मकी प्रवृत्ति ही नाहीं तातैं जिनशासनका मूल विनयरूप ही रहना योग्य है । बहुरि अतीचाररहित शील कूं पालहू । शीलकूं मलीन नाहीं करना सो उज्ज्वलशील मोक्षके मार्गमें वडा सहाई है जाके उज्ज्वलशील है ताकै इन्द्रिय विषयकषाय परिग्रहादिक मोक्षमार्गमें विघ्न नाहीं कर सकै हैं । इस दुर्लभ मनुष्यजन्मविषैं क्षण-क्षणमें ज्ञानोपयोगरूपहीर हो सम्यग्ज्ञान विना एक क्षण हु व्यतीत मत करो । अन्य जे संकल्प-विकल्प संसारमें डबोवनेवाले हैं तिनका दूरहीतैं परित्याग करो । बहुरि धर्मानुराग करि संसार-देह भोगनितैं विरागतारूप संवेग भावना मनके माहीं चिंतवन करते रहो जातैं समस्त-विषयनिमें अनुरागका अभाव होय धर्ममें अर धर्मका फलमें अनुरागरूप प्रवर्तन दृढ होय । बहुरि अन्तरङ्गमें आत्माके घातक लोभादिके चार कषायनिका अभाव करि अपनी शक्तिप्रमाण सुपात्रनिके रत्नत्रयगुणमें अनुराग करि आहारादिक चार प्रकार का दानमें प्रवृत्ति करो । बहुरि दोय प्रकार अंतरंग बहिरंग परिग्रहमें आसक्तता छांडि समस्त विषयनिकी इच्छाका अभाव करि अतिशयकरि दुर्धर तपकूं शक्तिप्रमाण अंगीकार करो । बहुरि चित्तके विषै रागादिक दोषनिका निराकरणकरि परम वीतरागतारूप साधुसमाधि धारण करो । बहुरि संसारके दुःख आपदाका निराकरण करनेवाला वैयावृत्य दशप्रकार करहू । बहुरि अरहंतके गुणनिमें अनुरागरूप भक्तिकूं धारण करता अरहंतके नामादिकका ध्यान करि अरहंतभक्तिकूं धारण करो । बहुरि पंच प्रकार आचारकूं आप आचरण करावे अर दीक्षा शिक्षा देनेमें निपुण धर्मके स्तम्भ ऐसे आचार्य-परमेष्ठीके गुणनिमें अनुराग धरना सो आचार्यभक्ति है । बहुरि ज्ञानमें प्रवृत्ति करावनेवाले निरन्तर सम्यग्ज्ञानका पठन आप करैं अन्य शिष्यनिकूं पढावनेमें उद्यमी, चारि अनुयोगविद्याके पारगामी वा अंग-पूर्वादि श्रुतके धारक उपाध्याय परमेष्ठी की बहुभक्ति धारण करना सो बहुश्रुतभक्ति नाम भावना है ।

बहुरि जिनशासनका पुष्ट करनेवाला अर संशयादिक अन्धकार दूर करनेकूं सूर्यसमान जो भगवान्का अनेकान्तरूप आगम ताके पठनमें, श्रवणमें, प्रवर्तनमें, चिंतवन में, भक्तिकरि प्रवर्तन करना सो प्रवचनभक्ति भावना भावहू । बहुरि अवश्य करने योग्य षट् आवश्यक हैं ते अशुभकर्मके आस्रवकूं रोकि महान् निर्जरा करनेवाले हैं अशरणनिकूं शरण हैं ऐसे आवश्यकनिकूं एकाग्रचित्तकरि धारहु इनकी भावना निरन्तर भावहु । बहुरि जिनमार्गकी प्रभावनामें नित्य परिवर्तन करो जिनमार्ग की प्रभावना धन्यपुरुषनिकरि प्रवर्तै हैं । अनेक पुरुषनिकी वीतराग धर्ममें प्रवृत्ति अर कुमार्गका अभाव प्रभावना करके ही होय है । बहुरि धर्ममें धर्मात्मा पुरुषनिमें तथा धर्मके आयतनमें, परमागम के अनेकातन्रूप वाक्यनिमें परमप्रीति करना सो वात्सल्य भावना है यो वात्सल्य अंग है सो समस्तअंगानिमें प्रधान है दुर्द्धर मोह तथा मानका नाश करनेवाला है ऐसे निर्वाणके सुखकी देनेवाली ये षोडशकारण भावनानिकूं जो भव्य स्थिरचित्तकरि भावै है चिंतन करै है जाकै आत्मामें रचि जाय है सो समस्त जीवनिका हितरूप तीर्थंकरपनों पाय पंचमगति जो

निर्वाण ताही प्राप्त होय है । ऐसैं षोडशकारण की समुच्चयरूप भावना समाप्त करी ।

अब दर्शनविशुद्धि नाम प्रथम अंगकी भावना वर्णन करिये है–हे भव्यजीव हो ! जो यो मनुष्यजन्म पाय याकूं सुफल किया चाहो हो तो सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता करहू । यो सम्यग्दर्शन समस्त धर्मका मूल है सम्यक्त्व विना श्रावकधर्म हू नाहीं होय, मुनिधर्म हू नाहीं होय, सम्यग्दर्शनविना ज्ञान है सो कुज्ञान है चारित्र कुचारित्र है, तप है सो कुतप है । सम्यग्दर्शन विना यो जीव अनन्तानन्तकाल परिभ्रमण किया है अब जो चतुर्गति संसारपरिभ्रमणसूं भयवान् होकर जन्मजरामरणतैं छूट्या चाहो हो अर अनन्त अविनाशी सुखमय आत्माकूं इच्छो हो तो अन्य समस्त परद्रव्यनिमें अभिलाषा छांडि सम्यग्दर्शनहीकी उज्ज्वलता करहु ।

कैसीक है दर्शनविशुद्धता निर्वाणके सुखकी कारण है दुर्गतिका निराकरण करनेवाली है विनयसंपन्नतादिक पन्द्रहकारणनिका मूलकारण है, दर्शनविशुद्धता नाहीं होय तो अन्य पन्द्रहभावना नाहीं होय हैं यातैं संसारका दुःखरूप अंधकारके नाश करनेकूं सूर्य समान है, भव्यनिकूं परम शरण है ऐसी दर्शनविशुद्धता नाम भावना भावहु । जैसैं स्वपरद्रव्यका भेदज्ञान उज्ज्वल होय तैसैं यत्न करहू । यो जीव अनादिकालतैं मिथ्यात्वनाम कर्मके वशि होय आपका स्वरूपकी अर परकी पहिचान ही नाहीं करी, जैसे पर्यायकर्मके उदयतैं पर्याय पावै तैसी पर्यायकूं ही अपना स्वरूप जानता अपना सत्यार्थरूपका ज्ञानमें अन्ध हो आपके स्वरूपतैं भ्रष्ट हुआ चतुर्गतिमें भ्रमण करै है देवकुदेवकूं जानै नाहीं धर्मकुधर्मकूं जानै नाहीं सुगुरु कुगुरुकूं जानै नाहीं । बहुरि पुण्यका पापका, इस लोकका परलोकका, त्यागनेयोग्य ग्रहणकरनेयोग्य, भक्ष्य-अभक्ष्यका सत्संगका कुसंगका, शास्त्रका कुशास्त्रका विचाररहित कर्मका उदयके रसमें एकरूप भया अपना हित अहितकूं नाहीं पहिचानता परद्रव्यनिमें लालसारूप होय सदाकाल क्लेशित होय रह्या है । कोऊ अकस्मात् काललब्धिके प्रभावतैं उत्तमकुलादिकमें जिनेन्द्रधर्म पाया है यातैं वतिरागसर्वज्ञका अनेकांतरूप परमागमके प्रसादतैं प्रमाणनयनिक्षेपनितैं निर्णय करि परीक्षाका प्रधानी होय वीतरागी सम्यग्ज्ञानी गुरुनिके प्रसादतैं ऐसा निश्चय भया जो एक जाननेवाला ज्ञायकरूप अविनाशी, अखंड, चेतनालक्षण, देहादिक समस्त परद्रव्यनितैं भिन्न मैं आत्मा हूँ देह जाति कुल रूप नाम इत्यादिक मौतैं अत्यन्त भिन्न हैं अर रागद्वेष काम क्रोध मद लोभादिक कर्मके उदयतैं उपजे मेरे ज्ञायकस्वभावमें विकार है जैसैं स्फटिकमणि तो आप स्वच्छ श्वेत स्वभाव है तिस में डाकके संसर्गतैं काला पीला हऱ्या लाल अनेक रङ्गरूपके दीखै हैं तैसैं मैं आत्मा स्वच्छ ज्ञायकभाव हूँ निर्विकार टंकोत्कीर्ण हूँ मोहकर्मजनित रागद्वेषादिक यामें झलकैं हैं ते मेरे रूप नाहीं पर हैं ऐसैं तो अपने स्वरूपका निश्चय हुवा ।

बहुरि सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशक अर क्षुधा, तृषा, जन्म; जरा, मरण, रोग, शोक, भय, विस्मय,

राग, द्वेष, निद्रा, स्वेद, मद, मोह, चिंता, खेद, अरति इन अष्टादश दोषनिका अत्यन्त अभाव जाकै भया अर अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्तसुख इत्यादिक अनन्त आत्मीक अविनाशी गुण जाकै प्रगट भए सो ही आप्त हमारे वंदन स्तवन पूजन करने योग्य हैं। अन्य कामी क्रोधी लोभी मोही स्त्रीनिमें आसक्त शास्त्रादिक ग्रहण किये, कर्मके अधीन इन्द्रिय ज्ञानके धारक सर्वज्ञतारहित हैं सो मेरे वन्दन स्तवन पूजने योग्य नाहीं। जो चोरनिमें शिरोमणि अर जारनिमें शिरोमणि है सो कैसैं आराधने योग्य होय। वहुरि सर्वज्ञवीतरागका उपदेश्या अर प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि जामें सर्वथा वाधा नाहीं आवै अर समस्त छहकायके जीवनिकी हिंसारहित धर्मका उपदेशक आत्माका उद्धारक अनेकांतरूप वस्तुकूं साक्षात् प्रगट करनेवाला ही आगम है सो पढने पढावने, श्रवण करने, श्रद्धान करने, वंदने योग्य है । अर जे रागी द्वेषीनिकरि प्ररूपण किये अर विषयानुराग अर कषाकके वधावनेवारे जिनमें हिंसाके करनेका उपदेश है ऐसे प्रत्यक्ष अनुमानकरि वाधित एकांतरूप शास्त्र श्रवणपढने योग्य नाहीं वन्दनायोग्य नाहीं हैं । बहुरि विषयनिकी वांछाका अर कषायका अर आरम्भपरिग्रहका जाकैं अत्यन्त अभाव भया, केवल आत्माकी उज्वलता करनेमें उद्यमी, ध्यान स्वाध्यायमें अत्यन्त लीन, स्वाधीन कर्मबंधजनित दुःख सुखमें साम्यभावके धारक, जीवन मरण, लाभ अलाभ स्तवन निंदनेमें रागद्वेषरहित उपसर्गपरीषहनिके सहनेमें अकम्प धैर्यके धारक परमनिर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु ही वंदन स्तवन करनेयोग्य हैं अन्य आरम्भी कषायी विषयानुरागी कुगुरु कदाचित् स्तवन वन्दन करने योग्य नाहीं हैं । बहुरि जीवदया ही धर्म है हिंसा कदाचित् धर्म नाहीं जो कदाचित् सूर्यका उदय पश्चिमदिशा में होजाय अर अग्नि शीतल होजाय अर सर्पका मुखमें अमृत होजाय अर मेरु चलि जाय अर पृथ्वी उलट–पलट होजाय तो हू हिंसामें तो धर्म कदाचित् नाहीं होय । ऐसा दृढ श्रद्धान सम्यग्दृष्टिके होय है जाकै अपने आत्माके अनुभवनमें अर सर्वज्ञ वीतरागरूप आप्तके स्वरूपमें अर निर्ग्रंथ विषयकषायरहित गुरुमें अर अनेकांतस्वरूप आगममें अर दयारूप धर्मके शंकाका अभाव सो निःशंकित अंग है सम्यग्दृष्टि यामें कदाचित् शंका नाहीं करै है ।

वहुरि सम्यग्दृष्टि है सो धर्मसेवनकरि विषयनिकी वांछा नाहीं करै है जातैं सम्यग्दृष्टिकूं इन्द्र अहमिन्द्रलोकके विषै हू महान वेदनारूप विनाशीक पापका वीज दीखै है अर धर्मका फल अनन्त अविनाशी स्वाधीन सुखकरि युक्त मोक्ष दीखै है तातैं जैसें बहुमूल्य रत्न छांडि कांचखंडकूं जौंहरी नाहीं ग्रहण करै है तैसैं जाकूं सांचा आत्मीक अविनाशी वाधारहित सुख दीख्या सो झूठा बाधासहित विषयनिका सुखमें कैसैं वांछा करै ? तातैं सम्यग्दृष्टि वांछारहित ही होय है । अर जो अव्रती सम्यग्दृष्टिके वर्तमानकालमें आजीविकादिकनिमें तथा स्थानादिकपरिग्रहमें वेदनाके

अभावमें जों वांछा होय है सो वर्तमानकालकी वेदना सहनेकी असामर्थ्यतैं वेदनाका इलाजमात्र चाहै है । जैसैं रोगी कडवी औषधितैं अति विरक्त होय है तो हू वेदनाका दुःख नाहीं सह्या जाय तातैं कडवी औषधि वमन विरेचनादिकका कारण हू ग्रहण करै हैं, दुर्गंध तैलादिक हू लगावै है अन्तरङ्गमें औषधितैं अनुराग नाहीं है तैसैं सम्यग्दृष्टि निर्वांछक है तो हू वर्तमानके दुःख मेटनेकूं योग्य न्यायके विषयनिकी वांछा करै है । अर जिनके प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानावरणकषायका अभाव भया ते अपना सौ खंड होय तो हू विषयवांछा नाहीं करै है यातैं सम्यग्दृष्टिके निःकांक्षित गुण होय ही है ।

बहुरि सम्यग्दृष्टि अशुभ कर्मके उदयतैं प्राप्त भई अशुभ सामग्री तिसमें ग्लानि नाहीं करै, परिणाम नाहीं बिगाडै हैं मैं पूर्व जैसा कर्म बांध्या तैसा भोजन पान स्त्री पुत्र दरिद्र संपदा आपदाकूं प्राप्त भया हूं तथा अन्य किसीकूं रोगी दरिद्री हीन नीच मलीन देखि परिणाम नाहीं बिगाडै है, पापकी सामग्री जानि कलुषता नाहीं करै है तथा मलमूत्र कर्दमादि द्रव्यकूं देखि अर भयङ्कर श्मशान वनादि क्षेत्रकूं देखि, भयरूप दुःखदायी कालकूं देखि, दुष्टपना कडवापना इत्यादिक वस्तुका स्वभावकूं देखि अपना निर्विचिकित्सित अंग सम्यग्दृष्टिके होय ही है ।

बहुरि खोटे शास्त्रनितैं तथा व्यन्तरादिक देवनिकृत विक्रियातैं तथा मणि मन्त्र औषधादिकनिके प्रभावतैं अनेक वस्तुनिके विपरीत स्वभाव देखि सत्यार्थ धर्मतैं चलायमान नाहीं होनां सो सम्यग्दर्शनका अमूढदृष्टि गुण है तो सम्यग्दृष्टिके होय ही है ।

बहुरि सम्यग्दृष्टि अन्य जीवनिके अज्ञानतैं अशक्ततातैं लगे हुए दोष देखि आच्छादन करै हैं जो संसारी जीव ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय कर्मके वशि होय अपना स्वभाव भूल रहै हैं कर्मके आधीन असत्य परधनहरण कुशीलादि पापनि में प्रवृत्ति करै हैं जे पापनितैं दूर वर्तैं हैं ते धन्य हैं । बहुरि कोऊ धर्मात्मा पुरुष (नामी पुरुष) पापके उदयतैं चूकि जाय ताकूं देखि ऐसा विचारै जो यो दोष प्रगट होसी तो अन्य धर्मात्मा अर जिनधर्मकी बडी निन्दा होसी या जानि दोष आच्छादन करै, अर अपना गुण होय ताकी प्रशंसा का इच्छुक नाहीं होय हैं सो यो उपगूहनगुण सम्यक्त्वको है इन गुणनितैं पवित्र उज्ज्वल दर्शनविशुद्धिता नाम भावना होय है ।

बहुरि जो धर्मसहित पुरुषका परिणाम कदाचित् रोगकी वेदनाकरि धर्मतैं चलि जाय तथा दारिद्र करि चलि जाय तथा उपसर्ग परीषहनिकरि चलि जाय तथा असहायताकरि तथा अहारपानका निरोधकरि परिणाम धर्मतैं शिथिल हो जाय ताकूं उपदेशकरि धर्ममें स्थम्भन करै । भो ज्ञानी भो धर्मके धारक ! तुम सचेत होहू कैसे कायरता धारणकरि धर्ममें शिथिल भये हो, जो रोगकी वेदनातैं धर्मतैं चिगो हो कैसैं भूलो हो यो असातावेदनीकर्म अपना

अवसर पाय उदयमें आय गया है अब जो कायर होय दीनताकरि रुदनविलापादि करते भोगोगे तो कर्म नाहीं छांडेगा कर्मके दया नाहीं होय है और धीरपनातै भोगोगे तो कर्म नाहीं छांडेगा कोऊ देवदानव मन्त्रतन्त्र औषधादिक तथा स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधव सेवक सुभटादिक उदयमें आया कर्म हरनेकूं समर्थ है नाहीं, यो तुम अच्छीतरह समझो हो । अब इस वेदनामें कायर होय अपना धर्म अर यश अर परलोक इनकूं कैसैं बिगाडो हो अर इनकूं बिगाडि स्वच्छंद चेष्टा विलापादि करनैतैं वेदना नाहीं घटै है ज्यों ज्यों कायर होवोगे त्यों त्यों वेदना दुःख बढैगा । तातैं अब साहस धारण करि परमधर्मका शरण ग्रहण करो । संसारमें नरकके तथा तिर्यंचनिके क्षुधा तृषा रोग सन्ताप ताडन मारन शीत उष्णादिक घोर दुःखं असंख्यातकाल पर्यन्त अनेक वार अनन्तभव धारण करि भोगे ये तुम्हारे कहा दुःख है अल्प कालमें निर्जरैगा, अर रोग वेदना देहकूं मारैगा तुम्हारा चेतनस्वरूप आत्मा कूं नाहीं मारैगा अर देहका मारना अवश्य होयगा जो देह धारण किया ताकै अवश्यंभावी मरण है सो अव सचेत होहू यो कर्मका जीतवाको अवसर हैं अब भगवान् पंच परमेष्ठीका शरण ग्रहणकरि अपना अजर अमर अखंड ज्ञाता दृष्टा स्वरूपका ग्रहण करो ऐसा अवसर फेरि मिलना दुर्लभ है इत्यादिक धर्मका उपदेश देय धर्ममें दृढ करना अर अनित्य अशरणादि भावनाका ग्रहण शीघ्र करावना, त्याग व्रतादिक छांडि दिये होंय तो फिर ग्रहण करावना तथा शरीरका मर्दनादिक करि दुःख दूरि करना अर कोऊ टहल करनेवाला नाहीं होय तो आप टहल करना अन्य साधर्मीनिका मेल मिला देना आहार पान औषधादिकर स्थितिकरण करना तथा मलमूत्र कफादिक होय तो धोवना पूंछना इत्यादि करि स्थिर करना, दारिद्रकरि चलायमान होय तिनका भोजनपानादिककरि आजीविकादिक लगाय देने करि, उपसर्ग परीषहादिक दूर करनेकरि सत्यार्थधर्ममें स्थापन करना सो स्थितिकरण अंग सम्यग्दृष्टिके होय है ।

बहुरि वात्सल्यनामगुण सम्यग्दृष्टिके होय है संसारी जीवनिकी प्रीति तो अपने स्त्रीपुत्रादिकनिमें तथा इन्द्रियनिके विषयभोगनिमें धनके उपार्जनमें बहुत रहै है जाकै स्त्री पुत्र धन परिग्रह विषयादिकनिकूं संसारपरिभ्रमणके कारण जानि अतरंगमें विरागता धारण करि जाकी धर्मात्मामें रत्नत्रयके धारक मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकामें वा धर्मके आयतननिमें अत्यन्त प्रीती होय ताके सम्यग्दर्शनका वात्सल्यअंग होय है।

बहुरि जो अपने मनकरि वचनकरि कायकरि धनकरि दानकरि व्रतकरि तपकरि भक्तिकरि रत्नत्रयका भाव प्रगट करै सो मार्ग-प्रभावना अंग है। याका विशेष प्रभावना अंगकी भावनामें वर्णन करियेगा। ऐसैं सम्यग्दर्शनके अष्टअंग धारण करनेतैं इन गुणनिका प्रतिपक्षी शंका-कांक्षादिक दोषनिका अभावकरि दर्शनविशुद्धता होय है। बहुरि लोकमूढता, देवमूढता गुरुमूढताका परिणामनिकूं छांडि श्रद्धानकूं उज्ज्वल करना ।

अब लोकमूढता स्वरूप ऐसा है जो मृतकनिका हाड नखादिक गंगामें पहुँचानेमें मुक्ति भई मानै है तथा गंगाजलकूं उत्तम मानना तथा गंगास्नानमें अन्य नदीके स्नानमें नदीकी लहर लेनेमें धर्म मानना तथा मृतक भर्ताके साथ जीवती स्त्री तथा दासी अग्निमें दग्ध होजाय ताकूं सती मानि पूजना, मञ्याकूं पितर मानि पूजना, पितरनिकूं पातडीमें स्थापन करि पहरना तथा सूर्यचन्द्र मंगलादिक ग्रहनिकूं सुवर्ण रूपाका बनाय गलेमें पहरना तथा ग्रहनिका दोप दूरि करनेकूं दान देना संक्रांति व्यतिपात सोमोती अमावसी मानि दान करना सूर्य-चन्द्रमाका ग्रहण का निमित्ततैं स्नान करना, डाभकूं शुद्ध मानना, हस्तीके दंतनिकूं शुद्ध मानना कूवा पूजना सूर्यचन्द्रमाकूं अर्घ देना देहली पूजना मूशलकूं पूजना, छींककू पूजना, विनायक नामकरि गणेश पूजना तथा दीपककी ज्योतिकूं पूजना तथा देवताकी बोलारी बोलना जडूला चोटीं रखना देवताकी भेटके करारतैं अपना सन्तानादिककूं जीवित मानना सन्तानकूं देवता का दिया मानना तथा अपने लाभ वास्ते तथा कार्यसिद्धि वास्तै ऐसी वीनती करै जो मेरे एता लाभ होजाय तथा सन्तानका राग मिटि जाय तथा सन्तान होजाय वा वैरी का नाश होजाय तो मैं आपके छत्र चढाऊँ इतना धन भेट करूं ऐसा करार करै है देवताकूं सौंक (रिश्वत) देय कार्यकी सिद्धि के वास्ते वांछै है। तथा रातजगा करना कुलदेवकूं पूजना शीतलाकूं पूजना, लक्ष्मीकूं पूजना, सोना रूपाकूं पूजना पशुनिकूं पूजना अन्नकूं जलकूं पूजना, शस्त्रकूं वृक्षकूं पूजना, अग्नि देव मानि पूजना सो लोकमूढता मिथ्यादर्शनका प्रभावतैं श्रद्धानके विपरीतपना है सो त्यागने योग्य है।

बहुरि देव-कुदेवका विचाररहित होय कामी क्रोधी शास्त्रधारीहूमें ईश्वरपना की बुद्धि करना जो यह भगवान् परमेश्वर हैं समस्त रचना याकी है ये ही कर्त्ता हैं हर्त्ता हैं जो कुछ होय है सो ईश्वरको किया होय है, समस्त आछी बुरी लोकनिसूं ईश्वर करावै है ईश्वरका किया विना कछू ही नाहीं होय है, सब ईश्वर की इच्छाके आधीन है शुभकर्म ईश्वर की प्रेरणा विना नाहीं होय है इत्यादिक परिणाम मिथ्यादर्शनके उदयरि होय सो देवमूढता है।

बहुरि पाखण्डी हीन-आचारके धारक तथा परिग्रही, लोभी विषयनिका लोलुपीनिकू करामती मानना, वाका वचन सिद्ध मानना तथा ये प्रसन्न होजाय तो हमारा वांछित सिद्ध हो जाय ये तपस्वी हैं, पूज्य है, महापुरुष हैं, पुराण हैं इत्यादिक विपरीत श्रद्धान करै सो गुरुमूढता है तातैं जिनके परिणामनितैं इन तीनमूढताका लेशमात्र हू नाहीं होय ताकै दर्शनका विशुद्धना होय है। बहुरि छह अनायतनका त्याग करि दर्शनविशुद्धता होय है कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर इनके सेवन करने वाले ये धर्म क आयतन कहिये स्थान नाहीं तातैं ये अनायतन हैं ।

भावार्थ—जो रागी द्वेपी कामी क्रोधी लोभी शस्त्रादिक सहित मिथ्यात्वकरि सहित हैं तिनमें सम्यक् धर्म

नाहीं पाईये तातैं कुदेव हैं ते अनायतन हैं। बहुरि पंचइन्द्रियनिके विषयनिके लोलुपी परिग्रहके धारी आरंभ करनेवाले ऐसे भेषधारी ते गुरु नाहीं, धर्महीन हैं तातैं अनायतन हैं। बहुरि हिंसाके आरंभकी प्रेरणा करनेवाला रागद्वेषकामादिक दोषनिका बधावनेवाला सर्वथा एकान्तका प्ररूपक शास्त्र हैं ते कुशास्त्र धर्मरहित हैं तातैं अनायतन हैं बहुरि देवी दिहाडी क्षेत्रपालादिक देवकूं वंदने वाले अनायतन हैं। बहुरि कुगुरुनिके सेवक हैं भक्तितैं धर्मतैं रहित हैं ते अनायतन हैं बहुरि मिथ्याशास्त्रके पढनेवाले अर इनकी सेवाभक्ति करनेवाले एकांती धर्मका स्थान नाहीं तातैं अनायतन हैं ऐसे कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर इनकी सेवा भक्ति करनेवाले इन छहूनिमें सम्यक्धर्म नाहीं है ऐसा दृढ श्रद्धानकरि दर्शनविशुद्धता होय है।

बहुरि जातिमद कुलमद ऐश्वर्यमद शासनका मद तपका मद बलका मद विज्ञान मद इन अष्ट मदनिका जाकै अत्यन्त अभाव होय है सम्यग्दृष्टि के सांचा विचार ऐसा है हे आत्मन्! या उच्च जाति है सो तुम्हारा स्वभाव नाहीं यह तो कर्मका परिणमन है, परकृत है विनाशीक है, कर्मनिके आधीन है। संसारमें अनेक वार अनेक जाति पाई हैं माताकी पक्षकूं जाति कहिये है जीव अनेक वार चांडालीके तथा भीलनीके तथा म्लेछणीके चमारीके धोबीनिके नायणिके डूमणिके नटनीके वेश्याके दासीके कलालीके धीवरी इत्यादि मनुष्यनिके गर्भमें उपज्या है तथा सूकरी कूकरी गर्दभी स्यालणी कागली इत्यादिक तिर्यंचनिके गर्भमें अनंतवार उपजि उपजि मर्‍या है अनन्तवार नीचजाति पावै तब एकवार उच्चजाति पावै ऐसे उच्च जाति भी अनंतबार प्राप्त भया संसारमें जातिका, कुलका मद कैसें करिये है स्वर्गका महर्द्धिकदेव मरिकरि एकेन्द्रिय आय उपजै है तथा श्वानादिक निंद्य तिर्यचनिमें उपजै है तथा उत्तम कुलका धारक होय सो चांडालमें जाय उपजै तातैं जातिकुलमें अहंकार करना मिथ्यादर्शन है। हे आत्मन् तुम्हारा जातिकुल तो सिद्धनिके समान है तुम आपा भूलि माताका रुधिर पिताका वीर्यतैं उपजे जातिकुलमें मिथ्या आपा धरि फेर हू अनन्तकाल निगोदवास मति करो। वीतरागका उपदेश ग्रहण किया है तो इस देहकी जातिकूं हू संयम शील दया सत्यवचनादिकरि सफल करो जो मैं उत्तम जातिकुल पाय नीचकर्मोंनिकैसे हिंसा असत्य परधनहरण कुशीलसेवन अभक्ष्य भक्षणादि अयोग्य आचरण कैसे करूं? नाहीं करूं ऐसा अहंकार करना योग्य है सम्यग्दृष्टिके कर्मकृत पुद्गलपर्यायमें कदाचित् आत्मबुद्धि नाहीं होय है। बहुरि ऐश्वर्य पाय ताका मद कैसे करिये यो ऐश्वर्य तौ आपा भुलाय बहु आरभं रागद्वेषादिकमें प्रवृत्ति कराय चतुर्गतिमें परिभ्रमणका कारण है निर्ग्रंथपना तीनलोकमें ध्यावने योग्य है पूज्य है। अर यो ऐश्वर्य क्षणभँगुर है बडे बडे इंद्र अहमिंद्रनिका पतनसहित है बलभद्र नारायणनिका

ऐश्वर्य क्षणमात्रमें नष्ट हो गया अन्य जीवनिंका ऐश्वर्य केताक है ऐसैं जानि ऐश्वर्य दोय दिन पाया है तो दुःखित जीवनिका उपकार करो, विनयवान होय दान देहु. परमात्मस्वरुप अपना ऐश्वर्य जानि इस कर्मकृत ऐश्वर्यमें विरक्त होना योग्य है । बहुरि रूपका मद मति करो यो विनाशीक पुद्गलको रूप आत्माका स्वरूप नाहीं विनाशीक है क्षण-क्षणमें नष्ट होय है इस रूपकूं रोग वियोग दरिद्र जरा महाकुरूप करैगा ऐसा हाडचामका रूपम रागी होय मद करना बडा अनर्थ है इस आत्माका रूप तो केवलज्ञान है जिसमें लोक अलोक सर्व प्रतिबिंबित होय हैं तातैं चामडाका रूप में आपा छांडि अपना अविनाशी ज्ञानस्वरूपमें आपा धारहू । बहुरि श्रुतका गर्वकूं छांडहू आत्मज्ञान-रहितका श्रुत निष्फल है, जातैं एकादशअंगका ज्ञान सहित होय करके हूं अभव्य संसारहीमें परिभ्रमण करै है सम्यग्दर्शन विना अनेक व्याकरण छंद अलंकार काव्य कोषादिक पढना विपरीत धर्ममें अभिमान लोभमें प्रवर्तन कराय संसाररूप अंधकूपमें डुबोवने के अर्थि जानहू । और इस इंद्रियजनित ज्ञान का कहा गर्व है एकक्षणमें वातपित्तकफा-दिकके घटने बधनेतैं चलायमान हो जाय है अर इंद्रियजनित ज्ञान तो इंद्रियनिका विनाशकी साथ हो विनशैगा अर मिथ्याज्ञान तो ज्यों बंधैगा त्यों खोटे काव्य, खोटी टीकादिकनिकी रचनामें प्रवर्तन कराय अनेक जीवनिकूं दुराचारमें प्रर्वतन कराय डबोय देगा तातैं श्रुतका मद छांडहू, ज्ञान पाय आत्मविशुद्धता करहू, ज्ञान पाय अज्ञानीकैंसे आचरणकरि संसारमें भ्रमण करना योग्य नाहीं । बहुरि सम्यक्त्व विना मिथ्यादृष्टि का तप निष्फल है तपको मद करो हो जो मैं बडा तपस्वी हूँ सो मद के प्रभावतैं बुद्धि नष्टकरिकैं यो तप दुर्गतिमें परिभ्रमण करावेगा तातैं तपका गर्व करना महा अनर्थ जानि भव्यनिकूं तपका गर्व करना योग्य नाहीं है । बहुरि जिस बलकरि कर्मरूप वैरीकूं जीतिये कथा काम क्रोध लोभकूं जीतिये सो बल तो प्रशंसायोग्य है और देहका बल यौवनका बल ऐश्वर्यका बल पाय अन्य निर्बल अनाथ जीवनिकूं मारि लेना, धन खोसि लेना, जमी जीविका खोसि लेना, कुशील सेवन करना, दुराचारमें प्रर्वतन करावना सो बल तो नरकके घोर दुःख असंख्यातकाल भोगाय तिर्यंचगतिमें मारण ताडन लादन करि तथा दुर्वचन तथा क्षुधा तृषादिकनिके दुःख अनेक पर्यायनिमें भुगताय एकेन्द्रियनिमें समस्तबलरहित असमर्थ करैगा । तातैं बलका मद छांडि क्षमा ग्रहण करि उत्तमतपमें प्रवर्तन करना योग्य है ।

बहुरि जे विज्ञान कहिये अनेक हस्तकला अनेक वचनकला अनेक मनके विकल्प जिनकरि यो आत्मा चतुर्गतिरूप संसारम परिभ्रमणकरि दुःख भोगै है ते समस्त कुज्ञान है । इस संसारमें खोटीकला चतुरताका बडा गर्व है जो हमारा सामर्थ्य ऐसा है तो सांचेकूं झूठ कर देवै, झूठेकूं साचा कर देवैं, कलंकरहितकूं कलंकसहित करि देवैं, शीलवन्तकूं दूषित करि देवैं, अदण्डनिकूं दण्ड देने योग्य करि देवैं बहुत दिननिका संचय किया द्रव्यकूं कढा लेवैं तथा धर्म छुडाय अन्यथा श्रद्धान कराय देव तथा प्राणीनिके वशीकरण तथा अनेक जीवनिका मारण तथा अनेक जलमें गमन करनेके, स्थलमें गमन करनेके, आकाशमें

गमन करनेके, अनेक यन्त्र बनाय देवै इत्यादिक कलाचातुर्य हैं ते सब कुज्ञान हैं याका गर्व नरकके घोर दुःखका कारण है। कलाचातुर्य सम्यक् तो सो है जातैं अपना आत्माकूं विषयकषायके उलझावतै सुलझावना तथा लोकनिकूं हिंसारहित सत्यमार्गमें प्रवर्तावना है ऐसे सत्यार्थवस्तुका स्वरूप समझि जाति, कुल, धन, ऐश्वर्य, रूप, विज्ञानादिककूं कर्मके आधीन जानि इनका मद छांडि दर्शनविशुद्धता करो। ऐसे तीन मूढता अर आठ शङ्कादिकदोष अर षट अनायतन अर अष्ट मद ऐसे पच्चीस दोषका परिहार करि सम्यग्दर्शनकी उज्ज्वलता होय है ऐसे जानि दर्शनविशुद्धि भावना ही निरन्तर चिंतवन करैं अर याहीकूं ध्यानगोचर करि स्तुति सहित सहित उज्ज्वल अर्घ उतारण करै सो मुक्तिस्त्रीसूं संबन्ध करै है। ऐसे दर्शनविशुद्धता नाम प्रथम भावना वर्णन. करी ॥ १ ॥

अब आगैं विनयसंपन्नता नाम दूजी भावना कहिये हैं–सो विनय पंच प्रकार कह्या है दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपविनय, उपचारविनय। तहां जो अपने श्रद्धानके शङ्कादिक दोष नाहीं लगावना तथा सम्यग्दर्शनकी विशुद्धताकरि ही अपना जन्म सफल मानना सम्यग्दर्शनके धारकनिमें प्रीति धारना, आतमा अर परका भेदविज्ञानका अनुभव करना सो दर्शनविनय है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अराधनमें उद्यम करना, सम्यग्ज्ञानकी कथनीमें आदर करना तथा सम्यग्ज्ञान के कारण जे अनेकांत रूप जिनसूत्र तिनके श्रवण पठनमें बहुत उत्साहरूप होना तथा वन्दना स्तवनपूर्वक बहुत आदरतै पढना सो ज्ञानविनय है तथा ज्ञानके आराधक ज्ञानीजनोंका तथा जिनागमके पुस्तकनिका संयोगका बडा लाभ मानना, सत्कार स्तवन आदरादिक करना सो ज्ञान विनय है। बहुरि अपनी शक्तिप्रमाण चारित्र धारणमें हर्ष करना, दिनदिन चारित्रकी उज्ज्वलता के अर्थि। विषयकषायनिकूं घटावना तथा चारित्रके धारकनिके गुणनिमें अनुराग स्तवन आदर करना सो चारित्र विनय है। बहुरि इच्छाकूं रोकि मिले हुए विषयनिमें संतोष धारणकरि ध्यानस्वाध्यायमें उद्यमी होय कामके जीतनेकू अर इन्द्रियनिके प्रवृत्तिमें रोकनेकूं अनशनादिक तपमें उद्यम करना सो तपविनय है। बहुरि इन च्यारि आराधनाका उपदेशकरि मोक्षमार्गमें प्रवर्तन करावनेवाले हैं तथा जिनके स्मरण करनेतैं परिणामनिका मल दूरि होय विशुद्धता प्रगट हो जाय ऐसे पंच परमेष्ठीके नामकी स्थापनाका विनय वंदना स्तवन करना सो उपचारविनय है। अन्य हूं उपचारविनयका बहुत भेद है अभिमानकूं छांडि अष्टमदका अत्यंत अभाव जाकै होय कठोरता छूटि कोमलता जाकै प्रगट होय ताकै नम्रपना प्रगट होय है ताकै सत्यार्थ ऐसा विचार है यो धन यौवन जीवन क्षणभंगुर है कर्मके अधीन है, कोऊ जीव हमतैं क्लेशित मत होहू, सकल सम्बन्ध वियोगसहित है, इहां केते काल रहूँगा समय–समय कालके सन्मुख अखंड गमन करूं हूं, कोऊ वस्तुका सम्बन्ध थिर नाहीं है इहां विनय धर्म ही भगवान् मनुष्य जन्मका सार कह्या है यो विनय संसाररूप वृक्षके दग्ध करनेकूं अग्नि है यो विनय है सो त्रैलोक्यवर्ती जीवनिके मनकी उज्ज्वलता करने वाला है अर विनय है सो समस्त जिनशासनको मूल है विनयरहितके जिनेन्द्रकी शिक्षा ग्रहण नाहीं होय है

विनयरहित जीव समस्त दोषनिका पात्र है विनय है सो मिथ्याश्रद्धानके छेदनेकूं सूल है विनयविना मनुष्यरूप चामडाको वृक्ष मानरूप अग्नि करि भस्म होय है अर मानकषाय करिके यहां ही घोर दुःख सहैं है अर परलोकमैं निंद्य जाति कुलरूप बुद्धिहीन बलहीन उपजै है जे अभिमानी यहां किंचित् वचनमात्र हू नाहीं सहैं हैं ते तिर्यंचगतिमें नासिकामें मूंजका जेवडाका बन्धन लादन मारण लात ठोकरांका घात चामडाका मरमस्थानमें घात पराधीन हुआ भोगै है तथा चांडालनिके मलीन घरमें बन्धनतैं बन्ध रहै हैं जिन ऊपरि मलादि निंद्य वस्तु लादिये हैं और इसलोकमें हू अभिमानीके समस्त लोक वैरी हो जाय हैं अभिमानीकूं समस्त निंदैं हैं महाअपयश प्रगट हो जाय है समस्त लोग अभिमानीका पतन चाहैं मानकषायतैं क्रोध प्रगट होय कपट विस्तारै अतिलोभ करै दुर्वचननिमें प्रवर्तन करै । लोकमें जेती अनीति है तितनी मानकषायतैं होय है, पर-धन-हरणादिक हू अपने अभिमान पुष्ट करनेकूं करै है, यातैं इस जीवका बडा वैरी मनकषाय हैं यातैं विनय गुणमें महान आदरकरि अपना दोऊ लोक उज्ज्वल करो सो विनय देवको शास्त्रको गुरुनिको मन वचन कायतैं प्रत्यक्ष करो अर परोक्ष हू करो । तहाँ देव जो भगवान अरहंत समवशरण विभूतिसहित गंधकुटीके मध्य सिंहासन ऊपरि अंतरीक्ष विराजमान चौसठ चमरनिकरि वीज्यमान छत्रत्रयादिक प्रतिहार्यनिकरि विभूषित कोटिसूर्यसमान उद्योतका धारक परमौदारिक देहमें तिष्ठता द्वादश सभाकरि सेविन दिव्यध्वनिकरि अनेक जीवनिका उपकार करनेवाले अरहंतको चिंतवनकरि ध्यान करना सो मनकरि परोक्षविनय है । याका विनयपूर्वक स्तवन करना सो वचनकरि परोक्षविनय है । अंजुली जोडि मस्तक चढाय नमस्कार करना सो कायकरि परोक्षविनय है । बहुरि जो जिनेन्द्रकी प्रतिबिंबकी परमशांत मुद्राकूं प्रत्यक्ष नेत्रनितैं अवलोकनिकरि महाआनन्दतै मनमें ध्यायकरि आपकूं कृतकृत्य मानना सो मनकरि प्रत्यक्षविनय है । जिनेन्द्रका प्रतिबिंबके सन्मुख होय स्तवन करना सो प्रत्यक्ष वचनविनय है। अंजली मस्तक चढाय वन्दना करना तथा भूमिमें अंजलीसहित मस्तक गोडानिका स्पर्शनकरि नमस्कार करना सो कायकरि प्रत्यक्षविनय है। तथा सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा जिनेन्द्रका नामका स्मरण, ध्यान, वन्दना स्तवन करना सो समस्त परोक्षविनय है। ऐसें देवका विनय समस्त अशुभकर्मनिका नाश करनेवाला कह्या है ।

बहुरि जो निर्ग्रंथ वीतरागी मुनीश्वरनिकूं प्रत्यक्ष देखि खडा होना, आनन्दसहित सन्मुख जाना, स्तवन करना, वन्दना करना, गुरुनिकूं आगैंकरि पाछैं चलना कदाचित् बराबर चलना होय तो गुरुनिके वाम तरफ चलना गुरुनिकूं अपने दक्षिणभागमें करिकै चालना बैठना, गुरुनिकूं विद्यमान् होते आप उपदेश नाहीं करना, कोऊ प्रश्न करै तो गुरुनिके होते आप उत्तर नाहीं देना, अर गुरुनिकी इच्छा होय तो गुरुनिकी इच्छाके अनुकूल उत्तर देना, गुरुनिके होते उच्च आसन नाहीं बैठना अर गुरु व्याख्यान उपदेशादिक करै ताकूं अंजुली जोडी बहुत आदरतैं ग्रहण करना, गुरुनिका गुणनिमें अनुराग करि आज्ञाके अनुकूल प्रवर्तन करना अर गुरु दूर क्षेत्रमें होय तो बाकी जो आज्ञा होय

तैसैं वर्तन करना दूरहींतैं गुरुनिका ध्यान स्तवन नमस्कारादि विनय करना सो गुरुनिका विनय है ।

बहुरि शास्त्रका विनय करना बडा आदरतैं पठन श्रवण करना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकूं देखि व्याख्यानादि करना, शास्त्रका कह्या व्रत संयमादिक आपतें नाहीं बनि सकै तो आज्ञाका उल्लंघन नाहीं करना, सूत्रकी आज्ञा होय तिस प्रमाण ही कहना तथा जो सूत्रकी आज्ञा होय ताकूं एकाग्रचित्ततैं श्रवण करना, अन्य कथा नाहीं करना. आदरपूर्वक मौनतैं श्रवण करना अर जो संशय होय तो संशय दूर करनेकूं विनय पूर्वक अल्प अक्षरनिकरि जैसे सभाके अर लोकनिकै अर वक्ताकै क्षोभ नाहीं उपजै तैसैं विनयपूर्वक प्रश्न करना उत्तरकूं आदरतैं अंगीकार करना सो शास्त्रका विनय है तथा शास्त्रकूं उच्च आसनपर धरि नीचा बैठना प्रशंसा स्तवन करना इत्यादिक शास्त्रका विनय करना ऐसें देव, गुरु, शास्त्रका विनय है सो धर्मका मूल है ।

बहुरि जो रागद्वेषकरि आतमाका घात जैसे नाहीं होय तैसे प्रवर्तन करना सो आतमाका विनय है, जातैं ऐसा विचारैं हैं अब यो मेरो जीव चतुर्गतिमें मति परिभ्रमण करो, अब मेरा आतमा मिथ्यात्व कषाय अविनयादिककरि संसार परिभ्रमणके दुःख मति प्राप्त होहू ऐसे चिंतवन करता मिथ्यात्व कषाय अविनयादिककरि आतमाका ज्ञानादिक गुण घात नाहीं करना सो आतमाका विनय है। याहीकूं निश्चय विनय कहिये है यह तो परमार्थ विनय कह्या ।

अब यहां ऐसा विशेष जानना जाके मान कषाय घटि जाय ताहीके व्यवहारविनय है कोऊ जीवका मौतैं अपमान मति होहू जो अन्यका सन्मान करैगा सो आपहू सन्मानकूं प्राप्त होयगा जो अन्यका अपमान करैगा सो आपहु अपमानकूं प्राप्त होय है जो समस्तकूं मिष्टवचन बोलना सो विनय है किसी जीवकूं तिरस्कार नाहीं करना सोहूं विनय ही है। अपने घर आया ताका यथायोग्य सत्कार करना किसीकूं सन्मुख जाय ल्यावना किसीकू उठि खडा होना एक हस्तकूं माथै चढवाना किसीकूं आइए २ इत्यादिक तीन वार कही अङ्गीकार करना कोऊकूं आदर करि नजीक बैठावना किसीकूं आसनदान देना किसीको आवो वैठो, किसीके शरीरकी कुशलता पूछना तथा हम आपके हैं हमकूं आज्ञा करिये, भोजनपान करिये, यह आपहीका गृह है, ये गृह आपके आवनेतैं उच्च भया है, आपकी कृपा हमारे पर सनातनतैं है ऐसे व्यवहार विनय हैं । तथा कोऊकूं हस्त उठाय माथैं चढावना एता ही विनय हैं और हू दान सन्मान कुशल पूछना रोगी दुःखीका वैयावृत्य करना सो भी विनयवान ही के होय हैं । दुःखित

मनुष्य तिर्यंचनिकूं विश्वास देना, दुःख श्रवण करना अपना सामर्थ्य प्रमाण उपकार करना नाहीं बननेका होय तो धीरता संतोषादिकका उपदेश देना ऐसे व्यवहारविनय हैं। सो परमार्थविनयका कारण हैं, यशकूं उपजावै हैं धर्मकी प्रभावना करै है। मिथ्यादृष्टिका हू अपमान नाहीं करना मिष्टवचन बोलना यथायोग्य आदर सत्कार करना योही विनय है। महापापी द्रोही दुराचारीकूं हू कुवचन नाहीं कहना, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियादिक तथा सर्पादिक दुष्ट जीव तिनकी विराधना नाहीं करना याकी रक्षा करि प्रवर्तना सोही ज्ञानका विनय है अन्यधर्मीनिका मंदिर प्रतिमादिकतै वैर करि निंदा नाहीं करना ऐसा परमार्थ व्यवहार दोऊ प्रकारके विनयको धारणकरि गृहस्थकूं प्रवर्तन करना योग्य हैं। देखो सकलसंगका परित्यागी वीतरागी मुनीश्वरहूकूं कोऊ मिथ्यादृष्टि बन्दना करै हैं ताकूं आशीर्वाद देवैं हैं चांडाल भील धीवरादिक अधमजाति हू बन्दना करैं ताकूं पापक्षयोस्तु इत्यादिक आशीर्वाद दे हैं तातैं विनयअंग धारण करो हो तो बाल अज्ञान धर्मरहितका तथा नीच अधम जाति होय ताका हू विनय नाहीं करो तो हू तिरस्कार निंदा कदाचित् करना उचित नाहीं हैं इस मनुष्यजन्मका मण्डन विनय ही हैं विनय विना मनुष्यजन्मकी एक घडी भी हमारे मति जावो ऐसे भगवान् गणधरदेव कहैं हैं ऐसा विनयगुणकी महिमा जानि याका महान अर्घ उतारण करो। हे विनयसंपन्नता अंग हमारे हृदय में तू ही निरन्तर वास करि, तेरे प्रसादतैं अब मेरा आतमा कदाचित् अष्टमदनिकरि अभिमानकूं मति प्राप्त होहू ऐसे विनयसंपन्नता नाम अङ्गकी दूजी भावना वर्णन करी॥ २॥

अब तीसरी शीलव्रतेष्वनतीचार भावना कह हैं—शीलव्रतेष्वनतीचारका ऐसा अर्थ राजवार्तिकमें कह्या है—अहिंसादिक पंचव्रत अर इन व्रतनिका पालनके अर्थि क्रोधादिकषायका वर्जनादिरूप शीलविषै जो मनवचनकायकी निर्दोष प्रवृत्ति सो शीलव्रतेष्वनतिचारभावना है शीलनाम आत्माका स्वभावका है आत्मस्वभाव का नाश करनेवाला हिंसादिक पांच पाप हैं तिनमैं कामसेवन नाम एकही पाप हिंसादिक समस्तपापनिकूं पुष्ट करै है अर क्रोधादिकषायनिकी तीव्रता करै है तातैं यहाँ जयमालामें ब्रम्हचर्यकी ही प्रधानताकरि वर्णन करिये है जो शील दुर्गतिके दुःखका हरनेवाला है स्वर्गादिक शुभगतिका कारण है तपव्रतसंयमका जीवन है शीलविना तप करना, व्रत धरना, संयम पालना, मृतकका अङ्ग समान देखने मात्र है कार्यकारी नाहीं तैसैं शीलरहित तपव्रतसंयम धर्मकी निंदा करावनेवाला है ऐसा जानि शील नाम धर्मका अङ्गकूं पालन करहू अर चंचल मनरूप पक्षीकूं दमो, अतिचाररहित शुद्धशीलकूं पुष्ट करो, धर्मरूपवनके विध्वंस करनेवाला मनरूप मदोन्मत्त हस्तीकूं रोको चलायमान हुआ मनरूप हस्ती महान् अनर्थ करै है हस्ती मदवान होय तदि ठाणमेंतैं निकलि भागै है अर मनरूपहस्ती कामकरि उन्मत्त होय तब समभावरूपी ठाणतैं निकलि भागै हैं तथा कुलकी मर्यादा सन्तोषादि छांडि निकसै है मदोन्मत्त हस्ती तो सांकल तोडि विचरै है, हस्ती तो मार्गमें चलावनेवाला महावतकूं नाखै है अर कामीका मन सम्यग्धर्मके मार्गमें प्रवर्तावनेवाला

ज्ञानकूं छांडै है। हस्ती तो अंकुशकूं नाहीं मानै है अर मनरूप हस्ती गुरुनिके शिक्षाकारी वचनकूं नाहीं मानै है। हस्ती तो महाफल अर छायाका देवेवाला वृक्षकूं उखाडि पटकै है अर कामकरि व्याप्त मन ह सो स्वर्गमोक्षरूप फलका देनेवाला अर यशरूप सुगंधकूं विस्तारता सकल विषयांकी आतापकूं हरनेवाला ब्रह्मचर्यरूप वृक्षकूं उखाडि डालै है हस्ती तो मल कर्दमादिक दूर करनेवाला सरोवरमें स्नानकरि मस्तक ऊपरि धूल नाखता धूलिरजसूं क्रीडा करै है अर कामकरि व्याप्त मन सिद्धांतरूप सरोवरमें अवगाहनकरि अनेक अज्ञानरूप मैलकूं धोय करके हू पापरूप धूलितैं क्रीडा करै है। हस्ती तो कर्णनिकी चपलताकूं धारण करै है अर कामसंयुक्त मन पांचूं इन्द्रियनिका विषयनिमें चंचलता धारण करै है हस्ती तो हास्तिनीमें रति करै हैं कामसंयुक्त मन कुबुद्धिरूप हास्तिनीमें रचे है, हस्ती हू स्वच्छंद डोलै मन हू स्वच्छंद डोलै, हस्ती तो मदकरिकै मत्त है कामीका मन रूपादिक अष्टमदकरि मत्त है हस्तीके नजीक तो कोऊ पथिक नाहीं आवै दूर भागि जाय अर कामकरि उन्मत्तके नजीक कोऊ एक हू गुण नाहीं रहै है यातैं इस कामकरि उन्मत्त मनरूप हस्तीकूं वैराग्यरूप स्तंम्भकैं बांधो, यो खुल्यो हुवो महा अनर्थ करैगा। यो काम अनंग है याकै अङ्ग नाहीं है यो तो मनसिज है मनहीमें याका जन्म है ज्ञानकूं मथन करनेवाला है याहीतैं याकूं मनमथ कहिये है। संवरको अरि कहिये वैरी है यातैं संवरारि कहिये है कामतैं खोटा दर्प जो गर्व सो उपजै है यातैं याकूं कंदर्प कहिये हैं। याकरि अनेक मनुष्य तिर्यंच परस्पर विरोधकरि मरि जाय हैं यातैं याकूं मार कहिये है याहीतैं मनुष्यनिमें अन्य इंद्रियनिके भोग तो प्रगट है अर कामके अंगहू ढके हुए हैं कामके अङ्गका नामहू उत्तमपुरुष हैं ते नाहीं उच्चारण करै हैं। यो समान अन्य पाप नाहीं है धर्मतैं भ्रष्ट करनेवाला काम है यो काम हरिहरब्रह्मादिकनिकूं भ्रष्टकरि आपके आधीन किये है, याहीतैं समस्त जगतकूं जीतनेवाला एक काम है याका विजय करनेवाला मोहकूं सहज ही जीतै है, याहीतैं कामके परिरहारके अर्थि मनुष्यनी तथा देवांगना तथा तिर्यंचनी इनका संसर्ग संगति कामविकारके उपजावनेवाली दूरहीतैं परिहार करो।

स्त्रीनिमें मनवचनकायकरि रागका त्याग करो आप कुशीलके मार्गमें नाहीं चलना अन्यकूं कुशीलके मार्गका उपदेश मति करो अन्य कोऊ कुशीलके मार्गमें प्रवर्तन करे, तिनकी अनुमोदना भव्य जीव नाहीं करै है बालिका स्त्रीकूं देखि पुत्रीवत् निर्विकार बुद्धि करो अर यौवनरूप करींद्र ऊपरि चढी, लावण्य जो सौन्दर्यरूप जलमैं जाका सब अंग डूबि रह्या ऐसी रूपवती स्त्रीमें बहिणवत् निर्विकार बुद्धि करहू अर वाकूं सन्मान दान मति करो। वचन-करि आलाप मति करो शीलवान् हैं तिनकी दृष्टि स्त्रीनिमें प्राप्ति होती ही मुद्रित हो जाय है स्त्रीनिमें वचनालाप करैगा स्त्रीके अंगनिका अवलोकन करैगा ताके शीलका भंग अवश्य होयगा। तातैं जो गृहस्थ है ताकैं तो एक अपनी स्त्रीविना अन्य स्त्रीनिकी संगति तथा अवलोकन वचनालापकरि परिहार अर अन्य स्त्रीनि की कथाका स्वप्नहूमें विचार नाहीं रहै है अर एकांतमें माता बहनपुत्रीकी सङ्गति हू नाहीं करै है, मुनीश्वर तो समस्त स्त्रीमात्रका सम्बन्ध

नाहीं करैं हैं, स्त्रीनिमें उपदेश नाहीं करैं हैं जातैं स्त्रीका नाम ही प्रगट दोषनिकूं कहैं हैं। स्त्री समान इस जीवकूं नष्ट करनेवाला अन्य कोऊ अरि कहिये वैरी नाहीं तातैं उत्तम पुरुष याकूं नारी कहै हैं, दोषनिकूं प्रत्यक्ष देखते– देखते आच्छादन करै तातैं याका नाम स्त्री हैं, यांका देखनेकरि पुरुषको पतन हो जाय तातैं याका नाम पत्नी हैं, कुमरण करनेका कारण हैं तातैं याका नाम कुमारी हैं, याकी सङ्गतिकरि पौरुषबुद्धि-बलादिक नष्ट होजाय यातैं याका नाम अबला हैं। संसारके बन्धका कारण हैं यातैं याका नाम वधू हैं। कुटिलता मायाचारका स्वभाव धारै हैं यातैं याका नाम वामा हैं याका नेत्रनिमें कुटलता बसै है यातैं याका नाम वामलोचना है। शीलवंतकूं इंद्र नमस्कार करैं हैं, शीलवान पुरुष रत्नत्रयरूप धन लेय कामादिक लुटेरानिका भयरहित निर्वाणपुरी प्रति गमन करैं हैं शीलकरि भूषित रूपरहित होय तथा मलीन होय रोगादिककरि व्याप्त होजाय तो हू अपना संसर्गकरि समस्त सभानिवासीनिकूं मोहित करै है सुखित करै हैं। अर शीलरहित व्यभिचारी रूपकरि कामदेव समान हैं तो हू लोकनिमें थुथकार करिये हैं जातैं याका नाम ही कुशील है। शील नाम स्वभावका हैं कामी मनुष्यका शील जो आत्माका स्वभाव सो खोटा हो जाय हैं यातैं याकूं कुशील कहिये हैं। बहुरि कामी मनुष्य धर्मतैं आत्माका स्वभावतैं व्यवहारकी शुद्धतातैं चलि जाय हैं यातैं याकूं व्यभिचारी कहिये हैं या समान जगमें कुकर्म नाहीं तातैं कामकूं कुकर्म कहिये हैं। यातैं मनुष्य पशुके समान होजाय यातैं याकूं पशुकर्म कहिये हैं ब्रह्म जो आत्मा ताका ज्ञानदर्शनादिस्वभाव ताका घात यातैं होय हैं तातैं याकूं अब्रह्म कहिये हैं जातैं कुशीलीकी संगतितैं कुशीली होय जाय हैं जो शीलकी रक्षा करी सो ही क्षांति तप व्रत संयम समस्त पाल्या। बहुरि जो अपना स्वभावतैं नाहीं चलायमान होना ताकूं मुनीश्वर शील कहै हैं, शीलनामका गुण समस्त गुणनिमें बडा है, शीलकरिसहित पुरुषका तो थोरा हू व्रत तप प्रचुर फलकूं फलैं है अर शीलविना बहुत हू तप व्रत हैं सो निष्फल हैं। इस प्रकार जानि अपने आत्मामें शीलकी शुद्धताके अर्थि शीलहीकूं नित्य पूजहु। यो शीलव्रत मनुष्यजन्महीमें हैं अन्यगति में नाहीं हैं तातैं जन्म सफल किया चाहो हो तो शीलकी ही उज्ज्वलता करो ऐसैं शीलव्रतेष्वनतीचार नाम तीसरी भावना वर्णन करी ॥३॥

अब अभीक्ष्णज्ञानोपयोग नाम चौथी भावनाका वर्णन करै है। भो आत्मन्, यो मनुष्यजन्म पाय निरन्तर ज्ञानाभ्यास ही करो ज्ञानका अभ्यास विना एकक्षण हू व्यतीत मति करो ज्ञानके अभ्यासविना मनुष्य पशुसमान हैं यातैं योग्यकालमें जिनआगमको पाठ करो, अर समभाव होय तदि ध्यान करो अर शास्त्रानिके अर्थ का चिंतवन करो, अर बहुत ज्ञानी गुरुजन तिनमें नम्रता वन्दना विनयादिक करो अर धर्म श्रवण करने के इच्छुककूं धर्मका उपदेश करो याहीकूं अभीक्ष्णज्ञानोपयोग कहैं हैं। इस अभीक्ष्णज्ञानोपयोगनाम गुणका अष्टद्रव्यनितैं पूजन करके याका अर्घ उतारन करो और पुष्पनिकी अंजुलि अग्रभागविषै क्षेपण करो। इहां ज्ञानोपयोग है सो चैतन्यकी परिणति है

याहीतैं क्षणक्षणमें निरन्तर चैतन्यकी भावना करना । मेरे अनादिकालतैं काम, क्रोध, अभिमान, लोभादिक संग लगि रहे हैं । इनका संस्कार अनादितै मेरे चैतन्यरूपमें धुलि रहे हैं । अब ऐसी भावना होहु–जा भगवानके परमागमका सेवनका प्रभावतैं मेरा आत्मा रागद्वेषादिकतैं भिन्न अपना ज्ञायकस्वभावरूपहीमें ठहरि जाय, अर रागादिकनिके वशीभूत नाहीं होय सो ही मेरी आत्माका हित है । अथवा नवीन शिष्यनिके आगे श्रुतका अर्थ ऐसा प्रकाश करना जो संशयादिक रहित शिष्यनिका हृदयमें यथावत् स्वपर पदार्थका स्वरूप प्रगट हो जाय, पाप पुण्यका स्वरूप, लोक–अलोकका स्वरूप, मुनि–श्रावक का धर्मको सत्यार्थ निर्णय हो जाय । तैसैं ज्ञानाभ्यास करना । तथा अपने चित्तमें संसारभोगदेहतैं विरक्तता चिंतवन करना । संसार–देह भोगनिका यथार्थ स्वरूपका चिंतवन करनेतैं रागद्वेषमोह ज्ञानकूं विपरीत नाहीं करि सकै हैं ।

समस्त द्रव्यनिमें एक मिल्या हुआ हू आत्माका भिन्न अनुभव होय सो ही ज्ञानोपयोग है । ज्ञानभ्यास करके विपयनिकी वांछा नष्ट होय हैं, कषायनिका अभाव होय है । माया, मिथ्यात्व, निदान तीन शल्य ज्ञानके अभ्यास करि नष्ट होय हैं । ज्ञानके अभ्यासहीतैं मन स्थिर होय है । ज्ञानके अभ्यास करके ही अनेक प्रकारके विकल्प नष्ट होय हैं । ज्ञानाभ्यास करके धर्म ध्यानमें शुक्लध्यानमें अचल होय तिष्ठै है । ज्ञानाभ्यासतैं ही व्रत–संयमसे चलायमान नाहीं होय है । ज्ञानाभ्यास करके ही जिनेंद्रका शासन आज्ञा (प्रवर्तै) है । अशुभकर्मका नाश हू ज्ञानाभ्यास करके ही होय । प्रभावना हू जिन धर्मका ज्ञानके अभ्यास करके ही होय । ज्ञानका अभ्याससैं लोकनिका हृदयमेंतैं पूर्वसंचय किया ऐसा पाप ऋण नष्ट हो जाय है । अज्ञानी घोर तपकरि कोटि पूर्वमें जिस कर्मकूं खिपावै तिस कर्मकूं ज्ञानी अन्तर्मुहूर्तमें खिपावै है । जिनधर्मका स्थंभ ज्ञानका अभ्यास ही है । ज्ञानहीके प्रभावतैं समस्त विषयनिकी वांछारहित होय संतोप धारण करिये हैं । ज्ञानहीतैं उत्तमक्षमादि गुण प्रगट होय हैं । ज्ञानाभ्यासतैं ही भक्ष्य–अभक्ष्य, योग्य–अयोग्य त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्यका विचार होय है । ज्ञान विना परमार्थ अर व्यवहार दोऊ नष्ट हो जाय है । ज्ञानरहित राजपुत्रहू का निरादर होय है ।

ज्ञान समान कोऊ धन नाहीं है । ज्ञानका दान समान कोऊ दान नाहीं है । दुःखित जीवकूं सुखितकूं सदा ज्ञान ही शरण है । ज्ञान ही स्वदेशमें, अन्य देशमें आदर करावनेवाला परम धन है । ज्ञान धन है सो किसी करि चोऱ्या जाय नाहीं । किसीकूं दिये घटै नाहीं । ज्ञान ही सम्यग्दर्शन उपजावै है ज्ञानहीतैं मोक्ष होय है । सम्यग्ज्ञान

आत्माका अविनाशी स्वाधीन धन है। ज्ञानविना संसारसमुद्रमें डूबतेकूं हस्तावलंबन देय कौन रक्षा करे? विद्या विना आभूषणमात्रतैं ही सत्पुरुषनिके आदरने योग्य होय नाहीं है। निर्धनकै परमनिधान प्राप्त करानेवाला एक सम्यग्ज्ञान ही है। यातैं हे भव्यजीवो! भगवान् करुणानिधान वीतराग गुरु तुमकूं या शिक्षा करै हैं—अपनी आत्माकूं सम्यग्ज्ञानके अभ्यासहीमें लगावा अर मिथ्यादृष्टिनिकरि प्ररूप्या मिथ्याज्ञानका दूरहीतैं परिहार करो। सम्यक् मिथ्याकी परिक्षा करि ग्रहण करो। अपना संतानकूं पढावो। अन्यजननिकूं विद्याका अभ्यास करावो। जे धनवान होय अपने धनकूं सफल कर्‍या चाहो तो पढने पढानेवालेकूं आजीविकादिक देयकरि थिरता करावो। पुस्तक लिखाय देवो। विद्या पढनेवालेकूं देवो। पुस्तकनिकूं शुद्ध करो-करावो। पठन पाठनके अर्थि स्थान देवो। निरंतर पठन श्रवणमें ही मनुष्य जन्मका काल व्यतीत करो। यो अवसर व्यतीत होतो चल्या जाय है। जेते आयु काय इंद्रियां बुद्धि बन रही हैं तेते मनुष्य जन्मकी एक घडी हूं सम्यग्ज्ञानविना मति खोवो। ज्ञानरूप धन परलोकमें हू लार जायगा। इस अभीक्ष्णज्ञानोपयोगकी महिमा कोटि जिह्वानिकरि हू वर्णन नाहीं करी जाय है। याहीतैं ज्ञानोपयोगकी परमशरणके अर्थि गृहस्थ धनसहित होय सो भावना भाय अर अर्घ उतारण करैं। अर गृहकै त्यागी होय ते निरन्तर भावना भावो। ऐसैं अभीक्ष्णज्ञानोपयोग नाम चौथी भावना वर्णन करी ॥ ४ ॥

अब पंचमी संवेग भावनाका वर्णन करै हैं—जो संसार-देह-भोगनितैं विरक्तपना सो संवेग है। तथा धर्ममें अर धर्मका फलमें अनुराग सो संवेग है। अथवा संसार-देह-भोगनितैं विरक्त होय करि धर्ममें अनुराग करना सो संवेग है। संसारमें जिस पुत्रसूं राग करिये है सो जन्म लेते ही स्त्रीका यौवन सौंदर्यादिक बिगाडै अर जन्म हुए पाछैं बडी आकुलता करि बडा कष्ट करि धनका खरचकरि पुत्रकू वधाइये है। अर रोगादिकनिका बडा जाबता अर क्षण-क्षणमें वडी सावधानी महामोही महारागीतैं ग्लानिरहित होय बडा कष्ट सहिकरि बडा करिये है। बडा होय तदि आछा भोजन, आछा आभरण, आछा स्थानकूं, हठात् ग्रहण करे है। अर जो मूर्ख होय व्यसनी होय, तीव्रकषायी होय तो रात्रिदिन क्लेश हानेका परिमाण नाहीं कहनेमें आवै है। पुत्रके मोहतैं परिग्रहम बडी मूर्च्छा बधै है। अर समर्थ होजाय अर अपनी आज्ञामें मंद होय तो महा आर्तरूप हुआ मरणपयत क्लेश नाहीं छांडै है। अर जो पिताकूं अपना कार्य करनेवाला समझै जेते प्रीति करै है, असमर्थ होजाय तासूं राग नाहीं करै, धनरहितका निरादर करै है। यातैं पुत्रका स्वरूपकूं समझि राग त्यागी परमधर्मसूं राग करो। पुत्रके अर्थि अन्यायतैं धनादिपरिग्रहके ग्रहणका परित्याग करो। बहुरि स्त्री हू मोहनाम ठिगकी महापाशी है, ममता

उपाजानेवाली है, तृष्णाकूं बधावनेवाली है, स्त्रीमें तीव्रराग है सो धर्ममें प्रवृत्तिका नाश करै है, लोभकूं अत्यन्त बधावै है, परिग्रहम मूर्च्छा बधावै है, ध्यान स्वाध्यायमें विघ्न करै है, विषयनिमें अंध करनेवाली है, क्रोधादि च्यारो कषायनिकी तीव्रता करनेवाली है, संयमका घात करनेवाली है। कलहको मूल है, दुर्ध्यानको स्थान है, मरण बिगाडनेवाली है। इत्यादिक दोषनिका मूलकारण जानि स्त्रीके संगमें रागभाव छांडि वीतराग धर्मसूं अपना संबन्ध करो। बहुरि कलिकालके मित्र हू विषयनिमें उलझावनहारे समस्त व्यसननिमें सहकारी हैं। धनवान देखें हैं तिनतें अनेक प्रकार मित्रता करै हैं। निर्धनतैं कोऊ सभाषण हू नाहीं करै हैं। तातैं भो ज्ञानी जन हो! जो संसार-पतनको भय है। तो अन्य समस्ततैं मित्रता छांडि परधर्ममें अनुराग करो। अर संसार निरंतर जन्म-मरण रूप है। जन्मदिनतैं ही मरणके सन्मुख निरंतर प्रयाण करै है। अनंतानंतकाल जन्म मरण करते भया। तातैं पंच परिवर्तनरूप संसारतैं विरागता भावो।

अर ये पंचइन्द्रियनिके विषय हैं ते आत्माका स्वरूपकूं भुलावने वाले हैं, तृष्णाके बधावनेवाले हैं, अतृप्तिताके करनेवाले हैं। विषयनिकीसी आताप त्रैलोक्यमें अन्य नाहीं है। विषय हैं ते नरकादिकुगतिके कारण हैं। धर्मतैं पराङ्मुख करै हैं। कषायनिकूं बधावने वाले हैं। अपना कल्याण चाहैं तिनकूं दूरहीतैं त्यागनेयोग्य हैं। ज्ञानकूं विपरीत करनेवाले हैं। विषके समान मारनेवाले हैं अर अग्निसमान दाहके उपजानेवाले हैं। तातैं विषयनितैं राग छोडना ही परमकल्याण है। अर शरीर है सो रोगनिका स्थान है, महामलीन दुर्गंध सप्तधातुमय है, मलमूत्रादिककरि भऱ्या हैं, वातपित्तकफमय है, पवनके आधारतैं हलन चलनादिक करै है, सासता क्षुधातृषाकी वेदना उपजावै है, समस्त अशुचिताका पुंज है। दिन दिन जीर्ण होता चल्या जाय है, कोटिनि उपाय करके हू रक्षा किया हुआ मरणकूं प्राप्त होय है। ऐसा देहतैं विरागता ही श्रेष्ठ है। ऐसे पुत्र मित्र कलत्र संसार भोग शरीरका दुःख करनेवाला स्वरूप जानि विरागभावकूं प्राप्त होना सो संवेग है। संवेग भावनाकूं निरन्तर चिंतवन करना ही श्रेष्ठ है। यातैं मेरे हृदयमें निरन्तर संवेग भावना तिष्ठो ऐसा चिंतवन करते संसारदेहभोगनितैं विरक्तता होय तदि परम धर्ममें अनुराग होय है। धर्म शब्दका अर्थ ऐसा जानना-जो वस्तुका स्वभाव है सो धर्म है। तथा उत्तमक्षमादि दशलक्षणरूप धर्म है। तथा रत्नत्रयरूप धर्म है। तथा जीवनिका दयारूप धर्म है। ऐसे पर्यायबुद्धि शिष्यनिके समझावनेके अर्थि धर्म शब्दकूं च्यार प्रकारकरि वर्णन किया है तो हू वस्तु जो आत्मा ताका स्वभावही दशलक्षण है। क्षमादि दशप्रकार आत्मा का ही स्वभाव है। अर सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्र हू आत्मातैं भिन्न नाहीं है। अर दया है सो हू आत्माहीका स्वभाव है सो ऐसा जिनेंद्रकरि कह्या आत्माका स्वभावरूप दशलक्षणधर्ममें जो अनुराग सो संवेग धर्म है। अर कपटरहित रत्नत्रयधर्म में अनुराग करना सो संवेग धर्म है। तथा मुनी-

श्वरनिका अर श्रावकका धर्ममें अनुराग सो संवेग है। तथा जीवनिकी रक्षा करनेरूप जीवनिकी दयामें परिणाम होना सो भगवान संवेग कह्या है। अथवा वस्तु जो आतमा ताका स्वभाव केवलज्ञान केवलदर्शन है। तिस स्वभावमें लीन होना सो प्रशंसा करने योग्य संवेग है। जातैं धर्ममें अनुराग परिणाम सो संवेग है। तथा धर्मका फलकूं अत्यन्त मिष्ट जानना सो संवेग है। ये तीर्थंकरपना, चक्रवर्ती होना, नारायण प्रतिनारायण बलभद्रादिक उपजना, सो धर्म ही का फल है। तथा बाधारहित केवली होना, तथा स्वर्गादिकनिमें महान ऋद्धिका धारक देव होना, तथा इंद्र होना, तथा अनुत्तरादिक विमानमें अहमिंद्र होना, सो समस्त पूर्व जन्ममें आराधन किया धर्मका ही फल है।

बहुरि और हू जो भोगभूमि आदिकमें उपजना, राजसंपदा पावना, अखंड ऐश्वर्य पावना, अनेक देशनिमें आज्ञाप्रवर्तन प्रचुर धनसंपदा पावना, रूपकी अधिकता पावनी, बलकी अधिकता चतुरता, महान् पंडितपना, सर्व लोकमें मान्यता, निर्मल यशकी विख्यातता, बुद्धिकी उज्ज्वलता, आज्ञाकारी धर्मात्मा कुटुम्बका संयोग होना, सत्पुरुषनिकी संगति मिलना, रोगरहित होना, दीर्घआयु इन्द्रियनिकी उज्ज्वलता, न्यायमार्गमें प्रवर्तना, वचनकी मिष्टता इत्यादिक उत्तमसामग्रीका पावना है, सो हू कोऊ धर्म में प्रीति करी है तथा धर्मात्मानिका सेवन किया है। धर्मकी तथा धर्मात्मानिकी प्रशंसा की है ताका फल है। कल्पवृक्ष चिंतामणि समस्त धर्मात्माके द्वारे खडे जानहू। धर्मके फलकी महिमा कोऊ कोटि जिह्वानिकरि कहनेकूं समर्थ नाहीं होइये है। ऐसे धर्मके फलकूं त्रैलोक्यमें उत्कृष्ट जानै ताके संवेगभावना होय है। बहुरि धर्मसहित साधर्मीनिकूं देखि आनन्द उपजना तथा धर्मकी कथनीमें आनन्दमय होना और भोगनितैं विरक्त होना सो संवेग नामा पंचम अंग है। याकूं आत्माका हित समझि, याकी निरंतर भावना भावो। अर भावनाके आनन्दकरि सहित होय याकी प्राप्तिके अर्थि याका महा अर्घ उतारण करो। ऐसैं संवेगनामा पंचम भावना वर्णन करी ॥ ५ ॥

अब शक्तिप्रमाणत्याग भावना वर्णन करिये है। त्यागनाम भावना प्रशंसायोग्य मनुष्यजन्मका मण्डन है। अपने हृदयमें त्यागभाव रचनेके अर्थि अनेक उत्सवरूप वादित्रनिकूं बजाय याका महान अर्घ उतारण करो। बाह्य आभ्यन्तर दोय प्रकारका परिग्रहतैं ममता छांडनेकरि त्यागधर्म होय है। अंतरंगपरिग्रह चौदह प्रकार है ऐसे जानना। जाण्या विना ग्रहण त्याग वृथा है। मिथ्यात्व, अर स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदरूप परिणाम सो वेदपरिग्रह हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे चौदह प्रकार अंतरंग परिग्रह जानना। तहाँ जो शरीरादिक परद्रव्यनिमें आतमबुद्धि करना सो मिथ्यात्व नाम परिग्रह है।

यद्यपि जो वस्तु है सो अपना द्रव्य अपना गुण अपना पर्याय है सो ही अपना स्वरूप हैं । जैसे स्वर्णनाम द्रव्य है । सुवर्णके पीतादिक गुण हैं । कुण्डलादि पर्याय हैं । सो समस्त सुवर्ण ही है । यातैं सुवर्ण अन्यवस्तुका नाहीं अन्य वस्तु सुवर्णका नाहीं । सुवर्ण है सो सुवर्ण हीका है । अन्य वस्तुका कोऊ हुआ नाहीं, होहै नाहीं, होगया नाहीं, अपनास्वरूप है सो ही आपका है ऐसैं आत्मा है सो आत्माहीका है, आत्माका अन्य कोऊ ही द्रव्य नाहीं है । अब जो देहकूं आपा मान है–जो मैं गोरा, मैं सावला, मैं राजा, मैं रङ्क, मैं स्वामी, मैं सेवक, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य, मैं शूद्र, मैं वृद्ध, मैं बाळ, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं तिर्यंच इत्यादिक कर्मकृत विनाशीक परद्रव्यकृत पर्यायमें आत्मबुद्धि करना सो ही मिथ्यात्वनाम परिग्रह है । मिथ्यादर्शनतैं ही मेरा गृह, मेरा पुत्र, मेरा राज, मैं ऊंच, मैं नीच इत्यादिक मानि समस्त परपदार्थनिमें आत्मबुद्धि करै है । पुद्गलका नाशकूं अपना नाश मानै है । याके बन्धनेतैं अपना बंधना घटनेतैं घटना मानि पर्यायमें आत्मबुद्धिकरि अनादिकालतैं आपा भूलि रह्या है । यातैं समस्त परिग्रहमें आत्मबुद्धिका मूल मिथ्यात्वनामपरिग्रह है । जाकै मिथ्याज्ञान नाहीं सो परद्रव्यनिमें ‘ हमारा ’ ऐसैं कहता हुआ हू परद्रव्यनिमें कदाचित् आपा नाहीं मानै है ।

बहुरि वेदके उदयतैं स्त्री पुरुषनिमें जो कामसेवनके परिणाम होय हैं तिस काममें तन्मय होय कामके भावकूं आत्मभाव मानना सो वेदपरिग्रह है । काम तो वीर्यादिकका प्रेर्या देहका विकार इसकूं अपना स्वरूप जानै सो वेदपरिग्रह है । बहुरि धन, ऐश्वर्य, पुत्र, स्त्री, आभरणादि परद्रव्यादिकमें आसक्तता सो रागपरिग्रह है । अन्यका विभव, परिवार, ऐश्वर्य, पाण्डित्यादिक देखि वैरभाव करना सो द्वेषपरिग्रह है । हास्यमें आसक्त होना सो हास्यपरिग्रह हैं । अपना मरण होनेतैं, मित्रनिका परिग्रहादिकनिकरि वियोग होनेतैं, निरन्तर भयवान रहना सो भयपरिग्रह है । पंचइंद्रियनिकरि वांछित भोग–उपभोगके भोगनिमें लीन हो जाना सो रतिपरिग्रह है । अनिष्टवस्तुका संयोगमें परिणामनिका संक्लेशरूप होना सो अरतिपरिग्रह है । अपना इष्ट स्त्रीपुत्रमित्रधनजीविकादिकका वियोग होते तिनका, संयोगकी वांछा करके संक्लेशरूप होना सो शोक परिग्रह है । बहुरि घृणावान पुद्गलनिके देखनेतैं, श्रवणतैं, चिंतवनतैं, स्पर्शनतैं परिणाममें ग्लानि उपजना सो जुगुप्सा नाम परिग्रह है । अथवा अन्यका उदय देखि परिणाममें क्लेशित होना सुहावे नाहीं सो जुगुप्सा परिग्रह है । बहुरि परिणाममें रोषकरि तप्त होना सो क्रोध परिग्रह है । बहुरि उच्च कुळ, जाति, धन, ऐश्वर्य रूप, बल, ज्ञान, बुद्धि इनकरी आपकूं अधिक जानि मद करना तथा परकूं घाटि जानि निरादर करना, कठोर

परिणाम रखना सो मानपरिग्रह है । अनेक कपटछलादिककरि वक्रपरिणाम रखना सो माया परिग्रह है । परद्रव्यनिके ग्रहणमें तृष्णा सो लोभ परिग्रह है । ऐसैं सांसारिक भ्रमणके कारण आत्माके ज्ञानादिक गुणनिके घातक चौदह प्रकार अन्तरंगपरिग्रह हैं । अर इनहीतैं मूर्च्छाके कारण धनधान्यक्षेत्रसुवर्णादिक स्त्रीपुत्रादि चेतन अचेतन बाह्य परिग्रह हैं । ऐसे अन्तरंग बहिरंग दोय प्रकारके परिग्रहके त्यागनेतैं त्यागधर्म होय है । यद्यपि बाह्यपरिग्रहरहित तो दरिद्री मनुष्य स्वभावहीतैं होय है; परन्तु अभ्यंतर परिग्रहका त्याग बहुत दुर्लभ है। यातैं दोय प्रकार परिग्रहका एकदेशत्याग तो श्रावकके होय है, अर सकलत्याग मुनीश्वरनिके होय है । बहुरि कषायनिका त्यागतैं त्यागधर्म होय । बहुरि इन्द्रियनिकूं विषयनितैं रोकनेकरि त्याग होय है । बहुरि रसनिका त्यागकरि त्यागधर्म होय है । जातैं रसना इन्द्रियकी लोलुपता जीतनेतैं समस्त पापनिका त्याग सहज होय है । बहुरि जिनेन्द्रका परमागमका अध्ययन करना, अन्यकूं अध्ययन, करावना, शास्त्रनिकूं लिखाय देना शोधना, शुधावना, सो परम उपकार· करनेवाला त्यागधर्म होय है। बहुरि मनके दुष्टविकल्पनिका अभाव करना, दुष्टविकल्पनिके कारण छांडि चारि अनुयोगकी चरचामें चित्त लगावना सो त्यागधर्म है । बहुरि मोहका नाश करनेवाला धर्मका उपदेश श्रावकनिकूं देना सो महापुण्यका उपजानेवाला त्यागधर्म है । वीतरागधर्मका उपदेशतैं अनेकप्राणीनिका परिणाम पापतैं भयभीत होय है । धर्मके प्रभावकूं अनेक प्राणी प्राप्त होय हैं । बहुरि उत्तम, मध्यम, जघन्य ऐसैं तीन प्रकारके पात्रनिकूं भक्तिकरि युक्त होय आहारदान देना, प्रासुक औषधि देना, ज्ञानके उपकरण सिद्धान्त के पढनेयोग्य पुस्तकका दान देना, मुनिके योग्य तथा श्रावकके योग्य वस्तिका दान देना, गुणनिके धारकनिकूं तपकी वृद्धि करनेवाला, स्वाध्यायमें लीन करनेवाला, ध्यानको वृद्धिका कारण आहारादिक चारि प्रकारका दान परमभक्तितैं विकसितचित्त हुआ अपना जन्मकूं कृतार्थ मानता, गृहाचारकूं सफल मानता, बडा आदरतैं पात्रदान करो । पात्रदान होना महाभाग्यतैं जिनका भला होना है तिनके होय है । पात्रका लाभ होना ही दुर्लभ है। अर भक्तिसहित पात्रदान होय जाय ताकी महिमा कहनेकूं कौन समर्थ है । बहुरि क्षुधा-तृषाकरि जो पीडित होय तथा रोगी होय, दरिद्री होय, वृद्ध होय, दीन होय, तिनकूं अनुकम्पाकरि दान देना सो समस्त त्यागधर्म है । त्यागहीतैं मनुष्यजन्म सफल है । त्यागहीतैं धन-धान्यादिक पावना सफल है । त्याग विना गृहस्थका गृह है सो श्मशान समान है । अर गृहस्थीका स्वामी पुरुष मृतक समान है । अर स्त्री-पुत्रादिक गृद्धपक्षी समान है सो याका धनरूप मांस चूंटी–चूंटी खाय हैं । ऐसें त्याग भावना वर्णन करी ॥ ६ ॥

अब शक्तिप्रमाण तपभावना अंगीकार करना; क्योंकि यो शरीर दुःखको कारण है, अनेक दुःख यो शरीर

उपजावै है। अर यो शरीर अनित्य है, अस्थिर है, अशुचि है, कृतघ्नवत् है, कोट्यां उपकार करता हू जैसैं कृतघ्न अपना नाहीं होय है, तैसैं देहके नाना उपकार सेवा करता हू अपना नाहीं होय है। यातैं यथेष्ट विधिकरि याकूं पुष्ट करना योग्य नाहीं, कृश करने योग्य है, तो हू यो गुण-रत्ननिके संचयको कारण है। शरीर विना रत्नत्रयधर्म नाहीं होय है। सेवक की ज्यों योग्य भोजन देय यथाशक्ति जिनेन्द्रका मार्गतैं विरोधरहित कायक्लेशादि तप करना योग्य है। तप विना इन्द्रियनिकी विषयनिमें लोलुपता घटै नाहीं, तप विना त्रैलोक्यका जीतनेवाला कामकूं नष्ट करनेकूं समर्थता होय नाहीं, तप विना आत्माकूं अचेत करनेवाली निद्रा जीती जाय नाहीं, अर तप विना शरीरका सुखिया स्वभाव मिटै नाहीं। जो तपके प्रभावतैं शरीरकूं साधि राख्या होय, तो क्षुधा, तृषा, शीत उष्णादिक परीषह आये कायरता उपजै नाहीं, संयमधर्मतैं चलायमान होय नाहीं। तप है सो कर्मकी निर्जराका कारण है। तातैं तप ही करना श्रेष्ठ है। अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय करिकैं जैसैं जिनेन्द्रके मार्गतैं विरोधरहित होय तैसैं तप करो। तपनाम सुभट का सहाय विना ये अपना श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप धनकूं काम क्रोध प्रमादादिक लुटेरे एक क्षण में लूटि लेवेंगे। तदि रत्नत्रयसंपदाकरि रहित चतुर्गतिरूप संसारमें दीर्घकाल भ्रमण करोगे। याहीतैं जैसैं वात पित्त कफ ये त्रिदोष विपरीत होय रोगादिक नाहीं उपजावैं तैसैं तप करना उचित है। समस्ततैं प्रधान तप तो दिगम्बरपणा है। कैसा है दिगम्बरपणा जो घरकी ममतारूप पासीकूं छेदि, देहका समस्त सुखियापणा छांडि, अपना शरीरतैं शीत, उष्ण, तांवडा, वर्षा, पवन, डांस, मच्छर, मक्षिकादिकनिकी बाधाके जीतनेकूं सम्मुख होय, कोपीनादिक समस्त वस्त्रादिकको त्यागकरि दशदिशारूपही जामें वस्त्र हैं ऐसा दिगम्बरपण धारण करना सो अतिशयरूप तप जानना। जाका स्वरूपकूं देखते, श्रवण करते, बडे बडे शूरवीर कंपायमान हो जाय हैं। तातैं भो शक्तिकूं प्रगट करनेवाले हो! जो संसारके बंधनसे छूट्या चाहो हो, तो जिनेश्वरसंबंधी दीक्षा धारण करो। जातैं अङ्गका सुखियापणा नष्ट होय, उपसर्ग-परीषह सहनेमें कायरताका अभाव होय, सो तप है। जातैं स्वर्गलोककी रंभा अर तिलोत्तमा हू अपने हाव-भाव विलासविभ्रमादिककरि मनकूं कामका विकार सहित नाहीं कर सकै ऐसा कामकूं नष्ट करै सो तप है। जो दोय प्रकारके परिग्रहमें इच्छाका अभाव हो जाय सो तप है। तप तो वही है, जो निर्जन वन अर पर्वतनिका भयंकर गुफा जहां भूत-राक्षसादिकनिके अनेक विकार प्रवर्तैं अर सिंह-व्याघ्रादिकनिके भयङ्कर प्रचार होय रहैं अर कोट्यां वृक्षनिकरि अन्धकार होय रह्या अर जहां सर्प अजगर रीछ चीता इत्यादिक भयङ्कर दुष्टतिर्यंचनिका संचार होय रह्या ऐसे महा विषमस्थाननिमें भयरहित हुआ ध्यान-स्वाध्यायमें निराकुल हुवा तिष्ठै सो तप है। जो आहारका लाभ-अलाभमें समभावके धारक मीठा, खाटा, कडुवा, कषायला, ठंडा, ताता, सरस, नीरस भोजन जलादिकमें लालसा-

रहित संतोषरूप अमृतका पान करते आनन्दमें तिष्ठै, सो तप है। जो दुष्ट देव, दुष्ट मनुष्य, दुष्ट तिर्यंचनिकरि किये घोर उपसर्गनिकूं आवते कायरता छांडि कंपायमान नाहीं होना सो तप है। जातैं चिरकालका संचय किया कर्म निर्जरै सो तप है। बहुरि जो कुवचन कहनेवाले ताडन मारन अग्निमें ज्वालनादि उपद्रव करनेवालेमें द्वेषबुद्धिकरि कलुष परिणाम नाहीं करना, अर स्तुति-पूजनादि करनेवालेमें राग भावका नाहीं उपजना सो तप है। बहुरि पंच महाव्रतनिका अर पंच समितिका पालन अर पंच इन्द्रियनिका निरोध करना अर छह आवश्यकका समय समय करना, अपने मस्तकके डाढी-मूंछके केशनिकूं अपने हस्ततैं उपवासका दिनमें उपाडना, दोय महीना पूर्ण भए उत्कृष्ट लोंच है मध्यम तीन महीने गये लोंच करै जघन्य चार महीने गये लोंच करै है सो लोंच करना हू तप है। अन्य भेषीनिकी ज्यों रोजीना केश नाहीं उपाडे है। शीतकाल, ग्रीष्मकाल, वर्षाकालमें नग्न रहना अर स्नानका नाहीं करना अर भूमिशयनकरि अल्पकाल निद्रा लेना, दन्तनिकूं अंगुलीकरि हू नाहीं धोवना अर एक वार भोजन, खडा भोजन, रसनीरस स्वादकूं छांडि भोजन करै। ऐसे अट्ठाईस मूलगुण अखंड पालना सो बडा तप है। इन मूलगुणनिके प्रभावतैं घातियाकर्मनिका नाश करि केवलज्ञानकू प्राप्त होय मुक्त हो जाय है। यातैं भो ज्ञानीजन हो, धर्मको अङ्ग यो तप है। याकी निर्विघ्न प्राप्तिके अर्थि याहीका स्तवन पूजनादिककरि याका महाअर्घ उतारण करो। यातैं दूरि अर अत्यन्त परोक्ष हू मोक्ष तुम्हारे अतिनिकटताकूं प्राप्त होय है। ऐसैं शक्तितस्त्यागनामा सप्तमी भावनाका वर्णन किया ॥ ७ ॥

साधुसमाधिनामा अष्टमी भावनाकूं कहै हैं। जैसैं भंडारमें लागी हुई अग्निकूं गृहस्थ है सो अपना उपकारक वस्तुका नाश जानि अग्निकूं बुझाइये है; क्योंकि अनेक वस्तुकी रक्षा होना बहुत उपकारक है, तैसैं अनेक व्रत-शीलादि अनेक गुणनिकरि सहित जो व्रती संयमी तिनके कोऊ कारणतैं विघ्न प्रगट होतैं विघ्नकूं दूरिकरि व्रत शीलकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है। अथवा गृहस्थके अपने परिणामकूं बिगाडनेवाला मरण आ जाय, उपसर्ग आ जाय, रोग आ जाय, इष्टवियोग हो जाय, अनिष्टसंयोग आ जाय, तदि भयकूं नाहीं प्राप्त होना सो साधुसमाधि है। सम्यग्ज्ञानी ऐसा विचार करै हैं-हे आत्मन्! तुम अखंड अविनाशी ज्ञान-दर्शनस्वभाव हो तुम्हारा मरण नाहीं, जो उपज्या है सो विनशैगा, पर्यायका विनाश है, चैतन्य द्रव्यका विनाश नाहीं है, पांच इन्द्रिय अर मनबल, वचनबल, कायबल, आयुबल, अर उस्वास ये दशप्राण हैं, इनका नाशकूं मरण कहिये है। तुम्हारा ज्ञानदर्शन सुखसत्ता इत्यादिक भावप्राण हैं। तिनका कदाचित् नाश नाहीं है। तातैं देहका नाशकूं अपना नाश मानना सो मिथ्याज्ञान है।

भो ज्ञानिन्! हजारां कृमिनिकरि भऱ्या, हाडमांसमय, दुर्गंध, विनाशीक देहका नाश होतै तुम्हारे कहा

भया है? तुम तो अविनाशी ज्ञानमय हो । यो मृत्यु है सो बडा उपकारी मित्र है, जो गल्या सड्या देहमेंतैं काढि तुमकूं देवादिकनिका उत्तमदेह धारण करावे है । मरण मित्र नाहीं होता, तो इस देहमें केते काल वसता अर रोगका अर दुःखनिका भऱ्या देहतैं कौन निकसता अर समाधिमरणादिकरि आत्माका उद्धार कैसैं होता ? अर व्रततपसंयमका उत्तम फल मृत्युनाम मित्रका उपकार विना कैसैं पावता ? अर पापतैं कौन भयभीत होता ? अर मृत्युरूप कल्पवृक्षविना चारि आराधनाका शरण ग्रहण कराय संसाररूप कर्दमतैं कौन काढता ? तातैं संसारमें जिनका चित्त आसक्त है अर देहकूं अपना रूप जानै है तिनके मरणका भय है । सम्यग्दृष्टि देहतैं अपना स्वरूपकूं भिन्न जानि भयकू प्राप्त नाहीं होय है । तिनके साधुसमाधि होय है । अर जो मरणके अवसरमें कदाचित् रोग–दुःखादिक आवै हैं, सो हू सम्यग्दृष्टिके देहसूं ममत्व छुडावनेके अर्थि हैं, अर त्याग संयमादिकके सम्मुख करनेके अर्थि हैं, प्रमादकूं छुडाय सम्यग्दर्शनादिक चारि आराधनामें दृढताके अर्थि है । अर ज्ञानी विचारै है–जो जन्म धऱ्या है, सो अवश्य मरैगा । जो कायर होहूंगा, तो मरण नाहीं छांडैगा । अर धीर होय रहूंगा, तो मरण नाहीं छांडैगा । तातैं दुर्गति का कारण जो कायरतातैं मरण ताकूं धिक्कार होहू । अब ऐसा साहसतैं मरूं, जो देह मरि जाय अर मेरा ज्ञानदर्शनस्वरूपका मरण नाहीं होय । ऐसैं मरण करना उचित है । तातैं उत्साहसहित सम्यग्दृष्टिके मरणका भय नाहीं सो साधुसमाधि है ।

बहुरि देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यचकृत, उपसर्गकूं होते जाके भय नाहीं होय पूर्व उपजाया कर्मकी निर्जरा ही मानै है, ताकै साधुसमाधि है । बहुरि रोगका भयकूं नाहीं प्राप्त होय है, जातैं ज्ञानी तो अपना देहकूं ही महारोग मानै है, जातैं निरन्तर क्षुधा-तृषादिक घोर रोगकूं उपजावने वाला शरीर है । बहुरि यो मनुष्य शरीर है सो वातपित्तकफादिक त्रिदोषमय है । असातावेदनीय कर्मके उदयतैं त्रिदोषकी घटती बधतीतैं ज्वर, कांस, स्वास, अतिसार, उदरशूल, शिरशूल, नेत्रका विकार, वातादिपीडा होते ज्ञानी ऐसा विचार करै है—जो यो रोग मेरे उत्पन्न भया है, सो याकूं असातावेदनीयकर्मको उदय तो अंतरंग कारण है अर द्रव्य क्षेत्र-कालादि बहिरंग कारण हैं । सो कर्मके उदयकूं उपशम हुआ रोगका नाश होयगा । असाताका प्रबल उदयकूं होते बाह्य औषधादिक ही रोग मेटनेकूं समर्थ नाहीं हैं । अर असाताकर्मके हरनेकूं कोऊ देव दानव मंत्र–तंत्र औषधादिक समर्थ हैं नाहीं । यातैं अब संक्लेशकूं छांडि समता ग्रहण करना अर बाह्य औषधादिक हैं ते असाताके मन्द

उदय होतैं सहकारी कारण हैं। असाताका प्रबल उदय होतैं औषधादिक बाह्यकारण रोग मेटनेकूं समर्थ नाहीं हैं। ऐसा विचारि असाताकर्मके नाशका कारण परमसमता धारणकरि संक्लेशरहित होय सहना, कायर नाहीं होना सो ही साधुसमाधि है। बहुरि इष्टका वियोग होतैं अर अनिष्टका संयोग होतैं ज्ञानकी दृढतातैं जो भयकूं प्राप्त नाहीं होना सो साधुसमाधि है। पुरुष जन्मजरामरणकरि भयवान है। अर सम्यग्दर्शनादि गुणनिकरि सहित है। सो पर्यायका अन्तकालमें आराधनाका शरणसहित अर भय करि रहित देहादिक समस्तपरद्रव्यनिमें ममनारहित हुआ व्रतसंयमसहित समाधिमरणकी वांछा करै है।

इस संसारमें परिभ्रमण करता अनन्तानन्तकाल व्यतीत भया समस्त समागम अनेकवार पाया; परन्तु सम्यक्-समाधिमरणकूं नाहीं प्राप्त भया हूं। जो समाधिमरण एक वार हू होता, तो जन्ममरणका पात्र नाहीं होता। संसार-परिभ्रमण करता मैं भव-भवमें एक नवीन नवीन देह धारण किये। ऐसा कौन देह है जो मैं नाहीं धारण किया? अब इस वर्तमान देहमें कहा ममत्व करूं? अर मेरे भव-भवमें अनेक स्वजन कुटुम्बजनका हू सम्बन्ध भया है, अब ही स्वजन नाहीं मिलै हैं। यातैं कौन कौन स्वजनमें राग करूं? अर मेरे भव-भवमें अनेक वार राज-ऋद्धि हू उपजी; अब मैं इस तुच्छ सम्पदामें ममता कहा करूंगा? भव-भवमें मेरे अनेक माता पिता हू पालना करने वाले हो गये अब ही नाहीं भये हैं। बहुरि मेरे भव-भवमें नारीपणा हू भया अर मेरे भव-भवमें कामकी तीव्रलम्पटतासहित नपुंसकपणा हू भया अर मेरे भवभवमें अनेकवार पुरुषपणा हू भया तो हू वेदके अभिमानकरि नष्ट होता फिर्‍या अर भव-भवमें अनेक जातिके दुःखकूं प्राप्त भया। ऐसा संसारमें कोऊ दुःख नाहीं है, जो मैं अनेकवार नाहीं पाया। अर ऐसा कोऊ इन्द्रियजनित सुख हू नाहीं है, जो मैं अनेकवार नाहीं पाया। अर अनेकवार नरकमें नारकी होय असंख्यातकालपर्यंत प्रमाणरहित नानाप्रकारके दुःख भोगे अर अनेक भव तिर्यंचनिके प्राप्त होय असंख्यात अनंतवार जन्ममरण करता अनेकप्रकारके दुःख भोगता वारम्वार परिभ्रमण किया। अनेकवार धर्मवासनारहित मिथ्यादृष्टि मनुष्य हू भया। अर अनेकवार देवलोकनिमें हू प्राप्त भया अर अनेक भवनिमें जिनेन्द्रकूं पूज्या। अनेक भवनिमें गुरुबन्दना हू करी। अनेक भवनिमें मिथ्यादृष्टि हुआ। कपटतैं आत्मनिंदाहू करी अनेक भवनिमें दुर्द्धर तप हू धारण किया। अनेक भवनिमें भगवानका समवशरण हू में संचार किया अर अनेक भवनिमें श्रुतज्ञानके अङ्गनिका हू पठन--पाठनादिक अभ्यास किया। तथापि अनन्तकाल भव-निवासी ही रह्या। यद्यपि जिनेन्द्रकूं पूजना, गुरूनिकी वंदना तथा आत्मनिंदा करना, तथा दुर्द्धर तपश्चरण करना, समवशरणमें जावना, श्रुतनिके अङ्गनिका अभ्यास करना इत्यादिक ये कार्य प्रशंसायोग्य हैं, पापका विनाशक हैं, पुण्यका कारण

हैं तो हू सम्यग्दर्शन विना अकृतार्थ हैं । संसारपरिभ्रमणकूं नाहीं रोकि सकैं हैं । सम्यग्दर्शन विना समस्त क्रिया पुण्यका बन्ध करनेवाली है। सम्यग्दर्शन सहित होय तदि संसारको छेद करै । सो ही आत्मानुशासनमैं कह्या है—

समबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः । पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥१॥

अर्थ— पुरुषके समभाव, अर ज्ञान, अर चारित्र, अर तप इनको महानपणो पाषाणका महानपणाके तुल्य है । अर ये ही जे समबोध, चारित्र अर तप जो सम्यक्त्व सहित होंय तो महामणिकी ज्यों पूज्य हो जांय ।

भावार्थ— जगतमें मणि है सो हू पाषाण है अर अन्य झाझडा पत्थर है सो हू पाषाण है, परन्तु पाषाण तो मण दोय मण हू बांधि ले जाय वेचै तो हू एक पीसो उपजै । तातैं एक दिन हू पेट नाहीं भरै । अर मणि केई रती हू ले जाय वेचै तो हजारां रुपया उपजै, समस्त जन्मका दारिद्र नष्ट होजाय । तैसैं समभाव अर शास्त्रनिका ज्ञान अर चारित्रधारण अर घोर तपश्चरण ये सम्यक्त्व विना बहुत काल धारण करै तो राज्यसम्पदा पावै तथा मन्दकषायके प्रभावतैं देवलोकमें जाय उपजै फिर चयकरि एकइंद्रियादिक पर्यायनिमें परिभ्रमण करै । अर जो सम्यक्त्वसहित होय तो संसारपरिभ्रमणका नाशकरि मुक्त होजाय । तातैं सम्यक्त्व विना मिथ्यादृष्टि है सो जिनकूं पूजो वा गुरुवंदना करो, समवशरणमें जावो, श्रुतका अभ्यास करो तप करो तो हू अनन्तकाल संसारवास ही करैगा । इस तीन भवमें सुखदुःखकी समस्त सामग्री यो जीव अनंतवार पाई । कोऊ हु दुर्लभ नाहीं । एक साधुसमाधि जो रत्नत्रयका लब्धिकूं निर्विघ्न परलोकताई ले जाना है सो रत्नत्रयसहित हुआ देहकूं छांडै है तिनके साधुसमाधि होय । ताका पावना ही दुर्लभ है । साधुसमाधि है सो चतुर्गतिनिमें परिभ्रमणके दुःखका अभावकरि निश्चल स्वाधीन अनंत सुखकूं प्राप्त करै है । जो पुरुष साधुसमाधि भावनाकूं निर्विघ्न प्राप्त होनेके अर्थि इस भावनाकूं भावता याका महान अर्घ उतारण करै है सो ही शीघ्र संसारसमुद्रकूं तिरि अष्टगुणनिका धारक सिद्ध होय है । ऐसैं साधुसमाधिनामा अष्टमी भावना वर्णन करी ॥८॥

अब वैयावृत्तिनामा नवमी भावना वर्णन करिये है । कोठा अर उदरकी जो व्यथा आमवात, संग्रहणी, कठोदर, सफोदर, नेत्रशूल, कर्णशूल, शिरःशूल, दन्तशूल, तथा ज्वर, कास, स्वास, जरा इत्यादिक रोगनिकरि पीडित जे मुनि तथा श्रावक तिनकूं निर्दोष आहार औषधि वसतिकादिक करि सेवा करना, तिनकी शुश्रूषा करना,

विनय करना, आदर करना, दुःख दूरि करनेमें यत्न करना सो समस्त वैयावृत्त्य है । जे तपकरि तप्त होंय अर रोग करि युक्त जिनका शरीर होय तिनके वेदना देखकर तिनके अर्थि प्रासुक औषधि तथा पथ्यादिककरि रोगका उपशम करना, सो नवम वैयावृत्त्य नाम गुण है । वैयावृत्त्य मुनीश्वरनिके दश भेद करि दश प्रकार हैं । आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ इन दश प्रकार के मुनीश्वरनिके परस्पर वैयावृत्त्य होय है । कायकी चेष्टा करि वा अन्य द्रव्यकरि दुःखवेदनादिक दूर करनेमें व्यापार करिये, प्रवर्तनं करिये सो वैयावृत्त्य है । इन दश प्रकारके मुनिनिका ऐसा स्वरूप जानना जिनतैं स्वर्ग मोक्षके सुखके वीज जे व्रत तिननैं आदरसहित ग्रहण करिकै भव्यजीव अपने हितके अर्थि आचरण किये ते सम्यग्ज्ञानादि गुणनिके धारक आचार्य हैं ।

भावार्थ— जिनतैं मोक्षके स्वर्गके साधक व्रत आचरण करिये ते आचार्य हैं । जिनका समीपकूं प्राप्त होय आगमकूं अध्ययन करिये ते व्रत शील-श्रुतके आधार ऐसे उपाध्याय हैं । महान् अनशनादितपमें तिष्ठैं ते तपस्वी हैं । जे श्रुतके शिक्षणमें तत्पर निरन्तर व्रतनिकी भावनामें तत्पर ते शैक्ष्य हैं । रोगादिककरि जाका शरीर क्लेशित होय सो ग्लान है । वृद्ध मुनिनिकी परिपाटीका होय सो गण हैं । आपकूं दीक्षा देनेवाला आचार्यका शिष्य होय सो कुल है । च्यारि प्रकारके मुनिका समूह सो संघ है । चिरकालका दीक्षित होय सो साधु है । जो पण्डितपणाकरि वक्ता पणाकरि ऊंचे कुलकरि लोकनिमें मान्य होय धर्मका, गुरुकुलका गौरवपणाका उत्पन्न करनेवाला होय सो मनोज्ञ है । अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि हू संसार का अभावरूपपणातैं मनोज्ञ है । इन दश प्रकारके मुनिनिकैं रोग आजाय, परीषहनिकरि खेदित होय तथा श्रद्धानादि बिगडि मिथ्यात्वादिक प्राप्त होय जाय, तो प्रासुक औषधि भोजनपान, योग्यस्थान, आसन, काष्ठफलक, तृणादिकनिका संस्तरादिकनिकरि अर पुस्तक पीछिकादिक धर्मोपकरणकरि जो प्रतिकार-उपकार करिये तथा सम्यक्त्वमें फेर स्थापन करिये इत्यादि उपकार सो वैयावृत्य है । अर जो बाह्य भोजनपान औषधादिक नाहीं सम्भवते होंय तो अपने कायकरके कफ तथा नाशिकामल मूत्रादिक दूरि करनेकरि तथा उनके अनुकूल आचरण करनेकरि वैयावृत्य होय है। इस वैयवृत्त्य में समयका स्थापन ग्लानिको अभाव अर प्रवचनमें वात्सल्यपणो अर सनाथपणो इत्यादि अनेक गुण प्रकट होय हैं । वैयावृत्य ही परम धर्म है । वैयावृत्य नाहीं होय तो मोक्षमार्ग बिगडि जाय । आचार्यादिक हैं ते शिष्य मुनि तथा रोगी इत्यादिकका वैयावृत्य करनेतैं बहुत विशुद्धता उच्चताकूं प्राप्त होय हैं । ऐसे ही श्रावकादिक मुनिका वैयावृत्य करै तथा श्रावक श्राविका करैं । औषधिदानकरि वैयावृत्य करैं । अर भक्तिपूर्वक

युक्तिकरि देहका आधार आहारदानकरि वैयावृत्त्य करैं। अर कर्मके उदयतैं दोष लगि गया होय, ताका ढांकना तथा श्रद्धानसूं चलायमान भया होय ताकूं सम्यग्दर्शन ग्रहण करावना तथा जिनेन्द्रके मार्गसूं चलि गया होय ताकूं मार्गमें स्थापन करना इत्यादिक उपकारकरि वैयावृत्य है। बहुरि जो आचार्यादि गुरु शिष्यकूं श्रुतका अंग पढावै तथा व्रत संयमादिक की शुद्धिकौ उपदेश करै सो शिष्यका वैयावृत्य है। अर शिष्यहू गुरुनिकी आज्ञाप्रमाण प्रवर्तता गुरुनिका चरणनिका सेवन करै सो आचार्यका वैयावृत्त्य है। बहुरि अपना चैतन्यस्वरूप आत्माकू रागद्वेषादिक दोषनिकरि लिप्त नाहीं होने देना सो अपने आत्माका वैयावृत्त्य है तथा अपने आत्माकूं भगवान्के परमागममैं लगाय देना तथा दशलक्षणरूप धर्ममें लीन होना सो आत्मवैयावृत्त्य है। काम क्रोध लोभादिकके अर्थ अर इन्द्रियनिके विषयनिके आधीन नाहीं होना सो अपना आत्माका वैयावृत्त्य है। बहुरि इहां औरहू विशेष जानना–जो रोगी मुनिका तथा गुरुनिका प्रातःकाल अर अथणने शयन आसन कमंडलु पीछी पुस्तक नेत्रनिसूं देखि मयूरपिच्छिकातैं शोधना तथा अशक्त रोगी मुनिका आहार औषधकरि संयमके योग्य उपचार करना तथा शुद्ध ग्रन्थके याचनेकरि, धर्मका उपदेशकरि परिणामकूं धर्ममैं लीन करना तथा उठावना, बैठावना, मल-मूत्र करवाना, कलोट लिवाना इत्यादिकरि वैयावृत्त्य करै। तथा कोऊ साधु मार्गकरि खेदित होय तथा भील म्लेच्छ दुष्टराजा दुष्टतिर्यंचनिकरि उपद्रवरूप हुआ होय दुर्भिक्ष मारी व्याधि इत्यादिक उपद्रवकरि पीडा होनेतैं परिणाम कायर भया होय ताकूं स्थान देय, कुशल पूछि करि, आदर करि सिद्धान्ततैं शिक्षा करि स्थितीकरण करना सो वैयावृत्त्य है।

बहुरि जो समर्थ होय करकेहूँ अपना बलवीर्यकूं छिपाय वैयावृत्त्य नाहीं करै है, सो धर्मरहित है। तीर्थंकरनिकी आज्ञा भङ्ग करी, श्रुतकरि उपदेश्या धर्मकी विराधना करी, आचार बिगाड्या, प्रभावना नष्ट करी, धर्मात्माकी आपदाहूमें उपकार नाहीं किया, तदि धर्मतैं पराङ्मुख भया। अर जाके ऐसा परिणाम होय जो-अहो मोह अग्निकरि दग्ध होता जगतमें एक दिगम्बर मुनि ज्ञानरूप जलकरि मोहरूप अग्निकूं बुझाय आत्मकल्याणकूं करै हैं धन्य हैं। जे कामकूं मारि रागद्वेषका परिहारकरि इन्द्रियनिकूं जीत आत्माके हितमें उद्यमी भए है। ये लोकोत्तर गुणनिके धारक हैं। मेरे ऐसे गुणवंतनिका चरणनिका ही शरण होहू। ऐसैं गुणनिमें परिणाम वैयावृत्यतैं ही होय हैं। अर जैसैं जैसैं गुणनिमें परिणाम बधैं, बधैं तैसैं तैसैं श्रद्धान बधैं हैं। श्रद्धान बधै तदि

धर्ममें प्रीति बधै, तदि धर्मके नायक अरहन्तादिक पंच परमेष्ठीके गुणनिमें अनुरागरूप भक्ति बधै है । कैसीक भक्ति होय है ? जो मायाचार-रहित, मिथ्याज्ञानरहित, भोगनिकी वांछारहित अर मेरुकी ज्यों निष्कंप अचल ऐसी जिनभक्ति जाकै होय ताके संसारके परिभ्रमणका भय नाहीं रहै है । सो भक्ति धर्मात्माकी वैयावृत्यतैं होय है । बहुरि पंच महाव्रतनिकरि युक्त अर कषायकरि रहित, रागद्वेषका जीतनेवाला, श्रुतज्ञानरूप रत्ननिका निधान ऐसा पात्रका लाभ वैयावृत्य करनेवालेके होय है । जो रत्नत्रयधारीका वैयावृत्य किया सो रत्नत्रयसूं अपना जोड बांधि आपकूं अर अन्यकूं मोक्षमार्गमें स्थापै है । बहुरि वैयावृत्य अन्तरंग बहिरंग दोऊ तपनिमें प्रधान, कर्मकी निर्जराका प्रधान कारण है । जो आचार्यको वैयावृत्य कीयो, सो समस्त संघको सर्व धर्मको वैयावृत्य कीयो, भगवानकी आज्ञा पाली, अर आपके अर परके संयमकी रक्षा शुभध्यानकी वृद्धि अर इंद्रियनिका निग्रह किया, रत्नत्रयकी रक्षा अर अतिशयरूप दान दीया, निर्विचिकित्सा गुणकूं प्रगट दिखाया । जिनेन्द्रधर्मकी प्रभावना करी, धन खरच देना सुलभ है; रोगीकी टहल करना दुर्लभ है । अन्यका औगुण ढकना, गुण प्रकट करना इत्यादिक गुणनिके प्रभावतैं तीर्थंकर नाम प्रकृतिका बन्ध करै हैं । यो वैयावृत्त्य जगतमें उत्तम ऐसी जिनेन्द्रकी शिक्षा है । जो कोऊ श्रावक वा साधु वैयावृत्य करै है सो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणकूं पावै है । बहुरि जो अपना सामर्थ्यप्रमाण छःकायकी जीवनिकी रक्षामें सावधान है, ताके समस्त प्राणीनिका वैयावृत्य होय है । ऐसे वैयावृत्त्य नाम नवमी भावना वर्णन करी ॥ ९ ॥

अब अरहन्तभक्ति नाम दशमी भावना वर्णन करै हैं । जो मनवचनकाय करिकैं 'जिन' ऐसे दोय अक्षर सदाकाल स्मरण करै है सो अरहन्तभक्ति है ।

भावार्थ— अरहन्तके गुणनिमें अनुराग सो अरहन्तभक्ति है । जो पूर्वजन्ममें षोडशकारण भावना भाई है सो तीर्थंकर होय अरहन्त होय है । ताकै तो षोडशकारण नाम भावनातैं उपजाय अद्भुत पुण्य, ताकैं प्रभावतैं गर्भमें आवनेके छह महीने पहली इन्द्रकी आज्ञातैं कुबेर है सो बारहयोजन लम्बी, नवयोजन चौडी रत्नमय नगरी रचै है । तिसकै मध्य राजाके रहनेका महलनिका वर्णन अर नगरीकी रचना अर बडे द्वार अर कोट खाई पडकोट इत्यादिक रत्नमई जो कुबेर रचै है ताकी महिमा तो कोऊ हजार जिह्वानिकरि वर्णन करनेकूं समर्थ नाहीं है । तहां तीर्थंकरकी माताका गर्भका शोधना अर रुचकद्वीपादिकमें निवास करनेवाली छप्पन कुमारिका देवी माताकी नाना प्रकारकी सेवा करनेमें सावधान होय हैं । अर गर्भके आवनेके छह महीना पहली प्रभात मध्याह्न अर अपराह्न एक-एक कालमें आकाशतैं साढा तीनकोटि रत्ननिकी वर्षा कुबेर करै है । अर पाछैं

गर्भमें आवतैं ही इन्द्रादिक च्यारि निकायके देवनिका आसन कम्पायमान होनेतैं च्यारिप्रकारके देव आय नगरकी प्रदक्षिणा देय मातापिताकी पूजा सत्कारादि करि अपने स्थान जाय हैं । अर भगवान तीर्थंकर स्फटिकमणिका पिटारासमान मलादिरहित माताका गर्भमें तिष्ठै हैं। अर कमलवासिनी छह देवी अर छप्पन रुचिकद्वीपमें वसनेवाली अर और अनेक देवी माताकी सेवा करै हैं। अर नव महीना पूर्ण होतैं उचित अवसरमें जन्म होते ही च्यारों निकायके देवनिका आसन कम्पायमान होना अर वादित्रनिका अकस्मात् वाजनेतैं जिनेन्द्रका जन्म जानि वडा हर्ष सै सौधर्म नामा इंद्र लक्षयोजन प्रमाण ऐरावत हस्ती ऊपरि चढि अपना सौधर्म स्वर्गका इकतीसमा पटलमें अठारमां श्रेणीवद्ध नाम विमानतैं असंख्यातदेव अपने परिकरनिकरि सहित साढा वारा कोडिजातिका वादित्रनिकी मिष्टध्वनि अर असंख्यात देवनिका जयजयकार शब्द अर अनेक ध्वजा अर उत्सवसामग्री अर कोट्यां अप्सरानिका नृत्यादिक उत्सव अर कोट्यां गंधर्वदेवनिका गावने करि सहित असंख्यात योजन ऊंचा इहांतैं इन्द्रका रहनेका पटल अर असंख्यातयोजन तिर्यक् दक्षिणदिशामें है । तहांते जंवूद्वीपपर्यंत असंख्यातयोजन उत्सव करते आय, नगरकी प्रदक्षिणा देय, इन्द्राणी प्रसूतिगृहमें जाय, माताकूं मायानिद्राके वशिकरि वियोग के दुःख के भयतैं अपनी देवत्वशक्तितैं तहां वालक और रचि तीर्थंकरकूं वडी भक्तितैं ल्याय, इन्द्रकूं सौंपे है । तिसकालमें देखतां इंद्र तृप्तताकूं नाहीं प्राप्त होता हजार नेत्र रचिकरि देख है । फिर तहां ईशानादिक स्वर्गनिके इंद्र अर भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषीनिके इंद्रादिक असंख्यात देव अपनी अपनी सेना वाहन परिवार सहित आवैं हैं । तहां सौधर्म इंद्र ऐरावत हस्ती ऊपरि चढ्या भगवानकूं गोदमें लेय चालै । तहां ईशानइंद्र छत्र धारण करै अर सनत्कुमार महेंद्र चमर ढारते अन्य असंख्यात अपने-अपने नियोगमें सावधान वडा उत्सवतैं मेरुगिरिका पांडुकवनमें पांडुकशिला ऊपरि अकृत्रिम सिंहासन है तिस ऊपरि जिनेंद्रकूं पधराय अर पांडुकवनतैं क्षीरसमुद्र पर्यंत दोऊ तरफ देवोंकी पंकति वंध जाय है । सो क्षीरसमुद्र मेरुकी भूमितैं पांच कोट दश लाख साढा गुणचास हजार योजन परै है तिस अवसर में मेरुकी चूलिकातैं दोऊ तरफ मुकुट कुंडल हार कंकणादि अद्भुत रत्ननिके आभरण पहरैं देवनिकी पक्ति मेरुकी चूलिकातैं क्षीरसमुद्र पर्यंत श्रेणी वंधै हैं अर हाथूंहाथ कलश सौंपै है तहां दोऊ तरफ इंद्रके खडे रहनेके अन्य दोय छोटे सिंहासनऊपरि सौधर्म ईशान इंद्र कलश लेय अभिषेक एक हजार आठ कलशनिकरि करै है। तिन कलशनिका मुख एक योजनका, उदर चारि योजन चौडा आठ योजन ऊंचा तिन कलशनितैं निकसी धारा भगवानके वज्रमय शरीर ऊपरी पुष्पनि की वर्षा समान वाधा नाहीं करै है अर पाछे इंद्राणी कोमल वस्त्रतैं पूछ अपना जन्मकूं कृतार्थ मानती स्वर्गतैं ल्याये रतनमय समस्त आभरण वस्त्र पहरावैं हैं । तहां अनेकदेव अनेक

उत्सव विस्तारे हैं तिनकूं लिखनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं । फिर मेरुगिरितैं पूर्ववत् उत्सव करते जिनेंद्रकूं ल्याय माताकूं समर्पण कर इंद्र वहां तांडवनृत्यादिक जो उत्सव करै है तिन समस्त उत्सवनिकूं कोऊ असंख्यातकालपर्यंत कोटि जिव्हानिकरि वर्णन करनेकूं समर्थ नाहीं है । जिनेंद्र जन्मतैं ही तीर्थंकर प्रकृतिके उदयके प्रभावतैं दश अतिशय जन्मते लिये ही उपजैं है । पसेवरहित शरीर होय, मल मूत्र कफादिक रहितपना, अर शरीरमें दुग्धवर्ण रुधिर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रऋषभनाराच संहनन, अद्भुत अप्रमाणरूप, महासुगंधशरीर, अप्रमाणबल, एक हजार आठ लक्षण, प्रियहितमधुरवचन ये समस्त पूर्वजन्ममें षोडशकारण भावना भाई ताका प्रभाव है । बहुरि इन्द्र अंगुष्ठमें स्थाप्या अमृत ताकूं पान करता माताका स्तनमें दुग्धपान नाहीं करै है फिर अपनी अवस्थाके समान बनै देवकुमारनिमें क्रीडा करते वृद्धिकूं प्राप्त होय हैं अर स्वर्गलोकतैं आये आभरण वस्त्र भोजनादिक मनोवांछित देव लीयैं सासता रात्रिदिन हाजिर रहै हैं पृथ्वीलोकका भोजन आभरण वस्त्रादिक नाहीं अङ्गीकार करैं हैं स्वर्गतैं आये ही भोगे है । बहुरि कुमारकाल व्यतीत करि इंद्रादिकनिकरि कीये अद्भूत उत्साह करि भक्तिपूर्वक पिताकरि समर्प्पण कीया राज्य भोगि अवसर पाय संसार देह भोगनितैं विरागता उपजै तदि अनित्यादि बारह भावना भावतेही लौकांतिकदेव आय वंदना स्तवनरूप सम्बोधनादिक करैं हैं । अर जिनेन्द्रका विराग भाव होतेही चारि निकायके इंद्रादिकदेव अपने आसन कम्पायमान होनेतैं जिनेन्द्रके तपका अवसर अवधिज्ञानतैं जानि बडे उत्सवतैं आय अभिषेककरि देवलोकके वस्त्राभरणतैं भक्तितैं भूषित करि रत्नमयी पालकी रचि, जिनेंद्रकूं चढाय अप्रमाण उत्सव अर जयजयकार शब्दसहित तपके योग्य वनमें जाय उतारैं तहां वस्त्र आभरण समस्त त्यागैं देव अधर झेलि मस्तक चढावैं अर पंचमुष्टी लोंच सिद्धनिकूं नमस्कारकरि करैं तदि केशनिकूं महा उत्तम जाणि इंद्र रत्नके पात्रमें धारणकरि क्षीरसमुद्रमें बडी भक्तितैं क्षेपै है । जिनेंद्र केतेक कालमें तपके प्रभावतैं शुक्लध्यानके प्रभावतैं क्षपकश्रेणीमें घातियाकर्मनिका नाश करि केवलज्ञानकूं उत्पन्न करैं हैं तदि अरहन्तपना प्रगट होय है तदि केवलज्ञान रूप नेत्रकरि भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यनिकी अनन्तानन्त परिणतिसहित अनुक्रमतैं एक समयमें युगपत् समस्तकूं जानै हैं देखै हैं । तदि च्यारि निकायके देव ज्ञानकल्याणकी पूजा स्तवन करि भगवानका उपदेशके अर्थि समसवरण अनेक रत्नमय रचैं हैं तिस समवसरणकी विभूतिका वर्णन कौन कर सकै ? पृथ्वीतैं पांच हजार धनुष ऊंचा जाके बीस हजार पैडी ती ऊपरि इंद्रनीलमणिमय गोल भूमि बारह योजन प्रमाण तिस ऊपरि अप्रमाणमहिमासहित समवसरण रचना है । जहां समवसरण रचना होय है अर भगवानका विहार होय है तहां अन्धेनिकूं दीखने लगि जाय, बहरे श्रवण करने लगि जांय, लूले चालने लगि जांय हैं, गूगे बोलने लगि जांय हैं । वीतरागकी अद्भुत महिमा है । जाकै

धूलीशालादिक रत्नमय कोट मानस्तंभ अर बावड्या अर जलकी खातिका अर पुष्पवाडी फिर रत्नमय कोट दरवाजे नाट्यशाला उपवन वेदी भूमि फिर कोट फिर कल्पवृक्षनिका वन रत्नमयस्तूप फिर महलनिकी भूमि फिर स्फटिकका कोटमें देवच्छद् नाम एक योजनका मंडप सर्व तरफ द्वादश सभा तिनकरि सेवित रत्नमय तीन कटनी गंधकुटीमें सिंहासन ऊपरि च्यारि अंगुल अंतरीक्ष विराजमान भगवान अरहंत हैं जिनकी अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतवीर्य अनंतसुखमयी अंतरंग विभूतिकी महिमा कहनेकूं च्यारि ज्ञानके धारक गणधर समर्थ नाहीं, अन्य कौन कहि सकै। अर समवसरणकी विभूति ही वचनके अगोचर है अर गंधकुटी तीसरा कटणी ऊपरि है तहां चउसठि चमर बत्तीस युगल देवनिके मुकुट कुंडल हार कडा भुजबँधादिक समस्त आभरण पहिरे ढालि रहैं हैं तीन छत्र अद्‌भुत् कांतिके धारक जिनकी कांतितैं सूर्य चन्द्रमा मंदज्योति भासैं हैं अर जिनकी देहका प्रभामंडलको चक्र यंत्र रह्या जाकरि समवसरणमें रात्रिदिनको भेद नाहीं रहै है सदा दिवस ही प्रवर्तै है अर महासुगंध त्रैलोक्यमें ऐसा सुगंध और नाहीं ऐसी गंधकुटीके ऊपर देवनिकरि रच्या अशोकवृक्षकूं देखते ही समस्त लोकनिका शोक नष्ट होय जाय अर कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी वर्षा आकाशतें होय है अर आकाशमें साढाबाराकोटि जातिके वादित्रनिकी ऐसी मधुर ध्वनि होय है जिनके श्रवणमात्रतैं क्षुधातृषादिक समस्त रोग वेदना नष्ट हो जाय है अर रत्नजडित सिंहासन सूर्य की कांतिकूं जीतै है।

बहुरि जिनेन्द्रकी दिव्यध्वनिकी अद्‌भुत महिमा त्रैलोक्यवर्ती जीवनिकै परम उपकार करनेवाली मोहअंधकारका नाश करै है अर समस्त जीव अपनी अपनी भाषामें शब्द अर्थ ग्रहण करै हैं अर समस्त जीवनिकै संशय नाहीं रहै है स्वर्ग-मोक्षका मार्गकूं प्रगट करै हैं दिव्यध्वनिकी महिमा वचन द्वारा गणधर इन्द्रादिक कहनेकूं समर्थ नाहीं हैं जिनके समवसरणमें सिंह अर गज, व्याघ्र अर गौ, मार्जारी अर हंस इत्यादिक जातिविरोधी जीव वैरबुद्धि छांडि परस्पर मित्रताकूं प्राप्त होय हैं। वीतरागताकी अद्‌भुत् महिमा है जिनके असंख्यात देव जयजयकार शब्द करै हैं जिनके निकटताकूं पाय करिकै देवनिकरि रचे कलश झारी दर्पण ध्वजा ठोंणो छत्र चमर बीजना ये अचेतन द्रव्यहू लोकमें मंगलताकूं प्राप्त होय हैं। अर केवलज्ञान उत्पन्न भये पीछै दश अतिशय प्रगट होय हैं। चारों तरफ सौ सौ योजन सुभिक्षता अर आकाशगमन, भूमिका स्पर्श नाहीं करै, अर कोऊ प्राणीका बध नाहीं होय, अर भोजनका अभाव अर उपसर्गका अभाव अर चतुर्मुख दीखै, अर समस्त विद्याका ईश्वरपना, छायारहितपणा अर नेत्र टिमकारै नाहीं, अर केश नख बधैं नाहीं ये दश अतिशय घातियाकर्मका नाशतैं स्वयं प्रकट होय हैं। अर

तीर्थंकर प्रकृतिका प्रभावतैं चौदह अतिशय देवनिकरि किये होय हैं। अर्धमागधी भाषा, समस्त जनसमूहमें मैत्रीभाव, समस्त ऋतुके फूल फल पत्रादिकसहित वृक्ष होय हैं, पृथ्वी दर्पणसमान रत्नमयी तृण-कंटक-रज-रहित होय है, शीतल मंद सुगंध पवन चलै है, समस्त जनोंके आनन्द प्रकट होय है, अनुकूल पवन सुगंध जलकी वृष्टिकरि भूमि रजरहित होय है चरण धरैं तहां सात आगे सात पाछै एक बीच ऐसे पंदरा पंदराकरि दोयसौ पच्चीस कमल देव रचैं हैं, आकाश निर्मल, दिशा निर्मल, च्यार निकायके देवनिकरि जयजय शब्द, एक हजार आरांकरिसहित किरणनिका धारक अपना उद्योतकरि सूर्यमंण्डलकूं तिरस्कार करता धर्मचक्र आगे चालै, अष्ट मङ्गलद्रव्य ये चौदह देवकृत अतिशय प्रकट होय हैं। क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग शोक भय विस्मय राग द्वेष मोह अरति चिंता स्वेद खेद मद निद्रा इन अष्टादश दोषनिकरि रहित अरहंत तिनको वंदना स्तवन ध्यान करो। या अरहंतभक्ति संसारसमुद्रका तारनेवाली निरन्तर चिंतवन करो। सुखका करनेवाला अरहंत ताका स्तवन करो याका गुणनिके आश्रय तो अनंत नाम हैं। अर भक्तिका भऱ्या इंद्र भगवान्का एक हजार आठ नामकरि स्तवन किया है अर जे अल्प सामर्थ्यके धारक हैं ते हू अपनी शक्तिप्रमाण पूजन स्तवन नमस्कार ध्यान करो। अरहंतभक्ति संसारसमुद्रको तारनेवाली है सम्यग्दर्शनमें अरहंतभक्तिमें नामभेद है अर अर्थभेद नाहीं है। अरहंतभक्ति नरकादिगतिकूं हरनेवाली है या भक्तिको पूजन स्तवनकरि अर्घ उतार करैं हैं सो देवांका सुख फिर मनुष्यका सुख भोगि अविनाशी सुखका धारक अक्षय अविनाशी सुखकूं प्राप्त होय हैं ऐंसे अरहंतभक्ति नाम दशमी भावना वर्णन करी ॥ १० ॥

अब आचार्य भक्ति नाम ग्यारमीभावना वर्णन करैं हैं सोही गुरुभक्ति है धन्यभाग जिनका होय तिनके वीतराग गुरुनिके गुणनिमें अनुराग होय है धन्यपुरुषनिके मस्तक ऊपरि गुरुनिकी आज्ञा प्रवर्तै है आचार्य हैं सो अनेक गुणनिकी खानि हैं श्रेष्ठतपका धारक हैं यातैं इनका गुण मनविषै धारणकरि पूजिये अर्घ उतारण करिए पुष्पांजलि अग्रभागमें क्षेपिये जो मेरे ऐसे गुरुनिका चरणनिका शरण ही होहू। कैसेक हैं आचार्य जिनके अनशनादिक बारह प्रकारका उज्ज्वल तपनिमें निरंतर उद्यम है अर छह आवश्यक क्रियामें सावधान हैं अर पंचाचारके धारक हैं अर दशलक्षणधर्म रूप है परिणति जिनकी अर मनवचनकायकी गुप्तिकरि सहित हैं ऐसे छत्तीसगुणनिकरि युक्त आचार्य होय हैं अर सम्यग्दर्शनाचारकूं निर्दोष धारै हैं अर सम्यग्ज्ञानकी शुद्धताकरि युक्त हैं अर त्रयोदशप्रकार चारित्रकी शुद्धताके धारक अर तपश्चरणमें उत्साहयुक्त अर अपने वीर्यकूं नाहीं छिपावते बाईस परीषहनिके जीतनेमें समर्थ ऐसे निरंतर पंच अचारके धारक हैं। अंतरङ्ग बहिरङ्ग ग्रंथकरि रहित, निर्ग्रंथ मार्गके गमन करनेमें तत्पर

हैं अर उपवास बेला तेला पंचोपवास पक्षोपवास मासोपवास करनेमें तत्पर हैं अर निर्जनवनमें अर पर्वतानिके दराडे अर गूफानिके स्थानमें निश्चल शुभध्यानमें मनकूं धारे हैं अर शिष्यनिकी योग्यताकूं आछी रीतिसूं जानि दीक्षा देनेमें अर शिक्षा करनेमें निपुण हैं अर युक्तितैं नव प्रकार नयके जाननेवाले हैं अर अपनी कायसूं ममत्व छांडि रात्रिदिन तिष्ठै हैं संसारकूपमें पतन हो जानेतैं भयवान हैं मनवचनकायकी शुद्धतायुक्त नासिकाका अग्रमें स्थापित किये हैं नेत्रयुगल जिनूंने ऐसे आचार्यकूं समस्त अङ्गनिकूं पृथ्वीमें नमाय मस्तक धारि बंदना करिये । तिन आचार्यनिका चरणनिकरि स्पर्श भई पवित्र रजकूं अष्टद्रव्यनि करि पूजिये सो संसार परिभ्रमणका क्लेश पीडाकूं नष्ट करनेवाली आचार्य-भक्ति है ।

अब यहां ऐसा विशेष जानना जो आचार्य हैं सो समस्तधर्मके नायक हैं आचार्यनिके आधार समस्त धर्म है यातैं एते गुणनिके धारक ही आचार्य होय बडा राजानिका वा राजाके मन्त्रीनिका वा महान श्रेष्ठीनिका कुलमें उपज्या होय अर जाके स्वरूपकूं देखते ही शांत परिणाम हो जांय ऐसा मनोहररूपका धारक होय जिनका उच्च आचार जगतमें प्रसिद्ध होय, पूर्वै गृहचारामें भी कदे हीण आचार निंद्य व्यवहार नाहीं किया होय अर वर्तमान भोगसम्पदा छांडि विरक्ततताकूं प्राप्त भया होय अर लौकिक व्यवहार अर परमार्थके ज्ञाता होय अर बुद्धिकी प्रबलता अर तपकी प्रबलता का धारक होय अर संघके अन्य मुनीश्वरनितैं ऐसा तप नाहीं बनि सकै तैसा तपका धारक होय, बहुत कालका दीक्षित होय, बहुत काल गुरुनिका चरणसेवन किया होय, वचनका अतिशयसहित होय जिनका वचन-श्रवण करतैं ही धर्ममें दृढता अर संशयका अभाव अर संसार देहभोगनतैं विरागता जाके निश्चल होय सिद्धांतसूत्रके अर्थका पारगामी होय इन्द्रियनिका दमनकरि इस लोक परलोकसम्बन्धी भोगविलासरहित देहादिकमें निर्ममत्व होय, महाधीर होय, उपसर्गपरीषहनिकरि कदाचित् जाका चित्त चलायमान नाहीं होय । जो आचार्य ही चलि जाय तो सकल संघ भ्रष्ट होजाय धर्मका लोप होजाय, स्वमत परमतका ज्ञाता होय अनेकान्तविद्यामें क्रीडा करनेवाला होय, अन्यके प्रश्नादिकनैं कायरतारहित तत्काल उत्तर देनेवाला होय एकान्तपक्षकूं खण्डन करि सत्यार्थधर्मकूं स्थापन करनेका जाका सामर्थ्य होय, धर्मकी प्रभावना करनेमें उद्यमी होय, गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तादिकसूत्र पढि छत्तीस गुणनिका धारक होय है सो समस्त संघकी साखिसूं गुरुनिकरि दिया आचार्य पद प्राप्त होय । एते गुणणिका धारक होय तिसहीकूं आचार्यपना होय हैं । एते गुणनि विना आचार्य होय तो धर्म तीर्थका लोप होजाय उन्मार्गकी प्रवृत्ति होजाय समस्त संघ स्वेच्छाचारी होजाय, सूत्रकी परिपाटी अर आचरकी परिपाटी टूटि जाय । बहुरि आचार्यपना के अन्य अष्ट

गुण हैं तिनका धारक होय। आचारवान, आधारवान्, व्यवहारवान, प्रकर्ता, अपायोपायविदर्शी, अवपीडक, अपरिस्रावी, निर्यापक, ए आठ गुण हैं। तिनमें पंचप्रकारका आचार धारण करै ताकूं आचारवान कहिये। जीवादिकतत्व भगवान सर्वज्ञ वीतराग दिव्य निरावरण ज्ञानकरि प्रत्यक्ष देखि कह्या तिनमें श्रद्धानरूप परिणति सो दर्शनाचार है। स्वपरतत्वनिकूं निर्बाध आगम अर आत्मानुभव करि जाननारूप प्रवृति सो ज्ञानाचार है। हिंसादिक पंच पापनिका अभावरूप प्रवृत्ति सो चारित्राचार है। अंतरङ्ग बहिरङ्ग तपमें प्रवृत्ति सो तपाचार है। परीषहादिक आए अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय धीरतारूप प्रवृत्ति सो विर्याचार है तथा औरहू दशप्रकार स्थितिकल्पादिक आचारमें तत्पर हो समितिगुप्त्यादिकनिका कथन करिए तो बहुत कथन बधि जाय। पंचप्रकार आचार आप निर्दोष आचरै अर अन्य शिष्यादिकनिकूं आचरण करावनेमें उद्यमी होय सो आचार्य है आप हीणाचारी होय सो शिष्यनिकूं शुद्ध आचरण नाहीं कराय सकै हीणाचारी होय सो आहार विहार उपकरण वसतिका अशुद्ध ग्रहण कराय दे अर आपही आचारहीण होय सो शुद्ध उपदेश नाहीं करि सकै तातैं तातैं आचार्य आचारवान ही होय ॥ १ ॥ बहुरि जाकै जिनेन्द्रका प्ररूप्या च्यार अनुयोग का आधार हो स्याद्वाद विद्याका पारगामी होय, शब्दविद्या सिद्धान्तविद्याका पारगामी होय, प्रमाण नय निक्षेपकरी स्वानुभवकरि भले प्रकार तत्वनिका निर्णय किया होय सो आधारवान है। जाके श्रुतका आधार नाहीं सो अन्य शिष्यनिका संशय तथा एकांतरूप हठ तथा मिथ्याचरणकूं निराकरण नाहीं करि सके। बहुरि अनंतानन्तकालतैं परिभ्रमण करता जीवकै अतिदुर्लभ मनुष्यजन्मका पावना तामें हू उत्तम देश जाति कुल, इंद्रियपूर्णता, दीर्घायु, सत्संगति, श्रद्धान, ज्ञान आचरण ये उत्तरोत्तर दुर्लभ संयोग पाय तो अल्पज्ञानी गुरुके निकट वसनेवाला शिष्य सो सत्यार्थ उपदेश नाहीं पावनेतें यथार्थ आपका स्वरूप नाहीं पाय संशयरूप हो जाय तथा मोक्षमार्गकूं अतिदूर अतिकठिन जानि रत्नत्रयमार्गसूं चलि जाय तथा सत्यार्थ उपदेश विना विषयकषायनिमें उरझा मनकूं निकासनेमें समर्थ नाहीं होय तथा रोगकृत वेदनामें तथा घोर उपसर्गपरीषहनितैं चल्या हुआ परिणामकूं श्रुतका अतिशयरूप उपदेशविना थांभनेकूं समर्थ नाहीं होय है। बहुरि मरण आजाय तदि संन्यासका अवसरमें आहार-पानका त्यागका यथाअवसर देशकाल सहाय सामर्थ्यका क्रमकूं समझे विना शिष्यका परिणाम चलि जाय वा आर्त्तध्यान होजाय तो सुगति बिगडि जाय, धर्मका अपवाद हो जाय, अन्य मुनि धर्ममें शिथिल होजाय, तो बडा अनर्थ है तथा यो मनुष्य आहारमय है आहारतैं जावै है आहारहीकी निरंतर वांछा करै है अर जब रोगके वशतैं तथा त्याग करनेतैं आहार छूटि जाय तदि दुःखकरि ज्ञान-चारित्रमें शिथिल होय, धर्मध्यानरहित हो जाय तो बहुश्रुत गुरु ऐसा उपदेश करै जाकरि क्षुधा तृषाकी वेदनारहित होय उपदेशरूप अमृतकरि

सींचा हुआ समस्त क्लेशरहित भया धर्मध्यानम लीन होजाय है। क्षुधा तृषा रोगादिककी वेदनासहित शिष्यकूं धर्मका उपदेशरूप अमृतका पान अर शिक्षारूप भोजनकरि ज्ञानसहित गुरुही वेदनारहित करै बहुश्रुतीका आधारविना धर्म रहै नाहीं तातैं आधारवान आचार्य होय ताहीका शरण ग्रहण करना योग्य है। बहुरि जो शिष्य वेदनाकरि दुःखित होय ताके हस्त पाद मस्तकका दावना स्पर्शनादि करना, मिष्टवचन कहना इत्यादिकरि दुःख दूर करै तथा पूर्वै जे अनेक साधु घोरपरीषह सहकरि आत्मकल्याण किया तिनकी कथाके कहनेकरि तथा देहतैं भिन्न आत्माका अनुभव करावनेकरि वेदनारहित करै। तथा भो मुने! अब दुःखमें धैर्य धारण करो संसारमें कौन-कौन दुःख नाहीं भोगे? अब वीतरागका शरण ग्रहण करोगे तो दुःखनिका नाश करि कल्याणकूं प्राप्त होवोगे इत्यादिक बहुत प्रकार कहि मार्गसूं नाहीं चलने देवैं तातैं आधारवान गुरुनिहीका शरण योग्य है ॥ २ ॥

बहुरि जो व्यवहार प्रायश्चित्तसूत्रनिका ज्ञाता होय जातैं प्रायश्चित्तसूत्र आचार्य होने योग्य होय तिसहीकूं पढावै हैं औरनिके पढने योग्य नाहीं। जो जिनआगमका ज्ञाता अर महा धैर्यवान प्रबलबुद्धिका धारक होय सो प्रायश्चित्त देवै है अर द्रव्य क्षेत्र काल भाव, क्रिया, परिणाम, उत्साह, संहनन, पर्याय जो दीक्षाका काल अर शास्त्रज्ञान पुरुषार्थादिक आछी रीति जाणि रागद्वेषरहित होय सो प्रायश्चित्त देवै है।

भावार्थः—जामें ऐसी प्रविणता होय जो याकूं ऐसा प्रायश्चित्त दिये याका परिणाम उज्वल होयगा अर दोषका अभाव होयगा व्रतनिमें दृढता होयगी ऐसा ज्ञाता होय जाके आहार की योग्यता अयोग्यताका ज्ञान होय तथा या क्षेत्रमें ऐसा प्रायश्चित्त का निर्वाह होयगा वा या क्षेत्रमें निर्वाह नाहीं होयगा तथा इस क्षेत्रमें वात पित्त कफ शीत उष्णताकी अधिकता है कि हीनता है कि समपना है अथवा इस क्षेत्रमें मिथ्यादृष्टिनिकी अधिकता है कि मंदता है तथा धर्मात्मानि की हीनता अधिकताकूं जाणि प्रायश्चित्तका निर्वाह देखै बहुरि शीत उष्ण वर्षा कालकूं तथा अवसर्पिणी उत्सर्पिणीका तृतीय चतुर्थ पंचम कालादिकके आधिन प्रायश्चित्तका निर्वाह देखै बहुरि परिणाम देखै तथा तपश्चरणमें याके तीव्र उत्साह है कि मंद है ताकूं देखै। बहुरि सहननकी हीनता अधिकता तथा बलकी मंदता तीव्रता देखै तथा ये बहुत कालका दीक्षित है कि नवीन दीक्षित है तथा सहनशील है कि कायर है सो देखै, तथा बाल युवा वृद्ध अवस्थाकूं देखे बहुरि आगमका ज्ञाता है कि मंदज्ञानी है सो देखै, तथा पुरुषार्थी हैं कि निरुद्यमी है इत्यादिकका ज्ञाता होय प्रायश्चित्त देवै। जैसे दोषरूप फिर आचार नाहीं करै अर पूर्वकृत दोष दूरि होय

तैसें सूत्रके अनुकूल प्रायश्चित्त देवै जो गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तसूत्र शब्दतैं अर्थतैं पढ्या नाहीं औरनिकूं प्रायश्चित्त देवै है सो संसाररुप कर्दममें डूबे है अर अपयशकूं उपार्जन करै है तथा उन्मार्गका उपदेशकरि सम्यक् मार्गका नाशकरि मिथ्यादृष्टि होय है । जो एते गुणका धारक होय ताकूं प्रायश्चित्तसूत्र पढाय गुरु अपना आचार्यपद दे है जो महाकुलमें उपज्या व्यवहार परमार्थका ज्ञाता होय कोऊ कालमेंहू अपने मूलगुणनिमें अतीचार नाहीं लगाया होय, च्यारि अनुयोगसमुद्रका पारगामी होय धैर्यवान होय कुलवान होय, परीषह जतिनेमें समर्थन होय देवनिकरि कीया उपसर्गतैंहू जो चलायमान नाहीं होय, वक्तापना की शक्तिया धारक होय, वादीप्रतिवादीनिके जीतनेमें समर्थ होय विषयनितैं अत्यन्त विरक्त होय, बहुतकाल गुरुकुल सेया होय, सर्व संघके मान्य होय, पहिले ही समस्त संघ जाकूं आचार्यपनाकी योग्यता जाणै सोही गुरुनिका दिया प्रायश्चित्तसूत्रका ज्ञाता होय आचार्यपना पावै सो प्रायश्चित्त देवे । एते गुणनिविना जैसे मूढ वैद्य देश काल प्रकृत्यादिक नाहीं जानै तो रोगी हू मारै है तैसें व्यवहार सूत्ररहित मूढ गुणसंयुक्त होय हैं । संघमैं कोऊ रोगी होय वा वृद्ध होय अशक्त होय कोऊ बाल होय कोऊ संन्यास धारण किया होय तिनकी वैयावृत्त्यमें युक्त किये जे मुनि ते टहल करैं ही परन्तु आप आचार्य हू संघ मुनीश्वरानिमें जो अशक्त होजाय ताका उठावना बैठावना शयन करावना तथा मलमूत्रकफादिक तथा राधिरुधिरादिक शरीरतैं दूरि करना धोवना उठावना, प्रासुकभूमिमें स्थापना, धर्मोपदेश देना, धर्मग्रहण करावना, इत्यादिक आदरपूर्वक भक्तितैं वैयावृत्त्य करै तिनकूं देखि समस्त संघके मुनि वैयावृत्त्यमें सावधान होय विचारै हैं अहो धन्य हैं ये गुरु भगवान् परमेष्ठी करुणानिधान जिनके धर्मात्मामें वात्सल्य है हम निंद्य हैं आलसी होय रहे हैं हमकूं होते हू सेवा करैं हैं यह हमारा प्रमादीपना धिकारने योग्य है बन्धका कारण है ऐसा बिचार समस्त संघ वैयावृत्त्य में उद्यमी होय है । जो आचार्य आप प्रमादी होय तो सकल संघ वात्सल्यरहित होजाय यातैं आचार्यका कर्तृत्वगुण मुख्य है समस्त संघको वैयावृत्त्य करनेका जाका सामर्थ्य होय सो आचार्य होय है कोऊ हीणाचारी ताकूं शुद्ध आचार ग्रहण करावै कोऊ मन्दज्ञानी होय तिनकूं समझाय चारित्रमें लगावै केइनिकूं प्रायश्चित्त देय शुद्ध करै, कोऊकूं धर्मोपदेश देय दृढता करै । धन्य है ! आचार्य जिनके शरणे प्राप्त हो गया तिनकूं मोक्षमार्गमें लगाय उद्धार करै हैं यातैं आचार्यका प्रकर्त्ता नामा गुण प्रधान है ॥ ४ ॥

बहुरि अपायोपायविदर्शी नामा पांचमो गुण है कोऊ साधु क्षुधा तृषा रोग वेदनाकरि पीडित हुआ क्लेशित परिणामरूप हो जाय तथा तीव्र रागद्वेषरूप होजाय तथा लज्जाकरि भयकरि यथावत आलोचना नाहीं करै तथा

रत्नत्रयमें उत्साह रहित होजाय धर्म शिथिल हो जाय ताकूं अपाय मानि रत्नत्रयका नाश अर उपाय रत्नत्रयकी रक्षानिका प्रगट गुण दोष ऐसा दिखावै जो रत्नत्रयका नाश होनेतैं कंपायपान हो जाय अर रत्नत्रयका नाशतैं अपना नाश अर नरकादि कुगतिमें पतन साक्षात् दिखावै अर रत्नत्रयकी रक्षातैं संसारतैं उद्धार होय अनंत सुखकी प्राप्ति होय सो अपायोपायविदर्शी नाम गुणका धारक आचार्य होय है इहां उपदेश दिखाये कथन वहुत होजाय तातैं नाहीं लिख्या ॥ ५ ॥

अब अवपीडक नाम छठा गुण कहिये है कोऊ मुनि रत्नत्रय धारके करकै हू लज्जाकरि भयकरि अभिमानगौरवादिकरि अपनी आलोचना यथावत् शुद्ध नाहीं करै तो आचार्य ताकूं स्नेहकी भरी कर्णानिकूं मिष्ट अर हृदयमें प्रवेश करनेवाली शिक्षा करै जो हे मुने ! बहुत दुर्लभ रत्नत्रयका लाभ ताकूं मायाचारकरि नष्ट मति करो । माता पिता समान गुरुनिके निकट अपने दोष प्रगट करनेमें कहा लज्जा है । अर वात्सल्यके धारक गुरु हू अपने शिष्यके दोष प्रगट करी शिष्यका अर धर्मका अपवाद नाहीं करावै हैं तातैं शल्य दूरि करि आलोचना करो । जैसैं रत्नत्रयकी शुद्धता अर तपश्चरणका निर्वाह होयगा तैसैं द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार प्रायश्चित तुमकूं दिया जायगा तातैं भय त्यागि आलोचना निर्दोष करहू । ऐसे स्नेह रूप वचन करिके जोहू माया शल्य नाहीं त्यागै तो तेजका धारक आचार्य शिष्यकी शल्यकूं जबरीतैं निकासै जिस काल आचार्य शिष्यकूं पूछै हैं जो हे मुने ! ये दोष ऐसैं ही है सत्यार्थ कहो तदि उनके तेज तपके प्रभावतैं जैसैं सिंहकूं देखते ही स्याल खाया हुआ मांसकूं तत्काल उगलै है तथा ऐसैं महान प्रचण्ड तेजस्वी राजा अपराधीकूं पूछै तदि तत्काल सत्य कहता ही बणै तैसैं शिष्यहू मायाशल्यकूं निकासै है अर मायाचार नाहीं छांडे तो गुरु तिरस्कारके वचन हू कहैं हैं हे मुने ! हमारे संघतैं निकस जाहु, हमकरि तुम्हारे कहा प्रयोजन है जो अपना शरीरादिकका मेल धोया चाहैगा सो निर्मल जलके भरे सरोवरकूं प्राप्त होयगा, जो अपना महान रोगकूं दूरि किया चाहैगा सो प्रवीण वैद्यकूं प्राप्त होयगा तैसैं जो रत्नत्रय रूप परमधर्मका अतीचार दूरि करि उज्ज्वलता किया चाहैगा सो गुरुनिका आश्रय करेगा तुम्हारे रत्नत्रयकी शुद्धता करनेमें आदर नाहीं तातैं ये मुनिपणा व्रत धारण, नग्न होय क्षुधादि परीषह सहनेकी विडंबनाकरि कहा साध्य है संवर निर्जरा तो कषायनिके जीतनेतैं है मायाकषायका ही त्याग नाहीं किया तदि व्रत संयम मौन धारण वृथा है, नग्नता अर परीषह सहनता मायाचारीका वृथा है, तिर्यंच हू परिग्रहरहित नग्न रहै ही है यातैं तुम दूर भव्य हो हमारे वंदनेयोग्य नाहीं हो । अर तुम्हारे परिणाम ऐसैं हैं जो हमारा दोष प्रगट होय तो हम निंद्य होय जावें हमारा उचपणा घटि जाय

सो मानना बंधका कारण है श्रमण तो स्तुति निंदामें समानपरिणामी होय है ऐसे गुरु कठोर वचन कहि करिके हू मायाचारादिका अभाव करावैं । कैसा होय अवपीडक आचार्य जो बलवान होय उपसर्ग परीषह आये कायर नाहीं होय, प्रतापवान होय जाका वचन कोऊ उल्लंघन करने समर्थ नाहीं होय अर प्रभाववान होय जाकूं देखतेप्रमाण दोषका धारक साधु कांपने लगि जाय जाकूं बडे बडे विद्याके धारक नम्रीभूत होय वंदना करै जाकी उज्ज्वल कीर्ति विख्यात होय जाकी कीर्ति सुनता ही जाके गुणनिमें दृढ श्रद्धा हो जाय, जाका वचन जगतमें देख्या विना ही दुरदेशनिमें प्रमाण करै सिंहकी ज्यों निर्भय होय ऐसा अवपीडक गुणका धारक गुरु होय सो जैसैं शिष्य का हित होय तैसें उपकार करै है । जैसें बालकका हितने चिंतवन करती माता रुदन करता हू बालककूं दावकरि मुख फाडि जबरीतैं घृत–दुग्धादि पान करावै है। ऐसे शिष्यका हितकूं चिंतवन करता आचार्य हू मायाशल्यसहित क्षपकका बलात्कार करि दोष दूर करै है अथवा कटुक औषधि ज्यों पश्चात् हित करै है । जो जिह्वाकरिके मिष्ट बोले अर शिष्यकूं दोषतैं नाहीं छुडावै सो गुरु भला नाहीं । अर जो आचरण करि ताडनाहू करि दोषनितैं भिन्न करै है सो गुरु पूजने योग्य है यातैं अवपीडकगुणका धारक ही आचार्य होय है ॥ ६ ॥

अब अपरिस्रावी गुणकूं कहैं हैं जो शिष्य गुणनिकूं दोष आलोचना करै सो दोष अन्यकूं गुरु प्रकाश नाहीं करै । जैसें तप्तायमान लोहकरि पीया जल सो बाह्य प्रकट नाहीं होय तैसें शिष्यकरि श्रवण किया दोष आचार्यहू किसीकूं नाहीं जणावै है सोही अपरिस्रावी नाम गुण है । शिष्य तो गुरुका विश्वास करकै कहै अर गुरु जो शिष्यका दोष प्रकट करै अन्यकूं जनावै तो वह गुरु नाहीं, अधम है विश्वासघाती है । कोऊ शिष्य अपना दोषकी प्रकटता जानि दुःखित होय आत्मघात करै है व क्रोधी होय रत्नत्रयका त्याग करै है तथा गुरुकी दुष्टता जानि अन्य संघमें जाय तथा जैसें हमारी अवज्ञा करी तैसैं तुम्हारी हू अवज्ञा करैगा ऐसें समस्त संघमें घोषणा प्रगट होय, समस्तसंघ आचार्यनिका प्रतीतिरहित होजाय, आचार्य सबके त्याज्य होजांय इत्यादिक बहुत दोष आवै । बहुत कहे कथनी वधि जाय तातैं अपरिस्रावी गुणका धारक ही आचार्य योग्य है ॥ ७ ॥

अब आचार्य निर्यापक होय जैसें नांवकूं खेवटिया समस्त उपद्रवनिकूं टालि नावकूं पार उतारि ले जाय तैसैं आचार्यहू शिष्यकूं अनेक विघ्नसूं बचाय संसार समुद्रसे पार करै सो निर्यापक है ॥ ८ ॥ ऐसे आचारवान ॥ १ ॥ आधारवान ॥ २ ॥ व्यवहारवान ॥ ३ ॥ प्रकर्त्ता ॥ ४ ॥ अपायोपायविदर्शी ॥ ५ ॥ अवपीडक ॥ ६ ॥ अपरिस्रावी ॥१॥ निर्यापक ॥८॥ यह आचार्यनिके अष्टगुणकूं धारण करतेनिके गुणनिमे अनुराग सो आचार्यभक्ति है ऐसैं आचार्यनिके गुणनिकूं स्मरण करके आचार्यनिका स्तवन वंदना करता जो पुरुष अर्घ उतारण करै है सो पापरूप संसारकी परिपाटीकूं नष्टकरि

अक्षयसुखकूं प्राप्त होय है ऐसैं वीतराग गुरु कहै हैं । ऐसे आचार्यभक्ति वर्णन करी ॥ ११ ॥

अब बहुश्रुतभक्ति नाम बारमी भावनाकूं कहैं हैं। जो अंग-पूर्वादिकका ज्ञाता तथा च्यार अनुयोगनिका पारगामी जो निरन्तर आप परमागमकूं पढै अन्य शिष्यनिकूं पढावै ते बहुश्रुती है । तथा जिनके श्रुतज्ञान ही दिव्यनेत्र है अर अपना अर परका हित करनेमें प्रवर्तते अर अपने जिनसिद्धान्त अर अन्य एकांतीनिके सिद्धान्तनिका विस्तारतैं जानने वाले स्याद्वादरूप परम विद्या के धारक तिनकी जो भक्ति सो बहुश्रुतभक्ति है बहुश्रुतीकी महिमा कौन कहनेकूं समर्थ है जे निरन्तर श्रुतज्ञानकी दान करै हैं ऐसे उपाध्याय तिनकी भक्ति विनयकरि सहित करैं हैं ते शास्त्ररूप समुद्रका पारगामी होय हैं । जे अङ्गपूर्व प्रकीर्णक जिनेन्द्र वर्णन किये तिन समस्त जिनागमकूं निरन्तर पढै पढावैं ते बहुश्रुती हैं । इहां प्रथम आचारांग तामैं अठारह हजार पदनिमें मुनिधर्मका वर्णन है ॥ १ ॥ सूत्रकृताङ्गका छत्तीस हजार पद है तिनमें जिनेन्द्रके श्रुतके आराधन करनेकी विनयक्रियाका वर्णन है ॥ २ ॥ स्थानांगका ब्यालीस हजार पदनिमें षट्द्रव्यनिका एकादि अनेकं स्थानका वर्णन है ॥ ३ ॥ समवायगि एक लाख चौसठि हजार पदनिमें है तिनमें जीवादिक पदार्थनिका द्रव्य क्षेत्र काल भावके आश्रित समानता वर्णन है ॥ ४ ॥ व्याख्या प्रज्ञप्ति अंगके दोय लक्ष अठ्ठाईस हजार पदनिमें जीवका अस्ति-नास्ति इत्यादि गणधरनि करि कीये साठि हजार पदनिका वर्णन है ॥ ५ ॥ ज्ञातृधर्मकथांगके पांच लक्ष छप्पन हजार पदनिमें गणधरनिकरि कीये प्रश्ननिके अनुसार जीवादिकनिका स्वभावका वर्णन है ॥ ६ ॥ उपासकाध्ययन नाम अङ्गके ग्यारह लक्ष सत्तर हजार पदनिमें श्रावकके व्रत शील आचार क्रियाका तथा याका मन्त्रनिका उपदेशका वर्णन है ॥ ७ ॥ अन्तकृतदशांगके तेईस लक्ष अट्ठाईस हजार पदनिमें एक एक तीर्थंकरके तीर्थमें दश दश मुनीश्वर उपसर्गसहित निर्वाण प्राप्त भये तिनका कथन है ॥ ८ ॥ अनुत्तरोपपादकदशांगके बाणवै लक्ष चौवालीस हजार पदनिमें एक एक तीर्थंकरके तीर्थमें दश दश मुनीश्वर महा भयङ्कर घोर उपसर्ग सहि देवनितैं पूजा पाय विजयादिक अनुत्तर विमाननिमें उपजे तिनका वर्णन है ॥ ९ ॥ प्रश्नव्याकरण नाम अङ्गके त्र्यानवै लक्ष षोडश सहस्र पदनिमें नष्ट मुष्टि लाभ अलाभ सुखदुःख जीवित मरणादिकके प्रश्नका वर्णन है ॥ १० ॥ विपाकसूत्रांगके एक कोटि चौरासी लक्ष पदनिमें कर्मनिका उदय उदीरणा सत्ताका वर्णन है ॥ ११ ॥ अर दृष्टिवाद नाम बारम अङ्गका पांच भेद है परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व, चूलिका । तिनमें परिकर्मकाहू पांच भेद हैं तिनमें चंद्रप्रज्ञप्ति के छह लक्ष पांच हजार पदनिमें चंद्रमाका आयु गति अर

कलाकी हानिवृद्धी अर देवीविभव परिवारादिकका वर्णन है ॥ १ ॥ अर सूर्यप्रज्ञप्तिके पांच लक्ष तीन हजार पदनिमें सूर्यका आयु गति विभवादिकका वर्णन है ॥ २ ॥ जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिके तीन लक्ष पचीस हजार पदनिमें जंबूद्वीपसम्बन्धी क्षेत्र कुलाचल द्रह नदी इत्यादिकनिका निरुपण है ॥ ३ ॥ द्वीपसागरप्रज्ञप्तिके बावन लक्ष छत्तीस हजार पदनिमें असंख्यात द्वीप-समुद्रनिका अर मध्यलोकके जिनभवननिका अर भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क देवनिके निवासनिका वर्णन हैं ॥ ४ ॥ व्याख्याप्रज्ञप्तिके चौरासी लक्ष छप्पन हजार पदनिमें जीव पुद्गलादि द्रव्यका निरूपण हे ॥५॥ ऐसे पंचप्रकार परिकर्म कह्या । अब दृष्टिवाद अङ्गका दूजा भेद सूत्रके अठ्ठासी लक्ष पदनिमें जीव अस्तिरूप ही है नास्तिरूप ही है कर्त्ता ही है भोक्ता ही है इत्यादि एकांतवादकरि कलिपत जीवका स्वरूपका वर्णन है ॥ २ ॥ बहुरि प्रथमानुयोगके पांचहजार पदनिमें त्रेसठि महापुरुषनिके चरित्रका वर्णन है ॥ ३ ॥ अब दृष्टिवादअङ्गका चतुर्थभेदमें चौदहपूर्व हैं तिनमें उत्पादपूर्वके एककोटि पदनिमें जीवादिक द्रव्यनिका उत्पादादि स्वभावका निरूपण है ॥१॥ अग्रायणीपूर्वके छिनवैकोटि पदनिमें द्वादशांग का सारभूत सप्त तत्त्व नव पदार्थ षट् द्रव्य सातसै सुनय दुनयादिकका स्वरूपका वर्णन है ॥२॥ वीर्यानुवादके सप्तलक्ष पदनिमें आत्मवीर्य, परवीर्य, कामवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपोवीर्यादि समस्त द्रव्यगुण पर्यानिका वीर्यका निरूपण है ॥३॥ अस्तिनास्तिप्रवाद नाम पूर्वके साठि लक्ष पदनिमें जीवादि द्रव्यनिका स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति और परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति इत्यादिक सप्त भङ्गादिक तथा नित्य अनित्य एक अनेकादिकनिका विरोधरहित वर्णन है ॥ ४ ॥ ज्ञानप्रवाद पूर्वके एक घाटि कोटि पदनिमें मति श्रुति अवधि मनःपर्यय केवल ये पांच ज्ञान अर कुमति कुश्रुति विभङ्ग ये तीन अज्ञान इनका स्वरूप संख्या विषय फलनिके आश्रय प्रमाणपना अप्रमाणपनाका वर्णन है ॥ ५ ॥ सत्यप्रवादपूर्वके छह अधिक एककोटि पदनिमें वचनगुप्ति अर वचनके संस्कार-कारण अर द्वादश भाषा अर बहुत प्रकार असत्य अर दश प्रकारके सत्यका वर्णन है ॥ ६ ॥ आत्मप्रवादपूर्वके छब्बीस कोटि पदनिमें आत्मा जीव है कर्त्ता है भोक्ता है प्राणी है वक्ता है पुद्गल है वेद है विष्णु है स्वयंभू है शरीर-मान वक्ता शक्ता जन्तु मानी मायी वियोगी असंकुट क्षेत्रज्ञ इत्यादि स्वरूपका वर्णन है ॥ ७ ॥ कर्मप्रवादपूर्वके एककोटि अस्सी लाख पदनिमें कर्मनिका बंध उदय उदीरणा सत्त्व उत्कर्षण उपशमन संक्रमण निधित्ति निकाचितादि अवस्था अर ईर्यापथ तपस्या अधःकर्मादिकनिका वर्णन है ॥८॥ प्रत्याख्यानपूर्वके चौरासी लक्ष पदनिमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकूं आश्रय करि पुरुषनिका संहनन अर बलादिकनिके अनुसार प्रमाणिक काल वा अप्रमाणीक काल लिये त्याग अर पापसहित वस्तुतैं निराला होना अर उपवास की भावना अर पंचसमिति अर तीनगुप्तिका वर्णन है ॥९॥ विद्यानुवादके एककोटि दशलक्ष पदनिमें अंगुष्ठप्रसेनादिक सातसै अल्पविद्या अर रोहिणी

आदि पांचसैं महाविद्यानिका स्वरुप सामर्थ्य अर इनका साधन मंत्र तंत्र पूजा-विधानका अर सिद्ध भई तिनका फलका अर अन्तरिक्ष भौम अङ्ग स्वर स्वप्न लक्षण व्यंजन छिन्न ये अष्टप्रकार निमित्तज्ञानका वर्णन है ॥१०॥ कल्याणानुवादपूर्वके छब्बीसकोटि पदनिमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव प्रतिवासुदेवादिकनिका गर्भकल्याणादिक महाउत्सवनिका अर इन पदनिका कारण षोडश भावना वा तपविशेष आचरणादिकनिका अर चंद्रमा सूर्य्य ग्रह नक्षत्रनिका गमन तथा ग्रहण शकुनादिकके फलका वर्णन है ॥ ११ ॥ प्राणप्रवाद पूर्वके तेरहकोटि पदनिमें कायाकी चिकित्साका अष्टांग आयुर्वेद जो वैद्यविद्या ताका भूतकर्मका अर जांगलिका अर इला पिंगलादिक स्वासोच्छ्वासका अर गतिके अनुसार दशप्राणनिके उपकारक द्रव्यनिका वर्णन है ॥ २ ॥ क्रियाविशालके नवकोटि पदनिमें संगीतशास्त्र छंद अलंकार बहत्तरि कला अर स्त्रीके चौसठिगुण अर शिल्पादिज्ञान अर चौरासी गर्भाधानादि क्रिया अर एकसौ आठ सम्यग्दर्शनादिक्रिया अर पच्चीस देवबंदनादिक नित्य नैमित्तिक क्रियाका वर्णन है ॥ १३ ॥ त्रैलोक्यबिंदुसारपूर्व के साढा बारह कोटि पदनिमें त्रैलोक्यको स्वरूप, छव्वीस परिकर्म अष्ट व्यवहार, च्यारि, बीज, मोक्षका स्वरूप मोक्षगमनका कारण क्रिया अर मोक्षसुखका वर्णन है ॥१४॥ ऐसे पिच्याणवै कोडि पचासलाख पांच पदनिमें चौदह पूर्व वर्णन किया । अब दृष्टिवादांगको पांचवों भेद चूलिका पांच प्रकार है एक एक चूलिका के दोय कोटि नव लक्ष निवासी हजार दोय सै पद है तिनमें जलगताचूलिका में जलका स्तम्भन, जलमें गमन, अग्निका स्तम्भन, भक्षण, अग्निऊपरि आसन अग्निमें प्रवेशनादिकका कारण मन्त्रतन्त्र तपश्चरणका वर्णन है ॥ १ ॥ अर स्थलगताचूलिकामें मेरु कुलाचलादिकनिमें भूमिमें प्रवेश करनेकूं अर शीघ्रगमनके कारण मन्त्रतन्त्र तपश्चरण का वर्णन है ॥ २ ॥ अर मायागताचूलिकामें मायारूप इंद्रजालादि विक्रीया मंत्रतंत्र तपश्चरणादिका वर्णन है ॥ ३ ॥ आकाशागतचूलिकामें आकाशगमनका कारण मंत्र तन्त्र तपश्चरणादिका वर्णन है ॥ ४ ॥ रूपगताचूलिकामें सिंह हस्ती तुरङ्ग मनुष्य वृक्ष हरिण शशा बलध व्याघ्रादिकनिके रूप पलटनेके कारण मन्त्र तन्त्र तपश्चरणका वर्णन है तथा चित्राम माटी पाषाण काष्ठादिक इनका खोदना तथा धातुवाद रसवाद खान्यवादादिककी रचानाके अर्थ हैं ॥ ५ ॥ पंचचूलिकाके दशकोटि गुणाचास लाख छयालीस हजार पद हैं । इहां ऐसा जानना समस्त द्वादशाङ्गके एक घाटि एकठी प्रमाण अक्षर हैं । १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ एते अपुनरुक्त अक्षर हैं एक बार आया अक्षर दूसरां नाहीं आवै इनमें चौसठि संयोग ताईं अक्षर हैं अर आगममें कह्या ऐसा मध्यमपदका प्रमाण सोलासैं चौतीसकोडि तीयासी लक्ष सात हजार आठसौ अठासी १६३४८३०७८८८ अपुनरुक्त अक्षर हैं इन अक्षरनिका प्रमाणका भाग दीए एकसौ बारा कोटि तियासी लक्ष अठावन हजार पांचपद आए तिनमें समस्त

द्वादशाङ्ग है और अवशेष अक्षर आठकोटि एकलक्ष आठ हजार एकसौ पचेतरि अङ्क रहे ८०१०८१७५ इन अक्षरनिका पूर्ण एकपद होय नाहीं तातैं इनकूं अंगबाह्य कह्या। तिन अक्षरनिका सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक हैं।

सामायिक नाम प्रकीर्णकमें मिथ्यात्व कषायादिकके क्लेशका अभावरूप नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव के भेदतैं छहभेद रूप सामायिकका वर्णन है ॥ १ ॥ बहुरि चौंतीस अतिशय अष्टप्रातिहार्य परमौदारिक दिव्य देह समवशरण सभा धर्मोपदेशादिक तीर्थंकरनिका माहात्म्यका प्रकाशरूप स्तवन प्रकीर्णक है ॥ २ ॥ एक तीर्थंकरके आलम्बन रूप चैत्यालय प्रतिमाका स्तवन रूप प्रकीर्णक है ॥ ३ ॥ बहुरि पूर्वकृत प्रमादजनित दोषका निराकरणके अर्थि दैवसिक, रात्रिक पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक ऐर्यापथिक उत्तमार्थ ऐसे सप्त प्रकार प्रतिक्रमणका जामें वर्णन ऐसा प्रतिक्रमण नाम प्रकीर्णक है ॥ ४ ॥ बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार स्वरूप पंचप्रकार विनयका वर्णनरूप विनय नाम प्रकीर्णक है ॥ ५ ॥ बहुरि नवदेवतानिकी वन्दनाके अर्थि तीन प्रदक्षिणा चतुःशिरोनति तीन शुद्धता द्वादश आवर्त इत्यादिक नित्य–नैमित्तिकक्रियाका जामें वर्णन ऐसा कृतिकर्म प्रकीर्णक है ॥ ६ ॥ बहुरि जामें साधुका आचारके गोचर आहारकी शुद्धताका वर्णन रूप दश वैकालिक प्रकीर्णक है ॥ ७ ॥ बहुरि च्यार प्रकार उपसर्ग तथा बाईस परीषहनिके सहनेके विधान अर इनके फलका वर्णन रूप उत्तराध्ययनप्रकीर्णक है ॥ ८ ॥ बहुरि साधुके योग्य आचरणका विधान अयोग्यसेवनका प्रायश्चित्तका वर्णन रूप कल्पव्यवहार नाम प्रकीर्णक है ॥ ९ ॥ बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावके आश्रय साधुकूं ये योग्य हैं ये अयोग्य हैं ऐसा विभागका वर्णनरूप कल्पाकल्प नाम प्रकीर्णक है ॥ १९ ॥ बहुरि उत्कृष्ट संहननादिसंयुक्त द्रव्य क्षेत्र काल भावके प्रभावतैं उत्कृष्टचर्याकरि वर्तते ऐसै जिनकल्पी साधुनिके योग्य त्रिकालयोगादि आचरणका अर स्थविरकल्पीनिका दीक्षा शिक्षा गण पोषण आत्मसंस्कार सल्लेखना अर उत्कृष्टस्थानगत उत्कृष्टआराधनाका वर्णनरूप महाकल्प नाम प्रकीर्णक है ॥ ११ ॥ जामें भवन व्यन्तर ज्योतिष्क तथा कल्पवासीनिके विमाननिमें उत्पत्तिका कारण दान पूजा तपश्चरण अकामनिर्जरा सम्यक्त्व संयमादिकका विधान तिनके उपजनेका स्थान वैभवका वर्णनरूप पुण्डरीक नाम प्रकीर्णक है ॥ १२ ॥ बहुरि महर्दिक देवनिमें इन्द्र प्रतींद्रादिकनिमें उत्पत्तिका कारण तपोविशेषादिक आचरणका कहनेवाला महापुण्डरीक प्रकीर्णक है ॥ १३ ॥ जामें प्रमादसूं उपज्या दोषनिका त्यागरूप निषिद्धका प्रकीर्णक है ॥ १४ ॥ जैसा द्वादशांग सूत्रका ज्ञान है सो तपका प्रभावतैं उपजै है सो आप पढै है अन्यकी बुद्धिप्रमाण शिष्यनिकूं पढावै है तिनं बहुश्रुतनिकी भक्ति है सो हू बहुश्रुतभक्ति है जो गुणनिमें अनुराग करना ताकूं भक्ति कहिये है जो

शास्त्रनिमें अनुरागकरि पढै तथा शास्त्रके अर्थकूं अन्यकूं कहै जो धनकूं लगाय शास्त्रनिको लिखावै तथा अपने हस्तकरि शास्त्र लिखै तथा हीन अधिक अक्षरकूं मात्राकूं शोधन करै तथा पढनेवालेनिकूं शास्त्र लिखाय देवै तथा व्याख्यान करै पढावने बचावनेवालेनिकी आजीविकाकी थिरताकरि शास्त्रनिके ज्ञानाभ्यासका प्रवर्तन करावै स्वाध्याय करनेके अर्थि निराकुल स्थान देवै सो ज्ञानावरण कर्मके नाश करनेवाली बहुश्रुतभक्ति है। बहुरि बहुमूल्य वस्त्रनिमें पूठा लगाय पट्टमय डोरि करि शास्त्रानिकूं बांधै जो देखने श्रवण पठन करनेवालेनिका मनकूं रञ्जायमान करै सो समस्त बहुश्रुतभक्ति है। बहुरि सुवर्णकरि मनोहर गढे भये अर पंचप्रकार रत्ननिकरि जटित सैकडा पुष्पनिकरि शास्त्रकी सारभूत पूजा करै सो श्रुतभक्ति संशयादिक-रहित सम्यग्ज्ञान उपजाय अनुक्रमतैं केवलज्ञान उपजावै है, जो पुरुष अपने मनकूं इन्द्रियनिके विषयनितैं रोकि अर बारम्बार श्रुतदेवताका गुणस्मरण करके भली विधिसूं बनाया पवित्र अर्घ श्रुतदेवताका उतारै है सो समस्त श्रुतका पारगामी होय केवलज्ञान उपजाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है। ऐसें बहुश्रुतभक्ति नाम बारमी भावना वर्णन करी सो निरन्तर भावो ॥ १२ ॥

अब प्रवचनभक्तिनाम तेरमी भावनाकूं वर्णन करैं हैं। प्रवचन नाम जिनेंद्र सर्वज्ञ वीतरागकरि प्ररूपण किया आगमका है। जिसमें षटद्रव्यनिका पञ्चास्तिकायका सप्ततत्त्वनिका नवपदार्थनिका वर्णन है अर कर्मनिकी प्रकृतीनिका नाश करनेका वर्णन सो आगम है जाका प्रदेश बहुत होय ताकी अस्तिकाय संज्ञा है। अर गुणपर्यायनिकूं प्राप्त निरन्तर होय तातैं द्रव्य संज्ञा है वस्तुपनाकरि निश्चय करिये तानैं पदार्थसंज्ञा है स्वभावरूपपनातैं तत्त्वसंज्ञा है सो इनकी विशेष कथनी आगे प्रकरण पाय कहसी। जैसे अंधकारसंयुक्त महलमें दीपक हस्तमें लेकरि समस्त पदार्थ देखिये है तैसैं त्रैलाक्यरूप मन्दिरमें प्रवचनरूप दीपककरि सूक्ष्म स्थूल मूर्तीक अमूर्तीक पदार्थ देखिये है। प्रवचनरूप ही नेत्रनिकरी मुनीश्वरनि चेतनादि गुणनिके धारक समस्तद्रव्यनिका अवलोकन करै जिनेंद्रके परमागमकूं योग्यकालमें बहुत विनयतैं पढिये सो प्रवचन भक्ति है। कैसाक है प्रवचन जामें षट्द्रव्य सप्ततत्त्व नवपदार्थनिका भेद समस्तगुणपर्यायनिका वर्णन है जामें भूतकाल अनन्त भया अर भविष्यत् अनन्त होयगा अर वर्तमान तिनका स्वरूप वर्णन है। जामें अधोलोककी सप्त पृथ्वी अर नारकीनिका वसनेका उत्पत्ति होनेका स्थाननिकूं अर आयु काय वेदना गत्यादिक समस्तका अर भवनवासी देवनिका सातकरोड बहत्तरलाख भवननिका अर तिनका आयु काय विभव विक्रिया भोगादिकनिका अधोलोकमें वर्णन किया है। जामें मध्यलोक सम्बन्धी असंख्यात द्वीप समुद्रनिका अर

तिनमें मेरु कुलाचल नदी द्रहादिकनिका अर कर्मभूमिके विदेहादिक क्षेत्रनिका अर भोगभूमिका अर छिनवै अन्तर्द्वीपसम्बन्धी मनुष्यनिका अर कर्मभूमिके अर भोगभूमिके–मनुष्यानिका कर्तव्यका अर आयु काय सुख दुःखादिकनिका अर तिर्यंचनिका व्यंतरनिके निवास विभव परिवार आयु काय सामर्थ्य विक्रियाका वर्णन है । तथा मध्यलोकमें ज्योतिष्कदेव हैं तिनके विमान विभव परिवार आयु कायादिकका तथा सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रनिका चारक्षेत्रगत संयोगादिकका वर्णन है । बहुरि ऊर्ध्वलोकके त्रेसठपटलनिका स्वर्गके अहमिंद्रके पटलनिका इन्द्रादिक देवनिका विभव परिवार आयु काय शक्ति गति सुखादिकका वर्णन है । ऐसैं सर्वज्ञकरि प्रत्यक्ष देखा त्रिलोकवर्ती समस्त द्रव्यनिके उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना समस्त प्रवचनमें वर्णन किया है । बहुरि कर्मनिकी प्रकृतिनिका बंध होने का उदयका सत्वका संक्रमणादिकनिका समस्त वर्णन आगममें है । बहुरि संसारतैं उद्धार करनेवाला रत्नत्रयका स्वरूप प्राप्त होनेका उपाय परमागमहीमें है बहुरि गृहस्थपणामें श्रावकधर्मका जघन्य मध्यम उत्कृष्ट चर्याका तथा श्रावकनिके व्रत संयमादिक व्यवहार परमार्थरूप प्रवृत्तिका वर्णन प्रवचनतैंही जानिये है बहुरि गृहका त्यागी मुनीनिके महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण अर चौरासींलाख उत्तरगुण अर स्वाध्याय ध्यान आहार विहार सामायिकादि चारित्र चर्याका धर्मध्यान शुक्लध्यानादिकका सल्लेखनामरणका समस्तचर्याका वर्णन प्रवचनमें है । बहुरि चौदह गुणस्थाननिका स्वरूप तथा चौदह जीवसमासनिका अर चौदह–मार्गणानिका वर्णन प्रवचनतैं जानिये है तथा जीवनिके एकसो साढानिन्यानवै लक्ष कुलकोड अर चौरासीलाख जातिका योनिस्थान प्रवचनहीतैं जानिये है तथा च्यार अनुयोग च्यार शिक्षाव्रत तीनगुणव्रत आगमतैं ही जानिये है । तथा च्यार गतीनिका भेद अर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका स्वरूप भगवानका प्ररूप्या आगमहीतैं जानिये है । बहुरि द्वादश तप अर द्वादश अङ्ग अर चौदह पूर्व चौदह प्रकीर्णकनिका स्वरूप प्रवचनहींतैं जानिये है। बहुरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालकी फिरणि अर यामें छह छह भेदरूप कालमें पदार्थकी परिणतिका भेदनिका स्वरूप आगमतैं जानिये है । बहुरि कुल कर चक्रधर बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेव इत्यादिकनिकी उत्पत्ति प्रवृत्ति धर्म तीर्थका प्रवर्तन चक्री का साम्राज्य वासुदेवादिकनिके विभव परिवार ऐश्वर्यादिक आगमहीतैं जानिये है । बहुरि जीवादिक द्रव्यनिका प्रभाव आगमहीतैं जानिये है जातैं आगमकूं भक्तिपूर्वक सेवनविना मनुष्मजन्ममें हू पशु समान है भगवान सर्वज्ञ वीतराग समस्त लोक अलोककूं अनंतानन्त भूत भविष्यत वर्तमान कालवर्ती पर्यायनिकरि संयुक्त एक समयमें युगपत् क्रमरहित हस्तकी रेखावत् प्रत्यक्ष जान्या देख्या ताकरि प्ररूपण किया स्वरूपकूं सप्तऋद्धि च्यार ज्ञानधारी गणधरदेव द्वादशांगरूप रचना प्रगट करी । इहां ऐसा विशेष जानना जो देवाधिदेव परमपूज्य धर्मतीर्थके प्रवर्तन करनेवाले अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्तसुखरूप अन्तरंगलक्ष्मी अर समवशरणादि बहिरंगलक्ष्मीकरि मंडित

अर इन्द्रादिक असंख्यात देवनिके समूहकरि वंदनीक चौंतीस अतिशय अष्ट प्रातिहार्यादिक अनुपम ऋद्धिकरि सहित अर क्षुधा तृषादिक अष्टादश दोषरहित समस्त जीवनिका परमोपकारक अर लोकअलोकके अनंतगुण पर्यायनिका क्रमरहित युगपत् ज्ञानका धारक अर अनंतशक्तिका धारक संसारमें डूबते प्राणीनिकूं हस्तावलम्बन देनेवाला समस्त जीवनिका दयालु परमात्मा परमेश्वर परमब्रह्म परमेष्ठी स्वयंभू शिव अजर अमर अरहंतानि नामकरि विख्यात अशरण प्राणीनिकूं परमशरण अन्तका परमौदारिक देहमें तिष्ठता, गणधरादिक मुनीश्वरनिकरि वंदनीक है चरण जिनका अर कण्ठ तालुवो ओष्ठ जिह्वादिक चलनहलनरहित इच्छाविना अनेक प्राणीनिका पुण्यके प्रभावतैं उपज्या अर आर्य अनार्य समस्त देशके प्राणीनिका ग्रहणमें आवता समस्त पापका घातक दिव्यध्वनिकरि भव्य जीवनिका मोह अन्धकारकूं नष्ट करता चमरनिकरि वीज्यमान छत्रत्रयादिक प्रातिहार्यके धारक रत्नमयसिंहासन अर च्यार अंगुल अंतरीक्ष विराजमान भगवान सकलपूज्य परम–भट्टारक श्रीवर्धमानदेवाधिदेव मोक्षमार्गके प्रकाशनेके अर्थि समस्तपदार्थनिका स्वरूप सातिशय दिव्यध्वनिकरि प्रगट किया तिस अवसरमें निकटवर्ती निर्ग्रंथ ऋषीश्वरनिकरि वंदनीक सप्तऋद्धिसमृद्ध च्यारि ज्ञानके धारक श्रीगौतम नाम गणधरदेवकोष्ठबुद्धि आदिक ऋद्धिके प्रभावतैं भगवानभाषित अर्थकूं नाहीं विस्मरण होता भगवानभाषित अर्थकूं धारणकरि द्वादशांगरूप रचना रची ।

जब चतुर्थ कालका तीन वर्ष साढा आठ महीना बाकी रह्या तदि श्रीवर्धमानस्वामी निर्वाण गये पाछै गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य, जबूस्वामी ए तीन केवली बासठ वर्ष पर्यंत केवलज्ञानकरि समस्त प्ररूपणा करी । पाछैं केवलज्ञानका अभाव भया । ता पाछैं अनुक्रमकरि विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन, भद्रबाहु ये पांच मुनि द्वादशांगके धारक श्रुतकेवली भये तिनका एकसौ वर्ष का अवसर क्रमतैं भया तिनके अवसरमें भगवान केवलीतुल्य पदार्थनिका ज्ञान अर प्ररूपणा रही । बहुरि विशाखाचार्य, प्रोष्ठिलाचार्य, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव, धर्मसेन ये दश पूर्वके धारक एकादश परम निर्ग्रंथ मुनीश्वर अनुक्रमतैं एक सो तीयासी वर्षमें भये ते हू यथावत् प्ररूपणा करी । बहुरि नक्षत्र, जयपाल, पांडुनाम, ध्रुवसेन हंसाचार्य ये पांच महामुनि एकादशांग विद्याका पारगामी अनुक्रमतैं दोय सौ बीस वर्षमें भये तेहू यथावत प्ररूपणा करी । बहुरि सुभद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु, महायश, लोहाचार्य ये पंच महामुनि एक प्रथमअङ्गका पारगामी एकसौ अठरा वर्षमें अनुक्रमतैं भये । ऐसैं भगवान वीरजिनेन्द्रकूं निर्वाण गये पाछैं छहसौ तिरासी वर्षपर्यंत अङ्गका ज्ञान रह्या पाछैं ऐसे कालके निमित्ततैं बुद्धिवीर्यादिककी मन्दता होते श्री कुन्दकुन्दादि अनेक मुनि निर्ग्रंथ वीतरागी अङ्गके वस्तुनिका ज्ञानी होते भए तथा उमास्वामी भये ऐसे पापतैं भयभीत ज्ञानविज्ञानसम्पन्न परमसंजमगुणमण्डित

गुरु निकी परिपाटीतैं श्रुतका अव्युच्छिन्न अर्थके धारक वीतरागीनिकी परम्परा चली आई तिनमें की कुन्दकुन्दस्वामी समयसार प्रवचनसार पंचास्तिकाय रयणसार अष्टपाहुडकूं आदि लेय अनेक ग्रन्थ रचे ते अवार प्रत्यक्ष वांचने पढनेमें आवैं हैं । इन ग्रन्थनिका जो विनयपूर्वक आराधन सो प्रवचन भक्ति है ।

बहुरि दश अध्यायरूप तत्वार्थसूत्र श्रीउमास्वामी रच्या तिस तत्वार्थसूत्र ऊपरि सर्वार्थसिद्धि नाम टीका पूज्यपाद स्वामी रची है । अर तत्वार्थसूत्र ऊपर ही राजवार्तिक सोलह हजार श्लोकनिमें श्रीअकलङ्कदेव रच्या अर श्लोकवार्तिक बीस हजार श्लोकनिमें विद्यानन्दिस्वामी रच्या अर गन्धहस्ती नाम महाभाष्य चौरासी हजार श्लोकनिमें समन्तभद्रस्वामी बडी टीका रची सो अबार इस अवसरमें मिले है नाहीं अर गन्धहस्तिमहाभाष्य को आदि मंगलाचरण एकसौ पन्द्रह श्लोकनिमें देवागमस्तोत्र किया ताकी आठसौ श्लोकनिमें टीका अष्टशती तो अकलङ्कदेव रची अर देवागम अष्टशती ऊपरि आप्तमीमांसा नामा जाकूं अष्टसहस्री कहिए सो आठ हजार श्लोकनिमें विद्यानन्दिजी रची तिस अष्टसहस्री ऊपरि सोलहहजार टिप्पणी है अर विद्यानन्दि स्वामी कृत आप्तकी परीक्षारूप तीनहजार श्लोकनिमें आप्तपरीक्षा नाम ग्रन्थ है तथा परीक्षामुख माणिक्यनन्दि रच्या अर याकी बडी टीका प्रभाचन्द्रआचार्य प्रमेयकमलमार्त्तण्ड बाराहजार श्लोकनिमें रची अर छोटी टीका प्रमेयचन्द्रिका अनन्तवीर्यनाम आचार्य रची । अर अकलंकदेव कृत लघुत्रयी उपरि न्यायकुमुद चन्द्रोदय सोलह हजार श्लोकनिमें प्रभाचन्द्रनाम आचार्य रच्या तथा और हू न्यायके केई ग्रन्थ प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणनिर्णय, प्रमाणमीमांसा तथा बालावबोधन्याय-दीपिका इत्यादिक जिनधर्मके स्तंभ द्रव्यनिका प्रमाणकरि निर्णय करते अनेकान्तका भऱ्या हुआ द्रव्यानुयोगग्रन्थ जयवन्ते प्रवर्तैं हैं । अर करणानुयोगका गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसारादि अनेक ग्रन्थ हैं तथा चरणनुयोगके मूलाचार, आचारसार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, भगवती आराधना, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, आत्मानुशासन, पद्मनन्दिपच्चीसी इत्यादिक अनेक ग्रन्थ हैं तथा जैनेन्द्रव्याकरण अनेकान्तका भऱ्या है तथा प्रथमानुयोगके जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराण तथा गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण इत्यादिक जिनेन्द्रके परमागमके अनुसार उपदेशी ग्रन्थ तथा पुराण चरित्र आचारके अनेक ग्रन्थ हैं तिनकूं बडी भक्तितैं पठन करना तथा श्रवण करना तथा व्याख्यान करना तथा वन्दना करना और लिखना लिखवाना शोधना सो समस्त प्रवचनभक्ति है मेरे शास्त्रका अभ्यासमें दिन जो जाय सो धन्य है । परमागमका अभ्यास विना हमारे जो काल जाय सो वृथा है । स्वाध्याय विना शुभ ध्यान नाहीं होय, शास्त्रका अभ्यास बिना पापसूं नाहीं छूटै, कषायनिकी मन्दता नाहीं होय, शास्त्रका सेवन बिना संसार देह भोगनितैं विरागता नाहीं उपजै है । समस्त व्यवहारकी

उज्ज्वलता परमार्थका विचार आगमका सेवनतैंही होय है, श्रुतका सेवनतैं जगतमें मान्यता उच्चता उज्ज्वलता आदर सत्कारकूं प्राप्त होय है, सम्यग्ज्ञान ही परमबंधव हैं, उत्कृष्ठ धन है, परममित्र है, सम्यग्ज्ञान अविनाशी धन है स्वदेशमें, परदेशमें, सुख अवस्थामें, दुःखमें, आपदामें, संपदामें परमशरणभूत सम्यग्ज्ञान ही है। स्वाधीन अविनाशी धन ज्ञान ही है यातैं शास्त्रनिके अर्थ ही का सेवन करना। अपनी आत्माकूं नित्य ज्ञानदान करो अपनी सन्तानकूं तथा शिष्यनिकूं ज्ञानदान ही करो। ज्ञानदान देने समान कोटिधनका दान नाहीं है धन तो मद उपजावै है विषयनिमें उरझावै दुर्ध्यान करै, संसाररूप अन्धकूपमें डबोवे, तातैं ज्ञानदान समान दान नाहीं। एक श्लोक अर्धश्लोक एक पद मात्रहूका जो नित्य अभ्यास करै तो शास्त्रार्थका पारगामी होजाय। विद्या है सो परमदेवता है जो माता पिता ज्ञानाभ्यास करावै हैं ते कोट्यां धन दिया। जे सम्यग्ज्ञानके दाता गुरु हैं तिनका उपकार समान त्रैलोक्यमें कोऊ उपकारक नाहीं अर जो ज्ञानके देनेवाला गुरुका उपकारकूं लोपै है तिस समान कृतघ्नी नाहीं पापी नाहीं। ज्ञानका अभ्यास विना व्यवहार परमार्थ दोउनिमें मूढ है यातैं प्रवचनभक्ति ही परमकल्याण है। प्रवचनका सेवनविना मनुष्य पशुसमान है। या प्रवचनभक्ति हजारां दोषनिका नाश करनेवाली है याका भक्तिपूर्वक अर्घ उतारण करो याहीतैं सम्यग्दर्शनकी उज्ज्वलता होय हैं। ऐसे प्रवचनभक्ति नामा तेरमी भावना वर्णन करी ॥ १३ ॥

अब आवश्यकापरिहाणि नाम चौदमी भावना वर्णन करैं हैं। अवश्य करनेयोग्य होय ताकूं आवश्यक कहिये है। आवश्यकनिकी जो हानि नाहीं करनेका चिंतवन सो आवश्यकापरिहाणि नाम भावना है। अथवा इंद्रियनिके वश नाहीं सो अवश्य कहिये अवश्य जे मुनि तिनकी जो क्रिया सो आवश्यक है आवश्यककी हानि नाहीं करना सो आवश्यकापरिहाणि कहिये। ते आवश्यक छह प्रकार हैं। सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक हैं सो कहिये हैं। जो देहतैं भिन्न ज्ञानमय ही जाके देह ऐसा परमात्मास्वरूप कर्मरहित चैतन्यमात्र शुद्ध जीवकूं एकाग्रकार ध्यावता मुनि है सो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणकूं प्राप्त होय है अर जो विकल्पराहित शुद्ध आत्माके गुणनिमें आपका मन नाहीं तिष्ठै तो तपस्वी मुनि षट् आवश्यकक्रिया हैं तिनको पुष्ट करो अङ्गीकार करो अर आवते अशुभकर्मके आस्रवकूं निराकरण करो टालो प्रथम तो सुन्दर असुन्दर वस्तुमें तथा शुभ अशुभ कर्मके उदयमें राग-द्वेष मति करो तथा आहार वस्तिकादिकनिका लाभमें वा अलाभमें

समभाव करो जातैं स्तुतिमें, निंदामें, आदरमें, अनादरमें, पाषाणमें, रत्नमें, जीवनमें, मरणमें रागद्वेषरहित परिणाम होना सो समभाव है । जातैं साम्यभावके धारक हैं ते बाह्य पुद्‌गलनिकूं अचेतन अर आपतैं भिन्न अर अपने आत्मस्वभावमें हानि वृद्धिके अकर्ता जानि रागद्वेष छांडै है अर आपकूं शुद्ध ज्ञाता दृष्टारूप अनुभव करता रागद्वेषादिविकार रहित तिष्ठै है ताके साम्यभाव होय है सोही सामायिक है । बहुरि भगवान जिनेन्द्रके अनेक नामनिकरि स्तवन करना सो स्तवन नाम आवश्यक है। जो कर्मरूप वैरीकूं आप जीते तातैं 'जिन' हो, अर अपने स्वरूपमें आपकरि आप तिष्ठो हो तातैं स्वयंभू हो, अर केवलज्ञानरूप नेत्रकरि त्रिकालवर्ती पदार्थनिकू जानो हो तातैं त्रिलोचन हो, अर आप मोहरूप अन्धसुरकूं भन्या तातैं अन्धकांतक हो, आप घातियाकर्म रूप अर्धवैरीनिका नाश करके ही अद्वितीय ईश्वरपना पाया तातैं अर्धनारीश्वर हो, आप शिवपद जो निर्वाणपद तामें वसे तातैं आप शिव हो, पापरूप वैरीका संहार करो हो तातैं आप हर हो, लोकमें सुखका कर्त्ता तातैं आप शंकर हो, शं जो परम आनन्दरूप सुख तामें उपजे तातैं संभव हो, वृक्ष जो धर्म ताकरि दिपो हो तातैं आप वृषभ हो, अर जगतके सकल प्राणीनिमें गुणनिकरि बडे तातैं जगज्ज्येष्ठ हो, क जो सुख ताकरि समस्त जीवनिकी पालना करो तातैं आप कपाली हो, केवलज्ञानकरि समस्त लोक अलोक में व्याप्त हो रहे तातैं आप विष्णु हो, अर जन्मजरामरणरूप त्रिपुरकूं मान्या तातैं आप त्रिपुरांतक हो ऐसैं एकहजार आठ नामकरि आपका स्तवन इंद्र किया है । अर गुणनिकी अपेक्षा आपका अनन्त नाम है । ऐसैं भावनिमें गुणचिंतवनकरि जो चौबीस तीर्थंकरनिका स्तवन करै है सो स्तवन नाम आवश्यक है ॥२॥ बहुरि चतुर्विंशति तीर्थंकरनिमेंतैं एक तीर्थंकरकी वा अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुनिमेंतैं एककूं मुख्यकरि स्तुति करना सो वन्दना आवश्यक है ॥३॥ बहुरि जो समस्त दिनमें प्रमादके वश होय तथा कषायनिके वश होय वा विषयनिमें रागद्वेषी होय कोऊ एकेन्द्रियादिक जीवनिका घात किया तथा अनर्थके प्रवर्तन किया वा सद्दोष-भोजन किया वा किसी जीवका प्राण पीडित किया तथा कर्कश कठोर मिथ्या वचन कह्या वा किसीकी निन्दा अपवाद किया वा अपनी प्रशंसा करी वा स्त्रीकथा भोजनकथा देशकथा राज्यकथा करी, तथा अदत्तधन ग्रहण किया वा परका धनमें लालसा करी तथा परकी स्त्रीमें राग किया तथा धनपरिग्रहादिकमैं लालसा करी ते समस्त पाप खोटे किये बंधके करण किये, अब ऐसा पापरूप परिणामनिसूं भगवान पंच परमगुरु हमारी रक्षा करहु, अब ए परिणाम मिथ्या होहु, पंच परमेष्ठीके प्रसादतैं हमारे पापरूप परिणाम मति होहू ऐसे भावनिकी शुद्धतावस्ते कायोत्सर्गकरि पंच नमस्कारके नव जाप्य करै । ऐसे समस्त दिनकी प्रवृत्तिकूं संध्याकाल चिंतवनकरि पापपरिणामनिकूं निंदना

सो दैवसिक प्रतिक्रमण है। अर रात्रिसम्बन्धी पापका दूरिकरनेके अर्थ प्रभात प्रतिक्रमण करना सो रात्रिक प्रतिक्रमण है। बहुरि मार्गमें चालनेमें दोष लग्या ताकी शुद्धिका जो प्रतिक्रमण सो ऐर्यापथिक प्रतिक्रमण है। एक पक्षके दोष निराकरणके अर्थ पाक्षिक प्रतिक्रमण है, च्यार महीनेके दोष निराकरणके अर्थ प्रतिक्रमण करना चातुर्मासिक प्रतिक्रमण है, एक वर्षके दोष निराकरणके अर्थ सांवत्सरिक प्रतिक्रमण है, समस्त पर्यायके कालका दोष निराकरणके अर्थ अंत्यसंन्यासमरणकी आदिमें प्रतिक्रमण है सो उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है ऐसैं सप्त प्रकार प्रतिक्रमण है तिनमें गृहस्थकूं संध्या अर प्रभात तो अपना नफा टोटा अवश्य देखना योग्य है। इहां जो सौ पचास रुपयाका व्यवहार करनेवालाहू आथणनैं ठिगाई जिताई देखै है तो इस मनुष्य जन्मकी एक एक घडी कोटिधनमें दुर्लभ, गयां पाछैं नाहीं मिलै है याका विचार हू अवश्य करना, जो आज मेरे परमेष्ठीका पूजनमें स्तवनमें केता काल गया अर स्वाध्यायमें पंचपरमगुरुके शास्त्रश्रवण में तत्वार्थकी चर्चामें धर्मात्माकी वैयावृत्तिमें केता काल गया अर घरके आरम्भमें कषायमें तथा विकथा करनेमें, विसंवादमें, भोजनादिकमें वा अन्य इन्द्रियनिके विषयनिमें, प्रमादमें, निद्रामें, शरीरके संस्कारमें, हिंसादिक पंच पापनिमें केता काल गया है ऐसा चिंतवनकरि पापमें बहुत प्रवृत्ति भई होय तो आपकूं धिक्कार देय पापबंधके कारणनिकूं घटाया धर्म कार्यमें आत्माकूं युक्त करना योग्य है। पंचमकालमें प्रतिक्रमण ही परमागममें धर्म कह्या है। आत्माका हित अहित का विचारमें निरन्तर उद्यमी रहना योग्य है। यो प्रतिक्रमण आत्माकी बडी सावधानी करनेवाला है अर पूर्वले किये पापकी निर्जरा करै है ॥४॥ बहुरि आगामी कालमें आपके आस्रवके रोकनेके अर्थ पापनिका त्याग करना जो आगे मैं ऐसा पाप कबहूं मन वचन कायसौं नाहीं करूंगा सो प्रत्याख्यान नाम आवश्यक है सुगतिका कारण है ॥५॥ बहुरि च्यार अंगुलके अन्तरालै दोऊ पग बरोबर करि खडा रहै दोऊ हस्तनिकूं लंबायमानकरि देहसौं ममता छांडि नासिकाका अग्रमें दृष्टि धारि देहतैं भिन्न शुद्ध आत्माकी भावना करना सो कायोत्सर्ग है। निश्चल पद्मासनतैं हू होय अर खडा देहकरि हू होय दोऊनिमें शुद्ध ध्यानका अवलम्बनतैं सफल है ॥६॥ ए छह आवश्यक परमधर्मरूप हैं इनकूं पूजि पुष्पांजलि क्षेपि अर्घ उतारण करना योग्य है। बहुरि ए छहूं आवश्यक परगाममें छह छह प्रकार कह्या है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि षट्प्रकार जानना। शुभ अशुभ नामकूं श्रवणकरि राग-द्वेष नाहीं करना सो नाम सामायिक है। कोऊ स्थापना प्रमाणादिककरि सुन्दर है, कोऊ प्रमाणादिककरि हीनाधिककरि असुन्दर है तिनके विषै राग द्वेषका अभाव सो स्थापना सामायिक है। सुवर्ण रूपा रत्न मोती इत्यादिक अर मृत्तिका काष्ठ पाषाण कंटक छार भस्म धूल इत्यादिकनिमें रागद्वेष रहित सम देखना सो द्रव्यसामायिक है। महल उपवनादि

रमणीक, श्मशानादिक अरमणीक क्षेत्रमें राग–द्वेष छांडना सो क्षेत्रसामायिक है, हिम, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरत ये ऋतु अर रात्रि दिवस अर शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष इत्यादिक काल विषै रागद्वेषको वर्जन सो काल सामायिक है। अर समस्त जीवनिके दुःख मति होहू ऐसा मैत्रीभावकरि अशुभ परिणामनिका अभाव करना सो भावसामायिक है; ऐसैं छह प्रकार सामायिक कह्या । अब छह प्रकार स्तवन कहै हैं चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका अर्थ सहित एकहजार आठ नामकरि स्तवन करना सो नामस्तवन है अर कृत्रिम अकृत्रिम अपरिमाण तीर्थंकर अरहंतनिके प्रतिबिंबनिका स्तवन सो स्थापना स्तवन है अर समवसरणस्थित काल देह–प्रभा, प्रातिहार्यादिकनिकरि स्तवन सो द्रव्यस्तवन है । अर कैलाश संमेदाचल ऊर्जयंत (गिरनार) पावापुर चंपापुरादि निर्वाण क्षेत्रनिका तथा समवसरणमें धर्मोपदेशक क्षेत्रका स्तवन सो क्षेत्र स्तवन है । अर स्वर्गावतरण जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाणकल्याणकके कालका स्तवन सो कालस्तवन है, अर केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयभावका स्तवन सो भावस्तवन है ऐसैं छह प्रकार स्तवन कह्या । ये तीर्थंकर वा सिद्ध तथा आचार्य उपाध्याय साधु इनमें एक-एकका नामका उच्चारण करना सो नामवंदना है अर अरहंत सिद्धआचार्यादिकनिमें एकका प्रतिबिंबादिककी वंदना सो स्थापना वंदना है । तिनके शरीरकी वंदना सो द्रव्यवंदना है । अरहंत सिद्ध आचार्यादिकनिकरि व्याप्त जो क्षेत्र ताकी वंदना सो क्षेत्रवंदना है । तिन ही पंचपरमगुरुनिमें कोऊ एक करि व्याप्त जो काल ताकी वंदना सो कालवंदना है । ये तीर्थंकरका वा सिद्धका वा आचार्यका वा उपाध्याय का वा साधुके आत्मगुणनिकूं वंदना करना सो भाववंदना है । ऐसैं छह प्रकार वंदना कही ।

अब छह प्रकार प्रतिक्रमण कहै हैं । अयोग्य नामके उच्चारणमें कृतकारितअनुमोदनारूप मन वचन कायतैं उपज्या दोषका निराकरणके अर्थि प्रतिक्रमण करना सो नामप्रतिक्रमण है । कोऊ शुभ अशुभ स्थापनाका निमित्ततैं मनवचनकायतैं उपज्या दोषतैं आत्माकूं निवृत्त करना सो स्थापनाप्रतिक्रमण है । अर द्रव्य जो आहार पुस्तक औषधादिकके निमित्ततैं मनवचनकायतैं उपज्या दोषका निराकरणके अर्थ द्रव्यप्रतिक्रमण है । क्षेत्रमें गमनस्थानादिकके निमित्ततैं उपज्या अशुभपरिणामजनित दोषनिका निराकरणके अर्थ क्षेत्रप्रतिक्रमण है । अर दिवस रात्रि पक्ष ऋतु शीत उष्ण वर्षाकाल इनके निमित्ततै उपज्या अतीचार का दूर करनेकूं प्रतिक्रमण करना सो काल प्रतिक्रमण है । अर रागद्वेषादिभावनितैं उपज्या दोषके दूर करनेकूं भावप्रतिक्रमण कहै हैं । बहुरि अयोग्य पापके कारण के नामउच्चारण करनेका त्याग सो नामप्रत्याख्यान है अर अयोग्य मिथ्यात्वादिकके प्रवर्तावनेवाली स्थापना करनेका त्याग सो स्थापना है । पापबंधका कारण सदोष द्रव्य वा तपके निमित्त निर्दोष द्रव्यकाहू मनवचनकाय

करि त्याग सो द्रव्यप्रत्याख्यान है । बहुरि असंजमका कारण क्षेत्रका त्याग सो क्षेत्रप्रत्याख्यानं है । असंजमका कारण कालका त्याग सो काल प्रत्याख्यान है । मिथ्यात्व असंजम कषायादिकनिका त्याग सो भावप्रत्याख्यान है । ऐसे छह प्रकार प्रत्याख्यान वर्णन किया । अब छह प्रकार कायोत्सर्गकूं कहै हैं । पापके कारण कठोर कटुक नामादिकतैं उपज्या दोषका दूर करनेके अर्थ कायोत्सर्ग करना सो नाम कायोत्सर्ग है । पापरूप स्थापनाका द्वारकरि आया अतीचार दूर करनेकूं कायोत्सर्ग करना सो स्थापनाकायोत्सर्ग है । सदोषद्रव्यके सेवनतैं तथा सदोष क्षेत्र-कालके सेवनतैं संयोगतैं उपज्या दोष दूर करनेकूं कायोत्सर्ग करना सो द्रव्यक्षेत्रकालकायोत्सर्ग है । मिथ्यात्व असंयमादिक भावनिकरि कीया दोष दूर करनेकूं कायोत्सर्ग करना सो भाव-कायोत्सर्ग है । ऐसे छह प्रकार छह आवश्यक वर्णन किये । अब गृहस्थके और हू छह प्रकारके आवश्यक हैं । भगवान जिनेंद्रका नित्यपूजन करना, निर्ग्रंथ गुरुनिका सेवन, स्तवन, चिंतवन नित्य करना, अर जिनेंद्रके प्ररूपे आगमका नित्य स्वाध्याय करना, इन्द्रियनिकूं विषयनितैं रोकना छहकाय जीवनकी दया पालना सो संयम है, शक्ति प्रमाण नित्य तप करना, शक्ति प्रमाण नित्य दान देना ये षट्प्रकारहू आवश्यक गृहस्थकूं नित्य नियमतैं अंगीकार करना योग्य है । ऐसे समस्त पापका नाश करने वाली भावनिकूं उज्ज्वल करनेवाली आवश्यकनिकी हानिका अभावरूप चौदमी भावना वर्णन करी ॥ १४ ॥

अब सन्मार्ग प्रभावना नाम पंद्रमी भावना वर्णन करै हैं । इहां सन्मार्ग जो मोक्षका सत्यार्थमार्ग ताका प्रभाव प्रगट करना सो मार्ग प्रभावना है । सो सन्मार्ग रत्नत्रय है रत्नत्रय आत्माका स्वभाव है वाकूं मिथ्यात्व, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ ये अनादितैं मलीन विपरीत करि राख्या है अब परमागमका शरण पाय मोकूं मिथ्यात्वादिक दोषनिकूं दूरिकर रत्नत्रयस्वभावकूं उज्ज्वल करना । यो मनुष्यजन्म अर इन्द्रियपूर्णता अर ज्ञानशक्ति अर परमागमका शरण अर साधर्मीनिका समागम अर रोगादिकरि रहितपना अर अति क्लेशरहित जीविका इत्यादिक पुण्यरूप सामग्री पायकरके हू जो आत्माकूं मिथ्यात्वकषायविषयादिकतैं नाहीं छुडाया तो अनन्तानन्त दुःखनिका भर्‍या संसारसमुद्रतैं मेरा निकसना अनन्तकालहू में नाहीं होयगा । जो सामग्री अवार मिली है सो अनन्तकालमेंहू अति दुर्लभ है अर अन्तरङ्ग बहिरङ्ग सकलसामग्री पाय करके हू जो आत्माका प्रभाव नाहीं प्रगट करूंगा तो अचानक काल आय समस्त संयोग नष्ट कर देगा तातैं अब मैं रागद्वेष मोह दूरकरि जैसैं मेरा शुद्ध वीतरागस्वरूप अनुभवगोचर होय तैसैं ध्यान स्वाध्यायमें ततपर होना । बहुरि बाह्यप्रवृत्ति भी

मेरी उज्ज्वलकरि अन्तर्गतधर्मका प्रभाव प्रगटकरि मार्गप्रभावना करना जाकूं देखि अनेक जीवनिके हृदयमें धर्मकी महिमा प्रवेश करि जाय। जिनेंद्रका उत्सव ऐसा करना जाकूं देखि हजारां लोकनिका भाव जिनेंद्रके जन्मकल्याणसमय जैसैं इन्द्रादिक देव अभिषेककरि अपना जन्म सफल किया तैसैं जयजयकार शब्दकरि हजारां स्तवनका उच्चारणकरि लोक आपकूं कृतार्थ मान तन मन प्रफुल्लित हो जाय तैसैं अभिषेककरि प्रभावना करना तथा जिनेंद्रकी बडी भक्ति अर बडी विनय अर निश्चल ध्यानकरि ऐसे पूजन करो जाकूं करते देखते अर शुद्धभक्तिके पाठ पढते तथा श्रवण करते हर्षके अंकूर प्रगट होंय आनन्द हृदयमें नाहीं समावता बाह्य उछलने लग जाय जिनकूं देखि मिथ्यादृष्टिनिका हू ऐसा परिणाम हो जाय अहो जैनीनिकी भक्ति आश्चर्यरूप है जामें ये निर्दोष उत्तम उज्ज्वल प्रमाणीक सामग्री अर ये उज्ज्ल सुवर्णके रूपाके तथा कांशा पीतलमय मनोहर पूजनके पात्र अर ये भक्तिके रसकरि भरे अर्थसहित कर्णनिकूं अमृतरूप सींचते शुद्ध अक्षरनिका उच्चारण अर एकाग्ररूप विनय सहित शब्दनिके अनुकूल उज्ज्वल द्रव्यका चढावना अर ये परमशांतमुद्रारूप वीतरागके प्रतिबिंब प्रातिहार्यनिकरि भूषितका पूजना स्तवन करना नमस्कार करना धन्य पुरुषनिकरि होय है। धन्य इनका मनवचनकाय अर धन इनका धन जो निर्वांछक होय ऐसे सन्मार्गमें लगावैं हैं। ऐसा प्रभाव व्याप्त हो जाय। अर देखनेतैं अर श्रवण करनेतैं निकटभव्यनि के आनन्दके अश्रुपात झरने लगि जाय। भक्ति ही संसारसमुद्रमें डूबतेनिकूं हस्तावलम्बन देनेवाली है हमारे भव-भवमें जिनेंद्रकी भक्ति ही शरण होहू ऐसा जिनेंद्रका नित्य पूजन करना तथा अष्टाह्निक पर्व में तथा षोडशकारण दशलक्षण रत्नत्रयपर्वमें समस्त पापके आरम्भ छांडि जिन पूजन करना आनन्दसहित नृत्य करना, कर्णनिकूं प्रिय ऐसे बादित्र बजावना तथा स्वर ताल मूर्छनादिसहित जिनेन्द्रके गुण गावनेतें समस्त सन्मार्ग प्रभावना है। सो जिनके हृदय में सत्यार्थ धर्म बसे हैं तिनके प्रभावना होय है। बहुरि जिनेन्द्रके प्ररूपे च्यार अनुयोगनिके सिद्धान्तनिका ऐसा व्याख्यान करना जाकूं श्रवण करनेतैं एकान्तका हठ नष्ट होय, अनेकान्त हृदयमैं रचि जाय पापनितैं कांपने लगि जाय, व्यसन छूटि जाय, दयारूपधर्ममें प्रवर्तन होजाय, अभक्ष्यभक्षणका त्याग होजाय ऐसा व्याख्यान करना जाके श्रवण करनेतैं हजांरा मनुष्यनिके कुदेव कुगुरु कुधर्मके आराधनका त्याग होयकै अर वतिराग देव दयारूप धर्म, आरम्भ-परिग्रहरहित गुरुनिके आराधनमें दृढ श्रद्धान होजाय तथा ऐसा व्याख्यान करना जो श्रवणकरि बहुत मनुष्य रात्रिभोजन अयोग्य भोजन, अन्यायका विषय, परधनमें राग छांडि व्रतनिमें शीलमें संयमभावमें संतोषभावमें लीन होजाय। तथा ऐसा उपदेश करना जाकरि देहादिक परद्रव्यनितैं भिन्न अपन आत्माका अनुभव होना, पर्यायमें आपा छूटना, जीव अजीवादिक

द्रव्यनिका प्रमाणनयनिक्षेपनिकरि निर्णय होय संशयरहित द्रव्यगुणपर्यायनिका सत्यार्थ स्वरूप प्रकट हो जाना मिथ्या अन्धकार दूर होना ऐसा आगमका व्याख्यानतैं सन्मार्गकी प्रभावना होय है । बहुरि घोर तपश्चरण करना जो कायरनिकरि नाहीं धारण किया जाय ऐसैं तपकरि प्रभावना होय है । क्योंकि विषयानुराग छांडि निर्वांछक होनेकरि आत्माका प्रभाव भी प्रकट होय है अर धर्मका मार्ग भी तपहीतैं दिपै है । यो तप ही दुर्गतिका मार्गका नष्ट करनेवाला है । तप बिना कामादिक विषय ज्ञानकूं चारित्रकूं नष्ट करि दे हैं, तपके प्रभावतैं कामका क्षय होय रसनाइंद्रियकी चपलता नष्ट होय लालसाका अभाव होय है यातैं रत्नत्रयकी प्रभावना तपहीतैं दृढ होय है । बहुरि जिनेन्द्रका प्रतिबिंबकी प्रतिष्ठा करना जिनेंद्रका मन्दिर करावना यातैं सन्मार्गकी प्रभावना है जातैं प्रतिष्ठा करावनेकरि जहां तांई जिनबिंब रहैगा तहां तांई दर्शन स्तवन पूजनादिकरि अनेक भव्य पुण्य उपार्जन करेंगे अर जिनमन्दिर करावेंगे तिन गृहस्थनिका ही धन पावना सफल होयगा । पूजन रात्रिजागरण शास्त्रनिका व्याख्यान श्रवण पठन, जिनेन्द्रका स्तवन सामायिक प्रतिक्रमण अनशनादिक तप नृत्य गान भजन उत्सव जिनमन्दिर होय तदि ही होय जिनममन्दिर विना धर्मका समस्त समागम होय ही नाहीं यातैं बहुत कहा लिखिये अपना परका परम उपकारका मूल प्रतिष्ठा करना अर मन्दिर करवाना है उत्कृष्टधर्मका मार्ग तो समस्त परिग्रह छांडि वीतरागता अंगीकार करना है परन्तु जाके प्रत्याख्यान वा अप्रत्याख्यान नाम कषायका उपशम भया नाहीं तातैं गृहसम्पदा छांडि जाय नाहीं अर धनसम्पदा बहुत होय तो प्रथम तो जिनका आप अन्यायसूं धन लिया होय ताके निकट जाय क्षमा ग्रहण कराय उनका धन लौटा देना, बहुरि धन बहुत होय तदि नवीन धन उपार्जनका त्याग करना, बहुरि तीव्ररागके बधावनेवाले इन्द्रियनिके विषयनिकी लालसा छांडि करि संवररूप होना, फिर जो धन है तामेंसूं अपने मित्र हितू पुत्री बहंण भूवा बन्धुजननिमें जे निर्धन रोगी दुःखित होय तिनको वा अनाथ विधवा होय तिनको यथायोग्य देय संतोषित करना, बहुरि अपने आश्रित सेवकादिक वा समीप वसनेवाले तिनको यथायोग्य सन्तोषित करकैं बहुरि पुत्रको स्त्रीको विभागादिक निरालो करि पीछैं जो द्रव्य होय ताकूं जिनबिंबके करवानेमें वा जिनबिंबकी प्रतिष्ठा करावनेमें तथा जिनेन्द्रके धर्मका आधार सिद्धान्तनिके लिखावनेमें कृपणता छांडि उदार मनतैं परके उपकार करनेकी बुद्धितैं धन लगावै है तिस समान कोऊ प्रभावना नाहीं है अर जे मंदिरप्रतिष्ठा तो करावैगा अर अनीतिकरि परधन राखि मेलैगा, अन्यायका धनकूं ग्रहण करेगा, तो ताकी समस्त प्रभावना नष्ट हो जायगी । तथा प्रतिष्ठा करावनेवाला मंदिर करावनेवाला खोटा बनिज व्यवहार करै तथा हिंसादिक महापापनिमें निंद्य अयोग्य वचननिमें तथा तीव्रलोभमें प्रवर्तैं, कुशील

में प्रवर्तैं तथा अतिकृपणताकरि परिणाममें संक्लेशरूप हुआ धनकूं खरच करै तो समस्त प्रभावना नष्ट हो जाय यातैं प्रतिष्ठाका करानेवाला, मंदिर करावनेवालाकी बाह्य प्रवृत्ति भी शुद्ध होय है ताकी प्रभावना होय है तथा शिखर कलश घंटा चढावनेकरि क्षुद्रघंटिका बांधनेकरि प्रभावना करै तथा मंदिरनिमें चंदोवा घन्टा सिंहासनादि उत्तम उपकरण चढावनेकरि अर स्वाध्यायमें प्रवृत्ति इत्यादिककरि प्रभावना दुःखका नाश करनेवाली होयं है प्रभावना शुद्ध आचरण करि होय है यातैं जिनवचनका श्रद्धानी होय सो धर्मकी प्रभावना ही करै जैनीनिका गाढा प्रेम देखि मिथ्यादृष्टीनिकैं हृदयमें हू वडी महिमा दीखै जैनीनिका धर्म जो प्राण जातै हू अभक्ष्यभक्षण नाहीं करै हैं, तीव्ररोग वेदना आवतैंहू रात्रिमें औषधि जलादिकका पान नाहीं करैं है, धन अभिमानादिक नष्ट होतें हू असत्य वचनादि नाहीं बोलैं हैं, महाआपदा आवतैं हू परधनमैं चित्त नाहीं चलावै हैं। अपना प्राण जातैं हू अन्य जीवका घात नाहीं करैं है तथा शीलका दृढता परिग्रहपरिमाणता परमसंतोष धारण करनेतैं आत्मप्रभावना होय अर मार्गकी प्रभावना हू होय तातैं समस्त धन जाते हू अर प्राण जातैं हू अपने निमित्ततैं धर्मकी निन्दा हास्य कदाचित् नाहीं करावै ताके सन्मार्ग प्रभावना अंग होय है। इस प्रभावनाकी महिमा कोटि जिह्वानितैं वर्णन करनेकी कोऊ समर्थ नाहीं है यातैं भो भव्यजन हो त्रिलोकमें पूज्य जो प्रभावनाअङ्ग ताकूं दृढ धारण करि याहींकूं भक्ति करि पूजो याका महाअर्घ उतारण करो जो प्रभावनाकूं दृढ धारण करै है सो इन्द्रादिक देवनिकरि पूज्य तीर्थंकर होय है ऐसै सन्मार्गप्रभावना‌ःनामा पंद्रमी भावना वर्णन करी ॥ १५ ॥

अब प्रवचनवत्सलत्व नाम सोलमी भावना वर्णन करै हैं। प्रवचन जो देव गुरु धर्म इनमें जो वात्सल्य कहिये प्रीतिभाव सो प्रवचनवत्सलत्व नाम कहिये है। जे चारित्रगुणयुक्त हैं शीलके धारक हैं परम साम्यभावकरि सहित बाईसपरीषहनिके सहनेवाले देहमें निर्ममत्व समस्त विषय-वांछारहित आत्महितमें उद्यमी परके उपकार करनेमें सावधान ऐसे साधुजननिके गुणनिमें प्रीतिरूपपरिणाम सो वात्सल्य है तथा व्रतनिके धारक अर पापसूं भयभीत न्यायमार्गी धर्ममें अनुरागके धारक मंदकषायी संतोषी ऐसे श्रावक तथा श्राविका तिनके गुणनिमें तिनकी संगतिमें अनुराग धारण करना सो वात्सल्य है तथा जे स्त्रीपर्यायमें व्रतनिकी हद्दकूं प्राप्त भये अर समस्त गृहाहिक परिग्रह छांडि कुटुम्बका ममत्व तजि देहमें निर्ममत्वता धार पंच इन्द्रियनिके विषय त्यागि एकवस्त्रमात्र परिग्रहकूं अवलम्बनकरि भूमिशयन क्षुधा तृषा शीतउष्णादि परिषहनिके सहनेकार संयमसहित ध्यान स्वाध्याय सामायिकादिक आवश्यकनिकरि युक्त अर्जिकाकी दीक्षा ग्रहणकरि संयमसहित काल व्यतीत करै

हैं तिनके गुणनिमें अनुराग सो वात्सल्यभाव है तथा मुनीश्वरनिकी ज्यों वनमें निवास करते बाईस परीषह सहते उत्तम क्षमादि धर्मके धारक देहमें निर्ममत्व आपके निमित्त किया औषध अन्न–पानादि नाहीं ग्रहण करते एक वस्त्र कोपीन बिना समस्त परिग्रहके त्यागी उत्तम श्रावकनिके गुणनिमें अनुराग वात्सल्य है तथा देव गुरु धर्मका सत्यार्थ स्वरूपकूं जानि दृढश्रद्धानी धर्ममें रुचिके धारक अव्रतसम्यग्दृष्टिमें वात्सल्यता करहु । इस संसारमें अपने स्त्रीपुत्र कुटुम्बादिकनिमें तथा देहमें इन्द्रियनिके विषयनिके साधकनिमें अनादितैं अति अनुरागी होय याहीके अर्थि कटैं हैं । मरैं हैं अन्य को मारैं हैं, ऐसा कोऊ मोहका अद्भुत माहात्म्य है । ते धन्य पुरुष है जे सम्यग्ज्ञानतैं मोहकूं नष्टकरि आत्माके गुणनिमें वात्सल्यता करै है संसारी तो धनका लालसाकरि अति आकुल भए धर्ममें वात्सल्यता त्यागैं है अर संसारिनिके धन बधे है तादि अतितृष्णा बधै है । समस्त धर्मका मार्ग भूल जाय धर्मात्मानिमें दूरहीतैं वात्सल्यता त्यागै है रात्रि-दिन धनसंपदाके बंधावनेमें ऐसा अनुराग बधै है । लाखनिका धन हो जाय तो कोटनिमें वांछा करता आरम्भ परिग्रहकूं बंधावता पापनिमें प्रवीणता बंधावता धर्म में वात्सल्य नियमतैं छांडे है जहां दानादिकमें परोपकारमें धन लगावता दीखै तहां दूरहीतैं टालि निकलै है और बहु आरम्भ बहुपरिग्रह अतितृष्णाकै समीप आया नरकका वास ताकूं नाहीं देखैं है तामें पंचमकालका धनाढ्यां तो पूर्व मिथ्याधर्म कुपात्रदान कुदाननिमें रचि ऐसा कर्मबंध आया है सो नरक तिर्यंचगतिकी परिपाटी असंख्यातकालपर्यंत नाहीं छूटै उनका तन मन बचन धन धर्मकार्यमें नाहीं लागै है । रात्रिदिन तृष्णा अर आरम्भ करि क्लेशित रहें तिनके धर्मातममें अर धर्मके धारणमें कदाचित् वात्सल्यता नाहीं होय है अर धन रहित धर्मात्मा हू ताकूं नीचा मानै है तातैं भो आत्मन् हितके वांछक हो धनसंपदाकूं महामदकी उपाजावनेवाली जानि अर देहकूं अस्थिर दुखदाई जाजि कुटुम्बकूं महाबंधन मानि इनसूं प्रीति छांडि अपने आत्माकूं वात्सल्य करो । धर्मात्मामें, व्रतीनिमें, स्वाध्यायमें, जिनपूजनमें वात्सल्यता करो । जे सम्यक्चारित्ररूप आभरणकरि भूषित साधुजन हैं तिनको स्तवन करै हैं गौरव करै है तिनके वात्सल्यनाम गुण हैं सो सुगतिकूं प्राप्त करै है कुगतिका नाश करै है, वात्सल्यगुण के प्रभाव करकै ही समस्त द्वादशांग विद्या सिद्ध होय जातैं सिद्धान्तसूत्रमें अर सिन्द्धान्तका उपदेश करनेवाला उपाध्यायमें सांची भक्तिके प्रभावतें श्रुतज्ञानावरणकर्मका रस सूक जाय है तदि सकल विद्या सिद्ध होय है । वात्सन्यगुणके धारककूं देव नमस्कार करै है अर वात्सल्य करकै ही अठारह प्रकार बुद्धि ऋद्धि अर

आकाशगामिनी विक्रिया ऋद्धिं दोय प्रकार चारणऋद्धि अनेक प्रकार अर अष्ट प्रकार विक्रियाऋद्धि तीन प्रकार बलऋद्धि, सप्तप्रकार तपऋद्धि, छहप्रकार रसऋद्धि, छहप्रकार औषधऋद्धि, दोयप्रकार क्षेत्रऋद्धि इत्यादि अनेक शक्ति प्रकट होय हैं। यहां ऋद्धिनिका स्वरूप कहिये तो कथनी बधि जाय तातैं नाहीं लिख्या है अर्थप्रकाशिकादिनिमें लिख्या है तहातैं जानना।

वात्सल्य करके ही मन्दबुद्धिनिकै हू मतिज्ञान श्रुतज्ञान विस्तीर्ण होय हैं वात्सल्यके प्रभावतैं पापका प्रवेश नाहीं होय है वात्सल्यकर के तप हू भूषित होय है तपमें उत्साह विना तप निरर्थक है। यो जिनेन्द्रको मार्ग वात्सल्य करिही शोभाकूं प्राप्त होय है। वात्सल्यकरिही शुभ ध्यान वृद्धिकूं प्राप्त होय है वात्सल्यतैं ही सम्यग्दर्शन निर्दोष होय है। वात्सल्य करके ही दान दिया कृतार्थ होय है। पात्रमें प्रीति विना तथा देनेमें प्रीति विना दान निंदाका कारण है। जिनवाणीमें वात्सल्य जाके होयगा ताहीके प्रशंसा योग्य सांचा अर्थ उद्योतरूप होयगा जाके जिनवाणी में वात्सल्य नाहीं, विनय नाहीं ताकूं यथावत् अर्थ नाहीं दीखैगा विपरीत ग्रहण करैगा इस मनुष्य जन्मका मण्डण वात्सल्य ही है वात्सलयरहित बहुत मनोज्ञ आभरण वस्त्र धारण करना हू पद-पदमें निंद्य होय है। अर इस लोकका कार्य जो यशको उपार्जन, धर्मको उपार्जन धनको उपार्जन सो वात्सल्य हीतैं होय है। अर परलोक जो स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देवपना सो हू वात्सल्यहीतैं होय है वात्सल्य विना इस लोकका समस्त कार्य नष्ट हो जाय, परलोकमें देवादिगति नाहीं पावै है। बहुरि अर्हंतदेव निर्ग्रंथगुरु स्याद्वादरूप परमागम दयारूप धर्ममें वात्सल्य है सो संसारपरिभ्रमणका नाशकरि निर्वाणकूं प्राप्त करै है तथा वात्सलयतैं ही जिनमन्दिरका वैयावृत्य जिनसिद्धान्तका सेवन साधर्मीनिका वैयावृत्य तथा धर्ममें अनुराग दान देनेमें प्रीति ये समस्त गुण वात्सल्यतैं ही होय हैं जे षट्कायके जीवनिमें वात्सल्य किया है ते ही त्रैलोक्यमें अतिशय रूप तीर्थंकर प्रकृतिका उपार्जन करै हैं यातै जे कल्याणके इच्छुक हैं ते भगवान जिनेन्द्रका उपदेश्या वात्सल्यगुणकी महिमा जानि षोडशमा अंग जो वात्सल्य ताका स्तवनकरि पूजनकरि याका महान अर्घ उतारण करै हैं। सो दर्शनकी विशुद्धता पाय बहुरि तप आचरणकरि अहमिंद्रादि देवलोककूं प्राप्त होय फिर जगतका उद्धारक तीर्थंकर होय निर्वाण कूं प्राप्त होय है। षोडश कारण धर्मकी महिमा अचिंत्य है जातैं त्रैलोक्यमें आश्चर्यकारी अनुपम विभवके धारक तीर्थंकर होय हैं। ऐसे षोडश भावना संक्षेप-विस्ताररूप वर्णन किया ॥ १६ ॥

अब धर्मका स्वरूप दशलक्षण रूप है इन चिह्ननिकरि अन्तर्गत धर्म जानिये है। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम

ब्रह्मचर्य ए दश धर्मके लक्षण हैं । जातैं धर्म तो वस्तुका स्वभावहीकूं कहिये है लोकमें जेतें पदार्थ हैं तितने अपने स्वभावकूं कदाचित् नाहीं छांडै हैं । जो स्वभावका नाश हो जाय तो वस्तुका अभाव होय, सो होय नाहीं आत्मा नाम वस्तुका स्वभाव क्षमादिक रूप है अर क्रोत्रादिक कर्मजनित उपाधि हैं आवरण हैं । क्रोध नाम धर्मका अभाव होय तदि क्षमा नाम आत्माका स्वभाव स्वयमेव रहै है ऐसैं ही मानका अभावतैं मार्दवगुण अर मायाके अभावतैं आर्जवगुण लोभके अभावतैं शौचगुण इत्यादिक आत्माके गुण हैं ते कर्मके अभावतैं स्वयमेव प्रगट होय हैं तातैं ये उत्तम क्षमादिक आत्माका स्वभाव हैं मोहनीय कर्मके भेद क्रोधादिक कषायनिकरि अनादिका आच्छादित होय रहै हैं कषायके अभावतैं क्षमादिक स्वाभाविक आत्माका गुग उघडै है। अब उत्तम क्षमागुणकूं वर्णन करै हैं—

क्रोध वैरीका जीतना सो ही उत्तम क्षमा है। कैसाक है क्रोध वैरी ? इस जीवके निवास करने का स्थान जे संयमभाव सन्तोषभाव निराकुलताभाव ताकूं दग्ध करनेकूं अग्नि समान सम्मग्दर्शनादिरूप रत्ननिका भंडारकूं दग्ध करै है, यशकूं नष्ट करै है, अपयशरूप कालिमाकूं बधावै है, धर्म, अधर्मका विचार नष्ट होय जाय है, क्रोधीके अपना मन वचन काय आपके वश नाहीं रहै है । बहुत कालहूकी प्रीतिकूं क्षणमात्रमें बिगाडि महान वैर उत्पन्न करै है क्रोधरूप राक्षसके वश होय सो असत्य वचन लोकनिंद्य भील-चाण्डालादिकनिके वोलनेयोग्य वचन बोलै है । क्रोधी समस्त धर्म लोपै है, क्रोधी होय तब पिताने मारि नाखै माताकूं पुत्रकूं स्त्रीकूं बालककूं स्वामीकूं सेवककूं मित्रकूं मारि प्राणरहित करै है । अर तीव्रक्रोधी आपका हू विषतैं शस्त्रतैं मरण करै है ऊंचे मकान तथा पर्वतादिकतै पतन करै है, कूपमें पडै है, क्रोधीकी कोऊ प्रकार प्रतीति नाहीं जाननी । क्रोधी है सो यमराजतुल्य है, क्रोधी होय सो प्रथम तो अपना ज्ञानदर्शन क्षमादिक गुणनिकूं घातै है पीछै कर्मके वशतैं अन्यका घात होय वा नाहीं होय, क्रोधके प्रभावतैं महातपस्वी, दिगम्बरमुनि धर्मतैं भ्रष्ट होय नरक गये हैं । यो क्रोध है सो दोऊ लोकका नाश करै है, महापापबन्ध कराय नरक पहुंचावै है, बुद्धि भ्रष्ट करै है, निर्दयी करदे है अन्यकृत उपकारकूं भुलाय कृतघ्न करै है तातैं क्रोधसमान पाप नाहीं, इस लोकमें क्रोधादिक कषाय-समान अपना घात करनेवाला अन्य नाहीं है । जो लोकमें पुण्यवान है महाभाग्य है जिनका दोऊ लोक सुधारना है तिनहींके क्षमा नाम गुण प्रगट होय है । क्षमा जो पृथ्वी ताकी ज्यौं सहनेका स्वभाव होय सो क्षमा है । अर सम्यक् स्वरूपकूं हित अहितकूं समझकरि जो असमर्थनिकरी किया हू उपद्रवनिकूं आप समर्थ होय करके रागद्वेषरहित हुआ सहै है, विकारी नाहीं होय है ताकूं उत्तम-क्षमा कहिये है । इहां उत्तम

शब्द सम्यग्ज्ञानसहित होनेकूं कह्या है । उत्तमक्षमा त्रैलोक्यमें सार है उत्तमक्षमा संसारसमुद्रतैं तारनेवाली है उत्तमक्षमा है सो रत्नत्रयकूं धारण करनेवाली है उत्तमक्षमा दुर्गतिके दुःखनिकूं हरनेवाली है जाके क्षमा होय ताके नरक अर तिर्यंच दोऊ गतिनि में गमन नाहीं होय है उत्तमक्षमाकी लार अनेकगुणनिका समूह प्रकट होय हैं मुनीश्वरनिकूं तो अति प्यारी उत्तमक्षमा है उत्तमक्षमाका लाभकूं ज्ञानीजन चिंतामणिरत्न मानैं है अर उत्तमक्षमा ही मनकी उज्ज्वलता करै है क्षमागुण विना मनकी उज्ज्वलता अर स्थिरता कदाचित् ही नाहीं होय है, वांछित सिद्ध करनेवाली एक क्षमा ही है । इहां क्रोधके जीतनेकी भावना ऐसी जाननीकोऊ आपकूं दुर्वचनादिकरि दुःखित करै गाली दे चोर कहै अन्यायी, पापी, दुराचारी, दुष्ट, नीच वा दोगलो चण्डाल पापी कृतघ्नी ऐसैं अनेक दुर्वचन कहै तो ज्ञानी ऐसी भावना करै जो याका मैं अपराध किया है कि नाहीं किया है ? जो मैं याका अपराध किया तथा रागद्वेष मोहका वशतें कोई बातकरि दुखाया है तदि मैं अपराधी हूं मोकूं गाली देना धिक्कार देना नीच, चोर कपटी, अधर्मी कहना न्याय है मोकूं इस सिवाय भी दण्ड देना सो भी ठीक है, मैं अपराध किया है मोकूं गाली सुनि रोष नाहीं करना ही उचित है। अपराधीकूं नरकमें दण्ड भोगना पडै है तातैं मेरा निमित्तसूं याके दुःख भया तदि क्लेशित होय दुर्वचन कहै है ऐसा विचारकरि क्लेशित नाहीं होय क्षमा ही करै है । अर जो दुर्वचन कहनेवाला मन्दकषायी होय तो आप जाय क्षमा ग्रहण करावनेकूं कहै भो कृपालु ! मैं अज्ञानी प्रमादके वा कषायके वश होय आपका चित्तकूं दुखाया सो अब मैं अपराध माफ कराऊं हूं आगानै ऐसा काय चूककरि नाहीं करूंगा, एकबार चूकी जाय ताकी चूककूं महत्पुरुष माफ करै हैं अर जो आगला न्याय रहित तीव्रकषाय होय तो वासूं अपराध माफ करावनेको जाय नाहीं कालांतरमें क्रोध उपशांत हुआ पाछे माफ करावै । अर जो आप अपराध नाहीं किया अर ईर्षाभावतैं केवल दुष्टतातैं आपकूं दुर्वचन कहै तथा अनेक दोष लगावै तो ज्ञानी किंचितसंक्लेश नाहीं करैं ऐसा विचारै जो मैं याका धन हऱ्या होय तथा जमीन जायगा खोंसि होय, तथा याकी जीविका बिगाडी होय चुगली खाई होय तथा याका दोष कहणादि करकै जो मैं अपराध किया होय तो मोकूं पश्चात्ताप करना उचित है जो मैं अपराध नाहीं किया तदि मोकूं कुछ फिकर नाहीं करना, यो दुर्वचन कहै सो नामकूं कहै है तथा कुलकूं कहै है सो नाम मेरा स्वरूप नाहीं, जाति–कुलादि मेरा स्वरूप नाहीं, मैं तो ज्ञायक हू जाकूं कहै सो मैं नाहीं । मैं हूं ताकूं वचन पहुँचै नाहीं तातैं मोकूं क्षमा ग्रहण करना ही श्रेष्ठ है । बहुरि जो यो दुर्वच्चन कहै सो मुख याका, अभिप्राय याका, जिह्वा दंत ओष्ठ याका अर शद्ध अर पुद्गल याका परिणामनिकरि

शब्द उपज्या जाकूं श्रवणकरि मैं जो विकारकूं प्राप्त होऊं तो या मेरी बडी अज्ञानता है । बहुरि जो ईर्षावान दुष्ट पुरुष मोकूं गाली दे ह सो स्वभावकरि देखिये तो गाली कुछ वस्तु ही नाहीं है मेरे कहां हू गाली लगी नाहीं दीखै है अवस्तुमें देने लेनेका व्यवहार ज्ञानी होय सो कैसे संकल्प करै । बहुरि जो मोकूं चोर कहै अन्या!यी कपटी अधर्मी इत्यादिक कहै तहां ऐसा चिंतवन करै ‘जो हे आत्मन् तू अनेकवार चोर हुआ, अनेक जन्ममें व्यभिचारी, जुआरी, अभक्ष्यभक्षी, भील, चांडाल, चमार, गोला, बांदा, शुकर, गधा इत्यादिक तिर्यंच तथा अधर्मी पापी कृतघ्नी होय होय आया अर संसारमें भ्रमण करता अनेकवार होऊंगा अव तो कूकर शूकर चोर चांडाल कहै ताकूं श्रवणकरि तोकूं क्लेशित होना बडा अनर्थ है अथवा ये दुष्टजन दुर्वचन कहै है सो याको अपराध नाहीं हमारा बांध्या पूर्वजन्मकृत कर्मका उदय है सो याके दुर्वचन कहनेके द्वारकरि हमारे कर्मकी निर्जरा होय है सो हमारे बडा लाभ है इनका यह हू उपकार है जो ये दुर्वचन कहनेवाले अपना पुण्यका समूहका तो दोष कहनेकरि नाश करै हैं अर मेरे किये पापकूं दूरि करैं हैं ऐसे उपकारीतैं जो मैं रोष करूं तो मो समान कोऊ अधम नाहीं है । बहुरि यो तो मोकूं दुर्वचन ही कह्या है । मार्‍या तो नाहीं, रोषकरि मारने लगि जाय है क्रोधी तो अपने पुत्र पुत्री स्त्री बालादिककूं मारै है सो मोकूं मार्‍या नाहीं यो भी लाभ है अर जो दुष्ट आपकूं मारै तो ऐसा विचारै जो मोकूं मार्‍या ही, प्राणरहित तो नाहीं किया दुष्ट तो आपका मरण नाहीं गिन करके भी अन्यकूं मारै है यो भी मेरे लाभ है । अर जो प्राणरहित करै तो ऐसा विचारै एक बार मरणो ही छों कर्मका ऋण चुक्यो । हम यहां ही कर्मके ऋणरहित भये हमारा धर्म तो नाहीं नष्ट भया । प्राणधारण तो धर्महीतैं सफल है ये द्रव्यप्राण तो पुद्गलमय हैं मेरा ज्ञान दर्शन क्षमादिधर्म ये भावप्राण हैं इनका घात क्रोधकरि नाहीं भया इस समान मेरे लाभ नाहीं है । बहुरि जो कल्याणरूप कार्य हैं तिनमें अनेक विघ्न आवैं ही हैं जो मेरे विघ्न आया सो, ठीक ही है । मैं तो अब समभावकूं आश्रय करूं अर जो उपद्रव आवते मैं क्षमाछांडि विकारकूं प्राप्त हूगा तो मोकूं देखि अन्य मंदज्ञानी तथा कायर त्यागी तपस्वी धर्मतें शिथिल हो जायंगे तो मेरा जन्म केवल अन्यके क्लेशके अर्थि ही भया । तथा मैं वीतरागधर्म धारण करके हू क्रोधी विकारी दुर्वचन होऊं तो मोकूं देखि अन्य हू क्रोधमें प्रवर्तने लगि जांय तदि धर्मकी मर्यादा भङ्गकरि पापकी परिपाटी चलाने वाला मैं ही प्रधान भया तातैं क्षमागुण प्राण जाते हू धन अभिमान होते हू मोकूं छांडना उचित

नाहीं । बहुरि पूर्वे मैं अशुभकर्म उपजाया ताका फल मैं ही भोगूंगा अन्य जे जन है ते तो निमित्तमात्र हैं इनके निमित्ततैं पाप उदय नाहीं आता तो अन्यके निमित्ततैं आता । उदयमैं आया कर्म तो फल दिये विना टलता नाहीं । बहुरि ये लौकिक अज्ञानी मेरेविषै क्रोधित होय दुर्वचनादिक करि उपद्रव करैं हैं अर जो मैं भी यातैं दुर्वचनादिककरि उत्तर करूं तो मैं तत्त्वज्ञानी अर ये अज्ञानी दोऊ समान भया हमारा तत्वज्ञानीपना निरर्थक भया न्यायमार्गतैं उदयमें आया मेरा पापकर्म ताकूं सन्मुख होते कौन विवेकी अपना आत्माकूं क्रोधादिकनिके वश करै । भो आत्मन् ! पूर्वे बांध्या जो असाताकर्म ताका अब उदय आया ताकूं इलाजरहित अरोक जानि करके समभावनितैं सहो जो क्लेशित होय भोगोगे तो असाताकूं तो भोगोहीगे अर नवीन बहुत असाताका बंध और करोगे तातैं होनहार दुःखतैं निःशंकित होय समभावतैं ही सहो ये दुष्टजन बहुत हैं अपना सामर्थ्य करके मेरे रोषरूप अग्निकूं प्रज्वलितकरि मेरा समभावरूप संपदाकूं दग्ध किया चाहैं हैं अब यहां जो असावधान होय क्षमाकूं छांड दूंगा तो अवश्य ही साम्यभाव नष्ट करकै धर्म अर अपना यशका नाश करने वाला होय जाऊंगा तातैं दुष्टनिका संसर्गमें सावधान रहना उचित है । ज्ञानी मनुष्य तो नाहीं सह्या जाय ऐसा क्लेशकूं उत्पन्न होते हू पूर्वकर्मका नाश होना जानि हर्षित ही होय है, जो वचनकंटकनिकरि बेध्या जो मैं क्षमा छांड दूंगा तो क्रोधी अर मैं समान भया । अर जो वैरी नानाप्रकारका दुर्वचन मारण पीडन करकैं मेरा इलाज नाहीं करै तो मैं संचय किये अशुभकर्म तिनतैं कैसे छूटता ? तातैं वैरी हू हमारा ही उपकार किया है । अथवा तातैं विवेकी होय जो जिनआगमके प्रमादतैं साम्यभावका अभ्यास किया ताकी परीक्षा लेनेकूं ये वैरीरूप परीक्षा स्थान प्रगट भया है सो मेरे भावनिकी परीक्षा करी, ये परीक्षा करनेको ही कर्म उदय भये हैं जो समभावकी मर्यादाकूं भेदकरि जो मैं वैरीनिमें रोष करूं तो ज्ञाननेत्रका धारक हूं मैं समभावकूं नाहीं प्राप्त होय क्रोधरूप अग्निमें भस्म होय जाऊं । मैं वीतरागके मार्गमें प्रवर्तन करने वाला संसारकी स्थिति छेदनेमें उद्यमी अर मेरा ही चित्त जो द्रोहकूं प्राप्त हो जाय तो संसारके मार्गमें प्रवर्तते मिथ्यादृष्टीनिके समान मैं हू भया । अर जो दुष्ट जननिकूं न्याय धर्मरूप मार्ग समझाया अर क्षमा ग्रहण कराया जो नाहीं समझै अर क्षमा ग्रहण न करै तो ज्ञानीजन वासूं रोष नाहीं करै । जैसें विष दूर करनेवाला वैद्य कोऊका विष दूरि करनेकूं अनेक औषधादि देय विष दूरि कर्‍या चाहे अर वाका जहर दूरि नाहीं होय तो वैद्य आप जहर नाहीं खाय है जो याका विष दूर नाहीं भया तो मैं हू विष भक्षणकरि मरूं' ऐसा न्याय नाहीं है तैसैं ज्ञानीजनहू दुष्टजनकी पहली दुष्टताकी जाति पिछानै जो यो दुष्टता छांडैगा वा नाहीं छांडैगा वा अधिक दुष्टता धारैगा, ऐसा विचारि जो विपरीत परिणमता देखि

ताकूं तो उपदेश ही नाहीं देना अर कुछ समझने लायक योग्यता दीखै तो न्याय वचन हितमितरूप कहना । अर दुष्टता नाहीं छांडै तो आप क्रोधी नाहीं होना जो यो मोकूं दुर्वचनादि उपद्रवकरि नाहीं कम्पायमान करै तो मैं उपशम भावकरि धर्मका शरण कैसैं ग्रहण करता तातैं जो मोकूं पीडा करनेवाला है सो मोकूं पापतैं भयभीत करि धर्मसूं सम्बन्ध कराया है तातैं पीडा करनेवालाहू मेरा प्रमादीपना छुडाय बडा उपकार किया है । बहुरि जगतमें केतेक उपकारी तो ऐसें हैं जो अन्यजनके सुख होनेके निमित्त अपना शरीरकूं छांडै हैं अर धनकूं छांडै हैं तो मेरे दुर्वचन बन्धनादिक सहनेमें कहां जायगा मोकूं दुर्वचन कहे ही अन्यके सुख हो जाय तो मेरे क्या हानि है ? बहुरि जो अपनेकूं पीडा करनेवालेतैं रोष नाहीं करूं तो वैरी के पुण्यका नाश होय है अर मेरे आत्माके हितकी सिद्धि होय है अर पीडा करनेवालेतैं रोष करूं तो मेरा आत्माका हितका नाश होय दुर्गति होय यातैं प्राणनिका नाश होते हू दुष्टनि प्रति क्षमा करना ही एक हित सत्पुरुष कहैं हैं तातैं आत्मकल्याणकी सिद्धिके अर्थि क्षमा ही ग्रहण करूं । अथवा दुष्टनिकरि दुर्वचनादिक पीडा करनेतैं मेरे जो क्षमा प्रगट भई है सो मेरे पुण्यका उदयतैं या परीक्षाभूमि प्रगट भई है जो मैं इतना कालतैं वीतरागका धर्म धारण किया सो अब क्रोधादिकके निमित्ततैं साम्यभाव रह्या कि नाहीं रह्या ऐसी परीक्षा करूं । बहुरि सोई साम्यभाव प्रशंसा-योग्य है अर सो ही कल्याणका कारण है जो मारनेके इच्छुक निर्दयीनिकरि मलीन नाहीं किया गया । बहुरि चिरकालतैं अभ्यास किया शास्त्र करके अर स्वभाव करके कहा साध्य है जो प्रयोजन पड्यां व्यर्थ हो जाय है धैर्य वो ही प्रशंसा योग्य है जो दुष्टनिके कुवचनादि होते नाहीं छूटै दृढ रहे उपद्रव आये विना तो समस्त जन सत्य शौच क्षमाके धारक बन रहे हैं जैसैं चन्दनवृक्षकूं कुल्हाडा काटै तौ हू कुल्हाडेका मुखकूं सुगन्ध ही करै तैसैं जाकी प्रवृत्ति होय सोही सिद्धिकूं साध्या है । बहुरि अन्यकरि किया उपसर्गतैं वा स्वयमेव आया उपसर्ग तिनकरि जाका चित्त कलुषित नाहीं होय सो अविनाशी सम्पदाकूं प्राप्त होय है । अज्ञानी हैं ते अपने भावनिकरि पूर्व किया पापकर्म ताके अर्थि तो नाहीं रोष करैं अर जो कर्मके फल देनेके बाह्यनिमित्त तिनि प्रति क्रोध करे हैं जिस कर्मका नाशतैं मेरा संसारका संताप नष्ट हो जाय सो कर्म स्वयमेव भोग्या तौ मेरे वांछित सिद्ध भया । बहुरि यो संसाररूप वन अनन्त संक्लेशनिकरि भऱ्या है इसमें वसनेवालाके नानाप्रकारके दुःख नाहीं सहने योग्य हैं कहा ? संसारमैं तो दुःख ही है जो इस संसारमें सम्यग्ज्ञान विवेककरि रहित अर जिनसिद्धांततैं द्वेष करने वाले अर महानिर्दयी अर परलोकका हितके अर्थि जिनके बुद्धि नाहीं अर क्रोधरूप अग्निकरि प्रज्वलित अर दुष्टताकरि सहित विषयनिकरि लोलुपताकरि अन्ध हठग्राही महाअभिमानी कृतघ्नी ऐसे बहुत दुष्टजन नाहीं होते तो उज्ज्वल बुद्धिके धारक सत्पुरुष

व्रत तपश्चरणकरि मोक्षके अर्थि उद्यम कैसैं करते ? ऐसे क्रोधी दुर्वचनके बोलनेहारे हठग्राही अन्यायमार्गीनिकी अधिकता देखि करके ही सत्पुरुष वीतरागी भये हैं अर जो मैं बडे पुण्यके प्रभावतैं परमात्माका स्वरूपका ज्ञाता भयो अर सर्वज्ञकरि उपदेश्या पदार्थनिकूं हू निर्णयरूप जाण्या अर संसारके परिभ्रमणादिकतैं भयभीत होय वीतरागमार्गमें हू प्रवर्तन किया । अब हू जो क्रोधके वश हूंगा तो मेरा ज्ञान चारित्र समस्त निष्फल होयगा अर धर्मका अपयश करावनवारा होय दुर्गतिका पात्र हूँगा। बहुरि और हू पद्मनंदिमुनि कह्या है जो मूर्खजनकरि बाधा पीडा अर क्रोधके वचन अर हास्य अर अपमानादिक होते हू जो उत्तमपुरुषनिका मन विकारकूं प्राप्त नाहीं होय ताकूं उत्तमक्षमा कहिये है सो क्षमा मोक्षमार्गमें प्रवर्तते पुरुषके परम सहायताकूं प्राप्त होय है। विवेकी चिंतवन करै है हम तो रागद्वेषादि मलरहित उज्ज्वल मनकरि तिष्ठां अन्यलोक हमकूं खोटा कहो तथा भला कहो हमकूं कहा प्रयोजन है ? वीतरागधर्मके धारकानकूं तो अपने आत्माका शुद्धपना साधने योग्य है । जो हमारा परिणाम दोषसहित है अर कोऊ हितू हमकूं भला कह्या तो भला नाहीं हो जावैंगे, अर हमारा परिणाम दोषरहित है अर कोऊ हमकूं वैरबुद्धितैं खोटा कह्या तो हम खोटा नाहीं हो जावैंगे फल तो अपनी जैसी चेष्टा आचरण होयगा तैसा प्राप्त होयगा । जैसे कोऊ कांचकूं रत्न कह दिया अर रत्नकूं कांच कह दिया तो हू मोल तो रत्नका ही पावैगा कांचखण्डका बहुत धन कौन देवै । बहुरि दुष्टजन है ताका तो स्वभाव परके दोष कहा हू नाहीं होय तो हू परके दोष कह्यां विना सुखकूं प्राप्त नाहीं होय तातैं दुष्टजन हैं सो मेरे माहीं अविद्यमान हू दोष लोकमें घरघरमें समस्त मनुष्यनिप्रति प्रगटकरि सुखी होहू अर जो धनका अर्थी है सो मेरा सर्वस्व ग्रहणकरि सुखी होहू अर जो वैरी प्राणहरणका अर्थी है सो शीघ्र ही प्राण हरो अर स्थानको अर्थी है सो स्थान हरो मैं मध्यस्थ हूँ रागद्वेषरहित हूँ समस्त जगतके प्राणी मेरे निमित्ततैं तो सुखरूप तिष्ठो मेरे निमित्ततैं किसी प्राणीके कोऊ प्रकार दुःखं मति होहूं या मैं घोषणाकरि कहूँ हूं क्योंकि मेरा जीवना तो आयुकर्मके आधीन, अर धनका अर स्थानका जावना रहना पापपुण्यके आधीन है । हमारे किसी अन्य जीवसे वैर विरोध नाहीं है, समस्तके प्रति क्षमा है । बहुरि हे आत्मन् ! जे मिथ्यादृष्टि अर दुष्टतासहित अर हित-अहितका विवेकरहित मूढ ऐसे मनुष्यनिकरि किया जे दुर्वचनादिक उपद्रवनितैं अस्थिर हुआ बाधाकूं मानि क्लेशित होय रह्या है सो तीनों लोकका चूडामणि भगवान वीतराग है ताहि नाहीं जान्या कहां ? तथा वीतरागका धर्मकी उपासना नाहीं कीई कहां ? तथा लोकनिकूं मूर्ख नाहीं जान्या कहा ? मोही मिथ्यादृष्टि मूढनिके ज्ञान तो विपरीत ही होय है कर्मनिके वसि हैं तातैं इनमें क्षमा ही ग्रहण करना योग्य है। क्षमा

है सो इसलोकमें परमशरण है माताकी ज्यों रक्षा करनेवाली है बहुत कहा कहिये जिनधर्मकी मूल क्षमा है याके आधार सकलगुण हैं, कर्मनिर्जराको कारण है, हजारां उपद्रव दूरि करनेवाली है । यातैं धन जाते जीवितव्य जाते हू क्षमाकूं छांडना योग्य नाहीं । कोऊ दुष्टताकरि आपकूं प्राणरहित करै तिस कालमें हू कटुवचन मति कहो जो मारने वालेकूं भी अन्तर्गत वैर छांडि ऐसे कहो जो आप तो हमारे रक्षक ही हो परन्तु हमारा मरण आय पहुंच्या तदि आप कहा करो हमारे पाप कर्मका उदय आय गया तो हू हमारा बडा भाग्य है जो आप सरीखै महान् पुरुषनिके हस्तादिकतैं हमारा मरण होय । अर जो हम सरीखा अपराधीकूं आप दण्ड नाहीं दिये तो मार्ग मलीन हो जाय अर हम अपराधको फल नरक तिर्यंच गतिमें आगे भोगते सो आप हमकूं ऋणरहित किया । मैं आपसूं वैर विरोध मन वचन कायतैं छांडि क्षमा ग्रहण करूं हूं अर आप भी मेरे अपराधको दण्ड देय क्षमा ग्रहण करो । मैं रोगादिक कष्टकूं भोगि करिकैं अति दुःखतैं मरण करतो सो धर्मका शरणसूं ऋणरहित होय सज्जनकी कृपासहित मरण करस्यूं ऐसैं मारनेवालेसूं हू वैर त्यागि समभाव करना सो उत्तमक्षमा है । ऐसैं उत्तमक्षमा नामा धर्मकूं कह्या ॥ १ ॥

अब उत्तममार्दव नाम गुणकूं कहै हैं— मार्दवका स्वरूप ऐसा हैं जो मानकषायकरि आत्मामें कठोरता होय है सो कठोरताका अभाव होनेतैं जो कोमलता होय सो मार्दवनाम आत्माका गुण है । अर जो आत्माका अर मानकषाय का भेदकूं अनुभवकरि मान मदका छांडना सो उत्तममार्दव नाम गुण है । मानकषाय तो संसारका बधावनेवाला है अर मार्दव संसारपरिभ्रमणका नाश करनेवाला है । यो मार्दवगुण दयाधर्मका कारण है अभिमानीकै दयाधर्मका मूलहीतैं अभाव जानना कठोर परिणामी तो निर्दयी होय है मार्दवगुण समस्तके हित करनेवाला है । जिनके मार्दवगुण है तिनहीका व्रत पालना संयम धारणा ज्ञानका अभ्यास करना सफल है अभिमानीका निष्फल है । मार्दवनाम गुण मानकषायका नाश करनेवाला है अर पंचइंद्रिय अर मनकूं दंड देनेवाला है । मार्दवधर्मके प्रसादतैं चित्तरूप भूमिमें करुणारूप बेल नवीन फैलै हैं, मार्दव करके ही जिनेन्द्रभगवानमें तथा शास्त्रनिमें भक्ति का प्रकाश होय है । मद सहित के जिनेंद्रके गुणनिमें अनुराग नाहीं होय है मार्दवगुणकरि कुमतिज्ञानके प्रसारका नाश होय है कुमति नाहीं फैलै है अभिमानी के अनेक कुबुद्धि उपजै है मार्दव गुणकरि बडा विनय प्रवर्तै हैं, मार्दव करके बहुत कालका वैरी हू वैर छांडे हैं । मान घटै

तदि परिणामनिकी उज्ज्वलता होय । कोमल परिणाम करके ही दोऊ लोककी सिद्धि होय, कोमल परिणामीकूं इस लोक में सुयश होय हैं परलोकमें देवलोककी प्राप्ति होय । कोमल परिणाम करकैं ही अंतरंग बहिरंग तप भूषित होय है, अभिमानीका तप हू निंदवे योग्य हैं, कोमलपरिणामीतैं तीन जगतके लोकनिका मन रंजायमान होय है, मार्दव करकै जिनेंद्र का शासन जानिये है, मार्दव करकै अपना परका स्वरूप अनुभव करिये हैं, कठोर-परिणामीके आपापरका विवेक नाहीं होय है, मार्दव करके समस्त दोषनिका नाश होय है, मार्दवपरिणाम संसारसमुद्रतैं पार करै हैं । यातैं मार्दवपरिणामकूं सम्यग्दर्शनका अंग जानि निर्मल मार्दवधर्म का स्तवन करो संसारीजीवनिके अनादिकालका मिथ्यादर्शनका उदय होय रहा हैं ताका उदयकरि पर्यायबुद्धि हुआ जातिकूं, कुलकूं, विद्याकूं, ऐश्वर्यकूं, रूपकूं, तपकूं, धनकूं, अपना स्वरूप मानि इनका गर्वरूप होय रहा है । ताकूं ये ज्ञान नाहीं हैं जो ये जातिकुलादिक समस्त कर्मका उदयके आधीन पुद्गलके विकार हैं विनाशीक हैं मैं अविनाशी ज्ञानस्वभाव अमूर्तीक हूं मैं अनादिकालतैं अनेक जाति कुल बल ऐश्वर्यादिक पाय पाय छांडे हैं मैं अब कोनमें आपा धारूं समस्त धन यौवनका इंद्रियजनित ज्ञानादिक विनाशीक है क्षणभंगुर है, इनका गर्व करना संसारपरिभ्रमणका कारण है । इस संसारमें स्वर्गलोकका महाऋद्धिका धारक देव मरि करि एक समयमें एकेंद्रिय आय उपजै है तथा कूकर शूकर चांडालादिक पर्यायकूं प्राप्त होय है तथा चक्रवर्ती नवनिधि चौदह रत्ननिका धारक एकसमयमें मरि सप्तम नरकका नारकी होजाय है तथा बलभद्र नारायण का ऐश्वर्य नष्ट हो गया अन्यकी कहा कथा हैं ? जिनकी हजारां देव सेवा करें तथा तिनकै पुण्य का क्षय होते कोऊ एक मनुष्य पानी देवनेवाला हू नाहीं रह्या, अन्यपुण्य-रहित जीव कैसै मदोन्मत्त बन रहे हैं । बहुरि जे उत्तम ज्ञानकरि जगतमें प्रधान हैं अर उत्तम तपश्चरण करनमें उद्यमी हैं अर उत्तम दानी हैं ते हू अपने आत्माकूं अतिनीचा मान हैं तिनके मार्दवधर्म होय है ।

विनयवानपना मदरहितपना समस्त धर्मका मूल है समस्त सम्यग्ज्ञानादि गुणको आधार है जो सम्यग्दर्शनादि गुणनिका लाभ चाहो हो अर अपना उज्ज्वल यश चाहो अर वैरका अभाव चाहो हो तो मदनिकूं त्यागि कोमलपना ग्रहण करो, मद नष्ट हुवा विनयादिक गुण वचनकी मिष्टता पूज्यपुरुषनिका सत्कार दान सन्मान एक हू गुण नाहीं प्राप्त होयगा । अभिमानीका विना अपराध समस्त वैरी होजाय हैं अभिमानीकी समस्त निन्दा करै हैं अभिमानीका समस्त लोक पतन होना चाहें हैं । स्वामी हू अभिमानी सेवककूं त्यागै है, अभिमानीकूं गुरुजन विद्या देनेमें उत्साहरहित होय है, अपना सेवक पराङ्मुख होजाय, मित्र भाई हितू पडौसी याका पतन ही चाहै हैं, पिता गुरु उपाध्याय तो पुत्रकूं शिष्यकूं विनयवन्त देखकरि ही आनन्दित होय हैं । अविनयी

अभिमानी पुत्र वा शिष्य बडे पुरुषके मनहूकूं संतापित करै है जातैं पुत्रका तथा शिष्यका तथा सेवकका तो ये ही धर्म है जो नवीन कार्य करना होय सो पिता गुरु स्वामीकूं जनाय करि करै, आज्ञा मांगि करै तथा आज्ञाको अवसर नाहीं मिलै तो अवसर देखि शीघ्र ही जनावै यो ही विनय है या ही भक्ति है । जाका मस्तक ऊपरि गुरु विराजैं ते धन्य-भाग हैं, विनयवन्त मदरहित पुरुष हैं ते समस्त कार्य गुरुनिको जनाय दे हैं, धन्य हैं जे इस कलिकालमें मदरहित कोमल परिणामकरि समस्त लोकमें प्रवर्तै हैं । उत्तम पुरुष हैं ते बालकमें वृद्धमें, निर्धनमें, रोगीनिमें, बुद्धिरहित मूर्खनिमें, तथा जातिकुलादिहीनमें हू यथायोग्य प्रियवचन आदर सत्कार स्थानदान कदाचित् नाहीं चूकै हैं, प्रिय वचन ही कहैं, उत्तम पुरुष उद्धतताका वस्त्र आभरण नाहीं पहरैं उद्धतपणाका परके अपमानका कारण देन-लेन विवाहादि व्यवहार कार्य नाहीं करैं हैं, उद्धत होय अभिमानीपनाका चालना बैठना झांकना बोलना दूरहीतैं छांडे ताकैं लोकमें पूज्य मार्दवगुण होय है । धन पावना, रूप पावना, ज्ञान पावना विद्याकलाचतुराई पावना, ऐश्वर्य पावना, बल पावना जातिकुलादि उत्तमगुण जगन्मान्यता पावना तिनका सफल है जो उद्धततारहित, अभिमानरहित, नम्रतासहित, विनयसहित, प्रवर्तैं हैं अपने मनमें आपकूं सबतैं लघु मानता कर्मके परवस जानैं है सो कैसें गर्व करै ? नाहीं करै है । भव्यजन हो सम्यग्दर्शनका अङ्ग इस मार्दव अंगकूं जाणि चित्तके विश्र ध्यान करो, स्तवन करो । ऐसैं मार्दवधर्मको वर्णन कियो ॥ २ ॥

अब आर्जवधर्मकूं वर्णन करै हैं—धर्मका श्रेष्ठ लक्षण आर्जव है । आर्जव नाम सरलता का है, मन-वचनकायकी कुटिलताका अभाव सो आर्जव है । आर्जव धर्म है सो पापका खंडन करनेवाला अर सुख उपजानेवाला है । तातैं कुटिलता छांडि कर्मका क्षय करनेवाला आर्जवधर्म धारण करो । कुटिलता है सो अशुभकर्मका बंध करनेवाली है, जगतमें अति निंद्य है यातैं आत्माका हितका इच्छुकनिकूं आर्जवधर्मका अवलम्बन करना उचित है जैसा आपके चित्तमें चिंतवन करिये तैसा ही अन्यकूं कहना अर तैसा ही बाह्यकरि प्रवर्तन करिये सो सुखका संचय करनेवाला आर्जवधर्म करिये है । मायाचाररूप शल्य मनतैं निकालो उज्ज्वल पवित्र आर्जवधर्मका विचार करो, मायाचारीका व्रत तप संयम समस्त निरर्थक है, आर्जवधर्म निर्वाणके मार्गका सहाई है । जहां कुटिलवचन नाहीं बोले तहां आर्जवधर्म प्राप्त होय है । यो आर्जवधर्म है सो दर्शनज्ञान-चारित्रको अखंडस्वरूप है अर अतींद्रिय सुखका पिटारा है आर्जवधर्मका अभावकरि अतींद्रिय अविनाशी सुखकूं प्राप्त होय है, संसाररूप समुद्रके तरनेकूं जिहाज रूप आर्जव ही है । मायाचार जान्या जाय तदि प्रीतिका भङ्ग होय है जैसे कांजीतैं दुग्ध फटि जाय है अर मायाचारी अपना कपटकूं बहुत छिपावते हू प्रगट हुयां विना

नाहीं रहे । परजीवनिकी चुगली करै वा दोष प्रकाशै ते आपही प्रगट हो जाय हैं मायाचार करना है सो अपनी प्रतीतिका बिगाडना है धर्मका बिगाडना है मायाचारीका समस्त हितू विना किये वैरी होय हैं जो व्रती होय त्यागी तपस्वी होय अर जाका कपट एक वार किया हू प्रगट हो जाय ताकूं समस्त लोक अधर्मी मानि कोऊ प्रतीति नाहीं करै है कपटी की माता हू प्रतीति नाहीं करै है, कपटी तो मित्रद्रोही स्वामीद्रोही धर्मद्रोही कृतघ्नी है अर यो जिनेन्द्रको धर्म तो कपटरहित छलरहित है जैसे बांका म्यानेंमें सूधो खड्ग प्रवेश नाहीं करै तैसैं कपटकरि वक्रपरिणामीका हृदयमें जिनेंद्रका आर्जव कहिये सरल धर्म प्रवेश नाहीं कर सकै है । कपटीका दोऊ लोक नष्ट हो जाय है यातैं जो यश चाहो हो, धर्म चाहो हो प्रतीति चाहो हो तो मायाचारका त्यागकरि आर्जवधर्म धारण करो कपटरहितकी वैरी हू प्रशंसा करै है, कपटरहित सरलचित्त जो अपराध भी किया होय तौ दण्ड देने योग्य नाहीं है आर्जवधर्मका धारक तो परमात्माका अनुभवमें संकल्प करै है, कषाय जीतनेका संतोष धारनेका संकल्प करै है, जगतके छलनिका दूरहीतैं परिहार करै है आत्माकूं असहाय चैतन्यमात्र जानै है जो धन सम्पदा कुटुम्बादिककूं अपनावै सो ही कपट छलकरि ठिगाई करै, तातैं जो आत्माकूं संसार परिभ्रमणतैं छुटाय परद्रव्यनितैं आपकूं भिन्न असहाय जानै सो धन जीवितव्यके अर्थि कपट कदाचित् नाहीं करै तातैं जो आत्माकूं संसारपरिभ्रमणतैं छुटाया चाहो तो मायाचारका परिहार करि आर्जवधर्म धारण करो । ऐसैं आर्जवधर्मका वर्णन किया ॥ ३ ॥

अब सत्यधर्मका वर्णन करैं हैं—जो सत्यवचन है सो ही धर्म है यो सत्यवचन दयाधर्मको मूल कारण है अनेक दोषनिका निराकरण करनेवाला है, इस भवमें तथा परभवमें सुखका करनेवाला है समस्तके विश्वास करनेका कारण है समस्त धर्मके मध्य सत्यवचन प्रधान है सत्य है सो संसार समुद्रके पार उतारनेकूं जहाज है समस्त विधाननिमें सत्य है सो बडा विधान है समस्त सुखका कारण सत्य ही है सत्यतैं ही मनुष्यजन्म भूषित होय है, सत्य करके समस्त पुण्यकर्म उज्ज्वल होय हैं, जे पुण्यके ऊँचे कार्य करिये हैं तिनकी उज्ज्वलता सत्य विना नाहीं होय है, सत्यकरि समस्तगुणनिका समूह महिमाकूं प्राप्त होय है, सत्यका प्रभावकरि देव हैं ते सेवा करैं हैं, सत्य करकैं ही अणुव्रत महाव्रत होय हैं, सत्यविना व्रत संजम नष्ट होजाय है, सत्यकरि समस्त आपदाको नाश होय है यातैं जो वचन बोलो सो अपना परका हितरूप कहो प्रमाणीक कहो कोऊकै दुःख उपजे ऐसा वचन मति कहो परजीवनिकै बाधाकारि सत्य हू मति कहो, गर्वरहित कहो, परमात्माको अस्तित्व कहनेवाला वचन कहो नास्तिकनिके वचन पापपुण्यका स्वर्गनरकका अभाव कहनेवाला वचन मति कहो । यहां ऐसा परमागमका उपदेश जानना यो जीव अनंतानंतकाल तो निगोदमें ही रह्या तहां वचनरूप कर्मवर्गणा ही ग्रहण नाहीं करी क्योंकि

पृथ्वीकाय अप्काय तेजकाय वायुकाय वनस्पतिकाय इनके मध्य अनन्तकाल असंख्यातकाल रह्यो तहां तो जिह्वा इन्द्रिय ही नाहीं पाई बोलनेकी शक्ति ही नाहीं पाई । अर जो विकल-चतुष्कमें उपज्या तथा पंचेंद्रियतिर्यंचनिमें उपज्या तहां जिह्वा इन्द्रिय पाई तो हू अक्षरस्वरूप शब्द उच्चारण करनेका सामर्थ्य नाहीं भया एक मनुष्यपनामें वचन बोलनेकी शक्ति प्रगट होय है । ऐसा दुर्लभ वचनकूं असत्य बोलि बिगाड देना सो वडा अनर्थ है, मनुष्यजन्मकी महिमा तो एक वचनहीतै है, नेत्र कर्ण जिह्वा नासिका तो ढोर तिर्यंचके हू होय है खावना पीवना कामभोगादिक पुण्य पापके अनुकूल ढोरनिकूं हू प्राप्त होय हैं । आभरण वस्त्रादिक कूकरा वानरा गधा घोडा ऊँट बलध इत्यादिकनिकूं हू मिलै हैं परन्तु वचन कहनेकी शक्ति, श्रवण करनेकी शक्ति तथा उत्तर देनेकी शक्ति तथा पढने पढावनेका कारण वचन तो मनुष्यजन्ममें ही है अर मनुष्यजन्म पाय जो वचन बिगाडि दिया सो समस्त जन्म बिगाडि दिया बहुरि मनुष्यजन्ममें जो लेना देना कहना सुनना धीज प्रतीत धर्म-कर्म प्रीति-वैर इत्यादिक जे प्रवृत्तिरूप अर निवृत्तिरूप कार्य हैं ते वचनके अधीन हैं अर वचनकूं ही दूषित कर दिया तदि समस्त मनुष्यजन्मका व्यवहार बिगाड दूषित कर दिया । तातैं प्राण जाते हू अपना वचनकूं दूषित मत करो । बहुरि परमागममें कह्या जो च्यारि प्रकारका असत्यवचन ताका त्याग करो । जो विद्यमान अर्थका निषेध करना सो प्रथम असत्य है जैसे कर्मभूमिका मनुष्य तिर्यंचका अकालमृत्यु नाहीं होय ऐसा वचन असत्य है जातैं देव नारकी तथा भोगभूमिका मनुष्य-तिर्यंचका तो आयुकी स्थिति पूर्ण भयां ही मरण है बीच आयु नाहीं छिदै है जितनी स्थिति बांधी तितनी भोग करकैही मरण करै हैं अर कर्मभूमिका मनुष्यतिर्यंचनिका आयु है सो विषका भक्षणकरि तथा ताडन मारण छेदन बन्धनादिक वेदनाकरि तथा रोगकी तीव्र वेदनाकरि तथा देहतैं रुधिर का नाश होनेकरि तथा दुष्ट मनुष्य दुष्ट तिर्यंच भयंकर देवकरि उपज्या भयकरि तथा वज्रपातादिक का स्वचक्र परचक्रादिकके भयकरि तथा शस्त्रका घातकरि तथा पर्वतादिकतैं पतनकरि तथा अग्नि पवन जल कलह विसंवादादिकतैं उपज्या संक्लेशकरि तथा स्वास उस्वासका धूमादिकतैं रुकनेकरि तथा आहारपानादिका निरोधकरि आयुका नाश होय है । आयुकी दीर्घस्थिति हू विषभक्षण, रक्तक्षय, भय, शस्त्रघात, संक्लेश, श्वासोच्छवास निरोधकरि अन्न-पानका अभावकरि तत्काल नाशकूं प्राप्त होय ही है ।

केते लोक कहैं हैं आयु पूरी हुआ विना मरण नाहीं होय ताका उत्तर करै हैं जो बाह्य निमित्तसूं आयु नाहीं छिदै तो विषभक्षणतै कौन परान्मुख होता अर विष खानेवालेकूं उकाली काहेकूं देते अर शस्त्रघात

करनेवालेतैं काहेकूं भयकरि भागते अर सर्प सिंह व्याघ्र हस्ती तथा दुष्ट मनुष्य तिर्यंचादिकनिकूं दूरहीतैं काहेकूं छांडते अर नदी समुद्र कूप बावडीमें तथा अग्नि की ज्वालामें पडनेतैं कौन भय करता, अर रोगका इलाज काहेकूं करते तातैं बहुत कहनेकरि कहा जो आयुघात होनेका बहिरङ्ग कारण मिल जाय तो आयुका घात हो जाय यह निश्चय है। बहुरि आयुकर्मकी ज्यों अन्य हू कर्म बहिरङ्ग कारण मिले उदय आवै ही हैं समस्त जीवनिके पापकर्म पुण्यकर्म सत्तामें विद्यमान हैं बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादि परिपूर्ण सामग्री मिले कर्म अपना रस देवै ही है बाह्य निमित्त नाहीं मिलै तो उदयमें नाहीं आवै तथा रस दिया बिना ही निर्जरै है बहुरि जो असद्भूतकूं प्रगट करना सो दूजा असत्य है जैसैं देवनिकै अकालमृत्यु कहना देवनिकूं भोजन ग्रासादिरूप करना कहे वा देवनिकूं मांसभक्षी कहना तथा मनुष्यनिके देवकरि कामसेवन तथा देवांगनातैं मनुष्यका कामसेवन इत्यादिक कहना दूजा असत्य है। बहुरि वस्तुका स्वरूपकूं अन्य विपरीत स्वरूप कहना सो तीसरा असत्य है। बहुरि गर्हितवचन कहना सो चौथा असत्य वचन है। गर्हित वचनका तीन भेद हैं गर्हित, सावद्य, अप्रिय।

तिनमें पैशून्य, हास्य, कर्कश, असमंजस, प्रकल्पित इत्यादिक अन्य हू सूत्रविरुद्ध वचन सो गर्हित वचन हैं। तिनमें जो परके विद्यमान तथा अविद्यमान दोषनिकूं पीठ पाछै कहना तथा परका धनका विनाश जीविकाका विनाश प्राणनिका नाश जिस वचनतैं होजाय तथा जगतमें निंद्य होजाय अपवाद होजाय ऐसा वचन कहना सो गर्हित नाम असत्यवचन है। बहुरि हास्य लीला भंड वचन तथा श्रवण करनेवालेनिके अशुभ राग उपजावनेवाले वचन सो हास्यनामा गर्हित वचन है। बहुरि अन्यकूं कहै तू ढांढ है तू मूर्ख है अज्ञानी है मूढ है इत्यादिक कर्कश वचन है। बहुरि देश कालके योग्य नाहीं जातैं आपकै अन्यके महासंताप उपजै सो असमंजसवचन है। बहुरि प्रयोजनरहित ढीठपनातैं वकवाद करना सो प्रलपित वचन है।

बहुरि जिस वचनकरि प्राणीनिका घात होजाय देशमें उपद्रव होजाय देश लुटि जाय तथा देश का स्वामीनिकै महा वैर होजाय तथा ग्राममें अग्नि लगि जाय, घर बल जाय, वनमें अग्नि लगजाय तथा कलह विसंवाद युद्ध प्रगट होजाय तथा विषाद करि मरि जाय तथा मारि जाय, बैर बंध जाय तथा छहकायके जीवनिके घातका प्रारम्भ होजाय महाहिंसामें प्रवृत्ति होजाय सो सावद्यवचन है तथा परकूं चोर कहना, व्यभिचारी कहना सो समस्त सावद्यवचन दुर्गतिके कारण त्यागने योग्य हैं। अब अप्रियवचन त्यागने योग्य प्राण जाते हू नाहीं कहना अप्रियवचनके भेद ऐसे जानने कर्कश, कटुक, परुषा, निष्ठुरा, परकोपनी, मध्यकृशा, अभिमानिनी, अनयंकरी, छेदंकरी, भूतबधकरी ये महापापके करनेवाली महानिंद्य दश भाषा

सत्यवादी त्याग करै हैं । तू मूर्ख है बलद है ढोर है, रे मूर्ख तू कहा समझै इत्यादिक कर्कशा भाषा है । बहुरि तू कुजाति है नीच जाति है, अधर्मी महापापी है तू स्पर्शन करनेयोग्य नाहीं तेरा मुख देख्यां बडा अनर्थ है इत्यादिक उद्वेग करनेवाला कटुक भाषा है । तू आचारभ्रष्ट है भ्रष्टाचारी है महादुष्ट है इत्यादिक मर्म छेदनेनाली परुषाभाषा है । तोकूं मार नाखिस्यूं थारो नाक काटिस्यूं, थारै डाह लगास्यूं, थारो मस्तक काटिस्यूं तनै खाय जास्यूं इत्यादिक निष्ठुरा भाषा है । रे निर्लज्ज वर्णशंकर तेरा जातिकुल आचारका ठिकाना नाहीं, तेरा कहा तप, तू कुशील है, तू हंसने योग्य है, महानिंद्य है, अभक्ष्यभक्षण करनेवाला है तेरा नाम लियां कुल लज्जित होय है इत्यादिक परकोपनी भाषा हैं । बहुरि जिस वचनके सुनते हीं हाडनिकी शक्ति नष्ट हो जाय सो मध्यकृषा भाषा है । बहुरि लोकनिमें अपना गुण प्रगट करना परके दोष कहना अपना कुल जाति रूप बल विज्ञानादिक मद लिये जो वचन बोलना सो अभिमानिनी भाषा है । बहुरि शीलखंडन करनेवाली अर विद्वेष करनेवाली अनयंकरी भाषा है । बहुरि जो वीर्य शील गुणादिकानिके निर्मूल करनेवाली, असत्यदोष प्रगट करनेवाली, जगतमें झूंठा कलंक प्रगट करनेवाली, छेदंकरी भाषा है । जिस वचनकरि अशुभ वेदना प्रगट होजाय वा प्राणनिका नाश करनेवाली भूतबधकरी भाषा हैं । ए दश प्रकार निंद्यवचन त्यागने योग्य हैं । बहुरि स्त्रीनिके हावभाव विलास–विभ्रमरूप क्रीडा व्यभिचारादिकनिकी कथा कामके जगानेवाली, ब्रह्मचर्यका नाश करनेवाली स्त्रीनिकी कथा तथा भोजनपानमें राग करावनेवाली भोजनकी कथा तथा रौद्रकर्म करावनेवाली राजकथा तथा चोरीनिकी कथा तथा मिथ्यादृष्टि कुलिंगीनिकी कथा तथा धन उपार्जन करनेकी कथा तथा वैरी दुष्टनिके तिरस्कार करनेकी कथा तथा हिंसाकूं पुष्ट करनेवाली वेद स्मृति पुराणादिक कुशास्त्रनिकी कथा कहनेयोग्य नाहीं, पापका आस्रवको कारण अप्रिय भाषा त्यागने योग्य है । भो ज्ञानी हो ये चार प्रकारकी निंद्यभाषा हास्यकरि क्रोधकरि लोभकरि मदकरि भयकरि द्वेषकरि कदाचित् मति कहो आपका परका हितरूपही वचन बोलो इस जीवकै जैसा सुख हितरूप अर्थसंयुक्त मिष्ट वचन करै है निराकुल करै है आताप हरै है तैसा सुखकारी आताप हरनेवाली चन्द्रकान्तिमणि जल चंदन मुक्ताफलादिक कोऊ पदार्थ नाहीं। अर जहां अपने बोलनेतै धर्मकी रक्षा होती होय प्राणीनिका उपकार होता होय तहां विना पूछै हू बोलना, अर जहां आपका अन्यका हित नाहीं होय तहां मौनसहित ही रहना उचित है ।

बहुरि सत्य वचनतैं सकलविद्या सिद्ध होय हैं जहां विद्या देनेवाला सत्यवादी होय अर सीखनेवाला हू सत्यवादी होय ताके सकल विद्या सिद्ध होय कर्मकी निर्जरा होय सत्यका प्रभाव से अग्नि जल विष सिंह सर्प

दुष्ट देव मनुष्यादिक बाधा नाहीं कर सकै हैं । सत्यका प्रभावतैं देवता वशीभूत होय है प्रीति प्रतीति दृढ होय है, सत्यवादी मातासमान विश्वास करनेयोग्य है, गुरुका ज्यों पूज्य होय हैं, मित्र ज्यों प्रिय होय है उज्ज्वल यशकूं प्राप्त होय हैं, तपसंयमादि समस्त सत्यवचनतैं सोहै हैं । जैसैं विष मिलनेकरि मिष्टभोजनका नाश होय, अन्यायकरि धर्मका यशका नाश होय तैसैं असत्यवचनतैं अहिंसादि सकलगुणनिका नाश होय है तथा असत्यवचनतैं अप्रतीत, अकीर्ति, अपवाद, अपने वा अन्यके, संक्लेश, अरति, कलह, वैर, शोक, वध, बन्धन, मरण, जिह्वाछेद, सर्बस्वहरण, बन्दीग्रहमें प्रवेश, दुर्ध्यान अपमृत्यु, व्रत तप शील संयमका नाश, नरकादि दुर्गतिमें गमन भगवानकी आज्ञाको भङ्ग, परमागमतैं परान्मुखता. घोरपाप का आस्त्रव इत्यादिक हजारां दोष प्रगट होय हैं । यातैं भो ज्ञानीजन हो लोकमें प्रिय हित मधुर वचन बहुत भऱ्या है, सुन्दर शब्दकी कमी नाहीं फिर निंद्यवचन क्यों बोलो हो ? रे तू इत्यादिक नीच पुरुषनिके बोलनेके वचन प्राण जातैं हू मति कहो अधमपना अर उत्तमपना तो वचनहींतैं जाण्या जाय है, नीचनिके बोलनेके निंद्यवचनकूं छांडि प्रिय हित मधुर पथ्य धर्मसहित वचन कहो जे अन्यकूं दुःखका देनेवाला वचन कहैं हैं तथा झूंठा कलंक लगावैं है तिनके पापतैं इहांही बुद्धि भ्रष्ट होय है जिह्वा गलि जाय आंधा होजाय पग नष्ट होजाय दुर्ध्यानतैं मरि नरक तिर्यंचादि कुगतिके पात्र होय है । अर सत्यका प्रभावतैं इहां उज्ज्वल यश वचनकी सिद्धि द्वादशाङ्गादि श्रुतका ज्ञान पाय फिर इन्द्रादिक महर्द्धिक देव होय तिर्थंकरादि उत्तम पद पाय निर्वाण जाय है यातैं उत्तम सत्यधर्महीकूं धारण करो ऐसैं सत्यनामा धर्मका वर्णन किया ॥ ४ ॥

अब शौचधर्मका स्वरूप वर्णन करिये हैं—शौच नाम पवित्रता उज्ज्वलताका है जो बहिरात्मा देहकी उज्ज्वलता स्नानादिक करनेकूं शौच कहैं हैं सो सप्त धातुमय काय मलमूत्रको भऱ्या जलतैं धोया शुचिपनाकूं प्राप्त नाहीं होय है जैसे मलका बनाया घट मलका भऱ्या जलतैं शुद्धि नाहीं होय तैसैं शरीर हू उज्ज्वल जलतैं शुद्धि नाहीं होय, शुचि मानना वृथा है । बहुरि शौचधर्म तो आत्माकूं उज्ज्वल किए होय आत्मा लोभकरि हिंसाकरि अत्यन्त मलीन होय रह्या है सो आत्माके लोभमलका अभाव भये शुचिता होय है जो अपने आत्माकूं देहतैं भिन्न ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगमय अखंड अविनाशी जन्मजरामरण रहित तीनलोकवर्ती समस्तपदार्थनिका प्रकाशक सदा काल अनुभव करै है ध्यावै है ताकै शौचधर्म होय है । बहुरि मनकूं मायाचार लोभादिक रहित उज्ज्वल करना ताकै शौचधर्म होय है जाका मन काम लोभादिकरि मलीन होय ताकै शौचधर्म नाहीं होय है । धनकी गृद्धिता जो अतिलम्पटता ताका त्यागतैं शौचधर्म होय है । वहुरि परिग्रहकी ममताकूं छांडि इन्द्रियनिका विषयनिको त्यागकरि तपश्चरणका मार्गमें प्रवर्तन करना सो शौचधर्म है । बहुरि ब्रह्मचर्य धारण करना सो शौचधर्म

है बहुरि अष्टमदकरि रहित विनयवानपना भी शौचधर्म है, अभिमानी मदसहित होय सो महामलीन है ताकै शौचधर्म कैसैं होय। बहुरि वीतराग सर्वज्ञका परमागम अनुभव करनेकरि अन्तर्गत मिथ्यात्व कषायादिक मलका धोवना सो शौचधर्म है । उत्तम गुणनिका अनुमोदनाकरि शौचधर्म होय है । परिणामनिमें उत्तम पुरुषनिका गुणनिका चिंतवनकरि आत्मा उज्ज्वल होय है कषाय मलका अभावकरि उत्तम शौचधर्म होय है । आत्माकूं पापकरि लिप्त नाहीं होने देना सो शौचधर्म है जो समभाव सन्तोषरूप जलकरि तीव्र लोभरूप मलका पुंजकूं धोवै है अर भोजनमें अति लंपटता रहित है ताकै निर्मल शौचधर्म होय है जातैं भोजनका लंपटी अति अधर्मी है अर अखाद्य वस्तुकूं भी खाय है, हीनाचारी होय है भोजनका लम्पटीके लज्जा नष्ट होजाय है जातैं संसारमें जिह्वाइन्द्रिय अर उपस्थइन्द्रियके वशीभूत भये जीव आपा भूलि नरकके, तिर्यंचगतिके कारण महानिंद्य परिणामनिकूं प्राप्त होय है। संसारमें परधनकी वांछा परस्त्रीकी वांछा अर अतिलम्पटता ही परिणामकूं मलीन करने वाली है इनकी वांछातैं रहित होय अपने आत्माकूं संसार पतनतैं रक्षा करो । आत्माकी मलीनता तो जीवहिंसातैं अर परधन परस्त्रीकी वांछातैं है जे परस्त्री परधनका इच्छुक अर जीवघातके करनेवाले हैं ते कोटि तीर्थनिमें स्नान करो समस्त तीर्थनिकी वंदना करो तथा कोटि दान करो, कोटि वर्ष तप करो, समस्त शास्त्रनिका पठन-पाठन करो तौ हू उनकै शुद्धता कदाचित नाहीं होय । अभक्ष्य-भक्षण करनेवालेनिका अर अन्यायका विषय तथा धनके भोगने वालेनिका परिणाम ऐसे मलीन हैं जो कोटि वार धर्मका उपदेश अर समस्त सिद्धान्तनिकी शिक्षा बहुत वर्ष श्रवण करते हू कदाचित् हृदयमें प्रवेश नाहीं करै है सो देखिये है जिनकूं पचास वरस शास्त्र श्रवण करते भये हैं तोहू धर्मका स्वरूपका ज्ञान जिनकूं नाहीं है सो समस्त अन्याय धन अर अभक्ष्य भक्षणका फल है तातैं जो अपनी आत्माका शौच चाहो हो तो अन्यायका धन मति ग्रहण करो अर अभक्ष्य भक्षण मतिकरो, परस्त्रीकी अभिलाषा मति करो । बहुरि परमात्माके ध्यानतैं शौच है अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्यागतैं शौचधर्म है । जे पंचपापनिमें प्रवर्तनेवाले हैं ते सदाकाल मलीन हैं, जे परके उपकारकूं लोपै हैं ते कृतघ्नी सदा मलीन है, गुरुद्रोही, धर्मद्रोही, स्वामीद्रोही, मित्रद्रोही उपकारकूं लोपनेवाले हैं तिनके पापका संतान असंख्यात भवनिमें कोटि तीर्थनिमें स्नानकरि दानकरि दूर नाहीं होय है विश्वासघाती सदा मलीन है, यातैं भगवान्के परमागमकी आज्ञा प्रमाण शुद्ध सम्यग्दर्शन

ज्ञानचारित्रकरि आत्माकूं शुचि करो, क्रोधादि कषायका निग्रह करि उत्तमक्षमादि गुण धारण करि उज्ज्वल करो समस्त व्यवहार कपट रहित उज्ज्वल करो, परका विभव ऐश्वर्य उज्ज्वल यश उत्तम विद्यादिक प्रभाव देखि अदेखसका भावरूप मलीनता छांडि शौचधर्म अङ्गीकार करो, परका पुण्यका देखि विषादी मति होहू इस मनुष्यपर्यायकूं तथा इन्द्रिय ज्ञान बल आयु संपदादिकनिकूं अनित्य क्षणभंगुर जानि एकाग्र चित्तकरि अपने स्वरूपमें दृष्टि धारि अशुभभावनिका अभावकरि आत्माकूं शुचि करो। शौच ही मोक्षका मार्ग है, शौच ही मोक्षका दाता है ऐसैं शौच नाम पंचम धर्मको वर्णन कियो ॥ ५ ॥

अब संयम नाम धर्म का स्वरूप कहिये है संयमका ऐसा लक्षण जानना जो अहिंसा कहिये हिंसाको त्याग दयारूप रहना हित मित प्रिय सत्य वचन बोलना, परके धनमें वांछाका अभाव करना कुशीलका छांडना परिग्रह त्यागना ए पांच व्रत हैं तिनमें पंचपापनिका एक देश त्याग सो अणुव्रत है, सकल त्याग सो महाव्रत है इन पंचव्रतनिकूं दृढ धारण करना अर पंचसमितिका पालना; तिनमें गमनकी शुद्धता सो ईर्यासमिति है, वचनकी शुद्धता सो भाषासमिति है, निर्दोष शुद्ध भोजन करना सो ऐषणा समिति है, शरीर, उपकरणादिक नेत्रनितैं देखि सोधि उठावना धारना सो आदाननिक्षेपणा समिति है मलमूत्र कफादिक मलनिकूं अन्य जीवनिके ग्लानि दुःख बाधादिक नाहीं उपजै ऐसे क्षेत्रमें क्षेपना सो प्रतिष्ठापनासमिति है इन पंच समितिनिका पालना अर क्रोध मान माया लोभ इन च्यार कषायनिका निग्रह करना अर मनवचनकायकी अशुभ प्रवृत्ति ए दण्ड हैं इन तीन दण्डनिका त्याग अर विषयनिमें दौडती पंच इन्द्रियनिकूं वश करना जीतना सो संयम है।

भावार्थ—पंचव्रतनिका धारण पंच समितिका पालन कषायनिका निग्रह दण्डनिका त्याग इन्द्रियनिका विजयकूं जिनेंद्रके परमागममें संयम कह्या है। सो संयम बहुत—दुर्लभ है जिनके पूर्वके बांधे अशुभकर्मनिका अतिमंदपना होते मनुष्य-जन्म, उत्तमदेश, उत्तमकुल, उत्तमजाति, इन्द्रियपरिपूर्णता, नीरोगता, कषायनिकी मंदता होय अर उत्तमसंगति अर जिनेंद्रका आगमनिका सेवन अर सांचे गुरुनिका संयोग सम्यग्दर्शनादि अनेक दुर्लभ सामग्रीका संयोग होय तदि संसार देह भोगनितैं अति विरक्तताके धारक मनुष्यकै अप्रत्याख्यानावरणका क्षयोपशमतै तो देशसंयम होय अर जाकै अप्रत्याख्यान अर प्रत्याख्यान दोऊ कषायनिका क्षयोपशम होय ताकै सकलसंयम होय है, तातैं संयम पावना महादुर्लभ है। नरकगतिमें तिर्यंचगतिमें देवगतिमें तो संयम होय नाहीं, कोऊ तिर्यंचकै देशव्रत अपनी पर्यायमाफिक कदाचित् होय है अर मनुष्यपर्यायमें भी नीचकुलादिमें अधमदेशनिमें इन्द्रियविकल अज्ञानी रोगी दरिद्री अन्यायमार्गी विषयानुरागी तीव्रकषायी निंद्यकर्मी मिथ्यादृष्टीनिकै

संयम कदाचित् नाहीं होय है, तातैं संयमका पावना अतिदुर्लभ है, ऐसे दुर्लभ संयमकूं हू पाय कोऊ मूढबुद्धि विषयनिका लोलुपी होय छांडैं है तो अनन्तकाल जन्म मरण करता संसारमें परिभ्रमण करै है। जो संयम पाय छांडै है संयमकूं विगाडै है ताके अनन्तकाल निगोदमें परिभ्रमण, त्रसस्थावरनिमें भ्रमण करना होय सुगति नाहीं होय। संयम पाय विगाडने समान अन्य अनर्थ नाहीं है विषयनिका लोभी होय करि जो संयमकूं विगाडै है सो एक कौडीमें चिंतामणिरत्न बेचै है तथा ईंधनके अर्थि कल्पवृक्षकूं छेदै है। विषयनिका सुख है सो सुख नाहीं सुखाभास है, क्षणभंगुर है नरकनिके घोर दुःखनिका कारण है किंपाकफल जैसे जिह्वाका स्पर्शमात्र मिष्ट लागै है पाछै घोर दुःख महादाह संताप देय मरणकूं प्राप्त करै है तैसें भोग किंचिन्मात्र काल तो अज्ञानी जीवनिकूं भ्रमतैं सुख-सा भासै है फिर अनन्तकाल अनन्तभवनिमें घोर दुःखका भोगना है यातैं संयमकी परम रक्षा करो। पांच इन्द्रियनिकूं विषयनिके संबंधतैं रोकनेतैं संयम होय है, कषायनिका खंडनकरि संयम होय है, दुर्द्धर तपका धारणकरि संयम होय है, रसनिका त्यागकरि संयम होय है, मनके प्रसारके रोकनिकरि संयम होय है, महान कायक्लेशनिके सहने करि संयम होय है, उपवासादिक अनशन तपकरि संयम होय है, मनमें परिग्रहकी लालसा का त्यागकरि संयम होय है, त्रस-स्थावर जीवनिकी रक्षा करना सो ही संयम है, मनके विकल्पनि के रोकनेकरि तथा प्रमादतैं वचनकी प्रवृत्तिके रोकनेकरि संयम होय है, शरीरके अंग-उपांगनिका प्रवर्तनकूं रोकनेकरि संयम होय हैं। बहुत गमनके रोकनेकरि संयम होय है। बहुरि दयारूप परिणामकरि संयम होय है, परमार्थका विचार करकै तथा परमात्माका ध्यान करके संयम होय है। संयम करकै ही सम्यग्दर्शन पुष्ट होय संयम ही मोक्षका मार्ग है, संयमविना मनुष्यभव शून्य है, गुणरहित है, संयमविना यो जीव दुर्गतिनिकूं प्राप्त भया, संयमविना देहका धारना बुद्धिका पावना, ज्ञानका आराधना करना समस्त वृथा है, संयमविना दीक्षा धारणा व्रत धारना मूंड मुडावना, नग्न रहना भेष धारणा ये समस्त वृथा हैं। जातैं संयम दोय प्रकार है--इन्द्रियसंयम अर प्राणिसंयम—जाकी इन्द्रियां विषयनितैं नाहीं रुकीं अर जाके छहकायके जीवनिकी विराधना नाहीं टली ताके बाह्य परीषह सहना, तपश्चरण करना, दीक्षा लेना वृथा है। संसारमें दुःखित जीवनिकूं संयमविना कोऊ अन्य शरण नाहीं है। ज्ञानीजन तो ऐसी भावना भावै है जो संयमविना मनुष्य जन्मकी एक घटिका हू मति जावो, संयमविना आयु निष्फल है, यो संयम है सो इस भवमें अर परभवमें शरण हैं, दुर्गतिरूप सरोवर के शोषण करनेकूं सूर्य है, संयम करके ही संसाररूप विषय वैरीका नाश होय। संसार—परिभ्रमणका नाश संयम विना नाहीं होय। ऐसा नियम है जो अंतरंगमें कषायनिकरि आत्माकूं मलीन नाहीं होन दे हैं

अर बाह्य यत्नाचारी हुआ प्रमादरहित प्रवर्तै है ताकै संयम होय है । ऐसै संयमधर्मका वर्णन किया ॥६॥

अब तपधर्मका वर्णन करे हैं,—इच्छाका निरोध करना सो तप है तप च्यार आराधनानिमें प्रधान है जैसे सुवर्णकूं तपावने करि सोला ताव लगे समस्त मल छांडि करकै शुद्ध होय है तैसैं आत्मा हू द्वादश प्रकार तपके प्रभावकरि कर्म-मल-रहित शुद्ध होय है । अज्ञानी मिथ्यादृष्टि तो देहकूं पंच अग्निकरि तपावै में तथा अनेक प्रकार कायके क्लेशकूं तप कहैं हैं सो तप नाहीं है । काय कूं दग्ध किये अर मार लिये कहा होय ? मिथ्यादृष्टि ज्ञानपूर्वक आत्माकूं कर्मबंधतैं छुडावना नाहीं जानै है । कर्मकलंक रहित आत्मा तो भेदज्ञानपूर्वक अपने आत्माका स्वभावकूं अर रागद्वेष मोहादिरूप मैलकूं भिन्न देखै है जैसैं रागद्वेष मोहरूप मल भिन्न हो जाय अर शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय आत्मा भिन्न होजाय सो तप हैं याहीतैं कहैं हैं मनुष्य-भव पाय जो स्व-पर तत्वकूं जाण्या हैं तो मनसहित पंच इन्द्रियनिकूं रोकि विषयनितैं विरक्त होय समस्त परिग्रहकूं छांडि बंध करनेवाली रागद्वेषमई प्रवृत्तिनिकूं छांडि पापका आलम्बन छूटनेके अर्थि ममता नष्ट करनेकूं वनमें जाय तप करिये । ऐसा तप धन्य पुरुषनिके होय है संसारी जीव के ममता रूप बडी फांसी हैं सो ममतारूप जालमें फंसा हुआ घोर कर्मकूं करता महापापका बन्धकरि रोगादिकका तीव्रवेदना अर स्त्री-पुत्रादि समस्त कुटुम्बका तथा परिग्रहका वियोगादिकतैं उपज्या तीव्र आर्तध्यानतैं मरण पाय दुर्गतिनिके घोर दुःखिनि कूं जाय प्राप्त होय है । तपोवनकूं प्राप्त होना दुर्लभ है तप तो कोऊ महाभाग्य पुरुष पापनितैं विरक्त होय समस्त स्त्री-पुत्र-धनादिक परिग्रहतैं ममत्व छांडि परम धर्मके धारक वीतराग निर्ग्रंथ गुरुनिका चरणनिका शरण पावै हैं अर गुरुनिको पायकरि जाकै अशुभ कर्मका उदय अति मन्द होय, सम्यक्त्वरूप सूर्यको उदय प्रगट होय संसार-विषय भोगनितैं विरक्तता जाकै उपजी होय सो तप संयम ग्रहण करै है, अर जो ऐसा दुर्द्धर तपकूं धारण करकै हू कोऊ पापी विषयनिकी वांछाकरि बिगाडै ताके अनंतानन्त कालमें फिर तप नाहीं प्राप्त होय है । यातैं मनुष्यभव पाय तत्त्वनिका स्वरूप जानि मनसहित पंच इन्द्रियनिकूं रोकि वैराग्यरूप होय समस्त संगकूं छांडि वनमें एकाकी ध्यानमें लीन हुआ तिष्ठै सो तप है ।

जहां परिग्रहमें ममता नष्ट होय वांछारहित तिष्ठना तथा प्रचण्ड कामका खण्डन करना सो बडा तप है । जहां नग्न दिगम्बररूप धारि शीतकी, पवनकी, आतापकी, वर्षाकी तथा डांस माछर मक्षिका मधुमक्षिका सर्प विच्छू इत्यादिकतैं उपजी घोरवेदनाकूं कोरे अङ्गपरि सहना सो तप है, अर जो निर्जन पर्वतनिका निर्जन गुफानिमें, भयंकर पर्वतनिके दराडेनिमें तथा सिंह व्याघ्र रीछ ल्याली चीता हस्तीनिकरि व्याप्त घोर वनमें निवास करना

सो तप है। तथा दुष्ट वैरी म्लेच्छ चोर शिकारी मनुष्य अर दुष्ट व्यन्तरादिक देवनिकृत घोर उपसर्गनितैं कम्पायमान नाहीं होना धीरवीरपनातै कायरता छांडि वैर विरोध छांडि समताभावतैं परमात्माका ध्यानमें लीन हुआ सहना सो तप है। बहुरि समस्त जीवनिकूं उलझानेवाले रागद्वेषनिकूं जीतना, नष्ट करना सो तप है। बहुरि यो याचनारहित भिक्षाके अवसरमें श्रावकका घरमें नवधा भक्तिकरि हस्तमें धऱ्या खारा अलूणा कडवा खाटा लूखा चीकना रस नीरस तिसमें लोलुपता अर संक्लेशरहित निर्दोष प्रासुक आहार एकवार भक्षण करना सो तप है। बहुरि जो पंचसमितिका पालना अर मनवचनकायकूं चलायमान नाहीं कारना, अपना रागद्वेषरहित आत्मानुभव करना सो तप है। जो स्व–पर तत्त्वकी कथनी च्यार अनुयोगका अभ्यासकरि धर्मसहित काल व्यतीत करना सो तप हैं। बहुरि अभिमान छांडि विनयरूप प्रवर्तना, कपट छांडि सरल परिणाम धारना, क्रोध छांडि क्षमा ग्रहण करना, लोभ त्याग निर्वांछक होना सो तप हैं। जाकरि कर्मका समूहका नाशकरि आत्मा स्वाधीन होजाय सो तप है। जो श्रुतका अर्थका प्रकाश करना, व्याख्यान करना, आप निरंतर अभ्यास करै, अन्यकूं अभ्यास करावै सो तप है। तपस्वीनिका दवनिका इन्द्र स्तवन करै, भक्ति का प्रकाश करै, तपकरि केवलज्ञान उत्पन्न होय है तपका अचिंत्य प्रभाव है तपके मांहि परिणाम होना अति दुर्लभ है। नरक तिर्यंच देवनिकैं तपकी योग्यता ही नाहीं, एक मनुष्यगतिमें होय मनुष्यमें हू उत्तम कुल जाति बल बुद्धि इन्द्रियनिकी पूर्णता जाके होय तथा विषयनिकी लालसा जाकै नष्ट भई ताकै होय है। तप द्वादश प्रकार है जाकी जैसी शक्ति होय तिसप्रमाण धारण करो। बालक करो, वृद्ध करो, धनाढ्य करो, निर्धन करो, बलवान् करो, निर्बल करो, सहायसहित होय सो करो, सहायरहित होय सो करो, भगवान्‌को प्ररूप्या तप किसीकै हू करनेकूं अशक्य नाहीं है। जैसे वायुपित्तकफादिका प्रकोप नाहीं होय, रोगकी वृद्धि नाहीं होय, जैसैं शरीर रत्नत्रयको सहकारी बन्यौ रहै तैसैं अपना संहनन बल वीर्य देखि तप करो। तथा देश काल आहारकी योग्यता देखि तप करो जैसैं तपमें उत्साह बधतो रहै, परिणामनिमें उज्ज्वलता बधती जाय, तैसैं तप करो। तथा जो इच्छाका निरोधकरि विषयनिमें राग घटावना सो तप है। तप ही जीवका कल्याण है, तप ही कामकूं निद्राकूं प्रमादकूं नष्ट करनेवाला है यातैं मद छांडि बारह प्रकार तपमें जैसा जैसा करनेकूं सामर्थ्य होय तैसा ही तप करो। सो बारह प्रकार तपकूं आगे न्यारो लिखेंगे। ऐसैं तपधर्मकूं वर्णन किया ॥ ७ ॥

अब त्यागधर्मका वर्णन करैं हैं। त्याग ऐसें जानना जो धन संपदादि परिग्रहकूं कर्मका उदयजनित पराधीन अर विनाशीक अर अभिमानको उपजावनेवाली तृष्णाकूं बधावनेवाली रागद्वेषकी तीव्रता करनेवाली, आरंभकी तीव्रता करनेवाली, हिंसादिक पंच पापनिका मूल जानि उत्तमपुरुष याकूं अङ्गीकार ही नाहीं किया ते धन्य हैं। जो कोई याकूं अंगीकार करि याकूं हलाहल-विषसमान जानि जीर्ण तृणकी ज्यों त्याग किया तिनकी अचिंत्यमहिमा है। अर केई जीवनिके तीव्र रागभाव मन्द हुआ नाहीं यातैं सकल त्यागनेकूं समर्थ नाहीं अर सरागधर्ममें रुचि धारैं हैं अर पापतैं भयभीत हैं ते इस धनकूं उत्तम पात्रनिके उपकारके अर्थि दानमें लगावै हैं अर जे धर्मके सेवन करने वाले निर्धन जन हैं तिनके अन्न-वस्त्रादिककरि उपकार करनेमें धन लगावै हैं तथा धर्मके आयतन जिनमन्दिरादिकनिमें जिनसिद्धांत लिखाय देनेमें तथा उपकरणमें पूजनादिक प्रभावनामें लगावै है तथा दुःखित दरिद्री रोगिनिके उपकारमें तन मन धन करुणावान होय लगावै हैं ते धन जीतव्यकूं सफल करै हैं। दान है सो धर्मका अङ्ग है यातैं अपनी शक्तिप्रमाण भक्तिकरि गुणनिके धारक उज्ज्वलपात्रनिको दान देना है सो परलोककूं जीवनें महान् सुखसामग्रीकूं लेजावै है सो निर्विघ्न स्वर्गकूं तथा भोगभूमिकूं प्राप्त करानेवाला जानो। दानकी महिमा तो अज्ञानी बालगोपाल हू कहैं हैं, जो पूर्व दान दिया है सो नानाप्रकार सुखसामग्री पाई है, अर देगा सो पावैगा। तातैं जो सुख-संपदाका अर्थी होय सो दान ही में अनुराग करो। अर जे दान करनेमें निरुद्यमी हैं ते इहांहू तीव्र आर्तपरिणामतैं मरि सर्पादिक दुष्ट तिर्यंचगति पाय नरक निगोदकूं जाय प्राप्त होय हैं धन कहा लार जायगा ? धन पावना तो दानहींतैं सफल है। दानरहितका धन घोर दुःखनिकी परिपाटीका कारण है अर इहां हू कृपण घोरनिंदाकूं पावै हैं, कृपणका नाम भी लोक नाहीं कहै है कृपण सूमका नामकूं लोग अमङ्गल मानै हैं जामें औगुण दोष हू होय तो दानीका दोष ढकि जाय है। दानीका दोष दूरि भागै है, दानकरि ही निर्मल कीर्ति जगमें विख्यात होय है। देनेकरि वैरी वैर छांडें है अपना हित करनेवाला मित्र होजाय है, जगतमें दान बडा है, थोडासा दान हू सत्यार्थ भक्तिकरि करने वाला भोगभूमिका तीन पल्यपर्यंत भोग भोगि देवलोकमें जाय है देना ही जगतमें ऊंचा है, दान देना विनय संयुक्त स्नेहका वचनकरि सहित होय देना, अर दानी हैं ते ऐसा अभिमान नाहीं करै हैं जो हम इसका उपकार करै हैं। दानी तो पात्र कूं अपना महाउपकार करनेवाला मानै हैं जो लोभ रूप अन्धकूपमें पडनेका उपकार पात्र विना कौन करै, पात्रविना लोभीनिका लोभ नाहीं छूटता अर पात्रविना संसारके उद्धार करनेवाला दान कैसैं बणता। यातैं धर्मात्मा जननिके तो पात्रके मिलने समान अर दानके देने समान अन्य कोऊ आनन्द नाहीं है, बडापना धनाढ्यपना ज्ञानीपना पाया है तो दानमें

ही उद्यम करो । छहकायके जीवनिकूं अभयदान देहु, अभक्ष्यका त्यागकरि, बहु आरम्भके घटावनेकरि देखि सोधि मेलना धरना, यत्नाचारविना निर्दयी होय नाहीं प्रवर्तना । किसी प्राणीमात्रकूं मनवचनकायतैं दुःखित मति करो । दुःखिनिकी करूणा ही करो, यो ही गृहस्थके अभयदान है यातैं संसारमें जन्म मरण रोग शोक दारिद्र वियोगादिक संतापका पात्र नाहीं होओगे ।

बहुरि संसारके बधावनेवाले हिंसाकूं पुष्ट करनेवाले तथा मिथ्याधर्मकी प्ररूपणा करनेवाले तथा युद्धशास्त्र श्रृंगारशास्त्र मायाचारके शास्त्र वैद्यकशास्त्र रस रसायण मंत्र-जंत्र मारण वशीकरणादिकशास्त्र महापापके प्ररूपक हैं इनकूं अति दूरतैं ही त्यागि भगवान वीतराग सर्वज्ञका कह्या दयाधर्मकूं प्ररूपणा करनेवाला स्याद्वादरूप अनेकांतका प्रकाश करनेवाले नयप्रमाणकरि तत्त्वार्थकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्रनिकूं अपने आत्माकूं पढने—पढावने करि आत्माका उद्धारके अर्थि अपने अर्थि दान करो । अपनी संतानकूं ज्ञानदान करो तथा अन्य धर्मबुद्धि धर्मके रोचक इच्छुक तिनकूं शास्त्रदान करो, ज्ञानके इच्छुक हैं ते ज्ञानदानके अर्थि पाठशाला स्थापन करैं हैं जातैं धर्मका स्तँभ ज्ञान ही है । जहां ज्ञानदान होयगा तहां धर्म रहैगा, यातैं ज्ञानदानमें प्रवर्तन करो । ज्ञानदानके प्रभावतैं निर्मल केवलज्ञानकूं पावै है । बहुरि रोगका नाश करनेवाला प्रासुक औषधिका दान करो । औषधदान बडा उपकारक है अर रोगीकूं सीधी तैयार औषधि मिलै है ताका बडा आनन्द है अर निर्धन होय तथा जाके टहल करनेवाला नाहीं होय, ताकूं औषध जो करी हुई तय्यार मिल जाय तो निधीनिका लाभ-समान मानै हैं औषध लेय नीरोग होय है सो समस्त व्रत तप संयम पालै है ज्ञानका अभ्यास करै है । औषधदान है ताके वात्सल्यगुण स्थितिकरणगुण निर्विचिकित्सागुण इत्यादिक अनेक गुण प्रगट होय हैं, औषधिदानके प्रभावतैं रोगरहित देवनिका वैक्रियिक देह पावै है । बहुरि आहारदान समस्तदाननिमें प्रधान है प्राणीका जीवन शक्ति बल बुद्धि ये समस्त गुण आहारविना नष्ट होजाय हैं । आहार दिया सो प्राणीकूं जीवन बुद्धि शक्ति समस्त दीना । आहारदानतैं ही मुनि श्रावकका सकलधर्म प्रवर्तै है आहारविना मार्गभ्रष्ट होजाय, आहार है सो समस्त रोगका नाश करनेवाला है जो आहारदान दे है सो मिथ्यादृष्टि हू भोगभूमिमें कल्पवृक्षनिका दशांग भोगकूं असंख्यातकाल भोगै और क्षुधातृषादिककी बाधारहित हुआ आंवलाप्रमाण तीन दिनके आंतरै भोजन करै । समस्त दुःखक्लेशरहित असंख्यातवर्ष सुख भोगि देवलोकनिमें जाय उपजै है । यातैं धनकूं पाय च्यार प्रकारके दान देनेमें प्रवर्तन करो । अर जो निर्धन है सो हू अपना भोजनमेंतैं जेता बनै तेता दान करो, आपकूं आधा भोजन मिलै ती तैहू ग्रास दोय ग्रास दुःखित बुभुक्षित दीन दरिद्रीनिके अर्थ देवो । बहुरि मिष्टवचन

बोलनेका बडा दान है, आदर-सत्कार विनय करना स्थान देना कुशल पूछना ये महादान हैं। बहुरि दुष्ट विकल्पनिका त्याग करो पापनिमें प्रवृत्तिका त्याग करो चार कषायनिका त्याग करो विकथा करनेका त्याग करो, परके दोष सत्य, असत्य कदाचित मति कहो। बहुरि अन्यायका धन ग्रहण करनेका दूरहीतैं त्याग करो। भो ज्ञानीजन हो! जो अपना हितके इच्छुक हो तो दुखितजननिकूं तो दान करो अर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानादि गुणनिके धारकनिका महाविनय सन्मान करो, समस्त जीवनिमें करुणा करो, मिथ्यादर्शनका त्याग करो, रागद्वेषमोहके धारक कुदेव अर आरम्भ परिग्रहके धारक भेषधारी अर हिंसाके पोषक रागद्वेषकूं पुष्ट करनेवाले मिथ्यादृष्टिनिके शास्त्र इनकूं बंदना स्तवन प्रशंसा करनेका त्याग करो, क्रोध मान माया लोभ इनके निग्रह करनेमें बडा उद्यम करो, क्लेश करनेके कारण अप्रिय वचन गालीके वचन अपमानके वचन मदसाहित वचन कदाचित् मति कहो। इत्यादिक जो परके दुःखके कारण तथा अपना यशकूं नष्ट करनेवाला धर्मकूं नष्ट करनेवाला मन वचन कायके प्रवर्तनका त्याग करो ऐसे त्यागधर्मका संक्षेप वर्णन किया ॥ ८ ॥

अब आकिंचन्यधर्मका स्वरूप कहिये है,—जो अपना ज्ञान–दर्शनमय स्वरूप विना अन्य किंचिन्मात्र हू हमारा नाहीं है, मैं किसी अन्यद्रव्य नाहीं है, ऐसा अनुभवनकूं आकिंचन्य कहिये है। भो आत्मन्! अपना आत्माकूं देहतैं भिन्न अर ज्ञानमय अन्य द्रव्यकी उपमारहित अर स्पर्शरसगंधवर्णरहित अर अपना स्वाधीन ज्ञानानन्दसुकरि पूर्ण परम अतींद्रिय भयरहित ऐसा अनुभव करो।

भावार्थ—यह देह है सो मैं नाहीं, देह तो रस रुधिर हाड मांस चाममय जड अचेतन है। मैं इस देहतैं अत्यन्त भिन्न हूं, ये ब्राह्मण क्षत्रियादिक जाति—कुल देहके हैं मेरे ये नाहीं हैं स्त्री पुरुष नपुंसक लिंग देहके हैं मेरे नाहीं, यो गोरापना सांवलापना राजापना रङ्कपना स्वामीपना सेवकपना पण्डितपना मूर्खपणा इत्यादि समस्त रचना कर्मका उदयजनित देहके हैं मैं तो ज्ञायक हू, ये देहका सम्बन्धी मेरा स्वरूप नाहीं है, मेरा स्वरूप अन्य द्रव्यका उपमारहित है, ताता ठंडा नरम कठोर लूखा चीकना हलका भारी अष्ट प्रकार स्पर्श हैं ते हमारा रूप नाहीं, पुद्गल के रूप हैं। ये खाटा मीठा कडुवा कसायला चिरपरा पंच प्रकार रस, अर सुगंध दुर्गंध दोय प्रकारका गंध अर काला पीला हरा स्वेत रक्त ये पंच वर्ण मेरा स्वरूप नाहीं, पुद्गलका है। मेरा स्वभाव तो सुखकरि परिपूर्ण है परन्तु कर्मके अधीन दुखकरि व्याप्त होय रह्या हूं मेरा स्वरूप इन्द्रियरहित अतींद्रिय है इन्द्रियां पुद्गलमय कर्मकरि की हुई हैं मैं समस्त भयरहित अविनाशी अखंड आदिअंतरहित शुद्ध ज्ञानस्वभाव हूँ परन्तु अनादिकालतैं जैसे सुवर्ण अर पाषाण मिल रह्या है तैसे, तथा क्षीर–नीर ज्यों कर्मनि करि अनादिकाल

हैं मिल रह्या हूं तिनमेंहू तिनमें मिथ्यात्वनाम कर्मका उदयकरि अपना स्वरूपका ज्ञान रहित होय देहादिक परद्रव्यनिकूं आपका स्वरूप जानि अनंतकालमैं परिभ्रमण किया । अब कोऊ किंचित् आवरणादिकके दूर होनेतैं श्रीगुरुनिका उपदेश्या परमागमके प्रासादतैं अपना अर परका स्वरूप का ज्ञान भया है जैसैं रत्ननिका व्यापारी जडे हुए पंच वर्ण रत्ननिके आभारणनिमें गुरुकी कृपातैं अर निरन्तर अभ्यासतैं मिल्या हुवा हू डाकका रंग अर माणिक्यका रंगकूं अर तोलकूं अर मोलकूं भिन्न भिन्न जाने है तैसे परमागमका निरंतर अभ्यासतैं मेरा ज्ञान स्वभावमें मिल्या हुआ राग द्वेष मोह कामादिक मैलकूं भिन्न जाण्या है अर मेरा ज्ञायक स्वभावकूं भिन्न जाण्या है तातैं अब जैसें रागद्वेषमोहादिक भावकर्मनिमें अर कर्मनिके उदयतैं उपजे विनाशीक शरीर परिवार धन संपदादि परिग्रहमें ममता बुद्धि मेरे जैसे फिर अन्य जन्ममें हू नाहीं उपजै तैसें आकिंचन्य भाऊं । या आकिंचन्य भावना अनादिकालतैं नाहीं उपजी, समस्त पर्यायनिकूं अपना रूप मान्या तथा रागद्वेषमोहक्रोधकामादिक भाव कर्मकृत विकार थे तिनकूं आपरूप अनुभवकरि विपरीत भावनितैं घोर कर्मबंधकूं कीया अब मैं आकिंचन्य भावनामें विघ्नका नाश करनेवाला पंच परमगुरुनिका शरणतैं आकिंचन्य ही निर्विघ्न चाहू हूं और त्रैलाक्यमें कोऊ अन्यवस्तुकूं नाहीं वांछूं हूँ । यो आकिंचन्यपना ही संसारसमुद्रतैं तारणेकूं जिहाज होहू । जो परिग्रहकूं महाबंध जानि छांडना सो आकिंचन्य है, आकिंचन्यपणा जाके होय है ताके परिग्रहमें वांछा नाहीं रहै है आत्मध्यानमें लीनता होय है, देहादिकनिमें बाह्यवेषमें आपो नाहीं रहै है, अर अपना स्वरूप जो रत्नत्रय तामें प्रवृत्ति होय है, इन्द्रियनिके विषयनिमें दौडता मन रुकि जाय है देहतैं स्नेह छूटि जाय सांसारिक देवनिका सुख, इन्द्र अहमिन्द्र चक्रवर्तीनिका सुख हू दुख दीख है इनमें वांछा कैसे करै । परिग्रह रत्न सुवर्ण राज्य ऐश्वर्य स्त्री पुत्रादिकनिकूं जीर्णतृणमें जैसें ममतारहित छांडनेमें विचार नाहीं तैसें परिग्रह छांडै है । आकिंचन्य तो परम वीतरागपणा है जिनकै संसारको अंत आगयो तिनकै होय है । जाकै आकिंचन्यपणा होय ताकै परमार्थ जो शुद्ध आत्मा ताका विचारनेकी शक्ति प्रगट होय ही, अर पंचपरमेष्ठीमें भक्ति होय ही, अर दुष्ट विकल्पनिका नाश होय ही, अर इष्ट अनिष्ट भोजनमें रागद्वेष नष्ट हो जाय है, केवल उदररूप खाडा भरना, अन्य रस नीरस भोजनमें विचार जाता रहै है, समस्त धर्मनिमें प्रधान धर्म आकिंचन्य ही मोक्षका निकट समागम करावनेवाला है । अनादिकालतैं जेते सिद्ध भए है ते आकिंचन्यतैं ही भये हैं अर आगैं जो जो तीर्थंकरादि सिद्ध होंगे

ते आकिंचन्यपणा हीतैं होंगे । यद्यपि आकिंचन्यधर्म प्रधानकरि साधुजननिकै ही होय है तथापि एकदेश धर्मका धारक गृहस्थ उस धर्मके ग्रहण करनेकी इच्छा करै है अर गृहाचारमें मंदरागी होय अतिविरक्त होय है प्रमाणीक परिग्रह धारै है, आगामी वांछारहित है, अन्यायका धन परिग्रह कदाचित् ग्रहण नाहीं करै है, अल्प परिग्रहमें अति संतोषी होय रहै है परिग्रहकूं दुःखका देनेवाला अर अत्यंत अस्थिर मानै है ताकै ही आकिंचन्यभावना होय हे । ऐसै आकिंचन्यधर्मका वर्णन किया ॥ ६ ॥

अब उत्तमब्रह्मचर्यका स्वरूप कहिए है—समस्त विषयनिमें अनुराग छांड करकै ब्रह्म जो ज्ञायकस्वभाव आत्मा तामें जो चर्या कहिये प्रवृत्ति सो ब्रह्मचर्य है । भो ज्ञानीजन हो यो ब्रह्मचर्य नाम व्रत बडो दुर्द्धर है हरेक बापडा विषयनिके वस हुआ आत्मज्ञान रहित है ते याकूं धारवेकूं समर्थ नाहीं हैं जे मनुष्यनिमें देवके समान हैं ते धरवेकूं समर्थ हैं अन्य रंक विषयनिकी लालसाके धारक ब्रह्मचर्य धारनेकूं समर्थ नाहीं है । यो ब्रह्मचर्यव्रत महादुर्द्धर है जाकै ब्रह्मचर्य होय ताकै समस्त इन्द्रिय अर कषायनिका जीतना सुलभ है । भो भव्य हो स्त्रीनिका सुखमें रागी जो मनरूप मदोन्मत्त हस्ती ताकूं वैराग्य भावनामें रोक करकै, अर विषयोंकी आशाका अभाव करकैं दुर्द्धर ब्रह्मचर्य धारण करो । यो काम है सो चित्तरूप भूमिमें उपजै है याकी पीडाकरि नाहीं करने योग्य ऐसे पाप करै है यातैं यो काम मनकूं मथन करै है मनका ज्ञानकूं नष्ट करै है याहीतैं याकूं मनमथ कहिये है । ज्ञान नष्ट हो जाय तदि ही स्त्रीनिका महादुर्गंध निंद्य शरीरकूं रागी हुआ सेवै है । अर कामकरि अंध हो जाय तदि महाअनीतिकूं प्राप्त होय अपनी परकी नारीका विचार नाहीं करै है । ' जो इस अन्यायतैं मैं इहां ही मारा जाऊंगा, राजाका तीव्रदण्ड होयगा, यश मलीन होयगा धर्म, भ्रष्ट होजाऊंगा, सत्यार्थबुद्धि नष्ट हो जायगी । मरणकरि नरकनिमें घोर दुःख असंख्यातकाल पर्यंत भोगि फिर असंख्यात तिर्यंचनिके दुःखरूप अनेकभव पाय कुमानुषनिमें अंधा लूला कूबडा दरिद्री इन्द्रियविकल बहरा गूंगा चांडाल भील चमारनिके नीचकुलमें उपजि फिर त्रस-स्थावरानिमें अनन्तकाल परिभ्रमण करूंगा । ऐसा सत्य विचार कामीके नाहीं उपजै है । इस कामके नाम ही जगतके जीवनिकूं प्रगट करै हैं । कं कहिये खोटा दर्प अर्थात् गर्व उपजावै तातैं कंदर्प कहिये है । अति कामना जो वांछा उपजाय दुःखित करैं तातैं याकूं काम कहिये है । याकरि अनेक तिर्यंचनिके तथा मनुष्यनिके भवनिमें लडि-लडि करियें तातैं मार कहिये हैं । संवरको वैरी तातैं संवरारि कहिये । ब्रह्म जो तप संयम तातैं सुवति कहिये चलायमान करै तातैं ब्रह्मसू कहिये इत्यादिक अनेक दोषनिकूं नाम ही कहै हैं या जानि मनवचन कायतैं अनुरागकरि ब्रह्मचर्य व्रत पालो । ब्रह्मचर्यकरि सहित ही संसारके पार जावोगे ब्रह्मचर्य बिना व्रत तप

समस्त असार है ब्रह्मचर्य विना सकल कायक्लेश निष्फल हैं । बाह्य जो स्पर्शनइन्द्रियका सुखतैं विरक्त होय, अभ्यन्तर परमात्मस्वरूप आत्मा ताकी उज्ज्वलता देखहु जैसे अपना आत्मा कामके रागकरि मलीन नाहीं होय तैसैं यत्न करो । ब्रह्मचर्यकरि ही दोऊ लोक भूषित होय है । बहुरि जो शीलकी रक्षा चाहो हो अर उज्ज्वल यश चाहो हो अर धर्म चाहो हो अर अपनी प्रतिष्ठा चाहो हो तो चित्तमें परमागमकी शिक्षा इस प्रकार धारण करो स्त्रीनिकी कथा मति श्रवण करो, मति कहो स्त्रीनिका राग-रंग कुनूहल चेष्टा मति देखो ये मेला देखना परिणाम बिगाडै है । व्यभिचारी पुरुषनिकी सङ्गतिका त्याग करना, भांग जरदा मादकवस्तु भक्षण नाहीं करना तांबूल तथा पुष्पमाला अतर फुलेलादि शीलभङ्ग व्रतभङ्गके कारण दूरतैं टालो गीतनृत्यादि कामोद्दीपनके कारणनिका परिहार करो, रात्रीभक्षण टालो, विकार करनेका कारण लोकविरुद्ध वस्त्र आभरण मति पहरो, एकांतमें कोऊ ही स्त्रीमात्र का संसर्ग मति करो रसनाइन्द्रिय की लम्पटता छांडो जिह्वाकी लम्पटताकी लार हजारां दोष आवै हैं यातैं समस्त ऊंचापणो यश धर्म नष्ट हो जाय है जिह्वा इन्द्रियका लंपटीके सन्तोष नष्ट होजाय समभावकूं स्वप्नमें हू नाहीं जानै किया वैरी होय है अर परलोकमें अतिनीच लोकव्यवहार भ्रष्ट होजाय ब्रह्मचर्य भङ्ग होजाय यातैं आत्माके हितका इच्छुक एक ब्रह्मचर्यकी ही रक्षा करो । ऐसैं धर्मके दशलक्षण सर्वज्ञ भगवान कहै हैं । जाके ये दस चिन्ह प्रगट होंय ताके धर्म उत्तमक्षमादिकनिके घातक धर्मके वैरी क्रोधादिक हैं तिनतैं अनेक दोष उपजै हैं तिनकी भावना करो अर क्षमादिकनिमें अनेक गुण है तिनकी भावना वारम्वार सदैव भावो । जो क्षमा है सो अपना प्राणनिकी रक्षा है, धनकी रक्षा है, यशकी रक्षा है, धर्मकी रक्षा है, व्रतशीलसंयमसत्यकी रक्षा एक क्षमाते ही है, कलहके घोरदुःखतैं अपनी रक्षा एक क्षमा ही करै है, समस्त उपद्रव तथा वैरतैं क्षमा ही रक्षा करै है, बहुरि क्रोध है सो-धम अर्थ काम मोक्षका मूलतैं नाश करै है, अपना प्राणनिका नाश करै है, क्रोधतैं प्रचण्ड रौद्रध्यान प्रगट होय है, क्रोधी एक क्षणमात्रमें आप मरि जाय है, कूवामें बावडीमें तालाव नदी समुद्रमैं डूबि मरै है, शस्त्रघात विषभक्षण झंझापातादि अनेक कुकर्मकरि आत्मघात करै है । अन्यके मारनेकी क्रोधीके दया नाहीं होय सो अपने पिता कूं पुत्रकूं भ्राताकूं मित्रकूं स्वामीकूं सेवककूं गुरुकूं एक क्षणमात्रमें मारै है । क्रोधी घोर नरक का पात्र हैं क्रोधी महा भयङ्कर है समस्तधर्मका नाश करनेवाला हैं । क्रोधीकै सत्यवचन नाहीं होय है, आपकूं अर धर्मकूं अर समभावकूं दग्ध करनेवाला कुवचनरूप अग्निकूं उगलै हैं, क्रोधी होय सो धर्मात्मा संयमी शीलवान मुनि अर श्रावकनिकूं चोरी अन्यायके झूठे दोष कलङ्क लगाय दूषित करै हैं । क्रोधके प्रभावतैं ज्ञान कुज्ञान होय है, आचरण विपरीत हो जाय श्रद्धान भ्रष्ट होजाय है,

अन्यायमें प्रवृत्ति होजाय है, नीतिका नाश होय हैं, अति हठी होय विपरीत मार्गका प्रवर्तक होय हैं, धर्म अधर्म उपकार अपकारका विचाररहित कृतघ्नी होय है। यातैं वीतरागधर्मके अर्थी हो तो क्रोधभावकूं कदाचित् प्राप्त मोत होहू। बहुरि मार्दव जो कठोरतारहित कोमल परिणामी जीव में गुरुनिका बडा अनुराग वर्तैं हैं मार्दव परिणामीकूं साधुपुरुष हू साधु माने हैं, तातैं कठोरतारहित पुरुष ही ज्ञानका पात्र होय हैं, मानरहित कोमल परिणामीकूं जैसा गुण ग्रहण कराया चाहैं तथा जैसी कला सिखाया चाहैं तैसी कला गुण प्राप्त हो जाय हैं, समस्त धर्मका मूल समस्त विद्याका मूल विनय है। विनयवान समस्तके प्रिय होय है अन्य गण जामें नाहीं होय सो पुरुष हू विनयतैं मान्य होय है विनय परम आभूषण हैं। कोमल परिणामी में ही दया वसैं हैं मार्दवतैं स्वर्गलोकिक अभ्युदय सम्पदा निर्वाणकी अविनाशीक सम्पदा प्राप्त होय है। अर कठोर परिणामीकूं दूरहीतैं त्याग्या चाहै हैं जैसैं पाषाणमें जल नाहीं प्रवेश करै तैसैं सद्गुरुनिका उपदेश कठोर पुरुषका हृदयमें प्रवेश नाहीं करै है जातैं जो पाषाण काष्ठादिक हू नरमाई लिए होय ताका तो बाल-बालमात्र हू जहां घड्या चाहैं छील्या चाहैं तहां बालमात्र ही उतरि आवे तदि जैसी सुरत मुरत बनाया चाहै तैसै ही बने है। अर कोमलतारहितमें जहां टांची लगावे तहां चिडक उतरि दूरि पडे शिल्पीका अभिप्राय माफिक घडाईमें नाहीं आवै तैसैं कठोर परिणामीकूं यथावत् शिक्षा नाहीं लागै, अभिमानीका समस्त लोक विना क्रिया वैरी होय हैं, पर-लोकमें अतिनीच तिर्यंच अर मनुष्यनिमें असंख्यातकाल नाना तिरस्कारका पात्र होय है। यातैं कठोरता त्यागि मार्दवभावना ही निरन्तर धारण करो।

बहुरि कपट समस्त अनर्थनिका मूल है प्रीति अर प्रतीतिका नाश करनेवाला है, कपटी में असत्य छल निर्दयता विश्वासघातादि समस्त दोष वसैं है, कपटीमें गुण नाहीं समस्त दोषहीं दोष वास करै हैं। मायाचारी यहां अपयशकूं पाय तिर्यंच नरकादिक गतिनिमें असंख्यात काल भ्रमण करै है। मायाचाररहित आर्जवधर्मका धारणमें समस्त गुण वसैं हैं समस्त लोकनिकूं प्रीतिका अर प्रतीतिका कारण होय है परलोकमें देवनिकरि पूज्य इन्द्र प्रतींद्रादिक होय हैं यातैं सरलपरिणाम ही आत्माका हित है। बहुरि सत्यवादीमें समस्त गुण तिष्ठै हैं सदाकाल कपटादिदोषरहित जगतमें मान्यताकूं हू प्राप्त होय है अर परलोकमें अनेक देव–मनुष्यादिक जाकी आज्ञा मस्तक ऊपर धरैं हैं। अर असत्यवादी इहां ही अपवाद निन्दा करने योग्य होय है। समस्त के अप्रतीतिका कारण है बांधव–मित्रादिक हू अवज्ञा करि छांडै हैं राजानिकरि जिह्वाछेद सर्वस्वहरणादिक दण्ड पावै हैं अर परलोकमें तिर्यंचगतिमें वचन—रहित एकेंद्रिय विकलत्रयादि असंख्यात पर्याय धारैं हैं यातैं सत्यधर्मका धारण ही श्रेष्ठ है।

बहुरि जाका शुचि आचरण होय सो ही जगतमें पूज्य है, शुचि नाम पवित्रता उज्ज्वलताका है जाकी आहार-विहारादिक समस्त प्रवृत्ति हिंसारहित अर हिंसाका भय हैं यत्नाचारसहित होय अर अन्यके धनमें अन्यकी स्त्रीमें कदाचित् स्वप्नमें वांछा नाहीं होय सो ही उज्ज्वल आचरणको धारक है तिसकूं ही जगत् पूज्य मानै है । निर्लोभीका समस्त लोक विश्वास करै है सो ही लोकमें उत्तम है उर्ध्वलोकका पात्र है, लोभरहितका बडा उज्ज्वल यश प्रगटै है । लोभी महामलीन समस्त दोषनिका पात्र है निंद्यकर्ममें लोभीकी प्रीति होय है लोभीके ग्राह्य-अग्राह्य खाद्य-अखाद्य कृत्य-अकृत्यका विचार ही नाहीं होय है, इहां हू लोकमें निन्दा धर्मतैं पराङ्मुखता निर्दयता प्रगट देखिये है, लोभी धर्म अर्थ कामकूं नष्टकरि कुमरणकरि दुर्गति जाय है लोभीका हृदयमें गुण अवकाश नाहीं पावै है इस लोकमें परलोकमें लोभीकूं अचिंत्य क्लेश दुःख प्राप्त होय है यातैं शौचधर्मका धारण ही श्रेष्ठ है । बहुरि संयम ही आत्माका हित है इसलोकमें संयमका धारक समस्त लोकनिके वन्दनेयोग्य होय है, समस्त पापनिकरि नाहीं लिपै है याकी इसलोकमें परलोकमें अचिंत्यमहिमा है अर असंयमी है सो प्राणनिका घात अर विषयनिमें अनुरागकरि अशुभकर्मका बन्ध करै है यातैं संयम धर्म ही जीवका हित है । बहुरि तप है सो कर्मका संवर निर्जरा करनेका प्रधान कारण है, तप ही आत्माकूं कर्ममलरहित करै, तपका प्रभावतैं यहां ही अनेक ऋद्धि प्रगट होय हैं, तपका अचिंत्यप्रभाव है, तप विना कामकूं निद्राकूं कौन मारै, तप विना वांछाकूं कौन मारै ?. इन्द्रियनिके विषयनिको मारनेमें तप ही समर्थ है, आशारूप पिशाचणी तपहीतैं मारी जाय है, कामका विजय तपहीतैं होय है तपका साधन करनेवाला परीषह उपसर्ग आवते हू रत्नत्रयधर्मतैं नाहीं छूटै यातैं तपधर्म ही धारण करना उचित है तपविना संसारतैं छूटना नाहीं है, जातैं चक्रीपनाका हू राज्य छांडि तप धारै सो त्रैलोक्यमें वन्दनेयोग्य पूज्य होय है अर तपकूं छांडि राज्य ग्रहण करै सो अतिनिंद्य थुथुकार करने योग्य होय, तृणतैं हू लघु होय । यातैं त्रैलोक्यमें तप-समान महान् अन्य नाहीं ।

बहुरि परिग्रहसमान भार नाहीं, जेते दुःख दुर्ध्यान क्लेश वैर वियोग शोक भय अपमान हैं ते समस्त परिग्रहके इच्छुककै हैं जैसैं जैसैं परिग्रहतैं परिणाम निराला होय तैसैं तैसैं खेदरहित होय है । जैसें बडा भारकरि दुःखित पुरुष भाररहित होय तदि सुखित होय, तैसैं परिग्रहकी वासना मिटै सुखित होय है समस्त दुःख अर समस्त पापनिका उपजावनेका स्थान ये परिग्रह है । जैसैं नदीनिकरि समुद्र तृप्त नाहीं होय

अर ईंधनकरि अग्नि तृप्त नाहीं होय है। आशारूप खाडा बडा अगाध है जाका तलस्पर्श नाहीं ज्यों ज्यों यामें धरो त्यों त्यों खाडा बधता जाय, जो आशारूप खाडा निधिनितैं नाहीं भरै सो अन्यसंपदातैं कैसैं भरै। अर ज्यों ज्यों परिग्रहकी आशाका त्याग करो त्यों त्यों भरतो चल्या जाय तातैं समस्त दुःख दूरि करनेकूं त्याग ही समर्थ है। त्यागहीतैं अन्तरङ्ग बहिरङ्ग बंधनरहित अनन्तसुखके धारक होहुगे। परिग्रहके बंधनमें बंधे जीव परिग्रह त्यागतैं ही छूटि मुक्त होय तातैं त्यागधर्म धारण ही श्रेष्ठ है। बहुरि हे आत्मन्! यो देह अर स्त्री पुत्र धन धान्य राज्य ऐश्वर्यादिकनिमें एक परमाणुमात्र हू तुम्हारा नाहीं है, पुद्गलद्रव्य हैं, जड हैं, विनाशीक हैं, अचेतन हैं इन परद्रव्यानिमें 'अहं' ऐसा संकल्प तीव्र दर्शनमोहकर्मका उदय विना कौन करावै? इस परद्रव्यमें आत्मसंकल्प मेरे कदाचित् मति होहू मैं अकिंचन हूं। या आकिंचन्यभावनाके प्रभावतैं कर्मका लेपरहित यहां ही समस्त बंधरहित हुआ तिष्ठै है साक्षात् निर्वाणका कारण आकिंचन्यधर्म ही धारण करो।

बहुरि कुशील महापाप है संसार–परिभ्रमणका बीज है ब्रह्मचर्यके पालनेवालेतैं हिंसादिक पापनिका प्रचार दूरि भागै है समस्त गुणनिकी संपदा यामें बसै है जितेंद्रियता प्रकट होय है ब्रह्मचर्यतैं कुल–जात्यादि भूषित होय है, परलोकमें अनेक ऋद्धिका धारक महार्द्धिक देव होय है। ऐसैं भगवान अरहंत देवाधिदेवके मुखारविंदतैं प्रगट हुआ दशलक्षण धर्म आत्माका स्वभाव है, पर वस्तु नाहीं है, क्रोधादिक कर्मजनित उपाधि दूरि होतैं स्वयमेव आत्माका स्वभाव प्रगट होय है, क्रोधके अभावतैं क्षमागुण प्रगट होय है मानके अभावतैं मार्दवगुण प्रगट होय है, मायाके अभावतैं आर्जवगुण प्रगट होय है, लोभके अभावतैं शौचधर्म प्रगट होय है, असत्यके अभावतैं सत्यधर्म प्रगट होय हैं कषायनिके अभावतैं संयमगुण प्रगट होय है, इच्छाके अभावतैं तपगुण प्रगट होय है, परमें ममताके अभावतैं त्यागधर्म प्रगट होय हैं परद्रव्यनितैं भिन्न अपने आत्मानुभव होनेतैं आकिंचन्यधर्म प्रगट होय है, वेदनिके अभावतैं आत्मस्वरूपमें प्रवृत्तितैं ब्रह्मचर्यधर्म प्रगट होय है। यो दश प्रकार धर्म आत्माका स्वभाव है यो धर्म किसीतैं खोंस्या खुसै नाहीं, लूट्या लुटै नाहीं, चोर चोरि सकै नाहीं, राजाका लूट्या लुटै नाहीं स्वदेशमें परदेशमें सदा याका स्वरूप छूटै नाहीं, किसीका बिगाड्या बिगडै नाहीं, धनकरि मोल आवै नाहीं, आकाशमें पातालमें दिशामें पहाडमें, जलमें, तीर्थमें, मन्दिरमें कहीं धऱ्या नाहीं, आत्माका निजस्वभाव है याका लाभ सम्यग्ज्ञान श्रद्धानतैं होय है अर ऐसा सुगम है जो बालक वृद्ध युवा धनवान् निर्धन बलवान् निर्बल सहायसहित असहाय रोगी निरोगी समस्तके धारण करनेमें आवनेयोग्य स्वाधीन है धर्मके धारनेमें कुछ खेद क्लेश अपमान भय विषाद कलह शोक दुःख कदाचित् है नाहीं, दुर्लभ है नाहीं, बोझ उठावना नाहीं, दूरदेश जावना नाहीं, क्षुधा तृष शीत उष्णताकी

वेदनाका आवना नाहीं, किसीका विसम्वाद झगडा है नाहीं, अत्यन्त सुगम समस्त क्लेश दुःखरहित स्वाधीन आत्माका ही सत्यपरिणमन है । यातैं समस्त संसार–परिभ्रमणतैं छूटि अनन्तज्ञान दर्शन सुख धारक सिद्ध अवस्था याका फल है । ऐसैं दशलक्षण धर्मको संक्षेप करि वर्णन कियो ।

अब शल्यनिका जाकै अभाव होय सो व्रती होय है शल्यसहितके व्रत कदाचित नाहीं होय, यातैं तीन शल्यका स्वरूप श्रावककूं हू जाण्या चाहिये । निदानशल्य, मायाशल्य, मिथ्यादर्शनशल्य ये तीनों ही शल्य व्रतके घात करनेवाली हैं । तिन तीन शल्यमें निदान है सो तीनप्रकार है एक प्रशस्तानिदान, अप्रशस्तनिदान, भोगार्थनिदान । ये तीनप्रकार ही निदान संसारका कारण हैं इहां निदान नाम आगामी वांछाका है, तिनमें जो संयम धारनेके अर्थि उत्तमकुल उत्तमसंहनन बलवीर्य शुभसंगति तथा बन्धुजननिकी धर्ममें सहायता उज्ज्वलबुद्धि आदिकूं चाहना सो प्रशस्तनिदान है । बहुरि अभिमानके अर्थि उत्तमकुल जाति भली बुद्धि प्रबलशक्ति तथा आचार्यपना गणधरपना तीर्थंकरपना इत्यादि अपनी आज्ञा तथा आदर उच्चता प्रवर्तनेके अर्थि चाह करना सो अप्रशस्तनिदान है तथा क्रोधी होय अन्यके मारनेके अर्थि वांछा करना परके स्त्री पुत्र राज्य ऐश्वर्यका नाशके अर्थि वांछा करना सो हू अप्रशस्तनिदान है। बहुरि जो समय धारणकरि घोरतपश्चरणकरि ताका फल इन्द्रियनिका विषय राज्य ऐश्वर्य तथा देवपना तथा अनेक अप्सरानिका स्वामिपना तथा जातिकुलमें उच्चपना तथा चक्रीपना चाहना सो भोगके अर्थि निदान जानना । यो निदान दीर्घकाल संसारपरिभ्रमण करावनेवाला जानना । संयमका प्रभावकरि समस्त कर्मका नाशकरि अतींद्रिय अविनाशी निर्वाणका अनन्त सुख पाइये है । तिस संयमकूं पालि भोगनिकी वांछा करै है सो एक कौडीमें चिन्तामणिरत्नकूं बेचै है तथा अपनी रत्ननिकी भरी समुद्रमें दौडती नावकूं ईंधनके अर्थि तोडै है तथा मणियम हारकूं सूतके अर्थि तोडै है तथा गोशीर जो चन्दन ताकूं भस्मके अर्थि दग्ध करै है । जो वांछा करै है ताके पुण्य हू नष्ट होजाय, अर पापका बन्ध होजाय है। पुण्यका बन्धतो निर्वाञ्छक भावतैं होय है सम्यग्दृष्टी तो भोगनिकी वांछारहित है, सम्यग्दृष्टीकूं तो इन्द्र–अहमिंद्रलोकका सुख हैं सो सुखाभास विनाशीक पराधीनताकरि दुःखरूप दीख है वाकूं तो आत्मीक स्वाधीन अतींद्रिय सुखका अनुभव है। यातैं इन्द्रियजानित आतापतैं महाक्लेशका भऱ्या तृष्णारूप आतापकूं बधावता विषयनिके आधीनकूं कैसैं सुख मानै ? जैसै जो अमृत आस्वादन किया सो कटुक महादुर्गंध आताप उपजावनेवाली कडवी खलिकूं कैसैं वांछा करै ? सम्यग्दृष्टीकी तो ऐसी वांछा है—

दुक्खक्खयकम्मक्खयसमाहिमरणं च बोहिलाहो य । एयं पत्थेदव्वं णपत्थनीयं तदो अण्णं ॥ १ ॥

अर्थ—हमारे शरीर धारणादिक जन्म मरण क्षुधा तृषादिक दुःखनिको क्षय होहू, आत्मगुणकूं नष्टकरनेवाला मोहनीय ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मको क्षय होहु तथा इस पर्यायमें च्यार आराधनाका धारणसहित समाधिमरण होहु, बोधि जो रत्नत्रय ताका लाभ होहु । सम्यग्दृष्टीकै ऐसी ही प्रार्थना करने योग्य है । इनतैं अन्य इस भवमें परभवमें प्रार्थना करने योग्य नाहीं है । संसारमें परिभ्रमण करता जीव उच्चकुल नीचकुल राज्य ऐश्वर्य धनाढ्यता निर्धनता दीनता रोगीपना नीरोगपना रूपवानपना विरूपपना बलवानपना निर्बलपना पण्डितपना मूर्खपना स्वामीपना सेवकपना राजापना रंकपना गुणवानपना निर्गुणपना अनन्तानन्त बार पाया है अर छांडया है तातैं इस क्लेशरूप संयोग-वियोगरूप संसारमें सम्यग्दृष्टि निदान कैसैं करै ? इस संसारमें अनन्त पर्याय दुःखरूप पावे तदि एक पर्याय इन्द्रियजनित सुखकी पावे फिर अनन्तबार दुःखकी पावै सो ऐसें परिवर्तन करते इन्द्रिय-जनित सुख हू अनन्तंवार पाया।

अब सम्यग्दृष्टी इन्द्रियनिके सुखकी कैसैं बांछा करै ? इस संसारमें स्वयंभूरमणसमुद्रका समस्त जलप्रमाण तो दुःख हैं अर एक बालकी अणीके जल लागै ताका अनन्तभाग करिये तिनमें एक भाग प्रमाण इन्द्रियजनित सुख हैं। इसतैं कैसैं तृप्ति होयगी-? अर भोगनिका त्याग तथा इष्ट सम्पदाका संयोगका जेता सुख हैं तिसतैं असंख्यातगुणा वियोगकालमें दुःख है । अर सयोग होय ताका वियोग नियमसूं होयगा जैसैं शहदकरि लिप्त खङ्गकी धाराकूं जो जिह्वाकरि चाटै ताके स्पर्शमात्र मिष्टताका सुख अर जिह्वा कटि पडे ताका महादुःख, तैसैं विषयनिके संयोगका सुख जानो । तथा जैसैं किंपाकफल दीखनेमें सुन्दर खावनेमें मिष्ट हैं पीछै प्राणनिका नाश करै है तथा जहरतैं मिल्या मोदक खातां तो मीठा परिपाक कालमें प्राणनिका महादुःखतैं नाश करनेवाला हैं तैसैं भोग-जनित सुख जानहु । बहुरि जैसैं कोऊ पुरुष कनै बहुत धन होय अल्पमोल लीया चाहैं तो बहुत धनके साटै थोरा धन मिल जाय अर आप कनै अल्प धन होय अर वाका मोल बहुत चाहै तो नाहीं मिलै । तैसैं जो स्वर्गकी सम्पदा पावनेयोग्य पुण्यबन्ध किया होय अर पीछै निदान करनेतैं अपना अधिक पुण्य होय ताकूं घाति तुच्छ सम्पदा जाय पावै हैं पाछै संसारपरिभ्रमण याका फल हैं । जैसैं सूतकी लंबी डोरीकरि वंधा पक्षी दूर उडि गया हू उसी स्थानकूं प्राप्त होय हैं जातैं दूरि उडि चल्या तो कहा पग तो सूत की डोरीतें बांधा हैं, जाय नाहीं सकेगा । तैसें निदान करनेवाला अति दूरि स्वर्गादिकमें महर्द्धिकदेव हुआ हू संसार ही में परिभ्रमण करेगा देवलोक जाय करके हू निदानके प्रभावतैं एकेंद्रिय तिर्यंचनि में तथा पंचेंद्रियतिर्यंचनिमें तथा मनुष्यमें आय पापसंचय करि दीर्घकाल परिभ्रमण करै है । अथवा जैसैं ऋणसहित पुरुष करार

करि बन्दीगृहतैं छूटिकरि अपने घरमें सुखसूं आय वस्या तो हू करार पूर्ण भये फिर बंदीगृहमें जाय वसै तैसें निदानकरि सहित पुरुष हू तप संयमतैं पुण्य उपजाय स्वर्गलोक जाय करकैं हू आयु पूर्ण भये स्वर्गतैं चय संसारहीमें परिभ्रमण करै है । यहां ऐसा जानना जो मुनिपनामें वा श्रावकपनामें मन्द-कषायके प्रभावतैं वा तपश्चरणके प्रभावतैं अहमिंद्रनिमें तथा स्वर्गमें उपजनेका पुण्यसंचय किया होय अर पाछैं भोगनिकी वांछादिकरूप निदान करै तो भवनत्रिकादिक अशुभ देवनिमें जाय उपजै अर जाकै पुण्य अधिक होय अर अल्प पुण्यका फलके योग्य निदान करै तो अल्प पुण्यवाला देव मनुष्य जाय उपजै, अधिक पुण्यवाला देव मनुष्यनिमें नाहीं उपजै । जो निर्वाणका तथा स्वर्गादिकनिके सुखका देनेवाला मुनि श्रावकका उत्तमधर्म धारणकरि निदानतैं बिगाडै है सो ईंधनके अर्थि कल्पवृक्षकूं छेदै है । ऐसैं निदानशल्यका दोष वर्णन किया ।

अब मायाशल्यका दोष कौन वर्णन करि सके । पूर्वैं मायाचारके दोष कहे ही है, मायाचारीका व्रत शील संयम समस्त भ्रष्ट है जो भगवान जिनेन्द्रका प्ररूप्या धर्म धारण करो अर आत्माकूं दुर्गतिनिके दुखतें रक्षा करी चाहो हो तो कोटि उपदेशनिका सार एक उपदेश यह है जो मायाशल्यकूं हृदयमेंसे निकास द्यो, यश अर धर्म दोऊनिका नाश करनेवाला मायाचार त्यागि सरलता अङ्गीकार करो । बहुरि मिथ्यात्वका पूर्वैं वर्णन किया सो समस्त संसारपरिभ्रमणका बीज है मिथ्यात्वके प्रभावतैं अनन्तानन्त परिवर्तन किया मिथ्यात्वविषकूं उगल्यां विना सत्यधर्म प्रवेश ही नाहीं करै, मिथ्यात्वशल्य शीघ्र ही त्यागो । माया मिथ्या निदान इन तीन शल्यका अभाव हुआ विना मुनिका श्रावकका धर्म कदाचित् नाहीं होय, निःशल्य ही व्रती होय है । बहुरि दुष्ट मनुष्यनिका संगम मति करो, जिनकी संगतितें पापमें ग्लानि जाती रहै पापमें प्रवृति होय तिनका प्रसंग कदाचित् मति करो, जुआरी चोर छली परस्त्री-लंपट जिह्वा-इन्द्रियका लोलुपी, कुलके आचारतैं भ्रष्ट विश्वासघाती मित्रद्रोही गुरुद्रोही धर्मद्रोही अपयशके भयरहित निर्लज्ज पापक्रियामें निपुण व्यसनी असत्यवादी असन्तोषी अतिलोभी अतिनिर्दयी कर्कशपरिणामी कलहप्रिय विसंवादी वा कुचाल प्रचण्ड परिणामी अतिक्रोधी परलोकका अभाव कहनेवाला नास्तिक पापके भयरहित तीव्र मूर्च्छाका धारक अभक्ष्यका भक्षक वेश्यासक्त मद्यपायी नीचकर्मी इत्यादिकनिकी संगति मति करो । जो श्रावकधर्मकी रक्षा किया चाहो, हो जो अपना हित चाहो हो तो अग्निसमान विषसमान कुसंग जानि दूरतैं ही छांडो । जातैं जैसाका संसर्ग करोगे तिसमें ही प्रीति होयगी, अर प्रीति जामें होय ताका विश्वास होय,

विश्वासतैं तन्मयता होय है तातैं जैसी संगति करोगे तैसा हो जावोगे जातैं अचेतन मृत्तिका हू संसर्गतैं सुगन्ध दुर्गन्ध होय है तो चेतन मनुष्य संगतिकरि परके गुणरूप कैसैं नाहीं परिणमैगा । जो जैसेकी मित्रता करै है सो तैसा ही होय है दुर्जनकी संगतिकरि सज्जन हू अपनी सज्जनता छांडि दुर्जन हो जाय है जैसैं शीतल हू जल अग्निकी संगतितैं अपना शीतलस्वभाव छांडि तप्तपनेनैं प्राप्त होय है । उत्तमपुरुष हू अधमकी संगति पाय अधमताकूं प्राप्त होय है जैसैं देवताके मस्तक चढनेवाली सुगंध पुष्पनिकी माला हू मृतकका हृदयका संसर्गकरि स्पर्शनेयोग्य नाहीं रहै है दुष्टकी संगतिनैं त्यागी संयमी पुरुष हू दोषसहित शंका करिये है जैसैं कलालका हस्तमें दुग्धका घडा हू मदिराकी शंका उपजावै है तथा कलालका घरमें दुग्धपान करता हू ब्राह्मण लोकनिकै मदिरा पीवनेकी शंका उपजावै है लोक तो परके छिद्र देखनेवाले हैं परके दोष कहनेमें आसक्त हैं, जो तुम दुष्टनिकी दुराचारीनिकी संगति करोगे तो तुम लोकनिंदानै प्राप्त होय धर्मका अपवाद करावोगे तातैं कुसंग मति करो । खोटे मनुष्यकी संगतितैं निर्दोष हू दोषसहित मिथ्यामार्गी शीघ्र होय हैं जातैं मिथ्यात्वका अर कषायनिका परिचय तो अनादिकालका है अर वीतरागभाव कदाचित् कोई महाकष्टतैं उपज्या सो कुसङ्ग पाय क्षणमात्रमें जाता रहैगा अनादिकालका मोहकर्म बडा प्रबल है । याका उदयतैं विषय–कषायनिमें विना सिखाया स्वयमेव प्रवर्तै है, फिर कुसंगतितैं तो पवनकी सङ्गतितैं अग्निका ज्यों अति प्रज्वलित होय है यातैं कुसंग छांडि शुभ सङ्गति करो, सज्जननिकी सङ्गतितैं दुष्ट हू अपना दोषकूं छांडै हैं । बहुरि सत्संगतितैं निर्गुण पुरुष हू जगतकै मान्य होय है जैसैं निर्गंध हू पुष्प देवतानिका संगतितैं लोक मस्तकविषैं चढावैं हैं । यद्यपि कोऊकै धर्ममें प्रीति नाहीं है अर परीषह सहनेमें अर इन्द्रियनिके विषय त्यागनेमें अतिपराङ्मुखपना है तोहू संयमी त्यागी व्रती पुरुषनिकी संगति रहनेके प्रभावतैं लज्जाकरि भयकरि अभिमानकरि अन्यायके विषय–कषायतैं विरक्त होय ही है, अर जो प्रकृतिकरि ही मन्दकषायी धर्मानुरागी पापतैं भयभीत होय अर ताकूं उत्तमसंगति मिलै ताकैं परमधर्मका ग्रहण होय संसारके पारकूं पावै ही है । बहुरि जिनतैं सम्यक् धर्मकी प्रवृति होय जिनकी संगतितैं अनेक जन विषय–कषायतैं विरक्त होय त्याग संयम तपमें लीन हो जांय ऐसा न्यायमार्गी धर्मचर्याका धारक धर्मात्मा एक पुरुषकरि ही जगत भूषित है कृतार्थ है । धर्मरहित विषयी कषायी बहुतकरि कहा साध्य है ? कल्पवृक्ष तो एक ही समस्त वेदना–रहित करि वांछित सुख दे है अर विषके बहुत वृक्ष केवल मूर्च्छा सन्ताप मरणके कारण करि कहा साध्य है ? इसलोकमें जो अनर्थ पैदा होय सो कुसंगतें होय है, कुसंग विना ज्वारी चोर परस्त्रीलम्पट वेश्यासक्त अभक्ष्यभक्षक मद्यपायी नाहीं होय, बडे-बडे अनर्थ दोष कुसङ्गतैं ही होय हैं यातैं दोऊ

लोकमें अपना हित चाहो हो तो कुसङ्ग मति करो । प्रत्यक्ष देखिये है जे उत्तम कुल उत्तम उज्ज्वलधर्म पाया है फिर हू कुदेव कुगुरु कुधर्म पाखण्डीनिकी उपासना करैं हैं, भांग पीवै हैं, जरदा खाय हैं, बहुरि हुक्का पीवैं हैं, रात्रिभक्षण करे हैं, वेश्याकी उच्छिष्ट खाय है, जुआ खेले हैं, चुगली करै हैं, परधन परस्त्रीकी और तृष्णा करे हैं, जिह्वाइन्द्रियके लोलुपी हैं निर्दय परिणामी कुवचन बोलनेमें रक्त, परविघ्नसन्तोषी सत्सङ्गति विना कुसङ्गतें ही होय है । महा पुण्याधिकारी मनुष्य होय है सो इस विषम कलिकालमें कुसङ्ग छांडि शुभ सङ्गति पावै है । अर जो जिनेंद्रधर्म धारण किया है तो अपनी प्रशंसा अर परकी निन्दा मति करो । जो अपने मुखतैं अपनी प्रशंसा करै हैं सो अपने यशका नाश करैं हैं, अभिमानी मदवान विना अपनी प्रशंसा अन्य नाहीं करै है, अपनी प्रशंसा करता पुरुष तृण–समान. लघु होय है अवज्ञा–योग्य होय है । विद्यमान हू गुण अपने मुखतैं कहि गुणरहित होय दोषनिका पात्र होय है जामें और कछू हू दोष नाहीं होय ताकै बडा भारी दोष आपकी प्रशंसा करना है । अपने मुखतैं अपनी प्रशंसा नाहीं करना सो बडा गुण है अपना गुणकी प्रशंसा नाहीं करता पुरुषका विद्यमान गुण नाशकूं नाहीं प्राप्त होय हैं जैसैं अपना तेजकी नाहीं प्रशंसा करता सूर्यका तेज जगतमें विख्यात होय है । आपमें गुण नाहीं अर आपकी प्रशंसा करता पुरुषकै गुणवानपणा प्रगट नाहीं होय है जैसैं स्त्रीकी ज्यों हावभाव विलासविभ्रम शृङ्गार अञ्जन वस्त्रादिक धारण कर स्त्रीकी ज्यों आचरण करता नपुंसक स्त्री नाहीं होयगा, नपुंसक ही रहैगा । आपमें गुण विद्यमान हू होय अर कोऊ कीर्तन करै प्रशंसा करै तदि उत्तम पुरुष तो अपनी कीर्ति श्रवणकरि लोकनिमें लज्जाकूं प्राप्त होय है, सत्पुरुषनिकूं अपनी कीर्ति नाहीं रुचै है । अपनी किर्ति श्रवणकरि अतिलज्जित हुवा आत्मनिंदा करै है जो मैं संसारी अनेक दोषनिकरि भऱ्या मेरी प्रशंसाकरि लोक मेरे ऊपरि बडा भार आरोपण करैं हैं प्रशंसायोग्य तो वे हैं जे आत्माकी परम–विशुद्धताके इच्छुक होय मोह काम क्रोधादिकका विजयकूं प्राप्त भये हैं, हम संसारी रागद्वेषकरि व्याप्त इन्द्रियनिके विषयनिकरि तर्जित, परिग्रहासक्त अतिनिंद्ने योग्य हैं, जिनके एक घडी हू प्रमादीपनातैं धर्मरहित व्यतीत होय हैं ते जगतमें महामूढ हैं, निंद्य हैं । यो मनुष्यजन्म अतिदुर्लभ, अर जामें जिनधर्मका पावना अतिदुर्लभतर । ऐसे अवसरमें भी जे धर्म छांडि विषयनिमें रचैं है ते अपने गृहमें उपज्या कल्पवृक्षकूं काटि विषका वृक्ष लगावै हैं तथा चिंतामणिरत्नकूं काक उडावनेकूं क्षेपै है तथा चिन्तामणिरत्नकूं कांचका खण्डमें बेचैं है । इस मनुष्यजन्मकी एक एक घडी कोटि धनमें दुर्लभ सो वृथा जाय है लोकनिकी कथामें तथा लोकनिकी रागद्वेषपरिणति देखि मैं हू कषायसहित हुवा दुर्ध्यानतैं मनुष्यजन्म व्यतीत करूं हूं सो मुझ–समान निन्द्ने

योग्य अन्य नाहीं इत्यादिक अपनी निन्दा गर्हा करता उत्तम पुरुषकूं अपनी प्रशंसा कैसें रुचै, नाहीं रुचै, आपकूं नीचा देखै है। जो वचनकरि अपनी प्रशंसा करै सो नीचगोत्र नामा कर्मका बन्ध करै है अर इहां लोकनिमें महानिंद्य होय है। सत्पुरुष अपने गुण आप प्रगट नाहीं करै तो हू उज्ज्वल आचरणकरि जगत्में गुण विख्यात होय हैं जैसें चन्द्रमाका उद्योत अर शीतलपना अर आल्हादकपना विना कह्या जगतमें विख्यात होय है।

बहुरि परकी निन्दा कदाचित् मति करो, परकी निन्दा करनेसमान जगतमें दोष नाहीं है। परकी निन्दा महावैरका कारण है दुर्ध्यानका कारण है कलहका कारण है भयका कारण है दुःखका तथा पश्चात्तापका तथा शोकका तथा विसंवादका तथा अप्रतीतिका कारण है जगतमें निन्दा होय है परकी निन्दा करनेवाला अपना धर्म अर यश अर वडापनाका अत्यन्त नाश करै है जे परके दोष प्रकट करि आप निर्दोष बण्या चाहैं हैं सो परकूं औषधि भक्षण करनेतैं अपना नीरोगपना चाहैं हैं। कोटि दोषनिका शिरोमणि एक अन्यकी निन्दा करना है यातैं जो जिनेंद्रका धर्म धारण करो हो तो परके दोष मति कहो सत्पुरुष तो परके दोष देखि आप लज्जित होय है अर परका दोषकूं अपना सामर्थ्य प्रमाण ढांकैं है, जैसैं अपना अपवादका भय करैं तैसैं परके अपवाद होनेका वडा भय करै है जो संसारी जीवनिकै ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मका उदय प्रबल है जाकरि जीव अज्ञानकूं प्राप्त होय रहे हैं अर मोहनीयकर्मके उदयतैं रागी दोषी कामी क्रोधी लोभी मानी कपटी होय रहैं हैं भयवान शोकवान ग्लानिवान रतिके वश अरतिके वशीभूत होय नाना विकाररूप कुचेष्टा करैं हैं जैसैं मदिरा पीय परवश हो आपा भूलैं हैं तथा धतूरा खाय उन्मत्त चेष्टा करता परवश हुवा आपा—भूलि निंद्यचेष्टा करै है तथा जैसैं वातपित्तकरि उन्मत्त भया परवश वकवाद करैं है तैसैं संसारी जीव विषय कषायके वश होय निंद्य चेष्टा करै है। इनकी तो करुणा धारि दोषनितें छुडाऊं निन्दा अपवाद कैसें करूं, परका अपवादकरि अनेक निंद्य पर्याय दुर्गतिनिमें तिरस्कार पाया है। सम्यग्दृष्टी तो नित्य ही ऐसी प्रार्थना करै है जो मेरा परके दोष कहनेमें मौन होहू मेरा समस्त जीवनि प्रति गुणरूप वचन ही प्रवर्तो, जिनधर्मी तो गुणग्राही ही होय है मिथ्यादृष्टीनिके तीव्र कषायीनिके मिथ्या आचरण देखि वैर-बुद्धि करि निन्दा नाहीं करै है, जो याका अपवाद होय तो अच्छा है ऐसा अभिप्राय नाहीं धारै है, दोषनिकूं मिथ्यात्वकूं अनंतकाल दुःखनिका देनेवाला जानि करुणाबुद्धितैं मन्दकषायी जीवनिकूं गुण-दोष, हानि-वृद्धिका स्वरूप दिखावै हैं।

बहुरि निद्रा आलस्य प्रमादका विजय करो। निद्रा समस्त धर्मका अभाव करै है, जाकैं निद्राका विजय नाहीं हुवा ताकै छह आवश्यक स्वाध्याय ध्यान जाप्य समस्त उत्तम कार्य नष्ट हो जाय हैं। मुनीश्वरनिके तो

तप ही निद्राका विजयके अर्थि है । निद्रा है सो दर्शनावरणका उदयजनित सर्वघाती है, आत्माकूं अचेतन करै है, जो निद्राकूं नाहीं जीती ताकैं समस्त हितरूप कार्य नष्ट हो जायगा । शास्त्र-पठन करैगा अथवा जिन-सूत्रका श्रवण करैगा अर निद्रा ऊंघ आजायगी तदि श्रवण करना नाहीं होयगा, जिनसत्रके श्रवण-पठनमें अरुचि होजायगी, ध्यानसामायिक करते निद्रा आजायगी तदि ध्यान जाप्य सामायिक आत्मध्यान भावना समस्त नष्ट हो जायगी । निद्रामें एकेंद्रीसमान होय है समस्त-ज्ञानकूं निद्रा नष्ट करि देय है, अबुद्धिपूर्वक अनेक विकल्प आत्मामें उपजै हैं बुद्धिपूर्वक आत्माका हित होनेकी भावनाका अभाव होय है । दिवसमें निद्रातैं दर्शनावरण-कर्मका आस्रव होय है । मुनीश्वर तो प्रहर रात्रि गये पाछैं खेद प्रमदादि दूरि करनेकूं मध्यरात्रिके दोय प्रहरमें शयन करैं, सो अल्प निद्रा लेय फिर जाग्रत हुआ द्वादशभावनादिका चिन्तवन करैं हैं फिर क्षणमात्र निद्रा आवै फिर जाग्रत होय धर्मध्यान करता रहै हैं । अर जो कदाचित् मुहूर्तप्रमाण भी निद्रामें अचेत होजांय तो निद्राके जीतनेके अर्थि उपवास दोयउपवास तीन चार पांच इत्यादिक उपवास तथा रसपरित्यागादिक महान् अनशनादिक तपकरि निद्राका अभाव करैं हैं । निद्राके जीतनेकूं अर कामके जीतनेकी सावधानीके अर्थि अनशनादि तप निरन्तर आचरैं हैं । निद्रामें तो समस्त परिणामनिकी सावधानीको अर वचन कायकी सावधानी को अभाव होय है । जाकूं उत्तम मनुष्यजन्म अर उत्तमधर्मका नाशकरि एकेन्द्रीसमान होय मनुष्य आयुकूं पूर्ण करना होय तो बहुत निद्रा ले है । दिवसमें निद्रा ले ताका तो व्रत संयम ही गलि जाय है, खेद आलस्यादिक दूर करनेकूं रात्रिविषैं अल्पनिद्रा ग्रहण करैं हैं, निद्रा आलस्यादिक तो जीवका अंतर्गत महावैरी है निद्रामें हेय उपादेय, कार्य-अकार्य, हित-अहित, योग्य अयोग्यका विचार-रहित होय है, निद्रा जीते विना इस लोकहीके समस्त कार्य नष्ट हो जांय तदि परमार्थरूप कार्य कैसैं बनै । यातैं जो विद्या विनय तप संयम स्वाध्याय ध्यानं जाप्यकी सिद्धि चाहो हो तो निद्राकूं जीति खेद ग्लानिके दूर करनेकूं अल्पनिद्रा ग्रहण करो ।

अब अष्ट शुद्धिका वर्णन करैं हैं । यद्यपि ये अष्ट शुद्धि तो मुनीश्वर परमवीतरागी साधुनिकै होय हैं तथापि साधुपना धारण करनेका वांछक अर साधुका धर्ममें भावना भावनेका इच्छुक जो गृहस्थ ताकूं अष्टशुद्धि जाननेयोग्य हैं । भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, प्रतिष्ठापनाशुद्धि, शयनासनशुद्धि वाक्यशुद्धि ये अष्टप्रकार शुद्धि है तिनमें मोहनीयकर्मका क्षयोपशमतैं उपजी जो मोक्षमार्गमें रुचि ताकरि परिणामनिमें ऐसी उज्ज्वलता

होय जो रत्नत्रय ही मार्ग है, अन्य है सो संसारमें उलझावनेवाला कुमार्ग है आत्माका हित मोक्ष है सो मोक्ष कर्मके बन्धन-रहित है अर कर्मबन्धनका छूटना रत्नत्रयतैं ही है ऐसा दृढ श्रद्धानज्ञानतैं उपजी संसारदेह-भोगनितैं विरागतारूप समस्तरागद्वेषादि मलरहित उज्ज्वलता सो भावशुद्धि है। जातैं भावनिमैंतैं विषयनिकी इच्छा रागद्वेषादि उपद्रव, मिथ्यात्वरूप महामल दूरि हुआ विना मुनिका आचार तथा श्रावकका आचार प्रकाशकूं प्राप्त नाहीं होय है। जैसैं अतिशुद्ध भींते ऊपरि चित्राम उघडै है कर्दमादिकरि लिप्त भूमि ऊपरि अतिचतुर हू चित्रकार सुन्दर रंगावली नाहीं कर सकै है तैसैं मिथ्यात्व कषायादिकरि लिप्त पुरुषकै हू सम्यग्ज्ञान चारित्र नाहीं होय है। ऐसैं भावशुद्धता कही।

साधुनिकै कायशुद्धि कैसैं होय सो कहिए है। जातै आवरण जो सूतके रेशमके सणके वासके रोमके चामके वृक्षनिके बल्कलके वस्त्रादिक आच्छादन तथा भस्मादिक लगावनेकरि रहित हैं, बहुरि समस्त आभरणादिकरहित अर स्नानगंधलेपनादि संस्काररहित जैसैं रेत धूलि पसेव तृणादि शरीर उपरि आय चिपकै तिनका संस्काररहित अर नासिका नेत्र ललाट ओष्ठ भृकुटि मस्तक स्कंध हस्त अंगुली इत्यादिकनिका हलावनेके विकाररहित अर सर्वत्र क्रियामें यत्नाचारसहित प्रशमसुख की मूर्तिकूं दिखावै ही है कहा मानूं ऐसा कायकूं होते संते आपके परतैं भय नाहीं होय है अर परके आपतैं भय नाहीं होय है ऐसी कायकी विशुद्धिता साधुनिकै ही होय है। अर श्रावक हू एकदेश शुद्धताका धारक जे वस्त्राभरण पहरैं हैं ते ऐसे पहरे जिनकरि आपके तथा परके काम नाहीं उपजैं, अभिमान नाहीं उपजै, भय नाहीं उपजै। लोकनिके मान्य अपना पदस्थके योग्य तथा अवस्थाके योग्य पहरणा तथा अंगकी चेष्टा नेत्रनिकरि अवलोकन वचनका कहना, बैठना, सोवना, चलना, रागादि, अभिमानादि, दोषरहित प्रवर्तन करना सो कायशुद्धि होय है।

अब विनयशुद्धिता ऐसी जानो अरहंतादिक परमगुरुनिकी यथायोग्य पूजामें लीनता अर सम्यग्ज्ञानादिकमें यथाविधि भक्तिकरि युक्त रहना, अर सर्वकाल गुरुनिके अनुकूल प्रवर्तना, अर प्रश्न करनेमें, स्वाध्यायमें, वाचनामें कथनीमें, विनती करनेमें निपुणपना तथा देशकालभावनिकूं जानि निपुणताकरि आचार्यादिकनिकैं अनुकूल प्रवर्तना आचरण करना सो विनयशुद्धता है विनय है सोही समस्त चारित्र संपदाको मूल है, विनय ही पुरुषका आभूषण है, विनय ही संसारसमुद्र तिरनेकूं नाव है याहीतैं गृहस्थ है सो मनकरि, वचनकरि, कायकरि प्रत्यक्ष परोक्ष विनयहीकूं धारण करो सो आगैं तपके कथनमें हू वर्णन करसी।

अब साधुनिके ईर्यापथशुद्धता ऐसी जानहू नानाप्रकारके जीवनिके स्थान अर जीवनिके उत्पत्तिरूप योनि अर

जे जे जीवनिके रहनेके आश्रय तिनके जाननेकरि उपज्या यत्नाचार तातैं जीवांके पीडाकूं दूरहीतें त्यागके गमन करै हैं बहुरि अपना ज्ञान अर सूर्यका प्रकाशकरि नेत्रादिक इन्द्रियनिका प्रकाश करि देखा हुवा मार्गमें गमन करै हैं अर मार्गमें उतावला शीघ्र गमन अर विलंब करता गमन अर संभ्रमकरि गमन विस्मयरूप आश्चर्यसहित गमन अर क्रीडा करता गमन अर शरीरकूं विकारसहित करता गमन अर दिशानिकूं अवलोकन करता गमन, यह गमनके दोष हैं इन दोषनिकरि रहित चार हस्तप्रमाण भूमिको आग्रभागविषै देखि अनेक मनुष्य गाडा गाडी बलद गर्दभादिक अनेक जिस मार्गकरि गमन किया होय अर प्रातःकालकी पवन मार्गकूं स्पर्शन कीया होय तथा सूर्यकी किरणनिका संचार जिस मार्गमें भया होय तिस मार्गमें दिवसविषै गमन करे तिस साधुके ईर्यासमिति होय है । ईर्यासमितिकूं होते संते ही संयम प्रतिष्ठित होय है जैसैं सुनीति होते ही विभव होय है । अर याहीका एकदेश धर्म अंगीकार करता गृहस्थकूं हू ईर्यापथ की शुद्धतारूप गमन करनेकी भावना राखणा अर अपनी शक्तिप्रमाण मार्गमें कीडा-कीडी हरित अंकुर घास दूब कर्दम नील इत्यादिकूं टालि दया-परिणामतैं गमन करना उचित है । अर देखि शोधकरि गमन करना गृहस्थकै हू खाडामें पडनेकी ठोकर लागनेकी सर्पादिक दुष्टजीवनिकी बाधा नाहीं होय है जिनेद्रकी आज्ञाका पालन होय है ।

अब मुनीश्वरनिके भिक्षाशुद्धता वर्णन करै हैं—साधु जब वनतें भिक्षा वास्तै नगर ग्रामादिकमें जाय तदि देशकी रीतितैं कालकूं जानि अर नगर-ग्रामादिककूं उपद्रवरहित जानिकरि जाय है जो अग्निका उपद्रव तथा परचक्रका उपद्रव तथा राजादि महंत पुरुषनिके मरणका उपद्रव होय तथा धर्ममें उपद्रव जानै तो भिक्षाकूं नाहीं जाय है । तथा महान हिंसा होती जानै तो नाहीं जाय जिसकालमें चाकीनिका मूसलनिका बहुत शब्द होते मंद रहि जाय तथा अनेक भेषधारी भिक्षा लेय आवते होय तिस कालमें मल मूत्रकी बाधा होय तो बाधा मेटि पाछैं पीछैतैं अपना अंगका आगला पीछला भागकूं शोध करि कमंडलु पीछी लेय करके गमन करै । मार्गमें अतिशीघ्र गमन नाहीं करै है, विलम्ब करते गमन नाहीं करै किसीसूं मार्गमें वचनालाप नाहीं करै, मार्गमें वनकी भूमिकी नगर ग्रामादिककी शोभा नाहीं देखै, जहां कलह विसंवाद कौतुक नृत्य-गीतादिक होम तिनकूं दूरि छांडि गमन करै मार्गमें दुष्टतिर्यंच दुष्टमनुष्य उन्मत्तमनुष्य तथा स्त्री तथा पत्र फल कर्दमादिक जिस भूमिमें होय ताकूं दूरहीतैं छांडि गमन करै है ।

आचारांगसूत्रमें कह्या देशकाल ताके जाननेमें निपुण अर मार्गमें गमन करता दातारका चिंतवन नाहीं करै जो मोकूं कौन दातार भोजन देगा तथा मोकूं शीघ्र भोजन मिलै तो अच्छा है तथा मिष्ट भोजनका लाभ वा

लवणादिकका लाभ तथा उष्णभोजन शीतभोजन स्वादिष्ट वेस्वाद इत्यादिक भोजनका विकल्प नाहीं करै, अन्तरायकर्मके क्षयोपशमके आधीन लाभ–अलाभकूं जानि, भोजनका लाभमें अलाभमें, मानमें अपमानमें मनकी वृत्तिकूं समान करता, धर्मध्यानरूप चिंतवन करता, चार आराधनाका शरणसहित क्षुधातृषादिक वेदनाका चिंतवन नाहीं करता भिक्षाके अर्थ गमन करै है, लोकनिंद्य कुलमें गमन नाहीं करै है तथा ऐसे उत्तमकुलके गृहनिमैं हू प्रवेश नाहीं करै है जहां दानशाला होय, जहां विवाहादिक होय मृतक का सूतक होय, गान-गीत होरहे हों, नृत्यके वादित्र बजनेका समाज होरह्या होय, रुदन होरह्या होय, अनेक भिक्षाके अर्थ भेले होरहे होंय, कलह विसंवाद द्यूतक्रीडादि होरहे होंय, किवाड जुडे होय, जावतेकूं कोऊ मनै करता होय, घोडा हाथी ऊंट बलध इत्यादि मार्गमें खडे होंय वा बंधि रहे होंय तथा अनेक मनुष्यनिका संघट्ट होरह्या होय तथा सकडे मार्गमें बहुत लोकनिका सकडाईतैं आवना जावना होय तथा नाभितैं अधिक नीचे द्वार करि जाना होय अर गोडेनितैं ऊंचीभूमिका उल्लंघन होय ऐसैं गृहनिमें तो साधु भोजनके अर्थ प्रवेशहू नाहीं करै हैं, चन्द्रमाकी चांदनी ज्यों धनाढ्य निर्धनादि समस्त गृहनिमें जाय हैं दीन अनाथ निंद्य कर्मकरि जीविका करने वाले इत्यादि अयोग्य गृहनिकूं छांडि भिक्षा के अर्थि गृहनिमें जहां ताईं अन्य भिक्षुनिका तथा हरेक जनके आवनेका आड नाहीं तहां ताईं जाय आशीर्वादादिक धर्मलाभादिक मुखतैं कहैं नाहीं, हूंकारा भृकुटी समस्या करै नाहीं, उदरका कृशपना दिखावै नाहीं हस्ततैं याचनाकी समस्या करै नाहीं, दातारके देखनेकूं भोजनके देखनेकूं ऊंचा तथा दिशविदिशामाहिं अवलोकन करै नाहीं खडा रहै नाहीं, बिजलीके चमत्कावत् अर्द्ध अंगणमें जाय बहुडै हैं, तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ ऐसैं आदरपूर्वक तीनवार उच्चारणकरि खडा राख तो खडा रहै, एकबार निकसे पाछैं फिर उस गृहमें प्रवेश करै नाहीं फिर अन्य गृहमें प्रवेश करै अन्तराय हो जाय तो अन्य गृहमें हू नाहीं जाय, पाछा वनहीकूं जाय है। दीनता रहित याचनारहित प्रासुक आहार आचारांगमें कह्या तिसप्रमाण छियालिस दोष चौदह मल बत्तीस अन्तरायरहित भोजन अंगीकारकरि प्राणनिकी रक्षामात्र फल अंगीकार करता सुन्दर रसमें नीरसमें लाभमें अलाभमें समान सन्तोषी होय सो भिक्षा है। इस भिक्षाकी शुद्धताकरि चारित्रकी उज्ज्वल संपदा प्राप्त होय है जैसैं साधुपुरुषनिकी सेवा करि गुणनि की संपदा होय है।

अब या भिक्षा मुनीश्वरनिके पंच प्रकार होय है—गोचरवृत्ति, अक्षम्रक्षणवृत्ति, उदराग्निप्रशमनवृत्ति, भ्रामरीवृत्ति, गर्तपूरणवृत्ति ऐसें पंच प्रकार आहारमें साधुंनिकी प्रवृत्ति जाननी।

जैसैं लीला विकार वस्त्र आभरण आदि सहित रूप यौवनकरियुक्त स्त्रीका लाया घासकूं गऊ चरै है तिस स्त्रीका अंगनिका सौंदर्य तथा आभरण वस्त्रकूं नाहीं अवलोकन करै है केवल घास चरनेका प्रयोजन हैं तैसैं साधुहू

दातारका रूप आभरणादि सौंदर्यकूं नाहीं अवलोकन करता नवधा भक्तिकरि प्रतिग्रहपूर्वक हस्तमें धारण किया ग्रासकूं भक्षण करै है सो गोचरीवृत्ति है। अथवा जैसैं गऊ वनके नाना स्थाननिमें तिष्ठती तृणकूं जैसैं लाभ हो जाय तैसैं भक्षण करै हैं वनकी शोभा वृक्षनिकी शोभा देखने में परिणाम नाहीं धरै है तैसैं साधु हू गृहस्थनिके घरमें जाय तदि गृहस्थका महल मकान शय्या आसनादिकनिके देखनेमें तथा सुवर्णके रूपाके कांसीके पीतलकें मृत्तिकाके पात्रादिकनिके देखनेमें परिणाम नाहीं करै है तथा अनेक भोजन परिवारके देखनेमें परिणाम नाहीं लगावते केवल अपने हस्तमें धऱ्या ग्रासकूं भक्षण करनेमें दृष्टि राखै हैं, परिकर-जननिके कोमल ललित रूप वेष विलासनिके देखनेमें वांछारहित भये शुष्क तथा गीला आहार ताकूं नाहीं देखता गौका ज्यों भोजन करै तातैं गोचरीवृत्ति वा गवेषणा कहिये है।

जैसे वणिक् रत्ननिका भऱ्या गाडाकूं घृतादिकतैं वांगि धुरके घृत लगाय; अपने वांछित देशांतरकूं लेजाय तैसैं साधु हू गुणरत्ननिकरि भऱ्या देहरूप गाडाकूं भिक्षा भोजन देय अपने वांछित समाधिरूप पत्तनकूं प्राप्त करै है यातैं अक्षम्रक्षणवृत्ति है।

बहुरि जैसैं अनेक वस्त्र आभरणादिकनिकरि भऱ्या भण्डारविषै उठी अग्निकूं शुचि अशुचि जलतैं बुझाय अपनी वस्तुनिकी गृहस्थी रक्षा करै है तैसैं साधु हू उदररूप भण्डारमें उपजी क्षुधातृषादिकरूप अग्निकूं सुन्दर असुन्दर भोजनतैं बुझावैं हैं सो उदराग्निप्रशमनवृत्ति है।

बहुरि जैसैं भ्रमर पुष्पकूं किञ्चिन्मात्र बाधा नाहीं करता पुष्पकी गंध हरै है तैसैं साधु हू दातारके किंचित् बाधा नाहीं होय तैसें भोजन करे सो भ्रमराहारवृत्ति है।

बहुरि जैसैं गृहस्थका गृहमें गर्त जो खाडा हो गया तो ताकूं धूलि पाषाणादिकतैं पूर्ण करै है तैसैं साधु हू उदररूप खाडाकूं रस नीरस भोजनकरि भरै तातैं गर्तपूरणवृत्ति कहिये है। ऐसैं पंचवृत्तिकरि भोजन करता साधुकै भिक्षाशुद्धि होय है।

श्रावक हू अन्याय छांडि बहुत हिंसाके कारण व्यवहार छांडि कर्मके दियेमें संतोष धारण करि अन्यके पीडा दुःख नाहीं करि न्यायके वित्तकूं मद, विषाद, दीनता-रहित दानकूं विभागकरि भोगे है तथा अभक्ष्यादिक सदोष भोजनका परिहार करि दिवस में भोगांतराय लाभांतरायका क्षयोपशम-प्रमाण रस नीरस मिल्या तामें

कुटुम्बका विभाग तथा दानका विभागकरि भोजनादिक करै गृहस्थकै लालसा गृद्धतारहित ही भोजनकी शुद्धता है । बहुरि संयमी है सो अपना शरीर का नख केश कफ नासिका मलमूत्र पुरीषादिकनिकूं देशकाल जानि विरोधरहित जीवनिके बाधा न होय, परके परिणाम मलीन नाहीं होय ऐसें क्षेत्रमें खेपै ताकै प्रतिष्ठापनशुद्धि होय है अर गृहस्थ है सो हू अपना देहका मल तथा जल कजोड भस्म मृत्तिका पाषाण काष्ठादिक जतनतैं क्षेपै जैसैं छोटे बडे जीवनिकी विराधना नाहीं होय, किसीके साथ कलह विसंवाद नाहीं होय, आपका अंगमें बाधा नाहीं आवै, अन्य जननि के ग्लानि नाहीं उपजै तैसैं क्षेपण करना । बहुरि शयनाऽसनशुद्धता साधुका प्रधान आचरण है । जहां स्त्री नपुंसक चोर मद्यपायी शिकारी इत्यादिक पापी जनोंका आर–जारस्थान (आने जानेका स्थान) नाहीं होय, जहां श्रृंगार शरीर–विकार उज्ज्वल आभरण धारती स्त्री विचरै तथा वेश्यानिका क्रीडावन बाग गीत नृत्य वादित्रकरि व्याप्त ऐसे स्थानका दूरहीतैं परिहारकरि तिष्ठै हैं, अकृत्रिम पर्वतनिकी गुंफा वृक्षांका कोटर तिनमें तथा कृत्रिम शून्य गृहादिक, आपके अर्थ नाहीं किया आरम्भरहित ऐसे स्थाननिमें तथा शुद्ध भूमिमें शयन आसन करै है । अर गृहस्थ भी विषयनिके विकाररहित स्त्री नपुंसक दुष्ट कलह विसंवाद विकथादिरहित परिणामनिकी उज्ज्वलता जहां नाहीं बिगडै ऐसे स्थानमें शयन आसन करै, स्थान के दोषतैं परिणाममें दुर्ध्यान रहै, दुष्ट चिंतवन होय, तातैं अपनी जीविकादिकका न्यायमार्गतैं साधन करकै अर स्थान शयन निराकुल स्थानहीमें करै है ।

बहुरि साधु है सो पृथ्वीकायिकादिक जीवनिकी विराधनाकी प्रेरणारहित कठोर कटुकादिक पर–पीडा का कारण वचनरहित, व्रत शील संयम उपदेशरूप वचन कहता, हितमित मधुर मनोहर वचन कहै सो वाक्यशुद्धता है । गृहस्थ भी जेता वाक्य कहै सो विवेकसहित कहै लोक–विरुद्ध धर्म–विरुद्ध हिंसाका प्रेरक असत्य कटुक कर्कशादिक कदाचित् नाहीं कहै है । ऐसें अष्ट प्रकार शुद्धता संयमीनिकी है । गृहस्थ अष्ट शुद्धताकूं चिंतवन करता रहै भावना राखै तो बहुत पापनितैं लिप्त नाहीं होय, धर्मभावनाकी वृद्धि होय ।

अब तपभावना हू गृहस्थकूं भावने योग्य है यद्यपि तपकी प्रधानता मुनीश्वरनिके है तथापि गृहस्थ हू तपभावना भावता रहै तो रोगादिक कष्ट आये चलायमान नाहीं होय । इन्द्रियनिकी विकलताकूं जीतै, वृद्धअवस्थामें जराकरि बुद्धि चलित नाहीं होय खानपानमें विकलताका अभाव होय, संतोषवृत्ति प्रगट होय दीनताका अभाव होय, लोकमें यश उज्ज्वल होय, परलोकमें स्वर्गकी प्राप्ति होय तातैं तप ही करना उचित है । सो तप दोय प्रकार है एक बाह्य एक अभ्यंतर तिनमें बाह्य तपका छह भेद हैं अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान,

रसपरित्याग, विविक्तशयनासन, कायक्लेश ऐसे छह प्रकार बाह्य तप है। तिनमें अनशन तपका स्वरूप कहिये है—अनशन जो भोजन ताका त्याग करिये सो अनशनतप है जो दुष्टफलकी अपेक्षा रहित होय करै सो अनशनतप है, जो इहां यशके वास्तै करै, विख्यातता वास्तै करै जगतके लोकानितैं पूजा नमस्कारादि वास्तै वा मंत्र साधना वास्तै करै ऋद्धि संपदा वैरीनिको घात, परलोकमें राज्यसंपदा वास्तै करै, कषायतैं वैरतैं करै, दुःखित हुआ अपना घात वास्तै करै सो अनशनतप सम्यक् नाहीं, केवल संसारपरिभ्रमणका कारण है। जो इन्द्रियनिकी विषयनिमें लालसा घटावनेके अर्थ तथा छहकायके जीवनिकी दया अर्थ रागभावके घटानेके अर्थ निद्राके जीतनेके अर्थ कर्मकी निर्जराके अर्थ ध्यानकी सिद्धिके अर्थ देहका सुखियापनाको मेटनेके अर्थ जो उपवासादि करै सो अनशनतप है सो अनशनतप दोय प्रकारका है—एक तो कालकी मर्यादाकरि है, एक यावज्जीव है। एक दिन में दोय बार भोजन करना एक बारका भोजनका त्याग करना सो अनशन है अर पहिले दिन एक वार भोजनकरि एक बारका त्याग अर दूसरे दिनके दोय भोजनका त्याग अर पारणाके दिन एक भोजनका त्यागकरि एक बार जीमना सो च्यार भोजनका त्यागरूप चतुर्थ है याहीकूं उपवास कहिये है अर छह भोजनका त्याग ताहि दोय उपवास कहिये है, अष्ट भोजनका त्यागकूं तेला, दश भोजनका त्यागकूं चोला इत्यादि, ऐसैं कालकी मर्यादारूप अनशनतप जानना। अर आयुका अन्तमें यावज्जीव भोजन त्यागना सो यावज्जीव अनशन है। इन्द्रियनिका उपशमके अर्थ भगवान् उपवास कह्या है तातैं इन्द्रियनिकूं जीतनेवाला मुनि भोजन करता हू उपवासीक जानना। अर जो उपवास करता इन्द्रियनिकूं विषयनितैं नाहीं राके है आरंभ करै है कषायरूप प्रवर्तै है ताका अनशनतप निष्फल होय है कर्मकी निर्जरा नाहीं करै है ऐसा अनशनतपका स्वरूप कह्या। सो जैसैं वात पित्त कफादिक विकारकूं प्राप्त नाहीं होय, रोगका उपशम होय, उत्साह बधता जाय तैसैं अपना परिणामकी विशुद्धताकी वृद्धि चाहता देशके अनुकूल कालके अनुकूल आहारपनाकी योग्यताके अनुकूल, कुटुम्बादिका सहायके अनुकूल, संहननप्रमाण जैसैं देह नाहीं विगडै तैसैं श्रावकनिकूं हू शक्तिप्रमाण अनशनतप अंगीकार करना ही श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

अब अवमोदर्यतपका स्वरूप ऐसा जानना—अवम कहिये ऊन उदर जामें होय सो अवमौदर्य कहिये। जेता प्रमाणरूप ओदनादिकतैं उदर भरिये तितना प्रमाणतैं ऊन भोजन करिये सो अवमौदर्यतप है, अवमौदर्यतपतैं इन्द्रियनिका संयम होय है, भोजनकी गृद्धिताका अभाव होय है, अल्प आहार करनेतैं वात पित्त कफ प्रकोपकूं प्राप्त नाहीं होय है, रोगनिका उपशम होय है, निद्रा आलस्यका जीतना होय है, स्वाध्यायम, सामायिकमें,

कायोत्सर्गमें, ध्यानमें खेद नाहीं होय, सुखकरि ध्यान स्वाध्याय आवश्यकादिक होय है । अवमोदर्य करनेतैं उपवासका खेद गरमीं नाहीं व्यापै है उपवास सुखमूं होय है । जातैं बहुत भोजन करै तदि आवश्यक ध्यान कायोत्सर्ग सुखतैं नाहीं होय, आलस्य निद्रा प्रबल हो जाय, तृषाका प्रकोप होय है, गरमी आताप रोग वधै है, यातैं इन्द्रियांकी लालसादि घटानेकूं, मनके रोकनेकूं, ज्ञानी मुनि तो, अर्द्ध भोजन चतुर्थभाग भोजन तथा एक ग्रास वा दोय ग्रास इत्यादिक एक ग्रास घाटि पर्यंत अवमादर्यतपका भेद करैं हैं अर जो मिष्ट-भोजनका लाभके अर्थ वा कीर्ति प्रशंसा होनेके अर्थ अल्प भोजन करै सो अवमौदर्यतप नाहीं है । अवमौदर्य तो भोजनमें लालसा घटानेके अर्थ है गृहस्थ श्रावक कूं हू अन्तरायकर्मका क्षयोपशमप्रमाण प्राप्त हुवा भोजनतैं संतोषकरि भोजनमें लालसा छांडि इच्छाका निरोधके अर्थ अवमौदर्यतप करना श्रेष्ठ है ।

अब वृत्तिपरिसंख्यान नाम तप मुनीश्वरनिकै होय है सो कहै हैं । मुनीश्वर भोजनकूं जावतां प्रतिज्ञा करै जो जो आज एक घरमें जावना वा दोय तीन पांच सात घरनिका प्रमाणकरि जाय, तथा आज सूधे मार्गमें ही मिलै तथा वक्र मार्गमें ही तथा एसा दातार ऐसा भोजन तथा ऐसा पात्रमें ऐसी विधितैं मिलै तो ग्रहण करना अन्यप्रकार नाहीं करना ऐसी कठिनकठिन प्रतिज्ञाकार भोजन के अर्थ गमन करै ताकै वृत्तिपरिसंख्यान तप होय है । यो दुर्द्धरतप मुनीश्वरनितैं ही होय है, अन्य गृहस्थ धारण करनेकूं समर्थ नाहीं होय है । अर गृहस्थ हैं सो हू वीतराग गुरुनिके प्रसादतैं ऐसी प्रतिज्ञा धारै हैं जो मैं जिनेन्द्रधर्म पाय उज्ज्वल धर्मका घात जामें नाहीं होय ऐसी रीति ही जीविका करूं, जामें श्रद्धान ज्ञान व्रत नष्ट हो जाय सो जीविका नाहीं करूं । बहुत हिंसा झूंठ मायाचारकरि सहित ऐसी सेवा नाहीं करूं, खोटे पापके बणिज व्यवहार नाहीं करूं, उज्ज्वल बणिज बहुत आरम्भ-रहित, कपट-रहित, असत्य-रहित, जो जीविका होय सो ही मोकूं करना अन्य नाहीं करना इत्यादि आजीविका नियम करै । तथा एता धन एता परिग्रह एता वस्त्रतैं भोग-उपभोग करना तथा रोगादिक होजाय तो एती औषध ही भक्षण करूं, इन औषधनितैं अन्य भक्षण नाहीं करूं तथा आज मेरे गृहमें तैयार भोजन पावैगा सो ही भक्षण करूंगा, मैं मुखतें कहि करि कराऊं नाहीं, मंगाऊं नाहीं । तथा आज मेरे गृहमें मेरा घरका ग्रास लीये पहली एक वार जो पात्रमें घाल देगा सो ही भोजन करूंगा फेर मांगूं नाहीं इत्यादिक इच्छाका रोकने अर्थ गृहस्थ प्रतिज्ञा करै है ।

अब रसपरित्याग तपका ऐसा स्वरूप है-दुग्ध, दही, घृत, लवण, गुड, तेल, ये छह प्रकारके रस हैं जिनमें

जिह्वादिक इन्द्रियनिकूं दमनके अर्थ, मनकी लोलुपता मेटनेके अर्थ, कामके जीतनेके अर्थ, निद्राके घटावनेके अर्थ, संयमके अर्थ, रसनिका त्याग करना, कदे एक रसका त्याग, कदे दोय, तीनका त्याग, कदे छहू रसनिका त्याग करना सो रसपरित्याग तप है । संसारी जीव मिष्टरसादि भक्षण करनेके लोलुपी होय अभक्ष्यभक्षण करैं हैं, लज्जा छांडै हैं व्रत तप बिगाडैं हैं, भोजनकी लोलुपतातैं शूद्रादिकनिके अयोग्य कुलमें भोजन करैं हैं, दीन हुवा तरसैं हैं, रसादिक भक्षण करनेकूं लडैं हैं, मरैं हैं, पडैं हैं बहुधाकारि रसनिके लोभी हुये भ्रष्ट हो रहे हैं कोऊ धन्य पुरुषनिके रसरूप भोजन करनेकी लालसा नाहीं रहै हैं । उत्तम गृहस्थ है सो प्रथम ही नाना प्रकारके घृत मिष्ट रसादिकनिमें लालसाका त्याग करि जो अपने गृहमें खारा अलूणा लूखा सचिक्कण इत्यादिक जो स्वाभाविक कर्म विधि मिलाय दे ताकूं सन्तोष सहित भक्षण करै हैं । अर रसरूप भोजनकीं कथा स्वप्नामें हू नाहीं करै है, रसनिकी लंपटता दोऊ लोकमें भ्रष्ट करनेवाली है तातैं लालसा छूटनेके अर्थ इन्द्रियनिकूं वशीभूत होय मरनेके अर्थ परम संवर अर निर्जराके अर्थ, दीनताका अभावके सन्तोष धारणके अर्थ रसपरित्याग नामा तप ही श्रेष्ठ है ।

अब विविक्तशयनासन नामा तपका ऐसा स्वरूप जानना—शूना गृह एकांतस्थान विकलत्रयादि जीवनिकी बाधारहित स्त्री-नपुंसक असंयमीनिका आर-जार रहित स्थानमें वा पर्वतनिकी गुंफा वन खंडादिकनिमें ध्यान अध्ययन करना, शयन-आसन करना सो विविक्तशयनासन तप है । जातैं एकांतमें तिष्ठता साधुके हिंसाका अभाव, ममत्वका अभाव विकथाका अभाव होय है काम का अभाव होय, ध्यान अध्ययनकी सिद्धि होय है, दूजाको प्रसंग होय तब वचनालाप होय तदि ध्यानतैं चलायमानता होय, रागभावकी वृद्धि होय तातैं संयमी एकांतमें ही शयन आसन करै है । अर गृहस्थ धर्मात्मा भी पापसूं भयभीत होय अपना गृहाचारके आजीविकादि कार्य न्यायमार्गतैं अल्प आरम्भादिकरूप पापकार्यतैं भयभीत हुआ तथा शरीरके स्नान-भोजनादिक कार्य करके एकांत मकान अपने गृहमें वा जिनमन्दिरमें वा धर्मशालामें वा वनके चैत्यालयादिकनिमें साधर्मी लोकनिकी संगतिमें धर्मचर्चा करता, स्वाध्याय करता, जिनागमका पठन-पाठन, व्याख्यान करता जिनागम श्रवण करता पंचनमस्कारका स्मरण करता दिन-रात्रि व्यतीत करै, स्त्रीकथा राजकथा भोजनकथा देशकथा कदाचित् हू नाहीं करता काल व्यतीत करै है । तथा कामविकारका बधावनेवाला रागका उपजावनेवाला शय्यासनका परिहार करै गृहस्थकै हू विविक्तशयनासन निर्जराको कारण है ।

बहुरि मुनीश्वरनिके कायक्लेश नामा बडा तप है जो एक आसनकरि बैठना, एक पसवाडे शयन करना, मौन धारण करना तथा ग्रीष्मऋतुमें पर्वतनिके शिखर शिलातलनि ऊपरि सूर्यके संमुख कायोत्सर्गादिक धारण करि ग्रीष्मका घोर आताप तप्तपवनादिककी घोर वेदना होते हू धर्मध्यानमें, बारह भावनाका चिंतवनमें परिणामकूं स्थिरकरि परिणामकूं क्लेशरूप नाहीं होने दे है। तथा वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे योग-धारण करते घोर अन्धकारकी भरी रात्रिमें अखण्ड धाररूप वर्षता मेघकरि धरती आकाश जलमय होरह्या होय अर वृक्षनिमें एकट्ठा जल होय बहुत स्थूल धार पडती होय अर बिजलीनिकी झकझकाहट अर घोरगर्जना अर वज्रपातनिका पडना तिस अवसरमें धन्य मुनि आच्छादनरहित नग्न अङ्ग ऊपरि घोर वेदना भोगते हू संक्लेशरहित धर्मध्यान शुक्लध्यानसूं जुडे हुये तिष्ठैं हैं सो समस्त वीतरागताकी महिमा है। तथा शीत ऋतुमें नदीके तीर वा चौहटे नग्न अङ्ग ऊपरि बरफका पडना महान् घोरशीतलपवनका चलना तिस अवसरमें दुःखरहित धर्मध्यानतैं शीतकालकी रात्रि व्यतीत करै हैं तथा दुष्ट जीवनिकरि किया घोर उपद्रवनिकूं भोगि समभाव रखना सो कायक्लेशतप है सो परवश दुख आए चलायमान नाहीं होनेके अर्थ तथा देहजनित सुखकी अभिलाषाका अभावके अर्थ रोगनितैं चलायमान नाहीं होनेके अर्थ, भयके जीतनेके अर्थ, परीषह सहनेके अर्थ, कर्मकी निर्जराके अर्थ कायक्लेश तप धारण करै हैं अर गृहस्थके आतापनयोगादिक नाहीं होय। यो तप तो दिगम्बर साधुनितैं ही होय, गृहस्थ है सो आपन चलायकरि कायक्लेश करै नाहीं, अर सामायिकादिकके अवसरमें ही आय तो चलायमान होय नाहीं, अर कर्मके उदयतैं अपनी रक्षा करते हू शीत-ज्वर दाहज्वर वातशूलादिक आजाय व दुष्टवैरी धर्मद्रोही म्लेच्छादिक आय उपद्रव करै वा वन्दीगृहादिकमें रोकदे वा ताडन मारन करै तो गृहस्थ है सो मुनीश्वरनिका कायक्लेश तपकी भावनाकरि समभावनिकरि सहै, कायरता धारण नाहीं करै दारिद्र्यका दुःखजनित क्षुधातृषा शीतउष्णादिककी वेदना कर्मके उदयतै आवै तहां कायर नाहीं होय, धर्मके शरणतैं सहना सो ही कायक्लेश है मुनीश्वर तो ऐसा कायक्लेशतप उत्साहकरि धारण करै हैं। हम कायक्लेशतैं अतिदूरि वर्तैं हैं तो हू असाता कर्मका उदयकरि दुःख आय गया तो भयवान हुआ कौन छांडैगा अब जो धैर्य धारणकरि सहूंगा तो कर्म रस देय जरूर निर्जरैगा अर कायरता करूंगा क्लेश करूंगा तोहू भोगना पडेगा, कर्मका उदयके दया है नाहीं, कायर होय दुःख करनेतैं उदयमें आया सो भी भोगूंगा अर यातैं बहुत गुणा आगानै बन्ध करूंगा, तातैं जिनेन्द्रका वचनांका शरण ग्रहण करकै कर्मका उदयमें धैर्य धारण करना ही श्रेष्ठ है। अर गृहस्थके अन्तरायकर्मका उदय आवै है तदि उदरभर भोजन हू पूरा नाहीं मिलै वा घृतादिक रस नाहीं मिलै, अतिअल्प मिलै तदि वह अल्पमें संतोषित रहै, परका विभव देखि वांछा

नाहीं करै समभाव रूप रहै तो सहज ही कायक्लेश तप होय है, बडी निर्जरा करै है ऐसैं छहप्रकारका बाह्य तप कह्या। बाह्य अन्यके प्रत्यक्ष जाननेमें आवै बाह्य भोजनादिकके त्यागतैं होय वा अन्य गृहस्थ परमती हू धारलें तातैं याकू बाह्य तप कह्या तथा जैसे अग्नि बहुत संचय किया तृणादिककूं दग्ध करै तैसैं पूर्वसंचित कर्मकूं दग्ध करै है तातैं तप कह्या। तथा शरीर इन्द्रियनिकूं संतापितकरि विषयादिकनिमें मग्न नाहीं होने दे तातैं तप कहिये, तथा जैसैं तपाया हुवा सुवर्ण पाषाण है सो कीटको छांडि शुद्ध सुवर्ण हो जाय है तैसैं आत्मा याके प्रभावतैं कर्ममलरहित होजाय तातैं याकूं भगवान तप कह्या है।

अब छह प्रकार अभ्यन्तरतप है सो कहिये है—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान ऐसैं छह प्रकार हैं। इनमें प्रायश्चित्तका नव भेद ओर संख्यात असंख्यात भेद हैं सो इहां आलोचनादिकका कथन लिखे कथनी बहुत होजाय तातैं संक्षेप कहिये है। जो धर्मात्मा हैं सो अपने व्रतधर्ममें कदाचित् दोषरूप आचरण नाहीं करै, ताकूं मनवचनकायकरि भला नाहीं करै अर जो कदाचित् प्रमादकरि भूलकरि दोष लगि जाय तो निर्दोष साधुके निकट जाय सरलपरिणामतैं दशदोषरहित आलोचना करकैं जो गुरुनिकरि दिया प्रायश्चित्त ताहि परमश्रद्धातैं आदरपूर्वक ग्रहण करै हृदयमें ऐसी शंका नाहीं करै जो मोकूं बहुत प्रायश्चित्त दिया वा अल्प प्रायश्चित दिया। प्रमादतैं एक बार दोष लगि गया ताकूं प्रायश्चित्त लेय दूरि किया फिर ऐसी सावधानी राख जो अपना शतखंड होजाय तो हू फिर दोष नाहीं लगने देवै ताके प्रायश्चित्त लेना सफल होय है। बहुरि प्रायश्चित्त लेवै सो अनेक गुणनिका धारक सिद्धांत-रहस्यका पारगामी प्रशांत मनका धारक अपरिस्रावीगुणका धारक; जैसैं तप्तलोहका गोला जल पीगया ताका फिर वाहिर प्रकाश नाहीं तैसैं जो शिष्यकरि आलोचना किया दोषका कदाचित् प्रगटना बाह्य नाहीं करनेवाला दशकालका ज्ञाता, एकान्तमें तिष्ठता पूर्वै कह्या आचार्यनिके अनेक गुण तिनका धारक तिनके निकट अंजुली जोडि महाविनयपूर्वक बालक ज्यों सरलचित्त होय आत्मनिंदा करता आलोचना करै है। बहुरि जैसैं रुधिरसूं लिप्त वस्त्र रुधिर कर नाहीं धुवै, कर्दम कर्दमकरि नाहीं धुवै तैसैं दोष-निकरिसहित साधु हू शिष्यकूं निर्दोष नाहीं करि सकै है। जैसैं मूढवैद्य रोगीका विपरीत इलाजकरि प्राणरहित करै तैसैं अज्ञानी गुरु हू शिष्यकूं संसारसमुद्रमें डुबोय दे है, तातैं निर्दोषगुरु प्रायश्चित्त देय शुद्ध करै संयमी पुरुष तो एकगुरु एकशिष्य दो ही एकान्तमें आलोचना करै, आर्यिकादिक प्रकट प्रकाशस्थानमें एकगुरु होय एकगणिनी आर्यिका होय एक दोष लाग्यो होय सो होय ऐसैं तीन होय। जो लज्जातै वा तिरस्कार वा प्रायश्चित्तका भयतैं वा आभिमानतैं दोषकूं शुद्ध नाहीं करै तो जैसैं लाभ अर खरचका ज्ञानरहित वाणिककी ज्यों

कर्मरूप ऋणवान होय भ्रष्ट होय है आलोचनाविना महान हू अंगीकार किया हुआ तप वांछित फल नाहीं देवै है अर आलोचना करकैंहू गुरुका दीया प्रायश्चित्त नाहीं करैं तो वैद्यका कह्या औषधकूं नाहीं भक्षण करता रोगीकी ज्यों शुद्ध नाहीं होय है वा हलादिककरि नाहीं सुधाऱ्या क्षेत्रमें धान्यवत् महाफल नाहीं फलैं है अथवा जैसैं विना मञ्जन किया दर्पणमें रूपका ज्यों चित्तकी शुद्धता विना आत्मामें चारित्रकी उज्ज्वलता नाहीं भासै है अब इस कलिकालके प्रभावकरि निर्दोष गुरु प्रायश्चित्त देनेवाले दीख नाहीं । जो आप ही अनेक पापनिकरि लिप्त सो अन्यकूं कैसैं शुद्ध करै रुधिरसूं रुधिर कैसे धोवैं ? सो ही आत्मानुशासनजीमें कह्या है,—

कलौ दण्डो नीतिः स च नृपतिभिस्ते नृपतयो नयन्त्यर्थार्थं तं न च धनमदोऽस्त्याश्रमवताम् ॥
नतानामाचार्या न हि नतिरताः साधुचरिता— स्तपस्थेषु श्रीमन्मणय इव जाताः प्रविरलाः ॥१४९॥

अर्थ—कोऊ शिष्य गुणभद्र स्वामीसूं पूछ्या—जो हे स्वामिन्, इस कालमें तपस्वी मुनिनिविषैं हू सत्य आचरण के धारक अत्यन्त विरले रह गये ताका कारण कहा है ? ताका उत्तर देनेरूप काव्य कह्या । ताका अर्थ लिखिये है—इस कलिकालमें नीति मार्ग है सो दण्ड है, दंडका भय विना न्यायमार्गमें कोऊ स्वयं नाहीं प्रवर्तै है । अर दंड है सो राजानिकरि दिया जाय, क्योंकि कलिकालमें जोरावर विना अन्य साधर्मीनिकरि तथा वृद्धपुरुषनिकरि तथा लोकनिकरि दिया दंड कोऊ ग्रहण करै नाहीं, कोऊ कह्या माने नाहीं, तातैं बलवान राजा कर दिया दण्ड ही ग्रहण करै । अर इस कलिकालमें राजा ऐसे होने लगे जातैं धन आवता देखें ताकूं दण्ड देवैं, निर्धननिकूं दण्ड नाहीं देवें अर आश्रमवान् संयमी तिनके कुछ धन नाहीं तातैं संयम लेयकरि कुमार्ग चालै तिनके राजाका दण्ड तो है नाहीं जातैं कुमार्गतैं रुकै, अर आचार्यनिका शिष्यनिमें अनुराग हो गया जो आपकूं नमि जाय ताकूं दण्ड दे नाहीं अपना संप्रदाय वधावने का अर्थि जो आपकूं नमोऽस्तु नमस्कार करले ताकूं अपना जानि दण्ड देवे नाहीं । तदि दण्डका भयरहित सूत्रविरुद्ध आचरण करने लगि जाय । तातैं कलिकाल विषै तपस्वी जननिमें हू सत्य आचारके धारक अति विरले देखिये है, केवल भेषधारी ही बहुत दीखै है । तातैं प्रायश्चित्त नाम ही कल्याणका कारण है तातैं गृहस्थनिकै प्रायश्चित्तकी प्रवृत्ति कैसैं होय ? तातैं परमेष्ठी का प्रतिबिंबके सन्मुख होय करके ही अपना अपराधकूं आलोचनाकरि ऐसा यत्न करना जो फेर अपराध स्वप्नमें हू नाहीं बने ।

अब विनयनाम दूजा अभ्यंतर तप है ताका पांच भेद हैं—दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपविनय,

उपचारविनय । तहां जे पदार्थनिका श्रद्धानविषै शङ्कादिदोषरहित निःशंक रहना सो दर्शनविनय है । सम्यग्दर्शन परिणाम होनेमें हर्ष अर सम्यक्त्वकी विशुद्धतामें उद्यमी रहना सम्यग्दृष्टीनिका संगम चाहना, सम्यक्त्वके परिणामकी भावना भावना, मिथ्याधर्मकी प्रशंसा नाहीं करना, मिथ्यादृष्टीनिका तप ज्ञान दानकी प्रशंसा नाहीं करना; क्योंकि मिथ्यादृष्टिका आचरण है सो इसलोक परलोकमें यश विख्यातता, विषयसुख धन संपदाकी चाहपूर्वक आत्मज्ञानरहित है, वंधको कारण है यातैं प्रमाण नाहीं । अर वीतराग सर्वज्ञने पदार्थनिका स्वरूप कह्यां है सो प्रमाण है यो दर्शनविनय है । बहुरि ज्ञानविनय ऐसा है जो आलस्य-रहित विक्षेपरहित विषयकषाय मलरहित शुद्ध मन करकै देशकालकी विशुद्धताका विधानमें विचक्षण पुरुष बहुत सन्मानतैं यथाशक्ति मोक्षका अर्थी हुवा वीतराग सर्वज्ञकरि प्ररूपणा किया परमागमका ज्ञानग्रहण अभ्यास स्मरणादि करना सो ज्ञानविनय जानना । ज्ञानका अभ्यास ही जीवका हित है, ज्ञानविना पशु समान है मनुष्याचार ही ज्ञानका सेवनतैं है, कामसेवन, भक्षणादिक इन्द्रियविषय तो तिर्यंचके हू होय हैं । ज्ञानविनयका धारक निरन्तर सम्यग्ज्ञान हीकी वांछा करै है, ज्ञानहीके लाभकूं परमनिधानका लाभ मानै है । यो ज्ञानविनय महानिर्जरा को कारण है जाके ज्ञानविनय होय ताके ज्ञानका धारकनिका विनय विशेषता करि होय है । अब चारित्रविनयका स्वरूप कहैं हैं ज्ञानदर्शनवान पुरुषके पंचाचारका श्रवण करतां प्रमाण समस्त शरीरमें रोमांच प्रगट होय अन्तरंगमें भक्तिका प्रगट होना अर कषाय विषयनिका निग्रहरूप परमशांतभावके प्रसादतैं मस्तक--ऊपरि अंजुलि करणादिकरि भावनितैं चारित्ररूप अपना होना सो चारित्रविनय है । बहुरि जाके भावनिमें संसारका दुःख छेदनेवाला आत्माकूं वाधारहित सुखकूं प्राप्त करनेवाला विषय कषाय रोग उपद्रवका जीतनेवाला एक तपही परम शरण दीख है ताके तपभावना होय है, ताहीके तपका विनय होय है तपस्वीनिकूं उच्च सर्वोत्कृष्ट समझना तपस्वीनिकी सेवा भक्ति वैयावृत्य स्तुति करना सो तपविनय है, शक्तिप्रमाण इन्द्रियनिका निग्रहकरि देश—कालकी योग्यता प्रमाण अनशनादितपमें उद्यमी होय धारण करना सो समस्त तप विनय है । अब उपचारविनय ऐसा जानना जो आचार्यादिक पूज्य पुरुषनिकूं देखतप्रमाण उठि खडा होना सप्त पग सम्मुख जावना अंजुलि मस्तक चढावना उनकूं आगेकरि आप पाछैं गमन करना, पठन पाठन तपश्चरण आतापनयोगादिक, सिद्धान्तका नवीन अभ्यासका ग्रहण विहार वंदनादिक समस्तकार्य गुरुनिको जणाय करना, गुरुनिके होते ऊंचासन छांडना सो समस्त उपचारविनय है । तथा आचार्यादिक परोक्ष होंय तो

मनवचनकायकी शुद्धतापूर्वक नमस्कार करना, अंजुली करना, गुणनिका स्मरण करना, गुणनिका कीर्तन करना जो वाकी आज्ञा धारण करी ताका पालना, सो समस्त उपचारविनय है । विनयके प्रभावतैं सम्यग्ज्ञानका लाभ होय है अनेक विद्या सिद्ध होय हैं मदका अभाव होय है आचारकी उज्ज्वलता होय है सम्यक् आराधना होय है यशकी उज्ज्वलता होय है, कर्मकी निर्जरा होय है ।

बहुरि अन्य साधर्मीनिका, शिष्यनिका, मंदज्ञानके धारकहूका यथायोग्य विनय करना मिथ्यादृष्टिनिका हू तिरस्कार नाहीं करना, मिष्टवचन आदरपूर्वक बोलना, संतोष करनेवाला दुःख दूर करनेवाला वचन कहना सो ही विनय है । उद्धतचेष्टा दोऊ लोक नष्ट करै है । बहुरि उपचारविनय मन वचन कायके मार्गकरि अनेक प्रकार होय है गुरुनिका तथा सम्यग्दर्शनादिगुणनिके धारकनिका शय्याका स्थान, बैठकका स्थान शोधना, आसनतैं नीचा बैठना, नीचा स्थानमें शयन करना, अनुकूल पादस्पर्शन करना, दुःख रोग आजाय तो शरीरकी टहल करके अपना जन्म सफल मानना, पूज्य पुरुषनिके निकट थूकना नाहीं, आलस्य नाहीं लेना, उवासी नाहीं लेना, अंगुलादिक भंजन नाहीं करना, हास्य नाहीं करना, पांव नाहीं पसारणा, हस्तताल नाहीं देना, अंगका विकार, भ्रकुटीका विकार, अङ्गका संस्कार नाहीं करना । विनयवान है सो उच्चस्थानमें स्थित रह वंदना नाहीं करै, जठै जठै संयमी तिष्ठै, तठै तठै वन्दना करै जो आवते संयमीनिकूं देखि खडा होना, आसन त्याग करना, वन्दना करना तिनकैं ही विनय है जो गुरुनिकी आज्ञा हमकूं होय तिस प्रणाम अंगीकार करना तो हमारे समान कोऊ पुण्यवान विरले हैं विनयरहितके शील संयम विद्या समस्त निष्फल है विनयका प्रभावतैं क्रोध मान वैरादिक समस्त दोषनिका अभाव होय है विनय विना संसार–सम्बन्धी लक्ष्मी, सौभाग्य, यश, मित्रता, गुणग्रहण, सरलता, मान्यता समस्त नष्ट होय है तातैं साधुनिकूं अर गृहस्थनिकूं समस्त धर्मका मूल विनय ही धारण करना श्रेष्ठ है ।

अब वैयावृत्यतप हू, जिनकै गुणनिमें प्रीति, धर्ममें श्रद्धान, धर्मात्मामें वात्सल्य, निर्विचिकित्सादिगुण होय तिनहीके होय है कृतघ्नके आचार्यादिकनिका वैयावृत्यमें परिणाम नाहीं होय है दशप्रकारके साधुनिका वैयावृत्य आगममें कह्या हैं । आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ इन साधुनिका दशप्रकार वैयावृत्य कह्या है । तिनमेंतैं जिनके सम्यग्ज्ञानादिकगुणनिकूं तथा स्वर्ग–मोक्षके सुखरूप अमृतका बीज व्रत संयम अपना हितके अर्थ आचरण करैं ते आचार्य हैं तिनका अपना कायकरि तथा अन्य क्षेत्र शय्या आसनादि करि सेवा करिये सो आचार्यवैयावृत्य है । आचार्यनिका वैयावृत्य है सो समस्तसंघकी वैयावृत्य है समस्त संघ समस्त धर्म आचार्यनिके प्रभावतैं प्रवर्तै है । बहुरि जिन व्रतशीलके धारकनिका समीपकूं प्राप्त होय परमागमका अध्ययन

पठन करिये सो उपाध्याय हैं । महान् अनशनादितपमें प्रवर्तन करैं ते तपस्वी हैं । श्रुतज्ञानके शिक्षणमें तथा व्रतशील भावनामें निरन्तर तत्पर होय ते शैक्ष्य हैं । रोगादिककरि क्लेशित जिनका शरीर होय ते ग्लान हैं। वृद्ध मुनिनिकी संतति सो गण है। आपको दीक्षा देनेवाला आचार्यनिका शिष्य होय सो कुल कहिये है। च्यार प्रकारके मुनीश्वरनिका समुदाय सो संघ है । बहुत कालका दीक्षित होय सो साधु है ।

लोकमें पण्डितपणाकरि मान्य होय तथा वक्तृत्वगुणकरि मान्य होय महा कुलीनपनाकरि लोकनिमें मान्य होय सो मनोज्ञ है जातैं प्रवचनका धर्मका गौरवपणा प्रकट होय है ऐसैं दशप्रकारके मुनीनिकैं कदाचित् शरीरमें व्याधि प्रगट होय जाय, तथा परीषह आजाय तथा मिथ्यात्वादिकनिका भावनिमें उदय हो जाय तो प्रासुक औषधि भोजन पान वस्तिका संस्तरणादिकरि धर्मोपदेशकरि श्रद्धानकी दृढता करावनेकरि पुस्तकपिच्छिकाकमंडलादि धर्मोपकरणनिका दानकरि इलाज करना, धर्ममें दृढता करावना, संतोष धैर्यादि धारण करावना, वीतरागताका बधावना सो वैयावृत्य है । बाह्य औषधि भोजन–पानादिक द्रव्यका असम्भव होतैं अपना कायकरि कफ नासिका मल मूत्र पुरीषादिक दूर करना, रात्रि–जागरण करना, सो वैयावृत्त्य तप परमनिर्जराका कारण है । तिनमें केतेक उपकार तो मुनीश्वरनिके मुनीश्वर ही करैं हैं उठावना, बैठावना, शयन करावना, कलोट लिवावना, हस्तपादादिकनिका पसारना, समेटना, उपदेश देना, कफमलादि दूर करना, धैर्य धारण करावना मुनीश्वरनिका मुनीश्वर ही करैं हैं अर केतेक प्रासुक औषधि आहार पान उपकरणादिकनिकरि गृहस्थ धर्मात्मा श्रावकतैं ही बनै है, गृहस्थ है सो साधुनिका वैयावृत्य करै अर अर्जिकाका वैयावृत्य करै तथा करुणाबुद्धिकरि दुःखित रोगी बेवारिस बाल वृद्ध पराधीन बन्दीगृहमें पडेनिका करुणाबुद्धितैं उपकार करै तथा माता पिता विद्यागुरु स्वामी मित्रादिकनिका उपकार स्मरणकरि कृतघ्नता छांडि सेवा सन्मान दान प्रशंसादिकरि आदर सन्मानादिकरि सुख उत्पन्न करै, दुःख होय ताकूं दूर करैं, अपनी शक्तिप्रमाण दानसन्मानकरि वैयावृत्य करै ताकै वैयावृत्यतप महानिर्जरा करै है। वैयावृत्यतैं ग्लानिको अभाव होय है, प्रवचनमें वात्सल्यता होय है आचार्यादिक अनेक वात्सल्यके स्थान हैं तिनमें कोऊको भी वैयावृत्य बनि जाय ताहीकरि समस्त कल्याणकूं प्राप्त होजाय है ।

अब स्वाध्याय नामा तपकूं वर्णन करैं हैं—स्वाध्याय पंचप्रकार है—वांचना, पूछना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश ऐसे पचप्रकार स्वाध्याय है । निर्दोष ग्रन्थ कहिये पाठ तथा आगमका अर्थ तथा पाठ अर अर्थ दोऊ इनकूं पात्र मनुष्यनै पढावना जनावना समझावना सो वाचनास्वाध्याय है जातैं परमागमका शब्द पढावने समान अर्थ समझावनें समान कोऊ अपना परका उपकार है नाहीं । तथा परमागमको पढाय योग्य शिष्यकूं प्रवीण करना

है सो धर्मका स्तंभ खडा करना है जातैं जिनधर्म तो शास्त्रज्ञानतैं ही है प्रतिमा अर मन्दिर तो मुखतैं बोलैं नाहीं साक्षात् बोलता देवसमान हितमें प्रेरणा करनेवाला अर अहिततें रक्षा करनेवाला भगवान सर्वज्ञका परमागम ही है। तातैं शास्त्र पढावनेमें पढनेमें परम उद्यमी रहना । बहुरि अपना संशयका नाशके अर्थ बहुज्ञानीसूं विनयपूर्वक प्रश्न करना, जातैं प्रश्नकरि संशय दूर किये बिना ज्ञान सम्यक् प्रगट नाहीं होय यातैं पूछना है, अथवा आप जो आगमका शब्द अर्थ समझ राख्या होय सो बहुज्ञानीनिके मुखतैं श्रवण करले तो बहुत ज्ञान दृढ होजाय, ज्ञानकी शिथिलता दूर होजाय तातैं बहुज्ञानीनितैं प्रश्न करना अथवा आप संक्षेप समझ्या होय ताकूं विस्तारतैं जाननेके अर्थ बडी विनयतैं सम्यग्ज्ञानीनितैं प्रश्न करना । अपनी उच्चता तथा अपना पंडितपना दिखावनेके अर्थि तथा परका तिरस्कार करनेके आर्थि तथा परका हास्यके अर्थ सम्मग्दृष्टी प्रश्न नाहीं करै हैं । शब्दमें हू प्रश्न करै अर्थमें हू प्रश्न करै तथा शब्द अर्थ दोऊनिकूं हू प्रश्नादिककरि निर्णय करना सो पृच्छना नामा स्वाध्याय है ।

बहुरि परमागमका जाण्या हुआ शब्द अर्थकूं अपना हृदयमें धारणकरि बारम्बार मनकरि अभ्यास करना चिंतवन करना तथा आगममें आज म पठन-श्रवण किया तिसमें ये दोष मेरे त्यागने योग्य हैं ये गुण मेरे ग्रहण करने योग्य हैं ये हमारे स्वरूपतैं अन्य द्रव्यलोकक्षेत्रादिक जानने योग्य ही हैं ऐसे मनकरि बारम्बार चिंतवन करना सो अनुप्रेक्षा नाम स्वाध्याय हैं। यातैं अशुभभावनिका नाश होय है शुभधर्मध्यान प्रगट होय है। बहुरि अतिशीघ्रतातैं पढना वा अतिविलंबित पढना इत्यादिक वचनके दोष टालि धैर्य सहित एक एक अक्षरकी स्पष्टता सहित अर्थका प्रकाशसहित पढना पाठ करना मिष्टस्वरतैं उच्चारण करना तथा सिद्धांतकी परिपाटीतैं आगमतैं विरोधरहित लोकविरुद्धतारहित पढना सो आम्नाय नामा स्वाध्याय है । बहुरि लौकिकप्रयोजन लाभ पूजा अभिमान मदादिकनिकूं छांडी उन्मार्गके दूर करनेकूं, सन्मार्ग दिखावनेकूं संशय निराकरण करनेकूं अपूर्व पदार्थ प्रगट करनेकूं धर्मका उद्योत होनेकूं मोहअंधःकार दूर करनेकूं संसार देह भोगनितैं लोकनिकूं विरक्त करनेकूं, विषयानुराग तथा कषाय घटावनेकूं, अज्ञान निराकरण करनेकूं, भेदविज्ञान प्रगट करनेकूं, पापक्रियातैं भयभीत होनेकूं भव्यानिकूं धर्म कथनीका उपदेश करना सो धर्मोपदेश नाम स्वाध्याय है । जहां अनेक भव्यजीवनिको धर्मका उपदेश देना होय है तहां मनवचनकाय समस्त धर्मके स्वरूपमें लीन हो जाय हैं अर ऐसा अभिप्राय उपदेश दाताका होय है जो कोऊ रीति अनेकांतधर्मका यथावतस्वरूप श्रोतानिका हृदयमें प्रवेश करै कोऊ प्रकार संसार-देह-भोगनिमें राग घटै, कोऊ प्रकार भेद विज्ञान प्रगट होय, ऐसा अभिप्राय जाका होय सो सत्यार्थ

धर्मका उपदेश करै है जाका आत्मा धर्ममें रचि जायगा सो ही अन्य श्रोतानिकूं धर्ममें रचावैगा । धर्मोपदेश देनेवालाके आत्मानुशासनमें ऐसे गुण कहे हैं जाकी बुद्धि त्रिकालविषयी होय जो पाछली अनेकरीति परमागमतैं नाहीं जानै सो यथावत वस्तुका स्वरूप नाहीं कहि सकै है, जाकूं वर्तमान वस्तुका स्वरूपका ज्ञान नाहीं होय सो विरुद्ध कथनी करदे, जाकूं आगानै परिपाकका ज्ञान नाहीं होय सो अयोग्य कह दे, यातैं वक्ता होय सो बुद्धिका बलतैं आगमका बलतैं लौकिकरीति प्रत्यक्ष देखनेतैं त्रिकालकी रीति जानै ।

बहुरि समस्त शास्त्र जे च्यार अनुयोगके शास्त्र तिनका रहस्यका जाननेवाला होय जो च्यार अनुयोगनिका रहस्य नाहीं जानै अर वक्तापना करै तो श्रोतानिकूं यथावत् नाहीं समझाय सकै जातैं प्रमाणका कथन आजाय नयनिका तथा निक्षेपनिका तथा गुणस्थान मार्गणास्थानका तथा तीनलोकका तथा कर्मप्रकृतिनिका तथा आचारका कथन आजाय तो जाण्या विना यथावत् निःशंक संशयरहित नाहीं व्याख्यान कर सकै। यातैं समस्त शास्त्रनिका रहस्यका ज्ञाता होय । बहुरि लोकरीतिका ज्ञाता होय, जो लौकिकरचनामें मूढ होय सो लोकविरुद्ध व्याख्यान करै। बहुरि जाकै भोजन, वस्त्र, स्थान, धन, अभिमानकी आशा वांछा होय सो वक्ता यथार्थ व्याख्यान नाहीं करै लोकनिकूं रंजायमान किया चाहै लोभीके सत्यार्थ वक्तापनो नाहीं होय है । बहुरि जाकी बुद्धि तत्काल उत्तर देनेवाली होय जो वक्ताकूं तत्काल उत्तर नाहीं उपजै तो सभामें क्षोभ होजाय, वक्ताकी दृढप्रतीति सभानिवासीनिके नाहीं आवै । बहुरि वक्ता होय सो मंदकषायी होय मंदकषायीविना लोभीका कपटीका क्रोधीका अभिमानीका दिया उपदेश कोऊ अंगीकार नाहीं करै है, बहुरि वक्ता ऐसा होय जो श्रोतानिका प्रश्न हुआ पहले ही उत्तरकूं दिखावनेवाला होय जो थे या कहो तो या है अर या कहो तो या है । इसप्रकार व्याख्यान ही ऐसा करै जो श्रोतानिकूं प्रश्न नाहीं उपजि सकै, अगाऊ ही प्रश्नका मार्ग मुद्रित करता व्याख्यान करै । जो बहुत प्रश्न होजाय तो सभामें क्षोभ मचि जाय बहुरि प्रबल प्रश्न हू कोऊ आय करै तो सहनशील होय क्रोधित नाहीं होय जो प्रश्न श्रवणकरि क्रोधित होजाय तो कोऊ प्रश्न नाहीं कर सकै। बहुरि जामें प्रभुत्वगुण होय जातैं जाकूं आपतैं ऊंचा जानै ताहीकी शिक्षा ग्रहण करै, दीनकी नीचकी शिक्षा कौन ग्रहण करै, यातैं यामें जगतके मान्य प्रभुत्वगुण होय, बहुरि परके मनका हरनेवाला होय जो समस्तके प्रिय होय । जो मनकूं अप्रिय होय ताकी शिक्षा ग्रहण नाहीं होय है ।

बहुरि जाकूं आप आछीरीति आगमतैं वा गुरूपरिपाटीतैं नीका समझ लिया होय ताकूं ही व्याख्यान करै जाकूं आप ही पूरा नाहीं समझा होय सो अन्यकूं कैसैं उद्योत करेगा, दीपक आप प्रकाशरूप है सो ही घटपटादिकनिकूं प्रकाशै है बहुरि जाकी प्रवृत्ति व्यवहारमें परमार्थमें धर्ममें लेनेमें देनेमें बोलनेमें बणिजादिक जीविकामें, भोजन वस्त्रादिकनिमें उज्ज्वल यशसहित होय सो ही वक्ता होय जाकी प्रवृत्ति मलीन हो ताकै वक्तापना सोहै नाहीं, मलीन होजाय सो जगतमें मान्य नाहीं रहै । बहुरि जाकी अन्य लोकनिके ज्ञान उपजावनेमें परिणति होय, जाकी अन्यके समझावने में परिणति नाहीं होय सो काहेकूं कहै । बहुरि रत्नत्रयमार्गके प्रवर्तावनेमैं जाकै उद्यम होय सो ही धर्मकथाका वक्ता होय इसमें अन्य लौकिक प्रयोजन है ही नाहीं । बहुरि जाकी बडा ज्ञानीजन स्तुति करता होय, क्योंकि बडे बडे ज्ञानी जाकी प्रशंसा करैं ताका वचन जगतके दृढ श्रद्धानमें आजाय है । बहुरि उद्धतताकरि रहित होय, जातैं उद्धत होय सो समस्तके अप्रिय होय है । बहुरि लोकरीति, देशकाल, श्रोतानिकी सुष्ठुता दुष्टता, प्रवीणता मूढता शक्तता अशक्ततादिक समस्त जानि ऐसौ उपदेश करै जो समस्त जन बडा आदरतैं ग्रहण करैं, लौकिक ज्ञाता विना यथायोग्य उपदेश नाहीं होय । बहुरि कोमलतागुण जामें होय, कठोर परिणामीका कठोर वचन आदरने योग्य नाहीं होय जातैं श्रोता श्रवण करनेतैं परान्मुख होजाय है बहुरि जाके वक्तापनाकरि धन भोगादिककी वांछा नाहीं । बहुरि जाका मुखतैं अक्षर स्पष्ट उच्चारण होय, स्पष्ट अक्षर विना समझमें आवै नाहीं । बहुरि मिष्ट अक्षर होय, जातैं श्रोता जाने कि कर्णनिके द्वारकरि समस्त अङ्गनिकूं अमृतकरि सींच दिया बहुरि श्रोताजन जाका स्वामित्व समझे । बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र वात्सल्यादि अनेक गुणनिका निधान होय ऐसे वक्तापनाके अनेकगुणनिकरि सहित होय सो धर्मकथाका वक्ता होय । सो ऐसे गुणनिका धारक वक्ताको उपदेश कोऊ महाभाग्य पुण्यवान जनानिकूं मिले है । सम्यग्देशनालब्धिका पावना अनन्तकालमें हू दुर्लभ है । बहुरि धर्मोपदेश हू मिले तो योग्य श्रोतापना विना धर्म ग्रहण नाहीं होय है जैसैं योग्यपात्र विना वस्तु ठहरै नाहीं, अयोग्यपात्रमें धरै तो पात्रका अर वस्तुका दोऊनिका नाश होय है तैसें योग्य श्रोतापनाविना हू धर्मका उपदेश ठहरै नाहीं याहीतैं श्रोताका लक्षण हू संक्षेपतैं ऐसें जानना ।

प्रथम तो भव्य होय जो उपदेश देते हू सम्यक्श्रद्धानादिक ग्रहण करनेयोग्य नाहीं होय ताकूं उपदेश वृथा है । बहुरि मेरा कल्याण कहा है, मेरा हित कहा है ऐसा जाके सासता विचार होय जाकै अपना हितकी वांछा नाहीं सो विना प्रयोजन धर्म कथा काहेको श्रवण करै, वे तो विषयका लाभ जातैं सधै ताकी वांछा करै हैं । बहुरि दुःखतैं अत्यन्त भयभीत होय जो मेरे अब नरकतिर्यंचादिक पर्यायका दुःख मति होहू ऐसैं

जाकै भय नाहीं होय सो पाप छांडिवाका विषय-कषाय त्यागिवाका शास्त्र काहेकूं श्रवण करै तातैं दुःखतैं भयभीत होय । बहुरि सुखका इच्छुक होय जाकै कर्णइन्द्रिया नाहीं होय, कर्ण बिगड गये होंय तो काहेतें श्रवण करै । बहुरि जाकै धर्मकथा श्रवण करनेकी इच्छा होय, इच्छा विना परिपूर्ण श्रवण होय नाहीं । अर इच्छा भी होय अर प्रमाद आलस कुसङ्गकरि श्रवण नाहीं करै तो इच्छा वृथा है । अर जो श्रवण हू करे, अर ये गुरु ऐसें कहै हैं एती सावधानतारूप ग्रहण विना श्रवण वृथा है । अर ग्रहण हू होय अर जो धारण नाहीं होय, श्रवण करते ही विस्मरण होजाय तो ग्रहण करना वृथा है । बहुरि जो विचारपूर्वक प्रश्न-उत्तरकरि निर्णय नाहीं करै तो श्रवणमें संशयादिक ही रहै तदि कैसैं आत्म-हितके सन्मुख होय । बहुरि श्रोता है सो ऐसा धर्मकूं श्रवण करै जो दयामय होय अर सुखका करनेवाला होय अर युक्तितैं प्रमाण नयतैं जामें बाधा नाहीं आवै अर भगवान सर्वज्ञवीतरागके आगमतें प्रवर्त्या होय ऐसा धर्मकूं श्रवणकरि वारम्बार विचारकरि ग्रहण करै जो विचार-रहित होय मिथ्यास्वरूप हिंसाका कारण धर्म ग्रहण करले तो दुःख करनेवाला नरकादिकमें प्राप्त करै अर जामें युक्तितैं तथा सर्वज्ञवीतरागके आगमतैं बाधा आजाय सो धर्म नाहीं है, अधर्म है; यातैं श्रवण करनेयोग्य नाहीं, हठग्रहादिक-दोषरहित होय हठग्राहीकूं शिक्षा लगै नाहीं इत्यादिक अनेक गुणनिका धारक होय सो श्रोता धर्मका उपदेश श्रवणकरि आत्मकल्याण करै है ।

अब इहां प्रकरण पाय श्रोतानिकी केतीक जाति दृष्टांतकरि कहै हैं केतेक श्रोता मृत्तिकाका स्वभाव लिये हैं जैसैं मृत्तिका पानी पडै जब तो नरम हो जाय पाछैं कठोर होय तैसैं धर्मश्रवण करते भावनिमें भीज जाय पाछै कठोर होय है । केतेक चालनी जैसै कण छांडि तुष ग्रहण करै तैसैं धर्मकथामें सारगुण तो छांड दे अर औगुण ग्रहण करै हैं ते चालनीवत् जानना । बहुरि केतेक भैंसातुल्य श्रोता होय हैं जैसैं उज्ज्वलजलका भरा सरोवरमें भैंसा प्रवेशकरि समस्त सरोवरकूं कर्दममय करै तैसैं समस्त सभाके लोकनिका परिणाम मलीन करै हैं । बहुरि केतेक हंसतुल्य श्रोता हैं जैसैं हंस जल-दुग्धका भेदकरि दुग्ध ग्रहण करै तैसैं निःसार छांडि आत्महित ग्रहण करै हैं । बहुरि केतेक श्रोता सूवातुस्य हैं जिनकूं राम बुलायो तो राम बोलें अर अन्य सिखावो तो अन्य बोलैं, जाकूं रामका हू ज्ञान नाहीं अर रहीमका हू ज्ञान नाहीं । तैसैं पापपुण्यका विचार-रहित जो पढावो सो ग्रहण करैं विचार-रहित अपना-स्वरूप परस्वरूपका ज्ञान-रहित सूवापक्षीसमान श्रोता होय हैं । बहुरि केतेक मार्जारसमान श्रोता हैं जैसैं मार्जार सूता हू अपना शिकारकी तरफ जाग्रत रहै तैसैं कोऊ श्रोता अपना विषय कषाय वाणीमें छल ग्रहण करता तिष्ठै हैं । बहुरि कोऊ बगुला जातिका श्रोता ध्यानीसा बन्या रहै अपना विषय कषायकूं ग्रहण करै है ।

बहुरि कोऊ डांससमान श्रोता होय है वक्ताकूं बारम्बार बाधा उपजावै है । बहुरि कोऊ बकरा जातिका श्रोता जैसैं बकराकूं अतर फुलेल सुगन्ध पान करावते हू दुर्गंध ही प्रगट करै है तैसैं उज्ज्वलधर्म श्रवण करकै हू पापही उगलै है । बहुरि कोऊ जलौकासमान श्रोता है जैसे जौककूं स्तन ऊपर लगावैं तो हू मलिन रुधिर ही ग्रहण करै । कोऊ फूटा घटसमान श्रोता है धर्मश्रवण करता हू चित्तमें लेशमात्र भी धारण नाहीं करै है । कोऊ सर्पसमान श्रोता है जो दुग्ध-मिश्रीकूं पान करावते हू प्रबल-जहर बधै है । कोऊ गायसमान उत्तमश्रोता है जो तृण भक्षणकरि दुग्ध दे है । बहुरि कोऊ पाषाणकी शिलासमान; जाकू बहुत धर्मोपदेश देते हू हृदयमें प्रवेश नाहीं करै है । कोऊ कसौटी समान श्रोता परीक्षाप्रधानी हैं, कोऊ ताखडीकी डांडी समान घाट-बाध जानै हैं । ऐसे श्रोतानिका उत्तम मध्यम अधम अनेक जाति है जाका जैसा स्वभाव है तैसा धर्मका उपदेश परिणमै है ऐसैं धर्मोपदेश नाम स्वाध्यायका प्रकरणमें वक्ता श्रोताका लक्षण कह्या है । ऐसे पंच प्रकार स्वाध्याय वर्णन किया । स्वाध्याय करनेतैं बुद्धि तो अतिशयवान होय है अभिप्राय उज्ज्वल होय है, जिनधर्मकी स्थिति दृढ होय है, संशयका अभाव होय है, परवादीको शंकाका अभाव होय है, परम धर्मानुराग होय है, तपकी वृद्धि होय है, आचारकी उज्ज्वलता होय है, अतीचारका अभाव होय, पापक्रियाका परिहार होय, कुधर्ममें रागका अभाव होय है, परमेष्ठीमें अतिशयरूप भक्ति होय, सम्यग्दर्शन प्रगट होय है, संसार-देह-भोगनितैं विरागता होय, कषायोंकी मन्दता होय, दयाभावकी वृद्धि होय, शुभ ध्यान होय आर्तरौद्रका अभाव होय, जगतके मान्य होय, उज्ज्वल यश प्रगट होय, दुर्गतिका अभाव होय, स्वर्गके उत्तम सुख तथा निर्वाणका अतींद्रिय सुखकी प्राप्ति होय इत्यादि अनेक गुणनिका उत्पन्न करनेवाला जानि सर्वज्ञका प्रकाश्या आगमका अभ्यास विना मनुष्य जन्म व्यतीत मति करो । ऐसे स्वाध्यायनामा अंतरंग तपका पांच प्रकार स्वरूप कह्या ।

अब कायोत्सर्ग नाम तपका स्वरूप कहिये हैं—जो बाह्य अभ्यंतर उपाधिको त्याग सो कायोत्सर्ग है जो शरीर धन धान्यादिकको त्याग सो बाह्य उपाधित्याग है अर अभ्यंतर मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा वेद परिणामनिका अभाव सो अभ्यंतर उपाधित्याग है । बहुरि बाह्यत्यागमें आहारादिकका हू त्याग है संन्यासका अवसरमें आयुकी पूर्णता होय तहां यावज्जीव त्याग है सो आगै क्रमतैं सल्लेखनामें वर्णन करसी । तातैं इहां विशेष नाहीं लिख्या है ।

अब ध्यान नामा तप छठा है ताकूं वर्णन करिये है-सो याका ऐसा स्वरूप जानना । जो एक पदार्थकै

सन्मुख चिंतवनका रुक जाना ध्यान है सो ध्यान उत्तम संहननवालेके अंतर्मुहूर्त रहै है। एकाग्र चिंतवनका रुक जाना अंतर्मुहूर्ततैं अधिक काल उत्तम संहननवालेके भी नाहीं रहै है। वज्रऋषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन ये तीन उत्तम संहनन हैं। उत्तम संहननवालेकै ही मुख्यपनाकरि चित्तका रुकना होय है। जो संसारमें गमन, भोजन, शयन अध्ययनादिक अनेक क्रिया हैं तिनमें नियमरहित वर्तै है तहां ध्यान नाहीं जानना। जहां एकके सन्मुख होय चित्तका रुकना सो ध्यान है। अर जहां एकाग्रना नाहीं तहां भावना है। इहां प्रशस्त संकल्पतैं तो शुभ ध्यान है अर अप्रशस्त कल्पनातैं अशुभ ध्यान है। तिनमें शुभ ध्यान दोय प्रकार है एक धर्मध्यान, एक शुक्लध्यान। अर अशुभध्यान हू दोय प्रकार है एक आर्तध्यान, दूजा रौद्रध्यान। ऐसैं ध्यान च्यार प्रकार है। तिनमें अशुभ ध्यान तो विना यत्न ही जीवनिके होयँ है जातैं अशुभ ध्यानका संस्कार तो जीवनिके अनादिकालतैं चला आवै है। कोऊ शास्त्र भी अशुभ ध्यान सिखावनेका नाहीं है, विना शिक्षा ही जीवनिके होय है। अशुभ ध्यानका अभाव भये शुभध्यान होय है। तातैं अशुभ ध्यानका अभावके अर्थ प्रथम च्यार प्रकारका आर्तध्यानकूं प्ररूपण करिये है–एक अनिष्टसंयोगज दूजा इष्टवियोगज, रोगजनित, निदानजनित, ए चार प्रकारका आर्तध्यान है। ऋत जो दुःख तातैं उपजै सो आर्तध्यान है जो अनिष्ट वस्तुका संयोगतैं महादुःख उपजै तिस अवसरमें जो चिंतवन सो अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान होय है। जो अपना शरीरका नाश करनेवाले तथा धनका नाश करनेवाले तथा आजीविकाकूं बिगाडनेवाले तथा अपने स्वजन–मित्रादिके नाश करनेवाले ऐसे दुष्ट वैरी तथा दुष्ट राजा तथा राजाका दुष्ट अधिकारी तथा अपना दुष्ट पडोसीनिका संयोग मिलना तथा रोगी शरीर घोर दरिद्र नीचजाति नीचकुलमें जन्म, निर्बलता, असमर्थता, अंगहीनता इत्यादिक पावना, तथा सिंह व्याघ्र सर्प स्वान मूसा तथा अग्नि जलादिक तथा दुष्ट राक्षसादिकनिका संयोग मिलना, तथा दुष्ट बांधव तथा दुष्ट कलत्र पुत्रादिकनिका संयोग बडा अनिष्ट है इनका संयोगका दुःखमें जो संक्लेशरूप परिणाम होय इनका वियोगके अर्थ चिंतवन होना सो अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यान है। जातैं अति शीत अति उष्णता अति वर्षा डांस मांछर कीडी ऊटकण दुष्टनिके दुर्वचन श्रवणकरि चिंतवनकरि स्मरणकरि परिणाममें बडी पीडा उपजै है अनिष्टका संयोगतैं दिवसमें रात्रिमें घर बारै कोऊ स्थानमें कोऊ कालमें क्लेश नाहीं मिटै हैं तातैं आर्तपरिणामतैं घोर कर्मका बन्ध होय है सो समस्त

अनिष्ट संयोगज आर्तध्यानका प्रथम भेद है। याकूं परिणाममें नाहीं होने दे है तिन सम्यग्दृष्टीनिके बहुत कर्मकी निर्जरा है। जो ज्ञानी महासत्पुरुष हैं ते अनिष्टके संयोगमें आर्तकूं नाहीं प्राप्त होय हैं। ऐसा चितवन करैं हैं जो हे आत्मन्! ये तेरे जो अनिष्ट दुःखं देनेवाली सामग्री उपजी है सो समस्त तेरा उपार्जन किया पापकर्मका फल है कोऊ अन्यकूं दूषण नाहीं है। अन्यकूं अपना घात करनेवाला मति जानो जो पूर्वैं परका धन हऱ्या है, अन्याय किया है, अन्य निर्बलनिकूं सन्ताप उपजाया है, अन्यके कलङ्क लगाया है, मिथ्याधर्मकी शिक्षा करी है, शीलवन्त त्यागी तपस्वीनिकूं दूषण लगाया है, खोटा मार्ग चलाया है, विकथामें रच्या है, अन्याय विषय सेवे हैं, निर्माल्य देवद्रव्य खाया है, ते कर्म अवसर पाय उदय आया है। अब याका उदयमें दुःखित क्लेशित होय भोगोगे ते नवीन अधिक पापका बन्ध और करोगे। अर दुःखित हुवा कर्म नाहीं छांडैगा अर अधिक दुःख वधैगा बुद्धि नष्ट हो जायगी, धर्मका लेशहू नाहीं रहैगा, पापका बन्ध दृढ होयगा तातैं अब धैर्य धारण करि समभावनितैं सहो। अर जो संक्लेशरहित समभावनितैं सहोगे तो शीघ्र ही पापकर्मका नाश होयगा, यातैं परिणाममें ऐसा चिंतवन करो जो मेरे बडा लाभ है जो कर्म इस अवसरमें उदय आय रसदेय निर्जरै है मेरे यह बडा लाभ है जो जिनधर्म धारण होरह्या है इस अवसरमें बडी समतासूं कर्मका प्रहारकूं सहि कर्मके ऋणरहित होस्यूं, जो यो कर्म अन्य अवसरमें उदय आवतो यातै अधिक बन्धकरि असंख्यात भवनिमें याका उलझाणतैं नाहीं छूटतो। ऐसा विचार हू करो जो ये अनिष्टके संयोग जैसैं मोकूं अनिष्ट लागैं हैं तैसैं अन्य जीवनिके हू बाधा करनेवाला है, तातैं मैं अब किसी अन्य जीवके अयोग्य वचनकरि अर अयत्नाचाररूप कायकरि अन्य जीवनिके दुःख हानि होनेके चिंतवनकरि कदाचित् दुःख करनेकी वांछा नाहीं करूं। अर ये इस अवसरमें जो मेरे अनिष्ट संयोग मिले हैं तिनतैं असंख्यातगुणे नरक तिर्यंचपर्यायमें तथा मनुष्यपर्यायमें अनेक वार भोगे हैं अनेक दुर्वचन भोगे हैं अनेक मारनिकरि नित्य दुःख भोगे है, अनेक जन्म दारिद्र भोग्या है। बहुरि बोंझ लादनेका दुःख, मर्मस्थानमें मारनका दुःख, हस्त पग नासिका छेदनेका दुःख, नेत्र उपाडनेका दुःख, क्षुधाका, तृषाका, शीतका, उष्णताका, तावडामें पडा रहनेका पवन का दुष्टजीवनिकरि खावनेका चिरकाल पर्यंत बन्दीगृहमें पराधीन पडनेका, हस्त पांव नाक छेदने का, बन्धनेका घोर दुःख भोगे हैं तथा अनेक बार अग्निमें दग्ध होय बळ्या हूं मऱ्या हूं अनेक बार जलमें डूबि मऱ्या कर्दममें फांसि मऱ्या इसप्रकार तिर्यंचनिमें, मनुष्यनिमें उपजी अनिष्टका संयोग अनन्त वार भोग्या है, नरकगतिका तो दुःख प्रत्यक्षज्ञानी जाननेकूं समर्थ हैं अन्य नाहीं। इस संसारमें वास करैगा जेते तौ अनिष्ट संयोग ही रहैगा तातैं मैं पापकर्मकरि पंचमकालका मनुष्य भया हूं यामें अनिष्टके संयोगकर भय कहा है। यामें जो अनन्तकालमें जाका लाभ दुर्लभ

ऐसा धर्मरूप परम निधान पाया इसका लाभका आनन्दकरि मोकूं अनिष्टसंयोगजनित दुःखका अभावकरि परक समता भानतैं कर्मका उदयकूं जीतना योग्य है । ऐसे अनिष्टसंयोगजनित आर्तध्यानका अभाव करना ।

अब आर्तध्यानका दूजा भेद इष्टवियोगज है । इष्टके वियोगतैं बडी आर्ति उपजै है जो अपने चित्तकूं आनन्द देनेवाला अनेक सुखनिकूं उपजावनेवाला ऐसा पुत्रका मरण होजाय वा आज्ञाकारिणी स्त्रीका वियोग होजाय, तथा प्राणनिसमान मित्रका वियोग होजाय, वा बहुतसंपदा राज्य ऐश्वर्य भोगनिका देनेवाला स्वामीका वियोग हो जाय, तथा सुखतैं जीवनेकी कारण आजीविका नष्ट होजाय, तथा राज्यका भंग, पदस्थका भंग, संपदाका भंग होजाय, तथा सुखतैं विश्राम करनेका कारण जायगा गृह स्थान नष्ट होजाय, वा सौभाग्य यश नष्ट होजाय, प्रीतिके करनेवाले भोग नष्ट होजाय, सो समस्त इष्टका वियोग है ऐसे इष्टके वियोग होते जो शोक भ्रम भय मूर्च्छादिक होना बारम्बार तिनका संयोगके अर्थ चिंतवन करना, रुदन करना, दुःखमें अचेत हुवा विलाप करना, बारम्बार पीडित होना, हाहाकार करना, सो तिर्यंचगतिमें गमनका कारण इष्टवियोगज नाम आर्तध्यान है । इष्टके वियोगतैं बडे-बडे शूरवीरनिका धैर्य छूटि जाय है, महान पुरुष दीन होजाय है, हृदय फटि जाय है, मरणकर जाय है. उन्मत्त बावला होजाय है, कूप बावडीमें जाय पडै है, ऊंचे मकानतैं तथा पर्वततैं पडि मरै है, विषका भक्षण करै है, शस्त्रादिककरि आत्मघात करै है, इस इष्टके वियोगकी आर्तिसमान कोऊ आर्ति नाहीं है, इष्टवियोग की आर्तिकरि दोऊ लोक नष्ट होजाय हैं, कोऊ उत्तम पुरुष संसार देह भोगनितैं विरक्त श्रद्धानी सम्यग्ज्ञानी वीतराग सर्वज्ञके वचननिका अवलम्बन करनेवाला, वस्तुका सत्यार्थ स्वरूपकूं जाननेवाला पुरुष ही इष्टका वियोगजनित दुःखकूं जीतै हैं ते पुरुष ऐसी भावना करै हैं जो हे आत्मन् संसारमें जेते तेरे संयोग भया है तिनका नियमतैं वियोग होयगा । वियोगके रोकनेकूं कोऊ देवता इंद्र मंत्र जंत्र औषधि सेना बल परिकर बुद्धि मित्र धन संपदा कोऊ समर्थ नाहीं है । इस अपना देहका ही वियोग अवश्य होयगा तदि इस देहका संबंधीनिकी कहा कथा है ? जो ये स्त्री पुत्र पुत्री माता पितादिकूं अपना मानि प्रीति करै है सो तेरा संबंध इनके आत्मातैं नाहीं है, जो ये मुख ऊपर चामडा वा दुर्गंध नाशिका तथा चामडाके नेत्र इनके विषै मोहबुद्धिकरि परस्पर अपना समान राग करै है सो इनका तो अग्निमें एकदिन भस्म होना हैं, तुम्हारा चामडाका अर इनका चामडाका अनन्त कालमें हू कैसैं संबन्ध मिलैगा ? जिनका संयोग भया है तिनका नियमतैं वियोग होयगा । माताका, पिताका, प्यारी स्त्रीका, सपूत पुत्रका, भ्राताका, राज्यका, ऐश्वर्यका, धन-संपदाका, महल मकानका, देश नगर ग्रामका, मित्रनिका, स्वामीका, सेवकका अवश्य वियोग होयगा । तातैं

इष्टका वियोगकी आर्ति करि अशुभ बंध मति करो। जो ये तुम्हारे इष्ट हैं तो तुमकूं दुःख उपजावनेकूं कैसे जतन करै ? तातैं जो सम्यग्ज्ञानी हो तो परम धर्मरूम भावकूं इष्ट मानो, जातैं संसारके दुखतैं छूटना होय अर ये स्त्री पुत्र कुटुम्ब धन परिग्रहादिक इष्ट नाहीं हैं जो ममता उपजाय पाप कर्ममें इन्द्रियनिके विषयनिमें प्रवृत्ति करावै, अनीतिमें प्रवर्ताय दुगति पहुंचावै ते काहेका इष्ट ? इष्ट तो परम हितरूप धर्ममें प्रवर्तन करानेवाले धर्मात्मा गुरुजन हैं वा साधर्मी हैं अन्य नाहीं, ये कुटुम्बके जन तो तुम्हारै पुण्यका उदयतैं धन संपदा है तेते सब अपने इष्ट दीखै हैं विना धन कोऊ अपना इष्ट मानै नाहीं। अर धन है सो पुण्यके आधीन हैं तातैं पुण्यके प्रभावकूं ही इष्ट मानो। जो पुण्यका उदय आवै तो स्वर्गलोककी महान् इष्ट सामग्री असंख्यात देवांकरि वंदनीक इन्द्रपना, अर महाप्रेमकी भरी हुई हजांरा देवांगना, अद्भुत भोग सामग्री मिलै है। अर पापका उदयतैं अपना घना प्यारा पुत्र तथा यत्नतैं पाल्या देहादिक ही घोर दुःखके देनेवाले वैरी होजाय हैं। अर संसारमें अनन्त जीवनितैं अनेक नाते भए एती माताका दुग्ध पिया है जाका एक एक बूंद एकट्टी करियें तो अनन्त समुद्र भरि जांय, अर एते देह धारण करि छांडे हैं जो एक देहका एक एक रोम एकट्ठे करिये तो सुमेरु समान अनन्त ढेर हो जांय, अर एते कुटुम्बके तोकूं रोये, अर कुटुम्बीनिके अर्थि तू रोया, जो अश्रुपात इकट्ठा करिये तो अनन्त समुद्र भरि जांय। तातैं सत्यार्थ विचार करो कोन-कोन से इष्टके वियोग गिनोगे, अनेक इष्ट ग्रहण करि छांडे हैं। बहुरि इष्ट विद्यमान हैं तिनकूं हू छांडनेका अवसर सन्मुख जरूर आया, अवसरका ठिकाना नाहीं कौनप्रकार आवैगी ? मृत्यु तो प्राप्त हुआ विना किसीकूं नाहीं रहै, समस्त इष्ट सामग्री जो थानैं दीखै है अर जामें राग करो ही तिनतैं वियोग होनेका अवसर अचानक आया जानो। जिनमें ममता धरि फंसि रहै हो अर जिनके निमित्त पांच प्रकारके पाप करो हो ते अवश्य विछुरैंगे, अर समस्त सामग्री है सो कोऊ हू वियोगके दिन कुछ करनेकूं समर्थ नाहीं है। तातैं तिर्यंचगतिका कारण इष्टवियोग में क्लेश मति करो। अर ऐसी भावना करो जो यो शरीर है सो जलमें बुदबुदावत् है क्षणमें विनष्ट होयगा। अर या लक्ष्मी इंद्रजालकी रचना तुल्य है, अर ये स्त्री-पुत्र कुटुम्बादिक हैं ते प्रचण्ड पवनका घातकरि प्रेरित समुद्रकी कल्लोलवत् चलायमान हैं, अर विषयनिका सुख संध्याकालका बादलांका रागवत् विनाशीक है। तातैं इनका वियोगमें शोक करना वृथा है। जो देह धारण है ताकै दुःख अर मरण तो अवश्य प्राप्त होयहीगा तातैं दुःखका अर मरणका भय छांडि करि ऐसा उपाय चिंतवन करो जो देहका धारण करनेकाही अभाव होजाय। अर हे आत्मन् किसी देव दानव मंत्र तंत्र औषधादिकनिकरि नाहीं रुकै ऐसा कर्मका वश करिकैं जो अपने इष्टका मरण होते जो शोक करि दुर्ध्यान

करना है सो उन्मत्त बावलाको आचरण है । जातैं शोक किये, रुदन विलाप किये, कौन करुणाकरि जिवाय देगा, शोककरि कुछभी सिद्ध नाहीं, केवल धर्म अर्थ काम मोक्ष समस्त नष्ट होयगा । जो कोऊ उपज्या है सो मरणके अर्थ ही उपज्या है । ज्यों समय व्यतीत होय है त्यों मरण का दिन नजीक आवै है। जैसैं वृक्षके पुष्प फल पत्र उदय भये हैं ते पतन ही करैं हैं तैसैं कुलरूप वृक्षमें माता पिता पुत्र पौत्र जे उपजैं हैं ते विनसैहींगे, यामें शोक करना वृथा है । या भवितव्यता है सो दुर्लंघ्य है, पूर्वैं उपार्जन किया कर्मके उदय आये पाछैं फल नाहीं रुके है । अब जो उदयके आधीन इष्ट वस्तुका नाश भया, ताका विलापकरि शोक करै है सो अंधकारमें नृत्यका आरम्भ करै है, कौन देखैगा ? पूर्वैं उपार्जन किया कर्मका उदयका अवसरमें जाका आयुका अंत आयगा, तथा वियोगका अवसर आगया तिस कालमें ताकूं कौन रोकैगा ? तातै दुःख छांडि परम धर्ममें यत्न करौ । प्रथम तो जे धनका उपार्जनके अर्थ परिग्रह बधावनेके अर्थ, बहुत जीवनेके अर्थ, महासंक्लेश दुर्ध्यान करै हैं ते महामूढ हैं । वांछा किये । क्लेशित भये पुण्यका उदय विना कैसे प्राप्त होयगा । अर जो आपका इष्ट मर गया, ताकूं दग्धकरि दिया अर एक एक परमाणु धूम्रादिक भस्म होय उड गये, ताके प्राप्तिके अर्थ जो शोक करै तिस समान मूर्ख और कौन देखिये ? इस जगतकूं इन्द्रजाल-समान प्रत्यक्ष देखता हू शोक कैसे करे है । जो मरणको वियोग को हानिको जो दिन आजाय ताकूं एक क्षण हू टालनेकूं कोऊ इन्द्र जिनेन्द्र समर्थ नाहीं हैं । ऐसैं जानता हू जो रुदन विलाप करै है सो निर्जनवनमें बहुत पुकारकरि रोवै है, कौन दया करैगा ? पूर्वोपार्जित कर्म अचेतन है वाकै दया है नाहीं । जो अपना इष्ट वस्तु विनशि जाय, ताका तो शोक करना उचित ह जो शोक कियेतैं वस्तुका लाभ होजाय, तथा आपके सुख होय, तथा जगतमें बडा यश कीर्तन होजाय, तथा धर्मका उपार्जन होजाय, तो इष्टके वियोगका शोक हू करना ठीक है। अर जो कुछ भी लाभ नाहीं होय, अर केवल शोकतैं धर्मका नाश होय, बुद्धिका नाश होय, शरीरका नाश होय, इन्द्रियां नष्ट होय, नेत्रनिकी ज्योति नष्ट होय, प्रगट घोर दुःख होय, परलोकमें दुर्गति होय, अन्य श्रवण करनेवालेनिके क्लेश होय आपके रोगकी उत्पत्ति होय, बलवीर्यका नाश होय, व्यवहार परमार्थ दोऊंका नाश होय, धीरता नष्ट होय, ज्ञान नष्ट होय इत्यादिक अनेक दुःखनिका कारण शोक है तातैं तिर्यंचगतिमें अनेक जन्म उपार्जन करनेवाला इष्टवियोगज नाम आर्तध्यान कदाचित् मति करो ।

बहुरि जो इष्टका वियोग है सो पापका फल है सो अब याका शोक कीये कहा होइगा ? पापकर्मके नाश करनेमें यत्न करो, जो फिर इष्टवियोगादिकके दुःखका पात्र नाहीं होवोगे। जो इष्ट वियोगकरि दुःखरूप क्लेशित होरहे हैं सो ऐसा असाता कर्मका बन्ध करै हैं जो आगानै संख्यात असंख्यात भव-पर्यंत दुःखकी परिपाटीतैं नाहीं छूटेगा। जो यो क्षण-क्षणमें आयु नष्ट होय है सो काल-मुखमें प्रवेश है। कोऊ ऐसा अनन्त कालमें न हुआ न होसी, जो देह धारणकरि मरणकूं नाहीं प्राप्त होय ? सूर्य चन्द्रमादिक देवता तथा पक्षी ये तो आकाश ही में विचरें हैं, अर मनुष्य तिर्यंचादिक पृथ्वीमें ही विचरैं मच्छ-कच्छादिक जलहीमें विचरें। अर यो काल स्वर्ग में नरकमें आकाशमें पातालमें जलमें थलमें सर्वत्र विचरै है। यातैं कौन उबारै है ? जो दिन निरन्तर व्यतीत होय है सो आयुका बडा बडा खंड प्रत्यक्ष टूटता चल्या जाय है। सागरनिका जिनका आयु ऐसा अणिमादिक हजारां ऋद्धिके धारक जिनकी असंख्यात देव सेवा करैं, तिनका ही विनाश होय है तो कीटसमान मनुष्य कैसे स्थिर रहैगा ? जिस पवनतैं पहाड उडि गये तातैं तृणपुञ्ज कैसैं ठहरैगा ? ऐसा चिंतवनकरि इष्टका वियोग होतैं आर्तध्यान कदाचित् मति करो। ऐसे इष्टवियोग आर्तध्यानका अर याके जीतनेकी भावनाका वर्णन किया।

अब रोगजनित आर्तध्यानका स्वरूप कहिये है—इस शरीरमें रोग आय उपजै है तहां जो रोगका नाश होनेके अर्थ बारम्बार संक्लेशरूप परिणाम होय सो रोगजनित आर्तध्यान है जो कास, स्वास, ज्वर, वात, पित्त, कफ, उदरशूल, मस्तकशूल, नेत्रशूल, कर्णशूल, दन्तशूल, जलोदर, स्फोदर, कोढ, खाज, दाद, संग्रहणी, कठोदर, अतीसार इत्यादिक प्राणनिका नाश करनेवाला घोर वेदना देनेवाले रोगनिका उदयकरि घोर दुःख उपजै है, रोगनिकी पीडाकरि एकस्वास भी लेना महासंकटतैं होय है, बैठ्या ऊंभा वा शयन करतां कहां हूं परिणाममें थिरता नाहीं लेने दे है। तिस अवसरमें परिणामनिमें बडा दुःखकरि उपज्या पीडाचिंतवन नाम आर्तध्यान होय है। या रोग-जनित वेदना ऐसी है जो बडे बडे कोटीभट महाशूरवीर अनेक शस्त्रनिके सन्मुख होय घात खानेवाले शूरवीरनिका हू धैर्य चलायमान होजाय है, बडे बडे त्यागी तपस्वी परीषहनिके सहनेवालेनिका हू धैर्य चलायमान करदे है ऐसा रोग वेदनाजनित आर्तध्यानके जीतनेका सामर्थ्य बडा दुर्धर है, रोगजनित वेदनामें आर्तपरिणामका जीतना भगवान् जिनेन्द्रका शरणतैं जानो। मोटा शरणविना ऐसी दुर्धर वेदनामें धैर्य नाहीं रहता है; तातैं ही ज्ञानी सर्वज्ञका शरण ग्रहणकरि चिंतवन करै है जो हे आत्मन्, यह भयानक घोर असाताकर्म उदय आया है अब जो यामें विलाप करोगे तो दुःख कौन दूरि करैगा, अर तडफडाहट करोगे तो ये वेदना छांडनेकी नाहीं। धीर होय भोगोगे तो भोगोगे अर कायर होय भोगोगे तो भोगोगे। रोग देहमें आया है सो देहकूं मारैगा ?

तुम्हारा आत्माकूं नाहीं मारैगा । तुम्हारा आत्मा तो ज्ञायकस्वभाव अविनाशी है परन्तु इस देहके फंदेमें आय फंस्या सो अब धैर्य धारण करि कायरता छांडो । जो इस संसारमें कोटनि रोगका उदय तथा ताडन मारणादि त्रास नरकमें भोगा, अर तिर्यंचगतिमें प्रत्यक्ष घोर दुःख रोगनितैं उपज्या देखो हो ? औरसैं तो भाग भी जाय, परन्तु कर्मसैं नाहीं भाग सकोगे । यो कर्ममय शरीर तुम्हारा एक एक प्रदेशकूं अनन्त कर्मके परिमाणुनि करि बांधि अपने आधीन करि राख्या है सो कैसैं भागने देगा ? अर जो कर्म है सो तो मरण किये हू नाहीं छांडेगा । देह छूटैगा कर्म तो अन्य देह धारोगे तहां हू लार ही रहैगा । रोगमें जे धैर्य धारण करैं हैं तिनके कर्मकी बडी निर्जरा होय है । बहुरि ऐसा हू विचार करो । जो मुनीश्वर तो ग्रीष्ममें आतापकी वेदना अर शीत ऋतुमें शीत वेदना कर्मनिके जीतने वास्ते बडा उत्साहधरि सहै हैं; तुम्हारे कर्म आप ही उदय आया तो यामें शूरपणो अङ्गीकार करि कर्मकूं जीतो । अर ऐसा हू देखो जो केतेक मनुष्य निर्धन हैं अर एकाकी है स्थानरहित हैं खान पान मिलै नाहीं है, अर कोऊ पूछनेवाला नाहीं, कोऊका सहाय नाहीं, अर शरीरमें उपराऊपरि रोगनिका क्लेश आवै है, कोऊ पाणी पावनेवाला हू नाहीं, ताका विलाप कौन सुनै ? ऐसा दुःखका धारक अज्ञानी हू आपकूं असहाय एकाकी निर्धन समझि आपकी आप भगै है तुम्हारे तो शयन करनेकूं स्थान है, खावनेकूं भोजन है, रोगीकी औषधि है, ताता डण्डा समस्त सामग्री है चाकरी करनेवाला सेवक है स्त्री है, पुत्र है, मित्र है, मलमूत्रादिक धोवनेवाला है, अब तोकूं समभावतैं वेदना सहना, कायरता छांडना, धैर्य धारि आत छांडना ही योग्य है । धर्मधारणका ये ही फल है जिन के कोऊ प्रकार सहाय नाहीं, सो हू धैर्य धारण करैं हैं तो हे आत्मन् ये जिनधर्म धारण करकै हू अर कर्मके उदयकूं अरोक समझ करि कैसैं कायरता धारो हो अर बन्दीगृहमें घोर रोगवेदना भोगते केतेक मरैं हैं, तथा तिर्यंचमें घोर रोगकी वेदना अर रोगी हुवा निर्जनवनमें पडना, कर्दम में फंसना, तावडामें शीतमें पड्या रहना, पड्याकूं अनेक जीव काटि काटि खावना इत्यादिक घोर वेदना संसारमें भोगिये है । संसार तोदुःखहीका भर्‍या है, ऐसा कौन रोग है जो संसारमें अनेक वार नाहीं भोग्या, तातैं रोगमें जिनधर्म ही शरण है, जिनेंन्द्रका वचनहीकूं जन्म-मरण जर-रोगके नाश करनेवाला जानहू । अन्य औषधि इलाज साताकर्मके सहायतैं असाताकूं मन्द होते उपकार करैं है असाताका प्रबल उदयमें समस्त उपायनिकूं निष्फल जानि अशुभ कर्मके नाशका कारण परम समताभाव ही धारण करना श्रेष्ठ है । ऐसैं रोगजनित आर्तध्यानके जीतने की भावना कही ।

अब निदान नामक चतुर्थ आर्तध्यानका स्वरूप वर्णन करैं हैं—जो देवनिके भोगनिकी वांछा करना तथा

अप्सरानिका नृत्यादिक देखनेकी वांछा करना, अपना सौभाग्य चाहना, अद्भुत रूप चाहना, अखंड ऐश्वर्यसंयुक्त राज्य विभूतिकी वांछा करना, सुन्दर महल मकान रमनेकूं चाहना, रूपवती स्त्रीका कोमल सुकुमार अंगोंका स्पर्श चाहना, शय्या आसन आभरण वस्त्र सुगन्ध मिष्ट वांछित भोजन चाहना नाना रससहित क्रीडा–विहार चाहना, वैरीनिका तिरस्कार चाहना, वैरीनिका मरण चाहना, अपने वांछित विभूति चाहना, समस्त जगतके मध्य अपनी उच्चता चाहना, अपनी आज्ञाबारैं तिनका विजय चाहना; तिरस्कार चाहना सदका पुष्टकरनेवाली, समस्त पण्डितानिकूं तिरस्कार करनेवाली विद्या चाहना, राजनीतिकूं अपने आधीन चाहना, आजीविका की वृद्धि चाहना, परके कुटुम्बका संपदाका नाश चाहना, अपने कुटुम्बकी वृद्धि, धनका लाभ चाहना, अपना दिर्घकाल जीवित चाहना, अपना वचनकी सिद्धिका चाहना, अपना कपट--झूठ में गोप्यता चाहना, अन्य जीवनिका आपतैं न्यूनता चाहना, आपकी समस्तके मध्य उच्चता चाहना, समस्त भोगनिकी वांछा, अपना निरोगपना, अपने अद्भुत रूप संपदा आज्ञाकारी पुत्र चतुर सेवक इत्यादिकी जो आगामी वांछा करना सो निदान आर्तध्यान है। संसार परिभ्रमण का कारण पुण्यका नाश करनेवाला जानि कदाचित निदान मति करो जातैं वांछा तो पापका बन्ध है। भोगनिकी अभिलाषा अर अपना अभिमानकी पुष्टता चाहना है सो अपना संचय किया पुण्यका नाश करै है जातैं निर्वांछक परिणामहीतैं पुण्यबन्ध होय है। जातैं अपनी उच्चता की वांछा अर विषयनिका लोभ तीव्रकषायी पर्यायबुद्धि विना कौन करै? अर ये विषय हैं अर ये अभिमान हैं ते केते दिन रहैगा अनन्तानन्त पुरुष पृथ्वीमें संपदावान, बलवान, रूपवान, विद्यावान प्रलयकूं प्राप्त होय गये, यह काल अचानक ग्रसैगा, एते काल भोग कहा कीया? ये भोग अतृप्तिताके करने वाले हैं, दुर्गति लेजानेवाले हैं, चाह कीये कदाचित् प्राप्त हू नाहीं होय हैं; असंख्यात जीव चाहकी दाहके मारे बलैं हैं। मरण निकट आजाय तहांहू चाह ही है उपजै चाहकरि जगत बलै है। जगत–जीवनीके ऐसी तृष्णा है जो त्रैलोक्यका राज्यसे भी तृप्तिता नाहीं आवै, तो देखो कौन–कौनके समस्त लोकका राज्य आवैगा? या खाक–समान अचेतन धनसंपदा है, या करि आत्माकै कहा साध्य है? लोकमें संपदा परिग्रह–अभिमान महादुःखदायी है अपनी अविनाशिक ज्ञानकी संपदा सुखसंपदा स्वाधीनताकूं प्राप्त होनेका यत्न करो। संतोष–समान सुख नाहीं, संतोष–समान तप नाहीं। मिले विषयनिमें संतोष–धारिकरि वांछारहित तिष्ठै हैं तिनकै बडा तप है, कर्मकी निर्जरा करै हैं। अर वांछा करै हैं तिनकूं कहा मिलै है? अनंतानंत जीव विषय–कषायनिकी प्राप्तिकूं तरसते तरसते मरि दुर्गति चले जाय हैं, तातैं जो जिनेन्द्रधर्म तुम्हारे हृदयमें सत्यार्थ रच्या है तो गई वस्तु ताकूं चिंतवन मति करो, अर आगामीकी वांछा मति

करो, अर वर्तमान कालमें जो कर्मका शुभ अशुभ रस उदय आया ताकूं रागद्वेषरहित हुआ भोगो जो यह शुभ-अशुभ का संयोग है सो हमारा स्वभाव नाहीं, कर्मका उदय है, ऐसा निश्चयकरि आगामी वांछाका अभाव करि निदाननाम आर्तध्यानकूं जीतो । ऐसैं चार प्रकार आर्तध्यानका स्वरूप कह्या । याका उपजना छट्टे गुणस्थानपर्यंत है । निदान नाम आर्तध्यान पंचम गुणस्थानपर्यंत ही होय है, निदान छट्टा गुणस्थानमें नाहीं होय है । यो आर्तध्यान कृष्ण, नील, कापोत तीन जो अशुभ-लेश्या तिनके बलकरि उपजै है पापरूप अग्निके वधावनेकूं ईंधनसमान है, यो आर्तध्यान अनादिकालका अशुभसंस्कारतैं विना-यत्न ही उपजै है, याका फल अनन्त दुःखनिकरि व्याप्त तिर्यंचगतिमें परिभ्रमण है । क्षायोपशमिक भाव है, याका अन्तर्मुहूर्त काल है, जाका हृदयमें आर्तध्यान होय है ताका बाह्य शरीर ऊपरि ऐसे चिह्न होय हैं—शोक, शंका, भय, प्रमाद, कलह, चिंता, भ्रम, भ्रांति, उन्माद, बारम्बार निद्रा, अंगमें जडता श्रम मूर्च्छा इत्यादि चिह्न प्रगटैं हैं । ऐसैं आर्तध्यानका स्वरूप कह्या ।

अव आगे च्यार प्रकारका रौद्रध्यान त्यागने योग्य है तिनका स्वरूप दिखावै हैं—हिंसानंद, मृषानंद, स्तेयानंद, परिग्रहानंद, ये च्यार प्रकारके रौद्रध्यान हैं । तिनमें प्रथम हिंसानंद का ऐसा स्वरूप जानना—जो प्राणीनिका समूहका आपकरि वा अन्यकरि घात होते जो हर्षका उपजना सो हिंसानन्द रौद्रध्यान है । जाकै हिंसाके कारण विषयनिमें अनुराग होय, जलयंत्र बन्धावनेमें तलाव बावडी कूवा नहरि नदी नाले खुदावनेमें अनुराग होय, तथा वन कटनेमें बागबगीचा लगनेमें सडक खुदनेमें वांध-बधनेमें अनुराग होय, तथा ग्राम दग्ध करनेमें, गृह दग्ध होनेमें पर्वत कटनेमें अनुराग तथा युद्ध होनेमें, परधनके विध्वन्स होनेमें, दारूके ख्याल छूटनेमें, धाडामें लूटिमें अनुराग, तथा जलचर स्थलचर नभचरनिकी शिकार करनेमें जीवनिके मारने जीवनिके पकडनेमें बन्दीगृह देनेमें अनुराग सो समस्त हिंसानन्द रौद्रध्यान है । रौद्रध्यानीका निरन्तर निर्दयस्वभाव होय है अर क्रोधस्वभावकरि प्रज्वलित रहै है । मदकरि उद्धत पापवुद्धि पापमें प्रवीणतायुक्त है, परलोककी नास्ति, धर्म कर्मकी नास्ति माननेवाला है, रौद्रध्यानीके पापकर्ममें महानिपुणताकरि अनेक बुद्धि अगाऊ खडी हाजरी दे है । अर पापके उपदेशमें बडी निपुणता है, अर नास्तिकमतके स्थापनमें बडी निपुणता, अर हिंसाके कार्यमें रागकी अधिकता, निर्दयिनिकी संगतिमें निरन्तर वसना सो समस्त हिंसानंद है । बहुरि जिनतैं अपना विषय कषाय पुष्ट नाहीं होय, तिनमें

ऐसा चिंतवन करै--इनका घात कौन उपाय करि होय, इनके मारनेमें कौनकै अनुराग है, इनकूं मूलतै विध्वंस करनेमें कौनके निपुणता है, वा ये केतेक दिननिमें कैसैं मारे जांयगे, ये मारे जांयगे तदि ब्राह्मणनिकूं मनोवांछित भोजन कराऊंगा, तथा देवतानिका पूजन आराधना करूंगा तथा वैरीनिका नाशके अर्थि धन देय जाप करावना, दुर्गापाठ करावना, तथा अपने मस्तक डाढीका क्षौर नाहीं करावना, केश बधावना, इत्यादिक परिणामनिमे संक्लेश धारना सो समस्त हिंसानंद है। तथा जलके स्थलके विकलत्रय आकाशचारी जीवनिके मारनेमें बलि देवनेमें, बांधनेमें, छेदनेमें जाकै बडा यत्न तथा जीवनिके नख नेत्र चाम उपाडनेमें, जीवनिके लडावनेमें वडा अनुराग जाकै होय ताकै हिंसानन्द है। याकी जीत याकी हार, याका तिरस्कार याका मरण, याकै धनका नाश याके स्त्री पुत्रका मरण वियोग होहू, ऐसा चिंतवन तथा इनके श्रवण करनेमें देखनेमें स्मरणमें अनुराग सो हिंसानंद है। बहुरि ऐसा विकल्प करै है जो कहा करूं, मेरी शक्ति नाहीं, कोऊ जबर मेरा सहाई नाहीं वो कौनसा दिन उदयकारी आवै जो नाना त्रास देय मेरा पूर्वला शत्रुनिकूं मारूं, वा जो मेरा सामर्थ्य इहां नाहीं होसी तो परलोक तांई मारस्यूं, तथा परका निरंतर अपकार चाहै, अर परके विघ्न आजाय, हानि वियोग अपमान होजाय तदि बडा हर्ष मानना सो समस्त हिसानन्द नाम रौद्रध्यान है। ऐसैं अनेक प्रकारके हिंसाके विकल्प करना सो हिंसानन्द है। बहुरि हिंसानन्दके बाह्य चिन्ह हैं जो हिंसाके उपकरण खड्ग छुरी कटारी इत्यादिक शस्त्र ग्रहण करना, शस्त्रनितैं मारने विदारनेके दाव घात चिंतवन करना मारनेकी कलामें निपुणता रखना, हिंसक जीवनिका पालना, हिंसक चीता कूकरा शिकरा (बाज) इत्यादिक जीवानिकूं निकट राखना, सो सब हिंसानन्दके बाह्य चिन्ह हैं।

अब मृषानन्द नाम रौद्रध्यानका दूसरा भेद ऐसा जानना जिनका मन असत्यकी कल्पना करनेमें निपुण होय अर ऐसा चिंतवन करै, तथा ऐसा कोऊ जाल खडा करै, जो लोकनिको वश करि धन ग्रहण करै, वा ऐसा विद्याका लाभ दिखावै, वा रसायणका लाभ दिखावै, वा मन्त्रका व्यंतरनिका तथा इंद्रजालकी विद्याका ऐसा चमत्कार दिखावै, जो ये लोक अपने आधीन होजांय, आप भूलि हमारै आधीन होजाय, तदि मेरी वचनकला सफल है। तथा पापी परलोकका भयरहित होय अपना पण्डितपणके बलतैं कल्पित शास्त्र बणाय जगतकूं विपरीतधर्म दिखावना हिंसादिक आरंभमें यज्ञादिकनिमें धर्म बतावना रागी द्वेषी देवतानितैं वांछित कार्यकी सिद्धि बतावना, देवतानिकूं मांसभक्षी मद्यपायी बतावना, देवतानिके बकरा भैंसा इत्यादिक जीव मारि चढावनेकरि वांछित कार्य सिद्ध होय, वैरीनिका विध्वंस होय, राज्यादिकनिकी लक्ष्मी दृढ होय, इत्यादिक

खोटे शास्त्र रचना, परिग्रही आरम्भीनिकूं पापमें प्रवर्तन करावना, अर देवतानिके प्रसन्न करनेवालेनिकूं मोक्षमार्गी बतावना, इत्यादिक बहुत खोटे धर्मशास्त्र रचना तथा राग बधावनेवाली कामके पुष्ट करनेवाली तथा राजकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथा, देशकथा करनेमें श्रवणमें आनन्द मानना, परके झूठे सांचे दोष कहनेमें अपनी बडाई करनेमें आनन्द माननां सो मृषानंद है तथा असत्यका सामर्थ्यतैं झूठेनिकूं सांचे दिखाना सांचेनिकूं झूठे दिखाना, सदोषनिकूं निर्दोप कहना, निर्दोषनिकूं दोषसहित कहना तथा ऐसा विचार जो ये लोक मूर्ख हैं ज्ञान–विचार–रहित हैं इनकूं वचनकी प्रवीणतातैं अनर्थ कार्यनिमें प्रवर्तन कराय भ्रष्ट करदे स्यूं धनसंपदा राखि लेस्यूं यामें संशय नाहीं, इत्यादिक अनेक असत्यका संकल्प करना सो नरकगतिका कारण मृषानन्द नामा दूजा रौद्रध्यान जानना ।

अब तीजा चौर्यानन्दनाम रौद्रध्यानका ऐसा स्वरूप जानना–जो चोरीका उपदेशमें तत्परपणा तथा चोरी करनेकी कलामें निपुणपणा सो चौर्यानन्द है । तथा जो परधन हरनेके अर्थि रात्रिदिन चिंतवन करना, अर चोरी करि धन ल्याय बडा हर्ष मानना तथा अन्य कोऊ चोरी करि धन उपार्जन किया होय ताकूं देखि विचारै जो देखो याकै एता धन हाथ लगि गया मेरे परका धन कैसे हाथ आवै कौन उपाय करै, कौनका सहाय लेवैं, कैसे धिजावै, कोऊ ऐसा पुण्य कब उदय आवै जौ कोऊ गिरवा पड्या भूल्या धन हमारै हाथ लगि जाय, अन्य कोऊ चोरीकरि मोकूं सौंपि जाय, वा चोरका माल हमारे अल्प मोलमें आजाय, तथा बहुत मोलके रत्न सुवर्णादिक मोकूं भूलि चूकि बेचि जाय सो बडा लाभ है । अथवा कोई अज्ञान तथा बालक मोकूं बहूत मोलकी वस्तु दे जाय, ऐसा चिंतवन करना सो चौर्यानन्द है । वा ये रक्षक मर जांय, वा धनका धनी मर जाय, तो धन हमारे रहि जाये ऐसा चिंतवन स्तेयानन्द है । अथवा कोऊ बलवानका सैन्याका सहाय लेयकैं वा बहुत प्रकार उपाय करकैं इहां बहुत कालका संचय किया धन ग्रहण करूं, वा कोई मायाचारकरि वचनकला करि पुरुषार्थकरि प्राणनिका संकल्पकरि तथा इनकूं मार करि याका धन ग्रहण करूं, तदि मेरा पुरुषार्थ सफल है । इत्यादिक चौर्यानन्द रौद्रध्यान है सो नरकगतिका कारण है ।

अब परिग्रहानन्द रौद्रध्यानका स्वरूप कहै हैं—जो बहुत परिग्रहका बधावनेका अर्थि अर बहुत आरम्भके अर्थि जो चिंतवन करिये सो परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है । जो विपयनिमें राग तथा अभिमानके वशि हुवा विचार करै जो ऐसा महल मकान रहनेकूं हमारै बनि जाय वा कोऊ हमारा भाग्य फल जाय तो नाना चित्रशाला सुवर्णके स्तंभ सांकलमें हींडनेके हिंडोले वा नाना ऋतुके केई महल वा कोट कांगुरे गढ तोप बडे

दरवाजे ऐसै सुन्दर बाणऊं जो मेरे आंगणकी विभूति देखि लोकनिके आश्चर्य उपजै, तथा अनेक बाग लगाऊं, बागनिमें अनेक महल तथा जलके जन्त्र फवारे चादरि नदीनिका धोरा कुण्ड बावडी कूप द्रह नाना जलक्रीडाके स्थान कामक्रीडाके भोजन करनेके नाट्यगृहनिके स्थान वणैं तदि मेरे मनोवांछित सफल है नाना ऋतुके फल फूल हमारे आगैं नजर करैं तथा मेरे महल मकानमें सुवर्णमय रूपामय वस्त्रमय ऐसी सामग्री अन्य मनुष्यानिके नाहीं देखियै ऐसी प्राप्ति होय तदि मैं धन्य हूं, अथवा मेरे शरीरका अद्भुत रूप देखनेकूं हजारां स्त्रियां पुरुष अति अभिलाषा करैं तथा अपने नखस्यूं नेय शिख पर्यंत हीरानिके आभरणनिका जोड, पन्नाके माणिक्यके इन्द्रनीलमणिके मोतीनिके बहुमूल्य आभरणनिका चाहना, अर इस संपदानै भूषित करनेवाले महान कोमल बहुमूल्य वस्त्रनिका चाहना नाना प्रकारके सुवर्णमय रत्नमय रूपामय उपकरण नाना प्रकारकी वांछा करना, तथा कोमल सुकुमारांगी रूपलावण्य करि देवांगनानिकूं जीतनेवाली शीलवती प्रिय हित वचन सहित प्रेमकी भरी स्त्रीनिका संगम चाहना, आज्ञाकारी शूरवीर धनवान विद्यावान विनयवान यशस्वी ऐसे पुत्रका चाहना, अपने मन समान वांछित कार्यके साधनेवाले महाचतुरतायुक्त प्रवीण स्वामिभक्त ऐसे सेवकनिका, समस्त लोकनितैं अधिक ऐश्वर्य परिवार विभूति होनेका चिंतवन करि आनन्द मानना, तथा आपके जैसे जैसैं धन सम्पदा बधै ताका आनन्द मानना सो परिग्रहानन्द है । अथवा अपने ग्रहमें सुवर्णका, कांशा, पीतल, लोहका, तामाका, पाषाणका, काष्ठका, चीनीका, काचका, कागदका माटीका, कागदका वस्त्रका जो जो कोऊ परिग्रह बधै. कोऊ दे जाय, वा किसी का रहि जाय, वा धनकरि खरीद होय आ जाय तिस परिग्रहकूं देख वा चिंतवनकरि हर्षका बधावना, आनन्द मानना, परिग्रह बधनेतैं आपकूं ऊंचा मानना सो समस्त परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है । तथा ऐसा चिंतवन करै जो कोऊका जमीन जायगां मेरे आ जाय वा इसकी जीविका मेरे आजाय तथा याकै आगैं कोऊ कार्य करनेलायक नाहीं है जो यो मरणकरि जाय तो मेरा ही याकी जीविकामें वा संपदामें अधिकार हो जाय, याकै बालक पुत्र असमर्थ स्त्रीनिका तिरस्कार करि मैं एकाकी निष्कण्टक सम्पदा भोगूं ऐसी अभिलाषा करना परिग्रहानन्द है । तथा परके राज्यसम्पदा धन जमीन जायगा तथा आजीविका तथा सुंदर परिग्रह सुन्दर स्त्री आभरण हस्ती घोटकादिक जवरीतैं खास लेनेकी बुद्धिका, शरीरका तथा सहाईनिका तथा कपट झूंठ उपाय पुरुषार्थ इत्यादिक बल पावनेका अपने बडा आनन्द मानना सो समस्त परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है । या रौद्रध्यान अनेक बार नरकमें प्राप्त करनेवाला तथा अनन्तबार तिर्यंचनिके घोर दुःखनिका तथा अनेक कुमानुषनिके भवनिमें घोर दारिद्र घोर रोगका उपजावनेवाला जानि याका दूरहीतैं त्याग करो । यो रौद्रध्यान कृष्णलेश्याका बलसहित

है पंचमगुणस्थानपर्यंत होय है परन्तु सम्यग्दृष्टी अव्रतीके तथा श्रावकव्रतके धारक गृहस्थनिके नरकादिकका कारण रौद्रध्यान नाहीं होय है। कोऊ कालमें ऐसा होय है जो अपना पुत्र पुत्रीका विवाह करनेका तथा अपना मकान रहनेका बनवावना तथा न्यायमार्गतैं जीविकामें लाभ होनेका कार्यनिका चिंतवनमें हू हिंसा होय है इनकूं पापका कारण खोटा जानि आत्मनिन्दा करै तो हू अपना आरम्भा कार्यमें कदाचित् किंचित् हर्ष होय ही है, अपने न्यायमार्गका प्रमाणीक परिग्रह प्राप्त भये हर्ष होय ही है. तथा अपना धनकूं चोरादिक नाहीं हरण करि सकै तातैं अपनी रक्षा वास्ते झूठ कपट करतो हू अन्य जीवनिका प्राण धनादिक हरनेमें प्रवृत्ति नाहीं करै है, अपनी रक्षाके अर्थ कपटको आडी ढाल करै है, अन्यका घातके अर्थि कपट झूठकी तरवार नाहीं करै है। तातैं श्रावकके नरकादिक कुगतिका कारण ऐसा रौद्रध्यानका भाव नाहीं होय है। रौद्रध्यानीके ये बाह्य लक्षण हैं स्वभावहीतैं क्रूरता, परकूं कठोर दण्ड देना निर्दयीपना, अति कपटीपना, समस्तके दोष ग्रहण करना इत्यादिक भाव होय हैं। अर बाह्य रक्तनेत्र करना भृकुटी चढावना भयानक आकृति, वचन में दुष्टता इत्यादिक बाह्य चिन्ह हैं क्षयोपशमभाव है, अंतर्मुहूर्त काल है, पाछैं अन्य अन्य हो जाय हैं। ऐसैं चार प्रकार आर्तध्यान च्यार प्रकार रौद्रध्यानकूं त्यागै तदि धर्मध्यान होय। इनकूं त्यागे विना धर्मध्यानकी वासना अनादितैं भई नाहीं, तातैं धर्मका अर्थीनिकूं दोऊ दुर्ध्यानका स्वरूप समझि अपन आत्मामें ऐसे आर्त रौद्रध्यानके ऐसे भाव कदाचित् मत होने दो।

अब धर्मध्यानका स्वरूप वर्णन करिये है—इहां यो धर्मध्यान है सो कोय सम्यग्दृष्टीके होऊ है, कोऊ विरला महान् पुरुष रागद्वेषमोहरूप पाशीकूं छेदि परम उद्यमी हुआ बडा यत्नतैं धर्मध्यानकूं कदाचित् प्राप्त होय है जैसैं सूता बैठा चालता खान पान करता विषयनिकूं भोगता कषायनिमें प्रवर्ततेके हू विना यत्न ही आर्त-रौद्रध्यान होय हैं तैसैं धर्मध्यान नाहीं होय है धर्मध्यानका अर्थी केतेक स्थान परिणामकूं बिगाडनेवाले हैं तिनका परिहार करै है जातैं स्थानके निमित्ततैं परिणाम शुभ अशुभ होय हैं तातैं परिणामकूं बिगाडनेवाले स्थानका दूरहीतैं परिहार करो। खोटे स्थानमें परिणाम खोटे हो जांय हैं जो दुष्ट हिंसक पापकर्म करनेवाले पापकर्मतैं जीविका करनेवाले तीव्र कषायी नास्तिक मति धर्मके द्रोही जहां तिष्ठते होंय तहां परिणाम क्लेशित हो जांय, तथा जहां दुष्ट राजा होय राजाके दुष्ट मन्त्री होय, पाखण्डी मिथ्यादृष्टी भेषधारीनिका अधिक होय, तहां धर्मध्यानमें परिणाम नाहीं लगैं हैं। बहुरि

जहां प्रजा ऊपरि परचक्रादिकका उपद्रव होय, दुर्भिक्ष मारी इत्यादिकरि प्रजा उपद्रवसहित होय, बहुरि जहां वेश्यानिका संचार होय व्यभिचारिणीनिका संकेत-स्थान होय, आचरणभ्रष्ट भेषधारीनिका स्थान होय, जहां रसकर्म रसायणके कर्म प्रवर्तते हौंय, मारण उच्चाटन विद्याके साधक हौंय, जहां हिंसादिक पापकर्मके उपदेशक कामशास्त्र तथा युद्धशास्त्र कपटी धूर्तनिकी प्ररूपी खोटीकथाके शास्त्रके प्ररूपणा करते हौंय, तथा जहां द्यूतक्रीडा करनेवाले मद्यपान करनेवाले व्यभिचारी भांड डूंम चारण भाटनिकरि युक्त हौंय, जहां चांडाल धीवर शिकारी वा कसायी इत्यादिक दुष्टनिका संचार होय, तथा दुष्ट तपस्विनी तथा स्त्रीनिका परिचार होय, नपुंसकनिका समागम होय, दीन याचक रोगी विकल अङ्गके धारक आंधे लूले बधिर पीडाके शब्द करनेवाले हौंय, जहां शिकार करनेवाले हिंसक जीव कलह कामके धारक पशु मनुष्यादिक तिष्ठते हौंय, जहां जीवनिनै बिल बांबी कण्टक तृण विषम पाषाण टीकरे हाड मांस रुधिर मल मूत्र पंचेन्द्रिय जीवनिके कलेवर कर्दमादिकरि दूषित स्थान होय, जहां दुर्गंध आवता होय कूकरा बिलाव श्याल कागला घूघू इत्यादिक दुष्टजीव हौंय और हू शुभपरिणामके बिगाडनेवाले ध्यानकूं नष्ट करनेवाले स्थान दूरहीतैं त्यागने योग्य हैं । जातैं खोटे स्थानके योगतैं अवश्य परिणाम बिगडैं हैं तातैं जो शुभध्यानके इच्छुक हौंय ते खोटे स्थाननिमें स्वप्नविषै हू वास मति करो । याहीतैं धर्मध्यानके अर्थ सुन्दर मनकूं प्यारा शीत उष्ण आताप वर्षा अतिपवनका बाधारहित डांस मांछर अन्य विकलत्रयादिकनिकी बाधा रहित शुद्ध भूमि तथा शिलातल तथा काष्ठका फलक होय तिन ऊपरि तिष्ठ करि शून्य गृह पुरातन बाग वनके जिनमन्दिर वा अपने गृहमें निराकुल एकान्त स्थान बाधा-रहित होय, रागद्वेषादिकके उपजावनेकरि रहित, कोलाहल शब्दरहित, नृत्य गीत वादित्रादि रहित होय, कलह विसंवादादि रहित, हिंसारहित स्थान हैं धर्मध्यानके इच्छुक होय निश्चल तिष्ठो । जातैं धर्मध्यानमें स्थान की शुद्धता आसनकी दृढता प्रधान कारण है। जाका आसन दोय प्रहार हू दृढ नाहीं होय ताकै सेवा कृषि वाणिज्यादिक ही बिगडि जाय तो धर्मध्यान आसनकी दृढता विना कैसैं बनै । वहुरि तीन जे उत्तमसंहनन तिनके धारकनिकै ही ध्यानमें दृढता होय है जिनका वज्रमयसंहनन है अर महाबल प्राक्रमके धारक हैं अर जे देवमनुष्यनिकै घोर उपसर्गतैं चलायमान नाहीं होय जाका आसन मन दृढ होय सो तो जैसा स्थान वा आसन होय तिसहीतैं ध्यान करि सकै है। अर जे हीन संहननके धारक हैं तिनकूं तो स्थानकी शुद्धता अर आसनकी शुद्धता अवश्य देखि धर्मध्यानमें प्रवर्तन करना श्रेष्ठ है । जिनका चित्त संसार देह भोगनितैं विरक्त होय, चित्तमें विक्षिप्तता नाहीं होय, संशयरहित आत्मज्ञानी अध्यात्मरसमें भीजि निश्चल होय, ताकै स्थान का हू नियम नाहीं है । जे चारित्र-ज्ञान-संयुक्त हैं, अर जितेन्द्रिय हैं, ते

अनेक अवस्थातैं ध्यान की सिद्धिकूं प्राप्त भये हैं। धर्मध्यानीके ऐसा चिंतवन होय है अहो बडा अनर्थ है जो मैं अनंत गुणनिका धारक हूं संसाररूप वनमें अनादिकालका कर्मरूपी वैरीनिकरि समस्तपनातैं ठिग्या गया हूं, अहो मैं अज्ञानभावतैं कर्मके उदयतैं भये रागद्वेषमोह तिनकूं अपना स्वरूप जानि घोर दुःखरूप संसारमें परिभ्रमण कीया, अब मेरे कोऊ कर्मके उपशमतैं परम उपकारक जिनेन्द्रका परमागमके उपदेशके लाभतैं रागरूप ज्वर नष्ट भया, अर मोहनिद्राके दूर होनेतैं स्वभावका अर परभावका जाणपणाका लाभ भया है अब इस अवसरमें शुद्धध्यानरूप खड्ग करि जो कर्म नाश करल्यूं तो स्वाधनिताकूं पाय दुःखनिका पात्र नाहीं होऊं। जो अज्ञानरूप अन्धकारकूं आत्मज्ञानरूप सूर्यके उद्योतकरि अब हू दूर नाहीं करूं तो अन्य कौन पर्यायमें दूर करूंगा। समस्त जगतके देखनेका एक अद्वितीय नेत्र मेरा आत्मा है ताकूं हू अब अविद्यारूप पिशाचके प्रेरे विषय कषाय मुद्रित करैं हैं। ये इन्द्रियविषय अर कषाय मोकूं हित–अहितके अवलोकनरहित करनेवाले हैं मैं इन ठगनिके वशीभूत हुवा भूलि गया हूं। अहो ये प्राप्त होते रमणीक अर अन्तमें अति नीरस ऐसे पंचेन्द्रियनिके विषयनितैं परम ज्योतिस्वरूप जगतमें महान् परमात्मस्वरूप आत्मा हू ठिग्यो गयो है। मैं अर परमात्मा दोऊं ज्ञानलोचन हैं अर परमात्म स्वरूपकी प्राप्तिके अर्थि मेरे स्वरूपके जाननेकी इच्छा करूं, परमात्माके तो आत्मगुण प्रगट है अर मेरे कर्मनिकरि दबि रहै हैं हमारे अर परमात्माके गुणनिकरि भेद नाहीं है, शक्ति व्यक्तिकृत भेद है। अर ये कर्मजनित दाह है ते जेतक मैं ज्ञानसमुद्रमें गरक नाहीं होहूं तितने मेरे संताप दुःख करैं हैं। बहुरि नारक तिर्यंच मनुष्य देव ये कर्मके उदयजनित पर्याय मेरा स्वरूप नाहीं है, मैं सिद्धस्वरूप निर्विकार स्वाधीन सुखरूप हूं, मैं अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्तसुखरूप हूं, सो अब मोहरूप विषके वृक्षकूं नाहीं उपाडूं कहा? अब मैं मेरा सामर्थ्यकूं ग्रहण करि अपना स्वरूपमें अचल होय सकल वांछारहित हुवो मोहरूप विषवृक्षकूं उपाडस्यूं। अब मोकूं मेरा स्वरूप ही निश्चय करना जातैं मेरे मांहि फंसी हुई अनादिकी मोहरूप पासी है ताके छेदनेका उपाय करूं जो अपना स्वरूपकूं ही नाहीं जानै सो परमात्माकूं कैसैं जानै? तातैं ज्ञानीनिकूं प्रथम अपना स्वरूपहीका निश्चय करना योग्य है जो अपना स्वरूपकूं ही नाहीं जानैगा ताकी अपने स्वरूपमें स्थिति कैसैं होयगी, अर अनादिका पुद्गलमें एक होय रह्या है ऐसा आत्माकूं भिन्न कैसैं करूंगा, अर देहतैं आत्माका भेदविज्ञान हुवा विना आत्माका लाभ कैसैं होयगा, आत्माका लाभ विना अनंतज्ञानादिक आत्मगुणनिका जानना हू नाहीं होय तदि आत्मलाभकी कहा कथा? तातैं मोक्षाभिलाषीनिकूं समस्त पुद्गलकी पर्यायनिकरि भिन्न एक आत्मस्वरूपका ही निश्चय करना श्रेष्ठ है।

इहां आत्मा तीन प्रकार करि तिष्ठै है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा । तिनमें जाकै बाह्य शरीरादिक पुद्गलकी पर्यायनिमें आत्मबुद्धि है सो बहिरात्मा है । जाकी चेतना मोहनिद्राकरि अस्त हो गई, पर्यायहीकूं अपना स्वरूप जानै है, इंद्रियद्वारनिकरि निरन्तर प्रवर्तन करै है, अपना स्वरूपकी सत्यार्थ पहिचान जाकै नाहीं है देहहीकूं आतमा मानै है, देवपर्यायमें आपकूं देव, नरकपर्यायमें आपकूं नारकी, तिर्यंच पर्यायमें आपकूं तिर्यंच, मनुष्यपर्यायमें आपकूं मनुष्य जाणि पर्यायके व्यवहारमें तन्मय होय रह्या है पर्याय तो कर्मकृत पुद्गलमय प्रत्यक्ष ज्ञानरूप आत्मातैं भिन्न दीखे है तो हू कर्मजनित उदयमें आपा धारि पर्यायमें तन्मय हो रह्या है । मैं गोरा हूं, मैं सांवला हूं, मैं अन्य वर्ण हूं, मैं राजा हूं, मैं सेवक हूं, मैं बलवान हूं, मैं निर्बल हूं, मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्री हूं, मैं वैश्य हूं, मैं शूद्र हूं, मैं मारनेवाला हूं, जिवावनेवाला हूं, धनाढ्य हूं, दातार हूं, त्यागी हूं, गृहस्थी हूं, मुनि हूं, तपस्वी हूं, दीन हूं, अनाथ हूं, समर्थ हूं, असमर्थ हूं, कर्ता हूं, अकर्ता हूं, बलवान हूं, कुरूप हूं, स्त्री हूं, पुरुष हूं, नपुंसक हूं, पण्डित हूं, मूर्ख हूं, इत्यदिक कर्मके उदयजनित पर पुद्गलनिकी विनाशीक पर्यायनिमें आत्मबुद्धि जाकै होय सो बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है । जो शरीरमें आत्मबुद्धि है सो इहां हू शरीरका सम्बन्धी जो स्त्री पुत्र मित्र शत्रु इत्यादिक तिनमें राग द्वेष मोह क्लेशादि उपजाय आर्त रौद्रपरिणामतैं मरण कराय संसारमें अनन्तकाल जन्म मरण करावै है । तथा पुद्गलकी पर्यायमें आत्मबुद्धि है सो पुद्गलमें जडरूप एकेन्द्रियनिमें अनन्त काल भ्रमण करावै है तातैं अब बहिरात्मबुद्धिकूं छांडि अन्तरात्मपना अवलम्बनकरि परमात्मपना पावनेमें यत्न करो । जे जे या जगतमें रूप देखनेमें आवैं हैं ते ते समस्त अपने आत्माके स्वभातवैं भिन्न हैं, परद्रव्य हैं, जड हैं, अचेतन हैं, मैं ज्ञानस्वरूप हूं, इन्द्रियनिके ग्रहणमें नाहीं आऊं, अपना अनुभव करि साक्षात् प्रत्यक्ष हूं, अब कौनसूं वचनालाप करूं अर अन्य जननिकरि मैं समझावने योग्य हूं तथा अन्य जननिकूं मैं सम्बोधन करूं विकल्प हूं भ्रम है जातैं अपने अर परके आत्माकूं जानै विना कौनकूं समझावै अर कौन समझै जातैं मैं तो समस्त विकल्परहित ज्ञाता हूं जो अपना स्वरूपकूं जो आपरूप ग्रहण करै अर आपतैं अन्यकूं आत्मरूप ग्रहण नाहीं करै ऐसा निर्विकल्प विज्ञानमय केवल स्वसंवेदनगोचर हूं । अंतरात्मा विचारै है जैसैं सांकलमें सर्पकी बुद्धि हो जाय तदि भयभीत होय मन्या इत्यादिक भयतैं भागवो पडवो इत्यादिक क्रियातैं हू भ्रम होय है तैसैं हमारे हू पूर्वकालमें शरीरादिकमें अपनी आत्माकी बुद्धिकरि शरीरादिकका नाशमें अपना नाश जाणि बहुत विपरीत क्रियामें प्रवर्तन भया । अर जैसैं सांकलमें सर्पका भ्रम नष्ट भया सांकलकूं सांकल जानै तदि भ्रमरूप क्रियाका अभाव होय तैसैं मेरे शरीरमें आत्माका भ्रम नष्ट होतैं अब

आचरणमें हू भ्रमका अभाव भया, जाका ज्ञान विना मैं सूतो अर जाका ज्ञान होते जागृत भया, सो चैतन्यमय मैं हूं इस ज्ञानज्योतिमय अपने स्वरूपकूं देखता जो मैं ताकै रागद्वेष नष्ट हुआ है तिसका कारणकरि मेरे कोऊ वैरी नाहीं, अर कोऊ प्रिय नाहीं । वैरी मित्र तो ज्ञानमें रागद्वेष विकारतैं दीखैं हैं । जो मेरा ज्ञायक आत्मस्वरूपकूं नाहीं जानै सो मेरे वैरी, अर प्रिय नाहीं हैं । अर जो साक्षात् मेरा स्वरूप देख्या सो हू मेरा वैरी अर मित्र नाहीं है । अब मेरा स्वरूपका ज्ञाता जो मैं ताकूं पूर्वला पूर्वला समस्त आचरण स्वप्नवत् इन्द्रजालवत् भासै है । अहो ज्ञानी पुरुषनिका अलौकिक वृतांत कौन वर्णन करि सकै । जहां अज्ञानी प्रवर्तनकरि कर्मका बन्ध करै हैं तहां ही ज्ञानी प्रवर्तनकरि कर्मबन्धनितैं छूटै हैं जगतके पदार्थ तो समस्त जैसैं हैं तैसैं ही हैं और प्रकार नाहीं, परन्तु अज्ञानी विपर्यरूप संकल्प करि रागी द्वेषी मोही हुआ घोर बन्धकूं प्राप्त होय है ज्ञानी पदार्थनिका सत्यस्वरूप जानि परमसाम्य वीतरागी हुवा प्रवर्तता निर्जरा करै है अर जो मैं पूर्वं दुःखनिकरि व्याप्त संसारवनमें चिरकाल क्लेशित भया हूं सो केवल अपाना अर परका भेदविज्ञान विना भया हू सो समस्त पदार्थनिका प्रकाश करनेवाला भेद विज्ञानरूप दीपककूं प्रज्वलित होते हू यो मूढ लोक संसाररूप कर्दममें क्यों डूबे हैं । यो अपना स्वरूप है सो आपके मांही आप करकैं प्रगट अनुभवमें आवै है याकूं छांडि अन्यमें आपके जाननेकूं वृथा खेद करै है । अज्ञानीके इहां जो जो परवस्तु प्रीतिके अर्थि हैं सो समस्त आपदाका स्थान हैं, अर जो आनन्दका स्थान हैं तातैं भय करै है, अज्ञानभावका कोऊ ऐसा ही प्रभाव है । बन्धका कारण तो पदार्थके ज्ञानमें भ्रम है अर भ्रमरहित भाव है सो मोक्षका कारण है । जो बन्ध है सो परका सम्बन्धतैं है अर परद्रव्यतैं भेदका अभ्यास करि मोक्ष है, जो इन्द्रियनिकूं विषयनितैं रोकि क्षणमात्र हू अपने आत्मामें रोकै है सो परमेष्ठीका स्वरूपकूं स्मरण करै है, जो सिद्धात्मा है—सो मैं हूं जो मैं हूं सो परमेश्वर है यातैं मेरा रूपतैं अन्य मेरे उपासना करने योग्य नाहीं, अर मैं कोऊ अन्यके उपासना करनेयोग्य नाहीं, जो भ्रमरहित होय देहतैं भिन्न आत्माकूं नाहीं जानै है सो तीव्र तप करतो हू कर्मके बन्धनतैं नाहीं छूटै है अर जो भेदविज्ञानरूप अमृतकरि आनन्दित है सो वहुत तप करतो हू शरीरतैं उपजे क्लेशनिकरि खेदनै नाहीं प्राप्त होय है जाको चित्त रागद्वेषादिक मलरहित निर्मल है सो हा अपने स्वरूपकूं सम्यक् जानै है अन्य कोऊ हेतुकरि जानै नाहीं । अपने चितकूं विकल्परहित करना है सो ही परम तत्त्व है अर अनेक विकल्पनि करि उपद्रित करना है सो अनर्थ

है तातैं सम्यक् तत्वकी सिद्धिके अर्थि चित्तकूं विकल्परहित करो। जो अज्ञानकरि उपद्रित चित्त है सो अपने स्वरूपतैं छूटि जाय है, अर भेदविज्ञान--वासितचित्त है सो परमात्मतत्त्वकूं साक्षात् देखै है। जो उत्तमपुरुषनिका मन मोह कर्मके वशतैं कदाचित् रागादिककरि तिरस्कृत होजाय तो आत्मतत्त्वके चिंतवनमें युक्तकरि रागादिकनिको तिरस्कार करै अज्ञानी आत्मा जिस कायमें रागी होरह्या है तिस कायतैं अपनी बुद्धिके बल करि उलटो फेर्‍यो हुवो चिदानन्दमय निज स्वरूपमें युक्त कीयो हुयो कायमें प्रीति छांडै है। जो अपना आत्मज्ञानके भ्रमतैं उपज्या दुःख सो आत्मज्ञानकरि ही नष्ट होय है आत्मज्ञानरहित संसारी जीवके परिभ्रमण बहुत तपकरि नाहीं छेद्या जाय है बहिरात्मा है सो आपके रूप आयु बल धनादिकनिकी संपदा वांछै है, अर अन्तरात्मा है सो आयु बल वित्तादिकनितैं अपना छूटना चाहै है। अज्ञानी है सो पुद्गलादिकमें आपकी बुद्धिकरि आपने बांधै है, अर अन्तरात्मा है सो अपने स्वरूपमें आत्मबुद्धि करि बंधनेते छूटै है। अज्ञानी है सो तीन लिंग जे पुरुष स्त्री नपुंसकरूप शरीरकूं आत्मा जानै, अर सम्यग्ज्ञानी है सो आपकूं तीन लिंगका संगरहित जानै है। बहुत कालतैं अभ्यास किया अर आछी तरह निर्णय किया हू विज्ञान अनादिकालका विभ्रमतैं शीघ्र ही छूटि जाय है। जो यो मोकूं दीखै है सो अचेतन है अर जो चेतन है सो मेरे देखनेमें आवै नाहीं तातैं अचेतन पदार्थनिमें रागभाव करना वृथा है यातैं मोकूं स्वानुभव–प्रत्यक्ष आत्मा ही का आश्रय करना। अज्ञानी है सो बाह्य पदार्थनिमे त्याग ग्रहण करै है अर ज्ञानी है सो अंतरंगमें रागादिक पर भावनिकूं त्यागि आत्मभावकूं ग्रहण करै है। ज्ञानी है सो वचनतैं अर कायतैं भिन्न करके आत्माको अभ्यास मन करिकैं करै है, अर अन्य विषयभोगनिका कर्म है सो कोऊ वचनतैं करै है कोऊ कायतैं करै है, सांसारिक कार्यनिमें मन नाहीं लगावै है, अज्ञानीके तो विश्वासको अर आनन्दको स्थान यो जगत् है अर ज्ञानीके इस जगत्में कहां विश्वास अर कहां आनन्द, अपना स्वभावमें ही आनन्द अर विश्वास है। ज्ञानी है सो तो आत्मज्ञान विना अन्य कार्यकूं हृदयमें धारण नाहीं करै है, अर लौकिक कार्यके वशतैं जो कुछ करै है सो अनादररूप भया वचनतैं करै वा कायतैं करै, मन नाहीं लगावै है। जो ये इंद्रिय विषयनिका रूप है ते मेरा रूपतैं विलक्षण है, मेरा रूप तो आनन्दकरि परिपूर्ण ज्ञान ज्योतिमय है, ज्ञानीके तो जाकरि भ्रान्ति दूर होय अपनी स्थिति अपने आत्मरूपमें हो जाय सो ही जानने योग्य है सो ही कहने योग्य है, सो ही श्रवण करने योग्य है, सो ही चिंतवन करनेयोग्य है, इन इन्द्रियनिके विषयनिमें इस आत्माका हित कोऊ प्रकार हू नाही है तो हू वहिरात्मा अज्ञानी इन विषयनिमें ही प्रीति करै है, जो कहा हुआ आत्मतत्वकूं नाहीं कह्याकी–ज्यों अंगीकार करै है तिस अज्ञानीके प्रति कहनेका उद्यम वृथा

है। अज्ञानीके आत्माका प्रकाश नाहीं, तातैं परद्रव्यनिमें ही संतुष्ट होय रह्या है अर ज्ञानी है सो वाहिर वस्तुनिमें भ्रमरहित अपना स्वरूपमें ही संतुष्ट है, जितने मन वचन कायकूं अपना स्वरूप मानै है तितने संसार-परिभ्रमण ही है, देहादिकनितैं भेदविज्ञानतैं संसारका अभाव है। वस्त्र जीर्ण होय वा रक्त होय वा श्वेत होय वा दृढ होय तो आत्मा जीर्ण रक्तादिरूप नाहीं होय, तैसें ही देहकूं जीर्णादिक होते आत्मा जीर्णादिक नाहीं होय है, अज्ञानी है सो प्रत्यक्ष इस शरीरकूं बिछुरता मिलता परिमाणूनिका समूह रचनारूप देखे है तोहू याकूं आत्मा जानै है अनादिका ऐसा भ्रम है। ये दृढ स्थूल दीर्घ शीर्ण जीर्ण हलका भारी ए धर्म पुद्गलके हैं इनि पुद्लनिके धर्मकरि संबंधकू नाहीं प्राप्त होता आत्मा है सो केवलज्ञानस्वरूप है, इहां संसारमें मनुष्यनिका ससर्ग होय तदि वचनकी प्रवृत्ति होय, वचन प्रवर्तै तदि मन चलायमान होय, मन चलै तदि भ्रम होय ये उत्तरोत्तर कारण हैं, तातैं ज्ञानी जन लोकनिका संसर्ग ही छांडे है। अज्ञानी वहिरात्मा हैं सो अपना निवास नगरमें ग्राममें पर्वत वनादिकनिमें जानै है, अर ज्ञानी तो अंतरात्मा है सो अपना निवास अपने मांहि ही भ्रमरहित मानै है शरीरमें आत्माकूं जानना सो देह धारण करनेकी परिपाटिका कारण है, अर अपने स्वरूपमें आपका जानना है सो अन्य शरीरके छूटनेका कारण है। यो आत्मा आप ही अपनै मोक्ष करै है अर आप ही विपर्ययरूप भया अपने संसार करै है तातैं अपना गुरु हू आप ही है अर वैरी हू आप ही है अन्य तो बाह्य निमित्तमात्र है। अंतरात्मा जो है सो आत्मातैं कायकूं भिन्न जानि अर कायतैं आत्माकूं भिन्न जानि इस कायकूं मलका भऱ्या वस्त्र ज्यों निःशंक त्यागै है, शरीरतैं भिन्न आत्माकूं जानै हैं श्रवण करै है मुखतैं कहै तो हू भेदविज्ञानके अभ्यासमें लीन नाहीं होय तितने शरीरकी ममतातैं नाहीं छूटै है। अपने आत्माकूं शरीरतैं भिन्न ऐसैं भावो जैसैं फेरि देहकरि संगम स्वप्नमेंहू नाहीं होय, स्वप्नमें हू देहतैं भिन्न ही आत्माका अनुभव होय पुरुषनिके जो व्रतनिका अर अव्रतका व्यवहार है सो शुभ अशुभ बंधका कारण है। अर मोक्ष है सो बंधका अभाव रूप हैं, यातैं व्रतादिक क्रिया है ते हू पूर्व अवस्थामें है प्रथम असंयम भावकूं त्यागि संयममें लीन होना। अर जब शुद्धात्मभाव परम वीतरागरूपमें अवस्थित होजाय तब संयमभाव कहां रहै? ये जाति अर मुनि श्रावकका लिंग ये भी दोऊ शरीरके आश्रय वर्तै हैं, अर शरीरात्मक ही संसार है तातैं ज्ञानी हैं सो जाति अर लिङ्गमें हू अपना आप त्यागै है। जाकै देहमें आत्मबुद्धि है सो पुरुष जागतो हू पढतो हू संसारतै नाहीं छूटै। अर अपने आत्मामें आपका निश्चय जाकै है सो शयन करता वा असावधान हू संसारतैं छूटै है। ज्ञानी आपकूं सिद्धस्वरूप आराधना करि सिद्धपनाकूं प्राप्त होय है जैसैं बत्ती आप

दीपकसूं युक्त होय आप दीपक हो जाय है यो आत्मा है सो आपका आत्माका आराधना करि परमात्मा होजाय है । जैसैं वृक्ष आपतैं घसिकरि अग्नि होय है तैसैं आत्मा हू परमात्मा भावतैं जुडिकरि सिद्ध हो जाय है। जैसैं कोऊ स्वप्नमें अपना नाश देख्या तो आपका नाश नाहीं भया, तैसैं जागते हू अपना नाश भ्रमतैं मानै है किन्तु आत्माका नाश नाहीं है । पर्याय उपजी सो विनस्यां विना रहै नाहीं । आत्मस्वरूपका अनुभव विना शरीरकूं आत्मारूप अनुभव करता अनेक शास्त्र पढता हू संसारतैं नाहीं छूटैगा अर अपने स्वरूपमें अपना अनुभव करता शास्त्रका अभ्यास रहित हू छूटि जायगा । अर भो ज्ञानी हो, जो यो सुख अवस्थाकरि भया हुवा ज्ञान दुःखं आयां छूटि जायगा, तातैं दुःख अवस्थामें रोग परीषहादिक अवस्थामें हू आत्मज्ञानका दृढ अभ्यास करो, इत्यादि चिंतवनके प्रभावतैं बाह्य शरीरादिकनिमें आत्मबुद्धिरूप जो बहिरात्मबुद्धि ताहि छांडि अर अपने अन्तर कहिये आत्मरूपमें आपारूप अन्तरात्मा होय करि परमात्मारूप होनेमें यत्न करो । परमात्मा दोय प्रकार है जो घातिया कर्मनिका नाश करि अनंत ज्ञान अनंत वीर्य अनंत सुखरूप स्वाधीन, अठारह दोषनिकरि रहित इन्द्र धरणेंद्र नरेंद्रांकरि वंद्यमान, अनेक अतिशयांकरि सहित, सकल जीवनिका उपकारक, दिव्यध्वनिकरि सहित, देवाधिदेव परम औदारिक देहमें तिष्ठता अरहंत देव हैं ते सकल परमात्मा है । कल नाम शरीरका जो जो देहसहित आयुका अन्त ताईं परमोपदेश देता ऐसा अरहन्त हैं सो सकलपरमात्मा है। अर जो अष्टकर्मरहित होय सिद्धपरमेष्ठी भये , तिनके कल जो देह सो नष्ट होगया यातैं भगवान् निकलपरमात्मा हैं । सो परमातमपद इस मनुष्यपर्यायमें रत्नत्रयका आराधनकरि कोऊकै प्राप्त होय है, याका बीज बहिरात्मापना छांडि अन्तरात्मपनामें लीन होना है वहिरात्माकै मिथ्यात्वगुणस्थान ही होय है अर अन्तरात्मा जो हैं सो चतुर्थ गुणस्थानकूं आदि लेय बारमा गुणस्थानपर्यंत हैं । अर परमात्मा जो है सो देहसहित तो तेरवें चौदहवें गुणस्थानमें जानना, अर देहरहित परमात्मा सिद्धभगवान् हैं सो गुणस्थानकरि रहित हैं, जातैं गुणस्थान तो मोह अर योग की अपक्षातैं हैं भगवान् सिद्धनिके मोह कर्म भी नाहीं अर वचन कायके योगनिका हू अभाव भया, तातैं गुणस्थानसंज्ञा रहित हैं ।

अब धर्मध्यानका वर्णन करै हैं—यो धर्मध्यान है सो सम्यग्दृष्टी विना मिथ्यादृष्टीकै नाहीं होय है ऐसा नियम है तातैं चतुर्थ गुणस्थानकूं आदि लेय सप्तम गुणस्थान-पर्यंत धर्मध्यान होय है । सो धर्मध्यान परमागममें च्यार प्रकार कहा है—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय । तिनमें आज्ञाविचय धर्मध्यानका संक्षेप कहिये है—जो भगवान् सर्वज्ञ वीतराग कह्या आगमकी प्रमाणतातैं पदार्थनिका निश्चय करना

सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जहां उपदेश दाताका अभाव होय, अर कर्मके उदयतैं अपनी बुद्धि मन्द होय, अर पदार्थनिके सूक्ष्मपना होय, अर हेतु दृष्टान्तका अभाव होय, तहां सर्वज्ञकरि कह्या आगमकूं प्रमाणकरि ऐसा चिंतवन करै--जो यो ही तत्व है, या प्रकार ही यो तत्व है और नाहीं, अन्य प्रकार नाहीं, सर्वज्ञ वीतराग जिन अन्यथा कहनेवाला नाहीं, ऐसैं गहन पदार्थनिमें श्रद्धानमें अर्थका निश्चय करना सो आज्ञाविचय है अथवा सम्यग्दर्शनकरि परिणामनिकी विशुद्धिताका धारक अर अपने अर पर मतके पदार्थनिका निर्णयका जाननेवाला ऐसा सम्यग्ज्ञानी सर्वज्ञकरि प्ररूपे सूक्ष्म पदार्थनितैं ग्रहणकरि तथा पंच अस्तिकायादि पदार्थनिमें निश्चय करि अन्य भव्यनिकूं शिक्षा करै, तथा कथनका व्याख्यान का मार्गमें श्रुतज्ञानका सामर्थ्यतैं अपने सिद्धान्तमें विरोध नाहीं आवै तैसैं अर अन्य एकांतीनिके प्ररूपे मिथ्या प्रमाण हेतु नय, तिनका खडण्न करनेमें समर्थ ऐसे अनेकान्तका ग्रहण करनेमें समर्थ होय, श्रोतानिकूं पदार्थका स्वरूप ग्रहण करानेमें समर्थन करि श्रुतका व्याख्यान करै। अर तिनका समर्थनके अर्थ तर्क नय प्रमाणकूं युक्त करनेमें तत्पर ऐसा चिंतवन करनेमें लीनपना सो सर्वज्ञकी आज्ञा प्रकाशनका अर्थीपनातैं आज्ञाविचय धर्मध्यान है। तथा जो जिनसिद्धांतमें प्रसिद्ध ऐसा सर्वज्ञकी आज्ञातैं वस्तुका स्वरूप चिंतवन करै सो आज्ञाविचय है, जगतमें जो वस्तु है सो अनंत गुण अनंत पर्यायस्वरूप है याहीतैं उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप है, त्रिकालवर्ती है यातैं नित्य है। ऐसी वस्तुका कहनेवाला कोऊ आगमका सूक्ष्म वचन अपनी स्थूल बुद्धिकरि ग्रहणमें नाहीं आवै, अर जो हेतुकरि बाधाकूं भी नाहीं प्राप्त होय, तहां 'सर्वज्ञकी आज्ञा ऐसैं है सर्वज्ञ वीतराग जिन अन्यथा नाहीं कहैं' ऐसैं प्रमाणरूप चिंतवन, सो आज्ञाविचय है। अथवा जिनेन्द्रका परम आगमका पठन, श्रवण, चिंतवन अनुभवन, सो समस्त आज्ञाविचय है। जो श्रुत सर्वज्ञ वीतरागकरि कह्या हुवा, जाकै श्रवणतैं रागी द्वेषी शस्त्रधारी देवनिकी उपासनातैं पराङ्मुखता हो जाय, अर परिग्रहधारी विषय कषायनिके धारक अनेक भेषधारीनिमें गुरुबुद्धि पूज्यपनाकी बुद्धि नाहीं उपजै, अर हिंसामें प्रवृत्तिरूप धर्म कदाचित् नाहीं दीख, अर जाके श्रवण पठन चिंतवनतैं विषय कषाय देह परिग्रहादिकनितैं पराङ्मुखता उपजि आवै, दयाधर्मकी बुद्धि होय जाय, तिस आगमका शब्द अर्थका चिंतवन करना सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है। आगम श्रीसर्वज्ञवीतरागका उपदेश है, रत्नत्रय स्वरूपकूं पुष्ट करनेवाला है, अनादिनिधन, समस्त जीवनिके परम शरण है, अनन्तधर्मके धारक पदार्थनिका प्रकाश करनेवाला है, प्रमाण नय निक्षेपनिकरि पदार्थनिका स्पष्ट उद्योत करनेवाला है स्याद्वादरूप याका बीज है

याका शरण नाहीं पाय करकैं जवि अनादिकालतैं चतुर्गतिमें परिभ्रमण किया है, सप्त सत्व नव पदार्थ पंचास्तिकायका स्वरूप प्रकाशनेवाला है, द्रव्य गुण पर्यायनिका स्वरूप दिखानेवाला है, गुणस्थान मार्गणास्थान योनि कुलकोडिनि करि जीवका प्ररूपण करनेवाला है, आस्रव बंध उदय उदीरणा सत्ताका प्ररूपण करनेवाला है, समस्त लोक अलोकका प्रकाशक है, अनेक शब्दनिकी रचनारूप अंगप्रकीर्णकादिक रत्ननिकरि रत्नाकरवत् गम्भीर है, एकांत विद्याके मदकरि उन्मत्त मिथ्यादृष्टिनिका मद नष्ट करनेवाला है, मिथ्यात्वरूप अन्धकारके दूर करनेकूं सूर्य है, रागरूप सर्पका विष उतारनेकूं गारुडी विद्या है, समस्त अंतरंग पापमल धोवनेकूं पवित्र तीर्थ है, समस्त वस्तुकी परीक्षा करनेकूं समर्थ है, योगीश्वरनिका तीजा नेत्र है, संतापरूप ज्वरका घातक है, इन्द्र अहमिंद्र गणधर मुनीन्द्रनिकरि सेवित ज्ञानीकूं परम अक्षयनिधान आशा वांछा भयका नाश करनेवाला आत्मीक सुखरूप अमृतके प्रगट करनेकूं चन्द्रमाका उदय है । अक्षय अविनाशी जीवका निज धन है, मुक्तिकूं प्रयाण करतेकै प्रधान गमनका ढोल है । विनय न्याय इन्द्रिय-दमन, शील संयम संतोषादि गुणनिकूं उत्पन्न करनेवाला है । ऐसा परमागम का चिंतवन ध्यान अनुभवन सो आज्ञाविचय धमर्ध्यान है ऐसैं आज्ञाविचय धर्मध्यान कह्या ।

अब अपायविचय धर्मध्यानका ऐसा स्वरूप जानना—तहां एक तो मिथ्यात्वका योगतैं सन्मार्गका अपाय कहिये नाशका चिंतवन करना जो—सन्मार्ग कहिये मोक्षमार्ग ताका अभाव करनेवाला मिथ्यात्व ही है ऐसा चिंतवन सो अपायविचय है । मिथ्यादर्शनकरि जिनके ज्ञाननेत्र ढकि रहे हैं, तिनका आचार विनयादिक समस्त कार्य हैं ते संसारके वधावनेके अर्थि हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टीकै अन्धेकी ज्यों विपरीत ज्ञानकी बहुलता है; यातैं जैसैं बलवान हू जन्मका अन्धा भला मार्गतैं छूटे हुवे सत्यमार्गका उपदेश करनेवालाकरि नाहीं चलाया हुवा नीचा ऊंचा पर्वत अर विषमपाषाण अर कठोर ठूंठ झाड खाडा नाला कंटकनिकरि व्याप्त विषम पृथ्वीमें पड्या हुवा हलन चलन क्रिया करता हू उपदेश दाता विना मार्गमें गमन करनेकूं नाहीं समर्थ होय है, तैसैं सर्वज्ञका कह्या मार्गतैं पराङ्मुख जीव मोक्षका अर्थि है तो हू सन्मार्गका ज्ञान विना संसारमें अतिदूर ही परिभ्रमण करै है ऐसैं सन्मार्गका नाश चिंतवन करना अपायविचय धर्मध्यान है । अथवा कुमार्गके प्रवर्तनका अभाव तथा नाशका चिंतवन करना सो हू अपायविचय है । अहो ये विपरीत ज्ञान श्रद्धानके धारक मिथ्यादृष्टी कुवादीनिकरि उपदेश्या कुमार्गतैं ये प्राणी कैसैं उवरैं, अथवा इन प्राणीनिकै कुदेव कुधर्म कुगुरुनिका सेवनितैं कैसैं निरालापणों होय, ऐसा चिंतवन करना सो अपायविचय है । अथवा पापका कारणमें कायका प्रवर्तन वचनका प्रवर्तन मनमें

भावना का अभावका चिंतवन सो अपायविचय धर्मध्यान है, अथवा जामें उपायसहित कर्मनिका नाश चिंतवन करिये ताकूं ज्ञानीजन अपायविचय कहैं हैं। श्रीसर्वज्ञ भगवानकरि कह्या जो रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग ताहि नाहीं प्राप्त होय करकैं संसाररूप वनविषैं प्राणी चिरकालतैं नष्ट हो रहै हैं, जिनेश्वरका उपदेशरूप जिहाज नाहीं प्राप्त होय करके बापडे प्राणी संसारसमुद्रविषैं निरन्तर डावक डूबा होता दुःखनिकूं भोगे है। महान कष्टरूप अग्निकरि दग्ध होता संसाररूप वनविषै भ्रमण करता हू मैं सम्यग्ज्ञानरूप समुद्रका तटकूं प्राप्त भया हूं जो अब सम्यग्ज्ञानका शिखरकूं प्राप्त होय यानैं चिगूंगा तो संसाररूप अन्धकूपके मध्य मेरा पतन कौन रोकेगा? अनादिके भ्रमतैं उपजै मिथ्यात्व अविरत कषायादिक कर्मबन्धके कारण मेरे दुर्निवार हैं, यद्यपि मैं तो शुद्ध हूं दर्शन ज्ञानमय निर्मल नेत्रका धारक सिद्धस्वरूप हूं तो हू तिन कर्मनिकरि खंडन किया मैं चिरकालतैं संसाररूप कर्दममें खेद–खिन्न भया हू, एक तरफ तो नानाप्रकार कर्मका सैन्य है, अर एक तरफ मैं एकाकी आत्मा हूं ऐसा वैरीनिका संकटमें मोकूं सावधान प्रमादरहित तिष्ठवो योग्य है। जो अब प्रमादी होय रहूंगा तो कर्म मेरा ज्ञानदर्शन स्वरूपकूं घातकरि एकेन्द्रियादिरूप पर्यायमें जड अचेतन करि देगा। अब प्रबल ध्यानरूप अग्निकरि मेरे आत्मातैं कर्ममलकूं नष्टकरि पाषाणमेंतैं सुवर्णकी ज्यों शुद्ध कब करूंगा, मेरे प्राप्त होनेयोग्य सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्ररूप मेरा स्वभाव ही है अन्य परभाव पर ही हैं, स्वयंमेव मोतैं भिन्न हैं मैं कौन स्वरूप हूं, मेरे कौन कारणतैं कर्मका आस्रव होय है? कैसैं कर्म बंधै है। कैसैं कर्म निर्जरैगा? अर मुक्ति तो कहा है? अर मुक्तिका स्वरूप कहा है, अर मुक्तिका बाधारहित निराकुलतालक्षण ऐसा स्वभावतैं उपज्या—सुख मेरे कौन उपायकरि होय? मेरा स्वरूपका ज्ञान हांतैं सकल भुवनत्रयका ज्ञान होय है। जातैं सर्वज्ञ सर्वदर्शी मेरा स्वभाव ही कर्ममलकूं दूर भये मेरे मांहि प्रगट होय है। जेते-जेते काल मेरे बाह्य वस्तुनिकरि सम्बन्ध है तितने–तितने काल मेरी स्थिति मेरा स्वभावमें स्वप्नमें भी दुर्घट हैं यातैं बाह्य पदार्थनितैं भेदविज्ञानतैं भिन्न होनेरूप ही उपाय करूं। ऐसैं अपायविचय नाम धर्मध्यानका दूजा भेद वर्णन किया।

अब विपाकविचय नाम तीजा भेदकूं निरूपण करै है। ज्ञानावरणादिक कर्मका उदयकूं आपतैं भिन्न चिंतवन करै सो विपाक विचय है। भावार्थ—अनादिकालतैं नरकादिगतिमें उपजि नारकी तिर्यंच मनुष्यादिक पर्याय धरना, इन्द्रियनिका पावना शरीरादि धारण करना रूप रस गंध स्पर्शादि पावना, संहनन, बल, पराक्रम, राज्यसम्पदा, विभव, परिवारादिक समस्त कर्मका उदयजनित है, मेरा स्वरूपतैं भिन्न है, मेरा स्वरूप ज्ञाता दृष्टा है, अविनाशी अखण्ड है, कर्म के उदयजनित परिणतितैं भिन्न है, जेते संयोग हैं ते कर्मजनित हैं यातैं कर्मके उदयजनित

परिणतितैं आपकूं जुदा अवलोकनिकरि कर्मके उदयजनित राग–द्वेष जीवन–मरणादिकतैं हू आपकूं भिन्न अवलोकन करै सो विपाकविचय है । पूर्वकालमें बंध किया कर्म द्रव्य क्षेत्रकाल भावका संयोग पाय विचित्र रस दे है । कर्मकी मूलप्रकृति आठ हैं। अर आठका एकसौ अडतीस भेद हैं अर एक एक का असंख्यात लोकमात्र भेद है सो समस्त एकेन्द्रियादिक जीवनिके भिन्न भिन्न उदय देखिये है । सामान्यकरि जीव ज्ञान स्वभाव है स्वपरका जाननेवाला है, असंख्यात प्रदेशी है, कर्मजनित देहप्रमाण है सुखदुःखका भोक्ता है । तथापि कर्मका बंध अपने भिन्न भिन्न परिणामनिकरि अनके प्रकार बंध किया है तिस कर्मका रस हू उदयकालमें जुदा–जुदा देखिये ह । समस्त जीवनिके प्रकृतिरूप लाभ अलाभ, सुख दुःख, राग-द्वेष, पुण्य पाप, संयोग वियोग, आयु काय, बुद्धि बल, पराक्रम इच्छा इत्यादिक एक एक जीवके कर्मके उदय के अनुसार भिन्न भिन्न देखिये है, अन्य किसीतैं नाहीं मिलै है यातैं नाना जीवनिके नाना प्रकार उदयकी जाति देखि राग-द्वेषके वश मति होहू । जैसैं वनमें विहार करता पुरुष वनमें लाखां कोट्यां वृक्ष वेलि छोटे बड अनेक देखै हैं कौन कौनमें राग-द्वेष करै ? कोऊ ऊंचा वृक्ष है कोऊ नीचा है कोऊ गम्भीर छाया सहित है कोऊ अल्प है कोऊ फूल फलसहित है, कोऊ निष्फल है, कोऊ कडवा है, कोऊ मीठा है, कोऊ चिरपरा है, कोऊ जहरका भर्या है, कोऊ अमृत समान है, कोऊ कांटाकरि सहित कोऊ रहित, कोऊं वक्र है कोऊ सरल है, कोऊ जीर्ण है, कोऊ नवीन है, कोऊ सुगन्ध कोऊ दुर्गंध इत्यादिक समस्त रचना पूर्वकर्मके संस्कारतैं एकेन्द्रियजीवनिके भी उदय देखिये है काटिये है फाडिये है कतरिये है छीलिये है रांधिये है छौंकिये है बालिये है चाबिये है रगडिये है घसीटिये है चींथिये है गालिये है सुखाईये है पीसिये है बान्धिये मोडिये है इत्यादिक एकेन्द्रिय वनस्पतिमें हू कर्मका उदयकी नाना जाति देखि अपने वा अन्यके पुण्य पापका उदयकी नाना तरंग देखि साम्यभाव धारण करो, हर्ष विषाद मति करो। कर्मका उदय की लहरि समय समयमें भिन्न भिन्न है जो भगवान सर्वज्ञ वीतराग जिस क्षेत्रमें जिस कालमें जिस प्रकार देख्या है सो ही प्रमाण है तैसैं ही कर्मकै उदयकूं अपना स्वभावतैं भिन्न जानो नानाजीव पुद्गलनिकी रचना तथा सयोग–वियोगादिक देखि राग–द्वेषरहित परम साम्यभाव धारण करो ज्यूं पूर्व वन्ध किया कर्मकी निर्जरा हो जाय, नवीन बन्ध नाहीं होय, ऐसे तपके प्रकरणमें विपाकविचय नाम धर्मध्यानका वर्णन किया ।

अब संस्थानविचय चौथा धर्मध्यानका वर्णन करिये है—यो अनन्तानन्त सर्व आकाश है सो आपके आधार आप है तिसके अत्यन्त मध्यविषै जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल जेता आकाशका क्षेत्रमें तिष्ठै सो लोक है। सो लोक किसीका किया नाहीं है अनादिनिधन है। अब इहां कोई अन्यवादी कहै—जो इस जगतका

कर्ता कोऊ ईश्वर है, जातैं कर्ता विना कोऊ ही सत्‌रूप वस्तु होय नाहीं। ताकूं पूछिये जो—किया विना कोऊ ही सत्‌रूप वस्तु नाहीं है, तो ईश्वरकूं कौनने किया? ईश्वर हू सत्‌वस्तु है ईश्वरकूं करनेवालाकूं कह्या चाहिये? अर जो कहोगे याका कर्ता हू अन्य है, तो वाकूं कौन किया? वाका अन्य कर्ता कहोगे तो वाकूं कौन किया ऐसैं अनवस्था नाम दोष आवैगा। बहुरि और पूछे हैं जो पहली सृष्टि बाहिर ईश्वर कहां था? अर कौन स्थानमें ईश्वर तिष्ठि जगतकूं रच्या। अर ईश्वर आप जगतविना निराधार बहुत कालतैं विद्यमान आपतो कहां तिष्ठै था, अर इस जगतकूं रचि कहां स्थापन किया? अर इस जगतकूं किसीके आधार कहोगे, तो वे कौनके आधार हैं? उसका अन्य आधार हैं? उसका अन्य आधार कहोगे तो उस अन्यका कौन आधार है? ऐसैं अनवस्था दोष आवैगा। अर जो या कहोगे निराधारमें अनादिनिधनमें तर्क नाहीं तो सृष्टिका हू कर्तापणा कहना बणै नाहीं। जैनी तो समस्त पदार्थनिकूं ही अनादिनिधन कहैं हैं। जाकै मतमें सृष्टिका कर्ता मानैं हैं ताकै ही दोष आवैगा। बहुरि जगत नानारूप है ताकूं एकरूप ईश्वर करनेमें कैसैं समर्थ होय? बहुरि ईश्वर शरीर–रहित अमूर्तीक हैं, अमूर्तीकतैं शरीरादिक मूर्तीक कैसैं उपजाया जाय, अमूर्तीकतैं मूर्तीक कैसैं होय? बहुरि उपकरण सामग्री विना लोककूं काहेतैं रच्या? जातैं उपादानकारण विना कोऊ वस्तुकी रचना बनती नाहीं देखिये है, जैसैं मृत्तिकाविना समर्थ हू कुम्भकार घटकी रचना करनेकूं समर्थ नाहीं होय है। अर जो या कहोगे ईश्वर है सो पहली सामग्री बणाय पाछैं जगतकूं रच्या। तो पूछिये उस सामग्रीकूं काहतैं रची, ऐसैं अनवस्थादोष आवैगा। अर जो या कहोगे जो जगतके रचनेयोग्य सामग्री तो स्वभावही तै विना किये सिद्ध है तो लोकहूकूं स्वतः सिद्ध माननेका प्रसंग आवैगा। बहूरि जो या कहोगे–ईश्वर समर्थ है सो सामग्री विना ही इच्छामात्रकरि लोककूं रचै है तो ऐसे इच्छामात्र युक्तिकरि–रहित तुम्हारा कहना कौनके श्रद्धान करनेयोग्य होय? इच्छामात्र करनेकी और हू कल्पना करो तो तुमकूं कौन रौकै है इच्छामात्र कह्या तहां विचार काहेका रह्या? बहुरि ईश्वर कृतार्थ है कृतकृत्य है, कि अकृतकृत्य है? जो कृतार्थ है जाकै करने योग्य कोऊ कार्य बाकी रह्या, तो जगतके रचनकी इच्छा ईश्वरके कैसी उपजी? अर जो अकृतार्थ कहोगे तो अकृतार्थ होगया सो समस्त जगतके रचनेकूं कुम्भकारकी ज्यों समर्थ नाहीं होयगा। जातैं अकृतार्थ कुम्भकार एक घटकूं रचि आपकूं कृतार्थ मानै समस्त जगतका रचना कर तो अकृतार्थ बनैगा नाहीं तैसैं ईश्वरकूं अकृतार्थ मानो हो तो एक एक वस्तुकूं करि खेदित क्लेशित होता अनन्त पदार्थनिकूं कैसैं पूर्ण करैगा?

तातैं हू जगतका कर्तापना ईश्वरकै नाहीं सम्भवै है। बहुरि ईश्वरकूं अमूर्तीक कहैं हैं, अर निःक्रिय कहैं हैं, अर सर्वव्यापी कहैं हैं, सो ऐसा ईश्वर जगतकूं कैसैं रचै ? जातैं अमूर्तीकतैं तो मूर्तीक व्यापी समस्त जगतमें उत्पन्न होय नाहीं। अर जो निःक्रिय कहिये क्रिया--रहित होय ताकैं रचनेकी क्रिया कैसैं बने। बहुरि जो व्याप रह्या ताके लोककी रचना कैसे बनै ? समस्त लोकमें अनादिहीका व्याप्त हो रह्या है। बहुरि ईश्वरकूं विक्रियारहित निर्विकारी कहै ताके रचनेके अर्थ विकारी होना नाहीं सम्भवै है।

बहुरि ईश्वर सृष्टिकूं रचि सो कहा फल चाहता रची ? ईश्वर तो कृतार्थ है कृतकृत्य है ताकै धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थनिमें कछ करना बाकी नाहीं रह्या, तदि सृष्टिकूं रचि कहा फल चाह्या ? प्रयोजन विना तो मूर्ख हू नाहीं प्रवर्तै है ? अर जो यह कहोगे ईश्वरकै सृष्टि रचनेमें उसका प्रयोजन तो नाहीं विना प्रयोजन ही रचे है। तो अनर्थरूप कार्य करनेका प्रसंग आया ? अर जो कहोगे ईश्वरके या क्रीडा है तो बडा मोहका सन्तान आया ? क्रीडा तो अज्ञानी मोही बालक करै है वा पहले दुःखित होय सो क्रीडा करि दिन व्यतीत करै अपना दुःखका भुलावनेकूं क्रीडा करै। बहुरि जो ईश्वर जगतकूं रच्या तो समस्त पदार्थनिकूं उज्ज्वल सुखकारी मनोहर रूपवान ही काहेकूं नाहीं रचे, जगतमें केई दरिद्री केई रोगी केई कुरूप केई कुबुद्धि केई नीच जाति ऐसे काहेकूं रचे ? अर विषादिक कंटकादि मल–मूत्रादिक दुर्गंधादिक काहेकूं बनाये ? तथा दुष्ट म्लेच्छ भील सर्पादिक चांडालादिक क्यों रचे ? जगतमें भी देखिये है जो महाबुद्धिमान् चतुर होय सो बहुत सुन्दर ही बनाया चाहै, अपना किया कार्यकूं बिगाड्या तो नाहीं चाहै। यातैं ईश्वर है सो बुद्धिमान् अर समर्थ अर स्वाधीन होय ग्लानिरूप भयानक दुःखदायक बिडरूप कैसैं करी सो कहो ? अर जो या कहोगे प्राणी जैसैं कर्मका उपार्जन किया तैसैं उनके शरीरादिक सकल सामग्री रची तो ईश्वरपना कहां रह्या ? जैसैं कोलीकूं महीन सूत दिया तब महीन वस्त्र बुन दिया, मोटा दिया तो मोटा बुन दिया, ईश्वरपना नाहीं रह्या। अर और हू पूछिये है संसारमें प्राणी भले वा खोटे कर्म करैं हैं तो ईश्वरके अभिप्रायतैं ईश्वरके कराये करैं हैं कि ईश्वरके अभिप्राय विना अपनी जबरीतैं करैं हैं ? सो कहो जो ईश्वरकी इच्छातैं करैं हैं तो ईश्वर होय करकै अपनी प्रजातैं खोटे कृत्य कैसैं करावै है ? अपना सन्तानकूं दुराचारी किया कोऊ चाहै नाहीं। अर जो ईश्वरकी इच्छा विना ही करै है तो ईश्वरकै ईश्वरपना अर कर्तापना कहां रह्या ? जगत स्वयं ही कर्मादिक कार्यके कर्ता भये। बहुरि कहोगे जो कार्य तो होय है सो जैसा कर्म किया तैसा ही होय है परन्तु ईश्वरके निमित्ततैं होय है तो ऐसे सिद्ध वस्तुके विना कारण

ईश्वरका क्रियापना वृथा क्यों कहो हो? असत्यकूं पुष्ट करना बडा अनर्थ है। बहुरि पूछैं है जो ईश्वर समस्त प्राणीनिमें वात्सल्य करै है अर जगतके अनुग्रह करनेकूं जगकूं रचै है तो समस्त सृष्टिकूं सुखमयी उपद्रव-रहित रची चाहिये, दुःखमय, वियोगमय, दरिद्रमय, रंकमय कैसैं रची? ऐसैं ईश्वरपना रह्या नाहीं। अर जो कहोगे जे ईश्वरके भक्त थे तिनकूं सुखी किये, दुष्टनिकूं दुःखी किये। तो पूछिये है ईश्वर होय आप दुष्ट कैसैं रचे? अपना भक्त ही रचने थे म्लेच्छादिक अपने द्रोहीनिकूं काहेकूं बनाये? जो कहोगे ईश्वरकूं पहले ठीक नाहीं था फिर दुष्ट देखे तदि तिनकूं दण्ड दिया तो ईश्वरके अज्ञानीपना प्रगट भया अज्ञानीकी कीनी सृष्टि भई। बहुरि पूछैं हैं ईश्वर जगतकूं रचै है सो जगत् पहले विद्यमान है ताकूं रचै है कि अत्यन्त असतकूं रचै है? जो विद्यमानकूं ही रचै है तो पहली ही तो सतरूप विद्यमान था उसकूं कहा रचैगा? अर अत्यन्त असतकूं रचै है तो आकाशका पुष्पकी रचना समान अवस्तु ठहर्‍या। बहुरि ईश्वरकूं मुक्त कहो हो तो मुक्त करनेमें उदासीन है वाकै सृष्टि रचनेका अभिप्राय कैसैं होय? करने करावनेकी चिन्ता मुक्तकै सम्भव नाहीं। अर जो ईश्वर संसारी है तो अपने समान है उसका किया समस्त जगत कैसैं उत्पन्न होय? तातैं तुम्हारा यह सृष्टिका ईश्वरकृत्य कहना कुछ ही नाहीं रह्या। बहुरि पहली तो जगतकूं आप रच्या, अर पाछैं आप ही संहार किया, ताकैं महान अधर्म भया। अर जो कहोगे दैत्यादिक दुष्ट बहुत इकट्ठे भये तिनके मारनेकूं प्रलयकालमें संहार करै है तो दैत्यादिक दुष्ट पहली रचै ही क्यों? अर पहली आपकूं ज्ञान नाहीं था जो ये दुष्ट हो जांयगे, तो ईश्वरकै बडा अज्ञानीपना भया जो अपने किये का फल नाहीं पहिचान्या? अर महादुःखितपना भया, जो नवीन रचना करवो करै; अर चूकि बणि जाय तदि मारंता फिरै है, हेरता फिरै है, अर दुःखका मार्‍या आप छिपता फिरै, अर दुष्टनिकूं मारनै अर्थि हजारां उपाय सहाय भेष शस्त्रादिक सामग्रीका चिंतवन करता महाक्लेशतैं जन्म पूरा करै है। ऐसे ईश्वरके तो अज्ञान राग द्वेष मोहादिक बहुत दोष दखैं हैं तातैं मिथ्यादृष्टीनिके रचे असत्य शास्त्रनिकरि उपज्या क्लेशकूं छांडि वीतराग सर्वज्ञाका कह्या अनादिनिधन स्वतःसिद्ध लोकका स्वरूप जाणि श्रद्धान करो। ये छह द्रव्य जीव पुद्‌गल धर्म अधर्म आकाश काल अनादिनिधन है, कोऊ असतकूं सत करनेकूं समर्थ नाहीं। जातैं जो सत् वस्तु है ताका कदाचित् नाश नाहीं, अर असतका उत्पाद नाहीं। ये उत्पाद विनाश है ते पर्यायार्थिक नयतैं कहिये है। जेते चेतन अचेतन पदार्थ हैं ते द्रव्यपनाकरि कदे ही नाहीं विनाशै हैं, नाहीं उपजै हैं। समय-समय पूर्व पर्यायका नाश अर उत्तरपर्यायका उत्पाद होय रह्या है, द्रव्य ध्रौव्य है, उपजै नाहीं, उपजना विनशना पर्यायका एकरूप रहै नाहीं, द्रव्यनिका नाश कदे नाहीं, छहद्रव्यका समुदाय

ही लोक है अन्य वस्तुरूप लोक नाहीं है।

अब इस संस्थानविचय धर्मध्यानविषै द्वादश भावना निरन्तर चिंतवन करने योग्य हैं। अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म ये द्वादश भावनाके नाम कहे। इनका स्वभाव भगवान तीर्थंकर हू चिंतवनकरि संसार देह भोगनितैं विरक्त भये हैं तातैं ये भावना वैराग्यकी माता हैं, समस्त जीवनिके हित करनेवाली हैं अनेक दुःखनिकरि व्याप्त संसारी जीवनिके ये भावना ही भला उत्तम शरण हैं। दुःखरूप अग्निकरि तप्तायमान जीवनिकूं शीतल पद्मवनका मध्यमें निवाससमान हैं, परमार्थ मार्गके दिखावनेवाली हैं तत्वनिका निर्णय करावनेवाली हैं सम्यक्त्वकूं उपजावनेवाली हैं अशुभ ध्यान के नष्ट करनेवाली हैं। इन द्वादश भावना समान इस जीवका अन्य हित नाहीं है, द्वादशांगको सार है, यातैं द्वादशभावना भावसहित इस संस्थानविचय धर्मध्यानमें चिंतवन करो।

अब अनित्यभावनाका ऐसा चिंतवन है—देव मनुष्य तिर्यक् ये समस्त देखते देखते जलका बुद्बुदावत् वा झागका पुंजवत् विनाशीक हैं, देखते देखते विलायमान होते चले जाय हैं, अर ये समस्त ऋद्धिसंपदा परिकर स्वप्नके समान हैं ऐसें विनशै हैं जैसें स्वप्नमें देख्या फेरि नाहीं देखिये है। इस जगतमें धन यौवन जीवन परिवार समस्त क्षणभंगुर हैं अर संसारी मिथ्यादृष्टी जीव इनहीकूं अपना स्वरूप अपना हित जाणि रहै हैं अपने स्वरूपकी पहिचान होय तो परकूं अपना कैसैं मानै? समस्त इन्द्रियजनित सौख्य जो ये दृष्टिगोचर हैं ते इन्द्रधनुषके रंग समान देखते देखते विलाय जाय हैं यौवनका जोश सन्ध्याकालकी लालीसमान क्षण क्षणमें विनशै है। यातैं ये मेरा ग्राम, मरो राज्य मेरा गृह, मेरा धन, मेरा कुटुम्ब ऐसा विकल्प करना महामोहका प्रभाव है। जे जे पदार्थ नेत्रनितैं दीखैं हैं ते ते समस्त विलाय जायंगे, अर इनकूं देखने जानने वाली इन्द्रियां हैं ते अवश्य नष्ट होयगी, तातैं आत्माके हितमें शीघ्र ही उद्यम करो। जैसैं एक नावमें अनेक देशके अनेक जातिके मनुष्य शामिल होय बैठैं हैं पाछैं तीरपर जाय नाना देशनिप्रति गमन करैं हैं तैसैं कुलरूप नावमें अनेक गतिनितैं आये प्राणी शामिल आय बसे हैं पाछैं आयु पूर्ण भये अपने अपने कर्मके अनुसार च्यारों गतिमें जाय प्राप्त होय है। अर जिस देहके सन्वन्धतैं स्त्री पुत्र बांधवादिकनिकूं मानि रागी होय रहे सो देह अग्नि में भस्म होयगी, वा माटीमें लीन होयगा तथा जीव खायगा तो विष्टा वा कृमिकलेवररूप होय एक एक परमाणु जमीन आकाशमें अनन्त विभागरूप होय विखरि जांयगे फिर कहां मिलैगा तातैं इनका सम्बन्ध फिर नाहीं प्राप्त होयगा ऐसा निश्चय जानि स्त्री पुत्र मित्र कुटुम्बादिकमें ममता धारि धर्म बिगाडना बडा अनर्थ है। बहुरि जिस पुत्र स्त्री भ्राता मित्र

स्वामी सेवकादिकनि के शामिल रहि सुखस्यूं जीवन चाहो हो ते समस्त कुटुम्बके लोग शरदकालके बादलेनिकी ज्यों विखरि जायंगे, ये सम्बन्ध अवार दीखै है सो बना नाहीं रहैगा, शीघ्र ही विखरैगा ऐसा नियम जानो। बहुरि जिस राज्यके अर्थि, वा जमीनके अर्थि तथा हाट हवेली मकान तथा आजीविकाके अर्थि, हिंसा असत्य कपट छलकी प्रवृत्ति करो हो, भोलेनिकूं ठिगो हो, जोरावर होय निर्बलनिकूं मारि खोसो हो, तिन समस्त परिग्रहका सम्बन्ध तुम्हारै शीघ्र विनशैगा अल्प जीवन के निमित्त नरक तिर्यंच गतिका अनन्त कालपर्यंत अनन्त दुःखनिका संतान ग्रहण मति करो। इनकूं स्वामीपनाका अभिमानकरि अनेक विलाय गये अर अनेक प्रत्यक्ष विनशते देखो हो, यातैं अब तो ममता छांडि अन्यायका परिहार करि अपनी आत्माके कल्याण होनेके कार्यमें प्रवर्तन करो। बंधु मित्र पुत्र कुटुंबादिक सहित वसना है सो जैसैं ग्रीष्मऋतुमें चार मार्गनिके बीच एक वृक्षकी छायामें अनेक देशके पथिक विश्राम लेय अपने अपने स्थान जाय हैं तैसैं कुलरूप वृक्षकी छायामें ठहरि कर्मके अनुकूल अनेक गतिनिमें चले जाय हैं। बहुरि जिनसैं अपनी प्रीति मानो हो सो हू एक मतलबके नाहीं हैं नेत्रनिका रागकी ज्यों क्षणमात्रमें प्रीतिका राग नष्ट होय है। बहुरि जैसैं एक वृक्षविषै पक्षी पूर्वैं संकेत किये विना ही आय बसैं हैं तैसैं कुटुम्बके जन संकेत विना ही कर्मके वशतैं भेले होय विखरैं हैं। ये समस्त धन सम्पदा आज्ञा ऐश्वर्य राज्य इन्द्रियनिके विषयनिकी सामग्री देखते देखते अवश्य वियोगनै प्राप्त होयंगे यौवन मध्यान्हकी छाया की ज्यों ढलि जायगा, थिर नाहीं रहैगा, चन्द्रमा सूर्य ग्रह नक्षत्रादिक तो अस्त होय फिर उदय होय हैं अर हिम वसन्तादिक ऋतु हू जाय जाय फिर फिर आवै हैं परन्तु गई इन्द्रिय यौवन आयु कायादिक फिर उलटे नाहीं आवै हैं जैसैं पर्वतनैं पडती नदीकी तरंग अरोक चली जाय है तैसैं आयु क्षण-क्षणमें अरोक व्यतीत होय है। अर जिस देहके आधीन जीवना है तिस देहकूं जरजरा करती जरा समय समय आवै है। कैसीक है जरा, यौवनरूप वृक्षके दग्ध करनेकूं दावाग्निसमान हैं, सौभाग्यरूप पुष्पनिकूं ओलानिकी वृष्टि है, स्त्रीनिकी प्रीतिरूप हरणीकूं व्याघ्र समान है ज्ञाननेत्रके मूंदनेकूं वृष्टिसमान है, तपरूप कमलके वनकूं हिमानीसमान है, दीनता उत्पन्न करने की माता है, तिरस्कार बधावनेकूं धाई समान है, उच्छाव घटावनेकूं तिरस्कार है रूपधनके चोरनेवाली बलकूं नष्ट करनेवाली जंघावल बिगाडनेवाली आलस्य बधावनेवाली स्मृति नष्ट करनेवाली या जरा है, मौतके मिलावनेकी दूती ऐसी जराके प्राप्त होते हू अपना

आत्महितकूं विस्मरण होय स्थिर हो रहे हो सो बडा अनर्थ है वारंवार मनुष्यजन्मादिक सामग्री नाहीं मिलेगी। बहुरि जेते नेत्रादिक इन्द्रियनिका तेज है सो क्षण क्षणमें नष्ट होय है समस्त संयोग वियोगरूप जानहु इनि इन्द्रियनिके विषयनिमें राग करि कौन कौन नष्ट नाहीं भये? यह समस्त विषय भी विलाय जायगा, अर इन्द्रिय हू नष्ट होजायंगी, कौनके अर्थि आत्महित छांडि घोर पापरूप दुर्ध्यान करो हो? विषयनिमें रागकरि अधिक अधिक लीन हो रहे हो, यह समस्त विषय तुम्हारा हृदयमें तीव्र दाह टपजाय विनशैंगे। इस शरीरको रोगनिकरि निरंतर व्याप्त जानहू, अर जीवनिकूं मरणकरि व्याप्त जानहु, ऐश्वर्य विनाशके सन्मुख जानहु, ये संयोग हैं तिनका नियमसूं वियोग होयगा। ये समस्त विषय हैं ते आत्माके स्वरूपकूं भुलावनेवाले हैं इनमें राचि तीन लोक नष्ट होय गया। जो विषयनिके सेवनेतैं सुख चाहना है सो जीवनके अर्थि विष पीवना है, तथा शीतल होनेके अर्थि अग्निमें प्रवेश करना है तथा मिष्ट भोजनके अर्थि जहरके वृक्षकूं सींचना है। ये विषय महा मोहमदके उपजावनेवाले हैं इनूंका राग छांडि आत्माका कल्याण होनेमें यत्न करो, अचानक मरण आवैगा, फिर मनुष्यजन्म यो जिनेन्द्रको धर्म गयां पाछैं मिलना अनन्तकालमें दुर्लभ है, जैसैं नदीकी तरङ्ग निरन्तर चली जाय है उलटी नाहीं आवै है, तैसैं आयु कायरूप बल लावण्य इन्द्रियशक्ति गये हुवे नाहीं बाहुडेंगे। अर जो ये प्यारे स्त्री पुत्रादिक दृष्टिगोचर दीख हैं तिनका संयोग नाहीं बण्या रहैगा; स्वप्नका संयोग समान जानहु, इनके अर्थि अनीति पाप छांडि शीघ्र व्रत संयमादिक धारण करो। यो जगत इन्द्रजालवत लोकनिके भ्रम उपजावनेवाला है, इस संसारमें धन यौवन जीवन स्वजन परजनका समागममें जीव अन्ध हो रह्या है सो धनसम्पदा चक्रवर्तीनिके स्थिर नाहीं रही है तो अन्य पुण्यहीननिकै कैसैं स्थिर रहैगी? अर यौवन है सो जराकरि नष्ट होयगा। जीवना मरणसहित है, स्वजन परजन वियोगके सन्मुख हैं, कौनमें स्थिरबुद्धि करो हो? यो देह है ताकूं नित्य स्नान करावो हो, सुगंध लगावो हो, आभरण वस्त्रादिककरि भूषित करो हो, नानाप्रकार भोजनपान करावो हो, बारम्बार याहीका दासपनामें काल व्यतीत करो हो, शय्या आसन काम भोग निद्रा शीत उष्ण अनेक प्रकारकरि याकूं पुष्ट करो हो, अर याका रागतैं ऐसे अंध होरहे हो जो भक्ष्य-अभक्ष्य योग्य-अयोग्य न्याय-अन्यायका विचाररहित होय अपना धर्म बिगाडना, यश विनाशना, मरण होना, नरक जावना निगोदवास करना समस्त नाहीं गिणो हो, सो यो शरीर जलका भर्‍या काचा घडाकी ज्यों शीघ्र विनशैगा, इस देहका उपकार कृतघ्न उपकारकी ज्यों विपरीत फलैगा, सर्प्पकूं दुग्ध मिश्रीका पान करानेकी ज्यों अपने महादुःख रोग क्लेश दुर्ध्यान असंयम कुमरण नरकमें पतनका कारण निश्चयतैं जानो। इस शरीरकूं ज्यों ज्यों विषयादिककरि पुष्ट करोगे त्यों त्यों आत्माका नाश

करनेमें समर्थ होयगा एकदिन भोजन नाहीं द्योगा तो बडा दुःख देवैगा, जे जे शरीरमें रागी भये हैं ते ते संसारमें नष्ट होय आत्मकार्य बिगाडि अनंतानंतकाल नरक निगोदमें भ्रमें हैं। अर जे या शरीरकूं तप संयममें लगाय कृश किया तिनूनै अपना हित कीया है। अर ये इन्द्रियां हैं ते ज्यों ज्यों विषयनिकूं भोगैं हैं त्यों त्यों तृष्णा बधावैं हैं। जैसैं अग्नि ईंधनकरि तृप्त नाहीं होय है तैसैं इन्द्रियां विषयनिकरि तृप्त नाहीं होय हैं। एक एक इन्द्रियके विषयकी वांछाकरि बडे बडे चक्रवर्ती राजा भ्रष्ट होय नरक जाय पहुंचे. अन्यकी कहा कहिये। इन इन्द्रियनिकूं दुःखदाई पराधीन करनेवाली नरक पहुंचानेवाली जानि इन्द्रियनिका राग छांडि इनकूं वश करो। संसार में जेते निंद्यकर्म करिये है तेते समस्त इन्द्रियनिके आधीन होय करिं ही करै हैं यातैं इन्द्रियरूप सर्पनिके विषतैं आत्माकी रक्षा ही करो। बहुरि या लक्ष्मी है सो हू क्षण-भंगुर है, या लक्ष्मी कुलीनमें नाहीं रमै है, धीरमें शूरमें पंडितमें मूर्खमें रूपवानमें कुरूपमें पराक्रमीमें कायरमें धर्मात्मामें अधर्मीमें पापीमें दानीमें कृपणमें कहां हू नाहीं रमै है, या तो पूर्वजन्ममें पुण्य कीयो ताकी दासी है। कुपात्रदानादिक कुतप करि उपजी हुई प्राणनिकूं खोटे भोगनिमें कुमार्गमें मदनिमें लगाय दुर्गति पहुंचानेवाली है। इस पंचमकालके मध्य तो कुपात्रदानकरि कुतपस्याकरि ही लक्ष्मी उपजै है सो बुद्धिकूं बिगाडि महादुःखतैं उपजै महादुःखतैं भोगै पापमें लागै वा दान भोग विना छांडि मरणकरि आर्तध्यानमें तिर्यंचगतिमें उपजावै है। यातैं इस लक्ष्मीकूं तृष्णा बधावनेवाली, मद उपजावनेवाली जानि दुःखित दरिद्रीनिके उपकारमें, धर्मके बधावनेवाले धर्मके आयतननिमें विद्या पढावनमें वीतरागसिद्धांत लिखावनेमें लगाय सफल करो। न्यायके प्रामाणीक भोगनिमें जैसैं धर्म नाहीं बिगडै तैसैं लगावो, या लक्ष्मी जल तरंगवत् अस्थिर है, अवसरमें दान उपकार करलो। परलोक लार जायगी नाहीं, अचानक छांडि मरण करोगे। जो निरंतर या लक्ष्मीकूं संचय करै है दान भोगनिमें हू नाहीं लगावै है सो आपकूं आप ठिगै है जे पापके आरम्भकरि लक्ष्मीकूं संचय करी महामूर्च्छाकरि उपार्जन करी ताकूं अन्यके हाथ दीनी, वा अन्य देशमें व्यापारादिक करि बधावनेके अर्थि स्थापना करी, तथा जमीनमें अतिदूरि गाडि मेली अर रात-दिन याहीका चिंतवन करता दुर्ध्यानतैं मरणकरि दुर्गति जाय पहुंचे है। कृपणकै लक्ष्मीका रखवालपणा वा दासपणा जानना। दूर जमीनमें गाडी लक्ष्मीकूं तो पाषाणसमान करी, जैसैं भूमिमें अन्य पाषाण गडे हैं तैसैं लक्ष्मी हू जानों। तथा राजानिका वा दाईयादारनिका, तथा कुटुंबीनिका कार्य साध्या, आपका देह तो भस्म होय उडि जायगा सो प्रत्यक्ष नाहीं दीखै है कहा ? इस लक्ष्मी समान आत्माकूं ठिगनेवाला कोऊ अन्य नाहीं है। अपना समस्त परमार्थकूं भूलि लक्ष्मीका लोभका

मा-या रात्रि और दिन घोर आरंभ करै, अवसरमें भोजन नाहीं करै है, शीत उष्ण वेदना सहै है, रोगादिकका कष्टकूं नाहीं जानै है, चिंतावान हुवा रात्रिकूं निद्रा नाहीं लेवै है, लक्ष्मीका लोभी अपना मरण होनेकूं नाहीं गिनै है, संग्रामके घोरके संकटमें जाय है, समुद्रनिमें जाय है, घोर भयानक वन पर्वतनिमें जाय है, धर्मरहित देशनिमें जाय है, जहां अपना कोऊ जातिका कुलका घरका दीखिये नाहीं ऐसे स्थानमें केवल लक्ष्मीका लोभकरि भ्रमण करता करता मरणकरि दुर्गतिमें जाय पहुंचै है। लोभी नाहीं करनेका, तथा नीच भील चांडालनिके करनेयोग्य कार्यनिकूं करै है, तातैं अब जिनेन्द्रके धर्मकूं प्राप्त होय संतोष धारण करि अपना पुण्यके अनुकूल न्यायमार्गतैं प्राप्त हुवा धनकूं संतोषी हुवा तीव्र राग छांडि न्यायके विषय भोगो। दुःखित बुभुक्षित दीन अनाथनिके उपकारके निमित्त दान सन्मानमें लगावो। या लक्ष्मी अनेकनिकूं ठिगि दुर्गति पहुंचाये है लक्ष्मीका संगमकरि जगतके जीव अचेत हो रहे हैं अर या पुण्य अस्त होते ही अस्त हो जायगी, लक्ष्मीकूं संग्रहकरि मर जाना ऐसा फल लक्ष्मीका नाहीं है याका फल केवल उपकार करना, धर्मका मार्ग चलावना है, या पापरूप लक्ष्मीकूं नाहीं ग्रहण करै हैं, अर ग्रहण करके हू ममता छांडि क्षणमात्रमें त्याग दीनी ते हू धन्य हैं, ऐसैं बहुत कहा लिखिये। यह धन यौवन जीवन कुटुम्ब सङ्गमकूं जलके बुद्बुदा समान अनित्य जानि आत्माके हितरूप कार्यमें प्रवर्तन करो। संसारके जेते सङ्गम हैं ते ते समस्त विनाशीक हैं ऐसे अनित्यभावना भावो। अर जो पुत्र पौत्र स्त्री कुटुम्बादिक हैं ते किसीकी लार परलोक गये नाहीं, अर जांयगे नाहीं, अपना उपार्जन किया पुण्य पापादिक कर्म लार रहैगा। अर ये जाति कुल रूपादिक तथा देश नगरादिकनिका समागम देहकी लार ही विनशैगा। तातैं अनित्यभावना क्षणमात्र हू विस्मरण मति होहू, जातैं परसूं ममत्व छूटि आत्मकार्यमें प्रवृत्ति होय। ऐसैं अनित्यभावना वर्णन करी ॥ १ ॥

अब अशरणभावना भावहु—इस संसारमें ऐसा कोऊ देव दानव इन्द्र मनुष्य नाहीं है जाके ऊपरि यमराजकी फांसी नाहीं परी है। कालकूं प्राप्त होते कोऊ शरण नाहीं है, आयु पूर्ण होनेके कालमें इन्द्रका पतन क्षणमात्रमें होय है जाका असंख्यात देव आज्ञाकारी सेवक, अर हजारां ऋद्धिकरि संयुक्त अर स्वर्गका असंख्यातकालतैं निवास, अर रोगादिक क्षुधा तृषादिक उपद्रवरहित शरीर अर असंख्यात बल पराक्रमका धारक इन्द्रहीका पतन हो जाय, तो अन्य शरण कोऊ है नाहीं। जैसैं निर्जन वनमें व्याघ्रकरि ग्रहण किया मृगका बच्चाकूं कोऊ रक्षा करनेकूं समर्थ नाहीं है, तैसैं मृत्युकरि ग्रहण किया प्राणीकूं कोऊ रक्षा करनेकूं समर्थ नाहीं हैं। इस संसारमें पूर्वैं अनन्तानन्त पुरुष प्रलयकूं प्राप्त हो गये, यहां कौन शरण है? कोऊ ऐसा औषध मन्त्र तन्त्र क्रिया देव दानवादिक है नाहीं जो एक क्षणमात्र हू कालतैं

रक्षा करै ? जो कोऊ देव देवी वैद्य मन्त्र तन्त्रादिक एक मनुष्यकूं हू मरणतैं रक्षा करता तो मनुष्य अक्षय हो जाते ? तातैं मिथ्याबुद्धिकूं छांडि अशरण भावना भावो । मूढलोक ऐसा विचार करै है जो मेरा हितूका इलाज नाहीं भया, औषध नाहीं दी, कोऊ देवताका शरण नाहीं ग्रहण किया, विना उपाय मर गया, ऐसैं अपना स्वजन शोच करै है। अर अपना शोच नाहीं करै है जो मैं हू यमकी डाढके बीच बैठा हूं जो काल कोटनि उपायकरि इंद्रनिकरि नाहीं रुक्या, ताकूं मनुष्यरूप कीडा कैसैं रोकैगा ? जैसैं परके मरण प्राप्त होते देखिये है तैसैं मेरे हू अवश्य प्राप्त होयगा । जैसैं अन्य जीवनिके स्त्री पुत्रादिक का वियोग देखिये तैसैं मेरे हू वियोगमें कोऊ शरण नाहीं । बहुरि अशुभ कर्मका उदीरण होने ही बुद्धि नष्ट होय है, प्रबल कर्मका उदय होते एक हू उपाय नाहीं चलै है, अमृत विष होय परिणमें है, तृण हू शस्त्र होय परिणमें हैं; अपने निज मित्र वैरी होय परिणमें हैं अशुभका प्रबल उदयके वशतैं बुद्धि विपरीत होय आप ही आपका घात करै है, अर शुभ कर्मका उदय होय तब मूर्खके हू प्रबल बुद्धि प्रगट .होय है, विना किये अनेक उपाय सुखकारी आपतैं ही प्रगट होय हैं, वैरी हू मित्र होय परिणमें है, विष हू अमृतमय परिणमें है। जब पुण्यका उदय होय तब समस्त उपद्रवकारी वस्तु हू नानाप्रकार सुख करनेवाली होय है तातैं पुण्यकर्म ही शरण है । पापके उदयकरि हस्तमें प्राप्त हुवा हू धन क्षणमात्रमें नष्ट होय है अर पुण्यके उदयतैं अति दूर तिष्ठती वस्तु हू प्राप्त होय है लाभान्तरायका क्षयोपशम होय तदि विना यत्न ही निधि रत्न प्रगट होय है । बहुरि पाप उदय होय तब सुन्दर आचरण करता होय ताकूं हू दोष कलंक लगै है, अपवाद अपयश होय है, अर यशनामकर्मका उदयकरि समस्त अपवाद दूरि होय, दोष हू गुणरूप परिणमें हैं । संसार है सो पुण्य पापका उदयरूप है परमार्थतैं दोऊ उदयकूं परका किया आपतैं भिन्न जानि ज्ञायक रहो हर्ष विषाद मति करो । पूर्वैं बन्ध किया सो अब उदय आगया सो अपना किया दूरि होय नाहीं उदय आये पाछैं इलाज नाहीं, कर्मका फल जो जन्म जरा मरण रोग चिंता भय वेदना दुःखकूं प्राप्त होते कोऊ रक्षा करनेवाला मन्त्र तन्त्र देव दानव औषधादिक समर्थ नाहीं होय है । कर्मका उदय आकाश पातालमें कही ही नाहीं छोडे है औषधादिक बाह्य निमित्त हू अशुभकर्मका उदयकूं मन्द होतैं उपकार करैं हैं दुष्ट चोर भील वैरी तथा सिंह व्याघ्र सर्पादिक तौ ग्राममें वनमें मारैं, जलचरादिक जलमें मारै, अर अशुभ कर्मका उदय जलमें स्थलमें वनमें समुद्रमें पहाडमें

गढमें घरमें शय्यामें कुटुंबमें राजादिक सामन्तनिके बीच शस्त्रनिकरि रक्षा करते हू कहां ही नाहीं छांडे है । इसलोकमें ऐसे स्थान हैं जिनमें सूर्य चन्द्रमाका उद्योत तथा पवन तथा वैक्रियिकऋद्धिधारी हू गमन नाहीं कर सकें हैं परन्तु कर्मका उदय तो सर्वत्र गमन करै है प्रबल कर्मका उदय होते विद्या मंत्र बल औषधि पराक्रम निजमित्र सामन्त हस्ती घोडा रथ पियादा गढ कोट शस्त्र उपाय साम दाम दण्ड भेदादिक समस्त उपाय शरण नाहीं है जैसैं उदय होता सूर्यकूं कौन रोकै तैसैं कर्मका उदयकूं अरोक जानि साम्यभाव की शरण करो तौ अशुभकर्मका निर्जरा होय, आगानै नवीन बन्ध नाहीं होय, रोग वियोग दरिद्र मरणादिकनितैं भय छांडि परम धैर्य ग्रहण करो । यो अपना वीतराग संतोषभाव परम समताभाव यो ही शरण है अन्य नाहीं, इस जीवका उत्तमक्षमादिक भाव आपकूं शरण है । क्रोधादिकभाव इसलोक परलोकमें इस जीवका घातक है, इस जीवक कषायनिकी मन्दता इसलोक में हजारां विघ्नोंका नाश करती परम शरण है, परलोकमें नरक तिर्यंचगतिमें रक्षा करै है, मन्दकषायीका देवलोकमें तथा उत्तम मनुष्यनिमें उपजना होय है । अर जो पूर्वकर्मका उदयमें आर्त रौद्र परिणाम करोगे तो उदीरणाकूं प्राप्त हुवा कर्मके रोकनेकूं कोऊ समर्थ है नाहीं, केवल दुर्गतिका कारण नवीन कर्म और बंधेगा । कर्मके उदय आवनैके कारण बाह्य सहकारी क्षेत्र काल भाव मिलै पाछैं कर्मके उदयकूं इन्द्र जिनेन्द्र मणि मन्त्र औषधादिक कोऊ रोकनेकूं समर्थ है नाहीं, रोगनिका इलाज तो जगतमें औषधादिक देखिये है परन्तु प्रबल कर्मका उदयके रोगनिकूं औषधादिक समर्थ नाहीं होय है, विपरीत होय परिणमै है । इस जीवके असातावेदनीयकर्मका उदय प्रबल होय वा उपशम होय तदि औषधादिक उपकार करै है । क्योंकि मन्द उदयके रोकनेकूं समर्थ तो अल्पशक्तिका धारक हू होय है । प्रबल बलका धारककूं अल्पशक्तिका धारक रोकनेकूं समर्थ नाहीं होय है । अर इस पंचमकालमें अल्प ही तो बाह्य द्रव्य क्षेत्रादिक सामग्री है अल्प ही ज्ञानादिक हैं अल्प ही पुरुषार्थ है अर अशुभका उदय आवनेका बाह्य सामग्रीका सहाय प्रबल है तातैं, अल्प सामग्री अल्प पुरुषार्थतैं प्रबल असाताका उदयकूं कैसैं जीतैं ? जैसैं प्रबल नदीका प्रवाह ढाहा उपाडता चल्या आवै, ताकै सन्मुख तिरणविद्यामें समर्थ हू पुरुष तिर नाहीं सकै है, नदीका प्रवाहका वेग मंद बहता होय तदि तिरणेकी कलाका धारक तिरकरि पार हो जाय है; तातैं प्रबल कर्मका उदयमें आपकूं अशरण चिंतवन करो । यहां पृथ्वी अर समुद्र दोऊ बडे हैं सो पृथ्वीके पार होनेकूं अर समुद्रके तिरणेकूं हू समर्थ अनेक देखिये है परंतु कर्म उदयके तीरनेकूं समर्थ होना नाहीं देखिये है । इस संसारमें एक सम्यग्ज्ञान शरण है तथा सम्यग्दर्शन शरण है तथा सम्यक्चारित्र सम्यक्तप संयम शरण है इन चार आराधना विना

अनन्तानन्त कालमें कोऊ शरण नाहीं है, तथा उत्तम क्षमादिक दशधर्म प्रत्यक्ष इस लोकमें समस्त क्लेश दुःख मरण अपमान हानितैं रक्षा करनेवाला है । इस मन्दकषायका फल तो स्वाधीन सुख, अर आत्मरक्षा, अर उज्ज्वल यश क्लेशरहितपना उच्चता इसलोकमें प्रत्यक्ष देखि याका शरण ग्रहण करो । अर परलोकमें याका फल स्वर्गलोकमें होना है । बहुरि व्यवहारमें चार शरण हैं अरहन्त, सिद्ध, साधु केवलीका प्रकाश्या धर्म; ये शरण जानना जातैं इनका शरण विना आत्मा उज्ज्वलताकूं नाहीं प्राप्त होय है । ऐसैं अशरण भावना वर्णन करी ॥ २ ॥

अब संसारभावनका स्वरूप वर्णन करैं हैं—इस संसारमें अनादिकालका मिथ्यात्वके उदय करि अचेत भया जीव जिनेन्द्र सर्वज्ञ वीतरागका प्ररूप्रण किया सत्यार्थ धर्मकूं नाहीं प्राप्त होय च्यारूं गतिनिमें परिभ्रमण करै है, संसारमें कर्मरूप दृढ बंधनकरि बंधा पराधीन हुवा त्रस स्थावरनिमें निरन्तर घोर दुःख भोगता वारम्वार जन्म मरण करै है । अर जे जे कर्मका उदय आय रस दे हैं तिनके उदयमें आपा धारण करि अज्ञानी जीव अपना स्वरूपकूं छांडि नवीन नवीन कर्मका बंधकूं करैं हैं अर कर्मके बंधके आधीन हुवा प्राणीनिकै ऐसी कोऊ दुःखकी जाति बाकी नाहीं रही जो नाहीं भोगी, समस्त दुःखनिकूं अनंतानंत वार भोगते अनंतानंतकाल व्यतीत हो गया । ऐसे अनंत परिवर्तन संसारमें इस जीवकै व्यतीत भये हैं ऐसा कोऊ पुद्गल संसारमें नाहीं रह्या जाकूं जीव शरीररूप आहाररूप ग्रहण नाहीं किया ? अनन्त जातिके अनन्त पुद्गलनिका शरीर धार्‌या, आहाररूप भोजनपानरूप हू किये । तीनसैं तीयालीस घनराजू प्रमाण लोकमें ऐसा कोऊ क्षेत्रको एक प्रदेश हू नाहीं है जहां संसारी जीव अनन्तानन्त जन्म मरण नाहीं किये, अर उत्सर्पिणी अवसर्प्पिणी कालका ऐसा कोऊ एक समय हू बाकी नाहीं रह्या है जिस समयमें यो जीव अनन्तवार नाहीं जन्म्या अर नाहीं मर्‌या, अर नरक तिर्यंच मनुष्य देव इन चारों पर्यायनिमें यो जीव जघन्य आयुतैं लेय उत्कृष्ट आयु पर्यन्त समस्त आयु का प्रमाण धारण करि करि अनन्तवार जन्म धार्‌या है । एक अनुदिश अनुत्तरविमाननिमें तो नाहीं उपज्या, क्योंकि उन चौदह विमाननिमें सम्यग्दृष्टि विना अन्यका उत्पाद नाहीं, सम्यग्दृष्टिकै संसारपरिभ्रमण नाहीं है । बहुरि कर्मकी स्थितिबंधके स्थान तथा स्थितिबंधकूं कारण असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसाय स्थान तिनकूं कारण असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान तथा जगतश्रेणीके संख्यातवें भाग योगस्थान ऐसा कोऊ भाव बाकी नाहीं रह्या जो संसारीके नाहीं भया । एक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रके योग्य भाव नाहीं भये अन्य समस्त भाव संसारमें अनन्त वार भये हैं । जिनेंद्रके वचनका अवलंबनरहित पुरुषनिकी मिथ्याज्ञानके प्रभावतैं विपरीतबुद्धि अनादिकी हो रही है सो सम्यक्मार्गकूं नाहीं ग्रहण करता संसाररूप वनमें नष्ट हुआ निगोदमें

जाय प्राप्त होय हैं । कैसीक है निगोद जातैं अनन्तानन्तकालमें हू निकसना अतिकठिन है, अर कदाचित् पृथ्वीकायमें जलकायमें अग्निकायमें पवनकायमें प्रत्येक साधारण वनस्पतिकायमें समस्त ज्ञानकी नष्टतातैं जडरूप हुवा एक स्पर्शन इन्द्रियद्वारै कर्मका उदयके आधीन हुआ आत्मशक्तिरहित जिह्वा घ्राण नेत्र कर्णादि इन्द्रियरहित हुआ दुःखमय दीर्घकाल व्यतीत करै है अर बेन्द्री त्रींद्रिय चतुरिंद्रियरूप विकलत्रयजीव आत्मज्ञानरहित केवल रसनादिक इंद्रियनिका विषयनिका अतितृष्णाका मार्‍या उछलि उछलि विषयनिके अर्थि पडि पडि मरै है । बहुरि असंख्यातकाल विकलत्रयमें फिर एकेन्द्रियनिमें फिर-फिर वारम्वार अरहटकी घडीकी ज्यों नवीन नवीन देह धारण करता चारों गतिनिमें निरन्तर जन्म-मरण क्षुधा-तृषा रोग वियोग संताप भोगता परिभ्रमण अनन्तकालतैं करै है याहीका नाम संसार है । जैसैं तप्तायमान आधणमें तन्दुल सर्व तरफ दौडता सन्ता सीझै हैं तैसैं संसारी जीव कर्मकरि तप्तायमान हुआ परिभ्रमण करै है । आकाशमें गमन करते पक्षीनिकूं अन्य पक्षी मारै हैं, जलमें विचरते मच्छादिकनिकूं अन्य मच्छादिक मारै हैं, स्थलमें विचरते मनुष्य पशुआदिकनिकूं स्थलचारी सिंह व्याघ्र सर्पादिक दुष्ट तिर्यंच तथा भील म्लेच्छ चोर लुटेरा महानिर्दई मनुष्य पशु मारैं हैं । इस संसारमें समस्त स्थाननिमें निरन्तर भयरूप हुआ निरन्तर दुःखमय परिभ्रमण करैं हैं, जैसैं शिकारीका उपद्रवकरि भयभीत हुआ सूस्या (शशक) फाडा हुआ अजगरका मुखकूं बिल जानि प्रवेश करै है तैसैं अज्ञानी जीव क्षुधा तृषा काम कोपादिक तथा इन्द्रियनिके विषयनिकी तृष्णाकी आतापकरि संतापित हुआ विषयादिकरूप अजगर का मुखमें प्रवेश करै है, विषय कषायनिमें प्रवेश करना सो ही संसाररूप अजगरका मुख है यामें प्रवेश करि अपने ज्ञान दर्शन सुखसत्तादिक भावप्राणनिकूं नाशकरि निगोदमें अचेतनतुल्य हुआ अनन्तवार जन्म मरण करता अनंतानंतकाल व्यतीत करै है तहां आत्मा अभावतुल्य ही है, ज्ञानादिक अभाव भया तदि नष्ट ही भया, निगोदमें अक्षरके अनंतवें भाग ज्ञान है सो सर्वज्ञ करि देख्या है अर त्रसपर्यायमें हू जेते दुःखके प्रकार हैं ते ते दुःख अनंतवार भोगै है ऐसी कोऊ दुःखकी जाति बाकी नाहीं रही, जो या जीवनै संसारमें नाहीं पाई । इस संसारमैं यो जीव अनंतपर्याय दुःखमय पावै तदि कोई एक वार इंद्रियजनित सुखकी पर्याय पावै है सो हू विषयनिका आतापसहित भय शंका-संयुक्त अल्पकाल पावै, फिर कोऊ एक पर्याय इंद्रियजनित सुखकी कदाचित् प्राप्त होय है ।

अब चतुर्गतिका किंचित् स्वरूप परमागमके अनुसार चिंतवन करिये है—नरककी सप्त पृथ्वी है तिनमैं गुणंचास पटल हैं तिन पटलनिमें चौरासी लाख बिल हैं तिहींकूं नरक कहिये है, तिनकी वज्रमयभूमि भींति छति है । केई बिल संख्यात योजनके चौडे लंबे हैं, केई असंख्यात योजनके लंबे चौडे हैं, तिन एक एक बिलनिकी

छतिविषै नारकीनिके उत्पत्तिके स्थान हैं, ते छोटे मुखके उष्ट्रमुखके आकारादिक लिये औंधे मुख हैं. तिनमें नारकी उपजि नीचैं मस्तक अर ऊंचे पगनैं आय वज्राग्निमय पृथ्वीमें पडि करि जैसैं जोरतैं पडी दडी पडकरि झंपा खाय उछलै है तैसैं पृथ्वीमें पडि उछलते लोटते फिरै हैं। कैसी है नरककी भूमि असंख्यात बीछूनिके स्पर्शनितैं असंख्यातगुणी वेदना करनेवाली है। तिन नरकनिके बिलनिमें ऊपरिकी च्यार पृथ्वीमें अर पंचपृथ्वीके दोय लक्ष बिल ऐसे बीयालीस लाख बिलनानिमें तो केवल आताप उष्णताकी वेदना है। सो नरककी उष्णताके जणावनेकूं इहां कोऊ पदार्थ दीखनेमें जाननेमें आवै नाहीं, जाकी सदृशता कही जाय ? तो हू भगवानके आगममें ऐसा अनुमान उष्णताका कराया है जो लक्ष योजनप्रमाण मोटा लोहे गोला छोडिये तो भूमीकूं नहिं पहुंचनप्रमाण नरकक्षेत्रकी उष्णताकरि रसरूप होय बहि जाय है अर पंच पृथ्वीका तिहाई अर छटी–सातवींका शीतबिलनिमें शीतकी ऐसी तीव्र वेदना है जो लक्षयोजनप्रमाण लोहका गोला धरिये तो एकक्षण मात्रमें शीतकरि खंड खंड होय बिखरि जाय है। ऐसी उष्णवेदना अर शीतवेदनाका भरा नरकमें कर्मके वश भये जीव घोर दुःख असंख्यातकाल पर्यंत भोगैं हैं आयु पूर्ण भये विना मरणकूं प्राप्त नाहीं होय हैं। ऐसी तो नरकमें घोर शीत उष्णकी वेदना है। अर क्षुधा वेदना ऐसी है जो समस्त जगतके पाषाण मृत्तिकादिक भक्षण किये हू क्षुधावेदना नाहीं मिटै, पर एक कणमात्र भक्षणकूं मिलै नाहीं। अर तृषावेदना ऐसी है जो समस्त समुद्रनिका जल पीवै तो हू तृषाकी वेदना नाहीं दूर होय, पर एक बूंदमात्र जल जहां मिलै नाहीं, अर कोट्यां रोगनिकी घोरवेदना जहां एक ही कालमें उत्पन्न होय है, जहां नवीन नारकीकूं देखि हजारां नारकी महाभयङ्कररूप अनेक आयुधनिकरि सहित मारल्यो, चीरो, फाडो, विदारो ऐसा भयङ्कर शब्द करते चारों तरफतैं मारनेकूं आवैं हैं। कैसे हैं नारकी नग्नरूप अतिलूखा भयङ्कर श्यामरूप रक्त पीत वक्रनेत्रनिकरि क्रूर देखते फाटे हैं मुख जिनके, लहलहाट करती विकराल जिह्वाकरि युक्त, करोतसमान तीक्ष्ण वक्र हैं दन्त जिनके, तथा ऊंचे रक्त पीन कठोर केशनिकरि भयानक, तिक्ष्ण नख, महानिर्दयी, हुण्डकसंस्थान के धारक आयकरि केई मुद्‍गर मुसण्डीनिकरि मस्तकका चूर्ण करैं हैं तथापि नारकीनिका देह जैसैं जलके भरे द्रहमें जलकूं मूसलादिककरि कूटते जल उछलिकरि उसही द्रहमें शामिल आय पडे है तैसैं नारकीनिका देह हू खंड खण्डरूप होय उछलि उछलि शामिल आय मिलै है, आयु पूर्ण हुआ विना मरण नाहीं होय है, तरवारनितैं खंड खंड करैं हैं, करोतनितैं चीरैं हैं, कुल्हाडेनितैं फोडैं हैं, बसोलेनितैं छीलैं हैं, भालानितैं

बेधैं हैं, शूलीनिमें पोवैं हैं, उदरादिक मरमस्थाननिकूं छेदैं हैं, विदारैं हैं, नेत्रनिकूं उपाडैं हैं, भाडमें भूजै हैं, कढाहेनिमें रांधें हैं,, घाणीनिमें पेलैं हैं, ऐसैं परस्पर नारकीनिकरि मारण ताडन त्रासण जो नरकमें है सो कोऊ कोटि जिह्वानिकरि कोट्यां वर्षपर्यंत एक क्षणके दुःख कहनेकूं समर्थ नाहीं है ।

नरकमें जो दुःखकारी सामग्री है ताका एक क्षण मात्र हू इसलोकमें नाहीं है जहां नरकभूमिकी सामग्री अर नारकीनिका विकरालरूप जो है जैसा कोऊनै एक क्षण स्वप्नमें दिखावै तो भयकरि प्राणरहित हो जाय। अर नारकीनिकै रससामग्री ऐसी कडवी है इहां कांजीर विष हालाहलमें नाहीं । नारकीनिके देहादिकनिका एक कण यहां आवै तो जिनकी कडवी गंधतैं यहांके हजारां पंचेन्द्री जीव मरण कर जांय । अर नरककी मृत्तिकाकी दुर्गंध ऐसी है जो सातवां नरककी मृत्तिकाका एक कण यहां आजाय तो साढा चौईस कोसके चारूं तरफके पंचेन्द्री जीव दुर्गंधतैं मरण कर जांय । जातैं एक हू एक नरक पटलकी मृत्तिकाकी दुर्गंधमें आधआंध कोसके अधिक अधिक जीव मारणेकी शक्ति है तातैं गुणंचासमां पटलकी मृत्तिकाकी दुर्गंधिमें साढा चौईस कोसपर्यंतकी मारणशक्ति कही है । बहुरि नरकमें वैतरणी नदी है ताका जल कैसाक है जाके स्पर्शमात्रतैं नारकीनिके शरीर फाटि जाय हैं, तिनमें क्षार विष अग्निमय तप्त तेलके सींचनतैं हू अपरिमाण बाधाका उपजावने वाला है । अर जहांकी पवन ऐसी है जो यहांके पर्वत स्पर्श होने मात्रतैं भस्म होय उडि करि जगतमें विखर जांय । अर नरककी वज्राग्निकूं धारण करनेकूं यहां पृथ्वी पर्वत समुद्र कोऊ समर्थ नाहीं । कहा स्वरूप वर्णन करिये, नारकी शब्द ऐसे भयङ्कर अर कठोर हैं जो यहां श्रवण कर ले तो हस्तीनिके अर सिंहनिके हृदय फाटि जाय, तहां नारकीनिकूं कर्मरूप रखवाले सागरांपर्यंत नाहीं निकसनै दे हैं जहां निरन्तर मार मार सुनिये हैं रोवैं हैं पकडैं हैं भागैं हैं घसीटे हैं चूर्णरूप करै हैं अर अंग फिर फिर पारेका ज्यों मिलता चल्या जाय है कोऊ रक्षक नाहीं, दयावान नाहीं, राजा नाहीं, मित्र नाहीं, माता नाहीं, पिता नाहीं, पुत्र स्त्रीकुटुम्बादिक नाहीं, केवल पापका भोग है । कोऊ छिपवानै स्थान नाहीं, कोऊसूं अपना दुःख-दरद कहिये सो नाहीं, केवल क्रूरपरिणामी महाभयङ्कर पातकी हैं। जैसैं इहां दुष्ट श्वानादि तिर्यंचनिके देखते प्रमाण वैर है तैसैं नारकीनिके विना कारणही परस्पर वैर है । दुःखतैं भाग वनमें जाय तहां शाल्मलीवृक्षादिकनिके पत्र शरीरकूं बसोले कहाडेनिकी ज्यों काटनेवाले आय पडै हैं तिनकरि अंग छिदि जाय कटि जाय है। बहुरि वनहीमें वा गुफानिमेंतें सिंह व्याघ्रादिक निकसिकरि अंगकूं विदारैं हैं जहां वज्रमई चूंचनिके धारक गृद्धादिक पक्षी नारकीनिके अङ्गकूं फाडें हैं, नेत्रादिक उपाडें हैं, उदर फाडि आतां काढि ले हैं यद्यपि नरकमें तिर्यंच नाहीं है तथापि

नारकी जीव विक्रिया करि तिर्यंचरूप हो जाय हैं नारकीनिके पृथक् जुदा शरीर करनेकी विक्रिया नाहीं है एक शरीर ही सिंह व्याघ्र श्वान घूघू काकादिकनिका देह धारण करै है । नारकी शुभ किया चाहैं तो हू शुभ नाहीं होय, आपकूं अन्यकूं दुःखदाई ही परिणाम अर देह वेदना विक्रिया करनेकूं समर्थ हैं, सुख करनेवाली विक्रिया नाहीं होय, परिणाम नाहीं होय, देह नाहीं होय, वेदना नाहीं होय, ऐसा क्षेत्रजनित जीवनिके पापकर्मका उदय है । बहुरि नरकमें नारकीनिके मारनेके नाना आयध शूली घाण्यां जन्त्र लोहमय ओटावनेके तलनेके रांधनेके नाना दुःखदायी पात्र क्षेत्रके स्वभावतैं ही है जहां सुखदायी सामग्री तो स्वप्नमें हू नाहीं है जहां लोहमय पूतली ज्वालाकूं उगलती महावेदना सन्ताप करनेवाला जिनका अङ्ग ते उछलिकरि नारकीनिकूं पकडे हैं स्पर्शैं हैं तिनका स्पर्श कोटिबीछूनिके स्पर्शसमान तथा वज्राग्नि समान तथा विषमय तीक्ष्ण शस्त्रनिका स्पर्शमात्रतैं असंख्यातगुणी वेदना करै है जो नरकनिमें दुःखदायी सामग्री है तिसका स्वभावादिक दिखावनेकूं अनुभव करावनेकूं समस्त मध्यलोकमें कोऊ वस्तु दीखै नाहीं, तथापि उनकी अधिकता दिखावनेकूं केतीक वस्तु वर्णन करी है । अर नारकीनिका दुःख तो साक्षात् भगवानका ज्ञान जानै है तथापि नारकी होय भुगतै तदि यो जीव जानै है । नारकीनिका देह रुधिर मांस हाड चाम आदि सप्तधातुमय नाहीं है परन्तु उनके देहकै पुद्गल ऊंट श्वान मार्जारादिकनिके सडे हुये कलेवर तिनतैं असंख्यातगुणे दुर्गंधयुक्त हैं अर असंख्यातगुणे दुर्निरीक्ष्य घृणा करानेवाले हैं जिनका स्वरूप न देखा जाय, न श्रवण किया जाय, न गंध ग्रहण किया जाय, मनुष्यादिक तो देखतप्रमाण दुर्गंधि आवतप्रमाण प्राणरहित हो जाय । पूर्वजन्ममें परिणामनितैं खोटे नरकका आयु बांधि उपजै हैं ते असंख्यातकाल पर्यंत दुःख भोगैं हैं बहुत आरम्भ करनेवाले बहुत परिग्रहमें आसक्त घोर हिंसक परिणामी विश्वासघाती धर्मद्रोही गुरुद्रोही स्वामिद्रोही कृतघ्नी परधन-परस्त्रीके लोलुपी अन्यायमार्गी धर्मात्माकै त्यागीनिक कलंक लगावनेवाले यतीनिका घात करनेवाले ग्रामनिमें घास तृणादिक वृक्षनिमें अग्नि लगानेवाले देवद्रव्य चोरनेवाले तीव्रकषायी अनन्तानुबन्धीकषायके धारक कृष्णलेश्याके धारक सुन्दर आहारादि मिलते हू जिह्वाइन्द्रियकी लोलुपतातैं मांसके भक्षक मद्यपायी वेश्यानुरागी परविघ्नसन्तोषी लम्पटी तीव्रलोभी दुराचारके धारक मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्यकी प्रशंसा करनेवालेनिका नरक गमन होय है । विषादिक मिलावना, विषादिक उपजानेवाले, वनकटी करावनेवाले वनमें दावाग्नि लगानेवाले जीवनिकूं बाडामें बांधि दग्ध करनेवाले हिंसाके तीव्रकर्मकी परिपाटीके चलानेवालेनिका नरक गमन होय है । नरकमें अम्बावरीसादिक दुष्ट असुरकुमार तीसरी पृथ्वीताईं जाय लडावैं हैं कोऊ नारकीनिकूं तीजी पृथ्वीताईं पूर्वले सम्बन्धी देव आय धर्मका उपदेश भी

देय हैं किसीके पूर्वला पापनिकी निंदा भी होय है बडा पश्चाताप होय है जो म्हानै पूर्वैं सत्पुरुषां शिक्षा घणी ही करी-अरे, अनीति मार्ग मति लागो, बहुत उपदेश भी दिया, परंतु मैं पापी विषय-कषायनिमें मदकरि अन्धा भया शिक्षा ग्रहण नाहीं करी अब मैं दैवबल पौरुषबलकरि रहित कहा करूं ! जे पापी दुराचारी पापमें प्रेरणा करनेवाले व्यसनी अनीतिके पुष्ट करनेवाले हमकूं नरकमें प्राप्त किये ते पापी न जानिये देह छांडि कहां जायगे हमारी लार कोऊ दीखे नाहीं, हमारे धन भोगनेमें विषय सेवनमें सहाई पापके प्रेरक मित्र पुत्र बान्धव स्त्री सहायादिक थे अब उनकूं कहां देखूं ऐसैं अवधिज्ञानतैं पूर्व जन्ममें दुराचार किये तिनका पश्चात्ताप करता घोर मानसिक दुःखकूं प्राप्त होय है । केई महाभाग्यकैं सम्यग्दर्शन भी उपजैं है परन्तु पर्याय-सम्बन्धी कषाय दुःख स्वयमेव उपजै है आप किसीकूं नाहीं मार्‍या चाहैं तो हू कषायनिकी प्रबलता कर्मउदयतैं रुकै नाहीं, स्वयमेव हस्तादिक शस्त्ररूप परिणमै हैं ।

नारकीनिके क्षणमात्र विश्राम नाहीं निद्रा नाहीं, भूमिकै स्पर्शका दुःख ही केवली—गम्य है अतितीव्र कर्मका उदयमें कोऊ शरण नाहीं शरणका अर्थी हुवा देखै तहां कोऊ दयावान नाहीं समस्त क्रूर निर्दयी भयानक उग्रदेहका धारक अंगारा समान प्रज्वलित नेत्रनिकरि सहित प्रचण्ड अशुभध्यानके करावनेवाले क्रोधकूं उपजावनेवाले घोर नारकी हैं तिन नारकीनिके महान् विलाप अर रुदन मारण त्रासनके घोर शद्ब सुनिये हैं अहो जब मैं मनुष्यपनामें स्वाधीन होय आत्महित नाहीं किया अब दैव पुरुषार्थ दोऊनिके बलकरिरहित कहा करूं ? पूर्वैं जे जे निंद्यकर्म मैं किये ते ते अब मेरे याद करते ही मरमनिकूं छेदैं हैं जो दुःख एकनिमेंष मात्र नाहीं सह्या जाय सो यहां सागरांपर्यंत कैसैं पूर्ण करस्यूं जिनके अर्थि पापकर्म किये ते सेवक स्त्री पुत्र बांधवानिकूं यहां कहां देखूं वे तो धनके विषयनिके भोगनेमें शामिल थे अब इनि दुःखनिमें कहां देखूं, ऐसैं दुःखनितैं रक्षा करनेवाला एक दयाधर्म ही है सो धर्म मैं पापी उपार्जन नाहीं किया, परिग्रहरूप महापिशाचकरि अचेतन भया या नाहीं जानी जो यमराजरूप सिंहकी चपेटतैं एकक्षणमें मरि नारकी जाय उपजूंगा इत्यादिक मनका संतापजनित घोर दुःखनिकूं प्राप्त होय है । जो पूर्वजन्ममें अन्य प्राणिनिका मांस छेदि खाया है तातैं मेरा मांसकूं काटि काटि मोकूं खुवावैं है पूर्वैं मद्यपान किया, अभक्ष्य खाया, तातैं अनेक नारकी ताम्र—लौहमय गल्या हुवा रस सिंडासीनितैं मुखफाडि पावैं हैं जे परस्त्री लम्पटी थे तिनकूं वज्राग्निमय पूतला बलात्कार पकडि बहुतकाल आलिंगन करावैं हैं चक्षुका टिमकारनेमात्रकाल हू सुख है नाहीं, जो कदाचित् कोऊ कालमें क्षणमात्र भूलि जाय तो दुष्ट अधर्म असुर प्रेरणा करैं वा परस्पर नारकी प्रेरणा करैं हैं । बहुत कहा कहिये असंख्यात जातिके

दुःख असंख्यात काल पर्यन्त नरकमें नारकी भोगैं हैं संसारमें एक धर्म ही इस जीवका उद्धार करने वाला है सो धर्म उपजाया नाहीं, तदि नरकमें कौन रक्षा करै, कोऊ धन कुटुम्बादिक जीवकी लार नाहीं जाय है अपना भावनितैं उपार्जन किया पाप–पुण्य कर्म ही लार हैं। ये संसारी उपस्थ इन्द्रिय अर रसनाइन्द्रियके विषयनिके लोलुपी होय नरकादिनिमें दुःखका पात्र होय हैं ऐसैं तो अनेक बार नरक जाय घोर दुःख भोगैं हैं।

बहुरि तिर्यंचगतिनिमें गया पाछैं कुछ भ्रमणका ठिकाना नाहीं दुःखका पार नाहीं, दुःख मय ही है, पृथ्वीकायमें खोदना दग्ध करना कूटना रगडना फोडना छेदना आदि क्रियानितैं कौन रक्षा करै, जलकाय धारण किए, तहां औटाया गया, बाल्या गया, मसल्या गया, मल्या गया, पिया गया, विषनिमें क्षारनिमें कटुकनिमें मिलाया गया, तप्तलोहादिक धातु पाषाणादिकमें बुझाया गया, घोरशब्द करता बलै है पर्वतनिमें पडि शिलानि ऊपरि घोर पछाडा खाये हैं वस्त्रनिमें भरि भरि करि शिलानि ऊपरि पछाडिये है दंडनिकरि कूटिये है जलकायके जीवनिकी कौन दया करै, अग्नि ऊपरि पटकिये ग्रीष्मऋतुमें तप्तभूमि रजादिकऊपरि सींचिये कोऊ दया करै नाहीं, क्योंकि पूर्वजन्ममें दयाधर्म अङ्गीकार किया नाहीं, अब अपनी दया कौन करै। बहुरि अग्निकायमें हू दबाना बुझावना कूटना छेदना इत्यादिक घोर दुःख भोगै है कौन रक्षा करै। बहुरि पवनकाय पाया तहां पर्वतनिकरि कठोर भींतनिकी निरन्तर चोट सहै है अग्निमय चर्ममय धवनकरि धमिये हैं बीजने पंखे वस्त्रनि करि फटाकारे खानेकरि वृक्षनिके पछांटेनिकरि पवनकायमें घोरदुःख भोगै है। बहुरि वनस्पतिकायमें साधारणनिमें तो अनन्तनिका एकका घातमें मरण इत्यादिक दुःख तो ज्ञानी ही जानै है परन्तु प्रत्येकवनस्पतिका दुःख देखो जो काटिये है, छेदिये है, छीलिये है, बनारिये है, रांधये है, चाविये है, तलिये है, घृत–तेलादिकमें छौंकिये है, बांटिये है, भोभलमें भूलसिये है, घसीटिये है, रगडिये है, घाणीनिमें पेलिये है, कूटिये हैं इत्यादिक घोर दुःख वनस्पतिकायमें यो जीव पावै है यातैं एकेन्द्रीपर्यायमें बोलनेकूं जिह्वा नाहीं, देखनेकूं नेत्र नाहीं, श्रवणकरनेकूं कर्ण नाहीं, हस्त पादादिक अंग उपांग नाहीं, कोऊ रक्षक नाहीं, असंख्यात अनन्तकालपर्यंत घोर दुःखमय एकेन्द्रियपनातैं निकसना नाहीं होय है। मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्यादिकनिके प्रभावकरि जीवका समस्त ज्ञानादिक गुण नष्ट होय है एकेन्द्रियमें किंचितमात्र पर्यायज्ञान रहै है आत्माका समस्त प्रभाव शक्ति सुख नष्ट हो जाय, जड अचेतनकी ज्यों होय है किंचितमात्र ज्ञानकी सत्ता एक स्पर्शनइन्द्रियकै द्वारै ज्ञानीनिके जाननेमें आवै है समस्त शक्तिरहित केवल

दुःखमय एकेन्द्रियपर्यायमें जन्म-मरण वेदना दुःख भोगै है ।

बहुरि कदाचित कोऊ त्रसपर्याय पावै तो विकलचतुष्कमें घोर दुःख भोगै है लहलहाट करती जिह्वाइन्द्रीका मार्‍या तीव्र क्षुधा–तृषामय वेदनाका मार्‍या निरंतर आहारकूं हेरता फिरै है लट कीडा अपना मुख फाडि आहारके निमित्त चपल भये फिरैं हैं मक्षिका, मकडी, मांछर, डांस क्षुधाका मार्‍या निरंतर आहार हेरता फिरै हैं रसनिमें पडै हैं, जलमें अग्निमें पडै हैं पवननिके वा वस्त्रनिके पछांटेनिकरि मरै है तिर्यंचनिकी पूंछनितैं, खुरनितैं नाशकूं प्राप्त होय हैं मनुष्यनिके नखनिकरि हस्त--पादादिकनिके घात करि चिथैं हैं, दवैं हैं, मलकफादिकनिमें उलझै हैं, विकलत्रयकी कोऊ दया करै नाहीं चिडी, कागला चुगि जाय हैं विसमरा सर्प इत्यादिक हेर-हेर मारैं पक्षी बडी वज्रमय चूंचनिकरि चुगें हैं चीरैं हैं अग्निमें बालै हैं इली घुण इत्यादिक कीटनिकरि भर्‍या हुआ धान्यादिक तिनकूं दलै हैं, पीसैं हैं, ऊखलीनिमें खण्ड खण्ड करैं हैं, भाडनिमें भूंनैं है, राधैं हैं तथा बदरीफलादिक फलनिम शाक-पत्रदिकनिमें बिदारिये हैं, छीलिये है, कूटिये है, छौंकिये है, चाबिये है, कोऊ दया नाहीं करै है । बहुरि मेवेनिके फलनिमें, औषधनिमें पुष्प पल्लव डाली जड बल्कलनिमें तथा मर्यादातैं अधिक कालका समस्त भोजन दधि दुग्धादिक रसनिमें बहुत विकलत्रय वा पंचेंद्रिय जीव उपजैं हैं ते समस्त खाया जाय, जीव जन्तु चुगि जाय, अग्निमें बल जाय, कौन दया करै ? बहुरि विकलत्रयकी उत्पत्ति वर्षाऋतुमें सर्वभूमि छा जाय ते ढोरनिके पगकरि मनुष्यनिके पगकरि घोडेनिके खुरनिकरि रथ बैल गाडा गाडीनिकरि चिथैं हैं कटै हैं पगकहां टूटि पडै हैं माथा कटि जाय, उदर चीरा जाय कौन दया करै ? कोऊ देखै ही नाहीं ऐसा विकलत्रयरूप तिर्यंचनिके नाना दुःखनिकरि मरण होय है । क्षुधा तृषाकरि शीत उष्णवेदनाकरि वर्षाकी पवनकी, गडानिकी बाधाकरि मरण करै है तथा भाटा ठीकरा माटी का ढगला लाकडा मल मूत्र तप्तजल अग्नि इत्यादिक पतनतैं दबिकरि मरैं हैं विकलत्रयजीवनिकी ओर कोऊ देखै तो इनकी दया कोऊ करै नाहीं । घृत–तेलादिकमें पडकरि दीपक तथा अग्नि इत्यादिकमें पडि मरि घोरदुःख भोगता फिर उपजि फिर मरते असंख्यात काल दुःख भोगै हैं बहुरि कदाचित पंचेंद्रिय तिर्यंच होय तिनमें जलचरनिमें निर्बलकूं सबल भक्षण करै हैं धीवरनिके जालमें वा कांटेनिमें फंसि मरै हैं वा जीवितनिकूं भुलसि खाय हैं वनके जीव सदाकाल भयरूप भये क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, वर्षा, पवन कर्दमादिकी घोर वेदना सहैं हैं प्रातःकालमें कहां भोजन अर बडी क्षुधा वेदना अर कदाचित आहार मिलै है अर जल नाहीं मिलै है तीव्र तृषावेदना भोगै है शिकारी पारधी जातैं मारैं वा सबल होय सो निर्बलनिकूं मार खाय हैं बिलनिमें पारधी

खादि खादि काढि मारैं हैं तथा बलवान तिर्यंच निर्बलनिकूं गुफानिमें पर्वतनितैं वृक्षनिमें छिपे हुयेनिकूं बडा छलतैं जाय पकडि मारैं हैं सिंह व्याघ्रादिक हू सदा भयवान रहैं हैं आहार मिलनेका नियम नाहीं बहुत क्षुधा तृषावान भये पडे रहैं हैं कदाचित् किंचित् अल्प आहार मिलै दो दिन तीन दिनमें मिलै वा नाहीं मिलै तदि घोरवेदना भोगता मरैं हैं तथा कषायी मनुष्य यंत्रनितैं जालनिके उपायतैं पकडि मार-मार बेचैं हैं खाय हैं जीवतेनिके पग काटि बेचैं हैं, जीभें काटि देय है इन्द्रियां काटि बेचैं हैं, पूंछ काटि बेचैं हैं, मरमस्थाननिकूं काटैं हैं, छेदैं हैं, तलैं हैं रांधैं हैं तिस तिर्यंचगतिमें कोऊ रक्षक नाहीं, कोऊ उपाय नाहीं, तिर्यंचनिके मध्य माता ही पुत्रका भक्षण करै है तहां अन्य कौन रक्षा करै ?

बहुरि नभचर पक्षीनिके हू दुःखनिके निरंतर समागम है निर्बल पक्षीनिकूं सबल होय सो पकडि मारैं हैं बाज शिकारी आकाशमें मारैं हैं खाय हैं बागलि घूघू इत्यादिक रात्रिमें विचरनेवाले दुष्ट पक्षी कण्ठ जाय तोडैं हैं, मार्जार कूकरा पक्षीनिकू बडा छलतैं मारैं हैं पक्षी भयभीत भये वृक्षनिकी कोटि शाखा पकडि तिष्ठैं हैं सावना बिछावणा बैठना नाहीं, पवनकी जलकी वर्षाकी गडेनिकी शीतकी घोरवेदना भोगि भोगि मरैं हैं दुष्ट मनुष्य पकडि पांखडा उपाडैं हैं चीरैं हैं तप्त तेलमें जीवतेनिकू तलि खाय हैं राधैं हैं जहां देखैं तहां तिर्यंचनिके घोर दुःख हैं जातैं हिंसाका फल है। बहुरि हाथी घोडा, ऊंट, बलध, गधा, भैंस इनकी पराधीनताका दुःखकूं कौन कहि सकै है नाक फोडि सांकल जेवडानिकी नाथ घालना पराधीन बंध्या रहना जिनकूं स्वच्छन्द फिरना खाना नाहीं तावडामें बांधैं हैं वर्षामें बांधैं हैं शीतमें बांधैं हैं पराधीन कहा करैं बहुत बोझ लादैं हैं। मार मार करैं हैं तीक्ष्ण लोह मय और कांटनिकरि बेधैं हैं चर्ममय चाबुकनिकरि वारम्वार समस्त मार्गमें मारैं हैं लाठी लकडीनिकी चोट मारि मरम-स्थाननिमें मारैं हैं पीठ गलि जाय है मांस काटि खाडे पडि जाय हैं कांधे गलि जाय है, नाक गलि जाय है कीडा पडि जाय हैं तो हू पत्थर लकडी धातुनिका कठोर भार तिनकरि हाडनिका चूर्ण हो जाय है पग टूटि जाय है महारोगी हो जाय है नासिका गलि जाय है उठ्या नाहीं जाय है जराकरि जरजरा हो जाय पीठ गलि जाय तो हू बहुत भार लादैं हैं बहुत दूर ले जाय हैं क्षुधा तृषाकी वेदना तथा रोगकी वेदना तथा तावडाकी वेदना नाहीं गिनते अर्धरात्रि गये बहुत भार लादैं हैं अर दूजे दिनके तीन प्रहर व्यतीत भये भार उतारैं कुछ घास कांटा तुस भुस कणरहि नीरस अल्प आहार मिलै है सो उदर भरि मिलै नाहीं पराधीनताका दुःख तिर्यंचगति समान और नाहीं। निरन्तर बंधनमें पींजरनिमें घोर दुःख भोगैं है चांडालके बारणैं बंध्या रहे चमारके कषायीनिके बारणै बंध्या रहै खावनेकूं मिलै नाहीं. अन्य पुण्यवानके बारणैं तिर्यंचनिकूं भक्षण करते देखि मानसिक दुःखकूं प्राप्त होय

है परके आहारग्रासमें मुख चलावैं तो पांसलीनिमें बडे लठनिकरि मारिये है महान घोर क्षुधाका दुःख भोगै है, मारग चालनेका भार वहनेका घोर दुःखं भोगै है रोगनिके घोर दुःख भोगै है अर तिर्यंच बलध कुकरा इत्यादिकनिके नेत्रनिमें कर्णनिमें इन्द्रियमें पोतानिमें घोर वेदना देनेवाली गुंगां चींचडा पैदा होय है सो समस्त मरमस्थाननिमें तीक्ष्ण मुखनिकरि लोहूकूं खेचैं हैं तिनकी घोर वेदना भोगैं हैं केतेककूं घास खानेकूं जल पीवनेकूं नाहीं मिलै तदि घोर वेदना भुगतता ग्रीषमकूं पूर्ण करै अर श्रावण आजाय तदां बहुत तृण पैदा हो जाय तहां हू पापके उदयकरि कोट्या डांस माछर पैदा हो जाय तो जहां चरनेकूं जाय तहां ही डांस माछरनिके तीक्ष्ण डंककरि उछलता फिर तृण हूकी तरफ मुख नाहीं करि सकै, बैठे सोवै जहां जुवानिकी घोर वेदना भोगै है अर ऊंट बलध घोडा इत्यादिक मार्गमें भारके दुःखकरि तथा जराकरि वा रोगकरि थकि जाय चाल्या नाहीं जाय पडि जाय वा पांव टूटि जाय मारते मारते हू चलनेकूं समर्थ नाहीं होय तदि वनमें जलमें पर्वतमें तहां ही छांडि धनी चल्या जाय निर्जनस्थाननिमें कादामें एकाकी पडा हुवा कोऊ शरण नाहीं कौनकूं कहै पानी कौन पियावे घास कहांतैं आवै तावडामें कादामें शीतमें वर्षामें पडा हुवा घोर क्षुधातृषाकी वेदना भोगे है अर अशक्त जानि दुष्टपक्षी लोहमय चूंचनिकरि नेत्र उपाडलैं हैं, मरमस्थाननिमेंतैं अनेकजीव मांस काटि काटि खाय हैं नरक समान घोर वेदना भोगता केई दिन तडफडाट करता कठिनतातैं दुःख भोगि मरैं हैं ये समस्त परका अन्याय; धन हरनेका कपटी छली होय दान लेनेका विश्वासघात करनेका अभक्ष्य-भक्षणका रात्रि-भोजन करनेका निर्माल्य देव द्रव्य भक्षण करनेका फल तिर्यंचयोनिमें भोगैं हैं परके कलंक लगावनेका अपनी प्रशंसा करनेका परकी निन्दा करनेका पराये छल हेरनेका परके मिष्ट भोजनका लालसाका, अतिमायाचार करनेका फल तिर्यंचनिमें भोगै हैं यहां असंख्याते अनंत भव तिर्यंचगतिमें बारबार धारण करता अर मायाचारादि तीव्ररागके परिणामतैं नवीन तिर्यंच नरकका कारण कर्मबन्ध करता अनंतकाल पूर्ण करिये है । ये सब मिथ्याश्रद्धान मिथ्याज्ञान मिथ्याआचरणका फल है ।

बहुरि यहां मनुष्यगतिमें हू केई तो तिर्यंचसमान ज्ञानरहित हैं केतेक गर्भमें आवते ही पिता आदि मर जांय तदि परका उच्छिष्ट भोजन करता क्षुधा-तृषाका पीडा सहता परके तिरस्कार सहता वधै है परका दासपना करै है तिर्यंचनिकी ज्यों तीव्र भार बहै है एक सेर अन्नतैं उदर भरनेके अर्थ एक भार मस्तक ऊपरि एक भार पीठ ऊपर एक हस्तमें धारण करता बारा कोश गमन करता अन्न घृतका तेलका लुणाका धातुका कठोर भारकूं बहै है केई समस्त दिनमें जलका भारकूं वहै है केई विदशनिमें रात्रि दिन गमन करै

हैं गमन समान दुःख नाहीं, तीस कोश बीस कोश उदर भरनेकूं नित्य दौडैं हैं केई पाषाणमृत्तिकादिकनिका भार निरंतर बहै हैं केई सेवामें पराधीनताकरि मनुष्य जन्म व्यतीत करैं हैं केई लुहार लोह घडि पेट भरैं, केई काठ चीरें हैं फाडें हैं तदि अन्न मिलै है केई वस्त्र धोवैं हैं केई वस्त्र रंगैं हैं केई छापैं हैं केई सीवैं हैं केई तूमें हैं केई वस्त्र बुनें हैं केई तिर्यंचनिकी सेवा करैं है तो हू उदर नाहीं भरै है, केई तृणनिका काष्ठनिका भार वहें हैं केई त्रमडानिका छीलना बनावना करैं हैं, केई पीसैं हैं केई दलैं हैं केई खोदैं हैं केई राधैं हैं केई अग्निसंस्कार करैं हैं केई भट्टी चलावैं हैं केई घृत तेल क्षारलवणादिकनिकरि जीविका करैं हैं केई दीनपना कहि घर-घरमें मांगैं हैं केई रंक भए फिरैं हैं केई रोवैं हैं केई कर्मके आधीन हुए आपा भूलि मनुष्यजन्म वृथा व्यतीत करैं हैं केई चोरी करैं हैं छल करैं हैं. असत्य बोलें हैं व्यभिचार करैं हैं केई चुगली करैं हैं केई गैला मारैं हैं, मार्ग लूटैं हैं केई संग्राममें जाय हैं केई समुद्रनिमें विषम वनीमें प्रवेश करैं हैं केई नदी उतरैं हैं कूआ जोतैं हैं खेती करैं हैं नाव चलावैं हैं बोवैं लूने हैं केई हिंसाके आरम्भ हिंसाके व्यापार अभिमानी लोभी हुवा करैं हैं केई आमद खरचके लिखनकर्म करैं हैं केई नाना चित्र करैं हैं केई पाषाण ईंट पकावैं हैं केई घर चुनैं हैं केई द्यूतक्रीडामें रचैं हैं केई वेश्यामें रचैं हैं केई मद्यपायी हैं केई राजसेवा करैं हैं केई नीचनिकी सेवा करैं हैं केई गानविद्यातैं जीविका करै है केई वादित्र बजावैं हैं केई नृत्य करैं हैं कर्मके वश पडे नाना प्रकारके क्लेशतैं मनुष्यपना व्यतीत करैं हैं, पुण्य-पापके आधीन हुवा नाना मनुष्य नाना प्रकार कर्म धारैं प्रत्यक्ष नाना फल भोगते दीखैं हैं केई अन्नादिक बेचि जीवैं हैं केई गुड खांड घृत तैलादिकरि जीवैं हैं केई वस्त्रनिकरि, केई स्वर्णरूपादिककरि, केते हीरा मोती मणि माणिक्यादिकनिका व्यापारकरि आजीविका करैं हैं केई लोहा पीतल इत्यादिक धातु, केई काष्ठ पाषाण, केई मेवा मिठाई पूवा घेवर मोदकादिककरि, केई अनेक व्यंजन अनेक औषधि इत्यादिकनिकरि कर्म आधीन नाना प्रकार जीविका करैं हैं, केई व्यापारी हैं केई सेवक हैं, कई दलाल हैं, केई उद्यमी हैं, केई निरुद्यमी आलसी हैं, केई यथेच्छ वस्त्र आभरण पहरैं हैं, केते कष्टतैं उदर भरैं है, केई कष्टरहित सुखिया हुआ भोजन करैं हैं, केई परघर जाय जाचक होय खाय हैं केई पूज्य गुरु बन खाय हैं, केई रंक दीन होय खाय हैं, केई नाना रससहित भोजन करैं हैं, केई नीरस भोजन करैं हैं, केई उदर भरि अनेक बार भोजन करैं हैं, केई कनका नीरस भोजनतैं आधा उदर भरै

हैं, केई कूं एक दिनके अन्तर मिलैं, केईनिकूं दो तीन दिन भये भी कठिनतातैं मिलै केईनको नाहीं मिलनेतैं क्षुधा तृषाकी वेदना कर मरण होय है केई बंदीग्रहमें पराधीन पडैं घोर वेदना सहैं, केई अपने हितूनिका वियोगकी दाहकरि बलैं है, केई रोगजनित घोर वेदना समस्त पर्यायमें भोगता आर्तितैं मरैं हैं, केई ज्वरकी स्वासका कांसका अतीसारका केई प्रकारका वायुका पित्तका उदरविकार जलोदर कटोदरादिककी घोर वेदना भुगतैं हैं, केई कर्णशूल दंतशूल नेत्रशूल मस्तक शूल उदरशूलकी घोर वेदना भोगि मरैं हैं, केई जन्मतैं अन्धा, केई जन्मतैं बहरा गुंगा केई हस्त-पादादिक अंगकरि विकल भये जन्म पूर्ण करैं हैं, केई केती आयु व्यतीत भए अन्धा भया बहरा भया लूला भया पागल हुवा पराधीन पड्या मानसीक अर शरीरसम्बन्धी घोर दुःख भोगै हैं, केतेक रुधिरविकारकरि कोढ, खाज, पांवबीच दाद इत्यादिकनि करि अंगुल गलि जाय हस्त गलि जाय नासिका पादादिक गलि जाय है, कर्मका उदयकी गहन गति है, केई अन्तरायका उदयकरि निर्धन भये नाना दुःख भोगैं हैं कदाचित् उदर भरैं कदे नाहीं भरै नीरस भोजन गला हुवा सिडा हुवा बहुत कष्टतैं मिलै नाना तिरस्कार भुगतैं हैं, घर रहनेकूं महा जीर्ण तिस ऊपरि तृणफूंस पत्रकी हू छाया पूरी नाहीं अति सांकडो तामें हू सांप बीछू घोरनिका चारों तरफ बिल अर महादुर्गन्ध अर चांडालादि कुकर्मीनिके घरनिके समीप रहना खावनेकूं पाव भर धान नाहीं भरै अर कलहकारिणी कालि कटुक वचनयुक्त महाभयङ्कर विडरूप डरावनी पापिणी स्त्रीका संगम अर अनेक रोगी भूखे विलाप करते कुरूप पुत्र पुत्रीनिका संगम पापके उदयतैं पावैं हैं तथा व्यसनी दुष्ट महापातकी पुत्रका संगम वैरीनितैं हू महावैरी जबर दुष्ट भाईका संगम तथा दुःष्ट अन्यायमार्गी बलवान पापी दुराचारी व्यसनी पडौसीनिका संगम तथा लोभी दुष्ट अवगुणग्राही कृपण क्रोधी मूर्ख स्वामीकी सेवा महाक्लेशकारी पापके उदयतैं पावैं हैं तथा कृतघ्नी दुष्ट छिद्रहेरनेवाला जबर सेवकका मिलना ये समस्त संसारमें पापके उदयतैं देखिये है । बहुरि धर्मरहित अन्यायमार्गी क्रूर राजाका राजमें वसना, दुष्टमन्त्री प्रधान कोटपालनिका संगम मिलना, कलङ्क लगि जाना, अपयश हो जाना, धनका नष्ट होना ये सर्व पंचमकालके मनुष्यनिके बहुत प्रकार पाइये है इस दुःखमकालमें जे मनुष्य उपजैं हैं ते पूर्व जन्ममें मिथ्यादृष्टि व्रत-संयमरहित होय ते भरतक्षेत्रमें पंचमकालके मनुष्य होय हैं अर कोऊ मिथ्याधर्मी कुतप कुदान मन्दकषाय प्रभावसूं आवैं सो राज्य ऐश्वर्य धन भोग सम्पदा नीरोगता पाय अल्प आयु इत्यादिक भोगि पाप उपार्जन करनेवाले अन्याय अभक्ष्य मिथ्यामार्गमें प्रवर्तनकरि संसार परिभ्रमण करैं हैं ।

कोऊ विरले पुरुष यहां सम्यग्दर्शन संयम व्रत धारण करैं हैं। मन्दकषायी आत्म-निंदा गर्हायुक्ततैं मनुष्य जन्मकूं

सफलकरि स्वर्गमें महर्द्धिकदेव होय हैं अर यहां कोऊ पूर्वजन्ममें मन्दकषाय उंज्ज्वलदानादिक करनेवाला पुण्य संयुक्त भी होय ताके हू इष्टका वियोग अनिष्ट संयोग होय ही । संसारके दुःखका स्वभाव देखो, जो भरत चक्रवर्तीके हू लघुभ्राता ही महाअनिष्ट होय बलके मदकरि चक्रीको मानभंग कियो न्याय मार्गतैं देखिये तो बडा भाई पिताके पदमें तिष्ठता नमने योग्य था फिर चक्रवर्ती अर कुलमें बडा ताकी उच्चता लघुभ्राता होंय देखि नाहीं सकै, भरत बडा सांचा ममत्वसूं राज्यकूं शामिल भोगनेकूं बुलाया परन्तु भाईतैं बडी ईर्षा करी अपयश कीयो तदि अन्यकी कहा कथा । कोऊकै तो स्त्री नाहीं ताकी तृष्णा करि स्त्री विना अपना जीवन वृथा मानि दुखित है, कोऊकै स्त्री है सो दुष्टिनी है, व्यभिचारिणी है, कलहकारिणी मर्मके विदारनेवाली तथा रोगकरि निरन्तर संताप करनेवाली होय ताकरि महादुःखकूं प्राप्त होय है । बहुरि कोऊकै आज्ञाकारिणी भर्तारकी अज्ञानुसार चलनेवाली मर जाय ताके वियोगका महा दुःखकूं प्राप्त होय है । केतेनके वृद्ध अवस्थामें निर्धनतामें स्त्रीका मरण हो जाय छोटे बालक माताके वियोगकरि रहि जांय तिनकूं देखि संतापकूं प्राप्त होय है बहुरि केते वृद्ध अवस्थामें अपना विवाहकी वांछा करैं अर मिलै नाहीं ताकरि दुःखी होय हैं । केई पुत्ररहित होय दुःखी हैं केई कुपूत पुत्रनिकरि दुःखी हैं, कोऊके सुपुत्र यशवान है सो मरण करै ताके वियोगका महा दुःख है, केईनिके बैरी समान मारनेवाला कुवचन बोलनेवाला ऐसा भाईका समागम समान दुःख नाहीं, कोऊ महारोग अर निर्धनताके दुःखकरि क्लेशित होय हैं, केईकै पुत्री बहुत होय तिनके विवाहादिक योग्य धन नाहीं तातैं दुःखी हैं, केईकै पुत्री वर योग्य बडी होय अर वरका संयोग नाहीं मिलै तदि बडा दुःख अर कन्या आंधी लूलि गूंगी बावली अङ्गहीन विड्रूप होय, ताका महादुःख है अर पुत्रीके कुबुद्धी व्यसनी निर्धन रोगी पापी वरका संयोग हो जाय तो घोर दुःख होय अर पुत्री थोरी अवस्थामें विधवा हो जाय ताका महादुःख, पुत्रीकूं निर्धन दुःखित देखै तो महादुःख होय अर पुत्री व्यभिचारिणी होय तो मरणतैं भी अधिक दुःख होय है अर विवाही पुत्रीका मरण होय तो दुःख होय हैं, माता पिताके वियोगका दुःख होय है, पिता अन्य जोरावरनिका निर्दयीनिका कर्ज छांडि जाय, ताका दुःख होय है जातै ऋणसमान दुःख नाहीं पिता ऋणकरि जाय तो दुःख, माता भगिनी व्यभिचारिणी दुष्ट होय तो महादुःख कोई जबरीतैं इनकूं हर ले जाय, खोस ले तो महादुःख, अपना सन्तानकूं कोऊ चोर ले जाय तथा मार जाय ताका घोर दुःख, दुष्टनिका समागमका दुःख, दुष्ट अधर्मी अन्यायमार्गीनिके शामिल आजीविका होय तो महादुःख, दुष्ट अन्यायीनिका आधिन होय तो दुःख, बहुरि मनुष्यजन्ममें धनवान होय निर्धन होनेका दुःख तथा मानभंगका दुःख है बहुरि अपना मित्र होयकरि फिर छिद्र प्रगट करनेवाला असत्यसंभाषणकरि

अपराध लगानेवाला शत्रु होय ताका बडा दुःख है यो संसारवास सर्वप्रकार दुःखरूप ही है राजा होय रंक होय है रंकका राजा होय है इत्यादिक मनुष्यपर्याय में घोरदुःख ही हैं।

अर कदाचित् देवपर्याय पावै तो तहां हू मानसीक दुःख होय हैं, यद्यपि देवनिकैं निर्धनता नाहीं, जरा नाहीं, रोग नाहीं, क्षुधा-तृषा मारण ताडना वेदना नाहीं, तथापि महान ऋद्धिके धारकनिकूं देखि आपकूं नीचा मानता मानसीक दुःखकूं प्राप्त होय है। कोई इष्ट देवांगनाका वियोग होनेका दुःखकूं प्राप्त होय है, यद्यपि देवांगनादिक कोऊ मरण करै है ताकी एवज शरीर रूप ऋद्ध्यादिक करि तैसाका तैसा अन्य उपजै है तो हू उस जीवका वियोगका दुःख उपजै ही, बहुरि पुण्यहीन देव है ते इंद्रादिक महर्द्धिकदेवनिकी सभामें प्रवेश नाहीं कर सकें ताका मानसीक बडा दुःख है। तथा आयु पूर्ण भये देवलोकतैं अपना पतन दीखै ताके दुःखकूं भगवान केवली ही जानै है। इस संसारमें स्वर्गका महर्द्धिकदेव मरिकरि एकेन्द्रीय आय उपजै है तथा मल मूत्रके भरे गर्भमें रुधिर-मांसमें आय जन्मै है इस संसारमें परिभ्रमण करता पाप-पुण्यके प्रभावकरि श्वानादिक तिर्यंच हैं ते तो देव जाय उपजै है अर देव ब्राह्मण चांडाल तिर्यंच हो जाय, कर्मनिके आधीन हुवा जीव चारूं गतिनिमें परिभ्रमण करे हैं संसारमें राजा होयकैं रंक होय है स्वामीका सेवक होय है सेवकका स्वामी होय है, पिता होय सोही पुत्र हो जाय है पुत्रका पिता हो जाय है, पिता पुत्र ही माता हो जाय भार्या हो जाय बहिन हो जाय, दासी दास हो जाय, दासी दास हो पिता हो जाय, माता हो जाय, आप ही आपके पुत्र हो जाय, देवता होय तिर्यंच हो जाय, धनाढ्यका निर्धन, निर्धनका धनाढ्यपना पावै है, रोगी दरिद्रीनिका दिव्यरूपवान हो जाय दिव्यरूपवान महाविड्रूप देखने योग्य नाहीं रहै है।

बहुरि शरीर धारण हू बडा भार है भारकूं बहता पुरुष तो कोऊ स्थानमें भार उतारि विश्रामकूं प्राप्त होय है देहके भारकूं बहता पुरुष कहां हू विश्रामकूं प्राप्त नाहीं होय है, जहां औदारिक वैक्रियिकका क्षणमात्र भार उतरैं, तहां आत्मा इनूंतैं अनंतगुणा तैजस कार्माणशरीर का भार धारै है। कैसाक है तैजस-कार्माण जो आत्माका अनन्तज्ञान-दर्शन-वीर्यकूं दाबि राख्या है जाकरि केवलज्ञान तथा अनन्तसुख शक्ति ताका अभावतुल्य हो रह्या है जैसै वनमें अन्ध मनुष्य भ्रमण करै हैं तैसैं मोहकरि अन्ध चतुर्गतिमें परिभ्रमण करै है संसारी जीव रोग दरिद्र वियोगादिकके दुःखकरि दुःखित होय धन उपजाय दुःख दूर करनेकूं मोहकरि अन्ध हुवा विपरीत इलाज करै है सुखी होनेकूं अभक्ष्य-भक्षण करै है, छल कपट करै है, हिंसा करै है, धन के वास्तैं चोरी करै मार्ग लूटैं, परन्तु धन हू पुण्यहीनकै हाथ नाहीं आवै है। सुख तो पंच पापनिके त्यागतै होय, मिथ्यात्वी

पंच पाप करि अपने धनकी वृद्धि सुखकी वृद्धि चाहै, इन्द्रियनिके विषयकी प्राप्ति होनेमें सुख जाने है सो ही मोहकरि अन्धापना है । संसारी जीवके इहां हू दुःख देखिये हैं, ते जीवनिके मारनेतैं असत्यतैं चोरीतैं कुशीलतैं परिग्रहकी लालसातैं क्रोधतैं अभिमानतैं छलतैं लोभतैं अन्यायतैं ही दुःख देखिये है, अन्यमार्ग दुःख होनेका नाहीं है ऐसै प्रत्यक्ष देखता हू पापनिमें रचैं है यो विपरीतमार्ग ही अनन्त दुःखनिका कारण संसार है, दुःखनितैं दुःख ही उपजै जैसैं अग्नितैं अग्नि उपजै है, ऐसैं संसारका सत्यार्थ स्वरूपकूं वारम्वार चिंतवन अनुभवन करै, ताकै संसारतैं उद्वेग रहै विरक्त होय सो संसार–परिभ्रमण दूर करनेका उद्यममें सावधान होय । ऐसै तीसरी संसारभावना वर्णन करी ॥ ३ ॥

अब एकत्वभावना कहिये है ताहि अपना स्वरूपकी प्राप्तिके अर्थ चिंतवन करो । ये जीव कुटुम्ब स्त्रीपुत्रादिकके अर्थ, तथा शरीरके पालनेके अर्थ, वा देहके अर्थ बहु आरंभ वहुपरिग्रह अन्याय अभक्ष्यादिक करै है ताका फल घोर दुःख नरकादिपर्यायनिमें एकाकी आप भोगै है । जिस कुटुम्बके अर्थि वा अपना देहके अर्थि पाप करै है सो देह तो भस्म होय उडि जायगा, कटुम्ब कहां मिलैगा ? अपने उपजाये कर्मनिका उदयकरि आये रोगादिक दुःख वियोग तिनकूं भोगता जीवके समस्त मित्र कुटुंवादिक प्रत्यक्ष देखते हू किंचित् दुःख दूरि नाहीं कर सकै है तदि नरकादिगतिमें कौन सहायी होयगा, एकाकी भोगैगा, आयुका अंत होते एकाकी मरै है, मरणतैं रक्षा करनेकूं कोऊ दूजा सहायी नाहीं है, अशुभका फल भोगनेमें कोऊ अपना सहायी नाहीं है परलोक प्रति गमन करते आत्माके स्त्री पुत्र मित्र धन देह परिग्रहादिक सहाई नाहीं है, कर्म एकाकीकूं ले जायगा, इस लोकमें जे बांधव मित्रादिक हैं ते परलोकमें बांधव मित्रादिक नाहीं होयगे अर जे धन शरीर परिग्रह राज्य नगर महल आभरण सेवकादि परिकर यहां है ते परलोक लार नाहीं जायेंगे, इस देहके सम्वन्धी इस देहका नाश होतै संबंध छांडेंगे । ये अपने कर्मके आधीन सुख दुःख आपके आपही भोगेंगे जीव एकाकी जायगा तातै सम्बन्धीनिमें ममता करि परलोक बिगाडना महा अनर्थ है । यहां जो सम्यक्त्व व्रत संयम दान भावनादिक करि धर्म उपार्जन किया सो इस जीवके सहाई होय ह एक धर्मविना कोऊ सहाई नाहीं, एकाकी है, धर्मके प्रसादतैं स्वर्गलोकमें इन्द्रपना महर्द्धिकपना पाय तीर्थंकर चक्रवर्तीपना मण्डलेश्वरपना उत्तम रूप बल विद्या संहनन उत्तम जाति कुल जगतपूज्यपना पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है जैसे बन्दीगृहमें बंधनीकरि बन्ध्या पुरुषकूं बंदीगृहमें राग नाहीं

है, तैसैं सम्यग्ज्ञानी पुरुषकै देहरूप बंदीगृहमें राग नाहीं है । जातै कुटुम्ब अभिमानादिक घोर बन्धनमें पराधीन हुवा दुःख भोगै है एकाकी ही अपना स्वरूप छांडि परद्रव्य देह परिग्रहादिकनिकूं आपा जाणि अनंतकाल भ्रमै है, एकाकी अन्य गतितैं आय जन्म धारै हैं, कर्म विना अन्य लार नाहीं आया है, पाप-पुण्यकर्म राजा रंक नीच ऊंचके गर्भादिके योनिस्थानमें ले जाय उपजावै, अर एकाकी ही आयु पूर्ण भये समस्त कुटुम्बादि छांडि परलोककूं जाय है फिर पीछा आवना नाहीं गर्भमें वसनेका दुःख, योनि-संकटका दुःख, रोगसहित शरीरका दुःख, दरिद्रका घोर दुःख, वियोगका महा दुःख, क्षुधा तृषादि वेदनाका दुःख, अनिष्ट दुष्टनिका संयोगका दुःख यो जीव एकाकी भोगै है अर स्वर्गनिके असंख्यात कालपर्यंत महान सुख अर अपछरानिका संगम असंख्यात देवनिका स्वामीपना हजारां ऋद्धयादिक सामर्थ्य पुण्यके उदयकरि एकाकी जीव भोगै है अर पापके उदयतैं नरकमें ताडन मारण छेदन भेदन शूलारोहण कुम्भीपाचन वैतरणीनिमज्जन, क्षेत्रजनित शरीरजनित मानसीक तथा परस्परकृत घोर दुःख एकाकी भोगै है, तथा तिर्यंचनिके पराधीन बंधना बोझ भार लादना कुवचन श्रवण करना मरमस्थानमें नानाप्रकार घात सहन, दीर्घकालपर्यंत भार लेय बहुत दूर चलना, क्षुधा तृषा सहना रोगनिकी नानावेदना भोगना, शीत उष्ण पवन तावडा वर्षा गडा इत्यादिकी घोर वेदना भोगना, नासिकादिकमें जेवडा घालि दृढ बांधना, घसीटना, चढना समस्त दुःख पापके उदयतैं एकाकी जीव भोगै है, कोऊ मित्र पुत्रादि सहाई लार नाहीं रहै है, एक धर्म ही सहाई है, ऐसैं एकत्वभावना भावनेतैं स्वजननिमें प्रीति नाहीं बधै है अन्य परिजनोंमें द्वेषका अभाव होय, तदि अपने आत्माकी शुद्धतामें ही यत्न करै । ऐसैं एकत्वभावना वर्णन करी ॥ ४ ॥

अब अन्यत्वभावनाका स्वरूप चिंतवन करना योग्य है—हे आत्मन् ! इस संसारमें जे जे स्त्री पुत्र धन शरीर राज्य भोगादिकनिका तेरे सम्बन्ध है ते ते समस्त तेरा स्वरूपतैं अन्य हैं भिन्न हैं कौनके शोचमें विचारमें लगि रहै हो अनंतानंत जीवनिका अर अनंत पुद्गलनिका सम्बन्ध तुम्हारे अनन्त बार होय होय छूटै है, अज्ञानी संसारी आपतैं अन्य जे स्त्री पुत्र मित्र शत्रु धन कुटुम्बादिक तिनका संयोग-वियोग सुख दुःखदिकनिका चिंतवनकरि काल व्यतीत करै है अपने नजीक आया मरण वा नरक तिर्यंचादिक गतिनिमें प्राप्त होना ताका चिंतवन विचार नाहीं करै है जो समय समय यो मनुष्य आयु जाय है यामें ही जो मेरा हित नाहीं किया, पापतैं पराङ्मुख नाहीं भया तथा कुगतिके कारण रागद्वेष मोह काम क्रोध लोभादिक महा छलीतैं आत्माकूं नाहीं छुडाया तो तिर्यंच नरकगतिमें अज्ञानी पराधीन अशक्त हुआ कहा करूंगा इस पंच परिवर्तनरूप संसारमें

अनंतानन्तकालतैं परिभ्रमण करता जीवके कोऊ अपना स्वजन नाहीं है ये। स्वामी सेवक पुत्र स्त्री मित्र बांधवनिकूं जो अपना मानो हो सो मिथ्यामोहकी महिमा है याहीकूं मिथ्यात्व कहिये है। ये तो समस्त सम्बन्ध कर्मजनित अल्प काल है, अचानक वियोग होयगा। ये समस्त सम्बन्ध विषय-कषाय पुष्ट करनेकूं अपना स्वरूपकी भूलि होनेकूं हैं संसारमें समस्त जीवनितैं अपना शत्रु मित्रपना अनेक बार भया है अर आगानै भी इस परद्रव्यनिकै सम्बन्धमें आत्मबुद्धिकरि अनन्तकाल भोगोगे तहां राग द्वेष बुद्धिकरि शत्रु मित्र बुद्धिहीतैं एकेन्द्रियपना तथा ज्ञान पिछान विचाररहित अज्ञानी भये अनन्तकाल भ्रमोगे। जैसैं अनेक देशनितैं आए भिन्न भिन्न अनेक पथिक रात्रिमें एक आश्रममें वसैं हैं अथवा एक वृक्षके विषैं अनेक दिशानितैं आए अनेक पक्षी आय वसैं हैं प्रभातकाल भये नाना मार्गनिकरि नाना देशनिकूं जाय हैं तैसैं स्त्री पुत्र मित्र बांधवादिक नाना गतिनितैं पाप पुण्य बांधि आज कुलरूप आश्रममें शामिल भये हैं आयु काल पूर्ण भये पाप पुण्यके अनुसार नरक तिर्यंच मनुष्यादिक अनेक भेदरूप गतिनिकूं प्राप्त होयेंगे कोऊ ही कोऊका मित्र नाहीं, पुण्य पापके अनुकूल दोय दिन आपका उपकार करि संसारमें जाय रुलै हैं, इस संसारमें जीवनिकी भिन्नभिन्न प्रकृति है कोऊका स्वभाव कोऊसूं मिले नाहीं है स्वभाव मिल्यां विना काहेकी प्रीति है, परस्पर कोऊ अपना अपना विषय कषायरूप प्रयोजन सधता दीखै है। तिनकै प्रीति होय है, प्रयोजन विना प्रीति नाहीं है। ये समस्त लोक बालू रेतका कणका ज्यो कोऊका कोऊसूं सम्बन्ध है नाहीं, जैसै बालूका भिन्न भिन्न कण कोऊ जलादिक सचिक्कण द्रव्यका समागमतैं मूठीमें बांधि जाय, चिपि जाय, चेप दूर भये कणा कणा भिन्न भिन्न विखरै है, तैसैं समस्त पुत्र स्त्री मित्र बांधव स्वामी सेवकनिका सम्बन्ध हू कोऊ अपना विषय वा लोभ अभिमानादि कषाय जेते साधता दीखै है ते ते प्रीति जानों। जिनतैं इन्द्रियनिके विषय सधै नाहीं, अभिमानादि कषाय पुष्ट होय नाहीं, तिनके लूखे परिणामनिमें प्रीति नाहीं। अर विना प्रयोजन हू जगतमें प्रीति देखिये है सो लोकलाजका अभिमानतैं तथा आगामी कुछ प्रयोजनकी आशातैं, तथा पूर्वकालका उपकार लोपूंगा तो लोकमें मेरा कृतघ्नपना दीखैगा इस भयतैं मिष्ट वचनादिकरूप प्रीति करै हैं कषाय विषयनिका सम्बन्ध विना प्रीति है ही नाहीं सो देखिये ही है जिसतैं अपना अभिमान सधता देखै वा धनका लाभ वा विषयभोगनिका लाभ तथा आदरका वडाईका वा अपना पूज्यपना होनेका लाभके अर्थ वा जसके अर्थ अथवा कोऊ प्रकार आपदाका भयतैं प्रीति करै है, विषय कषायका चेप विना प्रीति है ही नाहीं समस्त अन्य हैं। माता हू जो पुत्रका पोषण करै सो दुःखमें वृद्धपनामें अपना आधार जानि पोषे है, अर पुत्र जो माताका पोषण करै है सो

ऐसा विचार करै है जो मैं माताका सेवा नाहीं करूंगा तो जगतमें मेरा कृतघ्नीपनाका अपवाद होयगा तथा पांच अदम्यांमें मेरी उच्चता नाहीं रहैगी ऐसा अभिमानतैं प्रीति करै है । वैरी हू उपकार दान सन्मानादिकरि अपना मित्र होय है अर अपना अति प्यारा पुत्र हू विषयनिके रोकनेतैं अपमान तिरस्कारादि करनेकरि अपना क्षणमात्रमें शत्रु होय है । तातैं कोऊका कोऊ मित्र हू नाहीं अर शत्रु हू नाहीं है, उपकार अपकारकी अपेक्षा मित्र शत्रुपना है अर संसारीनिके जो अपना विषय अर अभिमान पुष्ट करै सो मित्र है अर विषय अर अभिमानकूं रोकै सो वैरी है जगतका ऐसा स्वभाव जानि अन्यमें रागद्वेषका त्याग करो, यहां जे घणा प्यारा स्त्री पुत्र मित्र बांधव तुम्हारे हैं ते समस्त स्वर्ग मोक्षका कारण जो धर्म संयमादिकनिमें वीतरागतामें अत्यन्त विघ्न करैं हैं, अर हिंसा असत्य चोरी कुशील परिग्रहादिक महा अनीतिरूप परिणाम कराय नरकादिक कुगति पावनेका बन्ध करावै है ते अति वैरी हैं, इस जीवकूं मिथ्यात्व विषय कषायादिकतैं रोकि संयममें दशलक्षणधर्ममें प्रवृत्ति करावैं हैं ते मित्र हैं, ते निर्ग्रंथ गुरु हीं हैं । बहुरि यो आत्मा स्वभावहीतैं शरीरादिकनितैं विलक्षण है चेतनमय है देह पुद्गलमय अचेतन जड है जो देह ही अन्य है विनाशीक है तो याका सम्बन्ध स्त्री पुत्र मित्र कुटुम्ब धन धान्य स्थानादिक अन्य कैसैं नाहीं होय । यो शरीर तो अनेक पुद्गल परमानुनिका समूह मिलि बन्या है ते शरीरके परमाणु भिन्न भिन्न बिखरि जांयगे अर आत्मा चैतन्यस्वभाव अखण्ड अविनाशी रहैगा तातैं सकल सम्बन्धनिमें अन्यपनाका दृढ निर्णय करो । बहुरि कर्मके उदयजनित राग द्वेष मोह काम क्रोधादिक ही भिन्न हैं विनाशीक हैं तो अन्य शरीरादिक सम्बन्धी अन्य कैसैं नाहीं होय । यातैं अपना ज्ञान दर्शनस्वभाव विना अन्य जे ज्ञानावरणादिक जे द्रव्यकर्म अर रागद्वेषादिक भावकर्म शरीर परिग्रहादिक नोकर्म ये समस्त अन्य हैं, ये पुत्रादिक हैं ते अन्य गतीतैं अन्य पाप पुण्य स्वभाव कषाय आयु कायादिकका सम्बन्धरूप देखिये हैं तुम्हारा स्वभाव पाप पुण्य इनतैं अन्य है। यातैं अन्यत्वभावना भावो तो इनकी ममताजनित घोरबंधका अभाव होय । ऐसैं अन्यत्वभावनाका वर्णन किया ॥ ५ ॥

अब अशुचि भावना वर्णन करै हैं–भो आत्मन् ! इस देहका स्वरूपकूं चिंतवन करो महामलीन माताका रुधिर पिताका वीर्यकरि उपज्या है, महादुर्गंध मलिन गर्भकेविषै रुधिर–मांसका भऱ्या हुआ जरायुपटलमें नव मास पूर्णकरि महादुर्गंध मलीन योनितैं निकलनेका घोर संकट सहै है, अर सप्तधातुमय देह रुधिर मांस हाड चाम वीर्य मज्जया नसांका जालमय देह धाऱ्या है, मल मूत्र लट कीडेनिकरि भऱ्या महा अशुचि है, जाके नव द्वार निरन्तर दुर्गंध मलकूं स्रवैं हैं; जैसैं मलका बनाया घडा अर मलकरि भऱ्या अर फूटा चारों तरफ मल

स्रवै सो जलसूं धोवे कैसैं शुचि होय ? जगतमें कपूर चन्दन पुष्प तीर्थनिके जलादिक हैं ते देहके स्पर्शमात्रतैं मलीन दुर्गंध हो जांय सो देह कैसैं पवित्र होय ? जेते जगतमें अपवित्र वस्तु हैं ते देहके एक एक अवयवके स्पर्शतैं ही हैं, मलके मूत्रके हाडके चामके रसके रुधिरके मांसके वीर्यके नसांके केशके नखके कफके लालके नासिकाके मल दन्तमल नेत्रमल कर्णमलके स्पर्शमात्रतैं अपवित्र होय हैं, द्वींद्रियादिक प्राणीनिके देहका सम्बन्धविना कोऊ अपवित्र वस्तु ही लोकमें नाहीं हैं, देहका सम्बन्धविना लोकमें अपवित्रता कहांतैं होय ? अर देहके पवित्र करनेकूं त्रैलोक्यमें कोऊ पदार्थ नाहीं, जलादिकनितैं कोटिबार धोइये तो जल हू अपवित्र होजाय। जैसैं कोयलाकूं ज्यों धोवो त्यों कालिमा ही स्रवै उज्ज्वल नाहीं होय तैसैं देहका स्वभाव जानि याकूं पवित्र मानना मिथ्या दर्शन है । यो देह तो एक रत्नत्रय उत्तमक्षमादिक धर्मकूं धारण करता आत्माका सम्बन्धकरि देवनिकरि वंदनेयोग्य पवित्र होय है, बहुरि धनादिक परिग्रह अर पंचइंद्रियनिके विषय अर मिथ्यात्व अर क्रोध मान माया लोभ अमूर्तीक आत्माका स्वभावकूं महा मलीन करै हैं, अधर्म करै हैं, निंद्य करै हैं दुर्गतिकूं प्राप्त करै हैं यातैं काम क्रोध रागादि छांडि आत्माकूं पवित्र करो, देह पवित्र नाहीं होयगा, इसप्रकार देहका स्वरूप जानि जे देहतैं राग छांडि आत्मातैं अनादितैं सम्बन्धनै प्राप्त भये रागादिक कर्ममल तिनके दूर करनेमें यत्न करो, धन संपदादिक परिग्रह अर पंच इन्द्रियनिके भोग अर देहमें स्नेह ये आत्माकूं मलीन करनेवाले हैं तातैं इनका अभाव करनेमें उद्यम करो । धर्म है सो आत्माकै काम, क्रोध, लोभ, मद, कपट, ममता, वैर, कलह, महाआरम्भ, मूर्च्छा ईर्षा अतृप्तितादिक हजारों दोषनिकूं उपजावै है, इस लोकसम्बन्धी समस्त दोष अतिचिंता दुर्ध्यान महाभय उपजावनेवाला एक धनकूं निर्णयकरि चिंतवन करो, अर पंचइन्द्रियनिके विषय आत्माकूं आपा भुलाय महानिंद्य कर्म करावै हैं, जो निंद्य कर्म नाहीं करनेयोग्य जगतमें हैं तिनकूं इन्द्रियनिके विषयनिकी वांछा करावै है, अर देहमें स्नेह है सो मांस मज्ज्या हाडमय महादुर्गंध सिड्या हुआ कलेवरसूं राग है तो महामलिनभावको कारण है ऐसा शरीरकी शुचिता करनेवाला दशलक्षण धर्म ही है । शुचिपणा दोय प्रकार है एक लौकिक, दूजा लोकोत्तर । जो कर्ममलकूं धोय शुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थिर होना सो लोकोत्तर शौच है याका कारण रत्नत्रयभाव है । तथा रत्नत्रयके धारक परमसाम्यभावतैं तिष्ठते साधु हैं जिनके सङ्गमकरि शुद्धात्माकूं प्राप्त होइये । अर लौकिकशुचि अष्ट प्रकार है–कोऊ कालशौच जो प्रमाणीककाल व्यतीत भये लोकमें

शुचि मानिये है, कोऊकूं अग्निकरि संस्कार स्पर्शनकरि शुचि मानिये है, कोऊकूं पवनकरि, कोऊकूं भस्मतैं मांजने करि, कोऊकूं मृत्तिकातैं, जलतैं, कोऊकूं गोमयतैं, कोऊ ज्ञानतैं ग्लानि मिट जानेतैं लौकिकजन मनमें शुचिपनाका संकल्प करैं हैं। परन्तु शरीरके शुचि करनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है शरीरके संसर्गतैं तो जल भस्मादिक अशुचि हो जाय हैं यो शरीर आदिमें अन्तमें मध्यमें कहां हू शुचि नाहीं। याका उपादान कारण रुधिर वीर्य सो शुचि नाहीं, यो आप शरीर शुचि नाहीं, याकै अभ्यन्तर दुर्गंध मल मूत्रादिक बाह्य चाम हाड मांस रुधिर शुचि नाहीं जो याकूं समस्त तीर्थ समस्त समुद्रनिके जलकरि धोइये है तो समस्त जलकूं हू अशुचि करै ह। यो देह है सो सर्वकाल रोगनिकरि भऱ्या है अर सर्व काल अशुचि है, अर सर्वथा विनाशीक है, दुःख उपाजावनेवाला है, याकै शुचि करनेका इलाज प्रतिकार धूप गंध विलेपन पुष्प स्नान जल चन्दन कर्पूरादिक कोऊ है नाहीं, याकै स्पर्शनमात्रतैं पवित्र वस्तु हू अङ्गाराके स्पर्शनतैं अङ्गारा होय तैसैं अपवित्र होय हैं। ऐसैं शरीरका अशुचिपना चिंतवन करनेतैं शरीरका संस्कार करनेमें रूपादिकमें अनुरागका अभावतैं वीतरागमें यत्न करै है। ऐसैं अशुचिभावना वर्णन करी ॥ ६ ॥

अब आस्रवभावनाका वर्णन करिये है—कर्मके आवनेके कारणतैं आस्रव है जैसैं समुद्रके बीच जहाजमें छिद्रनिकरि जल प्रवेश करै है तैसैं मिथ्यात्वभावकरि अर पंच इन्द्रिय छठा मनका विषयनिमें प्रवर्तनिके त्यागका अभावकरि त्यागका अभावकरि अर छह कायके जीवनिके हिंसाका त्याग नाहीं करनेकरि अर अनन्तानुबंधीकूं आदि लेय पच्चीस कषायनितैं तथा मन वचन कायके भेदतैं पंद्रह प्रकार योग ऐसे सत्तावन द्वार कर्म आवने का है। तिनमें मिथ्यात्व कषाय अव्रतादिकनिके अनुसार मन वचन कायतैं शुभ-अशुभ कर्मका आस्रव होय है, तहां पुण्यपापके संयोगतैं मिलै विषयनिमें संतोष करना, विषयनितैं विरक्तता, परोपकारके परिणाम, दुःखिनिकी दया, तत्वनिका चिंतवन समस्त जीवनिमें मैत्रीभाव इत्यादि भावना परमेष्ठीमें भक्ती, धर्मात्मामें अनुराग, तप व्रत शील संयमर्म परिणाम इत्यादिकरूप मनकी प्रवृत्ति पुण्यका आस्रव करै है अर परिग्रहमें अभिलाषा, इन्द्रियनिके विषयनिमें अति लोलुपता, परके धन हरनेमें परिणाम, अन्याय प्रवर्त्तनमें अभक्ष्य भक्षणमें सप्त व्यसन सेवनमें परके अपवाद होनेमें अनुराग रखना, परके स्त्री पुत्र धन आजीविका का नाश चाहना, परका अपमान चाहना, आपकी उच्चता चाहना इत्यादिक मनके द्वारैं अशुभआस्रव होय है, बहुरि सत्य हित मधुर वचनकरि तथा परमागमके अनुकूल वचनकरि परमेष्ठी का स्तवन करि सिद्धान्तका वांचना तथा व्याख्यानकरि न्यायरूप वचनकरि पुण्यका आस्रव होय है। बहुरि परकी निंदा आपकी प्रशंसा अन्यायका प्रवर्तन जिस वचनकरि होय तथा हिंसाके आरम्भ करावनेवाला

विषयानुराग वधावनेवाला कपायरूप अग्निके प्रज्वलित करनेवाला तथा कलह विसंवाद शोक भयका वधावनेवाला तथा धर्मविरुद्ध मिथ्यात्व असंयमका पुष्ट करनेवाला अन्य जीवनिके दुःख अपमान धन आजीविकाकी हानिके करनेवाले वचनतैं पापका आस्रव होय है ।

बहुरि परमेष्ठीका पूजन प्रणाम जिनायतनका सेवन धर्मात्मा पुरुपनिका वैयावृत्य, यत्नाचारत जीवनिपर दयारूप हुवा सोवना बैठना पलटना मेलना धरना सौंपना खावना पीवना बिछावना चालना हालना इत्यादिक कायका योग शुभ आस्रवका कारण है । बहुरि यत्नाचार विना करुणा रहित स्वच्छंद देहका प्रवर्तावना, महा आरम्भादिकमें प्रवर्तन करना, देहके संस्कारमें रहना सो समस्त कायके द्वारै अशुभ आस्रव होय है, ये मन वचन कायकी शुभ अशुभ प्रवृत्ति तीव्र मन्द कषायके योगतैं तीव्र मन्द नानाभेदरूप कर्मके बन्धके निमित्त होय है इनका चिंतवन करनतें आत्मा अशुभ प्रवृत्तिसूं रुकि शुभप्रवृत्तिमें सावधान होय प्रवर्तन करै है । बहुरि कषाय आत्माका समस्त गुणनिका घात करनेवाले हैं क्रोध है सो तो परजीवनके मारनेमें घात करनेमें बंधनादि करनेमें चित्तकूं दौडावै, अर मान है सो इस जीवकूं दर्पकरि ऐसा उद्धत करै है जो पिता गुरु उपाध्याय स्वामीका हू तिरस्कार करना वांछै है विनयका विध्वंस करै है, मायाकषाय है सो अनेक छल अनेक धूर्तता परकूं भुलाय देना इत्यादि अनेक कपट ही विचारै है परिणामकी सरलताका अभाव करै है, लोभकषाय है सो सुखका कारण संतोषकूं छेदै है योग्य अयोग्यके विचारका नाश करै है काम है सो मर्यादाका भंग करै लज्जाका भंग करै है हित अहितका नीचकर्म उच्चकर्मका विचार रहित करै है मोह है सो मदिराकी ज्यों स्वरूपकूं भुलावै है, शोक है सो अतिदुःखतैं हाहाकारशब्द करावै है रुदनादिक आत्मघातादिकमें प्रवृत्ति करावै है हास्य है सो परकी हास्य अज्ञानता प्रगट कीया चाह है, स्नेह है सो मद्य विना पीये ही अचेतन करै है अर महाबन्धनरूप आत्माकूं हित प्रवृत्तिमें रोकनेवाला है अनर्थका स्थान है, निद्रा है सो आत्माका समस्त चैतन्यका घातकरि आत्माकूं जड अचेतन करै है तृपा जो है सो नाहीं पीवनेयोग्य हू पानीकूं पिवाया चाहै है, क्षुधा है सो चांडालका घरमें हू प्रवेश करायकै याचना करावै है कुलमर्यादादिककूं नष्ट करै है घोर वेदना देवै है, नेत्र है सो रमणीक रूपादिक देखनेकूं झंपापात लेवै है, जिह्वाइंद्रिय मिष्टभोजन करनेकूं अति चंचल भई लज्जा उच्चपना संयमादिक नष्टकरि नीच प्रवृत्ति करावै है घ्राणइंद्रिय सुगन्ध द्रव्यप्रति अचेत भया झुकै है । स्पर्शनइंद्रिय स्त्रीनिके कोमल अङ्ग कोमल शय्यादिकमें तृष्णा वधावै है, कर्णइन्द्रिय नाना रागनिमें झुकि आपा भुलाय पराधीन करै है, मन है सो चंचल वानरकी ज्यों स्वच्छंद घोर विकल्पकरि शुभध्यान शुभप्रवृत्तिमें नाहीं ठहरे है, विषय कषायादिकनिमें भ्रमै है, असत्यवाणी मुखमेंतैं

अतिरागतै निकसि अपनी चतुरता प्रगट करै है, हस्त हैं ते हिंसाके आरम्भ करनेका मुख्य उपकरण हैं, चरण हू पाप करनेका मार्गमें अति दौडैं है, कविपना है सो अति राग करनेवाली कविता रच्या चाहै है, पण्डितपना कुतर्क अर असत्यप्रलापीपना करि अपनी विख्यातता चाहै है, सुभटपना घोर हिंसा चाहै है बाल्यपना अज्ञानरूप है यौवन वांछित विषयनिके अर्थि विषम स्थानमें हू दौडै है वृद्धपना है सो विकराल कालके निकट वर्तै है उस्वास निःस्वास निरन्तर देहतैं भागि निकसि जानेका अभ्यास करै है, जरा है सो काम भोग तेज रूप सौंदर्य उद्यम बाल बुद्ध्यादिक रहनेकूं तस्करी है, रोग हैं ते यमराजके प्रबल सुभट हैं ऐसी सामग्री इस आत्माकूं आपा भुलावनेवाली है तिनतैं महान् कर्मका आस्रव होय है । ये इन्द्रियविषय अर कषायनिके संयोगतैं मन वचन काय द्वारै आस्रव होय है ऐसैं आस्रव भावना वर्णन करी ।

अब संवरभावना वर्णन करै हैं—जैसै समुद्रके मध्य नावके जल आवनेका छिद्र रोक दे तो नाव जलसूं भरि नाहीं डूबै तैसै कर्म आवनेके द्वार रोकै ताकै परम संवर होय है सम्यग्दर्शनकरि तो मिथ्यात्वनाम आस्रवद्वार रुकै है इन्द्रियनिकूं अर मनकूं संयमरूप प्रवर्तावनेतैं इन्द्रियद्वारै आस्रव रुकि संवर होय है । अर छह कायके जीवनिका घात करनेवाला आरम्भका त्यागतैं प्राण संयमकरि अविरतनिके द्वारै कर्मके आगमनके रुकनेतैं संवर होय है, कषायनिकूं जीति दशलक्षणरूप धर्मके धारनेतै चारित्र प्रगट होनेतै कषायनिके अभावतैं संवर होय है ध्यानादिक तपतैं स्वाध्याय तपतै योगद्वारै कर्म आवते रुकै हैं यातै संवर है जातै गुप्तित्रय पंचसमिति दशलक्षणधर्म द्वादश भावना द्वाविंशति परीषह सहना पांच प्रकार चारित्र पालना इनकरि नवीन कर्म नाहीं आवै हैं तिनमें मन वचन कायके योगनिकूं रोकना सो गुप्ति है, प्रमाद छांडि यत्नतैं प्रवर्तना सो समिति है दया है प्रधान जामें सो धर्म है स्वतत्वका चिंतवन सो भावना है । कर्मके उदयतैं आए क्षुधा-तृषादि परीषहनिकूं कायरतारहित समभावतैं सहना सो परीषह जय है रागादि दोषरहित अपने ज्ञानस्वभाव आत्मामें प्रवृत्ति करना सो चारित्र हैं । ऐसै जो विषयकषायतैं पराङ्मुख होय सर्व क्षेत्र कालमें प्रवर्तै है ताकै गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परीषहजय चारित्र इनकरि नवीन कर्म नाहीं आवै सो संवर है यो संवरके कारण चिंतवन करता रहै ताकै नवीन आस्रव बन्ध नाहीं होय है । ऐसै संवरभावना वर्णन करी ।

अब निर्जराभावनाकूं कहिये है—जो ज्ञानी वीतरागी हुआ मदरहित निदानरहित हुवा द्वादश प्रकार तप करै है ताकै महानिर्जरा होय है समस्त कर्मनिका उदय रूप रसकूं प्रगट करि झडना सो निर्जरा है । सो दोय प्रकार होय है एक तो अपना उदयकालमें रस देय झडना सो सविपाकनिर्जरा है सो तो चारों गतिनिमें

कर्म अपना रसरूप फल देय निर्जरै ही है । अर जो व्रत तप संयम धारणकरि उदयका कालविना ही निर्जरा करै है सो अविपाकनिर्जरा है, मंद कषाय के भावसहित जैसै जैसै तप बधै है तैसै तैसै निर्जराकी वृद्धि होय है जो पुरुष कषाय वैरीकूं जीत दुष्ट जननिके दुर्वचन उपद्रव उपसर्ग अनादरादिकनिकूं कलुषभावरहित सहै है ताकै महानिर्जरा होय है । अर जो दुष्टनिकरि कीया उपद्रव अर कर्मके उदयकृत परीषहादिक दरिद्र रोगादिक तथा दुष्टनिका संगमादिक आवतै ऐसा विचारै है जो पूर्व कालमें पाप उपार्जन कीया था ताका ये फल है अब समभावतै भोगो कर्मरूप ऋण छूटैगा नाहीं विषाद करोगे तो कर्म छोडने का नाहीं, संक्लेश करनेमें संख्यात-असंख्यातगुणा नवीन और बांधोगे जो उत्तम पुरुष शरीरकूं तो केवल ममत्वका उपजावनेवाला विनाशीक अशुचि दुःख देनेवाला जाने है अर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकू सुखका उपजावनेवाला निर्मल नित्य अविनाशी जानै है अर अपनी निंदा करै है अर गुणवंतनिका बडा सत्कारकरि उच्च मानै है अर मनकूं अर इन्द्रियनिकूं जीति अपने ज्ञान स्वभावमें लीन होय हैं, तिनका मनुष्यजन्म पावना सफल होय हैं, अर तिस हीकै पापकर्मकी बडी निर्जरा होय है, अर संसारका छेदनेवाला सातिशय पुण्यका बन्ध होय है अर तिसहीके परम अतीन्द्रिय अविनाशी अनन्तसुख होय है जो समभावरूप सुखमें लीन होय वारम्वार अपने स्वरूपकी उज्ज्वलताकूं स्मरण करै है अर इन्द्रियनिकूं अर कषायनिकूं महादुःखरूप जानि जीतै है तिस पुरुषकै महानिर्जरा होय है ऐसैं निर्जरा भावना वर्णन करी ॥ ९ ॥

अब लोकभावना वर्णन करै हैं—सर्व तरफ अनन्तानन्त आकाश ताका बहुत मध्यमें लोक है जो जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल याका समुदाय जेता आकाशमें तिष्ठै है लोकिये है देखिये है सो लोक है । तीनसैं तीयालीस घनराजूप्रमाण क्षेत्र है, बाहर अनन्तानन्त आकाश हैं ताकी अलोक संज्ञा है । इस लोकमें अनन्तानन्त जीव हैं जीवनितैं अनन्तगुणा पुद्गल हैं, धर्मद्रव्य एक है, अधर्मद्रव्य एक है, आकाश एक है, कालद्रव्य असंख्यात है । सो इन द्रव्यनिका स्वरूप, तथा लोकका संस्थानादिकका स्वरूप अवगाहनादिक वर्णन करिये तो कथनी बहुत हो जाय, ग्रन्थका विस्तार थोरा थोरा करता हू बहुत हो जाय, अर अब आयु-कायका हू रोगके प्रचारतैं बल घटनेतैं अल्प अवसर दीखै है तातैं ग्रन्थका संग्रह कीया ताकी पूर्णतारूप फलकी जरूरत है यातैं अन्य ग्रन्थतैं जानना ॥ १० ॥

अब बोधिदुर्लभभावनाका संक्षेप कहैं हैं। अनादिकालतैं यो जीव निगोदमें वसै है, एक निगोदक शरीरमें अतीतकालके सिद्धनितैं अनंन्तगुणे जीव हैं अपने अपने कार्माणदेहकरि युक्त अवगाहना सबकी एक देहमें है। ऐसैं बादर-सूक्ष्म निगोदजीवनिके देहकरि समस्त लोक नीचे ऊपरि मांहि बारै अन्तर--रहित भऱ्या है। बहुरि पृथ्वीकायादिक अन्य पंचस्थावरनिकरि निरन्तर भऱ्या है यामें त्रसपना पावना बालूका समुद्रमें पटकी हीराकी कणिकाका पावनावत् दुर्लभ है। अर जो त्रसपना हू कदाचित् पावै तो त्रसनिमें विकलेन्द्रियनिकी प्रचुरतामें पंचेन्द्रियपना असंख्यातकाल परिभ्रमण करतैं हू नाहीं पाइये है। फिर विकलत्रयमें मरि निगोदमें अनन्तकाल फिरि पंचस्थावरनिमें असंख्यातकाल संख्यातकाल फिरि निगोदमें जाय है ऐसैं परिभ्रमण करते अनन्त परिवर्तन पूर्ण होय हैं। पचेन्द्रियपना होना दुर्लभ हैं, पंचेंन्द्रियपनामें हू मनसहितपना होना दुर्लभ है सो असंज्ञी हुवा हित-अहितका ज्ञानरहित शिक्षा क्रिया उपदेश आलापादि रहित अज्ञानभावतैं नरकनिगोदादिक तिर्यंचगतिमें दीर्घकाल परिभ्रमण करै है। अर कदाचित् मनसहित हू होय तो क्रूर तिर्यंचनिमें रौद्रपरिणामी तीव्र अशुभलेश्याका धारक घोर नरकमें असंख्यातकाल नाना प्रकारके दुःख भोगै है असंख्यातकाल नरकके दुःख भोगि फिर पापी तिर्यंच होय है फिर नरकमें तथा तिर्यंचनि में अनेक प्रकार घोर दुःख भोगता असंख्यातपर्याय तिर्यंचकी वा नरककी भोगता फिर स्थावरनिमें परिभ्रमण करता अनंतकाल जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, शीत, उष्णता, मारना, ताडना सहता अनन्तकाल व्यतीत करै है कदाचित् चौहटामें रत्नराशिका पावना होय तैसैं मनुष्यपना दुर्लभ पाय करकै हू म्लेच्छ मनुष्य होय तो तहां हू घोर पाप संचय करि नरकादिक चतुर्गतिमें परिभ्रमण करतेकैं फिरि मनुष्य--जन्म पावना अति ही दुर्लभ है, तहां हू आर्यखण्डमें जन्म लेना अतिदुर्लभ है अर आर्यखण्डमें हू उत्तमजाति उत्तमकुल पावना अति दुर्लभ है। जातैं भील चण्डाल कोली चमार कलाल धोबी नाई खाती लुहार इत्यादि नीच कुल बहुत हैं, उच्च कुल पावना दुर्लभ है। अर कदाचित् उत्तम कुल हू पावै अर धनरहित होय तो तिर्यंच ज्यों भार बहना नीचकुलके धारकनिकी सेवा करनेमें तत्पर रहना, तथा अष्ट प्रहर अधर्म कर्मकरि पराधीन वृत्तिकरि उदर भरना ताका उच्चकुल पावना वृथा है। बहुरि जो धनसहित हू होय अर कर्णादिक इन्द्रियनिकरि विकल होय तो धन पावना वृथा है, इन्द्रिय परिपूर्णता हू होते रोगरहित देह पावना दुर्लभ है, अर रोगरहितकै हू दीर्घ आयु पावना दुर्लभ है, दीर्घ आयु होते हू शील जो सम्यक् मन वचन कायका न्यायरूप प्रवर्तन दुर्लभ है, न्याय प्रवर्तन होते हू सत्पुरुषनिका संगति पावना दुर्लभ है, अर सत्संगति होतैं हू सम्यग्दर्शन पावना दुर्लभ है, अर सम्यक्त्व होतै हु चारित्रका पावना दुर्लभ हैं, अर चारित्र होतैं हू याका आयुकी पूर्णता पर्यंत निर्वाहकरि समाधिमरणपर्यंत निर्वाह

होना दुर्लभ है, रत्नत्रय पाय करकै हू जो तीव्र कषायादिकनिकूं प्राप्त होय तो संसार समुद्रमें नष्ट हो जाय हैं, समुद्रमें पतन किया रत्नकी ज्यों फिर रत्नत्रयका पावना दुर्लभ है । अर रत्नत्रयका पावना मनुष्यगति हीमें है मनुष्यगतिहीमें तप व्रत संयम करि निर्वाणका पावना होय है ऐसा दुर्लभ मनुष्यजन्म पाय करकैं हू जो विषयनिमें रमै हैं ते दिव्यरत्नकूं भस्मके अर्थ दग्ध करैं हैं । ऐसैं बोधिदुर्लभ भावना वर्णन करी ॥ ११ ॥

अब धर्मभावनाका संक्षेप करैं हैं—धर्मका स्वरूप दशलक्षण भावनामें कहा ही है, धर्म है सो आत्माका स्वभाव है सो भगवान सर्वज्ञ वीतरागकरि प्रकाश्या दशलक्षण, रत्नत्रय तथा जीवदयारूप है ताका वर्णन यथा अवसर संक्षेपतैं इस ग्रन्थमें लिख्या ही है । इस संसारमें धर्मके जाननेकी सामग्री ही अति दुर्लभ है धर्मश्रवण करना दुर्लभ, धर्मात्माकी सङ्गति दुर्लभ, धर्ममें श्रद्धा ज्ञान आचरण कोई विरले पुरुषनिके मोहकी मन्दतातैं कर्मनिकी उपशमतातैं होय है जो यो जीव जैसैं इन्द्रियनिके विषयनिमें स्त्री पुत्र धान्यादिकमें प्रीति करै है तैसैं एक जन्ममें हू जो धर्मसूं प्रीति करै तो संसारके दुःखनिका अभाव होजाय, यो संसारी अपने सुखकूं निरन्तर वांछ है, अर सुखका कारण धर्म है तामें आदर नाहीं करै, ताकै सुख कैसै प्राप्त होयगा बीज विना धान्यकी प्राप्ति कैसैं होय, इस संसारमें हू जो इन्द्रपना अहमिंद्रपना तीर्थंकरपना चक्रीपना तथा बलभद्र नारायणपना भया है सो समस्त धर्मके प्रभावतैं भया है । तथा यहां हू उत्तम कुल रूप बल ऐश्वर्य राज्य संपदा आज्ञा सपूत पुत्र सौभाग्यवती स्त्री हितकारी मित्र, वांछित कार्यसाधने वाला सेवक निरोगता उत्तमभोग उपभोग रहनेका देवविमानसमान महल सुन्दर संगतिमें प्रवृत्ति क्षमा विनयादिक मंदकषायता पण्डितपना कविपना चतुरता हस्तकला पूज्यपना लोकमान्यता विख्यातता दातारपना भोगीपना उदारपना शूरपना इत्यादिक उत्तमगुण उत्तमसंगति उत्तमबुद्धि उत्तमप्रवृत्ति जो कुछ देखने में श्रवणमें आवै है सो समस्त धर्मका प्रभाव है धर्मके प्रसादतैं विषमहू सुगम होय है, महा उपद्रव हू दूर भागै है, उद्यम-रहित हू के लक्ष्मीका समागम होय है । धर्मके प्रभावतैं अग्निका जलका पवनका वर्षाका रोगका मारीका सिंह सर्प गजादिक क्रूर जीवनीका नदीका समुद्रका विषका परचक्रका दुष्टराजाका दुष्टवैरीनिका चोरनिका समस्त उपद्रव दूर होय सुखरूप आत्माके अनेक विभव प्राप्त होय हैं तातैं जो सर्वज्ञके परमागमके श्रद्धानी ज्ञानी हो तो केवल धर्मका शरण ग्रहण करो । ऐसैं धर्मभावनाका संक्षेप वर्णन किया ।

धर्मध्यानका कथन ध्याननामा तपमें वर्णन किया है । अब धर्मध्यानका वर्णनमें ज्ञानार्णवादिक ग्रंथनिमें पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ध्यान ऐसै च्यार प्रकार कह्या है तिनका संक्षेप इस

ग्रंथमें हू जनाइए । पिंडस्थध्यानमें भगवान पंचधारणा वर्णन करी है तिनकूं सम्यक् जाननेवाला संयमी संसाररूप पाशीकू छेदै है । पार्थिवीधारणा, आग्नेयीधारणा पवनधारणा, वारुणीधारणा, तत्वरूपवतीधारणा ऐसैं पंच धारणा जानने योग्य हैं ।

तिनमें पृथ्वीसम्बन्धी पार्थिविधारणाका ऐसा स्वरूप जानना—इस मध्यलोकसमान गोल एक राजूका विस्ताररूप क्षीरसमुद्र चिंतवन करना । कैसाक क्षीरसमुद्र चिंतवन करना शब्दरहित अर कल्लोलरहित अर पाला बरफसमान उज्ज्वल तिस क्षीरसमुद्रके मध्यमें ताया सुवर्ण समान अप्रमाण प्रभाका धारक एक हजार पत्र पांखडी युक्त अर पद्मरागमणिमय उदररूप केसरावली एक कमल चिंतवन करना कैसाक है कमल जम्बूद्वीपसमान एक लक्ष योजनका अर जाके बीच चित्तरूप भ्रमरके रंजायमान करता मेरुसमान है कर्णिका जाकी, कांतिकरि दशादिशाकूं पीत करती तिस कर्णिकाके मध्य शरदके चन्द्रमाकी कांतिसमान उज्ज्वल उच्च एक सिंहासन, तिसमें आप बैठा हुवा सुखरूप रागद्वेषादि रहित संसारमें उपज्या कर्मसमूहके नष्ट करनेमें उद्यमी ऐसा आपकूं चिंतवन करै ।

भावार्थ–ऐसा ध्यान करै जो एक उज्ज्वल क्षोभरहित शब्दरहित मध्यलोकप्रमाण विस्तीर्ण क्षीरसमुद्र ताकै बीच जम्बूद्वीपप्रमाण ताये सुवर्णसमान कांतिका पुंज पद्मराग मणिमय केसरयुक्त एक हजार पांखडीका एक कमल है, तिस कमलके बीच मेरुसमान महाकांतिका पुंज कर्णिका, तिस कर्णिकाके मध्य शरदके चन्द्रमासमान कांतिका पुंज उन्नत एक सिंहासन, ताकै मध्य क्षोभरहित रागद्वेषरहित अर कर्मके नाश करनेमें उद्यमी निश्चल बैठ्या अपने आत्माका चिंतवन करना सो पार्थिवीधारणा है ।

याका दृढ अभ्यास हो जाय तदि तिस स्फटिकमय सिंहासनमें तिष्ठता आपका नाभिमण्डलमें मनोहर षोडश उन्नत पत्रका धारक एक कमल चिंतवन करै, तिस कमलका एक एक पत्र ऊपर तिष्ठती षोडश स्वरनिकी पंक्ति अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसें स्थापनकरि चिंतवन करो, तिस कमलकी कर्णिका में तिष्ठता एक शून्य अक्षर रेफ बिंदु अर्धचन्द्राकार कला–युक्त बिंदुमेंतैं कोटिकांतियुक्त दश दिशाकूं व्याप्त करता 'र्हँ' ऐसा मन्त्रकूं चिंतवन करना, फिर तिस मंत्रके रेफतैं मन्द-मन्द निकलता धूम चिंतवन करना । पाछैं अग्निके स्फुल्लिंगकी पंक्ति चिंतवन करै, पाछै महामंत्रका ध्यानतैं उपज्या ज्वालाका समूह ऊंचा बढता हुवा चिंतवन करकै अपना हृदयमें तिष्ठता अधोमुख अष्टकर्ममय अष्टपांखडीका कमलकूं दग्ध करै, पाछैं बाह्य निकसि त्रिकोण अग्निमण्डल अग्निका बीजाक्षर रकारसहित स्वस्तिक चिन्हसहित ज्वालाका समूहकरि अग्नि शरीरकूं दग्ध करै, पाछैं निर्धूम सुवर्णसमान प्रभाका धारक अग्नि धखधखाट करता मांही तो

मन्त्रका अग्नि कर्मनिकूं दग्ध करै, अर बारैं अग्निपुर शरीरकूं दग्ध करै, फिर दग्धं करने-योग्य कुछ नाहीं रह्या तदि धीरे धीरे अग्नि स्वयमेव शांत होय शीतल होजाय। यहां पर्यंत अग्नि धारणा वर्णन करी।

अब पवन धारणाका वर्णन करैं हैं—कैसा है पवन महावेग युक्त अर महाबलवान अर देवनिके समूहकूं चलायमान करता अर मेरुकूं कंपायमान करता अर मेघनिके समूहकूं क्षोभरूप करता अर भुवननिके मध्य गमन करता अर दिशानिके मुखमें संचार करता अर जगत के मध्य फैलता अर पृथ्वीतलमें प्रवेश करता ऐसा पवन आक भर करि विचरता स्मरण करै, तिस प्रबल पवनकरि वह कर्मका रज अर देहका रजकूं उडाय धीरे धीरे पवन शांततानै प्राप्त होय ऐसैं पवनधारणा वर्णन करी।

बहुरि वारुणीधारणामें मेघका समूहकरि व्याप्त आकाशकूं चिंतवन करै। कैसाक है मेघ इन्द्रधनुप, अर बिजुलीनिके चमत्कार महागर्जनासहित स्मरण करै। बहुरि अमृततैं उपजी सघन मोतीसमान उज्ज्वल स्थूल धाराकरि निरन्तर वरसता स्मरण करै, तीठां पाछैं वरुणा बीजाक्षरकरि चिन्हित अर अमृतमय जलका पूरकर आकाशमें व्याप्त होता अर्द्धचन्द्रमाके आकार वरुणापुरकूं चिंतवन करै, तिस अचिंत्य प्रभावरूप दिव्यध्वनिरूप जलकरि कायतैं उपज्या समस्त रजकूं प्रक्षालन करै, ऐसैं वारुणीधारणा वर्णन करी।

तीठां पाछैं सिंहासन तिष्ठता अर दिव्य अतिशयनिकरि संयुक्त अर कल्याणनिकी महिमायुक्त अर च्यार प्रकार देवनिकरि पूजित समस्त कर्मकरि रहित अतिनिर्मल प्रगट पुरुषाकार अपना शरीरके मध्य सप्तधातुरहित पूर्णचन्द्रसमान कांतिका पुंज सर्वज्ञसमान अपने आत्माकूं चिंतवन करै। या तत्वरूपवतीधारणा वर्णन करी।

ऐसे पंचधारणारूप पिंडस्थ ध्यानके चिंतवनमें निश्चय अभ्यास करता योगी अल्प कालमें संसारका अभाव करै है। ऐसें इस पिंडस्थध्यानमें महाकांतिकरि जगतकूं आल्हादन करता सर्वज्ञ-तुल्य मेरुके शिखर ऊपरि सिंहासनमें तिष्ठता समस्त देवनिकरि वंद्य अपने आत्माकूं निश्चल चिंतवन करता जिनागमरूप महा समुद्रका पारगामी होय है। इस ध्यानहीके प्रभावतैं दुष्टनिकरि कीया विद्यामंडल मंत्र यंत्रादिक क्रूर क्रियाका नाश होय, सिंह, सर्प, शार्दूल, व्याघ्र, गेंडा, हस्ती इत्यादिक क्रूर जीव शांत होय, निःसार होय, भूत राक्षस पिशाच ग्रह शाकिन्यादिक दुष्ट देवनिके क्रूर वासनाका अभाव होय है। ऐसें पिंडस्थध्यानका वर्णन किया ॥ १ ॥

अब पदस्थधर्मध्यानका वर्णन करैं हैं। जे पूर्वले आचार्यनिकरि प्रसिद्ध सिद्धान्तमैं मंत्रपद हैं तिनका ध्यान

करना सो पदस्थ ध्यान है । अनादिसिद्धान्तमें प्रसिद्ध समस्त शब्दरचनाकी जन्मभूमि जगतके वंदनेयोग्य वर्णमातृकाका ध्यान करना । नाभिविषैं एक षोडश पांखडीका कमल चिंतवन करो, ताका पत्र पत्र प्रति षोडश स्वरनिकी पंक्ति भ्रमण करती चिंतवन करै—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसैं षोडश स्वरनिकी पंक्ति चिंतवन करै । बहुरि अपने हृदयमें चौवीस पांखडीका कमल चिंतवन करै, ताकी कर्णिकासहित पच्चीस स्थाननिमें पंच वर्ग के पच्चीस अक्षर क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, ऐसैं चिंतवन करै । बहुरि मुखके विषै अष्ट पांखडीका कमल विषैं य र ल व श ष स ह ये अष्ट अक्षर प्रदक्षिणारूप परिभ्रमण करते चिंतवन करै । इस प्रकार अनादिप्रसिद्ध वर्णमातृकाकूं स्मरण करता ज्ञानी श्रुतज्ञानसमुद्रका पारगामी होय है । बहुरि इस वर्णमातृका ध्यानतैं नष्ट भई वस्तुका ज्ञान होय तथा क्षयरोग अरुचिरोग मन्दाग्नि कोढ उदररोग कास-स्वासादिक रोगको विजय करै, तथा असदृश वचनकला तथा महंतपुरुषनितैं पूजा पाय उत्तम गतिकूं प्राप्त होय है । बहुरि परमागम करि उपदेश्या पैंतीस अक्षरका मंत्र जपै 'णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं,' तथा 'अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः' ऐसैं षोडश अक्षरनिका मंत्रपदका ध्यान करे । तथा 'अरहंत सिद्ध' ऐसैं छह अक्षरनिका मन्त्र जाप करै, तथा 'णमो सिद्धाणं' ऐसा पांच अक्षरनिके मन्त्रका ध्यान करै तथा 'अरहंत' इन चार अक्षरनिका तथा 'सिद्ध' इन दोय अक्षरनिका तथा 'ओं' इस एक अक्षरका तथा 'अ' कारका ध्यान करै, तथा 'णमो अरहंताणं' ऐसैं सप्त अक्षरनिके मन्त्रका तथा 'अ सि आ उ सा' ऐसैं पंच अक्षररूप इत्यादिक पंच परमेष्ठीके वाचक अनेक मन्त्र परम गुरुनिके उपदेशकरि ध्यान करना तथा

चत्तारि मङ्गलं अरहंत मङ्गलं सिद्ध मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं, ये चार मंगलपद, अर चत्तारि लोगुत्तमा अरहंत लोगुत्तमा सिद्ध लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ये च्यार उत्तमपद, अर चत्तारिसरणं पव्वज्जामि अरहंत सरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि । ये च्यार शरणपद हैं इनका कर्मपटलके नाश करनेके अर्थ नित्य ही ध्यान करना । त्रैलोक्यमें ये चार ही मंगल हैं चार ही उत्तम हैं, चार ही शरण हैं इनका ध्यानकूं निरंतर विस्मरण मत होहु इत्यादिक अनेक मंत्र इस जीवके राग द्वेष मोह मूर्च्छाके नाश करनेकूं वैर-विरोध दूर करनेकूं दुर्ध्यानका नाश करनेकूं परमशांतभाव उपजावनेकूं विषयनिमें राग नष्ट करनेकूं पंचइन्द्रियनिके जीतनेकूं वीतरागता वर्धन करनेकूं, सकल परवस्तुमें वांछा-ममता-रहित होय गुरुनिका उपदेशतैं जाप्य करैं हैं ध्यान करैं हैं तिनके कर्मनिकी बडी

निर्जरा होय है, क्रमकरि संसार–परिभ्रमणका अभाव होय है । जे रागी द्वेषी मोही होय परका मारण उच्चाटन वशीकरण इत्यादिकके अर्थि तथा विषय–भोगनेके अर्थि वैरीनिका विध्वंसके अर्थि राज्यसम्पदा ग्रहण करनेके अर्थि मंत्र जाप करै हैं ध्यान मुद्रा तप इत्यादिक दृढ भये करै हैं ते घोर संसारपरिभ्रमण का कारण मिथ्यादर्शनादि अशुभ कर्मका बन्ध करैं हैं खोटी वासना खोटा ध्यान तथा व्यंतर देव देवी यक्ष यक्षणी इत्यादिक कुदेवनिका ध्यानकरि अपने परिणामकूं श्रद्धान ज्ञानतै भ्रष्टकरि घोर संसार–परिभ्रमण करैं हैं । अर कदाचित् कोऊके चित्तका एकाग्रपणारूप तपके प्रभावतैं वा मन्दकषायके प्रभावतैं वा शुभकर्मका उदयतैं खोटी विद्या सिद्ध हो जाय तो विषय–कषाय अभिमानकी वृद्धिनै प्राप्त होय, सम्यक्श्रद्धान ज्ञान आचरणका घातकरि पापमें प्रवर्तनकरि दुर्गतिका पात्र होय, ऐसा जानि वीतरागताकूं नष्ट करनेवाले खोटे मन्त्र यंत्र मुद्रा मण्डलनिका त्याग करो। महा मोहरूप अग्निकरि दग्ध होता इस जगविषै कषायनिकूं छांडि करि केई परमयोगी ऊवरै हैं या हजारां कष्ट आधि–व्याधिकरि व्याप्त महा पराधीन रागद्वेष मोहरूप विषकरि व्याप्त अतिनिंद्य गृह वासमें बडे बडे बुद्धिमान् हू प्रमादादिकानिकूं जीति चंचल मनके वश करनेकूं नाहीं समर्थ होइए है । बहुरि इस गृहस्थाश्रममें अनेक धन–परिग्रहादिकनिका संयोगमें एक एक वस्तुकी ममतारूप पाशी अर खोटी आशारूप पिशाचर्णाकरि ग्रम्या हूवा अर स्त्रीनिके रागकरि अन्ध भये ये जीव आत्माका हितकूं जाननेकूं असमर्थ हैं । बहुरि इस गृहस्थाश्रमपणामें निरन्तर आर्तध्यानरूप अग्निकरि प्रज्वलित अर खोटी वासनारूप धूमकरि ज्ञानरूप नेत्र जिनका मुद्रित भया, अर अनेक चिंतारूप ज्वरकरि जिनका आत्मा अचेत हो रह्या है तिनकै स्वप्नमें भी ध्यानकी सिद्धि नाहीं होय है । आपदारूप महाकर्दममें फंसि रह्या अर प्रवल रागरूप पिंजरेमें पीडित हो रह्या अर परिग्रहरूप विषकरि मूर्च्छित गृहस्थी आत्माका हितरूप ध्यान करनेकूं असमर्थ है । अपने ही आरम्भ परिग्रहमें ममतारूप बुद्धिकरि आप ही आपकूं बांधि पराधीन होय रहे हैं रागादिक रूप वैरीनिकूं गृहका त्यागी संयमी विना नाहीं जीतिये है, अर गृहका त्यागी हू विपरीत तत्वकूं ग्रहण करते मिथ्यादृष्टिनिके स्वप्नैं हू ध्यानकी सिद्धि नाहीं, यतीपणामें हू पूर्वापरविरुद्ध अर्थकी सत्ताकै अवलम्बन करनेवाले पाखण्डीको ध्यान नाहीं संभवै है, सर्वथा एकांत ग्रहण करनेवाले पाखण्डी अनेकान्तस्वरूप वस्तुकूं जाननेकूं ही समर्थ नाहीं, तिनकै ध्यान कैसैं होय ? जिनेन्द्रकी आज्ञातैं प्रतिकूल प्रवर्तनेवाले मुनिलिंग धारण करते हु मन वचन कायकी कुटिलताके धारक अर शिष्यादिक परिग्रहतैं आपकी उच्चताके माननेवाले अपनी किर्ति अभिमान पूजा सत्कार वन्दनाके इच्छुक अर लोकनिके रञ्जायमान करनेमें चतुर अर ज्ञाननेकत्रारि अंध अर मदनिकरि उद्धत अर मिष्ट भोजनके लोलुपी पक्षपाती तुच्छशीली तिनकै मुनिभेष धारण करते हू कदाचित धर्मध्यान नाहीं होय

है । अर ऐसे पाखण्डी भेषी अन्य भोले लोकनिकूं कहैं यो काल दुःखमा है यामें ध्यानकी सिद्धि नाहीं, या कहि अपने अर अन्यके ध्यानका निषेध करैं हैं । तथा काम भोग धनका लोलुपी मिथ्याशास्त्रनिके सेवक तिनकै ध्यान कैसैं होय। बहुरि रागभाव सहित इंन्द्रियनिमें विषयनिमें करुणारहित हास्य कौतुक मायाचार युद्ध कामशास्त्रनिके व्याख्यान करनेवाले निकै ध्यान स्वप्न हू मैं नाहीं होय है । बहुरि जिनेश्वरकी दीक्षा धारण करिकै हू अपना गौरवका अर्थी होय करकै वशीकरण आकर्षण मारण उच्चाटन जलस्थंभन अग्निस्थंभन विषस्थंभन रसकर्म रसायण पादुकाविद्या अञ्जनविद्या पुरक्षोभ इंद्रजाल बलस्थंभन जीति-हारि विद्याछेद वेद वैद्यकविद्या ज्योतिष्कविद्या यक्षणीसिद्धि पातालसिद्धि कालवंचना जांगुलि सर्प मंत्र भूत पिशाच क्षेत्रपालादि-साधन, जल मंत्रन सूववंधन इत्यादि कर्मनिके अर्थिं ध्यान करै हैं, मंत्रसाधन करै हैं घोर तप करै हैं तिनके वीचि मिथ्यात्व कषायके वशतैं घोरकर्मका बन्धका कारण दुर्ध्यान जानना, ताके प्रभावतैं नरक तिर्यंचादिक कुगतिमें अनंतकाल परिभ्रमण होय है । अर ऐसे पाखंडीनिकी उपासना करनेवाले अनुमोदन करनेवाले दुर्गतिमें परिभ्रमण करैं हैं ऐसा दृढ श्रद्धान धारि खोटे मंत्र यंत्रनिका त्याग दूरहीतैं करो । यहां कोऊ कहै जो खोटे मारण उच्चाटनादि अनेक विद्या मंत्रतंत्रादिक द्वादशांगमें कहै हैं कि नाहीं ? ताकूं कहिए है जो द्वादशांगमें तो समस्त त्रैलोक्यमें वर्तते द्रव्य क्षेत्र काल भाव विष अमृत समस्त कहै हैं परन्तु विषादिककूं त्यागने योग्य कह्या, अमृतकूं ग्रहण करने योग्य कह्या, तैसै खोटे मन्त्र खोटी विद्या त्यागने योग्य कही है । तातैं अयोग्य विद्याका दुर्ध्यानादिकका त्याग करिकैं कर्मका निर्जरा करनेवाली वीतरागताका कारण पंचपरमेष्ठीके वाचक मंत्र पदनिहीका ध्यान करो । ऐसैं धमर्ध्यानके भेदनिमें पदस्थ ध्यान वर्णन किया ॥ २ ॥

अब रूपस्थध्यानमें भगवान अर्हंत परमेष्ठी समवसरणमें तिष्ठते असंख्यात इन्द्रादिक करि वंद्यमान द्वादश सभीके जीवनिकूं परम धर्मका उपदेश करतेनिका ध्यान करनेका उपदेश करैं हैं । भगवान अर्हंतके धर्मोपदेश देनेका सभास्थान है सो भूमिसूं पांच हजार धनुष ऊंचा आकाशमें वीस हजार पैडीनिकरि युक्त है । अर हरित नीलमणिमय जाकी भूमिका समवृत्त, झालरि के आकार गोल है मानूं तीन लोककी लक्ष्मीके मुख अवलोकन करनेका दर्पण ही है । इस सभास्थानका वर्णन करनेकूं कौन समर्थ है जाका सूत्रधार कुवेर है, जो अनेक रचना करनेमें समर्थ, ताका वर्णन हम सारिखे मंदबुद्धि करनेकूं कैसैं समर्थ होय ? तो हू शुभ ध्यान होनेके अर्थिं तथा श्रवण चिंतवन करि भव्य जीवनिके अति आनन्द होनेके आर्थैं किंचित् वर्णन करिये है-तिस द्वादश योजनप्रमाण इन्द्रनीलमणिकी समवृत्त भूमिका पर्यंत अनेक वर्णनके रत्ननिकी धूलिकरि रच्या धूलीशाल

कोट है । कहूं तौ हरितमणिनिकी कांतिकरि आकाश हरित किरणमय सोहै हैं, कहूं पद्मराग मणिनिकी प्रभाकरि व्याप्त है, कहूं मेचक मणिनिकी प्रभाकारि व्याप्त है, कहूं चन्द्रकांतमणिनिकरि व्याप्त चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना चानणीकूं धारण करै है । इत्यादिक अनेक कांतिके धारक रत्ननिका महाप्रभाकरि यो धूलीशाल कोट आकाशमें वलयाकार इन्द्रधनुषकी शोभाकूं विस्तारता सोहै है, कहूं सुवर्णमय धूलकी कांतिकरि दैदीप्यमान है इत्यादिक अनेक रत्ननिकी प्रभाका पुंज जो धूलीशाल ताकी चारि दिशानिमें सुवर्णमय दोय दोय स्तंभ हैं तिन स्तम्भनिके अग्रभागमें लूंघते मकराकृत तोरण तिनमें रत्ननिका माला सोहै है तिन धूलिशाल कोटकैं च्यारू तरफ महा वीथी एक एक कोस चौडी मांही प्रवेश करनेकी है तिन महावीथीनिके मांही केतीक दूर जाइए, तहां वीथीनिके बीच सुवर्ण मानस्तम्भ हैं ते महा ऊंचे हैं तिन मानस्तम्भनिके च्यारू तरफ. च्यार च्यार द्वारनिकरि युक्त तीन कोट हैं और तीन तीन कोटनिकै मध्य षोडश सोपान जो सिवाणनिकरि युक्त पीठ हैं तिन पीठनिकै मध्यविषैं बडे ऊंचे मानस्तम्भ हैं ते पीठ सुर असुर मनुष्यनिकरि पूज्य हैं तिन स्तम्भनिकूं दूरहीतै देखत प्रमाण मिथ्यादृष्टीनिका मान जाता रहै है । तिन मानस्तम्भनिके मूल विषैं पीठ ऊपरि सुवर्णमय जिनेन्द्र-प्रतिमा विराजें हैं, तिनकूं क्षीरसमुद्रके जलतैं इंद्रादिक देव अभिषेक करै हैं तिस जलकरि वह पीठ पवित्र है । अर तहां शाश्वते देव मनुष्यनिकरि कीये नृत्य वादित्र जिनन्द्रके मंगलरूप गान प्रवृत्त हैं पृथ्वीके मध्य पीठ ताके ऊपरि पीठनिका तीन कटनी तीन तीन पीठनिके ऊपरि सुवर्णमय मानस्तम्भ तिनके मस्तक ऊपरि तीन छत्र हैं मिथ्यादृष्टीनिके मान स्तम्भन करनेतैं तथा त्रिलोकवर्त्ती सुर असुर मनुष्यादिकनिके माननेतैं पूजनेतैं इनका मानस्तम्भ सार्थक नाम है । इन मानस्तम्भनिका च्यारूं तरफ च्यार बावडी हैं तिन बावडीनिमें निर्मल जल भऱ्या है नानाप्रकारके कमल प्रफुल्लित होय रहे हैं तिनका स्फटिकमणिमय तट है, तिनके तटनि ऊपरि नाना प्रकारके पक्षीनिके शब्द होय रहे हैं, वा पक्षीनिके शब्दनिकरि तथा भ्रमरनिके गुंजनकरि जिनके गुणनिका स्तवन ही करैं हैं । पूर्वके मानस्तम्भके च्यारूं तरफ नन्दा नन्दोत्तरा नन्दवती नन्दघोषा ये चार बावडी, अर दक्षिणमें विजया वैजयन्ती जयन्ती अपराजिता, अर पश्चिममें अशोका सुप्रभा सिद्धा कुमुदा पुण्डरीका है उत्तरके मानस्तम्भके च्यारूं तरफ प्रदक्षिणारूप नन्दा महानन्दा सुप्रबुद्धा प्रभंकरी ऐसैं च्यार दिशानिके च्यार मानस्तंभके च्यार तरफ षोडश बावडी हैं अर एक एक बावडीके दोय तटनिके निकट दोय दोय पादप्रक्षालन करनेकूं कुण्ड

हैं, कुण्डनिके जलतैं चरण धोय मानस्तम्भनिकी पूजाकूं मनुष्यादिक जाय हैं अर इहांतैं कछुक आगैं जाइए तहां महावीथिका मार्गकूं छांडि च्यार तरफ कमलनिकरि व्याप्त जलकी भरा खातिका कहिये खाई हैं सो मानूं प्रभुके सेवनकूं गंगा ही च्यार तरफ आई है तिस खाईरूप आकाशमें तारा–नक्षत्रनिके प्रतिबिंबसमान पुष्प सोहै है। तिस खाईके रत्नमय तटविषैं नाना प्रकार पक्षीनिके समूह शब्द करि रहे हैं, अर अद्भुत तरंगनिकरि व्याप्त है तिस खातिकापर्यन्त एक योजन वलयविष्कम्भ है, तिस खातिकाका अभ्यन्तर भूमिका भागविषैं च्यारूं तरफ बल्लीनिका बन है तिसमें नानाप्रकार बल्ली छोटे गुल्म वृक्ष समस्त ऋतुनिके पुष्पकरि व्याप्त हैं जिनमें नानाप्रकारके पुष्पनिकी बल्ली उज्ज्वलपुष्पनिकरि व्याप्त मानूं देवांगनानिके मन्दहास्यकी लीलाकूं धारण करै हैं, जिन ऊपरि भ्रमर गुंजार करै हैं अर मन्दसुगंध पवनकरि वेलवृक्ष झूम रहे हैं, तिस बेलनिका वनमें अनेक क्रीडा करनेके क्षुद्रपर्वत हैं रमणीक शय्यानिकरि सहित ठौर ठौर लतानिके मण्डप बन रहै हैं, तिनमें अनेक देवांगना जिनेंद्रका यश गावैं हैं, अर अनेक लताभवनमें हिमालयसमान शीतल चन्द्रकांतिमणिमय शिला देवनिका विश्रामके अर्थ तिष्ठैं हैं। धूलीशालतैं लेय पुष्पवाडीपर्यंत दोय योजनप्रमाण वलयविष्कंभ है सो दोऊ तरफ च्यार योजन प्रमाण क्षेत्र भया, इहांतैं महावीथीके मध्य कितने दूर जाइए तहां च्यारूं तरफ ताया सुवर्णमय प्रथम कोट तिस भूमिकूं वेढै है। सो यो सुवर्णमय प्रथमकोट अनेक रत्ननिकरि चित्र विचित्र है कहूँ हस्तीनिके मिथुन, कहूँ व्याघ्र सिंहनिके मनुष्यनिके हंस मयूर सूवा इत्यादिकनिके युगलनिके रूपनिकरि नाना प्रकार रत्ननिके जडाव करि व्याप्त है, कहूं रत्नमय बेल पुष्प पल्लव वृक्षनिके सुन्दर रूपकरि व्याप्त है, अर ऊपरि नीचैं कांगुरेनिमें मोतीनिकी तथा पंचवर्णमय रत्ननिकी माला तथा झालरनिका जालकरि व्याप्त है तिस कोटकी अप्रमाण कांतिकरि आकाश इन्द्रधनुषकरि व्याप्त हो रह्या है, तिस सुवर्णमय प्रथम कोटके च्यारूं दिशानिमें महान् ऊंचे रूपामय उज्ज्वल चार गोपुर कहिये दरवाजे हैं ते गोपुर विजयार्द्धके शिखरसमान ऊंचे तीन तीन खणके ज्योतिके पुंज मानूं तीन जगतकी लक्ष्मीकूं हंसै ही हैं, तिन रूपामई तीन खण्डके गोपुरनिके ऊपरि पद्मरागमणिमय दिशानितैं आकाशनैं कांतिकरि व्याप्त करते ऊंचे शिखर आकाशमें जाय रहे है, तिन गोपुरनिमें गान करनेवाले कई देव जगतका गुरु जो जिनेन्द्र ताके गुण गाय रहे हैं। कई जिनेंद्रके गुण श्रवण करैं हैं, कई जिनेंद्रके गुणनिके भरे नृत्य करि रहे हैं। बहुरि एक एक दरवाजेनि प्रति एकसौ आठ आठ झारी कलश दर्पण ठोणा चमर छत्र ध्वजा बीजणा ये रत्नमय मङ्गल द्रव्य सोहैं है बहुरि एक एक गोपुर प्रति रत्ननिका आभरणकी कांतिकरि व्याप्त किया है आकाश जानै ऐसे सौ सौ तोरण दिपैं हैं मानूं स्वभावहीतैं आतिकांतिका धारक जिनेंद्रका देह तामें

अपना अवकाश नाहीं जानिकरि ते आभरण गोपुरनिके तोरण तोरण प्रति लूंबै हैं । बहुरि एक एक द्वारनिके बाह्य भूमिविषैं नव नव निधि तीन भुवनकूं उल्लंघन करनेवाला जिनेन्द्रका प्रभावकी प्रशंसा करैं हैं मानूं वीतराग भगवान करि तिरस्कार करि नव निधि हैं ते द्वारका बहिर्भाग सेवन करैं हैं । बहुरि द्वारके अभ्यन्तर जो एक कोस चौडी महावीथी ताका दोऊ भागमें दोय नाट्यशाला हैं ऐसै च्यार दिशानिके द्वार प्रति दोय दोय नाट्यशाला हैं ते नाट्यशाला तीन तीन खनकी ऐसी सोहैं हैं मानूं जीवानिकूं रत्नत्रयात्मक मोक्ष-मार्ग जनावनेकूं उद्यमी हैं तिन नाट्यशालानिकी उज्ज्वल स्फटिकमणिमय भींत हैं अर सुवर्णमय स्तंभ हैं, अर स्फटिकमणिमय भूमिका है अर अनेक रत्नमय शिखरनिकरी आकाशकूं रोकती शोभै हैं तिन नाट्यशालानिमें बिजलीकी प्रभावत् नृत्य करती गान करती मोहकर्मका विजयकरि जिन नाम सार्थक पाया है ऐसा भगवानका यश गावती केतीक देवांगना पुष्पनिकी अंजुली क्षेपैं हैं, केतीक देवांगना वीण बजावैं हैं, मृदङ्गादिक अनेक वादित्रनिकी ध्वनिके साथ नाना प्रकार जिनेन्द्रस्तवन उच्चारण करती नाट्यरसमें जिनेन्द्रका गुणनिमें तन्मय भई नृत्य करै हैं, वीणाके नादसमान सुन्दर शब्दकरि गावते ज किन्नरदेव ते आवते जावते देवादिकनिके मनकूं आसक्त करैं हैं । बहुरि नाट्यशालानितैं आगैं महावीथीके दोऊं पसवाडेनिमें दोय दोय धूपघडे हैं तिनतैं निकसता धूपका धूम आकाशके आंगनमें फैलता दिशानिकूं सुगंध करैं हैं आकाशतैं उतरतैं देवनिके मेघकी शङ्का उपजावै है, तिस महावीथीके दोऊ पसवाडेनिका अंतरालमें च्यार तरफ बनवीथी है तिनका एक योजन चौडा वलयविष्कंभ है तामें एक श्रेणी अशोकवृक्षनिकी दूजी सप्तपर्णवनकी तीजी चम्पकवनकी चौथी आम्र-वनकी श्रेणी है ते वन पत्र पुष्प फलनिकरि शोभित मानूं जिनेंद्रकूं अर्घ ही दे हैं । या वनश्रेणी दोऊ तरफ दोय योजनमें है तिनमें रत्नमय अनेक पक्षी शब्द करैं हैं भ्रमरनिके नाद हो रहै हैं नन्दनवनवत् कोट्यां देवदेवांगना नाना आभरणनिके धारक उद्योतके पुञ्ज विचरैं हैं तिन वननिमें कहूं तो कोकिलानिके शब्द ऐसे हो रहे हैं मानूं जिनेंद्रके सेवनकूं देवेंद्रनिकूं बुलावै है जहां शीतल मंद सुगंध पवनकरि वृक्षनिकी शाखा नृत्य करैं हैं जिस वनकी भूमिका सुवर्णमय रजकरि व्याप्त है इन वननिमें रत्नमय वृक्षनिकी ज्योतिकरि रात्रि-दिनका भेद नाहीं, निरन्तर उद्योतरूप है अर वृक्षनिकी शीतलताके प्रभावकरि सूर्यके किरण आताप नाहीं करैं, तिन वननिमें कहूं त्रिकोण चतुष्कोण निर्मल निर्जंतु जलकी भरीं वापिका हैं तिन बावडीनिकै रत्ननिके सिवाण हैं सुवर्ण-रत्नमय तट हैं कहूं रत्नमय अनेक क्रीडापर्वत हैं, कहूं रमणीक अनेक रत्नमय महल हैं, कहूं अनेक प्रकारके क्रीडामण्डप हैं, कहूं प्रेक्षागृह हैं कहूं एकशाला कहूं द्विशाला, कहूं त्रिशाला अनेक महलनिकी रचना

है, कहूं हरितभूमि इन्द्रगोपरूप रत्ननिकरि व्याप्त है, कहूं महानिर्मल सरोवर हैं, कहूं मनोज्ञ नदी हैं, प्राणीनिका शोक दूर करनेवाला अशोकवृक्षनिका वन मानूं जिनेन्द्रका सेवनतैं अपने रक्त पुष्प पल्लवनिकरि रागकूं वमन ही करै है, अर सप्तच्छदनामा वन मानूं अपन सप्तपत्रनिकरि भगवानके सप्त परमस्थाननिकूं दिखावै ही है अर चम्पक वन अपने दीपकसमान पुष्पनिकरि मानूं दीपांग जातिके कल्पवृक्षनिका वन प्रभूकी सेवा ही करे है । बहुरि सुन्दर आम्रवन सो कोकिलानिके शब्दनिकरि जिनेन्द्रका स्तवन करै है बहुरि अशोकवनके मध्य एक अशोकनामा चैत्यवृक्ष है, तीन सुवर्णमय पीठ ताके ऊपरि है तिस पीठके चौगिरद तीन कोट हैं, एक एक कोटके चार चार द्वार हैं, ते द्वार छत्र चमर झारी कलस दर्पण बीजणो ठोणो ध्वजा इस प्रकार मंगलद्रव्य मकराकृत तोरण मोतिनिकी मालादिककरि भूषित हैं, जैसैं जम्बूद्वीपकी स्थलीमध्य जम्बूवृक्ष सोहै तैसैं वनकी स्थलीमध्य तीन पीठ ऊपरि अशोकनामका चैत्यवृक्ष सोहै है । शाखाका अग्र दश दिशानिमें विस्तरता देखतप्रमाण शोककूं नष्ट करै है अपने पुष्पनिकी सुगन्धिकरि समस्त आकाशकूं व्याप्त करता अपना विस्तारकरि आकाशकूं रोकै है मरकतमणिमय हरितकांतिसंयुक्त पत्रनिकरि भऱ्या पद्मरागमणिमय पुष्पनिके गुच्छेनिकरि वेष्टित है सुवर्णमय ऊंची शाखा हैं वज्र जे हीरा तिनकरि रच्या पेड है अपनी प्रभाका मण्डलकरि समस्त दिशाकूं उद्योतरूप करै है, रणत्कार करते घंटानिके नादकरि भगवानका विजयकी घोषणाकूं त्रैलोक्यमें व्याप्त करै है ध्वजानिके चलायमान वस्त्रनिकरि दर्शन करते लोकनिके अपराध पापरूप रजकूं दूर करै है मुक्ताजालनिकरि युक्त मस्तक ऊपरि लूमते तीन छत्रकरि जिनेंद्रका तीन भवनका ईश्वरपणानै वचन विना ही कहैं हैं अर वृक्षका पेडके मूलभाग च्यार दिशानिमें च्यार जिनेंद्रके प्रतिबिंबकरि युक्त है अर तिन प्रतिबिंबनिका इन्द्रादिकदेव अभिषेक करैं हैं, अर गंधमाला धूप दीप नैवेद्य फल अक्षतनिकरि देव पूजन करैं हैं ते अरहन्तकी प्रतिमा क्षीरसमुद्रके जलकरि प्रक्षालित हैं सुवर्णमय हैं नित्य सुर असुर देवलोकके उत्तम द्रव्यनिकरि इन्द्रादिक देव पूजै हैं स्तवन करैं हैं वंदना नमस्कार करैं है केतेक देव अरहन्तके गुणस्मरणकरि निश्चयकरि आनन्दतैं गावैं हैं, जैसैं अशोकवनमें एक अशोक नाम चैत्यवृक्ष है तैसैं चम्पक सप्तच्छद आम्रनामके धारक वननिमें एक एक चम्पकादि नामधारक चैत्यवृक्ष जानना । चैत्य जे जिनेंद्रकी प्रतिमा तिनकरि युक्त इनका मूल है तातैं चैत्यवृक्ष सार्थक नामकूं धारै हैं तिन वननिका पर्यन्तभाग विषैं चौगिरद वेदी है । जो कांगुरे संयुक्त होय ताकूं कोट कहिये कांगुरेरहित चौगिरद भींत होय ताहि वेदी कहिये है सो वनका पर्यंतमें सुवर्णमय वेदी है ताकै महाय ऊंचे चार तरफ रूपामय च्यार द्वार हैं, सो वेदी अर दरवाजे अनेक रत्ननिकरि व्याप्त हैं, जिन द्वारनिके घण्टानिके समूह लूम रहे हैं मोतीनिकी माला झालर पुष्पमाला

लंबायमान है, ते द्वार एकसौ आठ अष्ट मङ्गलद्रव्य अर रत्नानिके आभरणसहित रत्नमय तोरणनिकरि भूषित हैं, तिन तीन खणानिके द्वारनिमें अनेक देव गीत वादित्र नृत्यकरि जिनेंद्रक यशमें लीन हो रहे हैं तिन द्वारनिकें आगैं वेदीके लगता ही रत्नमय पीठनिकें ऊपरि सुवर्णमय स्तम्भनिकें अग्रमैं नानाप्रकारकी ध्वजानिकी पंक्ति हैं ते मणिमय पीठनिके ऊपरि सुवर्णमय अनुपम कांतिके धारक स्तम्भ हैं ते अठ्यासी अंगुल मोटे हैं, स्थूल हैं पच्चीस धनुषका अन्तराल परस्पर धारण करैं हैं इनकी ऊंचाईका प्रमाण ऐसा जानना समवसरणमें तिष्ठते सिद्धार्थवृक्ष चैत्यवृक्षकोट वन वेदी अर स्तूप अर तोरणनि सहित मानस्तम्भ अर ध्वजानिकी अर वनके वृक्षनिके प्रसाद जे महल पर्वतादिकनिकी उच्चता तीर्थंकरका देहकी उच्चतातैं बारह गुणी जाननी । बहुरि पर्वतनिकी चौडाई है सो अपनी ऊंचाईतैं अष्टगुणी है । अर स्तूपनिकी चौडाई उच्चतातैं किंचिंत् अधिक है । अर कोट वेदिकादिकनिकी चौडाई अपनी ऊंचाईके चौथे भाग जाननी । ते ध्वजा दश प्रकार हैं माला वस्त्र मयूर कमल हंस गरुड सिंह बलध हस्ती चक्रनिके चिह्नकी ध्वजा दश प्रकार हैं ते ध्वजा प्रत्येक एक एक प्रकारकी एकसौ आठ एक दिशामें हैं । समस्त दशप्रकारकी ध्वजा एक हजार अस्सी एक दिशामें भई, चारों तरफ की चार हजार तीनसै वीस हैं । समुद्रकी तरङ्गनिकी ज्यों पवनकरि तिनके वस्त्र लहलहाट करैं हैं मालाकी ध्वजामें मालाके आकार वस्त्र लूमते हाल रहे हैं ऐसैं वस्त्रकी ध्वजा मयूराकार मयूरध्वजा सहस्रपांखडीका कमलके आकार कमलध्वजा हंसध्वजा गरुडध्वजा सिंहध्वजा वृषध्वजा गजध्वजा चक्रध्वजा ये दशप्रकार एक दिशाप्रति एकसौ आठ एकसौ आठ हैं ऐसे चार दिशामें चार हजार तीनसै वीस हैं मोहकर्मका विजयकरि उपार्जन कीई जिनेंद्रका त्रिभुवन नरेशपनाकी प्रशंसा करै हैं सो या ध्वजा भूमिका वलयविष्कम्भ एक योजनका दोऊ तरफ दोय योजन चौडा है तिसकूं उल्लंघनकरि दूजा कोट अर्जुन कहिये सवर्णका है इस द्वितीय कोटके हू प्रथम कोटवत रूपामई चार तरफ महाद्वार हैं ते द्वार हू प्रथम कोटके द्वारवत् मङ्गल द्रव्य तोरण रत्ननिके आभरणनिकी सम्पदा धारै हैं, ये द्वार हू तीन तीन खणक अर अभ्यंतर दोऊ तरफ नाट्यशाला धूपघटयुग्म महावीथीके दोऊ पसवाडेनिमें तिष्टै हैं । बहुरि आगैं महावीथीकी दोऊ कक्षाविषैं एक योजन चौडा वलयविष्कम्भ धारता अनेक रत्नमय कल्पवृक्षानिका च्यारू तरफ वन है ते उन्नत छाया फल पुष्पनिकरि युक्त है, दश जातिके कल्पवृक्षानिके वनका रूपकरि देवकुरु उत्तरकुरु भोगभूमि ही जिनद्रका सेवन करैं हैं । जिन कल्पवृक्षनिके

आभरण वस्त्रादिक फलपुष्पनिकी महान् महिमा है, वृक्षनिके अधोभागमें देव बैठे हुए अपने स्वर्गनिक स्थानकूं भूलि चिरकाल तहां ही वसैं हैं। ज्योतिरंग जातिक कल्पवृक्षनिमें ज्योतिष्कदेव अर दीपांगनिमें कल्पवासीदेव अर स्रगांगनिमें भावनेन्द्र यथायोग्य सुखित तिष्टैं हैं इन च्यार तरफके वनमें एक एक सिद्धार्थवृक्ष मध्यमें है तिनका मूलमें सिद्धप्रतिमा विराजै हैं। जैसैं चैत्यवृक्षनिका पूर्वें वर्णन कीया तैसैं इनका वर्णन जानना। एता विशेष है ये कल्पवृक्ष संकलपरूप कीया फलका देनेवाला है कल्पवृक्षनिका वनमें हू कहू बावडी कहूं नदी, वालूके टीवेवत रत्नमय धूलके पुंज हैं, कहूं सभागृह प्रासाद इत्यादिक अनेक सुखरूप स्थाननिकूं धरैं है। बहुरि इस वनवीथीके अभ्यंतर वनवेदी रूपामई है उन्नत तीन तीन खणके च्यार द्वारनिकरि युक्त है अर पूर्ववेदीवत् तोरण आभरण मंगलद्रव्यनिकरि युक्त है, तिन द्वारनिके अभ्यन्तर जाय च्यार तरफ प्रासाद जे महल तिनकी पंक्ति है सुरशिल्पीकरि रचे नाना प्रकारके च्यारूं तरफ है तिन प्रासादनिके सुवर्णमय स्तम्भ हैं वज्रमणि जे हीरा तिनमई भूमिका बन्धन है, चन्द्रकांतिमणिमय भींति है नाना रत्ननिकरि चित्रित है, केते दोय खणके, केते तीन खणके, केते च्यार खणके हैं केई प्रासाद चन्द्रशाला युक्त हैं ऊपरला ऊंचा चन्द्रशाला कहिये है केई बलभीछद च्यारूं तरफ भींतिनिकरि सहित हैं ते प्रासाद अपनी उज्ज्वलप्रभामें डूबि रहे हैं केई अपने उज्ज्वल शिखरनिकरि चंद्रमाकी चानणीकरि ही मानूं रचै हैं कहूं बहुत झिरखनिके महल हैं, कहूं सभागृह हैं कहूं नाट्यशाला हैं कहूं शय्यागृह हैं जिनके चन्द्रकांतिमणिमय ऊंचे सोपान हैं तिनमें देव विद्याधरजातिके देव सिद्धजातिके देव गंधर्वदेव पन्नगदेव किन्नरदेव बहुत आदरसहित जिनेंद्रके गुण गावैं हैं, केई बजावैं हैं। अनेक जातिके वादित्रनिकरि शब्दमय हैं, केई संगीत नृत्य करैं हैं, केई जयजयकार शब्द करै हैं, केई जिनेंद्रके गुणनिका स्तवन करै हैं। बहुरि तिस हर्म्यावलीकी भूमिका मध्यभागनिविषैं नव स्तूप हैं ते स्तूप पद्मरागमणिमय पुंजके आकार उतंग आकाशका अग्रकूं उलंघन करते ऐसे हैं मानूं समस्त देव मनुष्यनिका चित्तका अनुराग ही स्तूपके आकारकूं प्राप्त भया है। कैसेक हैं स्तूप, सिद्धनिके अर अर्हंतनिके प्रतिबिंबनिके समूहकरि समस्त तरफ व्याप्त हो रहे हैं, अपनी ऊंचाईकरि आकाशकूं रोकै हैं। ते स्तूप देव विद्याधरनिकरि सुमेरुकी ज्यों पूज्य हैं उच्चदेवनिकरि चारणऋद्धिक धारीनिकरि आराध्य हैं। तथा ये नव स्तूप जिनेन्द्रकी नव केवललब्धि ही स्तूपाकार भए हैं तिन स्तूपनिके अन्तरालविषैं रत्ननिके तोरणनिकी पंक्ति ऐसी शोभै हैं मानूं इन्द्रधनुषमय ही हैं, अर अपनी ज्योतिकरि आकाशरूप अङ्गणकूं चित्ररूप करै हैं। ते स्तूप छत्रनिकरि सहित हैं, पताकाध्वजाकरि सहित हैं, समस्त मङ्गलद्रव्यनिकरि भऱ्या है। तिन स्तूपनिविषैं जिनेन्द्रकी प्रतिमानिका अभिषेक करके अर पूजन स्तवन

करके पाछैं प्रदक्षिणा करिके भव्य जीव हर्षकूं प्राप्त होय हैं ऐसैं अर्द्धयोजनप्रमाण वलयविष्कम्भरूप चौडी प्रासाद अर स्तूपनिकी भूमिकूं उल्लंघन करकै आगैं आकाश स्फटिकमणिमय तीजा कोट है सो आकाश स्फटिक मणिमय आकाशसमान निर्मल कोट है सो जिनेंद्रकी समीपताका सेवनतैं निकट भव्यका आत्माकी ज्यों उज्ज्वल उतंग सद्वृत्तताकरि युक्त है तिस स्फटिकमणिमय कोटके च्यार दिशानिमें पद्मरागमणिमय च्यार महाउतंग महाद्वार हैं मानूं भव्यनिका रागपुंज हैं । इन द्वारनिके हू पूर्ववत मंगलद्रव्यनिकी सम्पदादिक समस्त है अर द्वारनिका समीप भागविषैं दैदीप्यमान गम्भीर नौ निधी हैं बहुरि तीन कोटनिके द्वारनिविषैं गदादिक हस्तनिमें धारण करते देव तिष्ठैं । प्रथमकोटके द्वारपाल तो व्यन्तरदेव हैं, दूजे कोटके द्वारपाल भवनवासी देव है, तीजा स्फटिक मणिमय कोटके द्वारपाल कल्पवासीदेव हैं । बहुरि तिस स्फटिकमणिमय कोटतैं गन्धकुटीका पहला अधस्तलका पीठपर्यन्त लम्बी षोडश भींति आकाशस्फटिकमणिनिका रची हैं तिनकी निर्मल कांति है आदिकी पीठतलतैं लगाय स्फटिक कोटत लगो षोडश भींति ते अपनी स्वच्छताके प्रभावतैं नेत्रनितैं नाहीं दीखैं हैं, आकाश ही दीखै, हस्तादिक शरीरके स्पर्शनते ही भीति जानिये है स्वच्छताके प्रभावतैं दीखनेमें नाहीं आवै हैं निर्मल अर समस्त वस्तुनिके बिंब दिखावनेवाली भूमि जिनेंद्रकी ज्ञानविद्या ज्यों सोहै है । इन षोडश भीतनिके मध्य षोडश ही दर तिनमें च्यार महावीथि हैं अर महावीथीनिके मध्य द्वादश सभास्थान हैं सो भीतनिकी आकाश समान स्वच्छताकरि न्यारापना नाहीं दीखै है सब एक दीखै हैं तिन षोडश भींतनिके ऊपरि रत्नमय षोडश स्तम्भनिकरि धारण किया आकाशस्फटिकमणिमय श्री मण्डप महाउच्च है एक योजन चौडा लम्बा गोल है महान शोभायुक्त है जाकेविषैं समस्त सुर असुरनिकरि वंद्यमान परमेश्वर तिष्ठै हैं तातैं यो सत्य ही श्रीमण्डप है यो श्रीमण्डप आकाशस्फटिक मणिमय तातैं आकाश दीखै हैं अर तीन जगतके जनसमूहकूं निर्बाध स्थान देनेतैं बडा वैभवकूं प्राप्त है तिस श्रीमण्डप ऊपरि गुह्यक देवनिकरि छोडे पुष्पनिके समूह हैं ते श्रीमण्डपके अधोभागमें तिष्ठते देवमनुष्यनिकै तारानिका शंकाकूं उपजावै हैं एकयोजनप्रमाण यो श्रीमण्डप तामें समस्त देव मनुष्य परस्पर बाधारहित सुखरूप तिष्ठै हैं सो जिनेन्द्रको माहात्म्य है तिसका मध्यभागमें तिष्ठता प्रथम पीठ है सो वैडूर्यमणि जो मयूरकंठवर्ण हरित है अष्ट धनुष ऊंचा है । तिस पीठकै षोडश अन्तर है तिन षोडश अन्तरके षोडश षोडश पैंडी चढने उतरनेके सिवाण हैं पहला पीठके च्यार तरफ तो महावीथी एककोश चौडी अर धूलीशालतैं प्रथम पीठपर्यन्त लम्बी सूधी है, तिस पीठकै षोडश पैडीनिके ऊपर चढि प्रथम पीठके ऊपरि जाय अपने अपने सभाके स्थानप्रति देव मनुष्यादि षोडश पैडी उतरि अपनी अपनी सभामें जाय बैठे हैं तिस प्रथम पीठकूं च्यारूं तरफ अष्ट मंगलद्रव्य भूषित करै हैं अर तिस प्रथम पीठ

ऊपरि ऊंचे यक्षनिके मस्तक ऊपरि धर्मचक्र च्यार तरफ हैं ते धर्मचक्र एक हजार रत्नमय किरणनिके समूहकरि मानूं प्रथम पीठकारूप उदयाचल पर्वतऊपरि सूर्यके बिंब ही उदय भये हैं तिस प्रथम पीठ ऊपरि सुवर्णमय द्वितीय पीठ है सो पीठ सूर्यकी किरणनिसमान अपनी कांतिकरि आकाशकूं उद्योतरूप करै है । तिस द्वितीय पीठ ऊपरि अष्ट प्रकारकी ध्वजा है ते ध्वजा १ चक्र, २ हस्ती, ३ वृषभ, ४ कमल, ५ वस्त्र, ६ सिंह, ७ गरुड, ८ माला इनकी ध्वजा है । ये पवनकरि हालते वस्त्रनिकरि पापरूप रजकूं उडावैं है कहा मानूं । तिस द्वितीय पीठ ऊपरि अपने रत्ननिकी कांतिकरि अन्धकारकूं दूर करता सर्व रत्नमय तृतीय पीठ है ऐसैं त्रिमेखलामय पीठ समस्त रत्नमय भगवानकी उपासनाके अर्थि मानूं सुमेरु ही आया है । और समवसरणका ऐसा विस्तार जानना धूलिशालतैं खातिका पर्यंत वलयव्यास योजन एक, पुष्प बावडीको वेदीपर्यन्त वलयव्यास योजन एक अशोकादिक वनको वलयव्यास योजन एक, ध्वजानिकी भूमिको वलयव्यास योजन एक, कल्पवृक्षनिका वनको वलयव्यास योजन एक, प्रासाद-पंक्तिको वलयव्यास योजन अर्द्ध, ऐसे साढा पांच योजन एक दिशा को भयो, दोऊ दिशाको ग्यारह योजन भयो अर आकाशस्फटिककोटके बीच श्रीमण्डपका विस्तार एक योजनका ऐसैं बारह योजनका प्रमाण समवसरणभूमिका है अर श्रीमण्डपमें स्फटिकमय कोटतैं गन्धकुटिका नीचला पीठपर्यन्त सभाकी भूमि एक कोश दोऊ तरफकी दोय कोश मध्यमें तीन कटनीका पीठ चौडा कोश दोय तिनमें ऊपरला तीसरा पीठकी चौडाई धनुष १००१ हजार एक, दूजा पीठकी धनुष ७५० साढा सातसैकी चौडी कटनी, दोऊ तरफका धनुष १५०० डेढ हजार, अर तीजा नीचला पीठका चौगिरद कटनी धनुष ७५० साढा सातसैं, दोऊ तरफका धनुष १५००, ऐसैं तीन पीठका धनुष ४००० च्यार हजार तीका दोय कोश ऐसैं मध्यका विस्तार योजना एक जानना ।

बहुरि प्रथम पीठ भूमितैं आठ धनुष ऊंचा ताके ऊपर च्यार धनुष ऊंचा द्वितीय पीठ है ताके ऊपर च्यार धनुष ऊंचा तृतीय पीठ है अर एक कोश चौडी च्यारूं तरफकी महावीथी है तिसके दोऊ पसावाडेनिकी भींति प्रथम पीठकी ऊंचाइ प्रमाण आठ धनुषकी ऊंची है अर भींतिनिकी मोटाई ऊंचाईके आठमें भाग एक धनुषकी है बारह सभाकी बारह भींतिनिकी ऊंचाई भी आठ धनुषकी अर चौडाई एक धनुषकी है । अब तीसरा पीठ ऊपरि नाना रत्ननिके समूहकरि इन्द्रधनुष हो रहे हैं तहां इन्द्रके हस्तकरि क्षेपे नाना प्रकारके पुष्प सोहैं है, तिस एक हजार धनुष प्रमाण गोल तीसरा पीठके मध्य छहसै धनुष चौडी लम्बी चौकोर अनेक रत्नमय गन्धकुटी कुबेर रची है सो चौडाईतैं अधिक ऊंचाई मान–उन्मानप्रमाणकरि युक्त है, उत्तंग कोटकरि भूषित है, नाना रत्ननिकी

प्रभायुक्त कूट शिखर तिनकरि आकाशमें व्याप्त है, अर उन्नत शिखरनिके बंधी जे जयरूप ध्वजा तिनकरि मानूं देवनिकूं बुलावै ही हैं। स्थूल मोतीनिके जाल चारों तरफ लूमै हैं, कहूं सुवर्ण रत्ननिके जालकरि भूषित हैं, चारों तरफ अनेक रत्नमय आभरण अर महासुगन्ध कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी मालाकरि भूषित हैं अनेक सुगन्ध पुष्प अर महासुगन्ध धूप तिनतैं अधिक जिनेन्द्रके शरीरकी सुगन्धकरि समस्त दिशानिकूं सुगन्धित करै है, तातैं याको गन्धकुटी कहिये है। सुगन्धकी अर कांतिकी अर शोभाकी त्रैलोक्यम परम हद्द है। छहसै धनुष प्रमाण चौकोर गंधकुटीके मध्य एक योजन ऊंचा सिंहासन है ताकी कांति किरण समूह अर सौन्दर्य वर्णन करनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है। तिस सिंहासन ऊपरि चार अंगुलि प्रमाण अन्तर छांडि अपनी महिमा करिकैं ही सिंहासनकूं नाहीं स्पर्शन करता जिनेन्द्र तिष्ठै है, तहां तिष्ठता जिनेन्द्रकूं इन्द्रादिक देव अति भक्ति-संयुक्त पूजन स्तवन वंदना करैं है देवरूप मेघकरि कल्पवृक्षनिके अति सुगन्ध पुष्पनिकी वृष्टि द्वादश योजन प्रमाण समस्त समवसरणें होय है बहुरि एक योजन प्रमाण श्रीमण्डपके ऊपरि रत्नमय अशोकवृक्ष सर्व तरफ सौहै है जाकै मरकतमणिमय हरितपत्र हैं नानाप्रकार मणिमय पुष्पनिकरि भूषित हैं, पवनकरि मन्द मन्द हालती शाखाकरि मानूं नृत्य करैं हैं, मदोन्मत्त कोकिल अर भ्रमर तिनका शब्दकरि जिनेन्द्रका गुणनिका स्तवन करैं हैं। एकयोजनप्रमाण अपनी शाखाकरि समस्त जीवनिका शोक दूर करैं हैं, समस्त दिशाकूं अपने डाहलाकरि आच्छादित करैं हैं, हीरामई पेड हैं, पुष्पसमान रत्ननिकें पुष्प वरषै हैं। बहुरि तीन छत्र अपनी कांतिकी उज्ज्वलताकरि सूर्य चन्द्रमा दोऊनिकी प्रभाका तिरस्कार करता, अद्भुत त्रैलोक्यके पदार्थनिकी प्रभाकूं जीतता, मोतीनिकी झालरी करि युक्त हैं सो त्रिलोककी लक्ष्मी को हास्यको पुंज है कि धर्मरूप राजाको तीन लोकके आनन्द करनेवाला हर्ष है, कि मोहके विजयतैं उपज्या प्रभु का यशका पुंज है ऐसै तर्कना उपजावता तीन छत्र सोहै है। बहुरि जिनेन्द्रका पर्यन्तकूं सेवन करते यक्ष देवनिके हस्तानिके समूह करि चलायमान कीये चौसठ चमर प्रगट शोभै हैं, ते चामर मानूं क्षीरसमुद्रकी लहरनिकी पंकतिही है, तथा अमृतके खण्डनिकरिही रचै है, तथा चन्द्रमाकी किरणनिका समूह ही है, तथा जिनेन्द्रके सेवनकूं चमरनिकै रूप करि गंगा ही आई है, तथा जिनेन्द्रका अंगकी द्युति ही है, वा क्षीरसमुद्रके झागनिकी पंकति पवनकरि हालै है तथा आकाशतैं पडती हंसनकी पंकति ही है, तथा भगवानके उज्ज्वल यश ही च्यारौं तरफ विस्तरै है। ऐसे शोभनीक

चौंसठ चमर ढरै हैं । बहुरि जिनेन्द्रके देवदुन्दुभि आकाशमें मेघके आगमनकी शंका करते कणनिकूं अमृतकी ज्यौं सींचते मधुर शब्द करै हैं । देवलोकके अनेक जातिके वादित्र नानाप्रकारकी ध्वनिकरि समस्त दिशाकूं पूर्ण करते मेघकी गर्जनावत् समस्त लोकमें व्याप्त होता भगवान मोहका विजय किया ताका आनन्दशब्द लोकनिके हृदयमें प्रगट करै हैं । बहुरि जिनेंद्रका देहकी अद्भुत प्रभा समस्त समवसरणमें व्यापै है, तिस प्रभाकरि समस्त सुर असुर मनुष्यनिके महाआश्चर्य उपजै है, जो प्रभा सूर्यका तेजकूं आच्छादन करै है, कोट्यां कल्पवासी देवनिकी द्युतिकूं आच्छादती जगतमें एक अद्भुत महाउदयकूं प्रगट करती फैली है । जिनेन्द्रका देहरूप अमृतका समुद्रविषै देव-दानव मनुष्य अपने-अपने सप्त भव देखै हैं, चन्द्रमाकी कांति तो जडता करै है, अर सूर्यकी प्रभा आताप करै है, अर जिनेंद्रका देहकी प्रभा जडताकूं दूर करि ज्ञानका प्रकाश करै है, अर समस्त सन्तापकूं दूरकरि सुखित करै है । बहुरि जिनेंद्रका मुख–कमलतै मेघकी गर्जना समान दिव्यध्वनि प्रगट होय है सो भव्यजीवनिके मनतै मोह--अन्धकारकूं दूर करता सूर्यवत् अनेकांतस्वरूप वस्तुकूं उद्योत करै है । अर एक रूप भी जिनेंद्रका ध्वनि समस्त मनुष्यनिकी भाषारूप होय कर्णनिका अभ्यंतर प्रवेश करै है । अर तिर्यंचनिके हृदयमें हू प्रवेश करै है अर विपरीत ज्ञानकूं दूर करि सम्यक् तत्त्वके ज्ञानकूं प्रगट करै है, जैसैं एकरूप भी जलका समूह नानाप्रकारके वृक्षनिमें नानारूप परिणमै है, तैसैं सर्वज्ञका ध्वनि हू अनेक श्रोतारूप पात्रनिके विशेषतैं नाना रूप प्राप्त होय है । जैसैं एकरूप भी स्फटिकमणि नाना प्रकार डाकके संयोगतैं नानारूप परिणमै है, तैसें एक प्रकार हू सर्वज्ञकी ध्वनि स्वच्छताके प्रभावकरि पात्रके प्रभावतैं नानारूप परिणमें है । केई नाना भाषा स्वभावरूप परिणमन देवनिकृत गुण कहै है सो यामें देवकृतपणा सम्भवै नाहीं । अर दिव्यध्वनि अक्षरसहित ही है अक्षरसमूह विना अर्थज्ञान कैसैं होय ? ऐसैं अष्ट प्रातिहार्यनिकी विभूतिसहित गंधकुटीमें अनंतज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्तसुखके धारक गंधकुटीमें पूर्वदिशाके सन्मुख अथवा उत्तर दिशाके सन्मुख तिष्ठै है अर गधंकुटीकी प्रदक्षिणारूप सन्मुख पहली सभामें गणधरादिक मुनीश्वर तिष्ठै ह द्वितीय सभामें कल्पवासी देवनिकी स्त्री, तीसरी सभामें गणनीयुक्त अर्जिका, अर मनुष्यणी चौथी सभामें चक्रवर्त्यादिसहित मनुष्य, पंचमी सभामें ज्योतिष देवनिकी स्त्री, छठी सभामें व्यंतरनिकी देवी, सप्तमी सभामें भवनवासिनी देवी, अष्टमी सभामें भवनवासी देव, नवमी सभामें व्यंतरदेव, दशमी सभामें ज्योतिष्कदेव, ग्यारमी सभामें कल्पवासी देव, बारमी सभामें तिर्यंच हैं ऐसैं ये द्वादश सभाके जीव जिनेंद्रके चरणनिकी भक्तिकरि नम्रीभूत भये भगवान जिनेंद्रका उपदेश्या धर्मरूप अमृतका पान करै हैं । अर घातिया

कर्मनिका नाश होनेतैं अष्टादश दोषनिका अभाव भया है—क्षुधा १, तृषा २, जन्म ३, मरण ४, जरा ५, रोग ६, शोक ७, भय ८, विस्मय ९, अरति १०, चिन्ता ११, स्वेद १२, खेद १३, मद १४, मोह १५, निद्रा १६, राग १७, द्वेष १८, ये अष्टादश दोष समस्त संसारी जीवनिमें व्याप्त हो रहे हैं भगवान अरहंतनिके घातिया कर्मनिका अभावतैं ये समस्त दोष नष्ट भये तातैं अनंतसुखरूप परमात्मा परमपूज्य परमेश्वर अनंतगुणनिकरि भूषित कोटि सूर्य—समान उद्योतका धारक अनेक अतिशयनिकरि युक्त अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतवीर्य अनन्तसुखरूप तिष्ठै हैं ऐसे अरहंतस्वरूपका ध्यान करना सो रूपस्थध्यान है । जो पुरुष वीतराग हुवा संता वीतरागकूं स्मरण करै है सो कर्मबन्धनतैं छूटै है, अर आप रागी हुवा सरागीको अवलम्बन करै है सो दुष्टकर्मनिकरि बन्धै है । क्रोधी हुवा हू अनेक विकारकरि असार ध्यानके मार्गकूं अवलम्बन करै है । तथा मंत्र मंडल मुद्रादि अनेक प्रयोगकरि ध्यान करनेकूं उद्यमी हैं तिनका आत्माका एकाग्र होय जुडनेमें ऐसा सामर्थ्य प्रगट होय है जो क्षणमात्रमें सुर असुर मनुष्यनिके समूहकूं क्षोभनै प्राप्त करै हैं, विद्यानुवादमें अनेक विद्या मंडल मन्त्र अक्षरादिकनिका सामर्थ्य आत्माके भाव जुडनेतैं प्रगट होतैं वर्णन किये हैं, जातैं अनादि वस्तुनिका स्वभाव कोऊका दूर किया दूर होय नाहीं है । जैसैं केतेक पुद्गलनिका संयोग मिलि विष हो जाय, केते अमृत हो जाय हैं, केते शरीरके लगानेतैं विकार दूर करै, अर भक्षण करनेतै प्राण हरै । तथा वचनके पुद्गलनिमें हू अचिंत्य सामर्थ्य है, जिनतै आत्मामें क्रोधादिक विकार प्रगट हो जाय, तथा आजन्मके कषाय दूर हो जांय, तथा मंत्रादिकनितैं जहर उतरि जाय, अर जहर व्याप्त हो जाय, ऐसे ही मनके एकाग्र जुडनेमें ध्यानका अचिंत्य सामर्थ्य है । नरक स्वर्ग मोक्ष होनेका कारण ध्यान है । केते असंख्यात ध्यान कुतूहलके अर्थि कुमार्गमें प्रवर्तन करावनेवाले कुमतिके कारण कुध्यान हैं क्योंकि आत्मामें अनंत सामर्थ्य स्वभावहीतैं है जैसा जैसा बाह्य निमित्त मिलै तैसा तैसा परिणाम होय है यातैं जिनेंद्रधर्मके धारक है ते खोटे ध्यान कुमंत्र मंडलादिसाधन कौतुक करकै हू स्वप्नमें कदाचित सेवन मत करो । कुध्यानादिकके प्रभावतैं सम्यक् मार्गतैं भ्रष्ट हो जाय है, सांची उज्ज्वल बुद्धि नष्ट होय, फेर अनेक भवनिमें बुद्धिकी शुद्धता नाहीं आवै है, मिथ्यामार्ग नाहीं छूटै है । सन्मार्ग छूटै पाछैं असंख्यात भवपर्यंत सम्यक् बुद्धि प्रगट नाहीं होय, जिनसिद्धांतको उपदेश प्रवेश नाहीं करै, बुद्धि विपरीत होजाय । यातैं असत् ध्यान खोटे मंत्रादिक केवल आत्माके नाशके अर्थि हैं, रागादिका वर्द्धन करै हैं, गृहीतमिथ्यात्व है । जे पुरुष नीचे ध्यान खोटे मंत्र मुद्रा मंडल यंत्र प्रयोगादिककरि रागी द्वेषी कामी क्रोधी नीचे व्यंतरदेव भवनवासी ज्योतिषि देव देवी यक्ष यक्षणीनिकी आराधना करै हैं, संसारके विषय

तथा धन तथा कषायनिकी खोटी आशाका अर्थि हुवा ये भोगांकी आर्त्तिकरि अपना पूर्व पुण्यका घातकरि नरकभूमिकूं प्राप्त होय है । ये विषय-कषायनिकी वांछा ही दुर्गति करै है, फिर इनके अर्थि खोटी विद्या खोटे मंत्रादिककरि ध्यान करना आत्मामें मिथ्यात्व कषायनिका दृढ आरोपण करणा है सो निगोदादिकमें अनंतकाल परिभ्रमण करावै ही । बुद्धिमानकूं तो ऐसा ध्यान करना तथा ऐसा चिंतवन करना तथा ऐसा आचरण करना जातैं जीवके कर्मबंधका विध्वंस होय । अर जे शांतचित्त हैं मंदकषायी हैं निर्वाञ्छक हैं संतोषी हैं मोक्षमार्गके अवलम्बी हैं तिनके विद्याका साधन, देवता आराधन विना ही स्वयमेव अनेक सिद्धि अनेक ऋद्धि प्राप्त होय हैं । अर नीच वांछाके धारक हीन-पुण्यके धारकनिकै वांछित भी नाहीं होय, अर अनेक मंत्रादिक साधन करते हू अनेक आपदा ही प्राप्त होय हैं, तातैं वीतरागधर्मका श्रद्धानी स्वप्नहूमें नीचे ध्यान मंत्रादिककी प्रशंसा हू मत करो । बहुरि जो शरीरादिक नोकर्म अर ज्ञानावरणादिकर्मरहित चैतन्यस्वरूप निजानन्दमय शुद्ध अमूर्त अविनाशी अजन्मा स्पर्शरसगन्धवर्णादिपुद्गलविकार रहित अनन्तदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंत शक्तिस्वभाव स्वाधीन, निराकुल, अतींद्रिय, सिद्ध, कृतकृत्य ऐसा शुद्ध आत्माका स्वभाव चिंतवन करना सो रूपातीत ध्यान है । यद्यपि चित्तका एकाग्रपना ध्यान है तथापि सिद्धपरमेष्ठीके गुणसमूहके स्वरूप ध्यानमें अवलोकनकरि अनन्यशरण होय अर तिस स्वरूपमें लीन होजाना सोई, धर्मध्यान है सिद्धपरमेष्ठीके गुणसमूहके स्वभावरूप अपना स्वरूपकूं करना सो ही परमात्मामें युक्त होना है । परमात्माकै अर हमारे गुणनिकरि तो समानता है, परन्तु हमारे गुण कर्मनिकरि आच्छादित हैं सिद्धपरमेष्ठीकै कर्मके अभावतैं समस्त गुण प्रगट भये हैं । ऐसैं निरन्तर अभ्यासतैं आत्मा ऐसा निश्चल होय जो स्वप्नादिक अवस्थामें हू सिद्धनिका स्वभाव प्रत्यक्ष दीखै ताकै रूपातीत ध्यान होय है । ऐसैं रूपातीत ध्यानकूं वर्णन करि धर्मध्यानका वर्णन समाप्त कीया ॥ ४ ॥

अब शुक्लध्यानके वर्णन करनेका अवसर आया । यद्यपि शुक्लध्यानके परिणामनिका एक देशमात्र हू अपने साक्षात् नाहीं है, तथापि आगमकी आज्ञाके अनुकूल किंचित् लिखिये है । शुक्लध्यान चार प्रकार है तिनमें आदिके दोय शुक्लध्यान तो ज्ञाता द्वादशांग धारक मुनीश्वरनिके होय हैं अर पिछले दोय शुक्लध्यान केवली भगवानके होय हैं । पृथक्त्ववितर्कवीचार १, एकत्ववितर्कअवीचार २, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ३, व्युपरतक्रियानिवर्ति ४, ये चार नाम हैं तिनमें प्रथम शुक्लध्यान तो मन वचन कायके तीनूं योगनिमें होय है, दूजा शुक्लध्यान एक योगहीमें होय है तीजा शुक्लध्यान एक काययोगहीमें होय है, चौथा शुक्लध्यान अयोगीहीकैं होय है । तिनमें प्रथम शुक्लध्यान तो सवितर्क कहिये श्रुतज्ञानका शब्द अर्थका अवलंबनसहित है,

अर सवीचार कहिये अर्थका पलटना शब्दका पलटना अर योगका पलटना तिनकरि सहित है तातैं सवितर्क-सवीचार है। अर नाना शब्द अर्थ योगका पलटना सो पृथक्त्ववितर्कवीचारहै। अर दूजा शुक्लध्यान श्रुतका एक शब्द, एक अर्थ, एक योगका अवलंबनकरि होय है, अर अवलंबन क्रिया तातैं परिणाम पलटैं नाहीं तातैं एकत्ववितर्कअवीचार नाम दूजा शुक्लध्यान है इहां वितर्क नाम श्रुतज्ञानका है वीचार नाम अर्थका व्यंजनका अर योगका संक्रांति कहिये पलट जानेका है। अर्थ नाम तो ध्यान करने योग्य ध्येयका है सो ध्येय द्रव्य है वा पर्याय है, व्यंजन नाम वचनका है, योग नाम मन वचन कायका हलन चलनरूप क्रियाका है संक्रांतिनाम परिवर्तनका है। द्रव्यकूं छांडि पर्यायकूं प्राप्त होना पर्यायकूं छांडि द्रव्यकूं प्राप्त हो ना सो अर्थसंक्राति है। एक श्रुतका शब्दकूं ग्रहण करि अन्य श्रुतका वचनकूं अवलंबन करना, ताकूं छांडि अन्यका अवलंबन करना सो व्यंजनसंक्राति है। काययोगनै छांडि अन्य योगकूं ग्रहण करना सो योगसक्रांति है ऐसे परिवर्तनकूं वीचार कहिये है। सो ये सामान्य विशेष कह्यो जो चार प्रकार शुक्ल ध्यान अर धर्मध्यान अर पूर्वे कहे बहुत प्रकार गुप्त्यादिक उपाय संसारका अभावके अर्थि महामुनिके धारने योग्य हैं। यहां ध्यानके आरम्भ एता परिकर होय है जिसकालमें उत्तम तीन शरीरके संहननपनाकरि परीषहनिकी बाधा सहनकी शक्ति आत्माकूं प्राप्त होय तिस कालमें ध्यानकै संयोगका परिचयके अर्थि आरम्भ करै। कैसैं करैं सो कहै हैं—पर्वत गुफा कंदर दरी वृक्षनिके कोटर नदीके तट श्मसान जीर्ण उद्यान शून्य गृहादिकमें कोऊ एक अवकाशस्थान होय, सो कैसा स्थान होय सर्प मृग पशु पक्षी मनुष्यनिके अगोचर होय, अर आगंतुक कीडा कीडी बीछू डांस मांछर मधुमक्षिकादिक जीवनिकरि रहित होय। अर जहां अति उष्मा नाहीं होय, अतिशीत नाहीं होय, अतिपवन नाहीं होय, वर्षा तावडाकी बाधारहित होय, समस्त प्रकार बाह्य शरीरमें अर अभ्यन्तर मनविषैं विक्षेपनिका कारणकरि रहित पवित्र अनुकूल स्पर्शरूप भूमितल में सुखरूप तिष्ठता, बांध्या है पल्यंकासन जाने अर सम सरल कठोरतारहित शरीरयष्टिकूं निश्चलकरि अपने अंकमें वाम हस्ततलके ऊपरि दक्षिण हस्ततल सीधो स्थापना करि अर नेत्रकूं अति नाहीं उघाडता, अर अति नाहीं निर्मीलन करता, दंतनि करि दंतनिके अग्रभाग स्पर्शन न करता अर किंचित् उन्नतमुख धारैं सरल मध्य हृदय उदरादि धारि अंगका करडापनानै छांडि परिणाम मस्तक ओष्ठकी गम्भीरता सरलताकूं धारता प्रसन्न मुखका वर्ण धारै अर निमेषरहित स्थिर सौम्य दृष्टिसहित हुवा नष्ट भया

है निद्रा आलस्य काम राग रति अरति शोक हास्य भय द्वेष ग्लानि जाकै, अर मन्द-मन्द है स्वास उश्वासका प्रचार जाकै इत्यादिक परिकरकूं धारता साधु है सो नाभिके ऊपर अथवा हृदय में तथा मस्तकमें वा अन्य स्थानमें मनकी प्रवृत्तिकूं जैसैं पूर्वैं परिचय होय तैसैं निश्चल करिकै मोक्ष जो कर्मबन्धनतैं छूटनेका अभिलाषी हुवा प्रशस्त ध्यानकूं ध्यावै

तिस ध्यानमें एकाग्रमन हुवा अर राग द्वेष मोहकी उपशमताकूं प्राप्त हुआ निपुणपणातैं शरीरका हलन-चलनक्रियाकूं निग्रह करता मंदमंद उश्वास-निश्वासरूप सम्यक् निश्चल अभिप्रायकूं धारता क्षमावान हुवा बाह्य अभ्यन्तर द्रव्य-पर्यायनिमें ध्यावता श्रुतका सामर्थ्यकूं अंगीकार करता साधु है सो अर्थने अर व्यंजननै अर कायनै अर वचननै भिन्नपणाकरि परिवर्तन करता मन करिकैं जैसैं कोऊ पुरुष परिपूर्ण बलका उत्साहरहित निश्चलतारहित हुवा तीक्ष्णतारहित मोटा शस्त्र करिकै बहुत कालमें सचिक्कन काष्ठकूं छेदे है तैसैं अष्टम नवम दशम गुणस्थानक भावका धारक साधुहू संज्वलनकषायका उदयतैं परिपूर्ण परिणामनिका बलके उत्साहकूं नाहीं प्राप्त हुवा अर भावनिकै कषायके उदयके धक्कातैं दृढ निश्चलताकूं प्राप्त नाहीं होनेतैं अर मोहनीका समस्त उदयका नाश नाहीं होनेतैं धीरैं धीरैं करणरूप परिणामनिके सामर्थ्यतैं मोहनीयकर्मकी प्रकृतिनिनै उपशम करता वा क्षय करता पृथक्त्ववितर्कवीचार नाम ध्यानका धारक होय है। फेरि वीर्यविशेषकी हानितैं योगतैं योगान्तरनै शब्दतैं शब्दांतरनै अर्थनैं अर्थान्तरनै आश्रय करता ध्यानके प्रभावतैं समस्त मोहरजका अभावकरि ध्यानका योगतैं निमडै है ऐसैं पृथक्त्ववितर्कवीचार नाम ध्यानका स्वरूप कह्या। बहुरि इसही विधिकरि समस्त मोहनीय कूं दग्ध करनेका इच्छुक अनन्तगुण विशुद्ध योगविशेषकूं आश्रयकरि बहुरि ज्ञानावरणकी सहाईभूत प्रकृतिनिका बंधकूं घटावता वा क्षय करता श्रुतज्ञानका उपयोगवान दूरि भया है अर्थ व्यंजन योगका पलटना जाकै, अर अविचलित है मन जाका अर क्षीण भया है कषाय जाकै वैडूर्यमणिकी ज्यों निरुपलेप हुवा ध्यान करिकै फेर नाहीं बाहुडै है ऐसैं एकत्ववितर्कध्यान कह्या। ऐसैं एकत्ववितर्कशुक्लध्यानरूप अग्निकरि दग्ध किया है घातिकर्मरूप ईंधन जानैं, अर प्रज्वलित भया है केवलज्ञानरूप सूर्यमंडल जाकै, मेघपंजरका अभावतैं निकस्या सूर्यकी ज्यों कांतिकरि देदीप्यमान भगवान तीर्थंकर वा अन्य केवली सो तीन लोकके ईश्वर जे इंद्र धरणेंद्रादिकनिकरि वंदनीय पूजनीय हुवा उत्कृष्टकरि देशोन कोटिपूर्व विहार करैं हैं। अर सो ही केवली जो अंतर्मुहूर्त आयु बाकी रहि जाय अर वेदनी नाम गोत्रकर्मकी स्थिति हू आयुके समान ही होय तदि तो समस्त वचन मनोयोगकूं छांडि करिकै सूक्ष्मकाय योगका अवलम्बन करै सो सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्याननै

प्राप्त होनेकूं योग्य होय है । अर जो अंतर्मुहूर्त आयु शेष रहि होय अर वेदनी नाम गोत्रकी स्थिति अधिक होय तो सयोगी समस्त कर्मके रजकूं नाश करनेकी शक्ति स्वभावतैं दंड कपाट प्रतर लोकपूरण समुद्घात अपने आत्मप्रदेशनिके प्रसरणतैं च्यारि समयनिमें करि बहुरि च्यारि समयमें आत्मप्रदेशकूं संकोच करि समस्त कर्मनिकी स्थितिकूं समानकरि पूर्वशरीरपरिणाम होय सूक्ष्मकाययोगकरि सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानकूं प्राप्त होय है । तहां पाछैं समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिध्यानका आरम्भ करै हैं समुच्छिन्न कहिये नष्ट भया है श्वासोच्छ्वासका प्रचार अर समस्त काय वचन मनका योगरूप समस्त प्रदेशनिका हलन-चलनरूप क्रियाका व्यापार जामें यातैं याकूं समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिध्यान कहिये है तिस समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिध्यानके होते समस्त बंधका कारण समस्त आस्रवका निरोध अर समस्त कर्मका नाश करनेका सामर्थ्यकी उत्पत्तितैं अयोगकेवलीभगवानकै सम्पूर्ण संसारका दुःखनिका संगमके छेदन करनेका कारण सम्पूर्ण यथाख्यातचारित्र ज्ञान दर्शन साक्षात् मोक्षका कारण उपजै है सो अयोगकेवली भगवान तदि ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध किया है समस्त कर्ममलकलंकबंध जानै नष्ट भया है कीटधातु पाषाण जातैं ऐसा सुवर्णकी ज्यों अपनी आत्माकी शुद्धता पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ऐसैं शुक्लध्यानका संक्षेप स्वरूप वर्णनकरि ध्यान नामा तपका वर्णन समाप्त किया । ऐसैं तप भावना वर्णन करी ॥

अब इहां अनेकांत भावना अर समयसारादिभावना वर्णन करी चाहिये परन्तु आयु कायका अब शिथिलपणातैं ठिकाना नाहीं तातैं सूत्रकारका कह्या कथनकूं समेटना उचित विचारि मूलग्रन्थंका कथन लिखिये है । यहां तक श्रावकके बारा व्रत तो वर्णन किये, अब अन्तकालमें सल्लेखना विना सफल नाहीं होय, बारह व्रतरूप सुवर्णका मन्दिर खडा किया अब या ऊपर सल्लेखना है सो रत्नमयी कलश चढावना है यातैं सल्लेखनाका स्वरूप कहिये है तिसमें प्रथम सल्लेखनाका अवसरका वर्णन करनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे । धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥१२२॥

अर्थ— जाका इलाज नाहीं दीख, मिटनेका प्रतीकार नाहीं दीख, ऐसा उपसर्ग होतैं दुर्भिक्ष होतैं जरा होतैं रोग होतैं जो धर्मकी रक्षाके अर्थि शरीरका त्याग करना ताहि गणधरदेव सल्लेखना कहैं हैं । जातैं देहमें रहना अर देहकी रक्षा करना तो धर्मक धारनैके अर्थि है, मनुष्यपणा इन्द्रिय अर मन इत्यादिक पावना सो समस्त धर्मके पालनेतैं सफल है अर जहां धर्महीका नाश दीखै जो अब धर्म नाहीं रहैगा, श्रद्धान ज्ञान चारित्र नष्ट हो जायगा, ऐसा निश्चय हो जाय, तहां धर्मकी रक्षाके अर्थि देहका त्याग करना सो सल्लेखना

है । कोऊ पूर्वजन्मका वैरी असुर पिशाचादिक देव उपसर्ग आय करै तथा दुष्ट वैरी वा भील म्लेच्छादिक तथा सिंह व्याघ्र गज सर्पादिक दुष्ट तिर्यंचनिकृत उपसर्ग आया होय अथवा प्राणणिका नाश करनेवाला पवन वर्षा गडा तथा शीत उष्णता धूप अग्नि पाषाण जलादिकृत उपसर्ग आया होय, तथा दुष्ट कटुम्बक बांध-होय. तथा दुष्ट राजा, राजाका मन्त्री इत्यादिकनि-कृत उपसर्ग आवै तो तहां सल्लेखना करै । बहुरि निर्जन वनमें वादिक स्नेहतैं वा मिथ्यात्वकी प्रबलतातै तथा अपने भरण-पोषणके लोभतैं चारित्र धर्मके नाश करनेकूं उद्यमी दिशा भूल हो जाय मार्ग नाहीं पावै, बहुरि अन्न-पान जामें मिलनेका नाहीं ऐसा दुर्भिक्ष आ जाय, बहुरि समस्त देहकूं जीर्ण करनेवाली नेत्र-कर्णादिक इन्द्रियनिकूं नष्ट करनेवाली जंघा-बल नष्ट करनेवाली हस्त-पादादिकनिकूं शिथिल असमर्थ करने-वाली जरा आजाय तिस कालमें सल्लेखना करना उचित है । बहुरि असाध्य रोग आय गया हो, प्रबल ज्वर अतीसार तथा स्वास कास कफका वधना तथा वात-पित्तादिककी प्रबलता होय, तथा अग्निकी मन्दताकरि क्षुधाका घटना होय, रुधिरका नाश होना होय, तथा कठोदर सोजा इत्यादिक विकारकी प्रबलता होय, तथा रागकी दिन दिन वृद्धि होय, तदि शीघ्र ही धैर्य धारण करि उत्साहसहित सल्लेखना करना योग्य है । ये अवश्य मरणके कारण आय प्राप्त होय तहां च्यारि आराधनाका शरण ग्रहण करि समस्त देह गृह कुटुम्बादिकतैं ममत्व छांडि अनुक्रमतैं आहारादिकनिका त्यागकरि देहकूं त्यागना । देह विनाशि जाय अर आत्माका स्वभाव दर्शन ज्ञान चारित्र जैसैं नाहीं विनशै तैसैं यत्न करना । यो देह तो विनशीक है, अवश्य विनशैगा, कोट्या यत्नतैं देव दानव मंत्र तंत्र मणि औषधादिक कोऊ रक्षा नाहीं करैगा । देह तो अनन्त भव-धारणा करि छांडै हैं यो रत्नत्रय धर्म अनन्त-भवनिमें नाहीं प्राप्त हुवा यातैं दुर्लभ है, संसार परिभ्रमणतैं रक्षा करनेवाला है, ऐसा धर्म मेरे परलोकपर्यन्त मति मलीन होहू ऐसा निश्चय धरि देहतैं ममता छांडि पंडितमरणके अर्थि उद्यम करै ।

अब समाधिमरणकी महिमा कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

अंतःक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते। तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥१२३॥

अर्थ—अन्तक्रिया जो संन्यासमरण सो ही जाका आधार होय तिस तपके फलकूं सकलदर्शी सर्वज्ञ भगवान् स्तुवते कहिये प्रशंसा करते हैं जिस तप करनेवालेके तपके फलतैं अंतमें संन्यासमरण नाहीं भया सो तप निष्फल है तातैं जेता आपका सामर्थ्य होय तेता समाधिमरण करनेमें प्रकृत यत्न करना योग्य है । भावार्थ—तप व्रत संयम करनेका फल लोकमें अनेक हैं । तप करनेका फल देवलोक है, तथा मिथ्यादृष्टिकै तपके प्रभावतैं नवग्रैवेयक

पर्यंतमें अहमिंद्र होना हू है महान ऋद्धि संपदा हू है, तपका फल चक्रवर्तीपणा नारायणपणा बलभद्रपणा राजेन्द्रपणा विभव संपदारूप निरोगपणा बलवानपणा अनेक प्रकार है, अखण्ड आज्ञा ऐश्वर्य ऋद्धि विभव परिवार समस्त ये तपका फल है सो अन्तमें समाधिमरण विना समस्त देवादिकानिकी सम्पदा अनेक वार भोगि भोगि संसारमें परिभ्रमण ही किया, परंतु तप करकें जो अन्तसमाध मरणकी विधितै आराधनाका शरणसहित, भयरहित मरण कीया, तिस तपका फलकूं सर्वदर्शी भगवान् प्रशंसा करै हैं । जातैं कोटिपूर्व-पर्यन्त तप कीया, अर अन्तकालमें जाका मरण बिगडि गया, ताका तप प्रशंसा-योग्य नाहीं । तप करनेतैं देवलोक मनुष्यलोककी सम्पदा पा जाय, परन्तु मरणकालमें आराधनामरणके नष्ट होनेतैं संसारपरिभ्रमण ही करैगा । जैसैं अनेक दूर देशनिमें बहुत भ्रमणकरि बहुत धन उपार्जन कीया, परन्तु अपने नगरके समीप आय धन लुटाय दरिद्री होय है तैंसैं समस्त पर्यायमें तप व्रत संयम धारण करकै हू जो अंतकालमें आराधना नष्ट करि दीनी तो अनेक जन्म-मरण करनेका ही पात्र होयगा ।

अब संन्यास करनेका प्रारम्भमें कहा करै सो कहनेकूं मत्र कहैं हैं—

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः । स्वजनं परिजनमपि च क्षांत्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥१२४॥

अर्थ—अब स्नेह अर वैर संग परिग्रह इनूंका त्याग–करि शुद्धमन होय स्वजन अर परिकर के जन तिनमें क्षमा ग्रहण करिके अर समस्त परिकरके जनकूं आप हू प्रिय हित वचन करके क्षमा ग्रहण करावे सम्यग्दृष्टिके स्नेह अर वैर दोऊनिका अभाव होय है सम्यग्ज्ञानी ऐसा विचारै है जो इस पर्यायमें कर्मके वशतैं मैं आय उपज्या अत्र जो पर्यायका उपकारक तथा अपकारक द्रव्यनिकूं पुण्य पाप कर्मका उदयके आधीन जे बाह्य स्त्री पुत्रादिक थे तिनमें पर्यायके उपकारका अर्थि दान सन्मानादिकरि स्नेह किया, अर जे इस पर्यायके उपकारक द्रव्यनिकूं नष्ट करनेवाले थे तिनकूं चारित्रमोहके उदयकरि वैरी मान्या, उनतैं पराङ्मुख होय रह्या । अब इस पर्यायका विनाश होनेका अवसर आया अब कौनसूं स्नेह करूं अर कौनसं वैर करूं मेरा इनका आत्माके संबंध तो है ही नाहीं, इनूंका आत्माकूं जानूं नाहीं, ये लोक हमारे आत्माकूं जानं नाहीं, केवल हमारा इनूंका चामडा दीखनेमें आवै है यातैं चामडाहीसूं मित्र शत्रु का संबंध है सो ये चाम भस्म होय एक एक परमाणु उडि जांयगे अब

कौनसूं स्नेह वैरका संकल्प करिये। अर जे कोऊ आपसूं विना-कारण अभिमानसूं वैर करनेवाले हैं तिनसूं नम्रीभूत होय क्षमा ग्रहण करावै जो मेरी भल चूक भई है जो मैं आप सारिखनितैं अपूठा होय रह्या, मैं अज्ञ आपसूं प्रार्थना करूं हूँ मेरा अपराध क्षमा करो, आप सारिखे सज्जननि विना कौन बकसीस करै, अर जो आप किसीका धन धरती दाव लई होय तो उनकूं देय राजी करै जो मैं दुष्टताकरि आपका धन राख्या, तथा जमीन जायगा खोसी, सो अब ये आपकी ग्रहण करो। मैं पापी हूँ दुष्टताकरि छलकरि लोभकरि अंध भया दुराचार किया, अब मैं अंतरंगमें पश्चात्ताप करूं हूँ, आपकूं बडा दुःख उपजाया अब जो अपराध किया सो तो कोऊ प्रकार उल्टा आवै नाहीं, अब मैं कहा करूं, आप माफ करो इत्यादिक सरल भावनितैं क्षमा ग्रहण करावैं। अर जे अपने कुटुम्ब मित्रादिक स्नेहवान् होंय, तिनसूं कहै तुम हमारैं सम्बन्धी स्नेही हो परन्तु तुमारे हमारे इस पर्यायका सम्बन्ध है सो थैं इस देहका उपजावनेवाला माता पिता हो, इस देहतैं उपजे पुत्र पुत्री हो, इस देहके रमावनेवाली स्त्री हो, इस देहके कुलके सम्बधी बंधुजन हो तुम्हारे हमारे इस विनाशीक पर्यायका सम्बंध एतेकाल रह्या अर यो पर्याय आयुके आधीन है अब अवश्य विनशैगा अब विनाशीकतैं स्नेह करना वृथा है। इस देहतैं स्नेह करो तो यो रहनेको नाहीं यो तो अग्नि आदिकतैं भस्म होय समस्त विखर जायगा, अर मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है अविनाशी है अखण्ड है मेरा निजरूप है, निज स्वभावका विनाश नाहीं। जाका संयोग है ताका अवश्य वियोग है, अर जो अनेक पुद्गल परमाणु मिलकरि उपज्या ताका अवश्य विनाश होय ही, तातैं इस विनाशीक अज्ञान जडस्वरूप मेरे पुद्गलतैं स्नेह छांडि मेरे अविनाशी ज्ञायक आत्माका उपकार करनेमें उद्यमी होना योग्य है। जैसैं मेरा ज्ञान दर्शन स्वभाव आत्मा रागद्वेषमोहादिकतैं घात नाहीं होय, अर ज्ञानादिककी उज्ज्वलता प्रगट होय, वीतराग निज स्वभावकी प्राप्ति होय, तैसैं यत्न करना। ये पर्याय तो अनंतानंत धारण करि छांडि हैं मैं दर्शन-ज्ञान चारित्रकी विपरीततातैं च्यारि गतिनिमें परिभ्रमण किया। कहां मेरा सकलका ज्ञाता सर्वज्ञस्वरूप, अर कहां एकेन्द्रिय पर्यायमें अक्षरके अनन्तवें भाग ज्ञानका रहना। तथा अनन्त शक्ति अन्तराय कर्मके उदयतैं नष्ट होय, पृथ्वी पाषाण जल अग्नि पवनं वनस्पतिरूप पंच-स्थावररूप धरना, विकलत्रय होना, ये समस्त मिथ्या श्रद्धान ज्ञान आचरणका प्रभाव है। अब अनंतानंतकालमें कर्मके बडे क्षयोपशमतैं वीतरागका स्याद्वादरूप उपदेशतैं मेरे किंचित् स्वरूप-पररूपका जानना भया है तातैं भो सज्जन जन हो, अब ऐसा स्नेह करो जैसैं मेरा आत्मा राग द्वेष मोहरहित हुवा निर्भय हुवा देहका त्याग आराधनाका शरणसहित करैं। जातैं अनादिकालतैं अनन्तानन्त मिथ्यात्वसहित बालमरण किया, जो

एक वार भी पण्डितमरण करता तो फेर मरणका पात्र नाहीं होता । तातैं अब देहतैं स्नेहादिक छांडि जैसें मेरा आत्मा रागादिकनिके वश होय संसार समुद्रमें नाहीं डूबै तैसैं यत्न करना उचित है । ऐसे स्नेह वैरादिक छांडि अर देह-परिग्रहादिकका राग छांडि शुद्ध मन करो । बहुरि समाधिमरणका इच्छुक कहा करै सो सूत्र कहैं हैं ।

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम् । आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम् ॥१२५॥

अर्थ—बहुरि जो पाप अपराध आप किया, तथा अन्यतैं कराया होय तथा करतेकूं आछा जाना होय, तिस अपराधकूं एकान्तमें निर्दोष वीतराग ज्ञानी गुरुनितैं कपटरहित आलोचना करकै अर मरण पर्यंत समस्त महाव्रत आरोपण करै, ग्रहण करै ।

भावार्थ—वीतराग निर्दोष गुरुनिका संयोग प्राप्त होजाय, अर अपना रागादिकषाय घटि जाय, अर परीषहादिक सहनेमें अपना शरीर मन समर्थ होय, धैर्यादि गुणका धारक होय, निर्ग्रंथ वीतराग गुरु निर्वाह करनेकू समर्थ होय, देश काल सहायादिकका शुद्ध संयोग होय, तो महाव्रत अंगीकार करै । अर बाह्य अभ्यंतर सामग्री नाहीं होय तो अपने परिणाममें ही भगवान पंचपरमेष्ठीका ध्यान करि अरहंतादिकतै आलोचना करै । अपनी योग्यताप्रमाण समस्त पंच पापनिका त्यागकरि गृहमें तिष्ठा ही महाव्रती तुल्य हुवा रोगादिक वेदनाकूं कायरता रहित बडा धैर्यतैं सहता दुःखरूप वेदनाकूं बाह्य नाहीं प्रकट करता सहै । कर्मके उदयकूं अपना स्वभावतैं भिन्न जानता, समस्त शत्रु मित्र संयोग वियोगमें साम्य भाव धारता, परिग्रहादिक उपाधिकूं त्यागिकरि विकल्परहित तिष्ठै है । जातैं ऐसा जानना जो संन्यासका अवसर जानि परिग्रहका त्याग करै तहां जो प्रथम तो किसीका देना ऋण होय तो ताकूं देय ऋणरहित होजाय, बहुरि किसीकी धनादिक तथा जमीं जायगा आप अनीतिसूं ली होय तो ताकूं पाछी देय वाकै संतोष उपजाय अपना अपराध क्षमा कराय आपकी निंदा गर्हा करै । बहुरि जो धन परिग्रह होय ताका विभाग करिकै देय निराकुल होजाय स्त्रीको विभागकरि स्त्रीनै देवै, पुत्रनिका विभाग पुत्रनिको देवै, पुत्रीका विभाग होय पुत्रीकूं देवै, दुःखित दीन अनाथ विधवा ऐसैं आपके आश्रय बहिण भुवा बन्धु इत्यादिक होय, तिनकूं देय समस्त परिग्रह त्यागि ममतारहित होय देहका संस्कारका त्याग करै, स्त्री पुत्र गृहादिक समस्त कुटुम्बमें शय्या आसन वस्त्रादिकनिमें ममताकूं छांडै, जो हमारा इनका अब केताक संबंध है जिस देहका संबन्धीनितैं संबंध था उस देहकूं ही अब हम छांडै हैं तब देहका संबन्धतैं हमारैं काहेकी ममता ?

अब हमारा आत्माका संबंध तो अपने स्वभावरूप सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रतैं है हमारा निजस्वभाव है। देह तो चाम हाड मांस रुधिरमय कृतघ्न है, जड है ये हमारा नाहीं, हम इनका नाहीं देह विनाशीका है हमारा रूप अविनाशी है हमारे तो अज्ञान भावतैं यामें ममता रही ताकरि अशुभ कर्मनिका बंध किया। अब ऐसा देहका संवंधका नाशकूं वांछा करूं हूं देहका ममत्वतैं ही अनन्त जन्म मरण भये हैं अर संसारके जितने दुःखनिके प्रकार हैं ते समस्त देहके संगमतैं ही मेरे हैं राग द्वेष मोह काम क्रोधादिकनिका उत्पत्तिका कारण हू एक देहका सम्वन्ध ही है। ऐसै देहतैं विरागताकूं प्राप्त होय समस्त व्रतनिकी दृढता धारण करै। बहुरि कहा करै सो कहै हैं,—

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा। सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥१२६॥

अर्थ—संन्यासक अवसरमें शोक भय विषाद स्नेह कलुषपना अरति इत्यादिकनिकूं छांडि करिकैं कायरपणाका अभाव करो अपना आत्मसत्वका प्रकाश करिकैं अर श्रुतरूप अमृतकरि मन जो है ताहि प्रसन्न करै।

भावार्थ—अनादिकालतैं ही पर्यायमें संसारीके आत्मबुद्धि लगि रही है अर पर्यायका नाशकूं ही अपना नाश मानै है जब पर्यायका नाश होना अर धन परिग्रह स्त्री पुत्र मित्र बांधवादिक समस्त संयोगका वियोग होना दीखै है तब मिथ्यादृष्टिकै बडा शोक उपजै है सम्यग्दृष्टीकै शोक नाहीं उपजै है ऐसा विचार करै है। जो हे आत्मन्! पर्याय तो अनन्तानन्त ग्रहण होय होयकैं छूटी हैं, यो देह रोगनिका उत्पत्तिका स्थान है अर नित्य ही क्षुधा तृषा शीत उष्ण भयादिक उपजावनेवाला हैं महाकृतघ्न है, अवश्य विनाशीक हैं, आत्माकै समस्त प्रकार दुःख क्लेशादि उपजावने वाला है, 'दुष्टके संगमकी ज्यों त्यागने योग्य है समस्त दुःखनिका बीज है महा संताप उद्वेगका उपजावनेवाला है, सदा काल भयका उपजावनेवाला है, बंदीगृहसमान पराधीन करनेवाला है, जेती दुःखनिकी जाति हैं ते समस्त वाकै संगमतैं भोगिये है आत्मस्वरूपकूं भुलावनेवाला है चाहकी दाहका उपजावनेवाला है, महामलीन है कृमिनिका समूहकरि भऱ्या महादुर्गंधमय है, दुष्ट भ्राताकी ज्यों नित्य क्लेशनिके उपजावनेकूं समर्थ अनमारण शत्रु है, ऐसे देहका वियोग होनेका कहा शोक है? यातैं ज्ञानी शोककूं छांडै हैं, मरणका भय नाहीं करैं हैं विषाद स्नेह कलुषपना तथा अरतिभाव कूं त्यागकरि अर उत्साह साहस धैर्य प्रकट करके श्रुतज्ञानरूप अमृताका पानकरि मनकूं तृप्ति करैं हैं। अब इसही मन्त्रका अर्थ की दृढता करनेकूं मृत्युमहोत्सवका पाठ अठारह श्लोकनिमें यहां उपकार जानि अर्थ सहित लिखिये है—

मृत्युमार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे । समाधि–बोधौ पाथेयं यावन्मुक्तिपुरी पुरः ॥

अर्थ—मृत्युके मार्गमें प्रवर्त्यो जो मैं ताकूं भगवान वीतराग जो है सो समाधि कहिये स्वरूपकी सावधानी अर बोध कहिये रत्नत्रयका लाभ सो ही जो पर्याय कहिये परलोकके मार्गमें उपकारक वस्तु सो देहु जितनेकमें मुक्तिपुरी प्रति जाय पहुंचूं, या प्रार्थना करूं ।

भावार्थ—मैं अनादिकालतैं अनन्त कुमारण किये, जिनकूं सर्वज्ञ वीतराग ही जानै हे, एक बार हू सम्यक् मरण नाहीं किया । जो सम्यक् मरण करता तो फिर संसारमें मरणका पात्र नाहीं होता । जातैं जहां देह मर जाय अर आत्माका सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वभाव है सो विषय 'कषायनिकरि नाहीं घात्या जाय सो सम्यक् मरण है । अर मिथ्याश्रद्धानरूप हुआ देहका नाशकूं ही अपना आत्माका नाश जानना, संक्लेशतैं मरण करना सो कुमरण हैं । सो मैं मिथ्यादर्शनका प्रभाव करि देहकूं ही आपा मानि अपना ज्ञान दर्शनस्वरूपका घात करि अनन्त परिवर्तन किये । सो आप भगवान वीतरागसैं ऐसी प्रार्थना करूं हूँ जो मेरे मरणके समयमें वेदना मरण तथा आत्मज्ञान रहित मरण मत होहु क्योंकि सर्वज्ञ वीतराग जन्ममरणरहित भय है तातैं मैं हू सर्वज्ञ वीतरागका शरणसहित संक्लेशरहित धर्मध्यानतैं मरण चाहता वीतरागहीं का शरण ग्रहण करूं हू । अब मैं अपने आत्माकूं समझाऊं हूं—

क्रमिजालशताकीर्णे जर्जरे देहपंजरे । भज्यमाने न भेतव्यं यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः ॥

अर्थ—भो आत्मन् ! क्रमिनिके सैंकडा जालकरि भऱ्या अर नित्य जर्जरा होता यो देहरूप पींजरा इसकूं नष्ट होतैं तुम भय मत करो, जातैं तुम तो ज्ञानशरीर हो ।

भावार्थ—तुमारा रूप तो ज्ञान है जिसमें ये सकल पदार्थ उद्योतरूप हो रहै हैं अर अमूर्तीक ज्ञान ज्योतिःस्वरूप अखण्ड अविनाशी ज्ञाता द्रष्टा है अर यह हाड मांस चमडामय महादुर्गंध विनाशीक देह है सो तुमारा रूपतैं अत्यंत भिन्न है कर्मके वशतैं एक क्षेत्रमें अवगाहन करि एकसे होय तिष्ठै है तो हू तुमारै इनके अत्यंत भेद है । अर यो देह पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणुनिका पिंड है सो अवसर पाय बिखर जायगा,

तुम अविनाशी अखंड ज्ञायकरूप हो इसके नाश होनेतैं भय कैसैं करो हो । अब और हू कहै हैं—

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्युमहोत्सवे । स्वरूपस्थः पुरं याति देही देहान्तरास्थितिः ॥

भावार्थ—भो ज्ञानिन् कहिये हो ज्ञानी ! तुमको वीतरागी सम्यग्ज्ञानी उपदेश करै है जो मृत्युरूप महान् उत्सवको प्राप्त होतैं काहेतैं भय करो हो, यो देही कहिये आत्मा सो अपने स्वरूपमें तिष्ठता अन्य देहमें स्थितिरूप पुरकूं जाय है यामें भयका हेतु कहा है ।

भावार्थ— जैसे कोऊ एक जीर्णकुटीमेंतैं निकसि अन्य नवीन महलकूं प्राप्त होय सो तो बडा उत्सवका अवसर है तैसैं यो आत्मा अपने स्वरूपमें तिष्ठता ही इस जीर्ण देहरूप कुटीकूं छांडि नवीन देहरूप महलको प्राप्त होतैं महा उत्साहका अवसर है यामें कुछ हानि नाहीं जो भय करिये अर जो अपने ज्ञायकस्वभावमें तिष्ठते परका अपना करि रहित परलोक जावोगे तो बडा आदर सहित दिव्य धातु उपधातु रहित वैक्रियिकदेहमें देव होय अनेक महर्द्धिकनिमें पूज्य महान देव होवोगे । अर जो यहां भयादिक करि अपना ज्ञानस्वभावकूं बिगाडि परमें ममता धारि मरोगे तो एकेन्द्रियान्द्रियादिकका देहमें अपने ज्ञानका ·नाश करि जड रूप होय तिष्ठोगे ऐसैं मलिन क्लेशसहित देहकूं त्यागि क्लेशरहित उज्ज्वल देहमें जाना तो बडा उत्सवका कारण है ।

सुदत्तं प्राप्यते यस्मात् दृश्यते पूर्वसत्तमैः । भुज्यते स्वर्भवं सौख्यं मृत्युभीतिः कुतः सताम् ॥

अर्थ—पूर्वकालमें भए गणधरादिक सत्पुरुष ऐसैं दिखावैं हैं जो जिस मृत्युतैं भले प्रकार दिया हुवाका फल पाइये अर स्वर्गलोकका सुख भोगिये तातैं सत्पुरुषकै मृत्युका भय काहेतैं होय ।

भावार्थ—अपना कर्तव्यका फल तो मृत्यु भये ही पाइये है जो आप छहकायके जीवनिकूं अभयदान दिया अर रागद्वेष काम क्रोधादिकका घात करि असत्य अन्याय कुशील परधनहरण का त्यागकरि परम सन्तोष धारणकरि अपने आत्माकूं अभयदान दिया ताका फल स्वर्गलोक विना कहां भोगनेमें आवै ? सो स्वर्गलोकको तो मृत्यु नाम मित्रके प्रसादतैं ही पाइये तातैं मृत्युसमान इस जीवका कोऊ उपकारक नाहीं । यहां मनुष्य पर्यायका जीर्ण देहमें कौन कौन दुःख भोगता, कितने काल तक रहता, आर्तध्यान रौद्रध्यानकरि तिर्यंच नरकमें जाय परता, तातैं अब मरणका भय अर देह कुटुम्ब परिग्रहका ममत्वकरि चिंतामणि कल्पवृक्ष समान समाधिमरणकूं विगाडि भयसहित ममतावान हुवा कुमरण करि दुर्गति जावना उचित नाहीं । और हू विचारै है—

आगर्भाद् दुःखसंतप्तः प्रक्षिप्तो देहपंजरे । नात्मा मिमुच्यतेऽन्येन मृत्युभूमिपतिं विना ॥

अर्थ—यो हमारो कर्म नाम वैरी मेरा आत्माकूं देहरूप पींजरामें क्षेप्या सो गर्भमें आया तिस क्षण में सदाकाल क्षुधा तृषा रोग वियोग इत्यादि अनेक दुःखंनिकरि तप्तायमान हुवा पड्या हूं । अब ऐसे अनेक दुःखनिकरि व्याप्त इस देहरूप पींजरातैं मोकूं मृत्यु नाम राजा विना कौन छुडावै ।

भावार्थ—इस देहरूप पींजरेमें कर्मरूप शत्रुकरि पटक्या मैं इंद्रियानिके आधीन हुवा नाना त्रास सहूं हू नित्य ही क्षुधा अर तृषाकी वेदना त्रास देवै है अर सासती स्वास उछ्वासकी पवनका खैंचना अर काढना, अर नानाप्रकार रोगनिका भोगना अर उदर भरनै वास्ते नाना पराधीनता अर सेवा कृषि वाणिज्यादिकनिकरि महा क्लेशित होय रहना, अर शीत उष्ण दुष्टनिकरि ताडन मारन कुवचन अपमान सहना कुटुम्बके आधीन होना, धनिककै राजाकै स्त्री पुत्रादिककै आधीन रहना, ऐसा महान बंदीगृह समान देहमेंतैं मरण नाम बलवान राजा विना कौन निकासै ? इस देहकूं कहां ताईं बहता जाकूं नित्य उठावना जल पावना स्नान करावना निद्रा लिवावना कामादिक विषयसाधन करावना नाना वस्त्र आभरणादिककरि भूषित करावना रात्रि दिन इस देहहीका दासपना करता हू आत्माकूं नाना त्रास देवै है भयभीत करै है आपा भुलावै है ऐसा कृतघ्न देहतैं निकसना मृत्यु नाम राजा विना नाहीं होय जो ज्ञानसहित देहसौं ममना छांडि सावधानीतैं धर्मध्यानसहित संक्लेशरहित वीतरागतापूर्वक जो समाधिमृत्यु नाम राजाका सहाय ग्रहण करूं तो फेरि मेरा आत्मा देह धारण ही नाहीं करै दुःखनिका पात्र नाहीं होय समाधिमरण नामा बडा न्यायमार्गी राजा है मोकूं याहीका शरण होहु । मेरे अपमृत्युका नाश होहु । और हू कहैं हैं—

सर्वदुःखप्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः । मृत्युमित्रप्रसादेन प्राप्यन्ते सुखसम्पदः ॥

अर्थ—आत्मदर्शी जे आत्मज्ञानी हैं ते मृत्युनाम मित्रका प्रसादकरि सर्व दुःखका देनेवाला देहपिंडकूं दूर छांडिकरि सुखकी सम्पदाकूं प्राप्त होय हैं ।

भावार्थ—जो इस सप्तधातुमय महा अशुचि विनाशीक देहकूं छांडि दिव्य वैक्रियिक देहमें प्राप्त होय नाना सुख सम्पदाको प्राप्त होय है सो समस्त प्रभाव आत्मज्ञानीनिके समाधिमरणका है । समाधिमरण समान इस जीवका उपकार करनेवाला कोऊ नाहीं है इस देहमें नाना दुःख भोगना अर महान रोगादि दुःख भोगि

करि मरना फिर तिर्यंच देहमें तथा नर्कमें असंख्यात अनन्तकाल तांई असंख्य दुःख भोगना अर जन्ममरण-रूप अनन्त परिवर्तन करना तहां कोऊं शरण नाहीं इस संसारमें परिभ्रमणसों रक्षा करनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं। कदाचित् अशुभकर्मका मन्द उदयतैं मनुष्यगति उच्चकुल इन्द्रियपूर्णता सत्पुरुषनिका संगम भगवान् जिनेन्द्रका परमागमका उपदेश पाया है अब जो श्रद्धान ज्ञान त्याग संयमसहित समस्त कुटुम्ब परिग्रहमें ममत्वरहित देहतैं भिन्न ज्ञान स्वभावरूप आत्माका अनुभवकरि भयरहित च्यार आराधना शरण सहित मरण हो जाय तो इस समान त्रैलोक्यमें तीन कालमें इस जीवका हित है नाहीं जो संसार परिभ्रमणतैं छूट जाना सो समाधिमरण नाम मित्रका प्रसाद है।

मृत्युकल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः। निमग्नो जन्मजम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति॥

अर्थ--जो जीव मृत्यु नाम कल्पवृक्षकूं प्राप्त होतै हू अपना कल्याण नाहीं सिद्ध किया सो जीव संसाररूप कर्दममें डूबा हुवा पाछ कहां करसी।

भावार्थ--इस मनुष्य-जन्ममें मरणका संयोग है सो साक्षात् कल्पवृक्ष है जो वांछित लेना है सो लेहु जा ज्ञानसहित अपना निज स्वभाव ग्रहणकरि आराधनासहित मरण करो तो स्वर्गका महर्द्धिकपणा तथा इन्द्रपणा अहमिंद्रपणा पाय पीछैं तीर्थंकर तथा चक्रीपणा होय निर्वाण पावो मरणसमान त्रैलोक्यमें दाता नाहीं ऐसे दाताकूं पायकरि भी जो विषयकी वांछाकषायसहित ही रहोगे तो विषयवांछाका फल तो नरक निगोद है। मरण नाम कल्पवृक्षकूं बिगाडोगे तो ज्ञानादि अक्षय निधानरहित भए संसार रूप कर्दममें डूब जाओगे। अर भो भव्य हो जो ये वांछाका मार्‍या हुवा खोटे नीच पुरुषनिका सेवन करो हो, अतिलोभी भए विषयनिके भोगनेकूं धनके वास्तै हिंसा चोरी कुशील परिग्रहमें आसक्त भये निंद्य कर्म करो हो, अर वांछित पूर्ण हू नाहीं होय, अर दुःखके मारे मरण करो हो, कुटुम्बादिकनिकूं छांडि विदेशमें परिभ्रमण करो हो निंद्य आचरण करो हो अर निंद्यकर्म करिकैं हू अवश्य मरण करो हो अर जो एक वार हू समता धारण करि त्याग-व्रतसहित मरण करो तो फेरि संसार-परिभ्रमणका अभावकरि अविनाशी सुखकूं प्राप्त हो जावो तातैं ज्ञानसहित पंडितमरण करना ही उचित है।

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः। स मृत्युः किं न मोदाय सतां सातोत्थितिर्यथा॥

अर्थ—जिस मृत्युतैं जीर्ण देहादिक सर्व छूटि नवीन हो जाय सो मृत्यु सत्पुरुषनिके साताका उदयकी ज्यों हर्षके अर्थि नाहीं होय कहा ? ज्ञानीनिके तो मृत्यु हर्षके अर्थि ही है ।

भावार्थ—यो मनुष्यनिको शरीर भोजन करावता नित्य ही समय समय जीर्ण होय है, देवनिका देह ज्यों जरा-रहित नाहीं है, दिन दिन वल घटै है, कांति अर रूप मलीन होय है, स्पर्श कठोर होय है, समस्त नसानिके हाडनिके बधान शिथिल होय हैं, चाम ढीली होय, मांसादिकनिकूं छांडि ज्वरलीरूप होय है, नेत्रनिकी उज्ज्वलता विगडै है कर्णनिमें श्रवण करनेकी शक्ति घटै है हस्त-पादादिकनिमें असमर्थता दिन दिन वधै है गमनशक्ति मन्द होय है चलते बैठते उठते स्वास वधै है कफकी अधिकता होय है राग अनेक वधैं हैं ऐसी जीर्ण देहका दुःख कहां तक भोगता अर कैसैं देह का घंसिणा कहांतक होता ?, मरण नाम दातार विना ऐसे निंद्य देहकूं छुडाय नवीन देहमें वास कौन करावे ? जीर्ण देह है तिसमें बडा असाताका उदय भोगिये हैं सो मरण नाम उपकारी दाता विना ऐसी असाताकूं दूर कौन करै ! अर जे सम्यग्ज्ञानी हैं तिनकै तो मृत्यु होनेका बडा हर्ष है जो अब संयम व्रत त्याग शीलमें सावधान होय ऐसा यत्न कर जो फेरि ऐसे दुःखका भऱ्या देहको धारण नाहीं होय, सम्यग्ज्ञानी तो याहीकूं महा साताका उदय मानै है ।

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत् । मृत्युभीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥

अर्थ—यो आत्मा देहमें तिष्ठतो हू सुखकूं तथा दुःखकूं सदाकाल जानै ही है अर परलोकप्रति हू स्वयं गमन करै है तो परमार्थतैं मृत्युका भय कौनकै होय ?

भावार्थ—जो अज्ञानी बहिरात्मा है सो तो देहमें तिष्ठता हू मैं सुखी मैं दुखी मैं मरूं हूँ मैं क्षुधावान मैं तृषावान मेरा नाश हुवा ऐसा मानै है । अर अंतरात्मा सम्यग्दृष्टि ऐसैं मानै है जो उपज्यो है सो मरैगा, पृथ्वी जल अग्नि पवनमय पुद्गल परमाणुनिके पिंडरूप उपज्यो यो देह है सो विनशैगो, मैं ज्ञानमय अमूर्तीक आत्मा मेरा नाश कदाचित् नाहीं होय । ये क्षुधा तृषा वात पित्त कफ रोग भय वेदना पुद्गलके हैं मैं इनका ज्ञाता हूँ, मैं यामें अहंकार वृथा करूं हूँ, इस शरीर के अर मेरे एक क्षेत्रमें तिष्ठनेरूप अवगाह है तथापि मेरा रूप ज्ञाता है । अर शरीर जड है, मैं अमूर्तीक, देह मूर्तीक, मैं अखंड एक हूँ, शरीर अनेक परमाणुनिका पिंड है मैं अविनाशी

हूं देह विनाशीक है अब इस देहमें जो रोग तथा तृषादि उपजै तिसका ज्ञाता ही रहना । मेरा भी ज्ञायक-स्वभाव है परमें ममत्व करना सो ही अज्ञान है मिथ्यात्व है अर जैसैं एक मकानको छांडि अन्य मकानमें प्रवेश करै तैसैं मेरे शुभ अशुभ भावनिकरि उपजाया कर्मकरि रच्या अन्य देहमें मेरा जाना है इसमें मेरा स्वरूपका नाश नाहीं, अब निश्चय करि विचारतैं मरणका भय कौनके होय ?

संसारासक्तचित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम् । मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञानवैराग्यवासिनाम् ॥

अर्थ—संसारम जिसका चित्त आसक्त है अपना रूपकूं जे जानै नाहीं, तिनकै मृत्यु होना भयके अर्थि है । अर ज निजस्वपरूके ज्ञाता हैं अर संसारतैं विरागी हैं, तिनकै तो मृत्यु है सो हर्षके अर्थि ही है ।

भावार्थ—मिथ्यादर्शनके उदयतैं जे आत्माज्ञानकरि रहित देहहीकूं आपा माननेवाले अर खावना पीवना कामाभोगादिक इंद्रियनिकूं ही सुख माननेवाले बहिरात्मा तिनके तो अपना मरण होना बडा भयके अर्थि है जो हाय मेरा नाश भया फेरि खावना पीवना कहां नाहीं है, नाहीं जानिये मरे पीछे कहा होयगा कैसैं मरूंगा, अब यह देखना मिलना कुटुम्बका समागम सब मेरे गया अब कौनका शरण ग्रहण करूं, कैसैं जीऊं, ऐसैं महा संक्लेशकरि मरे है । अर जे आत्माज्ञानी हैं तिनके मृत्यु आए ऐसा विचार उपजै है जो मैं देहरूप बंदीगृहमें पराधीन पड्या हुवा इंद्रियनिके विषयनिकी चाहनाकी दाहकरि अर मिले विषयनिकी अतृप्तिताकरि अर नित्य ही क्षुधा तृषा शीत रोगनिकरि उपजी महावेदना तिनकरि एकक्षण हू थिरता नाहीं पाई, महान दुःख पराधीनता अ मान घोर वेदना अनिष्टसंयोग इष्टवियोग भोगता ही संक्लेशतैं काल व्यतीत किया । अब ऐसैं क्लेश छुडाय पराधीनतारहित मेरा अनन्त सुख स्वरूप जन्म-मरणरहित अविनाशी स्थानकूं प्राप्त करनेवाला यह मरणका अवसर पाया है यो मरण महासुखको देनेवालो अत्यंत उपकारक है अर यो संसारवास केवल दुखरूप है यामें एक समाधिमरण ही शरण है और कहूँ ठिकाना नाहीं है इस विना च्यारों गतिनिमें महा त्रास भोगी है । अब संसारवासतै अति विरक्त मैं समाधिमरणका शरण ग्रहण करूं ।

पुराधीशो यदा याति स्वकृतस्य बुभुत्सया । तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैःपञ्चभौतिकैः ॥

अर्थ—जिस कालमें यो आत्मा अपना कियाका भोगनेकी इच्छाकरि परलोककूं जाय है तदि पंचभूत संबंधी देहादिक प्रपंचनिकरि याकूं कौन रोकै ।

भावार्थ—इस जीवका वर्तमान आयु पूर्ण हो जाय अर जो अन्य परलोकसंबंधी आयुकायादिक उदय आ

जाय तदि परलोककूं गमन करते आत्माकूं शरीरादिक पंचभूत कोऊ रोकने समर्थ नाहीं हैं तातैं बहुत उत्साहसहित चार आराधनाका शरण ग्रहणकरि मरण करना श्रेष्ठ है ।

मृत्युकाले सतां दुःखं यद्भवेद्व्याधिसंभवम् । देहमोहविनाशाय मन्ये शिवसुखाय च ॥

अर्थ—मृत्यु अवसर विषैं जो पूर्वकर्मका उदयतैं रोगादिक व्याधिकरि दुःख उत्पन्न होय है सो सत्पुरुषनिके देहकेविषैंऽमोहका नाशके अर्थि है अर निर्वाणका सुखके अर्थि है ।

भावार्थ—यो जीव जन्म लीयो तिस दिनतैं देहसौं तन्मय हुवा वसनेकूं ही बडा सुख मानै है या देहकूं अपना निवास जानैं हैं यासूं ममता लग रही है यामें वसने सिवाय अपना कहूं ठिकाना नाहीं देखै है अब ऐसा देहमें जो रोगादिकरि दुःख उपजै है जब सत्पुरुषनिकैं यासूं मोह नष्ट हो जाय है अर साक्षात् दुःखदाई अथिर विनाशीक दीखै है अर देहका कृतघ्नपना प्रगट दीख हैं तदि अविनाशी पदके अर्थि उद्यमी होय है वीतरागता प्रगट होय है तदि ऐसा विचार उपजै है जो इस देहकी ममताकरि मैं अनन्तकाल जन्म मरण नाना वियोग रोग संतापादिक नरकादिक गतिनिमें दुःख भोगे अब भी ऐसे दुःखदाई देहमें ही फेरि हू ममत्व करि आपको भूलि एकेन्द्रियादि अनेक कुयोनिमें भ्रमणका कारण कर्म उपार्जन करनेकूं ममता करूं हूं जो अब इस शरीरमें ज्वर काश श्वास शूल वात पित्त अतीसार मंदाग्नि इत्यादिक रोग उपजैं हैं सो इस देहमें ममत्व घटावनेके अर्थिं वडा उपकार करैं हैं धर्ममें सावधानता करावैं हैं । जो रोगादिक नाहीं उपजता तो मेरी ममता हू देहतैं नाहीं घटती, अर मद हू नाहीं घटता । मैं तो मोहकी अंधेरी करि आंधा हुवा देहकूं अजर अमर मान रहा था सो अब यो रोगनिकी उत्पत्ति मोकूं चेत कराया, अब इस देहकूं अशरण जानि ज्ञान दर्शन चारित्र तपहीकूं एक निश्चय शरण जानि आराधनाका धारक भगवान् परमेष्ठीकूं चित्त में धारण करूँ हूँ । अब इस अवसरमें हमारे एक जिनेन्द्रका वचन रूप अमृत ही परम औषधि होहू, जिनेन्द्रका वचनामृत विना विषय कषायरूप रोगजनित दाहके मेटनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं । बाह्य औषधादिक तो असाता कर्मके मंद होते किंचित् काल कोऊ एक रोगकूं उपशम करै, अर यो देह अनेक रोगनिकरि भर्‍या हुवा है अर कदाचित् एक रोग मिट्या तो अन्य रोगजनित घोर वेदना भोगि फेरि हू मरण करना ही पडैगा तातैं जन्मजरामरणरूप रोगकूं हरनेवाला भगवानका उपदेशरूप अमृतहीका पान करूं, अर औषधादिक हजार उपाय करतें हू विनाशीक देहमें रोग नाहीं मिटैगा तातैं रोगतैं आर्ति उपजाय कुगतिका कारण दुर्ध्यान करना उचित नाहीं। रोग आवते

हू बडा ही मानो जो रोगहीके प्रभावतैं ऐसा जीर्ण गल्या हुवा देहतैं मेरा छूटना होयगा। रोग नाहीं आवे तो पूर्व कृत कर्म नाहीं निर्जरै अर देहरूप महा दुःखदाई वन्दीगृहतैं मेरा शीघ्र छूटना हू नाहीं होय है अर यो रोगरूप मित्रको सहाय ज्यों-ज्यों देहमें वधै है त्यों त्यों मेरा रागबंधनतैं अर कर्मबंधनतैं छूटना होय है अर यो रोग तो देहमें है इस देहकूं नष्ट करैगा मैं तौ अमूर्तीक चैतन्यस्वभाव अविनाशी हूं ज्ञाता हूं अर जो यो रोगजनित दुःख मेरे जाननेमें आवैं सो मैं तो जाननेवाला ही हूँ याकी लार मेरा नाश नाहीं। जैसे लोहेका संगतिमें अग्नि हू घणनिका घात सहै है तैसैं शरीरकी संगतितैं वेदनाका जानना मेरे हू है अग्नितैं झूंपडी बलै है झूंपडीके मांहि आकाश नाहीं बलै है। तैसैं अविनाशी अमूर्तीक चैतन्य धातुमय आत्मा ताका रोगरूप अग्निकरि नाश नाहीं अर अपना उपजाया कर्म आपकूं भोगना ही पडैगा कायर होय भोगूंगा तो कर्म नाहीं छांडैगा अर धैर्य धारण करि भोगूंगा तो कर्म नाहीं छांडैगा तातैं दोऊ लोकका विगाडनेवाला कायरपनाकूं धिक्कार होहु। कर्मका नाश करनेवाला धैर्य ही धारण करना श्रेष्ठ है। अर हे आत्मन्! तुम रोग आये एते कायर होओ हो सो विचार करो नरकनिमें यो जीव कौन कौन त्रास नाहीं भोगी? असंख्यातवार अनन्तवार मारे विदारे चीरे फाडे गये हो, इहां तो तुमारे कहा दुःख है? अर तिर्यंचगतिके घोर दुःख भगवान् केवलज्ञानी हू वचनद्वारकरि कहनेकूं समर्थ नाहीं, अर मैं तिर्यंच पर्यायमें पूर्व अनन्तवार अग्निमें बार अग्निमें बलि बलि मऱ्या हूं, अनंतवार जलमें डूबि डूबि मरा हूं, अनन्तवार विष भक्षण कर मरा हूं, अनंतवार सिंह व्याघ्र सर्पादिकनिकरि विदाऱ्या गया हूं शस्त्रनिकरि छेद्या गया हूँ अनतवार शीतवेदनाकरि मरा हू अनंतवार उष्णवेदनाकरि मऱ्या हू अनंतवार क्षुधाकी वेदनाकरि मरा हूँ अनंतवार तृषाकी वेदनाकरि मरा हूँ। अब ये रोगजनित वेदना केतीक है रोग ही मेरा उपकार करै है रोग नाहीं उपजता तो देहतैं मेरा स्नेह नाहीं घटता, अर समस्ततैं छूटि परमात्माका शरण नाहीं ग्रहण करता, तातैं इस अवसरमें जो रोग है सो हू मेरा आराधना मरणमें प्रेरणा करनेवाला मित्र है ऐसै विचारता ज्ञानी रोग आये क्लेश नाहीं करै है मोहके नाश करनेका उत्सव ही मानै है।

ज्ञानिनोऽमृतसंगाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्। आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेपाकविधिर्यथा॥

अर्थ—यद्यपि इसलोकमें मृत्यु है सो जगतके आताप करने वाली है तो हूं सम्यग्ज्ञानी के अमृतसंग जो निर्वाण ताके अर्थि है जैसैं काचा घडाकूं अग्निमें पकावना है सो अमृतरूप जलके धारणके अर्थि है। जो काचा

घडा अग्निमें नाहीं पकै तो घडामें जल धारण नाहीं होय है अग्निमें एकवार पकि जाय तो बहुत काल जलका संसर्गकूं प्राप्त होय तैसैं मृत्युका अवसरमें आताप समभावनिकरि एकवार सहि जाय तो निर्वाणकौ पात्र हो जाय ।

भावार्थ--अज्ञानीकैं मृत्युका नामतैं भी परिणामतैं आताप उपजै जो मैं अब चाल्या, अब कैसैं जीऊ, कहा करूं, कौन रक्षा करै ऐसै सन्तापको प्राप्त होय है क्योंकि अज्ञानी तो बहिरात्मा है देहादिकका बाह्य वस्तुकूं ही आत्मा मानै है अर ज्ञानी जो सम्यग्दृष्टि है सो ऐसा मानै है जो आयुकर्मादिकका निमित्ततैं देहका धारण है सो अपनी स्थिति पूर्ण भए अवश्य विनशैगा मैं, आत्मा अविनाशी ज्ञानस्वरूप हूं, जीर्ण देह छांडि नवीनमें प्रवेश करते मेरा कुछ विनाश नाहीं है ।

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायासविडम्बनात् । तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्युकाले समाधिना ॥

अर्थ—यहां सत्पुरुष हैं ते व्रतनिका बडा खेदकरि जिस फलकूं प्राप्त होइये सो फल मृत्यु अवसरमें थोरे काल शुभध्यानरूप समाधिमरणकरि सुखतैं साधने योग्य होय है ।

भावार्थ—जो स्वर्गमें इन्द्रादिक पद वा परंपराय निर्वाणपद पंच महाव्रतादिकरि वा घोर तपश्चरणादिककरि सिद्ध करिये है सो पद मृत्युका अवसरमें जो देह कुटुम्बादिसूं ममता छांडि भयरहित हुवा वीतरागता सहित च्यारि आराधनाका शरण ग्रहणकरि कायरता छांडि अपना क्षायिक स्वभावकूं अवलंबनकरि मरण करै तो सहज सिद्ध होय, तथा स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देव होय, तहांतैं आय बडा कुलमें उपजि उत्तम संहननादि सामग्री पाय दीक्षा धारण करि अपने रत्नत्रयकी पूर्णताकूं प्राप्त होय निर्वाण जाय है ।

अनार्तः शांतिमान्मर्त्यो न तिर्यग् नापि नारकः । धर्मध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनीत्वमरेश्वरः ॥

अर्थ—जाकै मरणका अवसरमें आर्त्त जो दुःखरूप परिणाम नाहीं होय, अर शांतिमान कहिये रागरहित द्वेषरहित समभावरूप चित्त होय सो पुरुष तिर्यंच नाहीं होय, अर नारकी भी नाहीं होय, अर जो धर्मध्यान सहित अनशनव्रत धारण करकैं मरै सो तो स्वर्गलोकमें इन्द्र होय, तथा महर्द्धिकदेव होय, अन्य पर्याय नाहीं पावै ऐसा नियम है ।

भावार्थ—जो उत्तम मरणका अवसर पाय करिकैं आराधना सहित मरणमें यत्न करो अर मरण आवतैं भयभीत होय परिग्रहमें ममत्व धारि आर्त परिणामनिसौं मरणकरि कुगतिमें मत जावो। यो अवसर अनंत भवनिमें नाहीं मिलैगा अर मरण छांडैगा नाहीं, तातैं सावधान होय धर्मध्यानसहित धैर्य धारण करि देहका त्याग करो।

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च। पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना।

अर्थ—तपका भोगनेका अर व्रतनिके पालनेका अर श्रुतके पढनेका फल तो समाधि जो अपने आत्माकी सावधानी सहित मरण करना है।

भावार्थ—हे आत्मन्! जो तुम इतने काल इन्द्रियनिके विषयनिमें वांछारहित होय अनशनादि तप किया है सो अनंतकालमें आहारादिकनिका त्यागसहित संयम-सहित देहका ममतारहित समाधिमरणके अर्थि किया हैं। अर जो अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्यागादि व्रत धारण किये हैं सो हू समस्त देहादिक परिग्रहमें ममताका त्यागकरि समस्त मनवचनकायतैं आरंभादिककूं त्यागकरि समस्त शत्रु मित्रनिमें वैर राग छांडि करि उपसर्गमें धीरज धारण करि अपना एक ज्ञायकस्वभाव अवलंबनकरि समाधिमरण करनेके अर्थि किये हैं। अर जो समस्त श्रुतज्ञानका पठन किया है सो हू संक्लेशरहित धर्मध्यानसहित होय देहादिकनितैं भिन्न आपकूं जानि भयरहित समाधिमरणके निमित्त ही विद्याका आराधनाकरि काल व्यतीत किया है। अर मरणका अवसर में हूं ममता भय द्वेष कायरता दीनता नाहीं छांडोगे तो इतने काल तप कीने व्रत पाले श्रुतका अध्ययन किया सो समस्त निरर्थक होयगे तातैं इस मरणके अवसरमें कदाचितैं सावधानी मत विगाडो।

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जनवादः चिरतरशरीरनाशे नवतरलाभे च किं भीरुः॥

अर्थ—लोकनिका ऐसा कहना है जो जिस वस्तुका अतिपरिचय अतिसेवन होजाय तिसमें अवज्ञा अनादर होजाय है रुचि घटि जाय है, अर नवीनका संगममें प्रीति होय है यह बात प्रसिद्ध है। अर हे जीव, तूं इस शरीरको चिरकालसे सेवन किया, अब याका नाश होत भय कैसैं करो हो, भय करना उचित नाहीं।

भावार्थ—जिस शरीरकूं बहुत काल भोगि जीर्ण कर दीना सार-रहित बल-रहित होगया अर नवीन उज्ज्वल देह धारण करने का अवसर आया, अब भय कैसैं करो हो? यो जीर्ण देह तो विनसैहीगो, इसमें ममता धारि मरण विगाडि दुर्गतिका कारण कर्मबंध मत करो।

शार्दूलविक्रीडितम्—

स्वर्गादेत्य पवित्रनिर्मलकुले संस्मर्यमाणा जनै—र्दत्वा भक्तिविधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनम् ।
भुक्त्वा भोगमहर्निशं परकृतं स्थित्वा क्षणं मंडले, पात्रावेशविसर्जनामिव मतिं सन्तो लभन्ते स्वतः ॥

अर्थ—ऐसैं जो भयरहित होय समाधिमरणमें उत्साह-सहित चार आराधनानिको आराधि मरण करै है ताके, स्वर्गलोक विना अन्य गति नाहीं होय है स्वर्गनिमें महर्द्धिक देव ही होय है ऐसा निश्चय है । बहुरि स्वर्गमें आयुका अन्तपर्यन्त महासुख भोगि करिकै इस मनुष्यलोकविषै पुण्यरूप निर्मल कुलमें अनेक लोकनिकरि चिंतवन करते करते जन्म लेय अपने सेवकजन तथा कुटुम्ब परिवार मित्रादि जननिकूं नानाप्रकार के वांछित धन भोगादिरूप फल देय अर पुण्यकरि उपजे भोगनिकूं निरंतर भोगि आयुप्रमाण थोडे काल पृथ्वीमंडलमें संयमादिसहित वीतरागरूप भये तिष्ठ करक जैसैं नृत्यके आखाडेमें नृत्य करनेवाला पुरुष लोकनिके आनन्द उपजाय निकल जाय है तैसैं वह सत्पुरुष सकल लोकनिके आनंद उपजाय स्वयमेव देह त्यागि निर्वाणकूं प्राप्त होय है ॥ १८ ॥

दोहा ।

मृत्युमहोत्सव वचनिका, लिखी सदासुख काम । शुभ आराधनमरण करि, पाऊं निज सुखधाम ॥ १ ॥
उगणीसै ठारा शुकल, पंचमि मास असाढ । पूरन लिखि वांचो सदा, मन धरि सम्यक गाढ ॥ २ ॥

ऐसैं सल्लेखनाका वर्णनमें उपकारक जानि मृत्युमहोत्सव यामें लिखा है । यद्यपि याकी वचनिका संवत् (१९१८) उगणीससै अठारामें लिखि थी सो अब इहां सल्लेखनाके कथनकै शामिल हुवा विना और विशेष लिख्याँ ही सबक होय यातैं तयार कथनी लिख दीनी । अब इहां सल्लेखना दोय प्रकार है एक कायसल्लेखना एक कषायसल्लेखना इहां सल्लेखना। नाम सम्यक् प्रकारकरि कृश करनेका है तहां जो देहका कृश करना सो तो कायसल्लेखना है क्योंकि इस कायकूं ज्यों पुष्ट करो सुखिया राखो त्यो इन्द्रियनिके विषयांकी तीव्र लालसा उपजावै है, आत्मविशुद्धताकूं नष्ट करै है, काम लोभादिककी वृद्धि करै है, निद्रा प्रमाद आलस्यादिक बधावै है परीषह सहनेमें असमर्थ होय है त्याग संयमकै सन्मुख नाहीं होय है, आत्माकूं दुर्गतिमें गमन करावै है वात पित्त कफादि अनेक रोगनिकूं उपजाय महा दुर्ध्यान कराय संसारपरिभ्रमण करावै है यातैं अनशनादि तपश्चरण करि इस शरीरकूं कृश करना । रोगादिक वेदना नाहीं उपजै परिणाम अचेतन नाहीं होय यातैं प्रथम कायसल्लेखना करनेका सूत्र कहैं हैं—

आहारं परिहाप्य क्रमशःस्निग्धं विवर्धयेत्पानम् ।स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥१२७॥
खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या । पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥१२८॥

अर्थ—कायसल्लेखना करै सो अनुक्रमतैं करै अपना आयुका अवसर दीखै तिस प्रमाण देहसूं इंद्रियांस्यूं ममत्वरहित हुवा आहारके आस्वादनतैं विरक्त होय विचार करै जो हे आत्मन् ! संसार परिभ्रमण करता तू एता आहार किया जो एक एक जन्मका एक एक कणकूं एकठा करिये तो अनन्त सुमेरु-प्रमाण होजाय, अर अनन्त जन्मनिमें एता जल पिया जो एक एक जन्मकी एक एक बूंद ग्रहण करिये तो अनन्त समुद्र भरि जांय । एते आहार जलसूं ही तृप्ति नाहीं भया तो अब रोग जरादिककरि प्रत्यक्ष मरण नजीक आया अब इस अवसरमें किंचित् आहारतैं तृप्ति कैसैं होयगी ? अर इस पर्यायमें भी जन्म लिया तो दिनतैं नित्य आहार ही ग्रहण किया अर आहारका लोभी होयके ही घोर आरम्भ किया, अर आहारहीका लोभतैं हिंसा असत्य परधन-लालसा अब्रह्म अर परिग्रहका बहुत संगमकरि अर दुर्ध्यानादिककरि कुकर्म उपार्जन किये आहारकी गृद्धतातैं ही दीनवृत्ति करि पराधीन भया अर आहारका लोभी होय भक्ष्य अभक्ष्य का विचार नाहीं किया रात्रिका दिनका योग्यका अयोग्यका विचार नाहीं किया, आहारका लोभी होय क्रोध अभिमान मायाचार लोभ याचनाकूं प्राप्त हुवा, आहार की चाहकरि अपना बडापन अभिमान नष्ट किया, आहारका लोभी होय अनेक रोगनिका घोर दुःख सह्या, आहारका लोभी होय करिकै ही नीच जाति नीच कुलीनिकी सेवा करी, आहारका लोभी होय स्त्री के आधीन होय रह्या, पुत्रके आधीन होय रह्या, आहारका लंपटी निर्लज्ज होय है आचार-विचाररहित होय है, आहारका लंपटी कटि कटि मरै है दुर्वचन सहै है, आहार के अर्थि ही तिर्यंचगतिमें परस्पर मरै हैं भक्षण करैं है । बहुत कहनेकरि कहा, अब अलपकाल इस पर्यायमें हमारे बाकी रह्या है तातैं रसनिमें गृद्धिता छांडि अर रसनाइन्द्रियकी लालसा छांडि आहारका त्याग करनेमें उद्यमी नाहीं होऊंगा तो व्रत संयम धर्म यश परलोक इनकूं बिगाडि कुमरणकरि संसारमें परिभ्रमण करूंगा, अर ऐसा निश्चय करकैं ही अतृप्तताका करनेवाला आहारका त्यागके अर्थि कोऊ काल में उपवास, कदे बेला, कदे तेला, कदे एक बार आहार करना, कदे नीरस आहार अल्प आहार इत्यादिक क्रमतैं अपनी शक्ति-प्रमाण अर आयुकी स्थिति-प्रमाण आहारकूं घटाय अर दुग्धादिकहीकूं पीवै । बहुरि क्रमतैं दुग्धादिक सचिक्कणका हू

त्यागकरि छांछि वा तप्त जलादिक ही ग्रहण करैं, पाछै क्रमतैं जलादिक समस्त आहारका त्यागकरि अपनी शक्तिप्रमाण उपवास करता पंच नमस्कारमें मनकूं लीनकरि धर्मध्यानरूप हुआ बडा यत्नतैं देहकूं त्यागै सो सल्लेखना जाननी । ऐसैं कायसल्लेखना वर्णन करी ।

अब इहां कोऊ प्रश्न करे या आहारादिक त्यागकरि मरण करना सो आत्मघात है, आत्मघात करना अयोग्य कह्या है ताकूं उत्तर कहैं हैं—

जाकै बहुत काल सुख करिकै मुनिपना व श्रावकपना तथा महाव्रत अणुव्रत पलता दीखै, अर स्वाध्याय ध्यान दान शील तप व्रत उपवासादि पलता होय, तथा जिनपूजन स्वाध्याय धर्मोपदेश धर्मश्रवण चार आराधनाका सेवन आछी तरह निर्विघ्न सधता होय, अर दुर्भिक्षादिकनिका भय हू नाहीं आया होय, असाध्य रोग शरीरमें नाहीं आया होय, तथा स्मरणने ज्ञानने नष्ट करने वाली जरा हू नाहीं प्राप्त भई होय, अर दशलक्षण रत्नत्रयधर्म देहसूं पलता होय, ताकूं आहार त्यागि संन्यास करना योग्य नाहीं। धर्म सधता हू आहार त्यागि मरण करै है सो धर्मतैं पराङ्मुख भया त्याग व्रत शील संयमादिकरि मोक्षका साधक उत्तम मनुष्य पर्यायतैं विरक्त हुआ अपनी दीर्घ आयु होते हू अर धर्म सेवन बनते हू आहारादिकका त्याग करै सो आत्मघाती होय है । जातैं धर्मसंयुक्त शरीरकी बडी यत्नतैं रक्षा करना ऐसी भगवान्‌की आज्ञा है । अर धर्मके सेवनेका सहकारी ऐसा देहकूं आहार त्यागकरि छांडि देगा तदि कहा देव नारकी तिर्यंचनिका देह संयमरहित तिनतैं व्रत, तप, संयम सधैगा ? रत्नत्रयका साधक तो मनुष्यदेह ही है, अर धर्मका साधक मनुष्यदेहकूं आहारादिक त्यागकरि छांडै है ताकै कहा कार्य सिद्ध होय है ? इस देहकूं त्यागनेतैं हमारा कहा प्रयोजन सधैगा, नवीन देह व्रतधर्मरहित और धारण करेगा । परन्तु अनन्तानन्त देह धारण करावनेका बीज जो कार्माणदेह कर्ममय है ताकूं मिथ्यात्व असंयम कषायादिकका परिहार करि मारो, आहारादिकका त्यागतैं तो औदारिक हाड मांसमय शरीर मरि नवीन अन्य उपजैगा । अष्टकर्ममय कार्माणदेह मरैगा तदि जन्म मरणतैं छूटोगे । यातैं कर्ममय देहके मारनेकूं इस मनुष्य-शरीरकूं त्याग व्रत संयममें दृढता धारणकरि आत्मा का कल्याण करो । अर जब धर्म रहता नाहीं दीखै तब ममत्व छांडि अवश्य विनाशीककूं त्यागनेमें ममता नाहीं धरना ।

अब जैसैं कायका तपश्चरणकरि कृश करना तैसैं राग द्वेषमोहादिक कषायका हू साथ ही कृशपना करना

सो कषायसल्लेखना है। कषायनिकी सल्लेखना विना कायसल्लेखना वृथा है। कायका कृशपना तो रोगी दरिद्री पराधीनतातै मिथ्यादृष्टिके हू होय है। जो देहके साथि रागद्वेष मोहादिकनिकूं कृश करि इसलोक परलोक सम्बन्धी समस्त वांछाका अभावकरि देहके मरणमें कुटुम्ब परिग्रहादिक समस्त परद्रव्यनितैं ममता छांडि परम वीतरागतातैं संयमसहित मरण करना सो कषायसल्लेखना है। इहां ऐसा विशेष जानना जो विषय-कषायनिका जीतनेवाला होयगा तिसही कै समाधिमरणकी योग्यता है, विषयनिके आधीन अर कषाययुक्तके समाधिमरण नाहीं होय है। संसारी जीवनिकै ये विषय कषाय बडे प्रबल हैं बडे-बडे सामर्थ्यधारीनिकरि नाहीं जीते जाय हैं। अर बडे बल के धारक चक्री, नारायण, बलभद्रादिकनिकूं भ्रष्ट करि आपके आधीन किये तातैं अति प्रबल हैं। संसारमें जेते दुःख हैं तितने विषयके लम्पटी अभिमानी तथा लोभीकैं होय हैं। केते जीव जिनदीक्षा धारण करकैं हू विषयनिकी आतापतैं भ्रष्ट होय हैं, अभिमान लोभ नाहीं छांडि सकै हैं अनादिकालतैं विषयनिकी लालसाकरि लिप्त अर कषायनिकरि प्रज्वलित संसारी आपा भूलि स्वरूपतैं भ्रष्ट होय रहे हैं यातैं विषय कषायनितैं वीतरागताका कारण श्रीभगवतीआराधनाजीमें विषय कषायनिका स्वरूप विस्तार सहित परम निर्ग्रंथ श्रीशिवायन नाम आचार्यने प्रगट दिखाया है सो वीतरागका इच्छुक पुरुषनिकूं ऐसा परम उपकार करनेवाला ग्रन्थका निरन्तर अभ्यास करना। समाधिमरणका अवसरमें जीवका कल्याण करनेवाला उपदेशरूप अमृतकूं सहस्रधाररूप होय वर्षा करता भगवती आराधना नाम ग्रन्थ है ताका शरण अवश्य ग्रहण करने योग्य है याहीतैं इहां ऐसा आराधना मरणका कथन अवसर पाय भगवतीका अर्थका लेश लेय लिखिये है। यहां ऐसा विशेष जानना जो साधु मुनीश्वरनिके तो रत्नत्रयधर्मकी रक्षा करनेका सहायी आचार्यादिकनिका संघ तथा वैयावृत्य करनेवाले धर्मके उपदेश देनेवाले निर्यापकनिका बडा सहाय है तदि कर्मनिका विजयकरि आराधनाकूं प्राप्त होय है याहीतैं गृहस्थीनिकूं हू धर्मवृद्ध श्रद्धानी ज्ञानी ऐसे साधर्मीनिका समागम अवश्य मिलाया चाहिये। परन्तु यो पंचमकाल अति विषम है यातैं विषयानुरागीनिका तथा कषायीनिका संगम सुलभ है, तथा रागद्वेष शोक भयका उपजावनेवाला आर्तध्यानका बधावनेवाला असंयममें प्रवृत्ति करावनेवालेनिका ही संगम वनि रह्या है जातैं स्त्री-पुत्र मित्र बांधवादिक समस्त अपने राग-द्वेष विषय-कषायनिमें लगाय आपा भुलावनेवाले हैं समस्त अपना विषय कषाय पुष्ट करनेका इच्छुक हैं धर्मानुरागी धर्मात्मा परोपकारी वात्सल्यताका धारी करुणारसकरि भीजिनिका संगम महा-उज्ज्वल पुण्यके उदयतैं मिलै है, तथा अपना पुरुषार्थतैं उत्तम पुरुषनिका उपदेशका संगम मिलावना अर स्नेह मोहकी पासीनिमें उलझावने धर्मरहित स्त्री-पुरुषनिका संगमका दूरहीतैं परित्याग करना, अर अवशतैं कुसंगी

आजाय तो तिनसौं वचनालापका त्यागकरि मौनी होय रहना, अर अपना कर्मके आधीन देश कालके योग्य जो स्थान होय तीमें शयन आसन करना, अर जिनसूत्रनिका परम शरण ग्रहण करना, जिनसिद्धांतका उपदेश धर्मात्मानितैं श्रवण करना, त्याग संयम शुभध्यान भावनाकूं विस्मरण नाहीं होना, अर धर्मात्मा साधर्मी हू अपने अर परके धर्मकी पुष्टता चाहता अर धर्मकी प्रभावना वांछता धर्मोपदेशादिरूप वैयावृत्यमें आलसी नाहीं होय । त्याग, व्रत, संयम, शुभध्यान शुभभावनामें ही आराधक साधर्मीकूं लीन करै । अर कोऊ आराधक ज्ञानसहित हू कर्मकै तीव्र उदयतैं तीव्र रोगादिक क्षुधा तृषादिक परीषहनिके सहनेमें असमर्थ होय व्रतनिका प्रतिज्ञात चलि जाय तथा अयोग्य वचनहू कहने लगि जाय, तथा रुदनादिकरूप विलापरूप आर्तपरिणामरूप हो जाय, तो साधर्मी बुद्धिमान पुरुष ताका तिरस्कार नाहीं करै, कटुवचन नाहीं कहै, कठोर वचन नाहीं कहै । जातैं वेदनाकरि दुःखित होय अर पाछैं तिरस्कारका अवज्ञाका वचन सुनै तदि मानसीक दुःखतैं दुर्ध्यानकूं प्राप्त होय चलायमान हो जाय, विपरीत आचरण करै, तथा आत्मघात करै, तातैं आराधकका तिरस्कार करना योग्य नाहीं । उपदेशदाता है सो महान् धीरता धारण करि आराधककूं स्नेह भरा वचन कहै, मिष्ट वचन कहै, हृदयमें प्रवेश करि जाय, श्रवण करते ही समस्त दुःख विस्मरण हो जाय, करुणारसतैं उपकार बुद्धितैं भरा वचन कहै । हो धर्मके इच्छुक ! अब सावधान होहु, पूर्वकर्मके उदयतैं रोग वेदना तथा महा व्याधि उपजी है तथा परीषहनिका संताप उपज्या है अर शरीर निर्बल भया है आयु पूर्ण होनेका अवसर आया है तातैं अब दीन मति होहू, अब कायरता छांडि शूरपना ग्रहण करो । कायर भये दीन भये असाता कर्म नाहीं छांडैगा । कोऊ दुःख हरनेकूं समर्थ नाहीं हैं, असाताकूं दूरिकरि साताकर्म देनेकूं कोऊ इन्द्र धरणेन्द्र जिनेंद्र अहमिंद्र समर्थ हैं नाहीं, यातैं अब कायरता है सो दोऊ लोक नष्ट करनेवाला धर्ममृं परान्मुखता करै है तातैं धैर्य धारि क्लेशरहित होय भोगोगे तो पूर्व कर्मकी निर्जरा होयगी, नवीन कर्म बंधका अभाव होयगा । बहुरि तुम जिनधर्म धारक धर्मात्मा कहावो हो, समस्त तुमकूं ज्ञानवान समझैं हैं धर्मके धारकनिमें विख्यात हो अर व्रती हो अर व्रत–संयमकी यथाशक्ति प्रतिज्ञा ग्रहण करी है, अब त्याग संयममें शिंथिलता दिखावोगे तो तुम्हारा यश अर परलोक बिगडैहीगा परन्तु अन्य धर्मात्मानिका अर धर्मकी बडी निन्दा होयगी, अर अनेक भोले जीव धर्मके मार्गमें शिथिल हो जांयगे । जैसैं कुलवान मानी सुभट लोकानिके मध्य भुजास्फालन करि पाछैं वैरीकूं सम्मुख आवते ही भयवान होय भागै तो अन्य लघु किंकर कैसैं थिरता धारै ! अर दोय दिन जीया तो हू ताका जीवना हू धिक्कार होय है तैसैं तुम त्याग व्रत संयमकी प्रतिज्ञा ग्रहणकरि अब शिथिल होवोगे तो निंद्यताके पात्र होवोगे, अर अशुभ कर्म हू नाहीं छांडैगा,

अर आगाने बहुत दुःखनिका कारण नवीन कर्मका ऐसा दृढ बन्ध करोगे जो असंख्यातकालपर्यन्त तीव्र रस देगा । अर जो तुम्हारे पूर्वे ऐसा अभिमान था जो मैं जिनेन्द्रका भक्त जैनी हूं आज्ञाका प्रतिपालक हूं जिनेन्द्रके कहे व्रत-शील संयम धारण करूं हूं जो श्रद्धा ज्ञान आचरण अनन्त भवनिमें दुर्लभ है सो वीतराग गुरुनिके प्रसादतैं प्राप्त भया है ऐसा निश्चय करकै हू अब किंचित् रोगजनित वेदना वा परीषह कर्मके उदय करि आवनेतैं कायर होय चलायमान होना अति लज्जाका कारण है । वेदनाका एता भय करो हो सो वेदनातैं मरण ही होयगा, मरण तो एक वार अवश्य होना ही जो देह धार्‍या है सो अवश्य मरण करैहीगा ।

अब जो वीतराग गुरुनिका उपदेशा व्रत-संयमसहित कायरतारहित उत्साह करि च्यारि आराधनाका शरणसहित जो मरण हो जाय तो इस समान त्रैलोक्यमें लाभ नाहीं, तीन लोक की राज्यसंपदा तो विनाशीक है पराधीन है आराधनाकी संपदा अनन्त सुख देनेवाली अविनाशी है । अर जिस भय-रहित धीरता-सहित मरणकूं मुनीश्वर आचार्य उपाध्याय चाहैं हैं अर समस्त व्रती संयमी सम्यग्दृष्टी चाहैं अर तुम हू निरन्तर वांछा करै थे सो मनोवांछित समाधिमरण नजीक आगया इस समान आनन्द कोऊ ही नाहीं है । अर या वेदना बध है सो तुम्हारा बडा उपकार करै है, वेदनातैं देहमें राग नष्ट हो जायगा, पूर्व कर्म असातादिक बांधे थे तिनकी अल्पकालमें निर्जरा होयगी, दुःख रोगनितैं भर्‍या देहरूप बन्दीगृहतैं जरूर निकसना होयगा, विषय भोगनितैं विरक्तता होयगी, परद्रव्यनितैं ममता घटैगी मरणका भय नाहीं रहैगा, मित्र पुत्र स्त्री बांधवादिकनितैं ममता नष्ट होयगी इत्यादिक अनेक अनेक उपकार वेदनातैं हू जानहू । अर कायर हुआ वेदना बधैगी, संक्लेश बधैगा कर्मका उदय है सो अब टलैगा नाहीं, यातैं अब दृढता ही धारण करनेका अवसर है । अर कर्मका जीतना तो शूरपना धारण करे ही होयगा, कायर होय रोवोगे तडफडाट करोगे तो कर्म तुमकूं मारि तिर्यंचादिक कुगतिकूं प्राप्त करेगा, अनेक दुःखनिकूं प्राप्त होवोगे । जैसैं कुलका साधर्मीनिका धर्मका यश वृद्धिकूं प्राप्त होय अर तुम दुःखके पात्र नाहीं होहु तैसैं प्रवर्तन करो । जैसैं शूरवीर क्षत्रियकुलमें उपजैं हैं ते संग्राममें शस्त्रनिकरि दृढ संतापित भये भृकुटीसहित मरण करैं हैं परन्तु वैरीनितैं मुखकूं उलटा नाहीं फेरे हैं तैसैं परमवीतरागीनिका शरण ग्रहण करता पुरुष अशुभकर्मनिके अति प्रहारतैं देहका त्याग करैं हैं परन्तु दीनता कायरताकूं प्राप्त नाहीं होय हैं । केई जिनलिंगके धारक उत्तम पुरुषनिके दुष्ट वैरी चारों तरफ अग्नि लगाय दीनी ताकी घोरवेदना वचनके अगोचर तिस अग्निमें सर्व तरफतै दग्ध होते हू अपना ऋण चुकने समान जानि पंच परमगुरुनिका शरणसहित धीरताकूं धारते दग्ध होय गये हैं परन्तु कायरताकूं नाहीं धारैं है ऐसी आत्मज्ञानकी प्रभावना है जो इस कलेवरतैं

भिन्न अविनाशी अखण्ड ज्ञानस्वभावकूं अनुभव किया है तिस अनुभव करनेका फल अकंपपना भयरहितपना ही है। बहुरि मिथ्यादृष्टी अज्ञानी हू परलोकके सुखका अर्थि होय धैर्य धारण करै है, वेदनामें कायर नाहीं होय है, तदि संसारके समस्त दुःखनिके नाश करनेका इच्छुक जिनधर्मके धारक तुम कायर होय आत्माका हितकूं बिगाडो तथा उज्ज्वल यशकूं मलीन करि दुर्गतिके पात्र कैसैं बनो ? तातैं अब सावधान होय धर्मका शरण ग्रहणकरि कर्मजनित वेदनाका विजय करो। ऐसा अवसर अनन्तभवनिमें हू नाहीं मिल्या है, या तीरां लागी नाव है अब प्रमादी रहोगे तो डूब जायगी, समस्त पर्यायमें जो ज्ञानका अभ्यास किया, श्रद्धान की उज्ज्वलता करी, तप त्याग नियम धार्‍या सो इस अवसरके अर्थ धारे थे। अब अवसर आये शिथिल होय भ्रष्ट होओगे तो भ्रष्ट हुवा अर समता छांडे रोग तथा मरण तो टलैगा नाहीं, अपना आत्माकूं केवल दुर्गतिरूप अन्ध कीचमें डबोवोगे। बहुरि जो लोकमें मरी रोग आ जाय, तथा दुर्भिक्ष आ जाय, तथा भयानक गहन वनमें प्रवेश हो जाय, तथा दृढ भय आ जाय, तथा तीव्ररोग वेदना आ जाय तो उत्तम कुलमैं उपजे पूज्य पुरुष संन्यासमरण करैं; परन्तु निंद्य आचरण नीच पुरुषनिकी ज्यों कदाचित् नाहीं करै। मरीके भयतैं मदिरा नाहीं पीवै हैं, दुर्भिक्ष आ जाय तो मांसभक्षण नाहीं करै, कांदा नाहीं खाय नीच चांडालादिकनिकी उच्छिष्ट नाहीं भक्षण करै है। भय आ जाय तो म्लेच्छ भील नाहीं हो जाय ह कुकर्म हिंसादिक नाहीं करै है तैसैं रोगादिकनिकी प्रवल त्रास होतैं हू श्रावकधर्मका धारक जिनधर्मी कदाचित् अपने भावनिकूं विकाररूप नाहीं करै है। अर धर्मकी अर त्यागकी व्रतकी साधर्मीनिकी प्रभावनाका इच्छुक होय अन्तकालमें अपना श्रद्धान ज्ञान आचरणकी उज्ज्वलता ही प्रगट करै है तिनका जन्म सफल होय है मरणकरि उत्तम देवनिमें उपजै है। अर मनुष्य पर्यायमें उत्तमपना भी येही है जो घोर आपदा वेदना आवतैं हू सुमेरुकी ज्यों अचल होय है, अर समुद्रकी ज्यों क्षोभरहित होय है। अर भो धर्मके आराधक ! तुम अति घोर वेदनाके आवनैकरि आकुल मत होहू इस कलेवरतैं भिन्न अपना ज्ञायकभावकूं अनुभव करो। अर वेदना तीव्र आवतैं पूर्वे भये वेदनाके जीतनेवाले उत्तम पुरुषनिका ध्यान करो। अहो आत्मन् ! पूर्वैं जो साधु पुरुष सिंह व्याघ्रादि दुष्ट जीवनिकी डाढनिकरि चाबे हुए हू आराधनामें लीन होते भये तुम्हारे कहा वेदना कहा है ?

बहुरि अति कोमल अंगका धारक अर तत्कालका दीक्षित ऐसे सुकुमाल स्वामीकूं स्यालनी अपना दोय

वच्चानि करि सहित तीन रात्रि तीन दिन पर्यंत पगनितैं भक्षण करने लगी सो उदर बिदारा तदि मरण किया ऐसा घोर उपसर्गकूं सहकरि परम धैर्य धारण करि उत्तम अर्थ साध्या, तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि सुकोशल स्वामीकी माताका जीव जो व्याघ्री ताकरि भक्षण किया हुवा उत्तमार्थतैं नाहीं चिगे तुम्हारे कहा वेदना है, बहुरि भगवान गजकुमार स्वामीके समस्त अंगमें दुष्ट वैरी कीले ठोंक दिये तो हू उत्तमार्थ साध्या तुम्हारे कहा वेदना है, बहुरि सनत्कुमार नाम महामुनिके देहमें खाज, ज्वर, काश, शोष, तीव्र क्षुधाकी वेदना तथा वमन नेत्रशूल उदरशूलादिक अनेक रोग उपजे तिनकी घोर वेदनाकूं सो वर्ष पर्यंत साम्यभावतैं भोगी धैर्य नाहीं, छांड्या, तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि राणिकपुत्र गंगानदीमें नावमें डूब गये परन्तु आराधनातैं नाहीं चिगे; तुम्हारे कहा वेदना है । बहुरि भद्रबाहुनामा मुनिके तीव्र क्षुधाका रोग उपज्या तो हू अवमौदर्य नाम तपकी प्रतिज्ञा करि आराधनातैं नाहीं चिगे, तुम्हारे कहा वेदना है । बहुरि ललितघटादि नामकरि प्रसिद्ध बत्तीस मुनि कौसांबीमें नदीके प्रवाहकरि बहे हुए हू आराधना मरण किया, तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि चंपानगरीके बाह्य गंगाके तटविषैं धर्मघोष नाम मुनि एक महीनाका उपवासकी प्रतिज्ञाकरि तीव्र तृषावेदनातैं प्राण त्यागे परन्तु आराधनातैं नाहीं चिगे, तुम्हारे कहा वेदना है । पूर्व जन्मका वैरी देव अपनी क्रिक्रीयाकरि शीत की घोर वेदना करि व्याप्त किया हू श्रीदत्त नाम मुनि क्लेशरहित हुवा उत्तमार्थकूं सिद्ध किया, तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि वृषभसेन नाम मुनि उष्ण शिलातल अर उष्ण पवन अर उष्ण सूर्यका घोर आताप होते हू आराधनाकूं धारण करी, तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि रोहेडनगरमें अग्नि नाम राजपुत्र क्रौंच नाम वैरीकरि शक्ति नाम आयुधतैं हत्या हू धारण करी, तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि काकंदी नाम नगरीविषैं अभयघोष नाम मुनिका समस्त अंगकूं चंडवेगनाम वैरी छेद्या तो हू घोर वेदनामें उत्तमार्थ साध्या, तुम्हारे कहा वेदना है ! विद्युच्चर नाम चोर डांस अर मच्छरनिकरि भक्षण किया हुआ हू संक्लेशरहित मरणत उत्तमार्थ साध्या तुम्हारे कहा वेदना है । बहुरि चिलातिपुत्र नाम मुनिकूं पूर्वला वैरी शस्त्रनिकरि घात्या पाछै घावनिमें स्थूल कीडे पडे बहुरि अंगमें प्रवेशकरि चलनीवत् छिद्र किये तो हू समभावनितैं प्रचुर वेदनाऽसहित उत्तमार्थ साध्या, तुम्हारे कहा वेदना है । बहुरि दण्ड नामा मुनिकूं यमुनावक्र पूर्वला वैरी बाणनिकरि वेध्या ताकी घोर वेदना होते हू समभावनितैं आराधनाकूं प्राप्त भया, तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि कुम्भकारकट नाम नगरमें अभिनन्दनादि पांचसै मुनि घाणीनिमें पेले हुए हू साम्यभावतैं नाहीं चिगे, तुम्हारे कहा वेदना है । बहुरि चाणिक्यनामा मुनिकूं गायनिके रहनेके घरमें सुबन्ध नाम वैरी अग्नि लगाय दग्ध किये परन्तु प्रायोपगमन संन्यासतैं नाहीं चले, तुम्हारे कहा वेदना है । कुलालनाम ग्रामका बहिर्भागविषैं वृषभसेन नाम मुनि

संघसहितकूं रिष्टाभ नाम वैरी अग्नि लगाय दग्ध किये ते परम वीतरागतातैं आराधनाकूं प्राप्त भये, तुम्हारे कहा वेदना है । भो आराधनाका आराधक हो, हृदयमें चिंतवन करो एते मुनि असहाय एकाकी इलाज प्रतीकार-रहित वैयावृत्त्यरहित हू परम धैर्य धारणकरि कायरता रहित समभावनातैं घोर उपसर्गसहित आराधना साधी इहां तुम्हारे कहा उपसर्ग हैं, समस्त साधर्मी जन वैयावृत्यमें तत्पर हैं तो हू तुम कैसैं क्लेशित हो रहे हो ये सब बडे-बडे पुरुष भये तिनके कोऊ सहाई नाहीं था अर कोऊ वैयावृत्य करनेवाला नाहीं था असहाय था तिन ऊपरि दुष्ट वैरी घोर उपसर्ग किये अग्निमें दग्ध किये पर्वततैं पटक शस्त्रनितैं विदारे तथा तिर्यंचनिकरि विदारे गये, खाए गये, जलमें डुबोये गये, कुवचनके घोर उपद्रव किये तो हू साम्यभाव नाहीं तज्या, तुम्हारे उपसर्ग नाहीं आया। अर धर्मके धारक करुणावान धैर्यके धारक परमहितोपदेशमें उद्यमी समस्त परिकर हाजिर हैं अत्र आकुलताका कारण नाहीं, तथा शीत उष्ण पवन वर्षादिकनिका उपद्रव नाहीं, ऐसे अवसरमें हू कैसैं शिथिल भए हो ? अर जो तुम्हारे रोग-जनित अशक्तता-जनित क्षुधा तृषादिक वेदना भई है तिसमें परिणाम मत लगावो, साधर्मी जनके मुखतैं उच्चारण किये जिनेंद्रका वचनरूप अमृत का पान करो, तातैं समस्त वेदनारूप विषका अभाव होय परिणाम उज्ज्वल होय परम धर्ममें उत्साह होय पापकी निर्जरा होय कायरताका अभाव होय है । अर वेदना आवतें चतुर्गतिनिमें जो दुःख भोगे तिनकूं चिंतवन करो । इस संसारमें परिभ्रमण करता जीव कौन कौन वेदना नाहीं भोगी, अनेक बार क्षुधा वेदनातैं तृषा वेदनातैं मऱ्या है अनेकवार अग्निमें दग्ध होय मरे, जलमें डूबि अनेक बार मरे, विषभक्षणतैं मरे, अनेक बार सिंह, सर्प, श्वानादिकनिकरि मारे गए हो शिखरतैं पडि पडि मरे हो शस्त्रनिके घाततैं मरे हो अब कहा दुःख है ? अर जो दुःख नरक तिर्यंचगतिमें दीर्घकाल भोग्या है तिनकूं ज्ञानी भगवान जाने हैं । इहां अब किंचित् वेदना अति अल्पकाल आई तातैं धैर्य मत छांडो जो घोर वेदना कर्मनिके वश होय चारों गतिनमें भोगी है तिनकूं कोटि जिह्वानिकरि असंख्यातकालपर्यंत कहनेकू समर्थ नाहीं नरकमें जो दुःखकी सामग्री है तिनकी जात इस लोकमें है नाहीं, कैसे दिखाई जाय भगवान केवलज्ञानी ही जानैं है । जहां पंचम नरकताईका उष्ण बिलनिमें उष्णता तो ऐसी है जो सुमेरुप्रमाण लोहेका गोला छोडिये तो भूमि ऊपरि पहुँचता पहुँचता पाणी होय बहि जाय, इहां तुम्हारे रोगजनित कहा उष्णता है ? अर पंचम नरकका तीसरा भाग अर छठी सप्तमी पृथ्वीका बिलनिमें ऐसा शीत है जो सुमेरुपरिणाम गोलाका शीततैं खण्ड खण्ड हो जाय ऐसी वेदना यो जीव चिरकालपर्यंत भोगी है यहां मनुष्यजन्ममें ज्वरादिक रोग–जनित तथा तृषातैं उपजी तथा ग्रीष्मकालतैं उपजी उष्णवेदना तथा शीतज्वरादिकतैं उपजी वा शीतकालतैं उपजी शीतवेदना केती है अल्पकाल रहैगी

सो धर्मके धारक ममत्वके त्यागी तिनकूं समभावनितैं नाहीं भोगनी कहा ? यो अवसर समभावनितैं परीषह सहनेको है अर क्लेशभाव करोगे तो कर्मका उदय छोडनेका नाहीं, कहा हूँ भोगोगे अर अपघातादिकतैं मरोगे तो नरकनिमें अनंतगुणी असंख्यातकाल वेदना भोगोगे । अर पापके उदयतैं नारकीनिकै स्वभावहीनैं शरीरमें कोट्यां रोग सासता है । नरककी भूमिका स्पर्श ही कोटि बिच्छूनिका डंकतैं अधिक वेदना करनेवाला है नारकीनिके क्षुधा वेदना ऐसी है जो समस्त पृथ्वीके अन्नादिक भक्षण किए उपशम होय नाहीं अर एक कणमात्र मिलै नाहीं । अर तृषावेदना ऐसी है जो समस्त समुद्रका जल पिये हूं बुझे नाहीं अर एक बूंद मिले नाहीं । अर नरकधराकी पहली पटलकी महा दुर्गन्ध मृत्तिका ऐसी है जो एक कण इस मनुष्यलोकमें आ जाय तो आध आध कोश पर्यंतके पंचेंद्री मनुष्य तिर्यंच दुर्गंधतैं मरण करि जांय, दूजा पटलकीतैं एक कोशका, ऐसैं पटल पटल प्रति आध आध कोश बधता सप्तम पृथ्वीका गुणचासमां पटलकी मृत्तिकामें ऐसी दुर्गंध है जो एक कण यहां आ जाय तो साढा चौईस कोशतांई का पंचेन्द्री मनुष्य तिर्यंच दुर्गंधकरि प्राणरहित हो जाय अर ऐसा ही स्वरूप शब्दके अनुभवनिका दुःख वचनके अगोचर केवली ही जानै हैं ऐसें दुःखनिकूं बहुत आरम्भ बहुपरिग्रहके प्रभावतैं सप्तव्यसन सेवनतैं अभक्ष्यनिके भक्षणतैं हिंसादिक पंचपापनिमें तीव्र रागतैं निर्माल्य भक्षणतैं घोर दुःखनिका पात्र नारकी होय है नारकीनिका मानसिक दुःख अपार है नारकीनिकै शारीरिक दुःख, क्षेत्रजनित दुःख, परस्पर कीये दुःख, असुरनिकरि उपजाये दुःख वचनके कहनेक गोचर नाहीं हैं सो चिंतवन करो । अर नरकमें आयु पूर्ण भये विना मरण नाहीं । अर तिर्यंचनिके अर रोगी दरिद्री मनुष्यनिके पापका उदयतैं जे तीव्र दुःख होय हैं सो प्रत्यक्ष देखो ही हो, वर्णन कहा करिये । पराधीन तिर्यंचगतिके दुःख वचनरहितपना अर तिनके क्षुधाका तृषाका शीतका उष्णताका ताडनाका अतिभार लादनेका नासिकाछेदन रज्जूनिकरि बांधनेका घोर दुःख है, अर स्वाधीन खान पान चालना बैठना उठना जिनके नाहीं । अर कोऊकूं सुखदुःखस्वरूप अभिप्राय जनाय कुछ उपाय उद्यम करना सो नाहीं, इसके घर रहूँ इसके नाहीं रहूं सो अपने आधीन नाहीं, चांडाल म्लेछ, निर्दयीनिके आधीन हू रहना अर ब्राह्मणादिकनिके आधीन होना । कोऊ नाना मारनिकरि मारै, कोऊ आहार नाहीं देवै, अर अल्प देवै अर भार बधता बहावै तो कोऊ राजादिकनिक निकट जाय पुकार करनेका सामर्थ्य नाहीं, कोऊ दयाकरि रक्षा कर सक नाहीं, नासिका गलि जाय, स्कंध गलि जाय, पीठ कट जाय, हजारां कीडा पड जाय तो हू पाषाणादिकनिका कर्कश भार लादना, अर भार नाहीं बह्या जाय, चाल्या नाहीं जाय, तदि मर्मस्थाननिमें चामडीनिका तथा लोहमय तीक्ष्ण आरानिका तथा लाठी लट्ठानिका घात अर दुर्वचननि करि बडी जबरीतैं चपावना, नासिकादि

मर्मस्थाननिमें ऐसा जेवडा सांकल चाममय नाडीनिकरि बांधै जो हलन चलन नाहीं कर सकै ऐसे तिर्यंचगतिके प्रत्यक्ष दुःख देखो हो तुम्हारे कहा दुःख है । जलचर नभचर वनचर जीव परस्पर भक्षण करैं हैं, छिपे हुएनिकूं हेरि हेरि निर्बलकूं सबल भक्षण करैं हैं शिकारी भील धीवर वागुरा देखत प्रमाण जहां जांय तहांतैं पकडि लावैं हैं, मारैं हैं, विदारैं हैं, रांधै हैं, भुलसैं है कौन दया करै ? पूर्वजन्ममें दयाधर्म धार्‍या नाहीं, धनका लोभी होय अनेक झूठ कपट छल क्रिया ताका फल तिर्यंचगतिमें उदय आवै है सो अब चिंतवन करो । अर मनुष्यनिमें इष्टका घोर दुःख है अर दुष्टनिका संयोगका अर निर्धन होनेका पराधीन बन्दीगृहमें पडनेका अपमान होनेका मारन ताडन त्रासन भोगनेका अर आंधा बहिरा गूंगा लूला पांगला होनेका, क्षुधा तृषा भोगनेका शीत उष्ण आतापादि भोगनेका, नीचकुल नीच क्षेत्रादिकमें उपजनेका, अंग उपांग गल जानेका, सिड जानेका, वांछित आहार नाहीं मिलनेका घोर दुःख भोगे तिनकूं चिंतवन करो यहां तुम्हारे दुःख है । बहुरि नरक तिर्यंचगतिके दुःख तो अपार हैं परन्तु पापके उदयतैं मनुष्यगतिमें भी मानसिक दुःख हू अज्ञान भावतैं कषाय अभिमानके वश पड्या जीवके अपार हैं कर्म बलवान है जिनका वचन हू मस्तकमें तीक्ष्णशूल समान वेदना करै ऐसे महादुष्ट निर्दयी महावक्र अन्यायमार्गी तिनके शामिल कर्म उपजाय दे तिनकी रात दिन त्रास भोगना भयवान रहना अर जे उपकारी इष्ट प्राणनि समान जिनके संगम करि अपना जीवन सफल मानै था ऐसे स्त्री पुत्र मित्र स्वामी सेवकादिकनिका वियोग होनेका बाल्य अवस्थामें पुत्रीका विधवा होनेका तथा आजीविका भ्रष्ट होनेका धन लुटि जानेका अति निर्धन होनेका, उदर भर भोजन नाहीं मिलनेका, दुष्ट स्त्री कपूत पुत्र पावनेका, बांधवनिमें तिरस्कार होनेका, गुणज्ञ स्वामीके वियोग होनेका तथा अपना अपवाद होने कलंक चढानेका बडा दुःख भोगे है, यातैं हे धीर ! यहां संन्यासके अवसरमें किंचित्मात्र उपजी कहा वेदना है कर्मके उदयतैं मनुष्यजन्ममें अग्निमें दग्ध हो जाय है, सिंह व्याघ्र सर्प दुष्ट गजादिककरि भक्षण करिये है, हस्त पाद कर्ण नासिका छेदै है शूली चढावै है पाडै है जिह्वा उपाडै है पापकर्मका उदयतैं मनुष्यजन्महूमें घोर दुःख भोगै है तथा दुष्ट वैरीनिके प्रयोगतैं दंडनिकरि वेतनकरि मुसंडीनिकरि मुद्गरनिकरि चामठनिकरि लोहडीनिकरि मारे गये हो शस्त्रनितैं विदारे गये लाल घमूका ठोकरनिकी मार पाद-ताडनिकी मार तथा दलना बालना सब पराधीन होय भोगे हैं जो स्वाधीन होय कर्मके उदयजनित त्रासकूं साम्यभावनितैं एकवार भोगै तो दुःखनिका पात्र नाहीं होय । समस्त रोग अनेकवार भोगे हैं अब

तुम्हारे ये रोग शीघ्र निर्जरैगा । अर रोग विना ऐसा जीर्ण दुष्ट कलेवरतैं छूटना नाहीं होय, देहतैं ममता नाहीं घटे, धर्ममें प्रीति नाहीं बधै, तातैं रोगजनित वेदनाकूं हूं उपकार करनेवाली जानि हर्ष ही करो । हे धीर, जो दुःख तुम संसारमें भोगे हैं तिनके अनन्तवें भाग हू तुम्हारे दुःख नाहीं है अब इस अवसरमें कायर होय धर्मकूं मलीन कैसैं करो हो ? जो तुम कर्मके वश होय चतुर्गतिमें घोर वेदना भोगी तो इहां धर्मरूप तप व्रत संयम धारण करते वेदना भोगनेका कहा भय करो हो, कर्मके वश होय जो वेदना अनन्तबार भोगी सो वेदना धर्मकी रक्षाके अर्थि जो एक बार समभावनितैं सहो तो बडी निर्जरा हो जाय । भो धीर, तुम भय-रहित होहू वा भयसहित होहू इलाज करो वा मत करो प्रबल उदय आया कर्म तो नाहीं रुकेगा । इलाज हू कर्मका मंद उदय भये कार्य करै है पापका प्रबल उदय होतैं अति शक्तिमान हू औषधि बहुत यत्नतैं युक्त किया हुवा हू वेदनाका नाश नाहीं करि सकै है । जे असंयमी योग्य अयोग्य समस्त भक्षण करनेवाला त्यागव्रतरहित रात्रि दिन समस्त प्रतीकार करै तो हू कर्मके प्रबल उदयतैं रोगकरि रहित नाहीं होय तो तुम संयम व्रत सहित अयोग्यका त्यागी कैसैं आकुल भये प्रतीकार वांछो हो । इहां राजा समान सामग्री अन्य कौनके होय, अर जिनकैं भक्ष्य अभक्ष्य, योग्य अयोग्यका विचार नाहीं, हिंसाके कारण महान आरम्भ करनेका जिनके भय नाहीं, दया नाहीं अर बडे-बडे धन्वंतरि सारिखे अनेक वैद्य अर अनेक ही औषधि होय तो हू कर्मका उदयजनित वेदनाकूं उपशम नाहीं करै तदि त्यागी व्रती तुम अर दयावान् व्रती वैयावृत्य करनवाले कैसैं तुम्हारा रोग हरैंगे ? समस्त वेदनाका उपशम करनेवाला जिनेन्द्रका वचनरूप औषध ग्रहण करि परम साम्यभावरूप अभेद्य चक्रकूं धारण करो, पूर्वकर्मका उदयरूप रसकू समभावनितैं भोगो ज्यूं अशुभ की निर्जरा हो जाय अर नवीन कर्मका बन्ध नाहीं होय । मरण तो एक पर्यायमें एकबार होना ही है परन्तु संयमसहित मरणका अवसर तो इहां प्राप्त भया है तातैं बडा हर्ष सहित मरण करो जातैं अनेक जन्म धारि धारि अनेक मरण नाहीं करो, अर अति अल्प जीवनमें धर्म छांडि आर्तपरिणामी मति होहू, अशुभकर्मके उदयके रोकनेकूं इंद्रादिकसहित समस्त देव समर्थ नाहीं ताहि ये अल्पशक्ति-धारी कैसैं रोकेंगे ? जिस वृक्षके भंग करनेकूं गजेंद्र समर्थ नाहीं तिस वृक्षकूं दीन निर्बल सूसा कैसे भंग करै ? जिस नदीके प्रबल प्रवाहमें महान देहका धारक अर महा बलवान हस्ती बहता चल्या जाय तिस प्रवाहमें सूसाका बहनेका कहा आश्चर्य ? जा कर्म का उदयकूं तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण बलभद्र अर देवनिसहित इंद्रहू रोकनेकूं समर्थ नाहीं तिस कर्मकूं अन्य कोऊ रोकनेकूं समर्थ है कहा ? तातैं कर्मके उदयकूं अरोक जानि असाताका

उदयमें क्लेशरूप मत होहू, शूरपना ग्रहण करो अर साम्यभावतैं कर्मकी निर्जरा करो । अर कर्मके उदयतैं दुःखित होहुगे रोवोगे विलाप करोग दीनता करोगे तो वेदना नाहीं मिटैगी अर नाही घटैगी, वेदना बधैगी धर्म अर व्रत संयम यश नष्ट होय आर्तध्यानतैं घोर दुःखके भोगने वाले तिर्यंच जाय उपजोगे यामें संशय नाहीं जो असाताका उदयमें सुखके अर्थि रोवना है विलाप करना है, दीनता भाषण करना है सो तेलके अर्थ बालू रेतका पेलना है, तथा घृतके निमित्त जलकूं विलोवना है, तथा तंदुलके निमित्त परालकूं खोदना है सो केवल खेदके निमित्त है आगानै तीव्र बंधनके निमित्त है । बहुरि जैसैं कोऊ पुरुष अज्ञानभावतैं पूर्व अवस्थामें किसीसौं धन करज लेय भोग्या अब करार पूर्ण भये आय मांगै तदि न्यायमार्गी तो हर्ष मानि, ऋण चुकाय करि अपना भार ज्यों उतारि सुखी होय तैसैं धर्मके धारक पुरुष तो धर्मके उदयतैं आया रोग दरिद्र उपसर्ग परीषह तिनके भोगनेतैं ऋण दूर होनेकी ज्यों मानि सुखी होय हैं जो अवार हमारे पूर्वकृत कर्म उदय आया है भला अवसरमें आया, अवार हमारे ज्ञानरूप प्रचुर धन है भगवान पंचपरमेष्ठीका शरण है साधर्मीनिका बडा सहाय है सो सहज ऋणका भार उतारि निराकुल सुखनैं प्राप्त होस्यूं अपना कषायादि भावनितैं उपजाया कर्म ऐसा बलवान है जो ऋद्धिका विद्याका बंधुजनका धन-सम्पदाका शरीरका मित्रनिका देव-दानवनिका सहायका बलकूं आधी क्षणमें नष्ट करै है कर्मरूप ऋण छूटै नाहीं । बहुरि रोग शोक जीवन मरण अन्य किसीहीके नाहीं उदय आया होय अर तुम्हारे ही उदय आया होय तो दुःख करना उचित है, क्षुधा तृषा रोग वियोग जन्म जरा मरण कौनके उदयके अवसरमें त्रास नाहीं देवैं हैं समस्त संसारी जीवानिके उदय आवैं हैं, मरण समस्तकूं प्राप्त होय है च्यारूं गतिनिमें कर्मका उदय आवै है तातैं जो पूर्व अवस्थामें बंध किया ताका उदयमें आकुलता त्यागि परम धैर्य धारणकरि समभावनितैं कर्मका विजय करो समस्त दुःखनिका विजय करनेका अवसरमें अब काहेका विषाद करो हो, सम्यग्दृष्टी तो आजन्मतैं समाधिमरणकी ही वांछा करै है सो यो अवसर महा कठिन प्राप्त भयो है समस्त दुःखनिका नाशका अवसर कठिनतातैं पाया है उत्साहका अवसरमें विषाद करना उचित नाहीं. यो अवसर चूक्यां फिर अनन्तकालमें नाहीं मिलैगो । बहुरि अरहंत सिद्ध आचार्यादिक भगवान परमेष्ठी अर समस्त साधर्मीनिकी साखतैं जो त्याग संयम ग्रहण किया तिस त्यागका भंग करनेतैं पंचपरमेष्ठीनितैं परान्मुखता भई, समस्त धर्मको लोप भयो, धर्मके दूषण लगायो धर्मका मार्गकी विराधना करी अपना दोऊ लोक नष्ट किया । अर मरण तो अवश्य होयहीगा मरण अर दुःखतो व्रत संयम भंग किये हू नाहीं दूर होयगा । जो कार्य राजाकूं अर पंचोंकूं साक्षी करि करै अर फेर वाकूं लोपै तो तीव्र दंडने महा अपराधने प्राप्त होय अर

समस्तलोकमें धिक्कार अर तिरस्कारकूं प्राप्त होय है अर परलोकमें अनन्तकाल पर्यंत अनन्त जन्म मरण रोग शोक वियोग होनेका पात्र होय है जो त्याग नाहीं करै सो तो अनादिका संसारी है ही, वाने तो त्याग संयम व्रत पाया ही नाहीं । अर जो त्याग करि व्रत संयम संन्यास बिगाडे है ताकै धर्मवासना अनन्तानन्त कालमें दुर्लभ है । बहुरि आहारकी गृद्धिता है सो तो अति निंद्य है जे उत्तम पुरुष है तो तौ क्षुधा वेदनाकूं प्राणापहारिणी जानि क्षुधाका इलाज मात्र आहार करैं हैं सो हू बडी लज्जा है आहारकी कथा हू दुर्ध्यानकूं करनेवाली जानि त्याग करैं हैं यो हाड मांस मय देह आहार विना रहै नाहीं अर देह विना तप व्रत संयमरूप रत्नत्रयधर्म पलै नाहीं तातैं रत्नत्रयका पालनकै अर्थि रस नीरस जैसा कर्म विधि मिलावै तैसा निर्दोष उज्ज्वल भोजनतैं उदर पूर्ण करै है रसना इन्द्रियकी लंपटतानै कदाचित् प्राप्त नाहीं होय है, मनुष्यजन्मकी सफलता तो आहारका लंपटताकै जीतनेतैं ही है तिर्यंचगतिमें तो आहारकी लंपटतातैं बलवान होय सो निर्बलनै तथा परस्पर भक्षण करै है आहारकी गृद्धितातैं माता पुत्रकूं भक्षण करै है मनुष्य गतिमैं हू नीच उच्च जातिका भेद समस्त आचारका भेद भोजनके निमित्ततैं ही है इसलोकमें जेता निंद्य आचरण हैं तितना भोजनका विचाररहितकै ही है अर भोजनमें जिनकै लंपटीपना नाहीं ते उज्ज्वल हैं वांछारहित हैं ते उत्तम हैं अर नीच उच्च जाति कुलका भेद भी भोजनके निमित्त तैं ही हैं। आहारका लंपटी घोर आरम्भ करै है बाग बगीचेनिमें एक अपने जीमनेके अर्थि कोट्यां त्रस जीवनिकूं मारै है। महापापकी अनुमोदना करै है। अभक्ष्य भक्षण करै है असत्य वचन हिंसादिक महापापके वचन आहारका लंपटी बोले है आहारका लंपटी सुन्दर भोजन वास्ते चोरी करै है। कुशील सेवन करै है भोजनका लंपटी धन परिग्रहमें महामूर्च्छावान होय हैं। अन्य लोकनिकूं मारि झूठ बोलैं चोरी करकै हू मिष्ट भोजन वास्ते धन संग्रह करै है। मिष्ट भोजन वास्ते क्रोध करै है। मान करै है। कपट छल करै है। चोरी करै है। कुलका क्रम नष्ट करै है। नीच जातिके शामिल हो जाय है। नीच कुलके मद्य मांसके भक्षकनिका दासपना अंगीकार करै ह। भोजनका लंपटी निर्लज्ज होय जाय है। भोजनका लंपटी अपना पदस्थ उच्चता जाति कुल आचार नाहीं देखै है स्वादिष्ट भोजन देखि मन बिगाड दे है। बहुत धनका धनी अर अपने गृहमें सुन्दर भोजन नित्य मिलता हू नीचनिकै रंकनिकै शूद्रनिकै म्लेच्छ मुसलमानकै घर हू जाय भोजन करै है। भोजनका लोलुपी ग्राम नगरमें विकता नीच वृत्तिकरि कीया अर समस्त मुसलमानदिक जिनकूं स्पर्श कर जाय बेच जाय ऐसे अधम भोजनकू खरीद ल्यावै है। भोजनका लम्पटी तपश्चरण ज्ञानाभ्यास श्रद्धान आचरण समस्त शील संयमकूं दूरतै ही छांडै है। अपना अपमान होना नाहीं देखै है। अभक्ष्यमें उच्छिष्टमें

मांसादिकनिमें आसक्त हो जाय है अयोग्य आचरणकरि अपने कुळका क्रमकूं नष्ट करै है मलीन करै है जिह्वा इन्द्रियकी लम्पटता कहा कहा अनर्थ नाहीं करै ? शोधना देखना तो आहारके लम्पटीकै है ही नाहीं अर ये आहार कैसा है कहांतैं आया है ऐसा विचार आहारका लम्पटीके नाहीं रहे है जो आहारका लम्पटी है ताकी तीक्ष्णबुद्धि हू मन्द हो जाय है बुद्धि विपरित हो जाय सुमार्ग छांडि कुमार्गमें प्रवीण हो जाय है धर्मतैं पराङ्मुख हो जाय है सो देखिये है केई पुरुष अनेक शास्त्र पढ्या है वचनादिकरि अनेक जीवनिकूं शुभमार्गका उपदेश करै है तथा बहुत कालतैं सिद्धांत श्रवण करै है तो तिनकै सत्यार्थ श्रद्धान ज्ञान आचरण नाहीं होय है विपरीत मार्गतैं नाहीं छूटै है सो समस्त अन्याय अभक्ष्य भोजन करनेका फल है मुनीश्वरनिकै तो प्रधान आहारकी शुद्धता ही है अर श्रावककैं हू समस्त बुद्धिकी शुद्धताका कारण एक भोजनकी शुद्धता ही जानो आहारका लम्पटीकैं योग्यका, अयोग्यका, शोधनेका, नेत्रनितैं देखनेका थिरपना नाहीं होय धैर्यरहित शीघ्रतातैं भक्षण ही करै है जिह्वा का लंपटी मान सन्मान सत्कार अपना उच्च पदस्थता नाहीं देखता मिष्ट भोजन मिलै तहां परम निधीनिका लाभ गिनै है भोजनका लंपटी मिष्ट भोजन देनेवालेके आधीन होय माताका पिताका स्वामीका गुरुका उपकार लोपि अपकार ग्रहण करै है भोजनके लम्पटीका विनय अपना स्त्री पुत्र हू नाहीं करै है भोजनका लम्पटीकै धर्मका श्रद्धान भी नाहीं होय है जातैं सम्यग्दृष्टी आत्मीक सुखकूं सुख जानै ताकै तो इन्द्रियनिका विषयजनित सुखमें अत्यन्त अरुचि होय है जाकूं सुन्दर भोजन ही सुख दीख्या सो तो विपरीत ज्ञानी मिथ्यादृष्टी ही है जिह्वाका लंपटी है सो महाअभिमानी हू उच्चकुली हू नीचनिका चाटुकार स्तवन करै है तथा भोजनका लंपटी दीन हुवा परका मुख देखता फिरै ह याचना करै है, नाहीं करनेयोग्य कर्म करै है एक भोजनकी चाहतैं शालिमच्छ सप्तम नरक जाय है अर अनेक जन्तु भक्षणकरि महामच्छ हू सप्तम नरक जाय है देखहु सभौम नाम चक्रवर्ती देवोपनीत भी दशांग भोगनितैं तृप्त नाहीं भया अर कोऊ विदेशीका लाया फलके रसकी गृद्धिताकरि कुटुम्बसहित समुद्रमें डूबि सप्तम नरक गया और निकी कहा कथा ? अर ऐसा जिनेन्द्रका वचनरूप अमृतपान करनेतैं हू जो तुम्हारै आहारम रसवान भोजनमें गृद्धता नाहीं नष्ट भई तो जानिये है तुम्हारै अनन्तकाल असंख्यातकाल संसारमें परिभ्रमण करना अर क्षुधा तृषा रोग वियोग जन्म मरण अनन्त बार भोगना है। अर जो तुम या विचारो हो जो मैं

भोजन-पान कर तृषाकूं मेटि तृप्त होऊंगा सो कदाचित् आहारकरि तृप्तता नाहीं होयगी, क्षुधा तृषाकी वेदना तो असाता नाम कर्मके नाशतैं मिटैगी, आहार करनेतैं नाहीं घटैगी । आहारतैं तो अधिक गृद्धिता बधैगी जैसैं अग्नि ईन्धन करि तृप्त नाहीं होय, अर समुद्र नदीनिकरि तृप्त नाहीं होय तैसैं आहारतैं तृप्तता नाहीं होयगी, लालसा अधिक अधिक वधैगी । लाभांतरायके अत्यन्त क्षयोपशमतैं उपज्या अत्यन्त बल वीर्य तेज कांतिके करनेवाला मानसिक आहार असंतख्यातकालपर्यंत स्वर्गमें इन्द्र अहमिन्द्रका सुख भोग्या तो हू क्षुधा वेदनाकी अभावरूप तृप्तता नाहीं भई तथा चक्रवर्ती नारायण बलभद्र प्रतिनारायण भोगभूमिके मनुष्यादि लाभांतराय भोगान्तरायका अत्यन्त क्षयोपशमतैं प्राप्त भया दिव्य आहार ताकूं बहुत काल भोग करकै हू क्षुधा वेदना नाहीं दूरी करी तो तुम्हारे किंचित् मात्र अन्नादिक भक्षण करि कैसैं तृप्तता होयगी ? तातैं धैर्य धारण करि आहारकी वांछाके जीतनेमें यत्न करो । अब आहार केताक भक्षण करोगे अर याका स्वाद केतेक काल है जिह्वाका स्पर्श मात्र स्वाद है, गिल गयां पाछैं स्वाद नाहीं, पहले स्वाद नाहीं केवल अधिक अधिक तृष्णा बधावै है । समस्त प्रकारके आहार भक्षण तुम अनादितैं किये हैं तदि तृप्ति नाहीं भई तो अब अंतकालमें कंठगत प्राणके समय किंचित् आहारतैं तृप्ति कैसैं होयगी तातैं दृढता धारणकरि अपना आत्माहितकूं करो । अर ऐसा कोऊ आहार भी लोकमें अपूर्व नाहीं है जाकूं तुम नाहीं भोग्या, जो समस्त समुद्रका जल पीये तृप्त नाहीं भया तो ओसकी बूंदको चाटनेकरि कैसैं तृप्त होहुगे ? अर पूर्वकालमें हू रात्रि–दिन आहारकै निमित्त ही दुःखित हुआ पर्याय व्यतीत करी है देखो बहुत काल तो आहारका स्वादकी वांछा रहै सो दुःख, अर आहारकी विधि मिलावनेकूं सेवा वणिज इत्यादिककरि धन उपार्जन करनेमें दुःख, दीनता करतां पराधीन रहां हू दुःख, धन खरच होता दीखै तामें दुःख, स्त्रीपुत्रादिक आहारका विधि मिलावै तिनके आधीन होने का दुःख तथा आप बहुत काल पर्यंत बचाना आरम्भ करना अर भोजन तय्यार नाहीं होय तेतैं वांछासहित रहना सो हू दुःख, कोऊ रसादिक सामग्री नाहीं तो लावनेका दुःख, अपनी इच्छाप्रमाण नाहीं मिलै तो दुःख अर मिष्टभोजन भक्षण करते खाटा की लालसा फिर चिरपराकी लालसा फिर मीठाकी लालसा इत्यादिक वारम्वार अनेक लालसा जहां नाहीं घटै तहां सुख कहां ? जिह्वाके स्पर्शमात्र हुआ अर निगलै है श्रेष्ठ मनवांछित हू आहार एक क्षणमें जिह्वाका मूलकूं उलंघन करै है एक जिह्वाका अग्रही स्वाद जानै है जिह्वा नाहीं भिडै तितने स्वाद नाहीं अर जिह्वातैं पार उतऱ्या कि स्वाद जिह्वाके नाहीं, एक निमेषमात्र आहारका स्पर्श का स्वाद है तिसके निमित्त घोर दुर्ध्यान करै है महासंकट भोगै अर भोजन करकै हू वांछारहित नाहीं होय है ।

तातैं ऐसा दुःखका करनेवाला आहारके त्यागका अवसर आया इस अवसरकूं महा दुर्लभ अक्षय निधानका लाभ समान जानों । आहारके स्वादमें अति विरक्त होहू यहां जो दृढ परिणामनितैं आहारमें विरक्त होहुगे तो स्वर्ग लोकमें जाय उपजोगे जहां हजारां वर्षताईं क्षुधावेदना नाहीं उपजैगी । जहां जितना सागर–प्रमाण आयु तितना हजार वर्ष–पर्यन्त तो भोजनकी इच्छा ही नाहीं उपजै । अर पाछैं किंचित् इच्छा उपजै तदि कंठनि में अमृत परमाणु ऐसे द्रवैं सो एक क्षणमात्रमें इच्छा को अभाव हो जाय । सो समस्त प्रभाव असंख्यात वर्ष–पर्यन्त क्षुधावेदना नष्ट होनेरूप पूर्वजन्ममें आहारकी लालसा छांडि अनशनतप अवमौदर्यतप रसपरित्यागतपके करनेका है। ये तिर्यंच मनुष्यगतिमें जो क्षुधा तृषा रोगादिकका घोर दुःख अनन्त कालतैं भोगे हैं सो समस्त आहारकी लंपटताका प्रभाव है । जिन–जिन आहारकी लंपटता छांडि ते क्षुधादिवेदना–रहित कवलाहार–रहित दिव्य देव होय हैं जो अब इस वेदनातैं दुःखित हो तो आहारके त्यागमें ही अचल प्रवर्तों, जो अल्पकालमें वेदना रहित कल्पवासी देवनिमें जाय उपजो । अर आहार भक्षण करने करिकैं तो वेदनारहित नाहीं होवोगे । बहुरि समस्त दुःखनिका मूल कारण इस जीवके एक शरीरका ममत्व है याकी ममतातैं याकी रक्षाके निमित्ततैं ही अनंतानंत कालपर्यंत दुःख भोगे हैं जेते क्षुधा तृषा रोगादिक परीषहनिका दुःख है ते समस्त एकदेहकी ममतातैं हैं । जे महन्त पुरुष देहमें ममताका त्यागी भये हैं तिनके हाड–मांस–चाममय महा दुर्गंध रोगनिका भरा देह धारण नाहीं होय । जेतै संसारका अभाव नाहीं होय तितने इन्द्रादिक देवनिका दिव्य देह प्राप्त होय है पाछै शील–संयमादि सामग्री पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है । जो देहकी वेदनातैं दुःखी हो तो शीघ्र ही देहकी ममता लालसा छांडो जो देह नाहीं धारो अर आहारकी चाहतैं दुःखी हो तो आहारहीका त्याग करो जो फेरि क्षुधा तृषादिक वेदनातैं आहार ग्रहण नाहीं करो, क्रमतैं देहकूं ऐसैं कृश करो जैसे वात पित्त कफका विकार मन्द होता जाय परिणामनिकी विशुद्धता बधती जाय ऐसैं आहारका त्यागका क्रम पूर्वैं कह्या ही है । पाछै अन्तकालमें जेती शक्ति होय तिस प्रमाण जलकाहू त्याग करना । अन्तकालमें जेती शक्ति रहै तेतैं पंचनस्कारमन्त्रका तथा द्वादश भावनाका स्मरण करना जव शक्ति घट जाय तो अरहंत नामकाही सिद्धका ध्यान मात्र करना । अर जब शक्ति नाहीं रहै तदि धर्मात्मा वात्सल्य अंगका धारक स्थितिकरणमें सावधान ऐसे साधर्मी निरन्तर चार आराधना पंचनमस्कार मधुर स्वरनितैं बडी धीरतातै श्रवण करावै जैसैं आराधकका निर्बल शरीरमें मस्तकमें वचन करि खेद दुःख नाहीं उपजै । अर श्रवण करनेमें चित्त लग जाय तैसैं श्रवण करावै । बहुत आदमी मिलि कोलाहल नाहीं करै, एक–एक साधर्मी अनुक्रमतैं धर्मश्रवण जिनेन्द्रनाम स्मरण करावै । अर आराधक के निकट बहुत जनांका वा संसारका ममत्व

मोहकी कथा करनेवालेनिका आगम रोक देवै, पंच नमस्कार वा च्यार शरण इत्यादिक वीतराग–कथा सिवाय नजीक नाहीं करै, दाय चार धर्मके धारक सिवाय अन्यका समागम नाहीं रहै । अर आराधक हू सल्लेखना का पांच अतीचार दूर ही तैं त्यागै, तिन पंच अतीचारनिके कहनेकूं सूत्र कहैं हैं ।

जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः । सल्लेखनातिचाराः पंच जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥१२९॥

अर्थ—सल्लेखना करक जो जीवनेकी वांछा करैं जो दोय दिन जीऊं तो ठीक है सो जीविताशंसा नाम अतीचार है ॥ १ ॥ अर मरणकी वांछा करै जो अब मरण हो जाय तो ठीक है सो मरणाशंसा नाम अतीचार है ॥ २ ॥ अर भय करना जो देखिये मरणमें कैसा दुःख होयगा, कैसे कहूंगा, सो भय नाम अतीचार है ॥ ३ ॥ अर अपने स्वजन पुत्र–पुत्री मित्रनिकूं याद करना सो मित्रस्मृति नाम अतीचार है ॥ ४ ॥ आगामी पर्यायमें विषयभोग स्वर्गादिककी वांछा करना सो निदान नामा अतीचार है ॥ ५ ॥ ऐसैं पंच अतीचार सल्लेखनाके जिनेन्द्रने कहे हैं ।

भावार्थ—सल्लेखनामरणमें समस्त त्याग करि केवल अपना शुद्ध ज्ञायकभावका अवलंबन करि समस्त देहादिकतैं ममत्व छांडि संन्यास धारी, फेरहू जीवनेकी मरनेकी वांछा करना भय करना मित्रनिमें अनुराग करना, आगै सुखकी वांछा करना सो परिणामनिकी उज्ज्वलता नष्ट करि राग द्वेष मोह बधावनेवाले परिणाम हैं तातैं सल्लेखनाकूं मलीन करनेवाले अतीचार कहे । निर्विघ्न आराधनाका धारणतैं गृहस्थके स्वर्गलोकमें महार्द्धिक होना तो वर्णन किया पाछैं संयम धरि निःश्रेयस कहिये निर्वाणकूं प्राप्त होय है ।

तिस निःश्रेयसका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै है—

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम् । निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥१३०॥

अर्थ—ऐसैं सम्यग्दृष्टी अन्तसल्लेखनासहित बारा व्रतकूं धारण करै है सो जिनेन्द्रका धर्मरूप अमृत पान करि तृप्त हुआ तिष्ठै है यातैं जो पीतधर्मा कहिये आचरण किया है धर्म जानैं ऐसा धर्मात्मा श्रावक है सो अभ्युदय जो स्वर्गका महर्द्धिकपना असंख्यात कालपर्यंत भोगि फिर मनुष्यनिमें उत्तम राज्यादिक विभव पाय फिर संसार देह भोगनितैं विरक्त होय शुद्ध संयम अङ्गीकार करि निःश्रेयस जो निर्वाण है ताहि निःपिबति नाम आस्वादन करै है अनुभव करै है । कैसाक है निःश्रेयस निस्तीर कहिये तीर जो पर्यंतताकरि रहित है,

बहुरि दुस्तर है जाका पार नाहीं है, बहुरि सुखका समुद्र है ऐसा निर्वाण में समस्त दुःखनिकरि अस्पृष्ट हुवा संता भोगे है ।

अब और हू निःश्रेयसका स्वरूप कहिये है—

जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् । निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥१३१॥

अर्थ—जो जन्म जरा रोग मरण करिकै रहित अर शोक दुःख भय करि रहित अर नित्य अविनाशी समस्त परके संयोग रहित केवल शुद्ध सुखस्वरूप जो निर्वाण है ताहि निःश्रेयस इष्ट कहिये है । बहुरि निःश्रेयसका स्वरूपकूं कहैं हैं—

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः । निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम् ।१३२।

अर्थ—विद्या कहिये ज्ञान अर अनंतदर्शन अनंतवीर्य अर स्वास्थ्य कहिये परम वीतरागता अर प्रल्हाद कहिये अनंतसुख अर तृप्ति जो विषयनिकी निर्वांछकता, शुद्धि जो द्रव्यकर्मरहितता इनकरि आत्मसंबंधकूं प्राप्त भये अर निरतिशया कहिये ज्ञानादिक पूर्वोक्त गुणनिकी हीनता अधिकता रहित अर निरवधयः कहिये कालकी मर्यादारहित भये संते निःश्रेयस जो निर्वाण तामें सुखरूप जैसैं होय तैसैं बसते हैं ।

भावार्थ—धर्मके प्रभावतैं आत्मा निःश्रेयसमें बसैं है केवलज्ञान केवलदर्शन अनन्तशक्ति परमवीतरागतारूप निराकुलता अनंतसुख विषयनिकी निर्वांछकता कर्ममलरहितता इत्यादिक गुणरूप होय गुणनिकी हीनाधिकतारहित कालकी मर्यादारहित सुखरूप अनंतानंत काल बसै है । अब और हू निःश्रेयसका स्वरूप कहैं हैं--

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या । उत्पातोऽपि यदि स्यात्त्रिलोकसंभ्रांतिकरणपटुः १३३

अर्थ—अनंतानंत कल्पकाल व्यतीत हो जाय तो हू मुक्तजीवनिकै विकार जो स्वरूपको अन्यथा-भाव सो नाहीं लखिये है, नाहीं प्रमाणकरि जानने योग्य है । बहुरि त्रैलोक्यके संभ्रम करने में समर्थ ऐसा कोऊ उत्पात हू होय तोहू सिद्धनिकै विकार नाहीं होय है । और हू सिद्धनिका स्वरूप कहैं हैं—

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते । निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ॥१३४॥

अर्थ—निर्वाणकूं प्राप्त भये ऐसे मुक्तजीव हैं ते किट्टि अर कालिकारहित कांतिमान सुवर्णवत् द्रव्यकर्म नोकर्मरूप मलरहित प्रकाशमानस्वरूप भए त्रैलोक्यका शिखामणिकी लक्ष्मीकूं धारण करैं हैं । अर संन्यासके

धारक पुरुष स्वर्गकूं हू प्राप्त होय हैं—

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः । अतिशायितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥

अर्थ—बहुरि सम्यक् धर्म है सो अभ्युदयं फलति कहिये इन्द्रादिकपदवीकूं फलै । कैसाक अभ्युदयकूं फलै है जो पूजा अर अर्थ अर आज्ञा अर ऐश्वर्य करकै अर बल अर परिकरका जन अर काम-भोगनिकी प्रचुरताकरि तीन भुवनकूं उल्लंघन करे अर त्रैलोक्यमें आश्चर्यरूप ऐसा अभ्युदयकूं यो सम्यक् धर्म ही फलै है ।

भावार्थ—तीन लोकमें जो देखनेमें श्रवणमें चिंतवनमें नाहीं आवै एसा अद्भुत अभ्युदय सम्यग्धर्म ही का फल है धर्मका प्रभावही तैं इन्द्रपना अहमिंद्रपना पाइये है ।

अब श्रावकधर्मके ग्यारह पद हैं जैसा जाका सामर्थ्य होय सो ही पद ग्रहण करो ऐसा कहैं हैं—

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु । स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः १३६

अर्थ—भगवान सर्वज्ञदेव श्रावकधर्मके एकादश स्थान कहैं हैं ते स्थान पूर्वक स्थाननिके गुणनिकरि सहित अनुक्रमतैं विवर्द्धित भये तिष्ठैं हैं श्रावकपदके ग्यारह पद हैं—दर्शन १, व्रत २, सामायिक ३, प्रोषधोपवास ४, सचित्तत्याग ५, रात्रिभोजनत्याग ६, ब्रह्मचर्य ७, आरम्भत्याग ८, परिग्रहत्याग ९, अनुमतित्याग १०, उद्दिष्टआहारत्याग ११, ऐसै ग्यारह पद हैं । जो ऊपरले पदका आचरण करैगा ताकै पाछला पदका समस्त व्रत नियमादि आचरण धारण होयगा । अर ऐसा नाहीं जो ऊपरला पदका तो व्रत नियम धारा अर नीचला है ही नाहीं ऐसै जो ब्रह्मचर्य धारेगा ताकै दर्शनादिक छह स्थानका आचरण नियमसूं होय, आठवा पदमें नीचले सप्त स्थानका आचरण होय ही ।

अब प्रथम दर्शन नाम स्थानका धारकका लक्षण कहैं हैं—

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः । पंचगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥१३७॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शनके पच्चीस मलदोषनिकरि रहित होय अर निरन्तर संसारवासमें अर देहका संगममें अर इन्द्रियनिके भोगनिमें विरक्त होय अर पंच परमेष्ठी ही जाकै शरण होय अर सर्वज्ञभाषित जीवादिक तत्व ताका श्रद्धान करने वाला होय सो सत्यार्थमार्गमें ग्रहण करने योग्य दार्शनिक श्रावक प्रथम पदका धारक होय ।

भावार्थ—जो स्याद्वादरूप परमागमके प्रसादतैं निश्चय-व्यवहाररूप दोऊं नयनिकरि निर्णयपूर्वक स्वतत्व अर परतत्वकूं जानि श्रद्धान दृढ किया होय जाति कुलादि अष्टमद रहित होय अभिमान-मन्दताकरि आपकूं समस्त

गुणवंतनिके गुण विचारि आपकूं तृणसमान लघु मानता होय । अर यद्यपि अप्रत्याख्यानावरणके उदय की जवरीतैं अपना विषयनिमें राग नाहीं घटा है अर समस्त गृहके आरम्भनिमें वर्तैं है तो हू या जानैं है ये हमारे समस्त मोहके प्रभावतैं अज्ञानभाव है त्यागने योग्य हैं कब यासूं छूटूं मेरा हाल तीव्र रागभावपरिणामनिकूं चलायमान करै हैं । बहुरि मेरा धर्मात्मा जननिके उत्तम गुण ग्रहण करनेमें जाके अनुराग अर रत्नत्रयके धारकनिमें जाके बडा विनय अर धर्मके धारकनिमें बडा अनुराग धारै सो ही सम्यग्दृष्टि होय है जो देहादिक तथा राग द्वेष मोहादिकनितैं अनादिका मिल्या अपना ज्ञायकस्वभावकूं भेदविज्ञानका बल, करि भिन्न अनुभवे है अर जीवसूं मिल्या हुवा हू । देहकूं वस्त्र समान न्यारा जानै है अर अष्टादश दोषरहित सर्वज्ञ वीतरागमें ही देवबुद्धिकरि आराधना करै हैं अर दोषसहितमें देवबुद्धि नाहीं करें, अर दयारूप ही धर्म है हिंसामें कदाचित तीनकालमें धर्म नाहीं, आरम्भ परिग्रहरहित ही गुरु हैं अन्य गुरु नाहीं, ऐसा दृढ श्रद्धान होय अर कोऊ जीव कोऊकूं मारै नाहीं, जिवावै नाहीं, दरिद्री धनाढ्य करै नाहीं, कवल अपना भावनितैं बंध किया कर्मनिका उदयतैं जीवैं हैं मरै हैं सुखित दुःखित होय हैं, दरिद्री धनाढ्य होय हैं अपना कर्मके उदयतैं उपज्या संसारमें भोग भोगै है भक्तितैं पूजे व्यन्तरादिक देव मंत्र जन्त्रादिक समस्त पुण्यहीनके कुछ उपकार अपकार करनेकूं समर्थ नाहीं है, पुण्य नष्ट हो जाय तदि समस्त मन्त्रादिक हू शत्रु होय हैं पुण्य पापके प्रबल उदयतैं माटी धूली भस्म पाषाणादि देवताका रूप होय उपकार अपकार करै हैं । बहुरि सम्यग्दृष्टिकैं ऐसा निश्चय है जिस जीवके जिस देशमें जिस कालमें जिस विधान करकै जन्म वा मरण वा लाभ अलाभ सुख दुःख होना जिनेन्द्र भगवान दिव्यज्ञानकरि जान्या है तिस जीवके तिस देशमें तिस कालमें तिस विधान करकै जन्म मरण लाभ नियमतैं होय ही, ताहि दूर करनेकूं कोऊ इन्द्र अहमिन्द्र जिनेन्द्र समर्थ नाहीं है। ऐसैं समस्त द्रव्यनिकी समस्त पर्यायनिकूं जाने है श्रद्धान करै है सो सम्यग्दृष्टि दार्शनिक श्रावक प्रथमपदका धारक जानना ।

अब दूजा पदकूं कहैं हैं,—

निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि । धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥

अर्थ—जो अतिचाररहित पंच अणुव्रत अर सप्त शील इन बारह व्रतनिकूं माया मिथ्या निदान शल्यकरि रहित हुवा धारण करै सो व्रतीनकै मध्य याकूं व्रती श्रावक कहिये है ॥ २ ॥

अब तीसरा पदकूं कहैं हैं—

चतुरावर्तत्रितयश्चतुःप्रणामस्थितो यथाजातः । सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धिस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी १३९

अर्थ—सामायिकमें पंचनमस्कारकी आदिमें अर अंतमें अर थोस्सामिकी आदिमें एक एक प्रणाममें तीन तीन आवर्त अर कायोत्सर्ग अर बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह--रहितता अर देववंदनाका प्रारम्भ समाप्तिमें दोय बार बैठना ऐसैं तीन काल वंदना करै ताकै सामायिक नाम तीसरा स्थान जानना। याकी विशेष विधि बहुज्ञानी गुरुनिकि परिपाटीतैं कहैं सो प्रमाण है ॥ ३ ॥

अब चौथा प्रोषधस्थान कहैं हैं—

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य। प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ।१४०।

अर्थ—एक एक मास में दोय अष्टमी अर दोय चतुर्दशी ऐसैं चार जे पर्वदिन तिनमें अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय करकै आहार पानादिकका त्यागकर वा नीरस आहार वा अल्प आहार वा कंजिका ग्रहण करि अर शुभध्यानमें लीन हुवा नियम धारण करकै चार पर्वमें रहै सो प्रोषधानशननाम चतुर्थ स्थान है ॥ ४ ॥

अब सचित्तत्याग नाम पंचमपद श्रावकका है ताहि कहैं हैं—

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि। नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥

अर्थ--जो श्रावक मूल फल पत्र डाहली करीर कहिये वंश--किरण (कैरिया) अर कन्द अर फूल अर बीज ये अग्निकरि पके हुए नाहीं होय, काचे होय तिनकूं निरर्गल हुआ भक्षण नाहीं करै सो श्रावक दयाकी मूर्ति सचित्तविरतनाम पंचमपद अंगीकार करै है ॥ ५ ॥

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्। स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥१४२॥

अर्थ—जो प्राणीनिकी अनुकंपा दयारूपमनका धारक पुरुष रात्रि में अन्न कर किया भोजन अर पान कहिये जल दुग्ध शरबत इत्यादि पीवने योग्य अर खाद्य कहिये पेडा मोदक पाकादिक अर लेह्य आस्वादन करने का तांबूल, इलायचि, सुपारी, लवंग अन्य औषधादिक ऐसैं चार प्रकार कहनेकरि समस्त भक्षण करने योग्य पीवने योग्यकूं रात्रिमें भक्षण नाहीं करै सो रात्रिभुक्तिविरत नाम छठा पदका धारक श्रावक होय हैं—

अब ब्रह्मचर्य नाम सप्तम स्थानकूं कहैं हैं—

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतगंधि बीभत्सं। पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥

अर्थ—यो अंग जो शरीर है सो माताको रुधिर पिताको वीर्यरूप मलतैं उपज्यो है यातैं याका मल ही बीज है, अर यो मलकूं ही उत्पन्न करै है, तातैं मलकी योनि है, अर सासता नवद्वार मल ही कूं झारै है अर

महादुर्गंध हैं अर घृणाका स्थान है ऐसा शरीरकूं देखता संता जो कामतैं विरक्त होय सो ब्रह्मचारी है सप्तम पद है। यो ब्रह्मचारी है सो अपनी विवाही स्त्रीका सम्बन्ध अर निकट एक स्थान में शयन नाहीं करै हैं, पूर्व भोग भोग्या ताकी कथा चिंतवन नाहीं करै हैं, कामोद्दीपन करनेवाला पुष्ट आहार त्याग करै है राग उपजावनेवाला वस्त्र आभरण नाहीं पहरै है गीत नृत्य वादित्रनिका श्रवण अवलोकन त्यागे है पुष्पमाला सुगंध विलेपन अतर फुलेलादि त्यागै है श्रृंगारकथा हास्यकथारूप काव्य नाटकादिकनिका पठन श्रवणकूं त्यागै है तांबूलादिक रागकारी वस्तु दूर ही तै त्यागै है ताकै ब्रह्मचर्य नाम सप्तम पद श्रावकका है ॥ ७ ॥

अब फिर परिणाम बधै तो आरम्भत्याग करै है —

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति। प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥ १४४॥

अर्थ—जो सेवा अर कृषि अर वाणिज्य इत्यादि असिकर्म लिखनकर्म शिलपकर्म इत्यादि हिंसाका कारण जे आरम्भ तिनतै विरक्त होय सो आरम्भविनिवृत्त नाम अष्टम पदधारी श्रावक है।

भावार्थ—धन उपजावनेका कारण समस्त व्यापारादि पापके आरम्भ त्यागैं है अर जो स्त्री पुत्रादिकनिकूं समस्त परिग्रहका विभाग करि अल्पधन निकट राखै, नवीन उपार्जन नाहीं करै। अर जो अल्प धन निकट राख्यो तामेंसूं दुःखित बुभुक्षितनिका उपकार करना तथा अपने शरीरका साधन औषधि भोजन वस्त्रादिकमें लगावै तथा आपका हित समत्ववाला तथा साधर्मीनिके दुःख निवारणके अर्थि देवै, अन्य पापके आरम्भमें नाहीं लगावै। अर कदाचित् मर्यादारूप अल्प धन राख्या अर ताकूं चोर वा दाइयादार दुष्ट राजादिक हर ले तो क्लेश नाहीं करै, तथा फेरि नाहीं उपजावनेमें यत्न करै, त्याग करि ऊंचा ही चढै, जो अहो मैं रागी मोही होय एता परिग्रह राख्या था सो गया मेरा कर्म बडा उपकार किया, ममता आरम्भ रक्षा भयादिक समस्त क्लेशतैं छूट्या याका बडा दुर्ध्यान था सो सहज ही छूट्या। ऐसा भाव जाकै होय ताकै आरम्भनिवृत नाम अष्टम स्थान है।

अब नवमस्थान परिग्रहत्याग ताहि कहैं हैं—

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः। स्वस्थः संतोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥

अर्थ—बाह्य दश प्रकारके परिग्रहमें ममत्व छांडि करकै अर हमारा किंचित् कुछ हू नाहीं ऐसे निर्ममत्वपनामें

रत आसक्त रहै अर देहादिक रागादिक समस्त परद्रव्य परपर्यायनिमें आत्मबुद्धिरहित होय अपना अविनाशी ज्ञायकभावमें स्थिर रहै अर जो भोजन वस्त्र स्थान कर्म मिलाया तातैं अधिक नाहीं चाहता सन्तोषमें तत्पर समस्त वांछा दीनतारहित तिष्ठै अर परिचयमें जो परिग्रह है तातैं अति विरक्त रहै सो परिग्रहत्यागी नामा नवमा श्रावक होय है ।

भावार्थ—नवमा श्रावककै रुपैया मोहर सुवर्ण रूपी गहणी आभरणादिक सकल परिग्रहका त्याग है कोऊ शीत उष्णताकी वेदना दूर करने मात्र अल्पमोलका प्रमाणीक वस्त्र रहै तथा हस्त–पादादि धोवनेके अर्थि वा जल पीवनेका पात्र–मात्र परिग्रह है सो परिग्रहत्याग नाम स्थान है । अर जो गृहमें वा अन्य एकांत स्थानमें शयन आसनादिक करै है अर भोजन वस्त्रादिक जो घरका देवै सो अंगीकार करै अर सिवाय औषध आहार पान वस्त्रादिकनिकी तथा शरीरका टहल करानेकी आपके इच्छा होय सो स्त्री पुत्रादिकनिकूं कहै, अर घरका स्त्री–पुत्रादिक कर दे तो करो, अर नाहीं करैं तो वासूं उजर करै नाहीं जो हमारा मकान है धन है आजीविका है हमारा कह्या कैसैं नाहीं करो ऐसा उजर वा परिणाममें संक्लेशादि चिंतवन नाहीं करै ताकै परिग्रहत्याग नाम नवमा स्थान है ॥ ९ ॥

अब अनुमतित्याग नाम दशमा स्थानकूं कहैं हैं—

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा । नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥

अर्थ—जाकै आरंभमें वा परिग्रहमें वा इस लोकसम्बन्धी कर्म जे विवाहादिक तथा गृह बनावना विणज सेवा इत्यादिक क्रियामें कुटुम्बका लोग पूछै तो हू अनुमोदना नाहीं देना, तुम भला किया ऐसा मन वचन कायतैं नाहीं करना जाकै रागादिरहित समबुद्धि होय सो श्रावक अनुमतिविरत है ।

भावार्थ—जो भोजन खारा वा कडवा मीठा इत्यादिक स्वाद–सहित वा स्वाद–रहितमें रागद्वेषरहित होय सुन्दर असुन्दर नाहीं कहै तथा बेटाका बेटीका लाभका अलाभका हानिका वृद्धिका दुःखका सुखका समस्त कार्यनिमै माही हर्ष विषादरहित होय अनुमोदना नाहीं करै ताके अनुमतिविरत नाम दशमा स्थान होय है ।

अब उद्दिष्टत्याग नाम ग्यारमा स्थानकूं कहैं हैं—

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकंठे व्रतानि परिगृह्य । भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥

अर्थ—जो समस्त गृहका त्याग करि अपना गृहतैं मुनीश्वरनिके तिष्ठवेका वनमें प्राप्त होय गुरुनिकै समीप व्रतनिकूं ग्रहण करकै तपश्चरण करता वस्त्र का खंडकूं धारण करता भिक्षा भोजन करै सो उत्कृष्ट श्रावक होय ।

भावर्थ—जो समस्त गृह कुटुम्बतैं विरक्त होय वनमें जाय मुनीश्वरनिकै निकट दीक्षा ग्रहण करै अर एक कोपीन मात्र वा कोपीन अर खण्डवस्त्र जातैं समस्त अंग नाहीं ढकै, मस्तक ढकै तो पग ढकै नाहीं, अर पग ढकै तो मस्तक ढकै नाहीं केवल किंचित् डांस, मांछर, शीत, आताप, वर्षा पवनका परीषहमें साहरा रहै, अर भिक्षाभोजन अजाचीकवृत्तिमें मौनतैं ग्रहण करै, अपने निमित्त भोजन किया हुवा ग्रहण करै नाहीं, न्योतातैं बुलाया जाय नाहीं, आपके निमित्त कुछ भी आरम्भ जाने तो भोजनका त्याग करै वनमें वा बाह्य वस्तिकामें रहै उपसर्ग परीषह आजाय तो निर्भय हुवा सहै, कायरता दीनता करै नाहीं, ध्यान–स्वाध्यायमें सदाकाल लीन रहै, गृहस्थके विना बुलाया जावै, गृहस्थ आपके निमित्त भोजन किया तामेंतैं भक्तिपूर्वक दिया हुवा ग्रहण करै सो रससहित वा रसरहित कडवा खारा मीठा जो गृहस्थ दे सो समभावनितैं आहार ग्रहण करै, एक दिनमें एक वार आहार–पान ग्रहण करै, अंतराय हो जाय तो उपवास करै, अनशनादिक तपमें शक्तिप्रमाण उद्यमी रहै सो उद्दिष्टआहार त्यागी नामा ग्यारमा उत्कृष्ट श्रावकका स्थान है। ऐसैं श्रावकधर्मके ग्यारह स्थान कहे तिनमें अपनी शक्तिप्रमाण अंगीकार करो। अब और कहैं हैं—

पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्। समयं यदि जानीते श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

अर्थ––इस जीवका पाप वैरी है अर धर्म है सो बंधु है ऐसा दृढ निश्चय करता जो आपकूं जाने तदि यो अपना कल्याणकूं जानने वाला होय है।

भावार्थ—संसारमें दुःखका देनेवाला इस जीवका कोऊ वैरी है नाहीं, एक अपना विषयादि विपरीत अनुरागतैं पापकर्म उपजाया सो वैरी है अन्य तो बाह्य निमित्तमात्र हैं। अन्य जे दुर्वचन बोलनेवाला दोषनिकूं घोषणा करनेवाला धनका अर आजीविकाका अर स्थानका जबरीतैं हरनेवाला तथा ताडन मारन बंधन छेदन करनेवाला मेरा उपजाया पापका उदयतैं समस्त सम्बन्ध है आपका पापकर्म विना अन्य पुरुषनिकूं वैरी समझै सो मिथ्याज्ञानी जिनेन्द्रका आगम जान्या नाहीं। ऐसैं ही जीवका उपकारक बंधु है सो पुण्य कर्म है जो पुण्यकर्म का उदय विना अन्यकूं उपकारका जानै है सो भगवानका आगमका ज्ञानी नाहीं समझै मिथ्याज्ञानी है अब श्रावकाचारका उपदेशकूं समाप्त करता श्रीसमन्तभद्रस्वामी फल प्रतिपादन करता सन्ता सूत्र कहैं हैं—

येन स्वयं वीतकलंकविद्यादृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावम्।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु ॥१४९॥

अर्थ—जो पुरुष अपना आत्माकूं कलंक अतीचारनिकरि रहित ज्ञानदर्शनचारित्ररूप रत्ननिका करण्ड कहिये पिटारी पात्रपणानै प्राप्त करै है तिस पुरुषनै तीन भुवनमें सर्व वांछित अर्थ की सिद्धि अपना पतिकी इच्छा करक ही प्राप्त होय है ।

भावार्थ—जो पुरुष अपने आत्माकूं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप रत्ननिका पात्र किया ताकूं तीन भुवनकी सर्वोत्कृष्ट अर्थ की सिद्धि स्वयमेव प्राप्त होय है ऐसा नियम है । अब प्रार्थना करैं हैं—

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव, सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु ।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता- ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥ १५० ॥

अर्थ—जिनेंद्र भगवानका चरणकमलकूं अवलोकन करती ऐसी सम्यग्दर्शनलक्ष्मी है सो कामी पुरुषके सुखकी भूमि ऐसी कामिनीकी ज्यों मोकूं सुखी करो, अर शुद्धशीला शुद्धस्वभावका धारक माता जैसैं पुत्रनै पालना करै, तैसें मनै पालन करो अर शीलादिक गुण ही हैं आभूषण जाकै ऐसी कन्या कुलनै पवित्र करै तैसैं मनै पवित्र करो, उज्ज्वल करो ।

भावार्थ--जैसैं कामकी आतापका धारककूं कामिनी सुखी करैं है, अर जैसै शुद्धस्वभाव की धारक माता पुत्रकी पालना कर है अर गुणवान कन्या कुलनै पवित्र करै है तैसैं जिनपति जो शुद्धात्मा तानैं भावांतैं साक्षात् अवलोकन करानेवाली सम्यग्दर्शन की लक्ष्मी है सो मिथ्याज्ञानजनित आताप दूर करकें मोकूं नित्य अनन्तज्ञानादिरूप आत्मीक सुखकूं प्राप्त करो अर संसारके जन्म जरा मरणादि दुःख निवारण करि मेरे अनन्तचतुष्टयादिक स्वरूपकूं पुष्ट करो, अर राग द्वेष मोहरूप मलकूं दूरि करि मेरा आत्मस्वरूपकूं उज्ज्वल करो ।

इति श्रीपरमपूज्य धर्मसाम्राज्यनायक, योगींद्रचूडामणि, सिद्धांतपारंगत, चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य श्रीशांतिसागरजी महाराजके
आदेशसे ज्ञानदानके लिए श्री प. पू. चा. च. आ. शांतिसागर दिगंबर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाकी ओरसे
छपे हुए श्री १०८ स्वामीसमन्तभद्राचार्यविरचित रत्नकरण्डश्रावकाचारके सूत्रनिकी देशभाषामयवचनिका में पंचम अधिकार समाप्त भया ॥ ५ ॥

ग्रंथप्रकाशनसमिति फलटण वीर सं. २४८०

समाप्त

शास्त्र—भक्ति ।

अकेला ही हूं मैं करम सब आये सिमटिकें । लिया है मैं तेरा शरण अब माता सटकिकें ॥
भ्रमावत हैं मोकों करम दुख देता जनमका । करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥१॥
दुखी हूआ भारी, भ्रमत फिरता हूं जगतमैं । सहा जाता नाहीं अकल घबरानी भ्रमनमैं ॥
करों क्या मा मोरी, चलत वश नाहीं मिटनका । करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥२॥
सुनो माता मोरी, अरज करता हूं दरदमैं । दुखी जानों मोकों, डरप कर आयो शरनमैं ॥
कृपा ऐसी कीजे, दरद मिटजावै मरनका । करों भक्ती तेरी हरो दुख माता भ्रमनका ॥३॥
पिलावै जो मोकों, सुबुधिकर प्याला अमृतका । मिटावै जो मेरा सरब दुख सारा फिरनका ॥
परों पावां तेरे हरो दुख सारा फिकरका । करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥४॥

सवैया—मिथ्या—तम नाशवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपा—परभासवेको भानुसी बखानी है । छहों द्रव्य जानवेको बंधविधि भानवेको स्वपर पिछानवेको परम प्रमानी है ॥ ५ ॥ अनुभौ बतायवेको जीवके जतायवेको, काहू न सतायवेको भव्य उर आनी है । जहांतहां तारवेको पारके उतारवेको, सुख विसतारवेको येही जिनवानी है ॥ ६ ॥

दोहा—यह जिनवानी की थुती, अल्प बुद्धि परमान । पनालाल विनती करै, दे माता मोहि ज्ञान ॥ ७ ॥
हे जिनवानी भारती, तोहि जपों दिन रैन । जो तेरा शरना गहै, सो पावै सुख चैन ॥ ८ ॥ जा वानीके ज्ञानतें सूझै लोकालोक । सो वानी मस्तक चढो, सदा देत हों धोक ॥ ९ ॥

आचार्यवर्यं प्रणमामि नित्यम् ।

पूज्यातिपूज्यैर्यतिभिस्सुवंद्यं । संसार-गंभीर-समुद्रसेतुम् । ध्यानैकनिष्ठा-गरिमा गरिष्ठम् । आचार्यवर्यं प्रणमामि नित्यं ।
ध्यानादिसैन्यं परिवर्ध्य पूर्णम् । कर्मारिवर्गं प्रणिहत्य वेगात् । नीरागस्वातंत्र्यपदे प्रतिष्ठम् । आचार्यवर्यं प्रणमामि० ।
आभ्यन्तरो बाह्य उपाधिभारः । दूरीकृतो येन वितृष्णभावात् । दैगम्बरं सुन्दरदिव्यकाव्यम् । आचार्यवर्यं प्रणमामि० ।
धर्मामृतं पाययति प्रभूतम् । यो भव्यजीवान् करुणास्वरूपं । स्वात्मस्वरूपं च चकार तेभ्यः । आचार्यवर्यं प्रणमामि० ।
योऽनेक साधून् विषयेष्वरक्तान् । निर्ग्रंथ लिंगे विधिना चकार । गुरूपरागोपि च वीतरागः । आचार्यवर्यं प्रणमामि० ।
महागभीरं विशदीकृतार्थं । शास्त्राब्धिपारेंगतवान्समग्रम् । तथापि प्रज्ञामदताविरक्तः । आचार्यवर्यं प्रणमामि नित्यम् ।
दर्शं दर्शं सूरिशांतस्वरूपं, पायं पायं वाक्य-पीयूषधारां । स्मारं स्मारं तद्गुणान् स्पृष्टपादाः, जाताः शांताः साधवोक्षेष्वरक्ताः ।

समाप्त